श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

सुख यहां

प्रथम भाग
द्वितीय भाग
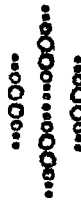
प्रवक्ता—
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री
पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
"सहजानन्द महाराज"

सम्पादक—
पवन कुमार जैन ज्वैलर्स, सदर मेरठ।

प्रकाशक—
खेमचंद जैन सर्राफ, मंत्री श्री सहजानंद शास्त्रमाला, १८५-ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ।

लागत प्रथम ७) रु०
लागत द्वितीय ७) रु०
[illegible]
जोड़ = १५) रु०

द्वितीय सस्करण : १०००
सन् १९७९

प्राप्ति व्यवहार का पता :-
विशम्भर दास महावीर प्रसाद जैन, सर्राफ
1325, चांदनी चौक, दिल्ली-110006

भारतवर्षीय वर्णी जैन साहित्य मंदिर के संरक्षक

(१) श्रीमती राजो देवी जैन ध० प० स्व० श्री कुमसंवरदासजी जैन आढ़ती, सरधना

(२) श्रीमती सरलादेवी जैन ध० प० श्री ओमप्रकाश जी विनेश वस्त्र फैक्टरी, सरधना

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के संरक्षक

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन बैंकर्स, सदर मेरठ

(२) श्रीमती फूलमाला देवी, ध० प० ला० महावीरप्रसादजी जैन बैंकर्स, सदर मेरठ

(३) श्रीमान् ला० लालचन्द विजयकुमार सर्राफ, सहारनपुर

(४) श्रीमती शशिकान्ता जैन ध० प० श्री धनपालसिंह जी सर्राफ, सोनीपत

(५) श्रीमती मुकटी देवी जैन, सरावगी गिरीडीह

(६) श्रीमती जमना देवी जैन ध० प० श्री भंवरीलाल जैन, पाण्ड्या झूमरीतिलैया

नवीन स्वीकृत संरक्षक

(७) श्रीमती रहती देवी जैन ध० प० श्री विमलप्रसादजी जैन, मंसूरपुर

(८) श्रीमती श्रीमती जैन ध० प० श्री नेमिचंदजी जैन, मुजफ्फरनगर

(९) श्रीमान् शिखरचंद जियालाल जी एडवोकेट, ,,

(१०) श्रीमान् चिरंजीलाल फूलचंद बैजनाथजी जैन बड़जात्या नई मंडी, ,,

(११) श्रीमती पूना बाई ध० प० स्व० श्री दीपचन्द जी जैन गोटेगांव

* मंगल-मन्त्र *

ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि ।

मैं ज्ञानमात्र हूं, मेरे स्वरूपमें अन्यका प्रवेश नहीं अतः निर्भार हूं ।

मैं ज्ञानघन हूं, मेरे स्वरूपमें अपूर्णता नहीं, अतः कृतार्थ हूं ।

मैं सहज आनंदमय हूं, मेरे स्वरूपमें कष्ट नहीं, अतः स्वयं तृप्त हूं ।

ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि ।

परमात्म-आरती

(पू० श्री मनोहर जी वर्णी द्वारा रचित)

ॐ जय जय अविकारी ।

जय जय अविकारी, स्वामी जय जय अविकारी ।
हितकारी भयहारी, शाश्वत स्वविहारी ।। टेक ।। ॐ ...

काम क्रोध मद लोभ न माया, समरस सुखधारी ।
ध्यान तुम्हारा पावन, सकल क्लेशहारी ।। १ ।। ॐ....

हे स्वभावमय जिन तुमि चीना, भव सन्तति टारी ।
तुव भूलत भव भटकत, सहत विपति भारी ।। २ ।। ॐ ....

परसम्बंध बंध दुख कारण, करत अहित भारी ।
परमब्रह्म का दर्शन, चहुं गति दुखहारी ।। ३ ।। ॐ...

ज्ञानमूर्ति हे सत्य सनातन, मुनिमन संचारी ।
निर्विकल्प शिवनायक, शुचिगुण भण्डारी ।। ४ ।। ॐ ....

बसो बसो हे सहज ज्ञानघन, सहज शांतिचारी ।
टलें टलें सब पातक, परबल बलधारी ।। ५ ।। ॐ ...

नोट—यह आरती निम्नांकित अवसरों पर पढ़ी जाती है—

१– मन्दिर आदि में आरती करने के समय ।
२– पूजा, विधान, जाप, पाठ, उद्घाटन आदि मंगल कार्यों में ।
३– किसी भी समय भक्ति-उमंग में टेक का व किसी छंद का पाठ ।
४– सभाओं में बोलकर या बुलवाकर मंगलाचरण करना ।
५– यात्रा वंदना में प्रभुस्मरणसहित पाठ करते जाना ।
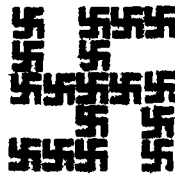
* आत्म-कीर्तन *

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ।। टेक ।।

मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहं रागवितान ।। १ ।।

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।। २ ।।

सुख दुःख दाता कोइ न आन, मोह राग रुष दुःख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहि लेश निदान ।। ३ ।।

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुंचूं निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ।। ४ ।।

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूं अभिराम ।।५।।

[धर्मप्रेमी बंधुओ ! इस आत्मकीर्तनका निम्नांकित अवसरोंपर निम्नांकित पद्धतियों में भारतमें अनेक स्थानोंपर पाठ किया जाता है । आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोंके बीचमें श्रोतावों द्वारा सामूहिक रूपमें ।
२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरपर ।
३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समय छात्रों द्वारा ।
४—सूर्योदयसे एक घंटा पूर्व परिवारमें एकत्रित बालक-बालिका, महिला तथा पुरुषों द्वारा ।
५—किसी भी आपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छंदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओं द्वारा ।

सुख यहां प्रथम भाग

(सहजानन्द गीता प्रवचन)

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री
पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥

बन्धुवर !

हम आप जीव हैं । जिनमें जानने देखनेकी शक्ति हो उसे जीव कहते हैं । जो इस शक्तिसे रहित हैं उन्हें अजीव कहते हैं । जो जानने, देखने वाली ज्योति है वही मैं हूं । इस ज्योतिके साथ अविनाभावी आनन्द है । इस आनन्द गुणके विकास सुख-दुःख व आनन्द हैं । सब जीव यही चाहते हैं कि मैं सुखी रहूं, दुःख न भोगूं । हम जितना भी प्रयास करते हैं, काम करते हैं उसका उद्देश्य केवल यही है कि मैं सुखी रहूं, दुःखसे छुटकारा पा जाऊं । सुखकी खोजमें ही रात दिन लगा रहता है यह, लेकिन क्या अभी तक सुख प्राप्त कर सके ? नहीं । क्योंकि हमारी खोज, हमारा प्रयास विवेकपूर्ण नहीं है । हम जितना भी सुखी होनेका प्रयास कर रहे है उसका परिणाम उल्टा ही होता है । कारण यह है कि हमारी खोज परपदार्थोंमें है । यदि हम स्वयंको देखें, समझें, अनुभव करें तो यही पावेंगे कि सुख कहीं नहीं, आनन्द किसी स्थान पर न मिलता है, न बिकता है किन्तु मुझमें स्वयंमें ही आनन्द लबालब भरा हुआ है । जिसकी प्राप्ति भटकते रहनेके कारण मैं आज तक न कर सका । हम आज तक दुःखों को सुख मानकर भोगते रहे । विचारो तो ये जो पतंगा, कीड़े, मकोड़े, वनस्पति आदि जीव हैं, जिनकी हत्या करते हुए, जिनको नष्ट करते हुये प्रायः लोगोंको जरा भी संकोच नही होता, ये सब हमारी ही तो पर्याय हैं । और यदि यह दुर्लभ मनुष्यकी पर्याय पाकर भी हम आत्मा को नहीं पहिचान सके तो इन चोरासी लाख योनियोंमें वैसा ही भटकना पड़ेगा । मानवजीवन

पाया, अतः हम धन्य हैं। हम बोल भी सकते हैं, अपना दुःख व दर्द बता भी सकते हैं, सेवा भी कर सकते हैं। अपनी इच्छा व्यक्त भी कर सकते हैं। किन्तु इन गाय, भैंस आदिको तो देखो कितना ही दुःख हो, कुछ भी कैसी परिस्थिति क्यों न हो, भाव भी व्यक्त नहीं कर सकते। चौरासी लाख योनियोंमें भटकनेके बाद दुर्लभ मानवपर्याय पाकर भी हम नहीं चेते तो फिर हमारा कल्याण नहीं। पूर्वजन्ममें अच्छे कर्म किये थे इस पर्यायको प्राप्त करनेके लिये। और इसको प्राप्त भी कर लिया है। तो भैया! इसको यों ही न जाने दो। आत्म-कल्याण करो। सबसे बड़ी यही बात है कि अपनी परिणति ठीक करो। हमारा ज्ञान व आचरण ठीक रहा तो इस पर्यायमें भी सुख है और अगली पर्यायमें भी सुख है। और यदि हमारा ज्ञान व आचरण शुद्ध नहीं तो अगला भव तो दुःखमय है ही और इस भवमें भी दुःख ही दुःख है। भैया भगवान चेतनामय, आनन्द ही आनन्द स्वरूप वाले हैं, ज्ञान ही ज्ञान स्व-रूप वाले हैं। ऐसे वे ज्योतिस्वरूप हैं जो अपने आनन्दमें रहा करते हैं। बस यही विचारो कि जब सर्वजीवका भी यही स्वरूप है व सब जीवोंमें भगवन् बस रहा है हम भी ज्ञान व आनन्दमय हैं। इस आनन्दका विकास धर्मके प्रसादसे होता है। धर्मके कार्योंमें सबसे पहिले जीव-दयाको ही धर्म बताया है। व्यवहारमें सबसे बड़ा और सबसे पहिला मानवधर्म है जीवमात्रपर दया करना। जिसके अन्दर दया नहीं वह आदर नहीं पाता और जिसके अन्दर सबके प्रति दयाभाव है वही आदर पाता अतः दया ही हमारा प्रथम धर्म है, यही विचार करना चाहिये।

मूल दया तो अपने व सबके चैतन्यस्वरूपको देखनेसे आती है। सब जीव भगवान्के स्वरूप समान चेतनाशक्ति—युक्त हैं। किन्तु मायाके प्रपञ्चसे दुःखी हो रहे हैं। मायाके आतंक से ही तो अभी मनुष्य हैं तो फिर पशु पक्षीकी पर्याय है। उन खोटी स्थितियोंसे बचनेके लिये, अपना आचरण सुधारनेके लिये अच्छा मार्ग सत्संग अपनाना चाहिये; कुमार्ग गमनसे तो कोई भी सुखी नहीं होता। जैसे कि जुआ खेलते हैं रुपया पैसा लगाकर, किन्तु क्या वे उसमें सुख शान्ति पा लेते हैं। नहीं दुःखी ही होते रहते हैं, क्योंकि जहाँ लालसा है वहीं दुःख है। पाण्डवोंको देखो जुएके कारण ही तो वे हीन बन गये, द्रोपदीका अपमान सहन करना पड़ा। यह सब किसके कारण ? एक जुवेके ही तो कारण और क्या कारण था इसके अतिरिक्त। अतः दुःखके सिवाय इन व्यसनोंमें रखा ही क्या है ? इसी प्रकार मांसभक्षण, मदिरापान, चोरी करना, शिकार खेलना, परस्त्रीसेवन व वेश्यागमन ये व्यसन भी क्लेश ही क्लेश हैं।

इन सात व्यसनोंका तो कमसे कम प्रत्येक प्राणीका त्याग होना चाहिये। यदि इन सात चीजोंका त्याग कर दिया तो जीवन सुखमय हो जायेगा। मांसभक्षणमें कितनी निर्दयता है। देखो अपने शरीरमें यदि कांटा लग जाता है या कोई चुटकी काट लेता है तो कितना दुःख होता है। और जिसका मांस खाया जाता है उसे तो जानसे ही खतम कर दिया जाता

है तब ना दुःख होता है। बताइये कितना बड़ा स्वार्थ है कि मांसभक्षियोंको तो जरासा कल्पित स्वाद, और यहाँ इसके प्राणोंकी आहुति। उन्हें कितना दुःख नहीं होता होगा। अतः भैया! सोच विचार कर इस व्यसनका त्याग कर ही देना चाहिये। मनुष्यका भोजन भी मांस नहीं है। बच्चेको भी शुरूमें यदि मांस दोगे तो वह वमन कर देगा। प्रकृतिविरुद्ध भी तो बात है यह। शराब पीनेसे बेहोशी हो जाती है, जानने देखनेकी शक्ति नष्ट हो जाती हैं। उसका विश्वास भी फिर कोई नहीं करता। चोरी करना, जुआ खेलना, मांस खाना, शिकार खेलना, मदिरा पीना, परस्त्रीसेवन करना, वेश्यागमन करना। इनके भी द्वारा होने वाली बरबादीको विचार करके जीवन पर्यन्त इन व्यसनोंका त्याग करना चाहिये। जिनको ध्यान भगवानमें लगाना है उन्हें इन्हें तुरन्त ही त्यागना चाहिये। इन व्यसनोंसे जीवका जो पतन होता है उससे यह पतित प्राणी प्रभुके बिल्कुल विमुख हो जाता है। आज जो हमारी स्थिति है यह पुण्यके प्रताप ही से तो है। तभी तो आज हम मनुष्ययोनिमें हैं। अतः अब भी हमें अपना धर्म न छोड़ना चाहिये। यह जो शरीर है जिसपर हम गर्व करते हुये नहीं अघाते हैं, क्या है यह? केवल खून, पीप, मवाद आदि दुर्गन्धोंका ही तो पिण्ड है, जिसमें नवद्वार तो प्रकट बहते ही हैं, और रोमके करोड़ों छिद्रोंसे मल झरता है। कुछ भी तो इसमें सार नहीं है। फिर क्यों इससे इतना मोह, क्यों इतना गर्व इस नाशवान् वस्तुका, जिसके खातिर मांसभक्षण मदिरापान आदि जैसे घोर पाप किये जाते हैं।

मदिरा (शराब) के पीने वालोंका मनुष्य तो निरादर करते ही हैं; कुत्ते तक भी मुखमें अशुचि क्षेपण कर निरादर कर डालते हैं। चोर को तो सदा शल्य ही रहती है वह तो छुपा छुपा ही रहना चाहता है। उसे तो कोई पास भी नहीं बैठने देता। शिकार खेलना तो अतिनिर्दयता है। परस्त्रीसेवन तो अनेक विपदाओंकी खान है। परस्त्रीगामी पराधीन दीन बन जाता है उसके तो प्राण भी नष्ट कर दिये जाते हैं। वेश्या तो नरककी साक्षात् दूती है। ये व्यसन लौकिक आपदा तो पैदा करते ही हैं किन्तु इन व्यसनोंसे जीव ऐसा अधार्मिक हो जाता है कि वह न तो प्रभुके भजनके योग्य रहता है, न धर्मकी बात समझनेके योग्य रहता है और न शान्तिका जरा भी पात्र रहता है। व्यसन तो मुफ्त ही सिर पर ली हुई विपदा है।

इन सात व्यसनोंमेंसे यदि एक भी साथ लग गया तो न तो वह प्राणी आरामसे बैठ सकता है, न चार व्यक्तियोंमें इज्जत ही पाता है, कोई उसका विश्वास नहीं करता, सब उसे झूठा समझने लगते हैं। परमार्थसे तो वह कोसों दूर रह जाता है। अतः इन सात व्यसनोंका त्याग करना ही चाहिये। आत्माके हितके लिये क्या करना चाहिए? यह अच्छी प्रकार

विचार कर अच्छी बातोंको धारण करो और बुरी आदतको छोड़ दो। अपनी आजीविका न्यायपूर्वक करें और किसी का जी तक न दुखावें। बस यही विचारें कि मेरे कारण किसी को दुःख न पहुंचे। उपकार और त्याग की ही तो महिमा है। जितना परउपकार करोगे और स्वरूपदृष्टि रख जितना सांसारिक परपदार्थोंका त्याग करोगे उतने ही महान बनोगे। जिन्दगी का सार यही है।

जो जिन्दा है वह मरेगा तो अवश्य ही, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु वह मरण अमर हो, ऐसा प्रयास करना चाहिए। सर्वप्रथम इन सात व्यसनोंको त्यागकर अपनी आत्माके कल्याणके मार्गमें लगें, अपनेको पहिचानें। यदि इस प्रकारका सच्चा ज्ञान प्राप्त कर आचरण किया तो जीवन सफल हो जावेगा। इन सात व्यसनोंके त्यागसे धर्मका मर्म समझनेकी योग्यता आती है। व्यसनसेवी धर्मकी बातका स्पर्श भी करनेका पात्र नहीं होता। अतः यह तो सर्वप्रथम ही आवश्यक है कि सप्तव्यसनोंका त्याग करें। धर्म जिसके कि धारणसे क्लेश नष्ट होते हैं वह बाहर नहीं, आत्मवस्तुमें ही है। वस्तु अपनेमें जिस स्वभावको धारण करता है उसका नाम धर्म है। जैसे बिच्छूका धर्म काट लेना है, मानवका स्वभाव रक्षा करना है, अग्निका धर्म जलाना है। इस तरह लोकव्यवहार की प्रसिद्धिसे भी यही सिद्ध है कि वस्तुके स्वभावका नाम धर्म है।

एक उदाहरण है कि एक नदीमें बिच्छू बह रहा था। एक मनुष्य उसको निकालने के लिए नदीमें घुसा। खड़े हुए आदमी बोले कि भैया! उसको निकालनेसे क्या फायदा, वह काट लेगा, किन्तु वह नहीं माना। बिच्छूके काटनेपर भी वह उसे बाहर निकाले। काटनेसे गिर जाय फिर भी निकाले। निकालकर बोला—देखो भाई, इसका स्वभाव काटना है और मेरा स्वभाव है रक्षा करना। जब यह छोटासा प्राणी अपने स्वभावको नहीं छोड़ता, उसका बराबर पालन किये जा रहा है, तब मुझे तो सोचने समझनेकी शक्ति भी मिली है, फिर मैं क्यों अपने धर्मको छोड़ूं? यही तो परीक्षा है। विपत्तिके उपस्थित होने पर भी स्वभावको न छोड़ना ही धर्म है।

धर्म कहो, स्वभाव कहो, शक्ति कहो एक ही बात है। जिसमें जानने, देखनेकी शक्ति हो उसे जीव कहते हैं। जो शुरूसे लेकर अन्त तक बना रहे, न छूटे उसे स्वभाव कहते हैं। ऐसे स्वभावमें तन्मय यह आत्मा है, यह कभी नष्ट न होने वाली वस्तु है। वह स्वभाव है अपनी आत्माका चैतन्यस्वरूप, सहजज्ञान, चिदानन्द। जिसमें चढ़ाव उतार पाया जावे वह स्वभाव नहीं बन सकता। जैसे क्रोध करना, मान करना आदि यह स्वभाव नहीं बन सकता। आखिरकार क्रोधकी मुद्रा कितने समय तक बनी रह सकती है, आखिर तो अपने

वास्तविक स्वरूपमें आना ही होगा। शरीर भी जीवका स्वरूप नहीं, क्योंकि यह भी नष्ट होने वाली चीज है। जो पैदा हो व नष्ट हो या जिसमें उतार चढ़ाव पाया जावे वह स्वभाव नहीं कहा जा सकता। घमण्ड भी जीवका स्वभाव नहीं, क्योंकि इसमें उतार चढ़ाव पाया जाता है। माया, तृष्णा, लोभ ये सब जीवके स्वभाव नहीं हो सकते। क्योंकि इनमें नित्य-पना नहीं पाया जाता। अतः जो जाननेकी शक्ति है, चेतना है, चैतन्यस्वरूप है इसमें उतार चढ़ाव नहीं है, अतः चैतन्य जीवका स्वभाव है। यही जीवका धर्म कहलाया। आत्मधर्मका पालन यही है कि ऐसी दृष्टि बनावे कि मैं तो ज्ञानशक्तिमात्र हूं, तभी भगवानके स्वरूपके दर्शन हो सकते हैं। वास्तविक दृष्टिसे भगवान्के स्वरूपकी तभी कल्पना की जा सकती है। और जो नाना भगवानके स्वरूपोंकी कल्पना कर रहे हैं ये सब व्यर्थ हैं। यदि प्रभुके दर्शन होंगे तो अपने स्वरूपमें ही होंगे।

हम अपने आपको सही समझ लेवेंगे तो भगवानके स्वरूपका पता लग जावेगा। अपने को ज्ञाता, दृष्टा समझ लेनेपर ही आत्माके अपने सहज स्वरूपके दर्शन हो सकते हैं। उस पावन दर्शनमें ही अनुपम आनन्द है। ऐसा आनन्द नाना प्रकारके भोजनोंमें, इज्जत, ऐश्वर्य आदिमें प्राप्त नहीं होगा।

ये बाह्य पदार्थ तो आकुलताके ही देने वाले हैं। इन वैभवादिसे क्या लाभ ? ये सब तो विपदा ही देने वाले हैं। जीवका स्वभाव तो चैतन्यस्वरूप है। यह जो हम आज शरीर की इज्जत करते हैं सब स्वार्थवश कर रहे हैं। सबको समदृष्टिसे देखता हुआ ही सत्य समान व्यवहार कर सकता है। मेरा स्वभाव तो मायासे परे है ऐसा विचार करते हुये अपने आप का निर्णय करो, तभी अपने आपके, अपने सहज स्वभावके दर्शन पा सकते हो। मानव अनेक धर्मोंकी विधियोंके कारण इस सन्देहमें पड़ जाता है कि वास्तविक सत्य क्या है ? क्योंकि सभी अपने अपने धर्मका प्रचार कर रहे हैं, कोई कुछ कहता है तो कोई कुछ कहता है। अतः इस में यह पता नहीं लगता कि असत्य क्या है ? जायें तो किसके बताये मार्गपर जायें।

भैया ! ऐसा सन्देह हो तब सबकी बातोंको छोड़ दो और ऐसा छोड़ दो कि कुछ कल्पना ही न आवे, और सर्वसमागमको असार तो समझ ही लिया है सो उस सबको भी अपने उपयोगमें न आने दो। फिर देखोगे उस परमविश्राममें शुद्ध ज्योतिर्मय आत्मस्वभाव। इस आत्मदर्शनके साथ जो आनन्द पावोगे वह सर्वोत्कृष्ट है। और फिर ऐसी स्थिति पानेके लिये लालायित होकर उपयोग बनाओगे। ऐसे पुरुषार्थ करनेका नाम ही धर्मका पालन करना है।

धर्मसाधन ही जीवका सत्य शरण है। इसकी साधना करके अपना जीवन सफल

करना चाहिये। 'धर्म है समता, जहाँ मोह और क्षोभ नहीं है वही धर्म है। मोह और क्षोभ का अभाव होता है शुद्ध ज्ञानस्वरूपके उपयोगसे। अतः शुद्ध ज्ञानस्वरूपके चर्चक अध्ययनसे, मननसे, चिन्तनसे, अनुभवसे निरापद सत्य विश्राम पाना ही परमहित है।

बन्धुवर! हम सब ज्ञानपिण्ड पदार्थ हैं और शान्तिके प्यासे हैं। शान्तिका सम्बन्ध ज्ञानसे है। ज्ञानसामान्यकी अपेक्षा देखो तो मुझ अशान्तमें व शान्त प्रभुमें कुछ भी अन्तर नहीं, किन्तु ज्ञानविशेषकी अर्थात् ज्ञानपरिणतिकी अपेक्षा देखो तो प्रभुमें व मुझमें अन्तर है। हम मतिश्रुत ज्ञानी हैं। इन्द्रिय व मनसे जो ज्ञान होता है उसे मतिज्ञान कहते हैं तथा पश्चात् लिखने, पढ़ने, विचारने आदिसे जो उसी पदार्थमें मतिज्ञानसे विशिष्ट ज्ञान होता है उसे श्रुत-ज्ञान कहते हैं। केवलज्ञान जितने विषयको जानता है उतना ही विषय उत्कृष्ट श्रुतज्ञानका है, किन्तु अन्तर केवल इतना है कि श्रुतज्ञान परोक्षको जानता है और केवल ज्ञानी सबको जान-ता है और केवल ज्ञानी सबको जानता है। ज्ञान जिसके पास है वह निमित्त मिलनेपर वैराग्य को प्राप्त हो मुक्त हो जावेगा। अशान्ति समाप्त करनेका उपाय आत्मामें ज्ञानका उपयोग करना है। प्राणीको कभी भी अतिज्ञानका अभिमान नहीं करना चाहिये। प्राणी जिस-जिस प्रकार अपने कर्मोंसे दूर होता जाता है उसी प्रकार ज्ञानकी वृद्धि होती जाती है। जीवनका सबसे बड़ा शत्रु वह है जिससे वह मोह रखता है। इस प्राणीकी ऐसी विचित्र दशा है कि जिससे वह मोह रखे है वह यदि अन्याय या अनीतिका सहारा लिये हुये है तो भी उसीका पक्ष कर-ता है। एक जमाना ऐसा भी था, यदि अपना ही पुत्र आदि कोई भी अन्याय आदि करता था तो न्यायका ही अवलम्बन किया जाता 'था, बिना किसी भेदभावके। किन्तु आज दशा अति शोचनीय हो गई है। अत: मोहमें पड़कर प्राणी दुर्गतिके कारण बनते हैं। इस संसारमें अपने आत्मज्ञानके अतिरिक्त कोई भी संसारसे मुक्ति नहीं दिला सकता। मुमुक्षु आत्माके स्व-भावको शरीरसे पृथक् समझो। जो बाह्य कर्म हैं उनको करना पड़े तो भी मुमुक्षको आत्माके स्वभावको समझते रहना चाहिये। अपनेको चेतनाशक्तियुक्त समझना चाहिये तथा विचार करना चाहिये कि परिग्रह व ममता ही विपदाके कारण हैं। यदि प्राणी तीन बातें धारण करें तो उन्हें दुःखका कारण दूर करते देर न लगेगी—(१) चैतन्यस्वभावकी प्रतीति, (२) अन्याय सहन मत करो, (३) प्रेमका व्यवहार करो। कभी भी लोभादिमें पड़कर यदि अन्याय सहन करना पड़े जिसे आत्मा स्वीकार नहीं करती तो स्वीकार मत करो। सर्वदा सब प्राणि-योंसे प्रेमका व्यवहार करना चाहिये। नम्रतासे सबसे व्यवहार करना चाहिये। इन सब बातों के होते हुए भी कभी भी प्राणीको न अपनेको तुच्छ समझना चाहिये तथा न ही किसी बात का अभिमान करना चाहिये। थोड़ा ज्ञान होनेपर ही प्राणी अपनेको बहुत बड़ा समझने लगता

है, किन्तु जैसे-जैसे वह ज्ञान प्राप्त करता जाता है वैसे ही वह अनुभूति करता है कि इतने विशाल ज्ञानके समक्ष मेरा ज्ञान बहुत ही कम है।

देखो भैया! कृतान्तवक्र सेनापतिने रागसम्बन्धी मोह वर्जित कर सब कठिनाइयाँ आसान समझीं। संसारमें यदि प्राणीका सबसे बड़ा शत्रु है तो वह मोह माया है। इससे विरक्त होकर हम अपनी ओर आयें। सुख यहीं मिलेगा। हमें केवल दो बातें ही करनी हैं—(१) बाह्यमें ऐसी न्याय प्रवृत्ति हो जिससे मेरे अन्तरंगकी शुद्ध वर्तनामें बाधा न आवे। (२) ज्ञानानन्दघन निज आत्मतत्वकी दृष्टि। इस ही दूसरी बातमें प्रभुकी भक्ति भी अन्तर्निहित है।

रागाभाव: स्वयं स्वात्मावाप्तस्वो हि स्वभाववत्।
स्वे स्वं परं नमस्कृत्य, स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१—१॥

इसमें नमस्कार किया गया है। लेकिन किसको? चूंकि प्राणी वस्तुत: स्वयं स्वयंको ही नमस्कार करता है और परमात्माको भी नमस्कार करता हो तो वह भी अपनेमें ही किया जाता है। सो परमार्थसे नमस्कार खुदको ही किया जा सकता है। यहाँ भी खुद हीको नमस्कार है। नम्रीभूत होनेको नमस्कार कहते हैं। नमना या झुकना नमस्कारके द्योतक हैं। अपने आपके स्वरूपकी ओर नमना भी अपनेसे ही होता है।

आत्माका स्वरूप परमात्माके सदृश है। आत्माका एवं परमात्मा का स्वभाव चैतन्य स्वरूप है। भगवान्का जो विकास है वैसा ही होनेका सब जीवोंका स्वभाव है। अपने आपको पा लेनेका नाम स्वयंको नमस्कार है। अपने आपका दर्शन भी स्वयंमें ही होता है। हम लोग जो मन्दिरोमें भगवान्की मूर्तिके सामने दर्शन करते हैं सो जिसका दर्शन करना चाहते हैं उसका दर्शन भी चक्षुसे नहीं होगा, ज्ञानसे ही दर्शन होगा। चक्षुसे तो केवल स्थापित मूर्तिका आकार ही दिखायी देगा। समवशरणमें भी परमात्माका दर्शन आँखोंसे नहीं होगा, वहाँ भी ज्ञानसे दर्शन होगा। वहाँ भी अन्तरंगमें ही दर्शन होगा। परमार्थसे तो भगवान्के स्वरूपको ज्ञेय बनाकर बने हुए ज्ञेयाकारसे परिणित निज आत्माके ही दर्शन होते हैं।

वैसे तो समवशरणमें भी निराकार परमात्मस्वरूपका दर्शन नहीं होता किन्तु साकार शरीरका ही दर्शन होता है सो ऐसे साकार शरीरके ही आँखोसे दर्शन होंगे। जैसे यहाँ पर मन्दिरमें भगवानकी मूर्तिके दर्शन होते हैं। किन्तु जब तक ज्ञानसे दर्शन नहीं होगा तब तक कोई लाभ नहीं। अत: अपने आपकी प्राप्ति होने पर ही परमात्माको नमस्कार बनता है। अपने आपकी प्राप्तिका उपाय रागद्वेषादिका अभाव होना है। रागद्वेष अहंकार आदि परिणाम ही परमात्माके दर्शनमें बाधक बनते हैं। अपने आपको जान लेनेके बाद ही परमात्मस्वरूप की समझ व अपनी सच्ची अनुभूति होती है। इस अनुभूतिका बाधक है अहंकार। जब तक अहंकार रहता है तब तक परमात्माके दर्शन नहीं होते। भैया! एक देशमें एक

नककटा रहता था। उसने सोचा कि मुझे सब कोई नककटा कहकर चिढ़ाते है। ये चिढ़ा न सकें इसका कोई उपाय निकालना चाहिये। बहुत सोचनेके बाद उसने यह कहना प्रारम्भ कर दिया कि मुझे साक्षात् प्रभुके दर्शन हो रहे हैं। मैं इस नाककी नोंक व छाया नहीं होने से साक्षात् भगवान्के दर्शन कर रहा हूं। अतः उसकी इस बातको देखनेके लिए दूसरे पुरुषने भी अपनी नाक कटा ली, तब ईश्वरके दर्शन न होनेपर प्रश्न किया कि भैया! मुझे तो ईश्वरके दर्शन नहीं हो रहे हैं, तब उस नककटेने कहा कि अब तुम्हारी नाक तो कट ही चुकी है अतः यह कहना प्रारम्भ कर दो कि मुझे ईश्वरके दर्शन हो रहे हैं। अन्यथा दुनिया वाले तुम्हें हास्यका पात्र बनायेंगे। इस प्रकार सब ग्रामवासियोंने अपनी नाक कटा ली तो राजाने सबको समरूप नककटा देखकर अपनेको उनसे भिन्न प्रतीत किया तथा कुरूप अनुभव किया। राजाने पूछा कि भाई आप सब तो बड़े रूपवान् है, मैं ही क्यों कुरूप हूं, तब लोगों ने उत्तर दिया कि राजन्! हम लोग भी इसी तरह नक्कू थे और इसी कारण भगवान्के दर्शन नहीं होते थे। जबसे यह नाक सफा हुई तबसे भगवान्के दर्शन हो रहे हैं। राजा भी ईश्वरके दर्शन करनेके लिये अपनी नाक काटना चाहता था कि उस प्रथम नककटेने कुछ कहनेके लिये क्षमा मांग कहना प्रारम्भ किया कि हे नाथ! नाक काट लेनेपर ईश्वरके दर्शन नही होंगे, अपितु मुझे लोकके हास्यसे बचने के लिए यह उपाय सूझा और इस प्रकार सबों ने अपनी नाक कटा डाली।

अतः सबसे प्रथम प्राणियोंको अपने रागद्वेषादि परिणामोंको दूर करना चाहिये। रागद्वेष अहंकार आदि परिणाम भगवान्का दर्शन नही करने देते तब तक, जब तक कि ये बुरे परिणाम दूर न हों, न ही आत्माके दर्शन करने देते। आत्मामे छिपे तात्विक आनन्दका स्वाद हो जानेपर विषय कषाय आदिके संक्लिष्ट परिणामोमे पड़ना कोई नही चाहता। सदा विचार करना चाहिये कि जैसा चैतन्यस्वभाव अर्हन्त आदि मे है वैसा ही मुझमें है तथा जैसा मुझमें है वैसा ही अर्हंत आदिमें है।

आत्मा रागद्वेषादि बढ़ाकर जो अनिष्ट करता है वह अपना ही करता है तथा जो दान आदि द्वारा इष्ट करता है वह भी अपने लिए ही करता है। दूसरोंका न भला कर सकता है न बुरा। यह जीव अपना स्वरूप बनानेके अतिरिक्त कुछ नही करता है। बुरे कर्म करने से हम अपनेको ही नष्ट करते हैं, दूसरोंका कुछ नहीं। यह आत्मा अपना ही काम करता है दूसरोंका कुछ नही। जैसे दर्पणके पीछे दो बालक खड़े होकर क्रिया करते हैं। एकके द्वारा की गयी क्रियाको दर्पणमें देखकर ही दूसरा सब कुछ बताता जाता है। वैसे ही अपनेको पदार्थके अनुसार ही परिणित करके वर्णन करते हैं लोग। प्राणी रुपया पैसा

वैभवको ही सब कुछ समझता है जबकि ज्ञानके समक्ष सब कुछ व्यर्थ है। देखो सर्वत्र महिमा ज्ञानकी ही है। सब लोग ज्ञानको ही जानते हैं और ज्ञानको ही बताना चाहते हैं। ज्ञानदानकी बहुत बड़ी महिमा है। किसी भी प्रकार दूसरोंको ज्ञानका दान देना चाहिये, चाहे पुस्तकें वितरण कर अथवा रुपया पैसा देकर, पढ़ाई कराकर या स्वयं पढ़ाकर आदि। सोचो जब हम दूसरोंका कुछ नहीं कर सकते तब भगवान्के लिए क्या कर सकते हैं? जिस प्रकार बम्बई घूमकर आये हुये प्राणीको बम्बईका सम्पूर्ण दृश्य अपनी आँखोंके समक्ष ही दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार जिसने अपनेको पहिचान लिया उसे अपनेमें ही प्रभु नजर आते हैं। विपरीत अवस्थामें दूर नजर आते हैं।

जिस प्रकार शीशे (दर्पण) में हाथी जैसा विशाल प्राणी भी दिखाई देता है उसी प्रकार ज्ञानमें सब कुछ प्रत्यक्ष झलकता है। यदि ये प्राणी किसीसे राग करता है तो भी अपने लिए ही, द्वेष करता है तो भी अपने लिये ही। तात्पर्य यह जो कुछ करता है सब कुछ अपने लिए ही करता है, दूसरोंका कुछ नहीं। मैं नमस्कार करता हूं इसमें चाहे किसीको भी नमस्कार करनेका उद्देश्य बनाया है किन्तु है सब कुछ अपने लिए ही। भगवान् को नमस्कार क्या दर्शकोंको दिखानेके लिए करते हैं? मन्दिरमें जाकर नमस्कार करना दिखावा करना हो सकता है परन्तु अपनेमें ही अपने द्वारा अपनेको अपने लिए अपने आप अपने उद्धार के लिए नमस्कार किया जाता है। नमस्कारका तात्पर्य है, मैं अपनेमें अपने लिए अपने आप समाकर सुखी होऊं।

ज्ञानशक्ति, दर्शनशक्ति, चरित्रशक्तिकी तरह ही आनन्दशक्ति है। जो जो अनुभूति बनती हैं वे सब अपनेसे ही बनती हैं। जब यह प्राणी आत्मानन्दका स्वाद एक बार आस्वादन कर लेता है उसे अन्य सब कुछ व्यर्थ लगता है। विलक्षण है ये आत्मानन्दकी अनुभूति उस स्थितिमें प्राणी सोचता है कि मेरी यह आत्माके आनन्दकी अनुभूति निरन्तर बनी रहे अन्य कुछ नहो। परमार्थसे अध्यात्मतत्त्वको ही नमस्कार किया जाता है। समवशरणमें भी भगवान्की मूर्ति ही नजर आती है। मन्दिरोंमें जो मूर्ति है वह स्थापित मूर्ति है। आंखोंसे देखने पर मुद्रा ही नजर आती है। ज्ञानमय ही भगवान् हैं। सो अपनेमें मैं अपने को नमस्कार करता हूं और पर परात्पर आत्माको भी नमस्कार करता हूं। अपनी प्राप्ति होना ही अपना नमस्कार है। अपने आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होनेपर रागका स्वयं अभाव होने लगता है। जिसने अपने आपको प्राप्त किया है ऐसा वह परमात्मा भी मेरे स्वभावके अनुरूप है। अतः मैं अपनेमें अपने आपको व परमात्माको नमस्कार करके अपने लिये अपने आपमें स्वयं सुखी होऊं।

यादृक् सिद्धात्मनो रूपं तादृग्रूपं निजात्मनः ।
भ्रान्त्या क्लिश्टस्तु संसारे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-२॥

मुमुक्षु प्राणियोंको विचार करना चाहिए कि जैसा सिद्धप्रभुका स्वरूप है वही मेरा है, जैसा मेरा स्वरूप है वही सिद्ध प्रभुका है। स्वयंके स्वभावको लिए हुए सत्तावाला वही मैं हूं। जैसे गरम जल व ठंडा जल, इन दोनों प्रकारके पानीका स्वभाव ठंडा है। उसी प्रकार जैसा स्वभाव सिद्धोंका है वही मेरा है। मैं संसारपर्यायमें होते हुए भी सिद्धोंके समान स्वभाव वाला ही हूं। ऐसा विचार कर सिद्धोंकी उपासना करनेसे लाभ होता है, अन्यथा कोई उनका दर्शन ऐश्वर्य धन-दौलतके लिए तो किया नहीं जाता है। उनमें कर्ता व दाता की बुद्धि जीवोंको नहीं करनी चाहिये। हे प्राणियों! सिद्धोंका स्वरूप तो अपना स्वरूप समझनेके लिए दर्पणके समान है। जिस प्रकार दर्पणको देखकर अपने चेहरेका भाव होता है। कोई भी उस दर्पणका चेहरा देखनेके लिए दर्पण नहीं देखता उसी प्रकार प्रभुको देखकर हमें अपने स्वरूपको समझना चाहिये। नही तो फिर दर्शन करनेसे क्या लाभ? जब हमें यही नहीं पता कि हम दर्शन क्यों कर रहे हैं? उनसे फलकी वाञ्छा रखकर दर्शन नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे कर्ता दाता तो हैं नहीं। भगवान् तो पूर्णविकासमय गुणपुञ्ज हैं।

उनका दर्शन आकारमें नही होता क्योंकि वे तो शुद्ध व पूर्णज्योति पुञ्ज है। जिनके कि ध्यानमें सारा विश्व प्रकाशित होता है। भगवान्का नाम नहीं होता अपितु नाम तो पर्यायका होता है। जो वस्तु व्यवहारसे आवे उसका नाम रखा जाता है। जो भगवान् है उसका नाम नहीं और जिसका नाम है वह भगवान् नहीं, भगवान् तो उपासनाका विषय है। भगवान् एक दूसरेका कार्य करने वाला नही है तथा ऐसा ही रूप अपनी आत्माका भी है। मैं एक वस्तु हूं तब अवश्यमेव कोई शक्तियुक्त हूं क्योंकि जो सत् है उसमें उत्पाद व्यय अवश्य होंगे। कहा भी है कि—"उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्"।

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरहित कोई भी द्रव्य नहीं है। मेरे अज्ञानपर्यायका व्यय होकर ज्ञानपर्यायका उत्पाद होकर निजस्वभावमें आनन्द बर्तेगा। अतः अपने आपमें विश्वास बना लेना चाहिये कि जो मैं हूं वह भगवान् है तथा मैं वही हूं, जो भगवान् है—"मैं वह हूं जो हैं भगवान्, जो मैं हूं वह हैं भगवान्"। इससे आत्मबल बढ़ता है। इससे ज्ञाता द्रष्टा रहनेकी शक्ति प्राप्त होती हैं, चिन्ताएं दूर होती हैं। जैसे एक कहावत है कि एक क्षत्रियका बालक था व एक बनियेका बालक था। बनियेका बालक हृष्ट पुष्ट था, क्षत्रियका कमजोर। दोनोंमें लड़ाई हो गयी। बनियेका बालक क्षत्रियके लड़केको नीचे गिराकर ऊपर चढ़ बैठा। क्षत्रिय के बालक ने उससे पूछा कि भैया! तुम किसके लड़के हो, उसने बताया कि मैं तो बनियेका

लड़का हूं, इतना सुनना था कि क्षत्रिय पुत्रको बल व जोश आया और झट ऊपर आ गया। सो भैया! अपना स्वरूप सिद्धोंके स्वरूपके समान समझनेसे आत्मबल बढ़ता है और एक विशेष प्रकारका आनन्द प्राप्त होता है।

आपत्ति, विपत्ति, क्लेश, चिन्ता, यह सब ऐसा सोचनेसे कि मैं वही हूं जो भगवान् हैं तथा जो भगवान् हैं वह मैं हूं, नष्ट हो जाती हैं। सदा सब प्राणियोंसे समताका भाव रखना चाहिये। जो अनुकूल हैं उनमें भी यही प्रतीति करनी चाहिये कि सब सुखी होवे तथा प्रतिकूल प्राणियोंमें भी समताका भाव रखना चाहिये। प्रतिकूल प्राणियोंमें करुणा भाव पैदा करके समता रखनी चाहिये क्योंकि ये सभी जीव चैतन्यस्वभाव वाले ही हैं। यह प्राणी संसारमें रहता है किन्तु उसमें संसार नही रहे तो यही जयका साधन है। यह संसारसे बाहर कैसे रहे किन्तु फिर भी संसारमें रहते हुए भी संसारसे दूर रह अपने आपकी आत्माका कल्याण करे। जैसे नाव पानीमें रहती है, चाहे वह समुद्रका पानी हो या नदीका, किन्तु नाव में पानी नहीं। नावमें पानी आ जानेसे नावका ही अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

हम यदि वास्तविक स्थिति देखें तो पायेंगे कि हम लोग अपने सम्बन्धियोंसे तथा जिनसे मोह रखते हैं, उनसे ठगे जा रहे हैं तथा अपनी पर्याय इनके वश ही बिगाड़ रहे हैं। अत: सर्वदा यही विचार करना चाहिए कि मेरा स्वरूप सिद्धोंके समान है। यही आत्माका धर्म है। इसके अभावमें ही हम लोग मन्दिर जाना, सामायिक करना आदि पुण्यके कार्य करते हैं ताकि उपयोग निजमें लग जावे। सदा विचार करना चाहिए कि "आत्या क्लिष्टस्तु संसारे" मैं भ्रममें पड़कर संसारमे भ्रमित हो रहा हूं, इन सबसे हटकर क्यों न मैं अपनी आत्मामें रमकर सुखी होऊँ। इसे द्रव्यगुण पर्यायमें कहते है। द्रव्यकी अपेक्षा मैं और सिद्ध एक समान हूं। सिद्धके गुण और मेरे गुण समान हैं। यदि अन्तर है तो केवल पर्यायका है। उनकी पर्याय शुद्ध व निर्मल है और हमारी मलिन है।

अन्तरदृष्टिसे देखो तो सभी जीव शुद्ध ज्ञायकस्वरूप एकरस हैं यही विश्वास अमृत है। हमें, मैं अमुकका पिता हूं किसीका पति हूं, धनशाली हूं आदि संस्कारोंको ज्ञानरूपी जलसे धोकर नष्ट करना चाहिये। मैं ज्ञानमय हूं–इस विचारके पश्चात् बाकी सब माया है। मैं तो अनन्तआनन्दका निधान हूँ फिर क्यों थोड़े आनन्दके लिए छटपटाता रहूं, क्यों कल्पना कर संसारमें भटकता रहूं?

अनेक कठिनाइयोसे प्राप्त हुए मानव जीवनको विषय कषायोंमें नष्ट नहीं करना चाहिए। अपनी ही सीधी सीधी बात न समझ कर प्राणी भ्रम करते हैं कि मैं अमुक शहर का रहने वाला हूं, अमुक जातिका हूं। इन सब संस्कारोंको कभी न कभी तो अवश्य ज्ञान

रूपी जलसे धोना पड़ेगा। मेरा स्वभाव तो भगवान्‌के स्वभावकी तरह है, अतः बाह्यभ्रमोंमें पड़ना व्यर्थ है। देखो भैया! भगवान्‌के पास क्या है केवल ज्योतिपुञ्ज आत्माको छोड़कर। फिर भी सब प्राणी उन्हें नमस्कार करते हैं। फिर क्यों न हम भी उनके समान गुण धारण करें? क्यों न वैसा हो बना जावे? इतना जान भी लेना सन्तोषजनक होता है कि मैं सिद्ध भगवान्‌के स्वरूपके सदृश हूं। यदि उपयोग नहीं लगता तो ऐसा विचार करनेसे भी तो आनन्द ही प्राप्त होता है। ऐसा होते-होते दृढ़ज्ञान हो जावेगा। क्योंकि अन्तमें सबकी शरण ज्ञान ही है। यदि कोई करोड़पति क्यों न हो जब तक उसका पुण्य उदय है तब तक भले ही मजे करले किन्तु फिर भी उस समयमें किये गये बुरे परिणाम आगे गति बिगाड़ देंगे। "मैं सुखी दुखी, मैं रक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव। मेरे सुत तिय, मैं सबलदीन। बेरूप सुभग मूरख प्रवीण॥" आदि पर्यायबुद्धिका परिणाम दुःखका ही देने वाला है। मैं तो ज्योतिस्वरूप अमूर्त आत्मा भगवान्‌के समान स्वभाव वाला हूं—ऐसा सोचते हुए भगवान् को नमस्कार करें।

इसके भीतरके मर्मपर दृष्टि रखो तथा बाह्य सब छोड़ो तथा अपनेको पहिचानो। मुझे अमुक ने गाली दी ऐसा मनमें भाव लाना ही दुःखजनक है। भैया! अपनेसे प्रतिकूल जीवोंपर भी करुणा कर समान भाव पैदा करो। सोचो कि ये जो मेरे प्रतिकूल प्राणी हैं, ये अज्ञानी हैं। जिन्हें अपनी आत्माके स्वरूपका ज्ञान ही नहीं है। वे अपन स्वभावको जान जावें ऐसी करुणा उनके ऊपर करनी चाहिये। किसी भी जीवसे घृणा नहीं करनी चाहिये। जगत्‌में कोई भी जीव घृणाका पात्र नहीं है।

सब जीवोंका सहजस्वरूप टंकोत्कीर्णवत् स्वतः सिद्ध निश्चल एक ज्ञायकस्वरूप है। द्रव्यदृष्टिसे देखो तो निर्विकल्प अनादि अनन्त अहेतुक चेतन तत्त्व है। गुणदृष्टिसे देखो तो सभी ध्रुवशक्तिमय है। अतः सिद्धप्रभुमें और समस्त जीवोंमें कोई अन्तर नहीं है। केवल वर्तमान परिणतिकी दृष्टिसे देखनेपर अन्तर दिखता है। सिद्धप्रभु तो शुद्ध विकासरूप हैं और संसारी जीव अशुद्ध विलासरूप हैं। यह अन्तर चूंकि भोगनेमें तो परिणति ही आती है अतः महान् अन्तर है तो भी यह परिणति जीवके स्वभावकृत नहीं है, किन्तु निमित्तनैमिकभावपद्धतिविहित है। अतः मूलमें कुछ भी अन्तर नहीं है।

सिद्धप्रभुकी तरह शुद्ध केवल ज्ञानमय बननेका क्या उपाय है? अपने आपको केवल निरखना, ज्ञानमय निरखना केवलज्ञानी बननेका उपाय है। हम अपनेको जिस रूपमें निरखेंगे उस रूपकी प्राप्ति होगी। अतः हम अपनेको यथार्थ सहज निजस्वरूप जैसा है वैसा ही चित्स्वभावरूप अपनेको अनुभवें। मैं स्वतः सत् हूं, स्वतः परिणामी हूं, स्वतन्त्र हूं, विज्ञानानन्दघन स्वच्छ अविनाशी हूं—इस प्रकार अपना अनुभव करो। सत्य सुखी होनेका यही एक उपाय

है।

विश्वतो भिन्न एकोऽपि कर्ता योगोपयोगयः।
रागद्वेषविघाताऽऽसम् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-३॥

इस जगत्के अन्दर अनन्तानन्त जीव हैं, अनन्तानन्त पुद्गल हैं। धर्म एक है, अधर्म एक है, आकाश एक है, असंख्यात कालद्रव्य है किन्तु फिर भी प्रत्येक परमाणु सारे अनन्तानन्त परमाणुओसे भिन्न है। सारे अनन्तानन्त परमाणु भी प्रत्येक परमाणु से भिन्न हैं। एक स्कन्धकी अपेक्षा भी प्रत्येक परमाणु अपने क्षेत्रमें ही परिणमन करता है। कोई भी एक परमाणु अनन्तानन्त परमाणुओंसे भिन्न है। सत्की अपेक्षा धर्म, अधर्म, आकाश, काल भी जुदा जुदा हैं। स्कन्धमें परमाणुओंका परिणमन सामूहिक रूपसे होता है किन्तु फिर भी प्रत्येक परमाणु अपने-अपने क्षेत्रमें ही परिणमन करता है। इसी प्रकार प्रत्येक जीव अनन्तानन्त जीवोंसे जुदा है। यह प्राणी जो मोह मायामें फंसकर रात दिन विचरता रहता है कि यह मेरा है, यह मेरे घरका है, यह सब व्यर्थ है क्योंकि अपने स्वभावसे बाहर अपना क्या है? चैतन्यस्वभावके अतिरिक्त ये वैभव ये पोजीशन, ये ठाठ बाट सब व्यर्थ हैं। जिसने अपना स्वभाव समझ लिया उसके लिए ये सब बातें निस्सार लगती हैं। मेरी आत्मा सारे विश्वसे भिन्न है। मैं एक हूं, मैं सबसे न्यारा हूँ इस प्रकार विचार करना चाहिए। मैं निजी दो बातों को छोड़ कर किसीका कुछ नहीं करता—(१) योग (२) उपयोग। मैं कदाचित इन दोनोंका ही कर्ता हूं अन्य कुछ नही करता हूं। मेरी आत्माके प्रदेशोंमे जो हलन चलन होती है उसी का नाम योग है और जो गुणोंका यूज है, प्रवर्तना है उसका नाम उपयोग है। इन दोनोंके अतिरिक्त मैं कर ही क्या सकता हूं? सिद्ध भगवान् शुद्धउपयोगके कर्ता हैं। शेष जीव यथायोग्य शुभ अशुभ व शुद्ध उपयोगके कर्ता हैं। ये जगत्के जितने परिणमन होते हैं सब एक दूसरेको यथायोग्य निमित्त करके स्वत: होते रहते हैं। आत्मा तो दूसरे कार्योंकी चेष्टाका स्वयं ही कर्ता है। जैसे रोटी बनायी, अब बताओ आत्माने इसमें क्या कार्य किया? आग जलाई या आटा गूंथा, क्या किया? अरे भैया! वह अपनी जगह ही स्थिर है। आत्माके प्रदेशोंके योगके निमित्तसे शरीरमें वायुका संचार हुआ जिससे अंगोंमें हलन चलन हुआ और उस प्रसंग में उपस्थित कोई चीज रोटी बना गयी मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि या सिद्ध कोई भी अपने आप में परिश्रम करनेके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं करता है। बाकी अन्य पदार्थोंमें कर्तव्य समझना ये सब मोह मायाका जाल है।

जैसे स्वप्नमें हम देखते हैं कि मैं जंगलमें जा रहा हूँ, वहां शेर मिल गया, उसने मुझे पन्जा मारा, खून बहने लगा, बेहोश हो गया। यह सब उस समय सत्य ही प्रतीत होता है।

स्वप्नमें यह अनुभूति नहीं होती कि मैं यह जो सब कुछ देख रहा हूं झूठ है, वास्तविकता इसमें कुछ नहीं। किन्तु इसके विपरीत ही प्रतीत होती है। खुलने पर मालूम होता है कि मैंने जो कुछ देखा है यह सब असत्य है। इसी प्रकार मोहमें पड़ा हुआ प्राणी भी इन सब बातोंको सत्य जान रहा है कि यह मैं गरीब हूं, यह मेरा घर है, यह मेरा पुत्र है आदि। यह सभी तो एक प्रकारका स्वप्न ही है।

रातको जो हम देखते हैं, ४-५ घंटेकी नींदमें जो होता है, यह कुछ उससे लंबी निद्रा है किन्तु मेरा स्वभाव तो चैतन्यस्वरूप है, इसके अतिरिक्त सब झूठ है, बकवास है, इस प्रकार से विचार करना चाहिए। जैसे एक शहरमें एक पगड़ी रंगने वाला रहता था। वह आसमानी रंगकी पगड़ी रंगना बहुत अच्छी प्रकार जानता था। उसके पास कोई पीला रंग दिलानेके लिए अपनी ओढ़नी लाया, कोई नीला रंग दिलानेके लिए लाया, कोई लाल कोई हरा आदि। उन सबसे वह रंगरेज बोला कि भैया! चाहे किसी भी रंगकी रंग वालो किन्तु सबसे बढ़िया रंग तो आसमानी खिलता है। इसी प्रकार यह करो, वह करो, कुछ भी करो, आत्मीय आनन्द पानेके लिये तो निजसहजस्वरूपकी ही दृष्टि करनी होगी। आनन्द तो निजदृष्टिसे ही मिलता है। उन सब बातोंको छोड़कर एक ही काम करो जो आत्मोद्धारका मार्ग है। एक ही उत्तम बात है वह है स्वानुभूति। इसके अलावा कुछ भी तो हित नहीं है। धर्मके लिए मात्र चैतन्यस्वभावकी अनुभूतिके अतिरिक्त क्या काम है कुछ भी तो नहीं। यही सर्वदा सोचो कि मैं अपनेमें अपने लिए अपनेको अपने आप अपने द्वारा सुखी हो सकता हूं। कर भी सकता हूं तो मात्र अपनी ही परिणति, उसके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं कर सकता। ये सामायिक करना दर्शन करना आदिके भी उपयोग अपनी आत्माकी ओर अपनेको करनेके लिए ही हैं। खोटे कार्यमें न लगकर स्वकी अनुभूतिकी ओर झुके, अतः सामायिक आदि किया जाता है। मैं तो समस्त द्रव्योंसे भिन्न हूं तथा समस्त द्रव्य मुझसे भिन्न हैं। क्योंकि मैं एक हूं। रागद्वेष ही संसारमें रुलाने वाले हैं। मोहकी भित्तिसे टकराकर यह उपयोग दो रूपमे बंट जाता है, एक रागकी ओर, एक द्वेषकी ओर। जैसे नदीका बहता हुआ पूर पुलके बीच लगे खम्भेसे टक्कर पाकर दो धारामें बहने लगता है उसी प्रकार मोहकी टक्कर पाकर यह उपयोग रागद्वेष इन दो रूपमें प्रवाहित हो रहा है। यदि परपदार्थ एक ही हो तब कोई गड़बड़ी नहीं होगी किन्तु अनेक पर रागद्वेषके भाव पैदा होते हैं। जहाँ दो होते हैं वहाँ द्विविधा होती है। एक पिताके यदि एक लड़का है तब तो कोई बात नहीं होगी किन्तु दो या अधिक होनेसे रागद्वेष की भावनाएँ होती हैं। एकसे द्वेष अवश्य ही होगा। मैं अज्ञानवश अपने स्वरूपको भूलकर रागद्वेषरूप दो धाराओंमें बह रहा हूं। अतः रागद्वेषको छोड़कर मैं स्वयंमें सुखी होऊँ।

मैं परपदार्थका उपादानसे कर्ता नहीं हूं, तो क्या निमित्तसे हूं ? नहीं, निमित्तसे भी कर्ता नहीं हूँ । योग उपयोग ही निमित्तरूपसे कर्ता है । ये योग और उपयोग भी क्षणिक ही हैं किन्तु आत्मा क्षणिक नहीं । योग उपयोगकी जो तरंग उठती है वह कर्ता है । आत्मा तो निमित्तसे भी कर्ता नहीं है । योग उपयोगका कर्ता आत्मा है अर्थात् आत्माकी परिणति है । जो ध्रुव है वह दूसरेकी परिणतिका भी निमित्तकर्ता नहीं होता, कर्ता अध्रुव ही होगा ।

प्रत्येक पदार्थ अन्य प्रत्येक पदार्थसे भिन्न है । मैं भी बाह्य परपदार्थोंसे दूर हूं । बाह्यपदार्थोंकी दृष्टि करके व्यर्थके विकल्पपरिणमन होते हैं । इन सब विकल्पोंको छोड़कर मैं अपनेमें, अपने आप, अपने लिए, अपने द्वारा सुखी होऊँ । रागद्वेषके कारण उत्पन्न संतापकी स्थितिमें भी यदि स्वकी अनुभूति कर लो, सन्ताप दूर हो जावेगा । अपने आपकी अनुभूति ही आनन्ददायक है । अपने आपका दर्शन हो, आत्मामें ही रति हो, आत्मामें ही रुचि हो । इसके अतिरिक्त कोई सहायक नहीं है । यह सब कषाय वालोंका मेल है । अतः इन सबसे कोई फायदा नहीं होगा । जिससे जिसकी कषाय मेल खा गई उससे मित्रता, मेल न खानेपर शत्रुता होती है । अतः सभी स्वार्थी हैं । वैसे ये सब स्वानभूतिके समक्ष व्यर्थ हैं । सर्वपदार्थोंको जिन्हें भी जानो, जितना उनका सत्तासिद्ध स्वरूप है उसी रूपमें जानो । आत्मसुख यथार्थज्ञानमें मिलेगा, अन्यत्र नहीं मिलेगा ।

न करोमि न चाकार्षम् न करिष्यामि किञ्चन ।
विकल्पेनैव त्रस्तोऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-४॥

किसी भी पदार्थको न मैं कुछ कर सकता हूं, न आज तक कुछ कर सका हूं, न आगे कर ही सकूँगा । सब पदार्थ स्वयं सत्ता वाले हैं । वस्तु सत् तो है, किन्तु अन्य सभी रूपसे सत् नहीं हो जाती हैं अन्यथा कुछ भी न रहेगा, अतः प्रत्येक वस्तु अपने चतुष्टयसे सत् है, परके चतुष्टयसे नहीं । यह वस्तुके वस्तुत्व गुणका प्रताप है । वस्तुमें परिणत होना, स्वभावसे सिद्ध है । वे अपने आप परिणमन करते है । वस्तु अपने चतुष्टयमें द्रव्यत्व गुण द्वारा परिणमनशील है । वह निरन्तर परिणमन करता रहता है । एक क्षणके लिए भी द्रव्यका परिणमन बन्द नहीं होता, यह द्रव्यत्व गुणका प्रताप है ।

अस्तित्व गुण यदि यह भाव करे कि मैं सत् हूं, ऐसा मुझे आदेश हुआ है और स्वच्छन्द होने लगे तो इसका मुंह बन्द करनेके लिए वस्तुत्व गुण मौजूद है । उसकी आज्ञा है कि तू अपने चतुष्टयसे ही सत् रह सकता है परके चतुष्टयसे नहीं । इस प्रकार वस्तुत्व गुणने अस्तित्व गुणकी स्वच्छन्दताको दबोच लिया । अब यदि वस्तुत्व गुण कहे कि मैं सत् रहूं और उत्पाद व्ययसे भिन्न रहना चाहे तो उसको द्रव्यत्व गुण दबाता है कि तुझे निरन्तर

परिणमन करते रहना होगा। यदि द्रव्यत्व गुण कहे कि मैं तो परिणमाऊँगा, किसी रूप परिणमाऊं तब द्रव्यत्व गुणको अगुरुलघुत्व गुण दबाता है कि तू अपनेमें परिणमनशील है, अतः अपनेमें ही परिणमन कर। यह न हो कि स्वच्छन्द हो जावे। यदि तू ज्ञान गुण वाला है तो ज्ञानोदयरूप ही परिणमन कर इत्यादि। प्रदेशवत्व गुण आधार बताता है, प्रमेयत्व व्यवस्था करता है। सभी द्रव्य स्वतंत्र हैं। इस प्रकार सबके साधारण छः गुण हैं। अतः किसी का न कुछ कर सकता हूं, न बिगाड़ सकता हूं, न बना सकता हूं, न मेरा यह स्वभाव ही है, मैं तो चैतन्यस्वरूप हूं। यदि इस प्रकारका भाव क्षणभरको भी दृष्टिमें आ जावे तो परपदार्थ का तुरन्त त्याग हो जावे। अपनी श्रद्धा ही तो बदलनी है, चरित्र तो अपने आप आ जावेगा। अतः श्रद्धाको अपने भीतर लानेके लिए इस प्रकारका विचार करना चाहिए।

लोककी देखादेखी पर मुग्ध न होकर अपनी ओर दृष्टि करना चाहिए। एक कथा है कि बाप बेटा दोनों चले जा रहे थे। बाप घोड़ेपर बैठा था और बेटा पैदल चल रहा था। आगे गांवके आदमी बोले कि यह आदमी कितना बेवकूफ है, कितना स्वार्थी खुदगर्ज है कि स्वयं तो घोड़ेपर बैठा है और लड़केको पैदल चला रहा है। बापने कहा कि बेटा तू घोड़े पर बैठ जा, मैं पैदल चलता हूं। दूसरे गांव वाले इस दशामें इन दोनोंको देखकर बोले कि यह लड़का कितना मूर्ख है, नालायक है कि स्वयं तो घोड़े पर बैठा है और बापको पैदल चला रहा है। इस बातको सुनकर उन्होंने विचार किया कि दोनों ही बैठ जावें और दोनों घोड़ेकी पीठ पर बैठ गये। तीसरे गांवमें पहुंचे तो सब ग्रामवासी बोले कि मालूम पड़ता है यह घोड़ा इन्होंने किसीसे मांगा है इनका स्वयंका नहीं है, जो दोनोंके दोनों उसकी पीठपर लदे हुए हैं, मुफ्तका समझ बेचारेपर दयाभाव नहीं रखते। बहुत विचारनेके पश्चात् वे दोनों पैदल चलने लगे तथा घोड़ा साथ साथ कर लिया। आगे चौथे गांवमें पहुंचनेपर उसके ग्रामवासी बोले कि ये कितने मूर्ख है कि स्वयं पैदल चल रहे हैं और घोड़ा ऐसे ही खाली चल रहा है। इसपर बैठकर ये जा सकते थे। देखो भैया, यहां पर चार ही बात तो हो सकती थीं—बाप बेटा उभय अनुभय। जैसे कि दर्शनमें (१) सत् (२) असत् (३) उभय (४) अनुभय चार बातें हैं। पांचवीं बात तो नहीं हो सकतीं, क्योंकि इतनी तो दोनोंमें ताकत नहीं कि वे घोड़ेको कन्धे पर लादकर चल सकते। अतः भैया! दूसरोंसे प्रशंसाकी इच्छा रखना व्यामोहको प्रवृत्त करना है। ये धन रुपया ऐश्वर्य आदि अपने ही परिणमन करते हैं तब इनमें फिर क्यों मोह रखा जावे? हे प्राणियों! जैसा वस्तुओंका स्वरूप है वैसा मान तो लो फिर स्वयं ही सुखी हो जावोगे। भैया! सच्ची बातको सच माननेमें क्या बुराई है? श्रद्धासे च्युत हुआ प्राणी इस संसाररूपी समुद्रसे पार नहीं हो सकता, चरित्रसे च्युत

होकर श्रद्धाका आश्रय पाकर फिर भी कभी पार हो सकता है। अतः अपनी श्रद्धा ठीक रखनी चाहिये। रत्नत्रयकी पूर्णता क्रमशः होती है। जैसे जीवोंको सम्यक् दर्शन होता है तो उन्हें तीन ही तैयारियां करना होती हैं, अधःकरण, अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण ये क्रमशः होंगे। चरित्रको विकसित करनेके लिए अणुव्रत महाव्रत धारण करना चाहिये। अपने ज्ञान आदि अपने सहायक हैं। हमें यदि धर्मसाधनामें कोई सहायक है तो वह भी तभी जबकि हममें कुछ बल है। जैसे किसी रोगीको डाक्टर दवा आदि पिलाकर ठीक करता है, वह तभी तो सम्भव है जब कि उसमें जीवित रहनेकी शक्ति अवशेष है। अन्यथा दवाईका असर वह कैसे सहन कर पाता? अपनी ही श्रद्धा, अपना ही ज्ञान, अपना ही दर्शन, यह ही सर्वस्व सार है, अन्य कुछ नहीं।

अगर धन आदि छूट जाता है या इसका त्याग हो जाता है तो इसमें हमारा क्या नुकसान है? यदि ये प्राणी मिले हुए ऐश्वर्य धनादिमें अनासक्तिकी बुद्धि रखकर चलता है तो निश्चित आगे उसे इससे भी तिगुना प्राप्त हो जाता है। पूर्वजन्ममें हमने उपेक्षा की होगी तभी तो आज यह ऐश्वर्यादि हमें उपलब्ध हैं। एक नगरमें एक सेठ रहता था। सेठ तो ऊपरके कमरेमें रहता था तथा नोकर नीचेके कमरेमें रहता था। एक दिन उसके यहाँ कुछ चोर घुस आये। वह नोकर सर्वदा एक दोहा बोलता रहता था कि—"कौन जावेगा लेने, देंगे बुलाकर। होंगे दयालु तो देंगे खुद आकर"॥ तो वह इस प्रकार दोहा बोल रहा था कि चोरोंको देखकर बोला कि यहाँ क्या खोदते हो, अरे उस पेड़के नीचे खोदो जहाँ रुपयोंका हण्डा दबा हुआ है, यहाँ क्या रखा हुआ है?

चोरोंने वैसा ही किया। वास्तवमें वहाँ खोदनेपर उन्हें हण्डा मिल गया उसके ऊपर एक तवा ढका हुआ था। तवेको उन्होंने उठाया तो उसमेंसे ततैये निकल-निकलकर उन्हें काटने लगे, उन्होंने सोचा कि इसे जाकर उस नोकरके ही घरपर जहाँ हमने खोदा था उड़ेल देना चाहिये ताकि ये ततैये उसे ही काटें। उन्होंने जाकर खोदे हुए कमरेके उस स्थानमें उसे उल्टा करके पलट दिया। पीछेकी तरफ अशरफियाँ भरी हुई थीं, अतः सब अशरफियाँ उस गड्ढेमें भर गयीं। नोकर उपरोक्त ही दोहा पढ़ रहा था कि 'होंगे दयालु तो देंगे बुलाकर, कौन जायगा लेने, देंगे खुद आकर॥' देखो उसने धनके प्रति उपेक्षा भाव रखा तो खुद उसके घरमें धनकी वर्षा हुई और धनकी लालसा रखे हुए अगले जन्ममें मुझे धन प्राप्त हो, ऐसा सोचकर ऊपरसे ही उपेक्षा दिखाये तो यह भी ठीक नहीं है। वस्तु स्वयंसिद्ध है तथा स्वतः परिणामी भी है। हमारा स्वभाव भी परिणमनशील है। तब मैं दूसरोंमें क्या करूँ तथा दूसरा मुझमें क्या करे? प्रत्येक परमाणु अपनेमें ही परिणमन करता है। हमेशा सब कुछ

करते हुए भी अपने भाव यही रखो कि यह सब असार है, संसार असार है। यथार्थ श्रद्धा का भाव रखना चाहिये। यदि ऐसा न कर सके तो बरबादीके सिवाय कुछ हाथ नहीं लगेगा। बुद्धिमानी इसीमें है कि अपनी श्रद्धा यथार्थ बनाये रहो। सम्यग्दृष्टि जीव चक्रवर्तीकी सम्पदा तथा इन्द्रादिके भोगोंको कौवेकी बीटकी तरह समझते हैं अर्थात् वे विद्यमान वस्तुओं में उपेक्षाका भाव रखते हैं। मैं परपदार्थका न कुछ कर सकता हूं, न कुछ कर सका, न करूँगा। केवल विकल्पोंसे, कल्पनाओंसे दुःखी हो रहा हूं। अतः इन सब विकल्पोंको छोड़कर मैं अपनेमें, अपने लिये, अपने द्वारा, अपने आप सुखी होऊँ।

स्वरागवेदनाविद्धश्चेष्टे स्वस्यैव शान्तये।
नोपकुर्वे च नो शान्तिः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-५॥

मैं अपने अन्तरंगकी वेदनासे बींधा गया। अपनी शान्तिके लिए चेष्टा कर रहा हूँ। स्वयंकी जो मेरी पीड़ा है उसे सहन न कर पानेके कारण ही शान्ति प्राप्त करनेकी चेष्टा कर रहा हूं। इससे मैं किसीका उपकार नहीं कर रहा हूं। ग्रन्थकार भी ग्रन्थ लिखनेका यही कारण बताते हैं कि संसारी जीवोंका दुःख देखकर मुझे दुःख हुआ। अतः अपनी वेदनाको शान्त करनेके लिये ही मैंने ग्रन्थ लिखा। इसमें परोपकार कैसा? मैंने जो कुछ किया वह अपनी शान्तिके लिए ही तो किया। किसी द्रव्यका किसी अन्य द्रव्यमें परिणमन हो ही नहीं सकता। फिर किसी भी पदार्थमें इष्ट, अनिष्टबुद्धि व कर्तृत्वबुद्धि क्यों हो? वीतराग ज्ञान अर्थात् रागद्वेषरहित ज्ञान न होनेके कारण क्लेश ही हैं।

दूसरोंको दुःखी देखकर आचार्योंकी अनुकम्पा हुई, अनुकम्पा उसे कहते है कि दूसरों को दुखी देखकर हृदय पसीज जाना। अतः उस अपनी वेदनासे बिधकर ही आचार्योंने चेष्टा की और ये शास्त्र बन गये। उनकी ये भावना नहीं थी कि मैं उपकार कर सकता हूं या करूँगा। बल्कि इस चेष्टामें उपकार हो गया। अतः इससे आत्मज्ञान तथा आत्मध्यानका मौका मिल गया। छठे गुणस्थानमें ऐसे भाव मिल जाते हैं कि छठे गुणस्थानसे सातवें गुणस्थानमें आ जाता है। अतः वे ऐसे शुभोपयोगका ध्यान किया करते हैं जो ध्यानमें बढ़नेका बाधक न हो। गृह सम्बन्धी वेदनासे, रागकी वेदनासे जो चेष्टा की जाती है वह शुद्धोपयोग की दृष्टिसे हेय है। आत्मध्यान अति दुष्कर है, किन्तु स्वाधीन होनेसे अति सरल है।

शुभोपयोगमें रहने वालोंको लौकिक सुख होता है। किन्तु शुद्धोपयोगियोंको परमात्मीय आनन्द होता है। आत्मानुभवके लिये, धर्मकी प्रेरणाके लिये शुभोपयोगियोंका जल्दी मन हो जाता है, किन्तु विषय रागमें होनेपर इस ओरको ध्यान होना कठिन होता है। इस कारण शुभोपयोगका भी उपदेश है। जिन्हें शुद्धोपयोग हुआ उन्हें शुभोपयोगके बाद ही हुआ। वैसे असंयतसम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान वाला जीव राग, विषयभोग आदिके होते हुए भी उनमें

उपेक्षाभाव रखता है । विषयभोगोंमें रहते हुए भी यही सोचते हैं कि कब और कैसे यह छूटें ? देखो, कितना कठिन कार्य है यह कि उनको करता भी है और झंझट भी मानता है । कितने ज्ञानबलकी बात है । और मैं केवल रागचेष्टामें लगा हुआ हूं, दूसरोंका उपकार क्या कर सकता हूं ? ऐसा ज्ञानी जीव सोचते हैं । किसी जीवको दुःखी देखकर या भूखा देखकर रोटी दी तो उसमें हमने उसका क्या उपकार किया ? भैया ! स्वयंकी शान्तिके लिए, स्वयं की वेदनासे बिधकर ही तो रोटी दी, तो इसमें उसका उपकार कैसा ? यह तो स्वयंका ही उपकार हुआ । व्यवहारमें जब हम ऐसा कहते हैं कि इसने उसपर दया की अथवा रोटी देकर उसका उपकार किया, किन्तु वास्तवमें देखा जावे तो उसने स्वयं ही रागकी वेदनासे बिधकर चेष्टा की, इसमें उपकार कैसा ? एक जज था । एक दिन वह अपनी कारमें बैठकर अदालत में जा रहा था । रास्तेमें कीचड़में पड़े हुए एक गधेको तड़पते देखा । कार रुकवायी और स्वयं ही उसको बाहर निकालनेके लिए आगे बढ़े । साथमें जो चपरासी था उसने भी कि आप क्यों निकाल रहे हैं, हम निकाल देते हैं किन्तु उसने कुछ बात न सुनते हुए अपने हाथों से ही उस गधेको बाहर निकाला । कपड़ोंपर भी कीचड़की छींटें लग गयीं । इतना समय नहीं था कि जाकर कपड़ा बदल आवें, अतः उसी पोशाकमें अदालत पहुंच गये । जब उनको सबने इस दशामें देखा तो सब आश्चर्यचकित रह गये कि आज क्या बात है जो जज साहब की ऐसी दशा है ? आज तक तो कभी भी बिना इस्त्रीके कपड़े नहीं देखे, न ही गन्दे । फिर आज क्या बात हुई ? जिनका उनसे वार्तालाप होता था । उन्होंने पूछा कि जज साहब क्या बात है, जो आज ऐसी दशा बना रखी है । साथ वाले नौकरने सम्पूर्ण घटना सुनाते हुए बताया कि साहब बड़े दयालु हैं । रास्तेमें गधा फंसा था । मैं उठानेको तैयार था, किन्तु इन्होंने कुछ न सुनकर अपने हाथोंसे ही उस गधेपर दया की । तो जज साहब बोले—नहीं भैया ! मैंने जो कुछ भी किया, अपना ही उपकार किया, गधेका नहीं ।

सोचो, यदि मैं ऐसा न करता तो यहां आकर जब भी बीच-बीचमें उसके तड़फनेका वह दृश्य याद आता तब मैं उसी समय वेदनासे बिध जाता । अतः मैंने अपनी वेदनासे बिध-कर ही उसको बाहर किया । झगड़ा आदि होनेपर व्यवहारमें ऐसा कहते हैं कि देखो भाई ! इसके ऊपर मैंने कितना उपकार किया, व्यापारके लिए रुपया दिया, सब सुविधाएँ दीं किन्तु आज है कि मेरी बात ही नहीं सुनता, मुझे कुछ समझता ही नहीं है । ऐसी पीड़ा अज्ञानसे, भ्रमसे, कर्तृत्वबुद्धिसे हुई । सोचकर तो देखो खुद ही तो तेरे अन्दर राग उत्पन्न हो रहा था जिससे तूने चेष्टा की, उपकार क्या किया ? वस्तुका स्वभाव ही ऐसा है कि खुद ही में खुदका परिणमन हुआ करता है । एक किसान था व उसकी पत्नी । पत्नी चतुर थी । जरा अशिक्षित

छोटे पुरुषोंकी ऐसी भावना रहती है कि जब तक औरतको पीटा न जाय तब तक उनपर रुआब नहीं गालिब होता । अतः किसान अपनी औरतको पीटनेके लिए तरीके सोचता रहता था, किन्तु वह इतनी चतुर थी कि कभी अवसर ही नहीं देती थी । अत: एक दिन किसानने खेतमें जाकर एक बैलको उत्तरकी दिशामें मुंह करके खड़ा कर दिया, दूसरेको दक्षिणकी दिशा में । फिर उनके कन्धोंपर जुआ रख कर हल फंसाकर खड़ा हो सोचने लगा कि आज जब भी वह रोटी देने आवेगी तो अवश्य ही ऐसी कोई न कोई उल्टी बात कहेगी जिससे कि मैं उसकी पिटाई कर सकूंगा । निश्चित समयपर वह आई तथा दूरसे ही यह दशा देखकर सोचने लगी कि आज यह क्या बात है ? वैसे मेरे पतिका दिमाग भी खराब नहीं, कोई ऐसी बात ही नहीं हैं जिससे ये ऐसा करें । कोई न कोई बात अवश्य है, अत: वह मनको समझाती हुई किसान को रोटी देती हुई बोली कि चाहे उल्टा जोतो चाहे सीधा जोतो अपना काम तो रोटी दे जानेका है अतः लो ये रोटियाँ । और इतना कहकर रोटी देकर चली गई । पीछेको मुड़कर भी नहीं देखा, न रुकी ही । सो भैया ! निश्चयनयकी दृष्टि लगाकर सोचो तो पता लगेगी कि यह पदार्थ इतना ही है तथा इसका परिणमन इतनेमें ही है । किसी भी पदार्थसे मेरा भला बुरा नहीं—इस प्रकार विचार करनेसे दुःख स्वयं ही समाप्त हो जावेंगे । प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र है व स्वयंमें स्वयंके लिए ही परिणमन करता है ।

स्वतन्त्रताका लक्षण है—सद्भाव या अभावरूप निमित्त पाकर स्वयंका स्वयंमें ही परिणमन । इतना ज्ञान यदि आ जावे तो हम भी भगवान्के परिवारमें शामिल हो जावें । उनकी ज्ञानगोष्ठीके सहवासी हो जावें और यदि हममें वस्तुस्वातन्त्र्यकी दृष्टि नहीं जगी तो हम उनसे दूर है, उनके आनन्दसे परे हैं, तथा स्वयंसे भी दूर हैं । अपने आपके स्वभावकी उपासना करनी चाहिये । परन्तु ऐसी दृष्टि प्राय: किसीको नहीं होती । ज्ञान खुद ज्ञानके स्वत:सिद्ध स्वरूपको जानने लगे तिस दृष्टिसे, बिरले ज्ञानी जीव ही ऐसी दृष्टि करते हैं । यहाँ पर भी मोही, मोहकी ही बात चिल्लाते हैं किन्तु ज्ञानी जीव किसीकी बात नहीं सुनते । जो विवेक मनमें आता है वही करते हैं । उद्धारकी भावना करने वाला बहुतोंकी प्रशंसा न चाहकर दो चार ज्ञानी पुरुषोंकी प्रशंसाकी आकांक्षा रखता है तो भूल है अन्यथा मूर्खों द्वारा प्रशंसा होनेसे क्या लाभ ? और यदि ऐसा विचार करें कि अज्ञानी जीव प्रशंसा करें तो क्या लाभ ? और ज्ञानी जीव प्रशंसा करें तो बहुत ही उत्तम है । इस प्रकार विचार कर अपना कल्याण करें । क्योंकि करता कोई किसीका कुछ नहीं । मैं भी अपनी रागकी वेदनासे बिचकर अपनी ही कषाय पूर्तिका कार्यरूप उपकार कर रहा हूं । अत: मैं वस्तुके स्वरूपको ध्यानमें रखकर अपनेमें, अपने लिए, अपने आप सुखी होऊँ । मैं यहाँ जो कुछ कर

रहा हूं वह अपनी रागवेदनासे पीड़ित होकर अपनी शान्तिके लिए अपनी चेष्टा कर रहा हूं, मैं परका न उपकार करता हूं और न अन्य किसी प्रकारका परिणमन करता हूं। भ्रमपूर्ण परकर्तृत्वकी दृष्टिमें अशान्ति ही बसती है। मैं जैसा सहजस्वरूपमय हूं वैसा ही माननेमें मेरी शान्ति है। यही विचार जीवोंको सदा करना चाहिये।

यातिनेतो न चायाति जातुचित्किञ्चिदन्यतः।
खिन्नने हीनाधिकमन्यः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-६॥

यह आत्मा स्वतःसिद्ध है, यह आप अपनेमें परिपूर्ण है। जो भी पदार्थ है वह अपने में पूर्ण ही होता है, अधूरा नहीं। मैं भी अपनेमें परिपूर्ण हूं। भले ही अशुद्ध योग्यतामें बाह्य पदार्थका परिणमन पाकर उल्टा परिणमन हो, किन्तु अधूरापन नहीं है। यह अधूरापन मोहमें होता है। यह हमारी इच्छाके अनुकूल कल्पना है, नहीं तो प्रत्येक पदार्थ पूर्ण है और परिणमन भी पूर्ण है। असीम विकास होनेको पूर्ण कहते हैं। अधूरापन उसे कहते हैं कि ज्ञानमें शक्ति तो अनन्तलोक व अनन्त आकाशको जाननेकी है किन्तु ज्ञानावरणके उदयका निमित्त पाकर आधा चौथा अंश अंशरूप जान रहा है। किन्तु प्रत्येक समय परिणमन पूर्ण ही है। पर्याय भी पूर्ण है। रागादिका परिणमन भी पूर्ण ही है। अतः जितने भी आत्मा हैं वे सब अपनेमें पूर्ण ही हैं। किसीने बनाया नहीं जो आधा बना और आधा न बना। अतः मेरा कुछ भी गुण व पर्याय बाहर नहीं जाता तथा न बाहरसे ही कुछ मुझमें आता है। पति-पत्नीका आपसमें जो प्रेम है तो क्या उनके गुण एकमय एक हो जाते हैं, नहीं। बल्कि पत्नीकी आत्मा उसकी आत्मामें पूर्ण है और पतिकी आत्मा पतिकी आत्मामें पूर्ण है। पिता अपनेमें पूर्ण है और पुत्र अपनेमें पूर्ण। किसीका भी तत्त्व अन्यमें नहीं जाता। किन्तु व्यर्थ ही यह प्राणी मोहके कारण नाना कल्पना करके नाना प्रकारसे क्लेश पाता है। संसारी प्राणियोंमें रागद्वेष के वश होकर छंटनी करता है कि यह मोही प्राणी मेरा है, यह पराया है आदि। परिणाम में होता क्या है कि यह मेरा है, वह अमुकका है आदि तो भी कोई बात नहीं। किन्तु यह तो अन्तरंगसे ऐसा मानता है, अपने ऊपर अन्याय करता है। ये सब तो मोहके उबाल हैं अन्य कुछ नहीं, न सत्य ही हैं। दूसरेकी आत्मामें और मुझमें कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा के गुण और पर्याय दूसरेमें नहीं जाते व दूसरेके मुझमें नहीं आते। जो अपने आपको मानता है कि मैं बड़ा आदमी बन गया हूं या गरीब हो गया हूं, कमजोर हो गया हूं, यह सब मोहके कारण ही है। ज्ञान आदि निज वैभव तो स्वरसतः बढ़ेगा ही, घटेगा नहीं। व्यर्थमें मन खिन्न होता है। यहां तो ये सारे पदार्थ स्वयं परिणमनशील हैं, स्वतन्त्र हैं। इनमें कोई किसी अन्यको किसी अन्यका कर्ता मानें, स्वामी मानें तो यह मोहजालका ही प्रभाव है। इस

जालमें उलझकर आनंदमें कोई नहीं रह सकता। हम जब दुःखी होते हैं तब अपने ही मिथ्या विकल्पोंके कारण दुःखी होते हैं अन्य कोई मुझे दुःखी नहीं करता। वे विकल्प भी बाहर कुछ काम नहीं करते, वे तो होकर मिट जाते हैं, किन्तु टेव यह पड़ गई कि प्रत्येक आकुलता में यह दृष्टि रहती है कि अमुक पदार्थ यदि यों नहीं परिणमता तो मैं दुःखी न होता। परसे अपना परिणमन मानना मिथ्यात्व है। एक कहावत है कि—

अन्धेर नगरी बेबूझ राजा। टके सेर भाजी, टके सेर खाजा॥

एक थी अन्धेर नगरी। एक गुरु शिष्य उस नगरीमें पहुंचे। शिष्य भोजनका प्रबन्ध करनेके लिए कोयला लेने गया। बाजार जाकर पूछा कि भैया! यह कोयला क्या भाव है? उत्तर मिला टके सेर। फिर उसने पूछा लकड़ी क्या भाव? उत्तर मिला टके सेर। फिर पूछा यह रसगुल्ला क्या भाव है? उत्तर मिला टके सेर। फिर पूछा कि यह खाजा क्या भाव है? उत्तर मिला टके सेर। अर्थात् सब चीजें टके सेर हैं। शिष्यने सोचा कि व्यर्थ ही क्यों कोयला खरीदकर प्रपञ्चमे फंसा जाये, मजेसे रसगुल्ले खाये जावें। भाव तो एक ही है। अतः बोला कि एक टकेके रसगुल्ले दे दो। रसगुल्ले लेकर घर आया और गुरुजी से कहा कि गुरुजी! अब यही पर कमसे कम ६ महीना ठहरेंगे। यहाँ तो बहुत आनन्द है। गुरुने समझाया कि नहीं भाई ऐसी नगरीमें नहीं रहना चाहिये, अवश्य ही यहां पर विपदा उठानी पड़ेगी। किन्तु शिष्य न माना और किसी प्रकार गुरुजी को छः महीनेके लिए मना लिया। शिष्य मजे से खा खाकर मोटा होने लगा। तब साढ़े पांच माह बाद एक घटना घटी कि एक बाबू साहब सड़कके किनारेसे जा रहे थे। आगे एक मकानका कोना टूटा पड़ा था। उसने जाकर राजाको बताया कि यदि उस समय मैं उसके नीचेको जा रहा होता और मकान मेरे ऊपर गिर जाता तो क्या होता, अतः इसका न्याय किया जावे। भैया! इस कथानकसे जाना कि सभीको कैसी बाह्यदृष्टि है? राजाने मकान मालिकको बुलवाया। मकान मालिक बनिया था, उसने आकर बताया कि महाराज मेरा कसूर नहीं है। यदि कारीगर ठीक प्रकार बनाता तो यह क्यों गिरता? मैंने दाम पूरे दिये। राजाने कारीगरको बुलवाया व पूछा। कारीगर बोला—महाराज, यह कसूर मेरा नहीं है, आप नापकर देख लीजिये मकान उतना ही लम्बा, उतना ही चौड़ा, उतना ही ऊँचा सूतके नापसे बना है, यह तो गारा बनाने वालेका कसूर है। न गारा गीला होता न यह गिरता। फिर गारा गीला करने वालेको बुलाया गया। उसने कहा—महाराज, मेरा कसूर नहीं, मशक वालेने जितना पानी गिराया उतना मैंने गीला कर दिया। अतः मशक वालेको बुलाया गया और पूछा कि तुमने इतनी बड़ी मशक क्यों बनवायी? तो उसने कहा—महाराज! बड़ा जानवर आया

और बड़ी मशक बन गयी, न बड़ा जानवर आता और न यह बड़ी मशक बनती। राजाने जानवर बेचने वाले को बुलाया व पूछा कि तूने इतना बड़ा जानवर क्यों बेचा जिसकी इतनी बड़ी मशक बने, जिससे गारा गीला हो जाय और मकान कच्चा बने व गिर जाय। यदि ये बाबू उसके नीचे होकर गये होते तो इन पर गिर जाता न। इसका उत्तर वह निर-पराध बेचारा क्या दे ?

राजाने उसे फांसीकी आज्ञा सुना दी। जल्लाद जब उसे फांसीके लिए ले गये तो वह रस्सी उसके गलेमें ठीक नहीं फंसी क्योंकि उसका गला पतला था। जल्लादने राजाको बताया कि इसका गला पतला है और रस्सीका फन्दा चौड़ा है। तब राजाने आज्ञा सुनायी कि अबे देर क्यों करता है ? इसके गलेमें नहीं बैठता तो किसी मोटे गले वालेको ढूंढ़कर लाओ जिसको यह फन्दा फिट आ जावे। जल्लादोंको बहुत ढूंढ़नेपर वही शिष्य मिला। उसे जब वे लाने लगे तो वह बोला—भैया ! मैं अपने गुरुजी से मिल लूं फिर चला चलूंगा। गुरुजी के पास जाकर सब दशा बतायी। गुरुजी बोले कि हमने तुम्हें पहले ही कहा था कि कोई न कोई संकट अवश्य आवेगा किन्तु तुम माने नहीं। अच्छा तुम चलो और जब फांसी लगने लगे, मैं कहूंगा कि फांसी मुझे दो और तुम कहना कि नहीं फांसी मुझे दो। इस प्रकार झगड़ना, आगे मैं संभाल लूंगा। फांसीके समय गुरुजी बोले कि यह फांसी मुझे दी जावे, शिष्य बोला कि नहीं मुझे होनी चाहिये। इस प्रकार आपसमें झगड़ते देख राजा बोला कि यह सब क्या बात है ? गुरुजी बोले कि आप चुपचाप बैठे रहिये, आपको क्या पता यह मुहूर्त कैसा है ? यदि इस मुहूर्तमें फांसी पर चढ़ा जावे, तो सीधे स्वर्ग मिलेगा। राजा बोला, तब आप लोग रहने दीजिये, मैं ही फांसीपर चढ़ूंगा और राजा ही फांसीपर चढ़ गया। भैया ! यह सारा संसार अन्धेरनगरी है। यहां जो मोहमें गुजरना है, यही हुई अन्धेर नगरी तथा ये सब करते हुए भी अपना कसूर नहीं मानते हैं, यह है अन्धेर। प्रत्येक कसूर पर कहता है कि यदि ऐसा न होता तो ऐसा होता किन्तु वास्तवमें नहीं देखता कि यह सब मेरा ही कसूर है। यह है अज्ञका नाच। जितना भी दुःख होता है सब तेरे ही कसूरसे होता है। यह प्राणी वस्तुत्वको नहीं पहिचानता कि न बाहरसे कुछ मुझमें आता है, न मुझसे बाहर ही कुछ जाता है। अतः वे क्लेश करते हैं और दुःखी होते हैं।

जैसे कहते हैं "मन चंगा तो कठौतीमें गंगा"। यहां जो हो रहा है उसे होने दो, उससे मेरा क्या ? इस प्रकार सोचनेसे मन चंगा हो जाता है। सब जीव अपने आप अपना ही परिणमन कर रहे हैं। एक चमार था। वह कठौतीमें पानी भरकर रखा करता था जूता आदि गीला करनेके लिए। ब्राह्मण लोग गंगा नहाने जा रहे थे तो वह चमार बोला

कि भैया ! मेरे भी दो पैसे लेते जावो और फूल खरीदकर चढ़ा देना किन्तु चढ़ाना उसी समय जब गंगा हाथ निकाले अर्थात् मांगे । ब्राह्मण चल दिया और मनमें बोला कि यह भी कितना मूर्ख है ? अरे, कहीं गंगाका हाथ भी निकलता है ? जाकर उसने दो पैसेका सत्तू लेकर खा लिया । वापिस आनेपर चमार बोला—भैया मेरे दो पैसे भी चढ़ा आये ? ब्राह्मण बोला हाँ चढ़ा आया । फिर चमारने पूछा कि गंगा मैयाने हाथ निकाला था ? ब्राह्मणने कहा अरे, कहीं गंगा भी हाथ निकालती हैं, हमने तुम्हारे दो पैसेका बहुत अच्छा उपयोग किया है, सत्तू लेकर खा लिया है । चमारने कहा कि हम तो फूल तब ही चढ़ाते हैं जब गंगा मैया हाथ निकालती हैं । ब्राह्मण बोला, यह कैसे हो सकता है ? तब उसने वहीं पर स्तुति की । उसी कठौतीसे हाथ निकला और उसने पुष्प चढ़ा दिये । उसीको कहते हैं 'मन चंगा तो कठौतीमें गंगा" । फिर क्या आवश्यकता है बनारस, मथुरा आदि जानेकी ।

सच बात तो यह है कि भैया ! भाररहित न होने तक वह श्रद्धा नहीं होती । सदा विचारे कि मैं तो ऐसा वस्तुत्व हूं जिसका आकार नहीं, नाम नहीं, इतने मात्र ही हूं, इससे अधिक नहीं । इस प्रकार कभी तो विचार करना चाहिये । अपनेको निरखे । ऐसी श्रद्धा हो जानेपर फिर क्या विपदा है । फिर उसे संकट ही क्या है ? जिस प्रकार औषधिसे सब संकट दूर होते हैं उसी प्रकार उक्त तत्व विचारनेसे सब विपदाएँ नष्ट हो जाती हैं । ये प्राणी विषापहारमणि आदि प्राणरक्षाके साधनोंको तो ढूंढ़ते हैं, किन्तु हे प्रभु ! तेरा स्मरण नहीं करते । तेरा स्मरण करनेसे ऐसे-ऐसे चमत्कार होते हैं कि लोग देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं, किन्तु स्मरण नहीं करते । वह परमात्मा अपनेमें ही तो है, किन्तु यह मोही प्राणी व्यर्थमें ही अपनेको छोटा बड़ा समझकर प्रभुदर्शनसे वञ्चित रहता है ।

हे प्राणी ! अपने वस्तुस्वरूपको संभाल, तेरे सब संकट दूर हो जावेंगे । मोहकी बात रागद्वेषके संकटको मेटनेका उपाय नहीं, अपितु संकट बढ़ानेका है । अपनी सर्वपरिणतियोंसे उपेक्षा करके सदा मैं अपने स्वरूपको अपने लक्ष्यमें लेकर अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ । यह प्राणी दूसरोंको देखता है कि अमुक बहुत स्वार्थी है । उससे अपनेको क्या तात्पर्य ? वह अपना परिणमन अपनेमें ही करेगा । खुद खुदका ही काम करता है, कोई किसीका कुछ नहीं करता । ऐसी दृष्टि रहनेपर ही भला है । ऐसी दृष्टि कभी सत्संगमें और कभी एकान्तमें व जब चाहे करना चाहिये । जब संहनन अच्छे होते थे । उस समय समस्याएँ इतनी जटिल न थीं, आजके समयमें बहुत कठिन हैं । एकान्तमें बलिष्ट आत्मा ही रह सकता है । दस आदमियोंके बीच बैठकर भी आत्माकी ओर ध्यान जावे, ऐसा वस्तुस्वरूप अपनी दृष्टिमें रहे तो कोई संकट नहीं । वहाँ यह हो रहा है, लोग क्या कहेंगे—यह सब परदृष्टि है । वस्तुत्व-

रूपपर दृष्टि लगानेपर कोई संकट नहीं। परकी दृष्टि ही संकट देने वाली है। अतः मैं परकी दृष्टि हटाकर स्वयंमें स्वयंके लिए स्वयंको स्वयं सुखी रखूँ।

देखो, वस्तु जितनी होती है वे सब शक्तिपिण्ड ही तो हैं। आत्मा भी वस्तु है, वह भी अनन्त शक्तियोंका पिण्ड है। उन अनन्तशक्तियोंमें आनन्दशक्ति भी एक प्रधानशक्ति है। इस आनन्दशक्तिका प्रति समय परिणमन होता है, विकृत हो या अविकृत, यह उपादान निमित्तके प्रसंग वाली बात है। किन्तु सर्वत्र वह आनन्द मिला स्वयंके आत्मामें ही। सुख यहीं इसी निज आत्मामें है, अन्यत्र सुख ढूँढ़ना ही दुःख पैदा कर लेना है। अतः बाह्यका उलझन छोड़कर मैं अपने आपमें ही विश्राम पाऊँ। अब आगे कहते हैं कि वस्तुका स्वरूप स्वतन्त्रता है। तब किसीको कौन क्या करेगा ?

स्वातन्त्र्यं वस्तुनो रूपं तत्र कः किं करिष्यति।
हानिर्मे हि विकल्पेषु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-७॥

वस्तुका जो स्वरूप है वह स्वतन्त्र है। स्वका मतलब हुआ अपना। जैसे हिन्दीमें कहते हैं कि तुम्हारा अपना, उसने अपना काम किया। उसी प्रकार सब स्वके अर्थात् अपने तन्त्र है। प्रत्येक वस्तु अपने आधीन है क्योंकि वस्तु तो द्रव्य, गुण, पर्यायमें रहती है। अन्य कोई क्या कर देगा कुछ भी तो नहीं कर सकता। जो वस्तु स्वतःसिद्ध है उसका वर्णन करना कठिन है। चीज है तो उसमें परिणति होती रहती है। वस्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावात्मक होती है। द्रव्य गुण व पर्यायका पिण्ड है। व्यवहारमें तो पुद्गलको उठाकर दिखा देते हैं कि यह द्रव्य है। अन्य द्रव्योंको जाननेका उपाय ऊपरी नहीं है। इस प्रकार एक पिण्डरूपसे जो वर्णन किया जाता है उसमें जो बताया गया, 'यह हुआ पिण्डवस्तु। प्रदेशोंकी अपेक्षा जो वर्णन होवे वह होगी क्षेत्रवस्तु। पर्यायोंकी अपेक्षा जो वर्णन है वह कालवस्तु कहलाती है। शक्तियोंकी अपेक्षा बताना भाववस्तु है। जैसे एक आदमीका वर्णन करना है कि वह कैसा है ? यह एक अमुक गांवका मुखिया है, यह हुई पिण्डरूप दृष्टि। लम्बा है ५ फुट और पतला है इस प्रकारकी दृष्टि हुई क्षेत्रकी दृष्टि। अमुक रंगका है यह हुआ व्यञ्जन पर्यायोंको लेकर। घमण्डी है या क्रोधी है अथवा शान्तपरिणामी है यह हुआ गुणपर्यायोंको लेकर काल अपेक्षा से वर्णन। उनकी शक्तिका, गुणका वर्णन भावदृष्टिकी अपेक्षा है। जैसे पुस्तक हाथमें लेकर कहा कि यह पुस्तक है तो यह बताना हुई द्रव्यदृष्टि। यह इतनी लम्बी इतनी चौड़ी है यह हुआ क्षेत्रकी अपेक्षा। यह पुस्तक पुरानी है या अमुक रंगकी है ऐसा वर्णन कालदृष्टिकी अपेक्षा हुआ। इसमें अमुक तत्त्व लिखा है, इस प्रकार गुणोंका वर्णन भावदृष्टिकी अपेक्षासे है। इसी चतुष्टयके कारण इनके चार नाम भी पड़ गये। द्रव्यकी अपेक्षा नाम है पदार्थ, क्षेत्रकी अपेक्षा

नाम है अस्तिकाय, कालकी अपेक्षा नाम है द्रव्य और भावकी अपेक्षा नाम है तत्त्व। सो प्रत्येक पदार्थ इनसे सहित है। जैसे कालद्रव्यमें घटाना है—यह द्रव्य तो है ही, प्रदेश एक ही सही उसकी अपेक्षा क्षेत्र हुआ, कालदृष्टिसे काल भी है। कालमें रहने वाले जो गुण हैं वह भावदृष्टि हुई।

आत्मामें घटा लो, आत्मगुणपर्यायका पिंड हुआ आत्मा पदार्थ, निज असंख्यात प्रदेशों में विस्तृत हुआ आत्मा अस्तिकाय, आत्माकी पर्यायोंसे परिणत हुआ यह आत्मद्रव्य और आत्मगुणोंमें तन्मय स्वभाव मात्र हुआ यह आत्मतत्त्व। देखो, अपना चतुष्टय ही अपनेमें है। परके चतुष्टयका अंश भी अपनेमें नही है, अतः इससे यही सिद्ध हुआ कि प्रत्येक पदार्थ अपना स्वामी है, अपनेमें ही रहता है, अपनेमें ही परिणमन करता है, तब कोई अन्यमें क्या कर देगा? कई प्राणी ऐसे हैं जो तत्त्वको जानते नहीं और कई ऐसे हैं जो जानकर भी उसमें नहीं रमते, केवल ज्ञात करते रहते हैं। कल्याणकी जो बात है उसके किये बिना तो गुजारा नहीं होगा, यह निश्चित है। बड़े दुःखकी बात है कि यह प्राणी मोह आदिमें पड़ा भी है और दुःख भी मानता जाता है। जिस प्रकार मिर्च खाता भी जाता है और मना भी करता है। मिर्च मत डाला करो और सी सी भी करता जाता है, आनन्द भी लेता जाता है। इसी प्रकार बाह्य पदार्थोंमे राग भी कर रहे है, दुःख भी मान रहे है। अतः जो करनेमें आ रहा है, आ पड़ा है, आवे, उसके बिना भी तो अभी गुजारा नहीं है। किन्तु साथ ही साथ यह अन्तरंगमें अवश्य बात उठनी चाहिये कि मैं तो मात्र अमूर्त चैतन्यशक्तिस्वरूप हूं, यह तो स्वयंमें स्वयं ध्रुव है। श्रद्धा ही काम बनाती है। बात यही ठीक है। प्रतिमा भी ले लो, सब कुछ कर लो, किन्तु बिना श्रद्धाके न मर्मका स्पर्श होगा, न ज्ञान ही होगा। बहुतसे विवेकी जन गृहस्थी में रहकर भी यही सोचते है कि कैसे मैं इन उपयोगोको छोड़ूं? ज्ञानी यही सोचता है मुझसे यह सब कैसे छूटे? और बहुतसे प्राणी घरसे बाहर रहकर भी घरकी दृष्टि करते हैं, पत्नीको वाञ्छा रखते हैं। सो यह घरमें रहकर बाहरकी इच्छा रखना, यह सब अर्धविवेकसे होता है। अर्धविवेक उसे कहते है कि ज्ञान तो है, पर दृढ़ता नही हुई। छोड़नेपर ग्रहण करनेकी इच्छा, ग्रहण करनेपर छोड़नेकी इच्छा। जैसे किसीको कहो कि भैया! रात्रिके भोजनका त्याग कर दो तो वह उत्तर देता है कि छोड़नेसे खानेको जी करता है, वैसे रात्रिको खाना नहीं खाये ५ महीने व्यतीत हो गये। अतः योगमें वियोगकी बुद्धि तथा वियोगमें संयोगकी बुद्धि, यही अर्धविवेकमें होता रहता है।

प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमें है, तब अन्यमें कोई क्या कर देगा, कुछ भी तो नहीं, किन्तु विकल्पोंमे हानि होती है। यही विचार त्यागियोंको भी करना चाहिये कि हे आत्मन्! जिसका त्याग कर दिया है उसके विपरीत तो होगा नहीं। अतः वह शक्ति

मुझे दो, जिससे मैं अपनी ओर झुका रह सकूं। अन्यथा मन कमजोर होनेसे मैं भ्रष्ट हो जाऊँगा। फिर उठनेका कोई अवसर नहीं रहेगा। अत: इन थोथी कल्पनाओंका त्याग कर दूँ।

मैं अन्य पदार्थमें कुछ नहीं करता। मात्र विकल्प ही हैं। सो उन विकल्पोंमें अपनी ही हानि है, लाभ कुछ नहीं है। जो विकल्प करने वाला है उसे कर्ता कहा गया है। वैसे तो मिथ्यादृष्टि भी कर्ता नहीं है। कोई वस्तु परपदार्थका कर्ता नहीं है। प्रत्येक वस्तु अपने परिणमनका ही कर्ता है, सो यह विकल्प करने वाला ही कर्ता है तथा जो विकल्प है वह कर्म है। अत: विकल्प वालेके कर्ता कर्मपना कभी नष्ट नहीं होता। वस्तुका स्वरूप स्वतन्त्रता है, तब अन्य पदार्थ अन्यमें क्या कर देगा? अत: विकल्प करना व्यर्थ है। ज्ञान ही निजस्वरूपमें ले जाने वाला है। अपने स्वरूप तक पहुंचने में ये व्यवहारसे उपाय बताये हैं कि अग्नि जल, तत्त्व, रूपवती आदि धारणाएं हैं। सर्वप्रथम उपाय और है, वह यह कि शरीरको स्थिर आसनसे बिठाना सबसे पहिले आवश्यक है। मेरुदण्डको (कमरके बीचकी सीधी हड्डी को) साध कर बैठने से मन एकाग्र होता है। पद्मासनमें बैठनेसे स्थिरता आती है। फिर श्वास देखता हुआ लेवे, श्वास देखता हुआ छोड़े। हमने कब श्वास छोड़ी और कब ली यह दिखता तो नहीं किन्तु पता तो लग ही जाता है कि अब हमने श्वास ली और अब छोड़ी पहले अपने मनको एकाग्र रखनेके लिए यह करना, फिर इसके पश्चात् भीतरको श्वास लेते समय अन्तरंगमें 'सो' सोचे और श्वास छोड़ते समय अन्तरंगमें ही अहंकी कल्पना करें। प्रकृतिसे श्वास छोड़ते व लेते समय भी तो ऐसा याने "सोहं सोहं" शब्द होता है। अतः वैसा ही शब्दोंका जुटाव फिट बैठता है। सो का तात्पर्य है भगवान् और अहम् जिसका तात्पर्य है वह मैं हूं, जो भगवान् है वह मैं हूं। यह श्वासके आश्रयसे ही प्रतिध्वनित होता है। करनेसे स्वयं पता लग जावेगा। फिर 'सो' को लुप्त कर देवे, केवल अहम् रह जावे। ऐसा करनेसे श्वासकी वह कल्पना छूट जावेगी। श्वासका आश्रय छोड़ अपनेको देखा तो अहम्की बात आयी। अहम्का बोध होते समय भी अहम्की कल्पना मिटकर आनन्दकी अनुभूति होती है।

इस प्रकार आत्माका ध्यान करनेका एक यह भी साधन है। मेरी केवल विकल्पोंमें हानि हो रही है, करना धरना कुछ नही। कोई-कोई ऐसे प्राणी होते हैं जिन्हें दूसरोंका सम्बन्ध करानेमें ही मन लगता है उन्हें लेना देना कुछ नहीं, किन्तु फिर भी प्रकृति बन गयी है कि दूसरे दूसरोंका विवाह सम्बन्ध कराते रहते हैं। केवल विकल्प करता रहता है। कहा है कि "हानय: हि विकल्पेषु" अर्थात् विकल्पोंमें हानि ही हानि है, लाभ तो इस आत्माका कुछ भी नही है। जैसे किसीने एक स्वप्न देखा कि एक सेठने मेरेको ५० गायें इनाममें दी

हैं। एकने उससे गायकी कीमत पूछी तो बतायी कि एक गायका मूल्य १००) है। ग्राहक ने कहा, कम ले लो, ६०) ले लो। वह ८०) तक आ गया। ग्राहक ७०) में मांग रहा था। ग्राहक भी जोरसे बोला और वह भी। परिणाम यह हुआ कि इस स्वप्नको देखने वाले की आंख खुल गयीं। आंख खुल जाने पर देखा कि यहाँ तो कुछ नहीं है।

उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ। और फिर उसी प्रकार आंखें बन्द करके बोला कि "भैया ७० ८० में ही ले जावो"। लेकिन वहाँ कुछ भी था क्या? केवल विकल्प ही तो है। अपने कुटुम्बमें ही देखो कि कुटुम्बके लिए सब कुछ किया किन्तु मिलता क्या है, कुछ भी तो नहीं। सब कुछ होनेके बावजूद भी आत्माको तो कुछ नहीं मिल सकता। मृत्यु हो जावेगी फिर साथ क्या जावेगा इनमें से। देखो, पुत्र अपने पिताका पितृतर्पण करता है तो क्या वहाँ पर एक भी जलकी बूंद पहुंच जाती है। केवल विकल्पोंमें सारा लोक भरम रहा है। समस्त क्लेशोंका मूल मात्र विकल्प है। ये विकल्प छूटकर यदि आत्माकी ओर ध्यान जमे तो वही कल्याणकारी है। विकल्पोंमे तो हानि ही हानि है, अतः जिससे मैं विकल्पों को त्यागकर अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊं ऐसा ही संकल्प, उपयोग व प्रयत्न उत्तम है। विकल्प पारमार्थिक चीज नहीं, कर्मोदयका निमित्त पाकर व किसी पर वस्तुको उपयोगका ज्ञेयरूप निमित्त बनाकर उठाया गया आत्माका एक विभाव परिणमन है। इसके संकटसे बचनेका एक ही तो यह उपाय है कि सच सच जान लो। सत्यज्ञानमें सर्वसंकट समाप्त हो जाते हैं।

ज्ञाता द्रष्टाऽहमेकोऽस्मि निर्विकारो निरञ्जनः।
नित्यः सत्यः समाधिस्थः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१–८॥

मैं ज्ञाता द्रष्टा हूं। मैं चैतन्यस्वरूप हूं। इसमें जो स्वच्छताका अनुभव है वह तो हुआ दर्शन, उसमें जो ज्ञेयाकार होता है या अर्थ विकल्प होता है वह हुआ ज्ञान। जैसे दर्पणमें दोनों बात होना आवश्यक है। दर्पणमें जो निजी स्वच्छता है उसका भी परिणमन तथा स्वच्छताके कारण जो प्रतिबिम्ब है उसका भी परिणमन। कुछ भी न हो, खुली जगह दर्पणको आकाशके सामने रख दो तो भी सूक्ष्मरूपसे परिणमन होता ही है। यदि विश्वास न करके देखते जावो तो देखोगे कैसे? क्योंकि दर्पणमें स्वयंका प्रतिबिम्ब पड़ जावेगा। इसी प्रकार मुझमें भी दो प्रकारका परिणमन होता है। उपयोगकी अपेक्षा क्रमशः परिणमन होता है। जो भी पदार्थ है वह सामान्यविशेषात्मक है। आत्मा भी चैतन्य गुणके कारण सामान्यविशेषात्मक है। आत्माका सामान्य प्रतिभास या समस्त जगत्का सामान्य प्रतिभास कहो एक ही बात है, दोनोंका अर्थ एक ही है। प्रतिभासके समय सब पदार्थोंका जो सामान्य

प्रतिभास है उसकी यदि खबर लग जावे तो वह ज्ञान बन जायेगा।

सामान्य प्रतिभासमें तो उस प्रतिभाकी खबर ही नहीं रहती, और यदि खबर रहे तो ज्ञान कहा जावेगा। सामान्य प्रतिभास किसका? यह जानना ही तो ज्ञान हो गया। जाननेका अर्थ ही ज्ञान है। यह विशेष तत्त्व बन गया। कहनेको तो मुखसे सामान्य कहा जाता है किन्तु यह विशेषतत्त्व बन गया। सर्व पदार्थगत सामान्य उपयोगमें अकेले नहीं आ सकता। पदार्थोंका सामान्य प्रतिभास आत्मप्रतिभासरूप ही है। विषय कहते हैं पदार्थको, विषयी कहते हैं आत्माको। सामान्य प्रतिभासरूप परिणमन जो प्रतिभास है वह विषयीको भी नहीं पकड़ता। किन्तु उसको करने वाला कौन, यह हुआ विषयात्मक। सामान्यको भी पकड़ हो जावे तो वह ज्ञान बन जावे, किन्तु सामान्य प्रतिभास हो जाता है, उसकी पकड़ नहीं होती। यथार्थमें दर्शन कब हुआ इसकी खबर न पहले होती, न बादमें, न अनुभव ही होता है। सामान्य प्रतिभास होता सबके है और उस प्रतिभासका विषय मूलतत्त्व निजतत्त्व होता है, किन्तु वह मैं ही तो हूं, ऐसा अनुभव विषयभोगके संस्कार वाले मोही प्राणी नहीं कर सकते हैं। ज्ञानी पुरुष ही उसे स्वीकार कर पाता है। ऐसी बात उपयोगरूप प्रयत्न द्वारा साध्य है। केवल वचनोंसे उसका अनुभव नहीं होता। एक कथानक है कि सब कौरव, पाण्डवोंके साथ धर्मराज (युधिष्ठिर) भी अध्ययन करते थे। गुरुजी ने पढ़ाया कि गुस्सा मत करो। सबने पाठ सुना दिया, किन्तु युधिष्ठिरने कहा कि अभी याद नहीं हुआ। चार पांच दिन तक गुरुजी के पूछनेपर यही उत्तर देते रहे कि अभी याद नही हुआ। गुरुजी को बहुत क्रोध आया कि इसमें याद न होने वाली कौनसी बात है? अतः उन्हें पकड़कर पिटाई की। काफी पिटनेके बाद भी जब युधिष्ठिरको क्रोध नहीं आया तो वे बोले कि गुरुजी अब याद हो गया। इसी प्रकार वचनोंसे क्या होगा?

जब निर्विकल्परूपसे निर्विकल्प प्रतिभास करे तो दर्शनका फिट बैठ जाना हो सकता है। यह दर्शन इस प्रकार है कि यदि फिट बैठाया जावे तो यह भी ज्ञान हो गया। देखना और जानना ये जीवके धर्म हैं। इस संसारमें कोई किसीका नहीं। मैं तो चैतन्यस्वरूप एक हूं—इस प्रकारका विचार करना चाहिये। पुत्र या पत्नी आदि किसीसे भी कितना ही प्रेम क्यों न हो, किन्तु हैं सब अलग-अलग ही। कषायसे कषाय मिल गयी तो दोस्ती, अन्यथा दुश्मनी। जैसे कोई छोटा बच्चा खेल रहा है, दूसरा भी वही खेल जानता है तो दोनोंकी तुरन्त दोस्ती हो जावेगी और प्रतिकूल दशामें दुश्मनी। इससे अधिक मित्रता व शत्रुतामें मर्म ही क्या है? ज्ञानी पुरुष ही समर्थ है कि वह अपनेसे अनुकूलको भी एवं प्रतिकूलको भी निभा लेते हैं। किन्तु अज्ञानी प्राणी अपनेसे प्रतिकूलको नही निभा सकता। मैं द्रव्य, क्षेत्र, काल,

भावकी अपेक्षा एक हूं, मैं विकाररहित हूं, स्वभावदृष्टिके कारण निर्विकार हूं अर्थात् सरसता की दृष्टिसे उपाधि बिना हूं। यदि ये कैसा है इस प्रकारका वर्णन किया जावे तो वह भी निर्विकार ही किया जावेगा। ऐसी दृष्टि बनायें कि ये रागादि भाव पौद्गलिक दिखाई देवे या चिदाभास दिखायी देवें। उपादानपर दृष्टि देवें या निश्चयनयपर यदि परभाव हैं तो आत्मासे क्या मतलब ? स्वभाव और विभाव दोनों क्या एक साथ रहेंगे ? मैं निर्विकार हूं, निरञ्जन हूं, अंजनरहित हूं, अर्थात् उपाधिरहित हूं। चैतन्यशक्ति ही मेरा सर्वस्वसार हैं। पदार्थमें ममताके परिणाम न हों तभी शान्ति प्राप्त होती है। जब तक परपदार्थमें ममताके परिणाम हैं तभी तक अशान्ति है। इसको मिटाने वाली स्वभावदृष्टि ही है।

यदि गीदड़ोंके बीचमें पले शेरके बच्चेको किसी प्रकार यह मालूम हो जावे कि मैं शेर हूं तभी उसे सुख है। और जब तक पता नहीं तभी तक गीदड़ है। पता लगते ही वही शेरका शेर। इसी प्रकार कोई प्राणी चाहे कितना ही हट्टा-कट्टा क्यों न हो, यदि उसे सन्तोष नहीं तो वह दुखी ही है और दूसरा बूढ़ा बीमार, कमजोर होते हुए भी यदि यह सन्तोष धारण करता है कि मैं स्वरूपमें स्वस्थ हूं तो वह निरोग है, सुखी है। अतः अपनी आत्माकी दृष्टि ही सुखको दिलाने वाली है। मैं यदि न था तो आज न होता। यदि कभी न रहूंगा तो आज भी मेरी सत्ता नहीं होनी चाहिये थी। वर्तमानकी सत्ता ही सिद्ध करती है कि मैं अनाद्यनन्त हूं। जो सत्में हो उसे सत्य कहते हैं, मैं सत् हूं। मुझमें जो हो वही सत्य है। जो अपने आपकी स्वरसतासे है वही सत्य है। जो चित्स्वभाव अपरिवर्तित है, चेतनायुक्त है ऐसा मैं समाधिमें रहने वाला तत्त्व हूं। सम्-आधि, इसका मूल शब्द है आधि, सम् उपसर्ग है, आधि मानसिक कष्ट है। जहाँ मानसिक व्यथा शान्त हो उसे समाधि कहते हैं। उप, उपसर्गके लग जानेपर उपाधि बनता है। उपाधिका तात्पर्य ही है कि जो मानसिक क्लेशके समीप ले जावे। ऐसी जो उपाधि, व्याधि जहाँ शान्त हो गई वह समाधि है अर्थात् रागद्वेष रहित परिणाम, ऐसा मैं ज्ञाता, द्रष्टा, निर्विकार, निरंजन, नित्य, अकेला हूं। यही मेरा स्वभाव है। अन्य कोई विश्वास बनाना कि मैं ऐसा हूं सो स्वरूपदृष्टिसे बाहर है। यदि कोई मुनि विचार करे कि मैं मुनि हूं, मुझे असत्य नहीं बोलना चाहिये, इस प्रकारके विकल्पसे क्या वह स्वरूपकी ओर हैं ? नहीं। वह परपदार्थमें है, किन्तु उन्हें इस प्रकारका विकल्प होता नहीं है। उनमें सहज ही संयम रहता है। जैसा कि कोई आदमी किसी कार्यको करनेमें बहुत निपुण होता है तो वह उस कार्यको सहज ही कर लेता है। उसके लिए सोचना नहीं पड़ता, विचार नहीं करना पड़ता। उसी प्रकार इनके भी समिति, गुप्ति सहज ही हो जाती हैं। उपयोग नहीं लगाना पड़ता। मैं चेतनस्वरूप हूं, यह दृष्टि रखनेसे दुःख नहीं होता, किन्तु

जो अंतरंगसे यह मानता है कि मैं स्त्री हूं या पुरुष हूं वह मिथ्यादृष्टि है। जहाँ प्राणी इतना विचार करता है कि न मैं किसीका पुत्र हूं, न किसीका पिता, परपदार्थमें मेरा कुछ नहीं, वहाँ यह भी विचार करना चाहिये कि न मैं पुरुष हूं, न स्त्री हूं। ऐसी प्रतीति अन्तरंगसे नहीं करनी चाहिये कि न मैं अमुकका अमुक हूं, स्त्री हूं या पुरुष हूं। मैं तो चैतन्यमात्र एक तत्त्व हूं। तो वह ज्ञाता द्रष्टाकी क्रियामें लग गया समझो। जैसे खरगोशका शिकार करने वाले शिकारी प्रायः अपने साथमें कुत्ता रखते हैं, खरगोश भाग-भागकर आगेकी झाड़ियोंमें छिपकर बैठ जाता है और अपने कानोंसे अपनी आँखोंको ढक लेता है तथा यह समझता है कि अब मुझे देखने वाला कोई नहीं। तब यदि शिकारीकी नजर उसपर न पड़ी तो आराम से पड़ा रहता है, किसी प्रकारका विकल्प नहीं करता। उसी प्रकार उपयोगमें यदि वे बातें न आवें तो कोई विपदा नहीं, उपयोगमें बातें आ रही हैं इसीलिए विपदा है।

जैसे किसी सम्बन्धीकी मृत्यु हो गयी और पता नहीं, तब कुछ भी विकल्प नहीं है। वह तो उसी प्रकारसे रहता है जैसे पहिले था। एक पत्र आया और उपयोगमें वे बातें आ गयीं तो दुःखी हुआ, यह भी तो सब विकल्पमात्र है। व्यर्थके विकल्पमें उलझकर दुर्लभ मनुष्यके क्षण गंवाना अविवेक है। अतः मैं तो ज्ञाता, द्रष्टा हूं, सो ऐसा ही उपयोग करके मैं अपने आपमें अपनेको निरखे। यह मैं मात्र मैं ही हूं, अद्वैत हूं, एक हूं। इस स्वरूप-सत्तामात्र मुझमें विकार आते भी हैं तो आवो, वे विकार मेरे स्वभावसे नहीं उठते। मैं तो स्वभावमात्र हू अतः निर्विकार हूं। जहाँ विकार ही नहीं प्रतीत होते हैं वहाँ भिन्न सत् अञ्जन (उपाधि) को कथा ही क्या है, सो मैं निरञ्जन हूं। मैं तो सत्य हूं, केवल निज सत्में होने वाला तत्त्वमात्र हूं, अतः सत्य हूं। स्वयं समाधानरूप हूं, शांत हूं सो समाधिस्थ हूं। ऐसे सहज चैतन्यस्वरूप मात्र में अपनेको यथार्थ परमार्थरूपमें देखूं और सर्वविकल्प संकटोंसे मुक्त होकर अपनेमें अपने आप सुखी होऊँ।

अमरोऽहमजन्माऽहं निःशरीरो निरामयः।
निर्ममो नैर्जगत्योऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-९॥

मैं अमर हूँ, मरणरहित हूं। मरते समय जो दुःख होता है वह वियोगका होता है। जैसे कि अज्ञानी जीव कहता है मरते समय कि मुझे वह दो वर्षका छोटा बालक दिखा दो, अब तो मेरे प्राण छूटने वाले हैं। ये रागद्वेषके भाव मरते समय भी अज्ञानीके ही होते हैं। किन्तु ज्ञानीके इससे विपरीत भाव होते हैं। वह यही सोचता है कि मेरी आत्मा तो अमर है, मेरा इस संसारमें कोई नहीं, मैं एक हूँ, चैतन्यस्वरूप हूँ। अज्ञानीमें अज्ञानलीलाकी हद होती है। मैं तो मरणरहित हूँ, जन्मरहित हूँ, अजन्मा हूँ, शरीररहित हूँ। मैं तो अपने वास्तविक

स्वरूप में हूं। शरीर शरीरमें है और मैं अपनेमें हूं। किन्तु ऐसा कुछ हो रहा है प्राणियों प्रकृतिमें कि उसके विषयमें सोचा भी नहीं जा सकता। एक तो ऐसा दुःख है जिसे भुला जा सकता है, जैसे कांटा लग गया, कुछ चुभ गया, उससे दुःखी होता है किन्तु दूसरा दुःख है उसमें समताभाव रखना बहुत कठिन तपस्या करना है। जैसे किसीने किसीको कु बात कह दी तो वह उसको लग जाती है। तात्पर्य यह कि अपने विपरीत कहने पर क्षोभ होता है, वह क्षोभ न होना चाहिये। किन्तु प्राणियोंके प्रायः ऐसा धैर्य होता नहीं किसीने कोई कड़वी बात कही तो वह भुलाये नहीं भुलाई जाती। सबसे बड़ी मूर्खता यदि तो यही है कि दूसरोंके द्वारा प्रतिकूल कहने पर अहित महसूस करना। दूसरोंको बात सु कर शल्य पैदा करना। ज्ञानी की बातें ही विलक्षण हुआ करती हैं। जैसे सुशीला उपन्यास कथा आती है कि एक स्त्री किसी पुरुषसे एकान्तमें स्नेहकी बात करनेपर बाध्य कर रही थं पुरुषने उसको स्वीकार नहीं किया। स्त्री बोली कि यदि तुम मेरा कहना न मानोगे तो तुम्हें कलंकित कर दूंगी, बदनाम कर दूंगी, तो उसने अपने ज्ञानसे ही उत्तर दिया कि य मैं अपने ज्ञानमें कलंकित हूँ तब तो बुरा होगा अन्यथा तुम मेरा कुछ नहीं कर सकती। य तो ज्ञानीका ज्ञान है। अतः यही विचार करना कि मैं शरीर रहित हूं, शरीर-शरीर है; मैं हूं। शरीरको देह भी कहते हैं किन्तु दोनोंका अलग-अलग तात्पर्य है। दिह्यन्ते सञ्चीय यत्र परमाणवः सः देहः। और शीर्यन्ते यत्र परमाणवः स शरीरः॥ प्रायः २०-२५ वर्ष त की आयुके तनको देह कहते हैं और उसके बादकी अवस्थाको शरीर कहते हैं। आत्मा त अमूर्त है उसमें कहाँ फुन्सी, कहाँ फोड़े, वह तो अमूर्त है। आत्मा तो सदा आनन्दमय है बस बुरा काम न करो फिर कुछ नहीं। नहीं तो सारी शल्यें जीवनभर लगी रहती हैं। स जीव सुखी होवें ऐसा विचार करनेसे अपना बिगड़ता भी क्या है? अपनी भावना स्वच्छ रखें, किसीका भी बुरा न सोचें, किसीके प्रति दुःखकी बात न सोचें। जरासी देरके लि मानो यदि अपना सोचा हुआ दूसरेके प्रति अनिष्ट हो भी गया तो इस आत्मामें क्या वृद्धि ह जावेगी?

अतः हे प्राणी! सबके प्रति अच्छी भावना भावो, सबसे पहला यही काम है। गाल भी यदि कोई दे देवे तो भी यही सोचो कि चलो यह तो मुफ्तमें ही खुश हो गया, सुखी ह गया; क्योंकि किसीको भी सुखी देखनेके लिए कुछ न कुछ उसकी खुशीके लिए खर्च करन पड़ता है। अतः उसको गाली देकर सुख प्राप्त हो जावे तो इसमें मेरी क्या हानि? मैं त चैतन्यस्वरूप हूं। मैं लोकरहित हूं, ममतारहित हूं, कर्मके उदयको निमित्त पाकर होने वाल जो मोहभाव है, मैं उससे भी रहित हूं, अपनेसे ये जगतके समस्त पदार्थ भिन्न हैं तथा

इनसे भिन्न हूं, ऐसा अपनेमें विचारे। सम्यग्दृष्टि केवल शुद्धोपयोगमें ही जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें न खानेकी चिन्ता, न कमानेकी, न स्त्री पुत्रादिककी। उनकी अपनी गोष्ठी रहती है तथा शुद्धोपयोगमें समय व्यतीत करते हैं। हमारा भी उत्कृष्ट काम यही होना चाहिये कि हम सम्यग्दृष्टि बनें, सबके प्रति अच्छे भाव रखें। देखो, सबको खुश कोई नही कर सकता। अतः सब मुझपर खुश हों, यह भाव व्यर्थ है। एक सेठ था, उसके पास पाँच लाख रुपये थे व ४ थे बेटे। अतः उसने चारों बेटोंको एक-एक लाख रुपया बांट दिया और एक लाख रुपया अपने लिए रख लिया। फिर कुछ समय बाद कहा—देखो, अपने सब खुशी खुशी न्यारे हो गये। नही तो न्यारे होनेमें बरबादी हो जाती। अब तुम लोग सुखसे अलग हो गये, बिरादरीको जिमाना चाहिये। बड़ी खुशीकी बात है कि किसीसे किसीका झगड़ा तक नहीं हुआ और अलग-अलग भी हो गये। अतः अब यह शुभ काम अवश्य करना चाहिए। सबसे पहले छोटे लड़केने बिरादरीको जीमन दिया, उसने अच्छा अच्छा खाना बनवाया और सब प्रकार मिठाई बनवायी। बिरादरी आयी और जीमने लगी। जीमते-जीमते कहती जावे कि मालूम तो ऐसा पड़ता है कि पिताने अपना सबसे अधिक भाग इसी छोटे लड़केको दिया है तभी तो इसने इस प्रकार खर्च किया। अब देखो खा भी रहे हैं और बुराई भी कर रहे हैं। फिर दूसरेने दावत दी तो उसने केवल तीन मिठाई बनवायी। तो जीमते-जीमते बिरादरी कहती है कि ये लड़का तो बहुत बदमाश है, इसने तीन ही मिठाई बनवाकर अपना काम बना लिया। फिर तीसरेने जिमाया, उसने केवल साग पूड़ी ही बनवायी। जीमने वाले बोले कि यह लड़का सबसे अधिक बदमाश है, इसने तो साग पूड़ीमें ही टाल दिया। फिर चौथेने जिमाया, उसने केवल चनेकी दाल और रोटी ही जिमायी। जीमने वाले बोले कि सबसे अधिक बदमाश यही है, इसने तो बनवाया ही कुछ नही। तात्पर्य यह है कि इस जगत्‌मे प्रशंसाकी दृष्टिसे वैभवादि एकत्रित करना व्यर्थ है। जनता सारी ही प्रशंसा करे यह सम्भव नहीं। महावीर स्वामी जब थे तो उनकी भी सभी प्रशंसा नही करते थे। कोई उन्हें मायावी कहता था, कोई कुछ। अतः हे प्राणी जो तू प्रशंसाकी दृष्टिसे ये सब वैभवादि बढ़ा रहा है, ये सब व्यर्थ हैं। अतः जितना हो सके मनुष्यको धनादि वैभव परोपकारमें लगा देना चाहिये, अन्यथा पछतावा होगा।

एक सेठ था। उससे पास धन बहुत अधिक था, पर था कंजूस। तो उसने काफी तो अपने लड़कोंमें बांट दिया, फिर बचे हुए धनको भीतोमे चिनवा दिया। मरनेका समय आया तो उससे बोला न जावे, ऐसी दशा हो गई उसकी। पंच लोग उसके पास आये और बोले कि क्यों भाई क्या कुछ अब भी दानमें देना है या नहीं? अब तो तुम्हारा मरणकाल समीप आ गया है। सेठ जी अब अपना साराका सारा ही धन दानमें देना चाहते थे क्योंकि घरमें

लड़कोंका भी व्यवहार उनके प्रति अच्छा न रहा था। अतः उसने इशारेसे प्रकट किया कि हाँ मैं यह सब धन जो भींतमें रखा है वह दान करना चाहता हूं। पंच लोग इस बातको समझ न सके। तो उनके लड़कोंसे पूछा कि तुम्हारे पिताजी क्या बता रहे हैं ? तो लड़के बोले कि पिताजी कह रहे हैं जितना धन था वह सब तो ये मकान आदि बनवानेमें खर्च हो गया। अब बचा ही क्या जो दानमें देवें। अब वह सेठ सुन तो सभी कुछ रहा है किन्तु बोल कुछ नही सकता। वह मनमें कुढ़ रहा था कि लड़के सब कुछ जान रहे हैं, पर छल कर रहे हैं। अब सोचो कि कितना कष्ट हुआ होगा उसको ? मानव इसलिये धन नहीं बढ़ा रहे कि मैं आगे भूखों मरूंगा, अतः काम आ जावेगा। बल्कि इसलिए कि मेरी इस धनके कारण ही बड़ाई होगी, इज्जत होगी, पोजीशन बनेगी। सब मुझे अच्छा कहेंगे। लेकिन यह सब व्यर्थका विकल्प जाल है। अतः इन सबको छोड़कर अपने धर्मका पालन करना ही तत्त्व की बात है। मैं ममतारहित हूं; परपदार्थके द्रव्य-गुण-पर्याय रूप नहीं, ऐसा जानकर अपने स्वरूपमें ध्यान लगाओ, ये कर्मजाल भी नष्ट हो जावेंगे। अब सोचो यदि एक बच्चेके हाथमें खिलोना देखकर दूसरा भी रोने लगता है अब उसको चुप करना है तो कैसे किया जावे ? यदि उसे पीटा जाय तो और भी रोवेगा और यदि उस बच्चेका खिलौना छीनकर उसे दिया जावे तो वह भी रोने लगेगा। अतः सीधा उपाय यही है कि उसे और दूसरा खिलौना दे दिया जावे। उसी प्रकार ये पदार्थरूपी खिलोना तो पास आ नहीं सकता, तब रोना बन्द करनेका एक यही उपाय है कि आपना जो स्वभावरूपी खिलोना है उसका ध्यान करो, उसमें रमण करो ऐसा करता हुआ मैं अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी हो सकता हूं।

मैं स्वयं तो सर्वकल्यणामय हूं, सत् हूं, अतः अमर हूं, किन्तु प्राकृतिक मायारूप प्रभावों को अपनाकर अपनेको मरने वाला समझ लिया, इसी कारण मैं मरणके दुःखसे त्रस्त होता हूं। मैं अनादिसिद्ध सत् हूँ, परिपूर्ण हूं, मेरे जन्मकी आवश्यकता भी नहीं और न मेरा जन्म होता है, किन्तु प्रकृतिजन्य (कर्मोदयभाव) स्कन्धोंका संयोग व उस बीच अपने आपको समझ कर मैं जन्मका भ्रम कर लेता हूं और इससे दुःखी रहता हूं। मेरा तो मेरा चैतन्यस्वरूप मात्र है, मेरे शरीर कहां है ? जब शरीर ही मेरे नहीं तो रोग मेरे कहांसे होंगे ? तथा जब शरीर भी मेरा नही है तो अन्य चीजोंकी कथा ही क्या ? इस कारण न मेरा यह जगत् है और न जगत्का मैं हूँ। ऐसे सबसे निराले अद्वैत ज्ञानकस्वरूप मात्र अपने आपमें मैं रहूं और आनन्दमय बनूं।

नोपद्रवो न मे द्वन्द्वो निर्विकल्पोऽपरिग्रहः।
दृश्यः कैवल्यदृष्ट्याहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-१०॥

आत्मा चैतन्यस्वभावमय है, मैं चेतना शक्तिमात्र हूं। इसमें दूसरी चीजका प्रवेश नहीं। अतः इसमें कोई उपद्रव नहीं हो सकता। मैं ही उपद्रव मानूं और दुःख मानूं तो वह मेरी ही ओरसे उपद्रव होगा, परकी ओरसे नहीं। परकी ओरसे उपद्रव किसी भी अन्य पदार्थ में नही होता। परपदार्थमें दूसरेके द्वारा उपद्रव नही होता बल्कि नैमित्तिकपरिणमन है। ऐसा वस्तुका स्वभाव है जिसे विभाव स्वभाव कहा है। बाह्यका निमित्त पाकर परिणमन हो वह तो है किन्तु बाह्यसे उपद्रव नहीं, निमित्त पाकर होता है। एक दृष्टिसे तो सभी निमित्त उदासीन होते हैं, किन्तु एक दृष्टिसे कोई उदासीन होता है, कोई प्रेरक होता है, एक दृष्टिसे दूसरे का ही अपराध माना जाता है। एक दृष्टिसे न उपद्रव है, न निमित्त है, न उपादान है। किसी परपदार्थके कारण मुझमें उपद्रव नहीं किन्तु मैं ही कल्पनासे उपद्रव मानता हूं। मुझमें उपद्रव नही हैं। ये सब स्वभावदृष्टिसे समझे गये। उपयोगकी बात बनी रहे तो उपद्रव भी न जंचे। यदि कोई व्यक्ति पैर घसीटकर चल रहा है अथवा टेढ़ो चालसे चल रहा है, यद्यपि अपनेसे उसका परिचय भी नहीं, किन्तु फिर भी दिलमें बुरा महसूस होता है। देखो परपदार्थसे यह उपद्रव नही है किन्तु कल्पनाके कारण ऐसा अपनेमें मानता है। लक्ष्मण और परशुरामका विरोध था, यह इस कारण कि ब्राह्मणोने क्षत्रियोंका नाश किया और क्षत्रियोंने ब्राह्मणोंका नाश किया। अतः इनका भी आपसमें विरोध था। जब वे दोनों आमने सामने आये तो लक्ष्मणने परशुरामको कहा कि तुम मेरी आंखोंके सामनेसे हट जाओ और भी दो चार उल्टो सीधी बात सुनाई। तब परशुराम जी ने कहा—"कर विचार देखो मन माही, मूंदहु आंख कतहु कोउ कुछ नाहीं॥" अर्थात् तुम यदि आंखें बन्द कर लो तो तुम्हें स्वयं ही कुछ दिखाई नहीं देगा। उसी प्रकार लोकदृष्टिकी आंख बन्द कर लेनेपर कोई उपद्रव ही नहीं है। अपने स्वभावसे च्युत होनेको तथा परकी दृष्टि होनेको ही उपद्रव समझो। अतः मुझमें कोई दन्द-फन्द नही। यह दन्द शब्द द्वन्द्वसे बना है जिसका तात्पर्य है दूसरा। अतः जब मुझमें दूसरा कुछ नही तो दन्द भी नहीं और फन्द भी नही, क्योंकि दन्दके होनेपर ही फन्द होता है तो जब दन्द भी नहीं और फन्द भी नहीं, क्योंकि दन्दके होनेपर ही फन्द होता है तो जब दन्द ही नही तो फन्द कैसे होगा? मैं तो चैतन्यस्वभाव वाला हूं, निर्विकार हूं, मेरा काम ही स्वच्छ रहना है।

अपनेको स्वच्छ सुरक्षित रखकर रागादिको पौद्गलिक समझे इसका नाम विवक्षित एकदेश शुद्ध निश्चयनय है। मैं परिग्रहसे रहित हूं, मेरा जो तत्त्व है उसमें अन्य कुछ नहीं। तब परिग्रह क्या लगा? यही विचार अपरिग्रह कहलाता है। बाह्यपरिग्रहका त्याग तो निष्परिग्रह आत्मतत्त्वकी भावनाका फल है। जब अपने आपके आकिंचन्यकी भावना बढ़ गई,

तब इसके होनेपर परिग्रह संभाले कौन ? अतः छोड़ना ही पड़ता है। उदारता भी उसीके बढ़ती है जो आकिञ्चन्यकी, निष्परिग्रहकी भावना करे। उच्च परिणामोंका होना ही सबसे बड़ी उदारता है। अतः कषायोंको मत पकड़ो। अपने प्रति कोई कैसा भी व्यवहार क्यों न करे, किन्तु उसके प्रति रंचमात्र भी रंज, विषाद न लावें, यह सबसे बड़ी बात है।

जीवनमें आगे बढ़नेका सबसे पहला यही काम है। यह तो कठिन है कि अपने शरीर में पीड़ा हो और अनुभूति न हो, यह भी कठिन है कि जिस वस्तुकी इच्छा हुई वह प्राप्त न होनेपर विषाद न हो, किन्तु इसमें क्या कठिनाई है कि यदि किसीने प्रतिकूल वचन बोल दिया तो महसूस न करें, उसके प्रति विषाद ईर्ष्या न रक्खें। उसके प्रति कषाय रखना इसी का नाम तीव्र कषाय है। सबसे बड़ी जीवनकी शिक्षा यही है। कोई भी उपद्रव क्यों न आवे, बस यही विचार करें कि मैं तो चैतन्यस्वरूप हूं अन्य कुछ नहीं।

एक सुनार और एक सेठ पड़ोसी थे। सेठ धनवान था, सुनार गरीब। किन्तु इतना होनेपर भी सेठ उसे तंग ही करता रहता था। किन्हीं कारणोंको ढूंढ़-ढूंढ़कर उसे तंग करता था, हानि पहुंचाता था जिससे उसकी हानि हो सके, किन्तु यह सब होते हुए भी सुनार सेठके प्रति अच्छे भाव रखता था, उसका भला ही विचारता रहता था। सेठने कारण न रहनेपर भी उसे हानि पहुंचानेके प्रयास किये, किन्तु सुनारने हानि पहुंचानेके साधन रहते हुए भी उसे हानि न पहुंचाई। एक बार सेठके यहाँ डाकू आ गये, उसकी लट्ठसे पिटाई करना चाहते ही थे कि सुनारने देखा और स्वयं बीचमें आ गया, अपने आप पिट गया, घायल हो गया, किन्तु सेठको बचा लिया। उस दिनसे सेठके भी विचार बदल गये, और सुनारसे सेठने अपनी गल्ती की माफी माँगी। अतः हे प्राणी ! सबके प्रति क्षमाभाव धारण करो, चाहे वह अनुकूल है या प्रतिकूल। देखो—जैनधर्म पाया, जैनकुलमें पैदा हुए, समागम भी ऋषियोंका मिलता रहता है, शास्त्र भी सुननेको मिलता रहता है। ये सब होते हुए भी यदि हम इतनी बात न कर सके कि क्षमाका भाव धारण करें, तो समझो कि प्रतिकूल बोलने वालेपर क्षमाभाव न करके उस बातको और कठिन बना लिया।

यदि क्षमा भाव रखते तो वह उपद्रव वहीं समाप्त हो गया होता। किन्तु उसमें विषाद करके आगेके लिये उस बातको कठिन कर दिया। क्षमा करनेसे मेरा घटता भी क्या है ? जितना भी क्षमाभाव धारण करोगे उतनी ही इज्जत प्राप्त होगी। यदि इस प्रकार अपनेको बना पाये तो समझो कि हम भगवान्के कुलमें सम्मिलित हो गये, उनके वंशके हो गये। यह कुटुम्ब जिसे प्राणी अपना मान रहा है यह तो विनाशीक है, किन्तु भगवान्का कुल सत्य है। अतः उस भगवान्के कुलके लिए यदि अपना विनाशीक यह लौकिक कुल भी छो-

ड़ना पड़े तो सहर्ष त्याग कर देना चाहिये किन्तु भगवान्का कुल नहीं छोड़ा जा सकता। सब कुछ सहन हो सकता है किन्तु धर्मपर आक्षेप सहन नहीं हो सकता। जैसे सब काम फिर हो जायेगा ऐसा कहकर टाले जा सकते हैं, किन्तु देवदर्शनके समय दर्शन न करे यह अपनेको सहन नहीं होगा। जो जीव अपना हित किसमें है—इसकी वास्तविकताको पहिचान गया वह न तो धर्म छोड़ सकता है, न उसपर आक्षेप ही सहन कर सकता है।

मैं परिग्रहरहित हूं। समस्त इन्द्रियोंको वशमें करके स्थिर होकर अपने आपमें जो देखता है वही आत्मतत्त्व है, इस प्रकार आत्मतत्त्वकी जो भावना भाता है उससे परिग्रह धारण नहीं हो सकता। अतः मैं अपरिग्रही हूं। यह जीव निजपरमात्मतत्त्वकी दृष्टिको ही हित मानता है परिग्रहको नहीं। यह आत्मा सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी दृष्टियोंसे भी नहीं दिख सकता, एक कैवल्यदृष्टिको छोड़कर। अतः मैं अपनेको कैवल्यदृष्टिसे देखता हुआ अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊँ। घर गृहस्थी चलाते हम सब कुछ सहन करते हैं, लड़ाई-झगड़ा, मुकदमा आदि आदि। किन्तु जब ही स्वभावदर्शन धारण किया कि सब कुछ क्षणभरमे छूट गया। पद्मपुराणमे बताया है कि उदय-शंकर अपनी बहिनको लेने आया तो उसका जीजा वज्रभानु, वह उसकी बहिनसे बहुत ही मोह करता था। अतः मोहवश वह भी उसके साथ हो लिया। रास्तेमें जंगल पड़ा, वहाँ एक मुनि तपस्या कर रहे थे। यह वज्रभानु उनकी ओर देखता ही रह गया और उसे वहीं वैराग्य हो गया। सालेने मजाक करने हेतु कहा कि क्या तुम भी मुनि होना चाहते हो, जो ऐसे देख रहे हो। वज्रभानु इसी पशोपेशमे पडा था कि मैं इनसे क्या कहकर इजाजत मांगूं किन्तु स्वयं ही कारण मिल जाने पर बोला, यदि मैं दीक्षा ले लूं तो क्या तुम भी ले लोगे? उदयशंकरने सोचा कि यह तो महा मोही है यह क्या दीक्षा लेगा? अतः प्रकटमें कहा कि ठीक है, मैं भी ले लूंगा। वज्रभानुने तुरन्त ही दीक्षा धारण कर ली। उदयशंकर आश्चर्यसे उसे देखता ही रह गया। और फिर क्षणभरमें ही उसे भी वैराग्य हो गया। यह बात नहीं कि उसने वज्रभानुके शब्दोंको यादकर ऐसा किया किन्तु इस मुनिकी मुखमुद्रा ही ऐसी शान्त और आनन्दयुक्त भाव वाली थी कि वैराग्य हो जावे। और वज्रभानुका आश्चर्यकारक चरित्र देखा कि वैराग्य हो गया। फिर अन्तमुंहूर्तमें ही उस औरतको भी वैराग्य हो गया। बताओ क्षण भरमें क्या से क्या हो गया? जा रहे थे कहाँ, पहुंच कहाँ गये, न इधर खबर है, न उधर। और हम ऐसे मोहमे पड़े हुए है कि यदि कही सफरमें रेल आदिसे जाते हैं तो हर अगले स्टेशनसे पत्र डालते रहते है कि अब मैं अमुक स्थान पर पहुंच गया, अब अमुक स्टेशन आवेगा, वहाँ से भी पत्र लिखूंगा, मैं आरामसे हूं आदि, और फिर पहुंचकर पत्र डालते रहते हैं। यहाँ न चिट्ठी, न पत्री थी। बीच जंगलमें मुनिदर्शनसे मुखमुद्रा ही देखकर तीन प्राणी

वैराग्यको प्राप्त कर अपनी आत्माके, अपने कल्याणमें लग गये। यह मुखमुद्रा अन्तरंगके स्वानन्दसे, सन्तोषसे ही प्राप्त हो सकती है। हम चाहे विशेष आनन्द होने पर खूब ठठ्ठा कर हंस दें। किन्तु वह मुखमुद्रा बननी कठिन है। वह तो तभी होती है जब कि स्वानुभूति हो जाती है। अपनेको पहिचान लिया है कि मैं चैतन्यस्वरूप हूं, बाह्यपदार्थोंसे मुझे कोई प्रयोजन नहीं। अपने आपके आत्मतत्त्वके अविचल प्रत्ययसे जो सहज आनन्द जगता है, उसकी सानीका आनन्द और कोई है ही नही। यह मै तो केवल शुद्ध चैतन्यमात्र हूं। मेरे कोई उपद्रव नहीं, मेरे कोई द्वन्द्व नहीं। मैं सहज निर्विकल्प हूँ, समस्त परिग्रहभारसे स्वतः मुक्त हूं। अतः मै भ्रमजालको छोड़कर अपने ही स्वरूपमें स्थिर होकर, अपनेमें अपने आप सुखी होऊँ।

निर्वंशश्चेतनावंशो निर्गृहश्चेतनागृहः।
चेतनान्यन्न मे किञ्चित्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-११॥

मै निर्वंश हूँ, अग्रवाल, खण्डेलवाल, आदि जातिभेदसे भी रहित हूं तथा क्षत्रिय, ब्राह्मण वैश्य आदि जातियोसे भी रहित हूं। यदि मेरा वंश ही है तो मेरा वंश चेतना है। जिसकी परम्परा अनादिसे अनन्त तक चलती रहती है। अन्य कोई वंश मेरा नही है। वंश वही होता है जो परम्परा बनावे। मेरी परम्परा जाति कुलादिसे नहीं बल्कि चेतनामें बनती है। अतः मेरा वंश है तो वह है चेतना, और मैं निर्गृह हूं, घररहित हूं, महल, मकान आदि से रहित हूं; मेरा असली घर चेतना है। जिसमें हम बराबर बने रहते है। जो कभी टल नहीं सकता, कभी हट नही सकता। चेतनाको छोड़कर मेरा अन्य कोई नही। लोकमें अन्य घर भी तो हैं, फिर हम उन्हें क्यों नही अपना मानते, वह इसलिये कि लोकव्यवस्थामें हमें यह अधिकार है कि यहांसे कोई हटा नही सकता, किंतु पापादिकर्मे उदयसे या कर्ज आदिके कारण कुड़की हो जानेसे यह मकान छूट सकता है, किन्तु मेरे स्वरूपसे, चेतनासे कोई नही हटा सकता। प्रत्येक पदार्थ अपना अपना स्वरूप रखते हैं, चतुष्टय उनका भी है। द्रव्य, समुदायका नाम है। क्षेत्र, प्रदेशका नाम है और काल पर्यायका नाम है। भाव शक्तिका नाम है। इनको छोड़कर उसका दुनियामें है क्या? इसके अतिरिक्त दुनियामें कुछ नहीं। इसी प्रकार मेरे प्रदेश गुण, पर्यायको छोड़कर और दुनियामें है क्या? यही चेतना मेरा घर, वंश है, जहां मैं बेखटक बना रह सकता हूं। वहांसे मुझे कोई नही हटा सकता। अपना ही स्वभाव मेरा सब कुछ है। इससे अन्य कुछ नहीं। जिसकी जैसी प्रवृत्ति है उसका उसी रूप परिणमन होगा। उसे देख दुखी न होवे, क्योंकि वहां पर मेरा है क्या? जैसे किसी आलसी व्यक्तिको देखकर बुरा लगता है किन्तु ऐसा नही होना चाहिये। वह जैसा है होने दो, किन्तु रागादिक परिणामोंके

कारण ऐसा सब दुःख करता है। ज्ञानसे जानो कि इसका परिणमन ही ऐसा है, किन्तु उसे देखकर विकल्प करना अपराध है, अविवेक है। अतः इसे मिटानेसे ही शान्ति मिल सकती है। यदि विपरीत मानना है तो मानते रहो, उससे लाभ कुछ है ही नहीं। जैसे छोटे बच्चे गुड्डे गुड़ियाका खेल खेलते हैं, उसमें छोटे कंकरोंको मिठाईका रूप देकर सब क्रिया करते हैं। जो बराती बनकर आते हैं वे भी कुछ झूठमूठमें उन मानी हुई मिठाइयोंको खानेका उपक्रम करते हैं, खाते नहीं, किन्तु यह सब है क्या ? केवल कल्पनाकी ही तो सब वस्तु है। क्या ऐसा करनेसे वास्तविकता आ गयी ? उसी प्रकार हम भी कल्पनामें लगे हुए हैं कि यह मेरा है आदि, किन्तु इन सबमें कोई वास्तविकता नहीं है। धन्य है वे ज्ञानी जो सोचते हैं कि मेरा हित तो मेरा ही स्वरूप है, अन्य नहीं। मेरे इस चैतन्यस्वरूपसे अन्य कुछ नहीं। बाह्य-पदार्थोंसे जितना त्याग बढ़ता जाता है उतनी ही महत्ता है। त्यागका ही तो महत्त्व है। यदि अन्तरंगसे त्यागके भाव आ जावें तो अनन्त चतुष्टयके दर्शन हो जावें। और यदि ऐसा ज्ञान आ गया तो समझो कि उसका बेड़ा ही पार है, अतः चैतन्यस्वरूप ही मेरा स्वरूप है। एक जीवद्रव्यको दूसरा कोई भी जीवद्रव्य उपाधि नहीं बना सकता। सादृश्यमें सादृश्यकी उपाधि नहीं बनती, ये जीव मेरे सदृश हैं, अतः मेरी उपाधि नहीं बन सकता। विपरीत जो शरीरादि पौद्गलिक वस्तु है वह उपाधि बन जायेगी। एक स्वच्छ कांचके सामने एक कांच रख दो तो वे आपसमें मलिनता जाहिर नहीं कर सकते। इसीलिए समानगुण परमाणुका समानगुण पर-माणुके साथ बंध नहीं होता, विषममात्रामें हो जाता है। अतः मेरी उपाधि अजीव व पुद्गल से ही बन सकती है। वह स्वभाव मेरा नहीं, मेरा स्वभाव तो चेतनास्वरूप है। आत्माको यदि समझना है तो इसका साक्षात् उपाय प्रयोग है। जैसे तैरना सीखना है तो उसका साक्षात् उपाय प्रयोग ही है।

पुस्तककी बात सीखनेमें तो मदद करती है किन्तु साक्षात् उपाय प्रयोग ही है। रोटी बनाना, मुंहसे सब विधि बता दो। थालीमें इतना आटा लेना, फिर आटा पतला भी न हो, गाढ़ा भी न हो, पहिला पर्त कम सेकें, दूसरा पर्त अधिक सेकें, रोटी ऐसे बनाना आदि सब विधि बता दो। फिर उसे बिठा दो रोटी बनानेके लिए। क्या वह बना देगी ? नहीं। साक्षात् उपाय तो प्रयोग ही है। कितना ही संगीत पुस्तकसे सिखा दो किन्तु क्या वह बिना प्रयोगके सीख सकता है हारमोनियम आदि ? नहीं। साक्षात् उपाय सीखनेका प्रयोग ही है। अतः यदि आत्माके स्वरूपको समझना है तो साक्षात् उपाय प्रयोग ही है। ज्ञान मदद करे तभी, नहीं, बल्कि चारित्र भी हो ताकि हम एकचित्त होकर अपनी आत्माके कल्याणमें लग सकें। बाह्यपदार्थोंके भूलनेसे ही आत्माके दर्शन होंगे। जैसे कोई सभा हुई, उसमें कोई प्रस्ताव

रखा गया, उसपर अमल करो। किन्तु ऐसा कहनेसे ही क्या अमल हो गया ? नहीं। जब तक प्रयोग नहीं होगा तब तक कुछ नही। प्रयोगसे ही विजय है, ज्ञान है, यह तो ठीक, किन्तु बिना प्रयोगके काम बनेगा नहीं। हमारा समागम ऐसा होना चाहिए कि सुबुद्धि बनाकर आरामसे रह सकें नहीं तो यह सब कमानेसे ही क्या फायदा ? सुबुद्धि बनाकर ऐसा समय निकालो ताकि दो क्षण अपनी आत्माके कल्याणमें भी लग सकें। किसी भी दुःखीको देखकर हम दयाकी बातें तो खूब करते हैं किन्तु उसे वहाँसे उठानेका उपक्रम नहीं कर सकते। देख रहे हैं कि बेचारा असमर्थ है, गन्दे नालेमें गिर गया। न निकल पानेके कारण तड़फड़ा रहा है। हम चिल्ला चिल्लाकर इतना तो अवश्य करेंगे कि "भैया इसको निकालना बेचारा बहुत दुःखी है, किन्तु स्वयं निकालनेके नाम पर कदम नहीं बढ़ाते, नहाना पड़ेगा उसको संकटसे उबारकर।" प्रयोगका लोकमें भी, परमार्थमें भी बहुत महत्त्व है। मैं वंशरहित हूँ। यदि मेरा वंश है ही तो वह है चेतना। वंशको जो पवित्र करे उसे पुत्र कहते हैं। मेरा वंश है चेतना और उसे पवित्र करने वाला मैं स्वयं हूँ।

जहाँसे कोई निकाल न सके उसे घर कहते हैं। ये ईंटोंके घर क्या घर हैं ? इनमें रहनेका कुछ ठेका है क्या ? एक साधु जा रहा था। उसे आगे एक हवेली मिली। बाहर उसका चौकीदार बैठा हुआ था। साधुने पूछा यह धर्मशाला किसकी है ? चौकीदार बोला—महाराज यह धर्मशाला नही है। साधु बोला—हम यह नही पूछते हम यह पूछते हैं कि यह धर्मशाला किसकी है ? यह सब वातावरण देख नौकर मालिकके पास भागा। मालिक बोला कि महाराज यदि आपको धर्मशालामें जाना है तो हम नौकरको साथ भेज देते हैं, वह बता देगा, यह धर्मशाला नहीं है। साधु बोला—हम यह नहीं पूछ रहे हैं, हम पूछ रहे हैं कि यह धर्मशाला किसकी है ? मालिक ने दिमागसे सोचा, इसमें कुछ न कुछ राज अवश्य है, बिना मतलबके यह नही कह रहा है। सेठने गद्दीके पास बुलाया और कहा महाराज यह धर्मशाला नहीं है, मेरी हवेली है। साधुने पूछा इसे किसने बनवाया था ? सेठ बोला महाराज मेरे दादाने इसको बनवाना शुरू किया था, फिर वे तो पूरी न बनवा सके मेरे पिता जी ने इसे पूरा कराया। साधु बोला—पिता जी फिर कितने दिन इसमें रहे ? सेठ बोला कि ३ वर्ष रह सके फिर गुजर गये। साधु बोला कि तुम कितने दिन इसमें रहोगे ? सेठ सहम गया। साधु बोला कि जिसे तू हवेली समझ रहा है इसके छोड़नेके समय तुझे एक मिनट भी ठहरनेकी इजाजत न मिलेगी। हाँ उस धर्मशालामें भले ही इजाजत मिल जावे मंत्री से कहकर। फिर यह धर्मशाला ही तो है। इस प्राणीको ऐसा मोह लगा है, ऐसे मोहजालमें फंसा हुआ है कि यह मेरा है, यह उसका है आदि ही रट लगाये हुए यह दुःख भोग रहा

है। सोचो तो अब पूर्वभवका हमें कुछ ज्ञान नहीं कि हम कहाँ थे ? कौन हमारे माता पिता थे ? तब इस जन्मकी ही अगले भवमें क्या याद रहेगी ? अतः मैं अपने चेतनके घरको पहिचानकर अपनी आत्माके कल्याणके मार्ग पर लगूं। सदा यही भावना भानी चाहिए। विषय कषाय आदिका जल जिसमें नहीं चूता, उस निजचेतनागृह को छोड़ अन्यत्र संसारकी इस बरसातमें कहाँ घूमूं ? अतः इससे बचनेके लिए चेतनारूपी घरमें रहकर सुखी होऊं।

निर्मित्रश्चेतनामित्रो निर्गुरुश्चेतनागुरुः।

चेतनान्यन्न मे किञ्चित्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-१२॥

मेरा इस जगत्में कोई नहीं। लोकमें जो मित्रकी तरह दीखते हैं वे केवल विषय भोगोंमे ही साथी हैं। वास्तवमें कोई मित्र नहीं। घर कुटुम्बमे भी जिन्हें हम अपना समझते हैं, उनसे अच्छे भगवान् है या वे पुत्र स्त्री आदि, जिसने अपने सहजस्वरूपको पहिचान लिया वे भगवानके अतिरिक्त अपने सहजस्वभावके अतिरिक्त किसीको अपना नहीं समझते और मोही जीव बाह्यपदार्थोंको ही अपना समझता है। किन्तु वास्तविकता यही है कि अपना यदि कुछ है तो वह है चेतना, अन्य कुछ नही। उनसे, घरके पुत्रादिकोंसे तो पड़ोसी अच्छे है जो ज्ञानकी बात बताते है, सिखाते है और ज्ञानमें लगनेके लिये प्रेरित करते हैं।

ये मोही जन तो अन्धेरेमें ही रखे रहेगे। उनसे अच्छे तो वे हैं जो हितका उपदेश देते हैं। ये ज्ञानी, उपदेशक संसारका अन्त करनेमें कारण होंगे और ये रागके कारणभूत अन्धेरेमें रखनेके सिवाय कर ही क्या सकते हैं ? अंतः यही सोचो कि मेरा कोई मित्र नहीं, यदि है तो चेतना। चेतना स्वभाव ही मेरा मित्र है। इसी प्रकार मेरा कोई गुरु भी नहीं है। गुरु तो सूर्यकी तरह होते है। सूर्यका काम है, प्रकाश कर देना याने मार्ग बता देना, मार्ग दिखला देना। किन्तु जब हम चलेंगे तभी तो वहाँ पहुंच सकते हैं। चलना तो मुझे ही पड़ेगा। इसी प्रकार गुरुमार्ग बताने वाले ही हैं, सही ज्ञान देने वाले हैं किन्तु यदि मैं उस पर आचरण करूंगा तभी तो मेरा हित होगा। अतः वे मार्ग बतानेमें कारण तो हैं, उनमें सूझ बनाओ तो कल्याण है। उस पर चलना तो तुम्हें ही है। अतः मेरा गुरु मैं स्वयं हूं। तुम्हारे गुरु तुम हो। मेरा स्वभाव ही मेरा गुरु है। चेतनाको छोड़कर अन्य मेरा कुछ नही। जिस मोहमें फसे हुये हम सोचते हैं कि अमुक बहुत अच्छा है, वह सब विपदाका कारण है। विपदाका का कारण होता है अज्ञान। जो हितकी अभिलाषा करे, हितकी बात बतावे, हितके मार्गमे चला देवे उसे गुरु कहते हैं। वास्तवमें कोई न मेरा हित चाह सकता, न अभीष्टका मार्ग बता सकता, न अभिलाषा करा सकता। जो कुछ करूंगा मैं ही करूंगा। कोई यदि करुणा करेगा तो उसका उसमें ही परिणमन होगा, मेरा कुछ नहीं, सब कुछ करना

तो हमें ही पड़ेगा। अतः वस्तुतः मेरा कोई गुरु नहीं है। मैं ही अपना गुरु हुआ। तुम्हारे गुरु तुम स्वयं हो। मेरा सब कुछ मैं ही हूं। उस आत्मतत्त्वकी श्रद्धा करो, दृष्टि लगाओ तो ये सब विपदायें नष्ट हो जावेंगी। जन्म जरा मरणके चक्कर मिट जावेंगे अन्यथा दुनियामें देखे जाने वाले ये दुःख सहन करने होंगे। सोचो तो एकेन्द्रिय जीवमें पृथ्वी भी हम ही बने, दूसरोंके द्वारा तोड़े गये, फोड़े गये, खोदे गये, गीला किया गया, क्या कष्ट नहीं पाये। हम ही जल भी बने। उसके दुःख देखो—गर्म किया गया, ठण्डा किया गया, कीचड़में मिलाया गया, बहाये गये, दुःख हमने ही तो सहन किये। अग्नि बनकर उसके दुःख देखो—वह जलाया गया, पीटा गया आदि यह सब दुःख भी हमने ही सहन किये। हवा बनकर भी उसके दुःख टायरमें बन्द किया गया, पंखेसे हिलाया गया आदि भी दुःख हमने ही सहन किये तथा कीड़े मकोड़ोंमें रहकर भी हमने ही दुःख सहन किये।

आजकल लोग जूतोंमें नाल लगवाते हैं, उनमें कितने कीड़े-मकोड़े नहीं मरते, कुचल दिये जाते है। वनस्पतिके दुःख कुल्हाड़ीसे काटने आदिक भी हमने ही सहन किये। तिर्यंचके दुःखोंको भी; नरकके, देवोंके दुःखोंको भी हमने ही अपने अज्ञानके द्वारा सहन किया। कोई तो चूहेको बन्द कर देते हैं फिर बिल्लीको सामने खड़ी कर खोलते हैं वह उसको खा जाती है। हिंसक लोग रस्सीसे उसकी पूंछ बाँध लेते हैं और अग्निपर लटका देते हैं। वहीं तड़प-तड़पकर उसके प्राण निकल जाते हैं। भैया, ये दुःख भी तो हमने ही उन पर्यायोंको धारण कर सहन किए। मुर्गे, मच्छियोंका तो कहना ही क्या है? कितने-कितने दुःख सहन करने पड़ते हैं।

वे भी दुःख अज्ञानके कारण हमने ही सहे और यदि हम अब भी अपने विवेकमें न लगें तो फिर ये दुःख सहन करने पड़ेंगे और हितकी बात जानेंगे, करेंगे तो भी हमें ही आनंद होगा। कोई उसमें क्या कर देगा? हितमें लगना भी हमारे लगनेसे ही होगा। तब मैं ही तो स्वयंका गुरु हुआ। यदि अन्य गुरु हैं भी तो सूर्यकी तरह। अतः गुरुजनोंने जो हितका उपदेश किया अब मैं उसपर श्रद्धा कर चल सकूं तो चल लूं अन्य उसमें कोई क्या कर देगा? जो कुछ करूंगा मैं स्वयं ही करूंगा। इष्टवियोग या अनिष्टसंयोग होनेके कारण जब यह प्राणी बहुत दुःखी हो जाता है तो पड़ोसी आकर बहुत समझाते हैं, किन्तु वह चुप नहीं होगा। क्योंकि दूसरा उसमें परिणमन तो नहीं कर देता। अतः चेतनसे अतिरिक्त मेरा कुछ नहीं। जिस शरीरकी रग-रगमें हम समाये हुए हैं, जब वही मुझसे भिन्न है, वही मेरे स्वरूपसे अलग है, तब बाह्य पदार्थोंमें कैसे कहा जावे कि ये मेरे हैं? चेतनको छोड़कर अन्य मेरा कुछ नहीं। जो ज्ञानीजन ऐसा मानते हैं वे अपने आपमें प्रकाश पाते हैं, तुष्ट होते हैं। हम तो समस्त

पदार्थोंके साक्षी हैं, उन पदार्थोंसे भिन्न हैं सो उन्हें अंगीकार न करें। गवाह उसे कहते हैं जो जैसी बात हो उसको उसी रूपमें कह देवे, गवाह घटनाका होता है, हमारा तुम्हारा नहीं। यह पदार्थ ऐसा है, इसका परिणमन भी ऐसा ही है, बस यह जानता रहे। ज्ञाता तो रहे किन्तु यह विचारे कि मेरे चैतन्य भावको छोड़कर मेरा जगतमें अन्य कोई नहीं। अतः बाह्य-पदार्थोंकी उपेक्षा कर अपनेमें अपने लिए अपने द्वारा अपने आप सुखी होऊँ। सत्य जो है उसे मान लो, उसीकी उपासना करो। प्रत्येक पदार्थका अपना-अपना जैसा सहज स्वभाव है वही सत्य है। जिस मकानमें रहते हैं, क्या यह सत्य है कि वह अपना है ? नहीं, यह असत्य है। सत्य होता तो सदा रहता। ये सब असत्य है, शरीर तक तो असत्य है। कर्मोदयसे मोहमें ऐसा भाव बन जाता वास्तवमें ऐसा है नहीं। मेरा तो चेतनाको छोड़कर अन्य कुछ नहीं। क्रोधादिक भाव सब नाशवान हैं, अन्तरंगके दर्शन हो जानेसे वे सब नष्ट हो जावेंगे क्षणभरमें ।

एक पुरुष बहुत व्यसनी था। उसकी स्त्री बहुत भली थी। उसने दुर्व्यसनोंका त्याग करनेके लिए बहुत समझाया, किन्तु वह न माना। एक दिन उसकी स्त्रीने उसे एक बटरिया दी और कहा कि ये हम सबके देवता हैं। तुम एक बात मानो इसकी पूजा कर लिया करो और चौबीस घंटोंके लिए ऐब छोड़ दिया करो। उसके पतिने स्वीकार कर लिया। प्रतिदिन चावल चढ़ावे, घंटी बजावे, नमस्कार करे और २४ घंटोंको पाप छोड़ देवे। इस प्रकार जब कुछ दिन बीत गये तो एक दिन उसने देखा कि बटरियाके ऊपर चढ़कर चूहा चावल खा रहा है। उसने सोचा कि इस बटरियाकी पूजा करना बेकार है, क्योंकि इससे बड़ा तो यह चूहा ही है। अब वह प्रतिदिन चूहेपर चावल चढ़ावे, घंटी बजावे, नमस्कार करे और २४ घण्टोंका पाप छोड देवें। कुछ दिन बाद उसके ऊपर बिल्ली झपटी। उसने सोचा कि इससे बड़ी तो बिल्ली है। अतः वह अब बिल्लीकी पूजा करने लगा। प्रतिदिन चावल चढ़ावे, नमस्कार करे, घटी बजावे और २४ घंटोंके लिए पाप त्याग देवे। कुछ दिन बाद उसपर कुत्ता झपटा। अब वह कुत्तेपर देवताके भाव रख उसे पूजने लगा और सब कार्य उसी प्रकार किये। एक बार वह कुत्ता रसोईमें घुस गया, औरतने उसको डंडेसे मार दिया। उसने सोचा कि इससे बड़ी तो मेरी औरत ही है, मैं व्यर्थ ही भटक रहा हूं। अतः अब वह औरतकी ही पूजा करने लगा। प्रतिदिन चावल चढ़ावे, घंटी बजावे, नमस्कार करे और २४ घंटेके लिए पाप छोड़ देवे। जब कुछ दिन इस प्रकार बीत गये तो एक दिन वह खाना खा रहा था। नमक अधिक हो गया था खानेमें। अतः वह अपनी पत्नीसे बोला कि आज नमक कैसे अधिक हो गया ? औरत भी पूजाके कारण अब बढ़ गयी थी, अतः उत्तर भी जोर शोरसे ही दिया

कि हाथ ही तो है अन्दाजमें अधिक ढल गया होगा। उससे यह सहन न हुआ और अपनी ओरतको पीट दिया। फिर उसने सोचा कि यह तो मैं ही बड़ा हूं, बेकारमें आज तक इन सबको पूजा करता रहा। तात्पर्य यह कि उसको छोड़, इसको ग्रहण कर। इस प्रकार करते करत स्वयंपर आ गया। अतः सब लघु हैं तुम्हारे लिए। तुम्हीं महान् हो, अन्य काई नहीं। अतः अब पर-दृष्टि छोड़कर मैं अपनी आत्मामें रमकर अपनेमें अपने लिए अपने द्वारा अपने आप सुखी होऊं।

निर्वित्तश्चेतनावित्तो निष्कलश्चेतनाकलः।
चेतनान्यन्न मे किञ्चित्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥१-१३॥

मैं धनरहित हूं, वित्तरहित हूं। धनका दम लोकमें अधिक माना जाता है। प्राण, दम, शक्ति जैसे अर्थमें वित्तका प्रयोग होता है। कुछ पढ़ लिखे तो धनको ग्यारहवां प्राण कहते हैं। वैसे दस प्राण ही होते हैं, किन्तु धनको भी प्राण मान लिया है। बताइये कितना मोह है इस धनके प्रति प्राणीको ? दुनियादारीमें, व्यवहारमें आज धनका बहुत बड़ा महत्त्व है, किन्तु दूसरी दृष्टिसे यदि सोचोगे तो पाओगे कि यही पापका पक्का कारण भी बनता है। अतः वास्तवमें तो चेतना ही धन है।

चेतना है धन जिसका ऐसा मैं हूं। मैं शरीररहित हूं, न मैं वित्तरूप हूं, न शरीर-रूप। वित्त तो प्रकट ही अचेतन वस्तु है। शरीरसे चेतनाका सम्बन्ध भले ही हो, किन्तु वह भी अचेतन ही है। मेरा धन, शक्ति, बल सब कुछ चेतना ही है, इससे अन्य कुछ नहीं है। अतः मैं शरीररहित हूं, कलकल रहित हूं, झगड़ारहित हूं, उपद्रवरहित हूं। कल कहते हैं शरीरको। जैसे कहते हैं कि क्या कलकल लगा रखी है अर्थात् क्या शरीर शरीर लगा रखा है। यह सब जो नृत्य हो रहा है, सब कलकलका ही तो है। अतः मैं कलकलरहित हूं। यदि मेरा कल है ही तो वह चेतना है। मेरा स्वरूप सिद्धोंके समान है। वे शरीररहित हैं, अतः मैं भी शरीररहित हूं। निज तत्त्वपर दृष्टि की जावे तो ऐसा बोध होगा, और यदि कायपर दृष्टि दी जावे (क्योंकि अस्तिकाय आदिमें भी काय शब्द आया है, तो मेरा शरीर ज्ञान है) मेरा सर्वस्व ही ज्ञान है। चेतना मेरा लक्षण है, और यदि अन्य प्रकारसे अपने ऊपर दृष्टि दो कि मैं कितना लम्बा चौड़ा हूं, तो ऐसी दृष्टि करनेसे आत्मानुभव नहीं हो सकता। क्या क्रोधी, मानीका परिणमन देखकर आत्माका लक्षण समझा जा सकता है ? नहीं। भैया, आत्माका लक्षण तो चैतन्यस्वरूप है—चेतना। अतः आत्माका शरीर है तो ज्ञान है। ज्ञानसे ही आत्माकी समझ पड़ती है और ज्ञानरूपमें ही आत्माको समझा जावे। तो समझमें आ जावे। अतः जो सिद्ध है वही मैं हूं।

वास्तविकता तो यही है कि मनुष्य कषाय बिना आत्मानुभवका पात्र हो सकता है। सम्यग्दृष्टि ही क्यों न हो वह भी तीव्र कषायके रहनेसे आत्मानुभवका पात्र नहीं हो सकता। यदि विपदा कुछ है तो इस कषायकी ही विपदा है। मेरा तो चेतनाके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। आज संसारमें इस शरीर व धन दोनोंका ही बहुत बड़ा महत्त्व है। बहुतसे ऐसे प्राणी होते हैं चाहे कितना ही धन हो पासमें, दान करनेके भाव भी हों, किन्तु अपने हाथसे खर्च नहीं कर सकते। स्वयं मुंहसे भी स्पष्ट कह देते हैं कि मुझसे खर्च नहीं हो सकता। प्रकृति ही कुछ ऐसी है। भले ही लड़केसे दिला देगा, किन्तु अपने हाथसे नहीं दे सकता। कुछ ऐसी वासना हो जाती है कि नहीं दिया जा सकता। यह हुई धनकी तृष्णा, लालसा और शरीरकी तृष्णा है—मैं बहुत अच्छा हूं, मेरा आकार ऐसा है आदि संस्कार बनाये रखना। जैसे धनके लोभमें अपने हाथसे लाभ नहीं होता, उसी प्रकार शरीर रहते हुए भी शरीरका कार्य नही किया सकता। ये दोनों ही मोह प्रबल है। अतः मेरा स्वरूप न तो धन है और न शरीर है।

मेरा सब कुछ चेतना ही है। जिसे आत्मदृष्टि है उसका भाव होता है कि सब धनादि मैं परोपकारमें ही लगा दूंगा। यह मन भी विनाशीक है, अतः यही सोचे कि सब जीव सुखी होवें। अन्यथा दूसरोंके प्रति बुरे भाव रखनेसे अगले भवमें मनरहित जन्म होगा। वचन भी दूसरोंको कठोर बोलोगे या ऐसे बोलोगे जिससे दूसरोंको दुःख हो तो आगे वचन रहित जन्म लेना होगा। यदि इस तनका दुरुपयोग किया, परोपकारमें न लगाया तो निश्चय ही पृथ्वी वृक्षादि अगले भवमें बनना पड़ेगा। किन्तु ज्ञानी जन यही सोचते हैं कि मेरा तन, मन, धन लगकर जनता प्रसन्न हो तो मैं ये सब उनकी सेवामें लगा दूं। ये तो नष्ट होने वाले हैं अतः जितना भी तन, मन, धनसे दूसरोंका भला हो सके करना चाहिये। और यदि कहो कि मोह वालोंमें लगा रहे हैं तो उससे क्या लाभ ? अरे, सबको समान देखो और सबके प्रति अच्छी भावनाएं सोचो, परोपकार करनेके लिए दूसरोंका दुःख तन, मन, धन, वचनसे दूर करनेके लिए तत्पर रहो। ऐसा न हो कि कहीं इनको दुरुपयोग करनेसे अगले भवमें इनसे रहित अवस्थाको प्राप्त हों, और रही अपनोंमें उपकार करनेकी बात, वह तो तुम उनके मोहवश स्वयं बिना किसीके समझाए भी करोगे ही। ज्ञान तो जब है जब कि सबको एक दृष्टिसे देखते हुये तन, मन, धन, वचनसे जहाँ तक हो सके दूसरोंकी सेवा करो। एक पंडितको परोपकारके लिए कुछ रुपया जीवदयाके लिए एक बड़े फण्डके रूपमें दिया गया कि परोपकारमें लगा दो। बादमें जब हिसाब पूछा गया तो बोले कि मैंने परोपकारमें खर्च कर दिया है, अपने घर वालोंपर जो रुपया इसमें से खर्च किया, वह भी तो परोपकार

ही है।

सोचो भैया ! क्या पर वह उपकारमें शामिल है ? नहीं। आप देखेंगे तो पायेंगे कि घूमनेके समय पर भी ऐसे सज्जनोंसे वास्ता पड़ता रहता है कि भले हो उनके लिए आप या अन्य कोई परिचित नही, फिर भी नम्र वाणीसे बातचीत करेंगे। जहाँ अवसर होगा परोपकार किये बिना चूकेंगे नही। उत्तम सद्बुद्धि रखनेसे अध्यात्म मार्गपर चलनेका पात्र बनो। अतः मेरा तो इस संसारमें चेतना को छोड़कर अन्य कुछ नही। तब मैं अन्यपनेकी दृष्टि न लगाकर अर्थात् अन्यमें उपयोग न लगाकर अपनेमें अपने लिए अपने द्वारा अपने आप सुखी होऊं। इसको छोड़कर दुनियामें सुखका अन्य कोई उपाय नहीं। दुनियामें जो लेनदेनकी प्रथा है, उसमें देने वालेको साहु कहते हैं। तो वह कोई भी जब रुपया नहीं लेने आता है तो उनकी इस प्रकारकी कहावत हो गयी है कि साहु जो ठीक-ठीक बता दें आप देंगे या नहीं। "क्योंकि हाका मरे और नाका जीवे।" अर्थात् आपने हमारे मांगने पर हाँ कर दिया और समय पर न दिया तो हम बेमौत मारे जावेंगे। और यदि स्पष्टमें देनेसे इन्कार कर दिया तो कमसे कम अपना अन्य उपाय तो कर लेवेंगे, भरोसे तो न रहेंगे। इसी प्रकार दुनियाके पदार्थोंमे करोगे कि हाँ यह भी अच्छा, इसमें भी अच्छा यदि तब तो समझो कि मरे। और यदि इस प्रकार सोचोगे, नहीं, पुत्रमें भी सुख नहीं, पत्नीमें भी आनन्द नहीं, दुनियाके किसी पदार्थमें भी आनन्द नही। आनंद है तो केवल अपने चेतनास्वभावमें जो समझे वह अमर हो गया। आत्मबल ही एक ऐसा बल है जो कषी हुई अर्थात् कषायकी स्थितिमें भी अनाकुलताका ज्ञान करा देता है। अन्तर्ज्ञानसे उठी हुई अन्तःपरिणति पूर्ण होती है। जिनके अन्तर्मनमें श्रद्धा है वे बाहर भी वैसे ही दिखायी देते हैं, किन्तु मिथ्यात्वके कारण ही आज धर्मपर आक्षेप आता है।

धर्म तो सदा सुखका ही हेतु है। धर्मकी ओटमें जो अधर्म चलता है उससे लोक धर्म पर आक्षेप करते हैं। धर्म तो धर्म ही है। जैसे कि एक किसानके तीन बैल थे। दो को तो वह जानता था, एक बैल बँधा रहता था। जहाँ वह बंधता था उसके ऊपर एक अलमारी थी, जिसमें वह किसान अपना खाना रखता था। एक बन्दर प्रतिदिन आता, अलमारी खोलता, खाना खाता और जूठन आदि बैलके मुंहपर मल जाता था। किसानकी दृष्टि बैलपर ही रहे कि इसीने खाना खाया। यही मेरा सब खाना खा जाता है सो वह खूब उसको पीटे। १०-१५ दिन जब इसी प्रकार बीत गये तो पड़ोसिनने उस किसानको समझाया कि भाई इसे क्यों पीटता है ? यह किस प्रकार आलमारी खोल सकता है, अलमारी तो इससे ऊपर है, किन्तु वह किसान बोला कि मैं यह सब नही जानता। मुंह तो इसीका पुता हुआ है फिर

सन्देह कैसा ? उनके काफी समझानेपर छुपकर देखनेके लिए वह तैयार हो गया। प्रतिदिनकी तरह वह बन्दर आया, उसने अलमारी खोली, खाना खाया और झूठन बैलके मुंहपर पोत दी। उसी प्रकार वृषभ तो हुआ धर्म और बन्दर हुआ पाप। सो भैया! खोटी करतूत तो पाप करता है, अपयश धर्मका होता है। कितनी ही बड़ीसे बड़ी विपत्ति क्यों न हो, ज्ञानी तो यह विचारता है कि मैं तो चैतन्यस्वरूप हूं, फिर कहां है विपत्ति, कहां है दुःख ? इस विचारके बाद विपत्तियां दूर हो जाती हैं। ज्ञानी सम्पदा, विपदा, सुख दुःखको एक ही दृष्टि से देखता है। मैं भी ज्ञानस्वरूप हूं सो अपने चैतन्यस्वभावको पहिचानकर अपनेमें अपने लिए अपने आप अपने द्वारा सुखी होऊँ।

यह बात केवल शुद्ध निज चैतन्यस्वरूपकी दृष्टि द्वारा प्राप्त हो सकती हैं। एतदर्थ हम लोग अन्य सब बातोंकी असारताका निर्णय कर अब अपनी ओर आयें। भैया! यदि तुम इसका निर्णय करना चाहते हो तो यह तो निश्चय है कि ये धन, मित्र, पुत्र, पत्नी आदि मेरी शान्तिके कारण नहीं है। इतना ज्ञान दृढ़तापूर्वक करके इन सबकी उपेक्षा करो और यही सोचो कि ये बाह्यपदार्थ मेरे ज्ञानमें न आवें, मेरा ज्ञान निर्मल रहे। अतः उसको निर्मल रखनेके लिये अपने अन्दर इन बाह्यपदार्थोंकी कल्पना न करो। उधर अपना उपयोग लगने ही मत दो। बाह्यपदार्थोंमें लगकर सुखका कोई रास्ता नहीं मिलेगा, विपदा ही विपदायें मिलेंगी। बाह्यपदार्थोंमें जब तक राग दृष्टि रहेगी तब तक शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती और जहां इनकी उपेक्षा की, इनके प्रति मोह न रखा, इनमें उपयोग न लगने दिया तो अशान्ति कहीं रह ही नहीं सकती। अतः भैया! यदि सुखी होना चाहते हो, वास्तविक आनन्द प्राप्त करना चाहते हो तो इन बाह्यपदार्थोंकी बुद्धि न रखो। संसारी जीवोंमें ये छंटनी मत करो कि ये मेरा है, यह पराया है सबपर समान भाव रखो। सबके प्रति यही भावना भावो कि सब जीव सुखी होवें, सबके प्रति क्षमा भाव रखो। तन, मन, धन, वचनसे जितना परोपकार हो सके, इनका उपयोग करो। अपने आश्रित व्यक्तियोंमें ही नहीं, जो अपरिचित हैं उनके प्रति भी मधुर वाणी बोलो, नम्रतासे पेश आवो, उनके भलेके ही सोचो, अपने परिश्रम करनेसे किसीको फायदा पहुंच जावे तो सामर्थ्यके अनुसार उसका उपकार करो। आत्मा तो अमर है। शरीरसे भैया तुमने कुछ परिश्रम भी कर यदि दूसरेकी सेवा शुश्रूषा कर भी दी तो तुम्हारा क्या घट जावेगा ? तुम तो शाश्वत हो, धन देकर किसीकी सहायता हो तो चूको मत। आगे भी इससे अधिक जिस प्रकार पूर्वभवके पुण्यकर्मसे इस जन्ममें प्राप्त किया, प्राप्त किया जा सकता है। फिर भी इसकी चाह नहीं करो, ऐसा हो जाता है सो होने दो। हां धनका दुरुपयोग करना बुरा है या तो सदुपयोग करो या सब त्यागकर अपनी उपासनामें लग जाओ।

दुरुपयोग करनेसे इस लोकमें भी विपदा है और आगे भी दुर्गति ही है। यदि सत्य उपाय बन गया, तो उसे परम शान्ति प्राप्त होगी। परम विश्राम होगा एवं अपने सहजस्वभावके दर्शन भी कभी हो जावेंगे। इसका आनन्द सब सुखोंकी अपेक्षा विलक्षण होगा। तब वह उस स्थितिको छोड़ना नही चाहेगा, और यही सोचेगा कि मैं इसे किस प्रकार बनाये रखूं ? यह तो वही स्थिति है जिसे मैं आज तक खोजता रहा, जिसके दर्शन न कर नाना गतियोंमें घूमता रहा, किन्तु अब मैं अपने उद्देश्यको पा गया हूं, इसीमें मेरा कल्याण है। ऐसा करने पर पाप स्वयं ही छूट जावेंगे, और पापोंके छूटनेका नाम ही तो धर्म है। अतः भैया ! अपने आपको पहिचानो फिर कोई सता नहीं सकता। समझ लो फिर बेड़ा पार हो गया। अपने आचरणोंको ठीक रखनेसे ही मुक्तिके मार्गपर जीव लग सकता है। अत: व्यसनोंका त्यागकर अपनी आत्माके स्वयंसिद्ध ज्ञानस्वरूपका ध्यान कर अपने कल्याणमें लगो। यही तो अपना धर्म है।

निष्कीतिश्चेतनाकीर्ति—निष्कृतिश्चेतनाकृति: ।
चेतनान्यन्न मे किञ्चित्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥१–१४॥

यह जीव कीर्ति चाहता है। प्रत्येक संसारी जीव चाहे वह किसी भी दशामें क्यों न हो किन्तु वह यशकी कामना मनमें रखता है कि सब मुझे अच्छा कहें। भैया ! यदि शरीरकी कीर्ति चाहते हो तो यह तो कठोर सत्य है कि यह साथ नही देगा, यह नष्ट होने वाली चीज है, तब इसकी क्या कीर्ति ? जो वस्तु स्वयं ही नष्ट होने वाली है उसकी कीर्ति कैसी ? और जब आत्माको पहिचाना ही नहीं तब आत्माकी कैसी कीर्ति ? अतः मैं चैतन्यस्वरूप हूं। मैं कीर्तिरहित हूं। मेरा स्वरूप कीर्तिरहित है। मेरी कीर्ति यदि है तो वह चेतना ही है। आत्माके स्वभावका कार्य हाथ पैर चलाना आदि नही। इसका काम तो जानना, देखना, श्रद्धान करना है। क्योंकि यह तो मात्र चैतन्यस्वरूप है। यह सब जो क्रिया हो रही है वह सब पुद्गलकी हो रही है। यह पैसा, धन, वैभव, ऐश्वर्य, पोजीशन, पिता, पुत्र, स्त्री, बन्धु, बान्धवादि का जो मोह लगा हुआ है हम इसीमें पिले जा रहे हैं, आत्मचिन्तन नहीं करते। हम जिनको पराया समझते हैं, जिनसे हमारा परिचय नही, जो अपरिचित है, उनसे हमें क्लेश नही पहुंचता किन्तु उन मोहियोसे, जिनसे हम मोह बढ़ा रहे हैं, जिनको हम अपना हितैषी मान रहे हैं उनके कारण ही क्लेश होता है। यदि गैर आदमी हमारी आज्ञा नहीं मानता, यदि हमें उल्टा-सीधा कह देता है तो हमें क्लेश नहीं पहुंचता किन्तु जिनसे हम मोह बढ़ाये हुए हैं, वे यदि आज्ञा न मानें या विपरीत बात कह देवें तो क्लेश पहुंचता है। फिर भी मोहसे उन्हें छातीसे लगाये फिरता है। क्या किया जा सकता है ? जब मैं इतना भी

नहीं समझता कि जिससे तू मोह कर रहा है वही तुझे अनिष्ट पहुंचाने वाला है। सबके प्रति समताभाव धारण कर सुखी होनेकी भावना न करके यों ही दुःखको सुख मानकर भटक रहा है। सुखका उपाय यदि है तो वह है ज्ञान व वैराग्य। सच्चा ज्ञान व परपदार्थोंमें उपेक्षाभाव ही सुख प्राप्त करा सकता है, अन्य नहीं और सब ये बाह्यपदार्थ तो संसार-समुद्र में भटकाने वाले ही हैं, पार लगाने वाले नहीं। इस जीवका परपदार्थोंमें कुछ भी शरण नहीं है। यदि शरण है तो वह अपना ज्ञान व परपदार्थोंसे उदासीनता ही है। जितना ज्ञानका विकास करोगे उतना ही सुखी होवोगे। परपदार्थोंमें मोहका नाम ही विपदा है। जिसने अपने आपको पा लिया वही अन्तरात्मा है और वही सुखी है।

सुखका उपाय सत्संग, स्वाध्याय, भगवद्भक्ति है। सबको समान दृष्टिसे देखता हुआ उन्हें अपनेसे गैर समझो। हम जो भी कर रहे हैं व जिनसे मोह है उनके प्रति कर रहे हैं, किन्तु सब कुछ समर्पण करना चाहिये ज्ञान व वैराग्यके हेतु। अन्यायसे, अनीतिसे, झूठ बोल-कर, तात्पर्य यह कि जिस उपायसे हम आजीविका कमा रहे हैं, उनके लिए जो हमारे कुटुम्ब के हैं, जिनको हम अपना समझते हैं, किन्तु वे ही विपदा व पतनके कारण बनते हैं। बा-ल्मीकिजी का काम यही था कि वे आते जाते मुसाफिरोंको लूटते थे, उनका सब माल छीन लेते थे। एक बार एक साधु जा रहा था उसी मार्गसे। बाल्मीकिजी ने ललकार कर कहा कि हे मुसाफिर! जो भी तेरे पास है वह सब निकालकर यहां रख दे, नहीं तो मैं तुझे मार डालूंगा। साधु जी के पास जो भी लोटा कम्बल आदि था, सब देकर बोले कि भैया! इनको या तो कहीं रख लो या मुझपर विश्वास कर एक काम करो कि अपने घर यह पूछकर आओ कि जो मैं यह पापकी कमाई कर रहा हूं, उसमें तुम भी साथ दोगे या नहीं? पाप तुम भी बांट लोगे? बाल्मीकिजी अपने घर जाकर अपने मां, बाप, भाई, बहिन, पत्नी आदि सबसे पूछते हैं कि मैं जो यह पापकी कमाई रात-दिन परिश्रमपूर्वक कर रहा हूं, इसमें तुम लोग भी साथ दोगे या नहीं? भैया! पापका नाम ही बुरा होता है, कौन उसमें हिस्सा बांटनेके लिए तैयार होगा? सबसे इन्कारीकी बात सुनकर वापिस आया वह, और उसी दिनसे ज्ञान की साधनामें लग गया। वैराग्य प्राप्त हो गया, यही जानकर कि मैं जिनके लिये यह कृत्य कर रहा हूं वे कोई साथ नहीं देंगे, हिस्सा नहीं बांटेंगे, तब साधुजी को सब वापिस कर बाल्मीकि जी आत्मप्रगति करनेके हेतु साधु बन गये। अब बताइये कौन है अपना इस आत्मा के सिवाय, चैतन्यस्वरूपके अतिरिक्त? अतः हे भाइयो, सबको चैतन्यस्वरूप देखो व सोचो कि सब जीव दुनियाके सुखी होवें, कोई दुखी न रहे और मुझसे जो भी तन, मन, धन, वचन द्वारा उपकार हो सके उसे करनेमें मैं न चूकूं। इसपर बहुत विचारो कि हमारा किसी

के प्रति कभी दुर्व्यवहार न हो। यह ध्यान रखो कि जो हमको प्रतिकूल प्रतीत होगा, हमारी प्रकृतिसे विरुद्ध हमको होगा उससे दूसरोंको भी तो कष्ट पहुंच सकता है, सो जिन बातोंसे हमें अच्छा प्रतीत नहीं होता तो दूसरोंके प्रति वह दुर्व्यवहार न करें।

हमारे शरीरमें यदि कांटा लग जावे या सुई चुभ जावे तो कितना दुःख पहुंचता है? फिर आजकल जो ये मांस, मच्छीको खाद्य बनाया जा रहा है, भोजन बनाया जा रहा है, उसमें तो मुर्गा, बकरा आदिको काटा जाता है, उनको कितना दुःख होता है, उनको कितनी छटपट लगती होगी, और वही कुछ लोगोंकी स्वादिष्ट सामग्री बनती है, उनकी तो जरासी रसनाकी तृप्ति और उनका प्राणान्त और वह भी वेदनापूर्वक। हाय रे मानव! कितना पतन हो गया है, क्यों भूल रहा है कि तेरा यह कर्तव्य नहीं, इसमें सुख नहीं, विपदा है, जन्म मरणके चक्कर हैं। बड़े अफसोसकी बात है कि यदि मानवजीवन पाकर भी तपस्या न की, तो अवश्य ही हम बुरे मार्गपर हैं। कितनी दुर्लभतासे मिला है ये मानव जीवन और इसको यों ही गंवा दिया तो पछताना पड़ेगा। मनुष्य, देव, तिर्यञ्च और नरक—इन चारों गतियों में यदि उत्तम गति है तो वह है मानवपर्याय, मानवगति और इसे पाकर भी यों ही गंवा दोगे तो समझो कि तुमने अप्राप्य वस्तुको पाकर मूर्खतावश उसकी कीमत न समझी। अतः भैया! इसकी कीमत समझो और समझ बूझकर, दृढ़ विश्वास कर आत्मकल्याणके मार्गपर लगो। मन, वचन, तन और धनसे जितना हो सके परोपकार करो, नहीं तो क्या है, जैसे जीव जीते हैं वैसे ही हमारा भी जीवन, वैसे ही मरण, इनके बीचका जीना चलता रहेगा। फिर चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण। अतः कीर्ति व कृतिको असार जानकर पारमार्थिक ज्ञानस्वरूपमें उपयोग देकर सत्य कीर्ति व कृति प्राप्त करो।

जीविताशा प्रतिष्ठाशा विषयाशा जनैषणा।
अभिमुंग्धो विनष्टोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-१५॥

ज्ञानवान् पदार्थ शरीरसे जुदा है। मैं तो आनन्दस्वरूप शान्तिस्वरूप हूं और इसीकी अभिलाषामें लगा हुआ भी हूं। केवल यही लक्ष्य है मेरा कि मैं शान्तिवान् बनूं, अन्यकी अपेक्षा नहीं। अमुक कुलका हूं, अमुक जातिका हूं, अमुक धर्मका हूं आदि बातोंसे प्रयोजन नहीं। मैं जो कुछ भी हूं, शान्तिकी खोज करने वाला हूं। ऐसी प्रत्येक प्राणी की इच्छा है, किन्तु वह ज्ञान न होनेके कारण व्यवहारसे बाह्यपदार्थोंमें आकृष्ट हो, विषय-वासनामें आकृष्ट हो, उसीमें शान्तिकी कामना करता है। लोगोंको आकृष्ट करनेके लिए बाह्य-पदार्थोंमें ही उपयोग लगाये रहता है किन्तु शान्ति प्राप्त नहीं होती। मैं तो शरीरसे भिन्न निराला ज्ञानपुञ्ज हूं, शान्तिस्वरूप हूं, बस मुझे यही चाहिये, अन्य कुछ नहीं। बाह्यपदार्थों

से जब उपेक्षा होगी तब समझो कि हम अपनी अमूल्य निधिको प्राप्त करनेके पात्र हैं। जिस पदार्थका जो स्वभाव है उस स्वभावको ही धर्म कहते हैं। अपनेको धर्मरूप मानना सो धर्म को ही पाना है। आत्माका स्वभाव सो आत्माका धर्म। अपने स्वरूपमें ही उसे मानना, सो धर्मका पालन है।

धर्मका पालन बाह्यक्रियाओंसे न होकर ज्ञानभावनासे होगा। अन्य कोई उपाय नहीं धर्मके पालनका। धर्मपालन अपनेसे ही किया जाता है। तन, मन, धन, वचनके सदुपयोगसे जितना भी हो सके स्व-परोपकार करे। जो धर्म करने वाली आत्मा है वह शरीरमें ही तो है। ज्ञानी जन तन, मन, धन, वचनसे जैसे भी हो सके स्वोपकार व परोपकारमें ही लगा रहता है तथा सुखी भी वही है। इनके सदुपयोगमें ज्ञानी जीव पथभ्रष्ट नहीं होता। और इनका सदुपयोग न करनेके ही कारण ये सब विवाद लगे हुए हैं। इनके कारण ही नाना भेद बन गये। परमार्थदृष्टिसे तो ज्ञानी जीव सबके प्रति उपेक्षा भाव रख धर्मके स्वरूपको समझते हैं, अन्तर्दृष्टि बनाकर धर्मका पालन करते हैं। यह स्वभाव अनादिसे अनन्त तक एक सा रहता है। शाश्वत जो सत् है वही द्रव्य कहलाता है। क्रोध, मान, माया, लोभ आदि मेरा स्वभाव नहीं। इनको धर्म मानना अधर्मका पालन है। मेरा स्वरूप तो चैतन्य है, इसका कार्य ज्ञाता, द्रष्टा रहना है। बाह्यपदार्थ व परभावका मैं कर्ता नहीं, यही दृष्टि धर्मका पालन है। दुर्लभ इस मानवजीवनको पाकर संयमज्ञान बढ़ाना जितना हो सके उतना ही कल्याण है। जीवन प्यारा है तो धर्मपालनसे जितना हो सके उतना भला कर लेना चाहिये। जीवन प्यारा है तो वह धर्मपालनके लिए है, खाने-पीनेके लिए नहीं। भैया! जीनेके लिए खावो। खानेके लिए जीना मानव जीवन नहीं। जीवन है धर्मपालनके लिए। सबसे बड़ा धर्मपालन तो यही है कि अविकार आत्मस्वरूपको देखो, सबपर समता भाव रखो, क्रोधादि कषाय मत करो। कषाय करना क्या इस जीवका स्वभाव है? नहीं। हम कहते हैं कि किसीसे कहा जाय कि तुम एक घंटे तक क्रोधी बनकर रहो तो क्या वह रह सकता है? कुछ समय पश्चात् ही वह अपने वास्तविक स्वरूपमें आना चाहेगा। जैसे जलको आगपर रख दो, गर्म होगा, बादमें वह अपने वास्तविक स्वरूपमें नीचे रखते ही आने लगेगा। इसी प्रकार मान भी। मान करना, घमण्ड करना क्या जीवका स्वभाव है? नहीं। न माया, न छल-कपट ही जीवका स्वभाव है और न लोभ ही जीवका स्वभाव है। इनके रहते हुए आत्मकल्याण नहीं हो सकता, अपने स्वरूपका दर्शन नहीं हो सकता। अपने स्वभावको पहिचानना है, अपने आपका दर्शन पाना है तो भैया! ज्ञानके स्वरूपको ही जानने लगो, समता रसका स्वाद लो, सब जीवोंपर समता भाव रखो। इन संसारी प्राणियोंमें छंटनी मत करो कि यह मेरा भाई

है, यह मेरा मित्र है, मेरी पत्नी है आदि। रागभाव ही विपदाका कारण है।

जितना भी यह नाटक हो रहा है सब उपाधिका है। कषायसे कषाय मिल गयी तो मित्रता और विपरीत अवस्थामें दुश्मनी। छोटे-छोटे बच्चोंको ही ले लो कि जिस खेलको एक बच्चा जानता है यदि उसीको दूसरा भी जानता है तो तुरन्त पक्के मित्र बन जावेंगे, अन्यथा दुश्मनी कर लेंगे, लड़ाई हो जावेगी। जो कुछ भी आज हो रहा है, किसीसे दुश्मनी, किसीसे मित्रता यह सब कषायोंका ही प्रताप है, उपाधिका ही नाटक है। अतः हे भाइयो! इस सबको असार जान अपने स्वरूपकी ओर आवो। उसीमें तुम्हारा हित होगा, और अन्य जो तू परपदार्थमें रागद्वेषकी बुद्धि कर रहा है वह सब विपदाको देने वाली है, संसारका भ्रमण कराने वाली है। आत्माका आनन्द इन बाह्यपदार्थोंमें नहीं। ये सब वैभव, धन, बड़े-महल, पोजीशन, आत्माका स्वभाव नहीं, किन्तु इनमें पड़कर अपनी पर्याय बिगाड़ना है, विकल्प करनेसे जग-जाल नहीं छूटेगा। देख लो, जितने भी बड़े-बड़े सेठ साहूकार होंगे वे भी प्रायः दुःखी होंगे क्योंकि तृष्णा जिनकी अधिक रहती है, वे दुःखी होते रहते हैं। ये सब वैभव जो तुम्हें आज प्राप्त है यह पुण्यकर्मकी कमाई है। पूर्वजन्ममें पुण्य किया था उसीका फल है जो आज प्राप्त है। और यदि इस जन्ममें यह सब पाकर परोपकारमें न लगाया, बाद मे, धनके बीत जानेपर, शरीर बल जानेपर पश्चात्ताप होगा, क्लेश होगा कि इनके रहते हुए मे दान न कर सका, दूसरोंका उपकार न कर सका। यदि धन दानमें देता तो कमसे कम उसका सदुपयोग तो हो जाता, किन्तु धनके चोरी हो जानेपर, आग लग जानेपर, सन्तान बुरे कर्मोंमें फंसी हुई होनेके कारण पछताता है कि मैं समय रहते न चेता। अतः ये सब तो नष्ट होने वाली चीजें है। इनका जितना भी परोपकारमें उपयोग करोगे उतना ही सुख उतना धनादि स्वयं प्राप्त होता जावेगा। कोई यदि ये सोचे कि परिश्रम करनेसे शरीर घटता है सो बात नहीं, बल्कि और शक्ति ही प्राप्त होती है। यही लोकधर्मका पालन है। ऐसा करनेपर उसे लौकिक संतोष प्राप्त होगा।

मुमुक्षुको विकल्पजालोंमें न पड़ना चाहिये। मेरी प्रतिष्ठा हो, मान हो आदि आशाएं ही विपदा हैं। इन सबमें उपेक्षाभाव रखो। विषयोंकी आशा करना भी निर्मूल है। ये यदि प्राप्त हो गये तो भी शान्ति न मिलेगी और यदि न मिले तो भी अशान्ति ही है। इन सबमें बरबादीके सिवाय हाथ कुछ न लगेगा। मैं यह सब कुछ नहीं, मैं तो ज्योतिपुञ्ज हूं—इस विचारके रहनेसे विपदा सब नष्ट हो जावेगी। जो अपनेको इस प्रकार मानता है वह सबको चैतन्यस्वभाव वाला ही जानता है, सबकी विनय करता है। इस प्रकार स्वयं भी सुखी होता है और दूसरोंको भी सुख पहुंचाता है। और इससे विपरीत दशामें तो दुःख ही दुःख है।

इन बाह्यपदार्थोंसे क्या सुख है ? यदि सुख मिलेगा तो वह ज्ञानसे ही मिलेगा। अतः सबपर समताभाव रखो और सब कुछ समता दृष्टिसे ही देखो। अपने आपको पहिचानना है, प्रभुके दर्शन करना है तो अपना आचार-विचार व ज्ञान निर्मल बनाये रहो, बाह्यपदार्थोंमें वैराग्य की भावना रखो। अन्यायका त्याग, संयमसे रहना, ये सारी बातें ज्ञान व चारित्रको निर्मल बनाती हैं। आशा कुछ रखो तो अपने निर्मल परिणामोंसे रखो। अन्य आशायें रखना केवल विपदामें गिरना है। यही प्रयत्न व यही उपयोग हो कि मैं सर्व आशाओंको त्यागकर नैराश्य की आशा कर अपनेमें सुखी होऊं।

भवेऽप्यस्मिन् मुहुर्नाना दुःखं प्राप्तं क्व रक्षकः।
को भूतः कस्य भूतोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-१६॥

मैंने इस भवमें भी तो नाना प्रकारके दुःख पाये, उनमें बताओ कौन रक्षक हुआ ? भैया, किसीसे रक्षाकी आशा मत करो, रक्षक कोई हो ही नहीं सकता, क्योंकि हमारी परिणति कोई अन्य बदल नहीं सकता। यदि बदलेगी भी तो स्वयं की स्वयंमें हुई परिणतिसे ही बदल सकती है। देखो जन्मसे ही विचार कर लो, जब बच्चा था तब अपनी इच्छा व्यक्त न कर सका था, तब भी आत्मा पूर्ण ही था किन्तु इन्द्रियोंके कारण बोल नहीं सका। बचपन में भी क्लेश हुआ है, कुछ इच्छाके अनुकूल प्राप्त न हुआ कि झट रो दिया। अब बताओ, कौन रक्षक हुआ इसका ? कुछ बड़ा हुआ तो स्कूल भेजा गया। खेलकूदमें मन लगता था उसे छुटाकर स्कूलमें भेजा तो वह भी उसके अनुकूल न हुआ, अतः दुःखी हुआ। तब भी इसका कोई रक्षक नहीं हुआ। पढ़नेमें रत भी हुआ, पढ़ने को चित्त भी लगाया तो अपनेसे अधिक दूसरेके नम्बर देखकर दुःखी हुआ। विफल होनेपर तो कई छात्र क्लेशको अधिकताके कारण आत्महत्या तक कर लेते हैं। जवानीमें शादीका दुःख, सगाई शादीके प्रति उत्सुकता, उसमें देरी होनेसे क्लेश पाया। कहींसे शादी न हुई तब दुःख पाया। यदि हुई तो ब्रह्मचर्यका खण्डन हुआ, फिर बच्चे हो गये तो ऐसा दबा कि फिर वह ज्ञानकी बात सोच नहीं सकता। कहीं लड़की उत्पन्न हो गयी तो फिर दुःखोंका कहना ही क्या है ? और जिसकी दो चार लड़कियां हो जायें तो वह तो शुरूसे आखिर तक उसी ऊहापोहसे लगा रहता है, कहां कहांकी चिन्ता करनी पड़ती है ? यदि लड़का हो गया तो दुःख कैसे ? कुपुत्र हुआ तब तो दुःख है ही, सुपुत्र हो तब भी दुःख ही दुःख है क्योंकि उसके लिए यही चिन्ता करता रहता है कि इसके लिए ऐसा कुछ प्रबन्ध कर जाऊँ ताकि यह दुःखी न हो, उसके मोहमें दुःखी होता रहता है। केवल ज्ञानवान् ही दुःख नहीं मानता, वह सब परिस्थितियोंमें सुखी रहता है, क्योंकि उसमें सच्चा ज्ञान है, अतः अपने ज्ञानबलके कारण ही

आत्मा आनन्द पाता है। फिर यह भी तो सोचो कि मैं ही किसका रक्षक हुआ ? भैया ! यह सब भ्रम है। किसीका किसीसे प्रेम है तो दुःख और बैर है तो दुःख। अन्य पदार्थोंकी ओर उपयोग गया कि दुःख है और अपनी ओर गया अपने स्वरूपकी ओर ध्यान दिया तो सुख ही सुख है। सबसे बड़ी विपदा तो संकल्प विकल्प, अज्ञान, विषयवासना इनकी हैं। यदि किसीने कुछ कह दिया तो क्या हो गया, उसका उसमें परिणमन हुआ मुझे क्या ? किसकी ताकत है कि मुझे दुःखी कर दे और किसकी ताकत है कि मुझे सुखी कर दे ? खुद का ही परिणमन दुःख पहुंचाता है और खुदका ही परिणमन सुख पहुंचाता है। वे बिरले ही ज्ञानी जीव हुआ करते हैं जो समतापरिणमन रख सोचते हैं कि मेरा कौन और पराया कौन ? जिसे हम अपना मानते हैं वही तो दुःखका विपदाका कारण बनता है, अन्य पराये क्या बनेंगे, जब कि उनमें उपेक्षाभाव है। तो सबसे अधिक विपदा तो इनसे ही हैं, जिन्हें हम अपना मान-मानकर दुःखी हो रहे हैं।

वास्तवमें देखा जावे तो ये ही मेरी आत्माका स्वरूप न जानने देने वाले हैं, ये ही बाधक हैं। वे मेरे हैं नहीं, उन्हें मानना भ्रम है और यदि कुछ हैं तो दुःखके देने वाले हैं। उन्हें प्रेमसे देखो तो दुःख और विरोधसे देखो तो दुःख। सुख प्राप्त हो सकता है तो ज्ञान-बलसे ही हो सकता है। जहाँ ज्ञान नहीं वहाँ दुःख ही दुःख है। ज्ञानी तो ज्ञाता द्रष्टा है। ज्ञानबलसे जैसे-जैसे वस्तुका स्वतन्त्र स्वरूप समाता जाता है वैसे-वैसे ही विषयोंसे राग हटता जाता है। अतः सुखके लिए जो अनेक प्रयत्न करते हैं यदि हम उनकी अपेक्षा यह प्रयत्न करें कि जो वस्तुका स्वरूप है वह हमारी दृष्टिमें अधिकसे अधिक आवे तो अधिक सुख अथवा शुद्ध आनन्द मिलेगा। हम स्वयं ज्ञानवान् हैं, पूर्ण हैं। कहाँ तो मेरा चैतन्यस्वरूप और कहाँ विषयवासनाओंमें फंसा हुआ मैं। जैसे गीदड़ोंमें फंसा हुआ शेर अपनेको गीदड़ मानता है किन्तु उसे यदि यह ज्ञान हो जावे कि मैं शेर हूं तो फिर देखो। वही दशा मेरी भी है। मेरा तो स्वरूप भगवान् जैसा है। भगवानके दर्शन करनेका यही तो प्रयोजन है और है क्या ? यदि इच्छा रखकर दर्शन किये कि भगवान् हमें सुख दुःख देने वाले है, इनकी पूजा करें तो क्या सुख दे देवेंगे। तो इन परिणामोंमें निर्मलता कहाँ, ये तो मिथ्यात्व हैं, अज्ञान हैं। निर्मलता तो वहाँ है जहाँ आत्माका सच्चिदानन्द स्वरूप सोचा जा रहा है। मेरा स्व-रूप तो केवल ज्योतिपुंज है, चैतन्यमात्र है, ऐसी उपासना कर जो यह स्वाब लाता है कि मेरा भी वही स्वरूप है जो तुम्हारा है, वह परमात्मतत्त्वका भक्त है, परमात्मस्वरूपका दर्शक है। क्योंकि द्रव्यत्व वही है किन्तु व्यक्त नहीं है। जैसे दो बर्तन नये लिये, दोनों एक जैसे हैं,

उनमेंसे एक चूल्हे पर चढ़ा दिया तो वह काला हो गया। जो उनमें भेद आ गया बस वही भेद प्रभुमें और मुझमें है। स्वभाव तो एक ही है किन्तु मुझमें तो कलंक लगा हुआ है और प्रभु उसी प्रकार हैं। हम परपदार्थोंमें लगे हुए हैं और वे इन सबसे उपेक्षाभाव रखते हैं। जानते सब कुछ हैं किन्तु जानते हुए भी उपेक्षा भाव रखते हैं। किसीके मर जाने पर यह प्राणी करुण विलाप करता है और कहता है कि हाय, मैं तो मर गया, मेरा तो घर ही उजड़ गया, मेरा दुनियामें कोई न रहा। हे आत्मन् तेरा स्वरूप तो अरहन्त सिद्धों वाला है। सोचो। कहां तो यह महत्ता और कहां ये विचार कि मैं लुट गया। हे भैया! तेरा लुट क्या गया? तेरा स्वभाव तो तेरे अन्दर है। जो कुछ है वह स्वयंमें है, अन्तर्दृष्टिसे मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिको एकाग्र करके देख तो सही। किसी कामको करेंगे तो वह होगा और यदि बात ही करते रहेंगे तो क्या वह होगा? घरमें यदि कूड़ा इकट्ठा हो जावे तो क्या वह बातें बनानेसे दूर हो जावेगा? वह कार्य तो खुदके श्रम करनेसे ही होगा। अतः हे आत्मन्, तेरे अन्दर आनन्द तो पूरा भरा हुआ है, आनन्दसे लबालब है, किन्तु अन्तर्दृष्टिसे उपयोग करे तभी तो पानकर सकेगा। ऐसा भाव जगावे तो उसका बेडा पार है अन्यथा भटकते रहना होगा इन्हीं चौरासी लाख योनियोंमें। मैंने इसी भवमें नाना दुःख सहन किये, बताओ कौन हुआ मेरा रक्षक और किसका मैं रक्षक हुआ? मैं तो सबसे भिन्न चैतन्यस्वरूपमात्र हूं। इसका जितना भी दृढ़ विश्वास होगा, दृढ़ श्रद्धान होगा उतना ही सुख पावेगा यह जीव। सब प्राणी अलग अलग हैं, अपने अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमें परिणमन करते हैं। एक जीवका दूसरे पदार्थोंसे अत्यन्ताभाव है। जो त्रिकालमें भी मेरा कुछ नहीं हो सकता उसमें अपनेपन की बुद्धि करना विपरीत मार्गमें लगना है। और जो उस विपरीत मार्गपर चलेगा वह विपरीत अवस्थाको प्राप्त होगा, दुःख उठायेगा। नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव, इन चारों गतियोंमें भ्रमण करते हुए दुःख सहन करेगा। मैं तो सब जीवोंसे, इस शरीरसे, रागद्वेषके भावोंसे इन सबसे न्यारा हूं, मैं तो चैतन्यशक्तिमात्र हूं। यह अन्यत्र कहां प्राप्त होगा? यह तो यहीं ही है। मेरा यह सर्वस्व है।

जो इसकी भावना करेगा सो सुखी होगा। अतः मैं इसे प्राप्त कर आत्माका कल्याण करता हुआ अपनेमें अपने लिए, अपने द्वारा अपने आप सुखी होऊं।

दुस्त्याज्या चेद्रतिस्त्यक्ता मृतत्यक्तकुटुम्बिनाम्।
स्वातन्त्र्यंस्यानि किं स्वस्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१—१७॥

जो आज नही है अर्थात् मर चुके हैं या अलग हो गये हैं, उनमें मेरा सबसे अधिक स्नेह था, मोह था, अब जब वही छूट गये तो इन छोटे छोटे विषयोंमें क्या राग करना?

जिस कुटुम्बमें जिससे भी सबसे अधिक मोह होता है फिर एक दो साल बीत जाने पर याद भी नहीं करते, तब कहाँ गया वह मोह ? फिर जब तूने सबसे अधिक मोहको ही, ममताको ही छोड़ दिया, फिर इन अन्य बाह्यपदार्थोंकी ओर क्यों आकृष्ट होता है ? आखिर छूटेंगे तो ये सब ही एक न एक दिन, तब क्यों इनमें राग बढ़ाकर दुखी होता जा रहा है। ऐसी प्रकृति क्यों बना रखी है कि एकसे छूटकर दूसरेमें मोह करने लगे। जैसे तुझे सबसे अधिक स्नेह जिस किसीमें था, उसकी मृत्यु हो गयी, तब कहाँ गये वे सुख विलास, कहाँ गया वह मोह, ममता ? जब तुझसे इतना बडा ही मोह बीत गया, छूट गया तब इन बाह्यपदार्थोंमें फिरसे क्यों राग–द्वेषकी वृद्धि करता है, छूट तो ये भी जावेंगे एक न एक दिन। फिर इनमें पड़कर क्यों स्वतन्त्रता खो रहे हो ? क्यों न इनके प्रति मोह ममताको, द्वेषकी बुद्धिको नष्ट करूं ? मरनेपर, किसीके बीत जानेपर सोचता है कि मेरा शरण कोई न रहा, मैं लुट गया हे प्राणी ! चेत और विचार कर तो देख तेरा क्या लुट गया, तेरी शरण है कौन ? तेरा सब कुछ तेरेमें ही है। तेरी शरण भी तू ही है। उपादान ज्ञान बिगड़ा हुआ है अतः एक बातके, एक पदार्थके बीतनेपर तू दूसरेके प्रति मोह करता है, व्यर्थमें स्वतन्त्रता खोता है, मामूली बातोंमें अपनी स्वाधीनता खोता है। अब अपना ज्ञान इतना निर्मल बनाओ ताकि बाह्यपदार्थोंमें रागबुद्धि हो न जावे। जब अपनी योग्यता ठीक नहीं है तब प्रत्येक स्थानपर दुःख ही प्राप्त होगा। अपनी आत्माका ध्यान करो और सुखी होओ। सबसे बड़ा सुख स्वतन्त्रता है। इसका यह मतलब नहीं कि उद्दण्ड हो जावो। दूसरोंके साथ उद्दण्डतासे पेश आवो। कर्मकी आधीनता न रहे उसे स्वतन्त्रता कहते हैं। व्यवहारमें भले ही स्वच्छन्द हो जाओ किन्तु कर्मोंका उदय होनेपर तो पराधीन ही है। अतः अपने स्वरूपको पहिचानो और परपदार्थोंसे स्नेह हटाओ, इसीका नाम स्वतन्त्रता है। अपने स्वभावका भान हो, सम्यक् दर्शन उत्पन्न हो, उसका नाम स्वतन्त्रता है। कितनी ही आपत्ति क्यों न आवें तो भी ज्ञाता द्रष्टा रहो, ऐसी सद्बुद्धि अन्तरंगमें आवे तो उसका नाम सच्ची आजादी है।

जब जिससे तीव्र मोह था उससे ही मोह छूट गया, तब इन छोटी छोटी बातोंमें क्यों राग करते हो ? जैसे एक सेठका एक व्यक्तिपर एक लाख रुपया चाहिये था। वह हो गया गरीब, तो अन्य व्यक्तियोंने सेठजीसे कहा कि बेचारेकी वह दशा न रही अतः अब केवल ५००) ही ले लो, ९९५००) छोड़ दो। तो सेठजी ने सोचा कि जब सभी छोड़ दिया तब ५००) के लिये क्यों लेनेका नाम करना ? इसी प्रकार सोचना चाहिये कि जब हमें जिससे कुटुम्बमें सबसे अत्यधिक राग मोह था वही बीत गया तब इन थोड़ी थोड़ी बातोंमें क्या राग करना, क्यों ममता करनी ? मोही जन इष्टके बीत जाने पर बहुत अधिक शोक करते हैं—

हाय मैं लुट गया, मैं मर गया। अरे, तेरा क्या लुट गया, तेरी आत्मा तो तुझमें है, उसका भजन कर। यदि एकाकी जीवन मिला तो उसमें खेद क्यों? अब तो बल्कि और खुशी होना चाहिये कि भगवान्का ध्यान करनेकी योग्यता तो आ गयी, मेरे भाव अब निर्मल बनेंगे, ऐसा विचार करना चाहिये उस परिस्थितिके गो, न कि दुःख करना चाहिये। रामचन्द्र जी को सबसे अधिक मोह लक्ष्मणसे था। ऐसा कि उसके मरनेपर भी उसे लिये-लिये फिरे और जब उससे ही उनका मोह छूट गया तब किसीसे मोह न रहा। फिर वे दिगम्बर निर्ग्रन्थ मुनि हो गये और मुक्त हो गये। अतः जब सबसे बड़ा मोह हो बीत गया फिर छोटी छोटी बातोंमें क्यों पड़ना? मोही जीवोंमें ऐसी आदत पड़ी है कि यदि बड़ा राग छूटा तो भी छोटेमें प्रवृत्ति करके राग बढ़ा लेता है। आचार्योंने कहा है कि रागी होगा तो कर्मोंसे बन्धेगा और वीतरागी होगा तो कर्मोंसे छूटेगा। कर्ममुक्त होना है तो राग छोड़ दो। जिन की हम पूजा करते हैं, दर्शन करते हैं, उन्होंने और किया क्या? अपनेको निर्मल बनाया, अपना ज्ञान निर्मल रखा, वीतरागी रहे; ज्ञान दर्शन शक्ति अनन्त प्रकट हुई, स्वच्छ हो गये, कर्म रहित हो गये, परम आनन्दको पाया, तब वे परमात्मा हो गये। अतः उनके दर्शन कर यही विचार पैदा करो कि जैसा तुमने किया है वैसा ही मैं भी करूं और वह होगा भेदविज्ञानसे। भेदविज्ञानके बलसे परपदार्थसे हटकर निज आत्मामें लगें। चैतन्यमात्र अपने आपको निरखा, यह उपाय किया, कर्मबन्ध टूटे, आत्मामें विकास हुआ। सब पदार्थोंको जानकर भी अपने आनन्दके रसमें लीन रहे। यह विचार कर दर्शन करना चाहिये। ऐसा नहीं कि मेरे बाल बच्चे सुखी रहें, इस भावसे दर्शन करें; इससे परतन्त्रता बढ़ती है।

अपने भावोंसे ही यह प्राणी पराधीन होता है और अपने भावोंसे ही स्वाधीन होता है। वैसे परमार्थ दृष्टिसे देखा जावे तो यह किसी के आधीन है नहीं किन्तु अज्ञानवश काल्पनिक अपने भाव बनाकर आधीन बनता है। यह आत्मा तो ज्ञान आनन्दका पुञ्ज है। न इसमें ज्ञान बाहरसे आता न आनन्द ही। वह तो स्वयं ज्ञानमूर्ति है। ऐसा अपनेको सोचे तो आनन्द प्राप्त हो। सब जगह घूम आओ, आखिरमें अपनेको ही बड़ा पाओगे। अपना ही सहज स्वभाव बड़ा मिलेगा। राग छोड़ दो तो उपद्रव रहित हो जाओगे अन्यथा क्लेश ही प्राप्त होगा। रागके कारण ही अन्तरमें ऐसा भावका वातावरण बनता कि मरण के बाद फिर भी शरीरको पाता है जो कि दुःखका मूल है। अब शरीरके भी रागको छोड़ कर अपने वास्तविक स्वरूपको पहिचानो, उसका ध्यान करो। मोह भी करो और ध्यानका आनन्द भी मिल जावे—यह दोनों बातें परस्पर विरोधी हैं। अतः राग त्याग कर अपने स्वरूपको पहिचानकर मैं अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊं।

देखो—वह रागभाव जो कि दुस्त्याज्य बन रहा है, क्या है? केवल कल्पनाका पुलावा है। वस्तुका विचार करो तो राग न तो आत्माकी चीज है, न कर्मोंकी चीज है और न विषयोंकी चीज है। फिर भी इस मायामें कैसा बानक बन रहा है कि विषयोंका तो आश्रय है, कर्मोदयका निमित्त है और आत्माका उस क्षणका वह एक परिणमन है। परमार्थ से देखो तो कुछ भी तथ्य नही है। ये विषय भी छूटेंगे, टलेंगे। जो परपदार्थ हैं इनका संयोग अललटप है, कोई कायदेसे या सिलसिलेसे या खातिरीसे नही है। वे कर्मोदय भी उसी क्षण मिट जाते है जिनका कि निमित्त पाकर ये रागादिभाव होते हैं, अगले क्षण अन्य कर्मोदय हो जाते हैं। इतनी विडम्बना रहती है जिसका परिणाम यह है कि बन्धन चलता रहता है। ये रागादि भाव भी एक क्षण होकर मिट जाते हैं। यह बात और है कि और और रागादिभाव निरन्तर होते चले जाते हैं। इन भावोमें तथ्य कुछ नहीं है। रागादिभाव असार हैं, दुःखरूप है। मिटते तो ये हैं ही, ज्ञानबलसे खुद मिटा दिया जाय तो आनन्दमय प्रभुके दर्शन भी होगे। इन रागादिभावोंके कारण ही स्वतन्त्रताका विनाश है। वास्तविक स्वतन्त्रताका विनाश होने पर भगवान्का दर्शन असंभव है, आत्मदर्शन असंभव है। सो अब रागादि भावोंसे भिन्न अपने ज्ञायकस्वरूपको लक्ष्यमें लेकर स्वतन्त्र होऊँ और स्वयं स्वयमें आनन्दमग्न होऊँ।

ज्ञात्वा रागफलं दुःखं जीवानां भ्रमतामिह।
रागं मुञ्चानि नो मुक्त्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-१८॥

जितने भी जीव घूम रहे हैं यह सब रागका फल है। इनको दुःख हो रहा ममताके कारण, मोहके कारण। ये आज तक भी क्लेश भोग रहे हैं। इन्होंने सुख प्राप्त नही किया। किसीको भी बिठाकर उसकी कहानी सुन लो, सब कुछ सुननेके बाद अन्तमें परिणाम यही निकलेगा कि किसीमें राग है, अतः दुःखी है। अपने दुःखकी जितनी भी कहानी बतावेगा उसमें किसी न किसीसे राग मिलेगा। बस उसी रागके ही परिणामके कारण वह दुःखी है। कोई दुःखकी कहानीमें यह बतावेगा कि मेरी समाजमें इज्जत न हुई, कोई यह बतावेगा कि जैसा मैं चाहता था वैसा न हुआ। यह सब दुःख रागादिकके ही कारण तो हुआ है, अन्य कुछ नहीं। जिसे दुःख नही चाहिये उसे राग, मोह, ममता छोड़ देना चाहिये। शादी हो गयी, बच्चे हो गये, अब करना तो सब पड़ेगा ही। किन्तु हे भैया! सब कुछ करते हुए भी यही भाव रखो कि ये मेरे कोई नहीं, मैं इनका कुछ नहीं, न ये मुझे सुख पहुंचा सकते हैं, न मैं ही इन्हें सुख पहुंचा सकता हूं। इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, य तो मुझे करना पड़ रहा है, ऐसा विचार करनेसे दुःख न होगा। क्या इन सब दुःखोंको देखकर तथा अपने दुःखों

को विचारकर क्या मुझे राग नहीं छोड़ना चाहिए ? अवश्य ही त्याग करना चाहिये। शराब पीने वाला शराबकी दुकानपर शराब खरीदने जाता है तो कहता है कि देखो भाई, मुझे विलायती असली माल चाहिये, मुझे बढ़िया वाली शराब चाहिये। तब वह उसको यही दिखाकर कहता है कि क्या तुझे इन बेहोश पड़े हुए अपने बाप, चाचाको भी देखकर विश्वास नहीं होता कि मेरी शराब बहुत बढ़िया व अच्छी होगी। अतः हे भाइयो ! यदि रागका फल देखना है तो स्वयंके दुःख देखो और इन सब संसारी प्राणियोंके दुःखोंको देख लो कि रागके कारण कैसे कैसे कष्ट उठाये जा रहे है, और तूने स्वयं कैसे-कैसे कष्ट झेले ? अब क्या ये देखकर भी तुझे विश्वास नहीं होता कि यह राग-बुद्धि छोड़ने योग्य है। यदि जाननेमें आ गया कि मैं तो स्वचतुष्टयरूप हूं, तो कोई क्या इस ज्ञानको नष्ट कर सकता है, विपरीत कर सकता है ? कोई कुछ नहीं कर सकता। जितने भी दुनियाके जीव हैं उन सबसे मैं निराला हूं। ये सब रागके परिणाम देखकर यही धारणा बनावे कि मैं तो चैतन्यस्वरूप अपने सहजस्वरूपमें रहने वाला अनाद्यनन्त हूं। अतः मैं इन सबको त्यागकर ज्ञायक भगवानके दर्शन करूं। यह जीव भगवानके दर्शन ज्ञानसे ही तो करता है और उपयोगमें यदि राग बसा हुआ है तो भगवान कैसे दिख सकता है ? उपयोगमें राग न हो तो भगवानके दर्शन हो सकते हैं। जब राग पर उपयोग है तब स्वभावपर नही और जब स्वभावपर उपयोग है तब उपयोग रागपर नहीं। तब मैं राग छोड़कर अपनेमें अपने लिए अपने द्वारा अपने आप सुखी होऊं।

भैया ! यह राग तो एक न एक दिन छोड़ना ही पड़ेगा, तथा रागद्वेषरहित वीतराग अवस्थाको एक न एक दिन तो अवश्य ही धारण करना पड़ेगा, तभी मुक्ति प्राप्त हो सकेगी। तब क्यों अपना समय नष्ट करके दुःखमें रुलता फिरूं ? इसके लिए कोई अवस्था विशेष निश्चित नही कि वृद्धावस्थामें ही रागद्वेष छोड़ना चाहिये या अमुक अवस्थामें त्याग करना चाहिए। ये तो जितना शीघ्र छूट जावें उतना ही अच्छा है। जैसे-जैसे राग बुद्धि करोगे वैसे ही कर्मबन्ध होते जायेंगे, और जैसे-जैसे वीतरागी होओगे तो कर्म स्वयं ही तड़ातड़ टूटते चले जावेंगे। अतः हे आत्मन् ! तू अपना आत्महित पहिचान, तेरा स्वभाव पापरूप नहीं। स्वयं का सहजस्वभाव चेतन है, ज्ञानपुञ्ज है, ज्योतिपुञ्ज है। भैया ! राग था शादी की, राग था बच्चे पैदा हुए। अब इनके फन्दको स्वयं ही तो भोगेगा। अन्य कौन भोगेगा ? आनन्दका घातक राग है। आनन्दका और रागका वैर है। एकके होनेपर दूसरा नहीं ठहर सकता। जब ये शरीर भी अपना नही तब दूसरोंको अपना मानना कहांकी बुद्धिमानी है ? सोचो तब अपना कैसे हो सकता उनका शरीर ? और जब दूसरे जीव अपने नही बन सकते फिर ये अचेतन पदार्थ, धन, वैभव आदि कैसे अपने हो सकते है ? जब अपना है ही नहीं तब ऐसा

मान कि ये तो छूट जावेंगे। "माननेमें ही राग है, और माननेमें त्याग है।" माने बिना तो रहते ही नहीं, सो मानते जावो, किन्तु मानो सच्ची बातको ही। जिसने अपने भीतरमें ऐसा उपयोग कर लिया तो बेडा पार है। चाहे कर न सको, किन्तु अन्तरंगसे मान तो लो। ज्ञान सम्यक् रखो, स्वयं सुखी होवोगे।

एक शिष्य था। वह लिखकर बोला कि गुरुजी! मैं तीर्थाटन करने जाता हूं। गुरु बोले—क्या करेगा जाकर अपने अन्दर तो सब है। शिष्य नहीं माना, बोला कि मैं तो जाऊँगा ही। गुरुजी ने आज्ञा दे दी कि ठीक है चले जाओ। जब वह चल दिया तो आगे रास्तेमें उसे एक बारात मिली। दूल्हेको उसने देखा तो पूछा कि भाई यह सब क्या है, क्योंकि बचपनसे गुरुजी के पास रहा था, अतः वह ये सब जानता था नहीं। तब उसे बताया गया कि ये एक बारात है। फिर पूछा कि बारात क्या होती है? तो वे बोले कि भैया! इसमे एक दूल्हा होता है, उसकी शादी होती है, औरत घरमें आती है, फिर बालबच्चे पैदा होते है। इतना सुनकर वह आगे चल दिया और आगे जाकर एक कुएपर सो गया, तो उसे वही सब दृश्य सपनेमें दिखायी देने लगा कि मेरी शादी हो गयी, औरत घर आ गयी और वह पासमें लेटी है, बीचमें बच्चा लेटा है, औरत कह रही है कि थोड़ा उधरको सरक जाओ, वह वास्तवमें सरक गया। फिर वह बोली कि थोड़ा और सरक जाओ। तब वह जैसे ही सरका कि कुएमें गिर पड़ा। पानीमें गिरनेसे उसकी आंख खुल गयीं, तब वह सोचने लगा कि अब इससे बाहर कैसे निकला जावे? कुछ समय बाद उस गाँवका जमींदार लोटा लेकर पानी भरने आया। जैसे ही उसने लोटा कुएंमें लटकाया कि उस शिष्यने पकड़ लिया और बोला कि भैया! मैं भूत नही हूं, तुम मुझे बाहर निकालो तो मैं सब कहानी बताऊँगा। उसने उसे बाहर निकाला व पूछा—अब बताओ क्या बात है? कहांके रहने वाले हो? कैसे कुएमे गिर गये? तब वह शिष्य बोला कि आप हमारे उपकारी हैं, मुझे बाहर निकालकर उपकार किया है, अतः आप पहिले अपना परिचय दीजिये। तब वह जमींदार बोला कि मैं इस गाँवका जमीदार हूँ, मेरी इतनी जमीन है, इतनी दौलत है और भरपूरा परिवार है। तब वह शिष्य कभी उसे नीचेसे देखे, कभी ऊपरसे। वह जमीदार बोला कि तुम मुझे इस प्रकार क्यों देख रहे हो? शिष्य बोला कि मैं तुम्हें नहीं देख रहा हूं। मैं तो यह सोच रहा हूं कि जब मैंने तो स्वप्नमें ही गृहस्थी बसायी, तो कुएंमें गिर गया और तुम इस प्रकार अपना समाचार बता रहे हो। अतः मैं समझ नहीं पा रहा हूं कि तुम जिन्दा कैसे हो? सो भैया! जिन्दा तो वही है जो अपना धर्म पालता है, वही जीवन है। वह जीव क्या जिन्दा, जिसे अपना धर्म ज्ञात भी नहीं। अब तक इस जीवने अनन्त भव प्राप्त किये,

अनन्त जन्ममरण किये। आज यह जन्म है सो इसकी भी मिलती क्या? जीवन तो तबसे मानो जबसे निज सहजस्वरूपकी दृष्टि बने कि मैं तो स्वतःसिद्ध, अनादि, अनन्त, अहेतुक, नित्य, अन्तः प्रकाशमान, चैतन्यज्योति हूं। यह मैं स्वयं ज्ञानघन एवं आनन्दमय हूं। मैं अपने में ही अपने आप स्थिर होकर आनन्दमग्न रहूं।

द्रष्टारं स्वयमात्मानं पश्य पश्य न चेतरम्।
तिष्ठानि निर्विशेषं चेत्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-१९॥

हे आत्मन्! तू अपने को ज्ञाता व द्रष्टा देख और अपने स्वरूपको अपनेमें पहचान। तू मात्र जानता-देखता है, शुद्ध स्वभाव वाला है! तू ज्ञान स्वरूप सर्वस्व है, तू ज्ञानी है। तेरा काम केवल ज्ञान है, अर्थात् ज्ञानमात्र रहे, यह तेरा काम है, इसके अतिरिक्त और कुछ काम नहीं।

तू परिपूर्ण है, तू अपनेको ज्ञानमय देख, अपने स्वरूपसे आगे बढ़कर जहाँ किसी तरंगरूप अपनी श्रद्धा हुई वही पर क्लेश है, जन्म मरणकी परम्परा है, संसारका रोना और नाना दुःख उठाना है। वह सब पर्यायबुद्धिको लिए हुए है, सामान्यस्वरूपमें कोई क्लेश नहीं। जैसे किसी बिरादरीकी पंगत है, उसमें गरीब भाई, करोड़पति, लखपति भाई बहुतसे बैठे है, परन्तु उस समयपर कोई अपनेको नाना रूप नहीं समझता, केवल अपनी जातिका एक सेवक समझता है, वहाँ करोड़पति, लखपति, गरीब व पंडित सभी एक हैं, वहाँ नानापन न रहे, यदि रहे तो उनका तिरस्कार हो जाय, उनकी शोभा नहीं होती। इसी तरहसे इस जगत्के अन्दर जितने जीव हैं वे सब एक जातिके हैं, चैतन्यस्वभावमय हैं, इनमें परस्पर एक दूसरेमें अन्तर नहीं है। जो अन्तर यहाँ है वह उपाधि साथ लिये रहनेसे आ गया है। फिर भी जो परिणतिको अपनाता नही है, उस अन्तरकी उपेक्षा करता है और चैतन्यस्वभावमात्र रूपसे सबको निरखता है, वह जीव मोक्षका मार्ग पाता है। किन्तु मोही अपनी पर्यायबुद्धिके कारण स्वभावसे विपरीत अपनेको नाना रूप मान लेता है, मैं अमुक कार्य वाला हूं, यशवाला हूं, कुटुम्ब वाला हूं, लड़के बच्चों वाला हूं, इज्जत वाला हूं। किसी भी प्रकार से अपनेको बेकार करना, बस यही वज्रकी चोट-उसके गले पड़ी, इससे फिर आगे जन्म मरणका चक्कर लग गया। सो भैया! विकल्प छोड़कर सब जीवोंको समान देखकर जो अपनेको ज्ञाता-द्रष्टा मात्र देखता है वह मुक्तिका मार्ग प्राप्त कर लेता है।

यदि अपने आपको केवल द्रष्टा देखें और सब प्रकारकी विधिसे अपनेको प्राप्त करता रहे याने सामान्यरूप रहे तो अपने आप सुखी हो सकते हैं। सुखस्वरूप तो हम हैं ही, सो यदि सुखस्वरूप अपनेको जाने तो वह पूर्ण सुखी हो जायेगा। मैं केवल ज्ञानमात्र हूं, इस

आत्माका किसी भी पदार्थसे किसी भी प्रकारका सम्बन्ध नहीं है, मैं स्वतन्त्र हूं, अविनाशी हूं, ऐसा अपनेको भावनेका निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये।

जो कुछ मुझे दीखता है वह सब रूप, रूप ही तो है, और जो आत्मा पदार्थ है वह शरीरसे परे बहुत बड़े गुप्त अनूप ज्योतिमय एक वस्तु है। वह सब किसीको दीखता नहीं है। ऐसा वह बढ़ता ज्ञान मानो शून्यरूपमें बदलना चाहता है। देखो, जो दिखता है वह जानने वाला तत्त्व नहीं, व जो जानने वाला है वह दिखने वाला तत्त्व नहीं है। इससे हम स्वयं कह सकते है कि अब बोलनेकी कोई गुञ्जाइश नहीं, इस जगत्में बोलनेका कोई स्थान नहीं। जो दीखता है वह जड़ है, उससे बोलनेसे लाभ क्या, जो जानने वाला है वह दिखता नहीं, उससे बोला ही कैसे जा सकता है, और जो जानने वाले तत्त्व हैं उनके यथार्थरूप विचारो तो केवल ज्ञानमय प्रतिभास ही है, उसका कार्य ज्ञान ही है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ कार्य ही नहीं है, वह तो अनन्त, अविनाशी, चित् है, इसका कोई नाम ही नहीं है।

जैसा यह प्रभु है एवं ज्ञानरूपसे साकार यह ज्ञानमय पदार्थ है, ऐसा इस तत्त्वको न जानकर और इसको नाना रूप मानकर यह नाथ दुःखी हुआ है। इस जीवको आत्म-स्वरूप दिखाने वाला दुनियामें अन्य कोई उपाय नहीं है, यह स्वयं देख लेता है। जैसे एक कथानक है कि एक आदमी ज्ञानी आदमीके पास गया। कहता है कि महाराज, मुझमे ज्ञान कर दीजिए, ज्ञानी बोला कि यह तो मामूली सी बात है, जो उस नदीमें मगर बैठता है, उसके पास जाओ और उससे पूछ लो। वह वहाँ गया, जब मगर निकला तो उससे आदमी बोला कि मेरेमें ज्ञान नहीं है, मेरेमें ज्ञान कर दीजिए। मगर बोला—भाई कुएसे जरा पानी ले आइये, मुझे प्यास लगी है। प्यास बुझा लूँ, तब तुम्हें ज्ञान बताऊँगा। आदमी कहता है कि तुम तो नदीमे बैठे हुए हो, फिर प्यास कैसी? मगर कहता है कि भाई तुम भी तो ज्ञानस्वरूपमय आत्मा हो, तुम स्वयं ज्ञानस्वरूप हो, फिर ज्ञानकी प्रार्थना कैसी?

इस ज्ञानमय पदार्थमे ज्ञान है ही, मैं जानता हू, इसके अतिरिक्त और कोई कार्य ही नहीं है, जाननेके अतिरिक्त यह जीव कुछ नहीं करता, तुम अपनी स्वरूपमय आत्मा हो, जगत्के सारे पदार्थ अपने स्वरूपमय है, आत्मामें तो उसका अपना ही काम है, वह अपने स्वरूपसे बाहर कुछ नहीं करता। आप अपने अन्दर ही स्वयं देख सकते हैं, स्वयं यह ही ज्ञाता है, बाहरसे आँख मूंदकर अन्तरमें देखो, क्या महसूस होता है? बाहर गये कि उस जालमें फंसा, मैं सत्य कुछ देख ही न सकूंगा। बाहरसे भीतरकी वस्तुका बन्धन कैसे लगेगा, बाहरी स्वरूपका बन्धन कैसे लगेगा? वस्तुतः हम अपने ही कल्पना जालमे बँधते हैं।

कहते हैं, एक बार राजा जनकके पास एक व्यक्ति गया, बोला कि मैं बहुत फँसा हूं,

परिवारने मुझे बाँध डाला है, महाराज ! इस बन्धनसे छुड़ाएँ । राजाने कोई उत्तर नहीं दिया, क्या किया कि सामने जो लोहेका डंडा खड़ा था उसके पास गया और डंडेको अपनी जेटमें भर लिया व बोला—मुझे इस खम्भेने पकड़ लिया है, इस बन्धनसे छूटूं तब तुम्हें उत्तर दूँगा । उस व्यक्तिने कहा कि खंभेने तुम्हें पकड़ लिया है कि तुमने खम्भेको पकड़ लिया है । राजा जनक बोले—यही तो तुम्हारा उत्तर है, अरे भाई, तुम्हें परिवारने जकड़ लिया कि तू ही कल्पनासे उन्हें जकड़े है । तेरेमें तो तेरा स्वरूप है, प्रभु है और दूसरा कोई नहीं । तू ही अपने स्वरूपको भूलकर कल्पनाका जाल पूरता है और खुदको बन्धनमें बांधता है ।

यह तो अपने-अपने ज्ञानकी बात है, जीवोंका उद्धार कहांसे होता है ? ज्ञान ही उन शान्तिका कारण बनेगा । जैसे-जैसे उस ज्ञानका आदर करेगा वैसे-वैसे ज्ञान बढ़ेगा, जैसे जैसे हम बाहरी बातोंमें उपयोग लगायेंगे वैसे वैसे ज्ञानका तिरोभाव बढ़ेगा । सो भैया ! इतना ऊँचा पद पाया है, उत्तम कुल पाया है, इतना साधन होनेपर भी हम अपने ज्ञानका सुधार नही करते तो क्या है ? सब व्यर्थ है, अन्तमे पछताना ही हाथ आयेगा । एक मनुष्य था, उसको किसीने ऐसा उपाय बताया कि इस पहाड़मे बहुतसे पत्थर है, इस पहाड़से तू पत्थर ले आ, उनमें कोई पारस भी मिलेगा । उससे तू फिर मनमाना लोहेका सोना बना लेना । तब उसने दो चार ट्रक पत्थर समुद्रके किनारे गेर दिये और समुद्रकी ओर लोहेका खम्भा जैसा मोटा डंडा रख लिया, वह पत्थरको डंडेसे मारे, देखे व समुद्रमें डाल देवे । एक पत्थर मारा तो देखा कि लोहेका खम्भा सोना नही हुआ । उसने पानीमे डाल दिया, अब ऐसा बार बार करता गया । एक बार पारस पत्थर भी हाथ आया, उसे भी उसी धुनमें लोहेके डंडेसे मार समुद्रमें फेंक दिया । अब देखता है कि लोहेका डंडा सोना हो गया, समझता है कि वह पारस पत्थर था जो समुद्रमे फेंक दिया । इसी तरहसे फिरसे जन्म लिया और फिर मरण आ गया । इस तरह मानवका जन्म-मरण होता रहता है तथा उन्ही-उन्ही विषयोंके कार्योंमें लगे और मरे, उसी ध्वनिमे लग रहे, और विषयभोगोमे लगे-लगे मरण किया । बड़ी अवस्था हुई कि पछतावा होगा, यों ही जिन्दगी गंवा दी । न आत्माको धैर्य दिया, न विश्रामसे रहे, न ज्ञानका अनुभव किया । जो कुछ भी किया, वह मिट जाने वाला ही काम किया ।

प्रभो ! तू केवल ज्ञानमय तत्त्व है, तेरेमे दूसरे पदार्थका कुछ नही आता । जो तुझ पदार्थमें है वह बाहर नही जाता । तुम अपनेको स्वयं देखो, अपने आपको जाननेकी पद्धति प्राप्त करो । कहीं कोई भी अन्य तत्त्व इस आत्माके नही है । इसका स्वरूप ज्ञानघन है, आनन्दमय है, इस प्रभुसे अन्य पदार्थका सम्बन्ध नही है । और ऐसा ही देखे तो इसकी दुनिया अलौकिक हो जायेगी और फिर उस भावसे समस्त विपदाएं समाप्त हो जायेंगी ।

जगत्के प्राणियोंको जितना भी क्लेश है वह सब रागका ही क्लेश है। जैसे इच्छा हो कि क्लेशको दूर करना चाहिये, तब उसका अर्थ यह समझो कि राग दूर करना चाहिये। इसका भी उपाय सोचना चाहिये कि रागको कैसे मिटाना है? राग मिटे तो क्लेश मिटेगा और राग न मिट सका तो क्लेश नहीं मिट सकता। राग मिटनेका उपाय क्या है? उसका उपाय यह है कि अपने स्वभावको रागरहित देखना चाहिए और अन्य उपाय करो तो यह राग दब तो जायगा पर मिटेगा नहीं, जैसे किसी वस्तुका राग है तो उसके खिलाफ किसी काममें लग जावे। तपमें, पूजामें, परोपकारमें लगे और कोई उपाय है तो उसे करना चाहिये जो कोई और उसका उपाय है वह सब करना तो चाहिए परन्तु इस उपायसे राग दब तो जायगा, पर राग मूलसे नष्ट न होगा। मेरा रागमें रहनेका स्वभाव नहीं है यह तो सब मोह की लीला है। अपनेको रागरहित ज्ञायकमात्र देख सकता है। यदि वह शान्तिका व राग मिटनेका मूल उपाय है, जो इसके आगे देखता है, अपना वैभव कुटुम्ब आदि देखता है, यह सब उसके मोहके मोहकी लीला है।

हे आत्मन्! तू मात्र ज्ञानस्वरूप है, तू अपनेको केवल ज्ञानस्वरूप तो देख, इतना तेरा सर्वस्व है, इतनी यह उसकी सारी दुनिया है, इसके अलावा और मैं कुछ नहीं हूं, इस रूपसे तू अपनेको देख, इतना तो साहस कर कि एक बार समस्त पदार्थोंकी उपेक्षा कर, मैं ज्ञानमात्र हूं, ऐसा अनुभव कर। विकल्प जब दूर होगा तो विपदायें सारी दूर होंगी जगत् के पदार्थोंसे इसको विपदा नहीं आती, यह प्राणी अपने विचारोंको बनाकर स्वयं दुःखी हो जाता है, बस इसीका नाम विपदा है। बाहरी तो बाहरी ही है। बाहरी पदार्थोंसे कैसे विपदा आयेगी? विपदा तो उसके ही अन्दरसे आती है, विकल्पका नाम ही विपदा है। कोई मानता है कि उसके पास धन कम है, धन कम होनेसे विपदा नहीं है, किन्तु धनसे अपका हित समझकर, फिर धनकी कमी सोचते रहना ही विपदा है। इसलिये विपदा तो ज्ञानसे दूर होगी। भ्रमसे उत्पन्न हुई विपदाका नाश भ्रमनाशक ज्ञानसे होगा। इसका एक-मात्र उपाय है—रागरहित अपना स्वरूप देखे।

जैसे किसी पुरुषको किसी बातका भ्रम होनेसे वह दुःखी हो जाय तो दुःख दूर करने का उपाय केवल भ्रम दूर कर लेना ही है। जैसे कि स्वप्न देखनेसे दुःख हुआ, स्वप्नमें खोटी बात देखी, खोटी बातसे जो दुःख उत्पन्न होता है उसका नाश नींद खुल जानेसे होता है। जैसे स्वप्नमें देखा कि मैं जंगलमें घूम रहा हूं। देखा कि एक सिंह सामने आ रहा है, वह मुख बाये चला आ रहा है, यदि यह देखते हैं तो क्लेश होता है। उस दुःखको मिटानेका कोई उपाय है, सुन्दर हवा चले तो क्या क्लेश दूर हो जायगा, क्या माता पिता पास बैठे हों तो

क्लेश दूर हो जायगा ? उसका कोई उपाय नहीं है, इसका केवल एक उपाय यह है कि नींद खुल जानी चाहिए। यदि नींद खुले तब जानें कि यहाँ जंगल आदि कुछ नहीं, तब उसे आराम मिलेगा।

यह परिवार मेरा है, यह दौलत मेरी है, ये मित्रजन मेरे हैं, मेरी लोगोंमें इज्जत ऐसी है—इस बातको देखनेसे सारे क्लेश स्वप्नवत् रहेंगे। बीचमें इज्जतको धब्बा लगा तो क्लेश है। धनको उपार्जन करनेका क्लेश, रक्षामें क्लेश, नाशमें क्लेश, किसी भी प्रकारके विकल्प बनाए जाते हैं तो वहाँपर प्रारम्भमें भी क्लेश, बीचमें भी क्लेश। भ्रमसे होने वाले क्लेशको दूर करनेका क्या यह उपाय है कि किसी तरहसे इज्जतको दुगुनी बना लें ? नहीं, यह कोई उपाय नहीं है। स्वयं सत्यस्वरूपको देख लो, तब क्लेश अनायास ही दूर हो जायगा। उसका तो केवल ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानसे तो और कुछ नहीं होता। धन, इज्जत, परिवार आदिसे इसको लाभ नहीं है, बल्कि हानि है। यदि ज्ञानस्वरूप आपको देखकर आपमें संतुष्ट रहे तो सब क्लेश मिट जावेंगे। उस ज्ञानको ज्ञानके द्वारा खुद जानता है यह ज्ञानी। ज्ञानके लिए यह जानता है, इससे अधिक उसका कुछ कर्तव्य नहीं है, ऐसी भावनाके बलपर जो ज्ञानी ज्ञायकस्वरूपका अनुभव करता है, उसको जो अनुपम आनन्द मिलता है वह न तो इन्द्रके मुयस्सर है और न चक्रवर्तियोंको मुयस्सर है। वह तो एक प्रभुका जैसा आनन्द है। तपस्याओं एवं अन्य बड़े-बड़े लौकिक कामोंमें भी वह सामर्थ्य नहीं है, जो सामर्थ्य ज्ञानीको है। जो क्लेश है उसे तो दूर करना है ही। सो भैया ! निश्चय कर लो कि क्लेश केवल रागवश है। दुःख दूर करना है तो रागको छोड़ दे, राग करना दुःख ही है। बाह्य पदार्थ कुछ बाधक चीज नहीं। वह तो अपने द्रव्य काल क्षेत्र भावरूप है, क्या कोई बाहरी पदार्थ तेरे साथ आया है ? अच्छा वह चेतन है या अचेतन, क्या कोई भी पदार्थ तेरे हाथ होगा ? मेरा तो मेरेमें ही स्वरूपका काम है। राग तो कल्पनागत है। भगवान् और इस आत्मामें अन्तर क्या है ? केवल राग हो या न हो यही अन्तर है। जहाँ राग नहीं है वह भगवान् है, जहाँ राग है वह वही प्राणी है। राग करनेपर लाभ कुछ नहीं रहता है, बल्कि उससे भी अधिक टोटेमें रहता है। अपनी स्वतन्त्रताका ख्याल कर राग छोड़ दे तो वह भगवान् हो जानेके सम्मुख है। जो रागमें और स्वरूपमें अन्तर नहीं जानता है वह संसारमें रागका काम करता है।

हे आत्मन् ! तू अपने आपको स्वयं द्रष्टा देख, जो देखने वाला है वह तू है, जो जानने वाला है वह तू है। जाननेसे आगे न तू है और न तेरा काम—ऐसा सोचकर चिन्ताओंको दूर कर, आरामसे तो ठहर, आराम वहाँ होता है जहाँ हृदयमें आराम हुआ। हे चिन्तामणि

महापुरुष ! तू जिसके उपयोगमें आया वह तो आराममें रहता है। नहीं तो वह निमित्तरूप शिकारियोंके बीचमें पड़ा विकल हो जाता है। भैया ! परपदार्थमे तो वह स्वयं बद्ध न होता है और न मुक्त होता है।

भगवानकी भक्ति करते हैं, सो भाई भगवान् स्वयं जा जाकर किसीको आराम नहीं दिया करता है। कु ! ! ! ज्ञान है तो भगवान्को ही जान लें, आनन्दका मार्ग मिलेगा। भगवान्को प्रसन्न करना भगवान्का काम नहीं, यह तो भक्तका काम है। भगवान् न तो किसीसे प्रसन्न होता है और न किसीसे क्रोधित होता है। यदि ऐसा करने लगे तो वह भग॰ वान् ही न रहे, हमारी ही तरह अनाथ प्राणी ही रहा। कैसा भी कोई पापी है, भगवान् उसपर क्रुद्ध नहीं होते। भगवान्के ज्ञानपर परिणतिकी झलक आ जाती है। सच पूछो तो जो परभगवान् है उसको न तो प्रसन्न ही किया जा सकता है और न उनकी प्रसन्नतासे कोई लाभ है, किन्तु जो अपनेमें बसा हुआ भगवान् है उसे मैं प्रसन्न कर सकता हूं और उसके प्रसन्न करनेसे मुझे लाभ है। उसकी प्रसन्नता ज्ञानके बलपर है। मैं अपने सत्यस्वरूपको अपने ज्ञानमें रखूं तो भगवान् मुझपर प्रसन्न हैं, केवल अपने स्वरूपमात्रमें रहकर केवल ज्ञानमय विशुद्ध तत्त्व रहूं, ऐसा बल उसमें है तो भगवान् उसपर प्रसन्न होगा। अब उसे क्या चाहिए ? उससे बढ़कर और कुछ नहीं।

हे आत्मन् ! तू अपनेको रागरहित देख। तेरेमें तो राग करनेका स्वभाव ही नहीं, तेरेमें तो राग करनेका कोई काम ही नहीं, तू जानता चला आ रहा है, जानता है। जाननेसे आगे मत बढ़ तो तेरे सारे क्लेश समाप्त हो जायें और तू अपने आप सुखी हो जायगा। सुख पानेका यह उपाय है कि तू रागको दूर कर।

अहंकाराहिना दष्टः कर्ता भोक्ता भवेन्न मे।
ममत्वाहंत्वभावोपि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-२०॥

जगत्का यह प्राणी अहंकाररूपी सर्पसे डसा हुआ है। जैसे सर्पसे डसा हुआ व्यक्ति बेहोश हो जाता है, नई-नई तरहकी चेष्टाएँ करता है, इसी प्रकार अहंकारसे डसा हुआ पुरुष मोह करता है, झगड़ा करता है, बेचैन होता है, नये-नये प्रकारकी चेष्टाएं करता है। अहं॰ कारके वश प्रायः सभी जीव हो रहे हैं। एक बच्चेको देखो वह भी अहंकारी होता है। जवान बूढ़ोंको देखो वह भी अहंकारी होते हैं। शरीरको माना कि मैं हूं, मैं अच्छी जातिका हूं, अच्छे कुलका हूं, यह अहंकारकी बात है। लोग मुझे जानें, यह सब विकल्प अहंकारकी बात है।

हे आत्मन् ! तू अपना स्वरूप तो देख, तेरे स्वरूपमें अहंकार नहीं है, किसी भी

प्रकारका विकार नहीं है, तू केवल ज्ञायकस्वरूप है, चेतनास्वरूप पवित्र वस्तु है। तू अपने को क्या है इसको तो समझ, तू एक ज्ञानमात्र वस्तु है। लोकमें ज्ञान ही पवित्र चीज है, तुझसे पवित्र कौन है ? तू पवित्र भगवान्‌रूप होकर, मायामें फंसकर जन्ममरणके क्लेश सह रहा है, तू अहंकारसे डसा है। अहंकारकी बात भी नहीं फिर भी अहंकारसे डसा है। एक बार राजा भोजकी सभामें चतुर आदमी बैठे थे। राजाने किसी एक चतुरसे कहा कि तुम बड़ी बढ़िया कविता पेश करो। उस चतुर आदमीने केवल कोरा कागज देकर, जिसमें कुछ नहीं लिखा था, कहा कि लो यह सर्वाधिक सुन्दर कविता है, परन्तु महाराज जो शुद्ध है उसे ही कविता दीखेगी, राजाने देखा, तो कुछ था ही नहीं, परन्तु मै अशुद्ध न कहलाऊँ इस कारण कह दिया कि यह बड़ी सुन्दर है, खूब सुन्दर कविता है। पासमें जो बैठे थे, उनको राजाने दिखाया पूछा कि कैसी कविता है ? देखकर वे भी बहुत गुस्सा हो गये, सोचा कि इसमें कुछ लिखा ही नहीं, बड़ा गजब है, लेकिन शानमें कहनो यही पड़ा कि बड़ी सुन्दर है। यह अहंकारकी ही तो बात है। लोकमें जितनी भी घटनायें ऐसी होती हैं कि बात कुछ भी न हो किन्तु शानमें कुछ दिखाना पड़ता है, अहंकारने इस प्राणीको डस रखा है, सो निरन्तर इसमें अहंकार भरा रहता है। मै बड़े गौरवका हूं, मैं बड़े घरानेका हूं, लेकिन अपनेको जो समझता रहता है वह सत्य जानता है कि यह दृश्यमान तू है क्या खाक ? पर-वस्तु क्या तेरे आनन्दकी, ऐश्वर्यकी बात है ? यह माया भी केवल तेरे स्वरूपमें नहीं है। तेरा कुल तो इतना ऊँचा है कि ऐसा और नहीं, लेकिन इस जीवको तो अहंकारने ही बर्बाद किया है। अहंकारको छोड़ दे, अर्थात् जैसे सब हैं वैसे ही मैं हूं, जैसे सब जीवोंका स्वरूप है, ठीक वैसा ही मेरा भी है। जैसे भगवान्‌का स्वरूप है वैसा मेरा भी स्वरूप है। मेरा जैसी पवित्र कोई वस्तु नहीं है, किन्तु अपना पवित्र स्वरूप नहीं देखता है। देखो अगर कोई लुट जाता है, किसीका कुछ बरबाद हो जाता है, कोई दुनियामें अचानक मर जाता है, चलते चलते हार्ट फेल हो जाता है, सो मानता है कि दूसरोंका हो जाता है। यह सब अहंकारका फल ही तो है। तूने इस संसारमें अपनेको महान् और अन्यको नीच समझ रखा है. इन सब बातोंको देखकर तू सोचता है कि यह सब तो औरोंका हुआ करता है मेरा नहीं तू भगवान्‌स्वरूप है, वैसे ही सब भगवान् स्वरूप हैं, जो यह दशा है यह सब प्रकृतिका विकार है। उसमें उलझने से एक तो जो ये भगवान् हैं, उन सब जीवोंका निरादर करता है और दूसरे अपने स्वरूपको भूलता है।

अरे तुझे अहंकाररूपी सर्पका विष चढ़ गया है और इस अहंकारके वश होकर तू गर्व करता है, कर्ता बनता है। सोसायटीके करने वाला नये नये कामोंको करने वाला तू

अपनेको मानता है, अपनेको स्वरूप नहीं देखता। जो केवल ज्ञानमात्र है, चेतनामात्र है, जो केवल जानने का ही काम करता है, इसके अतिरिक्त और कुछ काम नही करता। इस निज नाथमें कुछ स्वरूप नहीं है, मैं स्वरूपको भूल गया हूं, मैं अमुक काम करता हूं, मैं अमुक काम करूंगा आदि विकल्प विपदामें अपने को लाता है। तू अपने स्वरूपको तो देख। इस चैतन्यप्रभुका कुछ करने का स्वभाव नहीं है, केवल जाननेका ही स्वभाव है।

इसमें अहंकार नहीं है, अहकार स्वभावसे नहीं है उसको तू करता है। करता तो तू है नहीं, मात्र मानता है कि मैं अमुकको करता हूं, तो स्वतंत्रताका आनन्द कैसे होगा? यह तेरा कोरा भ्रम है कि विषयका आनन्द मिलता, देखनेका आनन्द मिलता, सुननेका आनन्द मिलता। तू तो ज्ञानमात्र है, केवल ज्ञान करता है, ज्ञानके अतिरिक्त तेरा कोई काम नहीं। भोजन क्या उसका कोई अंश भी तुझे आनन्द देता है? भोजनका तो ज्ञान होता है, उसके साथ मोह है। अमुक वस्तु मीठी है, उसका कुछ ज्ञान हुआ, मोहसे मीठी वस्तुका आकर्षण हुआ, भोजनका आनन्द नहीं। तूने जो कल्पना की उसका कुछ आनन्द है। जैसे कोई किसी को बताये कि भाई तेरे घरमें लाख रुपयेका धन है। इतनी बात सुनते ही वह मौजमें आ गया। मौज उसकी कल्पनाकी है। धनका है क्या, मौज धनसे आती है या ज्ञानसे आती है। चार आदमियोंने प्रशंसा कर दी तो वहां सुख मानता तो क्या वह सुख चार आदमियोंकी चेष्टासे आता है या उसकी कल्पना बनी कि देखो चारों आदमी भला कह रहे हैं, सो उस कल्पनासे उसको मौज आयी। मैं ज्ञानस्वरूप आनन्दको जान रहा हूं। अपने ही ज्ञानसे अज्ञानकी चर्चा करने वाले आनन्दमग्न है। बाह्य आनन्द क्या आनन्द है? बाहरी वस्तुएँ क्या आधीन है? पुत्र मित्र आपके आधीन है क्या, जो आपके पास रहें, धन क्या आपके आधीन है? आपका तो आपमें भी अधिकार नहीं रहा। दूसरेपर अधिकार करेगा क्या? अपनेको जैसा बनाना चाहता है, बना। अपना है क्या? कोई किसीको नहीं बना पाता। आपका आपमें क्या कुछ अधिकार है? नहीं है। आप दूसरेपर अधिकार करना चाह रहे हैं, परन्तु अपनेमें अधिकार नहीं, जिसपर अधिकार नहीं किया जा सकता है उसकी बात सोच रहे हो।

एक देहातमें पटेल था। वह गाँवका मुखिया था। एक पंचायत जुड़ी, उसमें ऐसा सवाल आ गया कि भाई ५० और ५० कितने होते है? पटेल बोला कि ५० और ५० अस्सी होते हैं। लोगोंने कहा कि १०० होते हैं। उसने कहा कि हमारी यह चार भैंसें हैं वह छोड़ देंगे आपको, अगर ५० और ५० मिलकर ८० न होते हों। अब स्त्रीने भी सुन लिया कि पंचायतमें ऐसा हुआ। पटेल पूछता है कि तू उदास क्यों है? उसने कहा कि तेरी

करनीका फल है । मेरी चार भैंसें चली जायेंगी, बच्चे क्या खायेंगे ? कहांसे अन्न खरीदेंगे ? पटेल कहता है कि तू बेवकूफ है । पंच सारेके सारे कह रहे हैं कि ५० और ५० मिलकर १०० होते हैं, जब हम अपने आप कहें कि ५० और ५० मिलकर १०० होते हैं तो ही तो भैंस पायेंगे, देखो कौन भैंस ले पावेगा ?

यह जीव भी जानता है कि संसारमें अन्य कोई हित नहीं, कोई शरण नहीं है, किसीके मोहसे गुजारा नहीं होगा । इसी कारण प्रभुका ध्यान भी करते हैं, धर्मपालनके परिश्रम भ करते हैं । सब कुछ करते हैं मगर भीतरसे आत्मा इस बातको माननेके लिए तैयार नहीं होती है कि दो मिनट भी ऐसा उपयोग बना लें कि मै जगत्के अन्य प्राणियोंके समान ही सामान्य वस्तु हूं । केवल देखना, जानना उसके सामने रहे, दो मिनटका भी उपयोग बन जाय तो स्वयं ही इस आनन्दको स्वरूपमें पाकर आनन्दसे तिरेगा, सारा क्लेश निकल जायगा । क्लेश कुछ है ही नहीं, किसी बोझा ढोने वाले आदमीसे तुम कह सकते हो कि वह मुश्किलसे पेट भरता है सो दुःखी है, किन्तु धनिकों व आफिसरोंको तो यह गरीबी नहीं, फिर वे क्यों दुःखी हैं ? वे बैठे-बैठे कल्पनासे ही दुःखी हो रहे है । इसको यह कहा इसने नही माना, वह नहीं हुआ, जैसे सोचो कि मैंने नोकरसे कहा कि तू झाड़ू दिया कर, नोकर भी स्वतन्त्र आजाद जातिका है । नहीं किया तो तुम्हारा क्या घटा ? बाहरसे चाहे काम करना पड़े, कोई भी क्रोध करना पड़े पर अन्तरमें समझना चाहिये कि मेरा संसारमें कुछ भी नहा है, दूसरेसे मेरा लाभ हानि नहीं है । बैठे बैठे दुःखी हो रहे हो । गरीब बेचारे तो परिश्रम कर दुःखी होते हैं । पर यह तो बैठे-बैठे दुःखी हो रहे हैं । क्या कष्ट है ? विकल्पका कष्ट । यह ऐसा नही चल रहा, यह ऐसा नहीं कर रहा, मेरा इसपर अधिकार है । अरे भाई तू कहींका मालिक नहीं, तू अपना मालिक बन, जगत्के किसी पदार्थपर तेरा अधिकार नही । मैं अमुक कार्य करता हूं, मै अमुक हू । अहंकार अहंकारमें ही दुनिया बरबाद होती है । क्या करते है कि बढ़िया भोजन बनाया । आपने थोड़ा खाया पर १० को चखा दिया । उसने समझा कि १२ को भी पता चल जाना चाहिए कि यह कैसा भोजन करता है ? लोग ऐसे होते हैं जो अहंकारसे अपना तीव्र अहंकार भरे रहते हैं, खुद ही खाते हैं । वे चाहते हैं कि मैं ही सारा भोग भोग लूं । उनके कार्य किसीके लिए भी किए जावें वे सब अहंकारके हैं ।

मै चैतन्यस्वरूपमात्र हूं, मेरा करने व भोगनेका कुछ भी स्वभाव नहीं है । ऐसा निश्चय कर ले तो भगवान् होनेके मार्गको प्राप्त कर ले । इसलिए यह समझो कि मैं ज्ञानमात्र हूं, सर्व जीवोंके समान हूं, मैं सबसे अलग कुछ नहीं रहा । इसलिए सबमें अपने आपको समाया समझो, यह स्थिति शुद्ध योगकी है । जहां अहंकारका भी विकल्प न हो वह अहंकार

रहित अवस्था है। अपनेको किसी रूपमें भी 'यह मैं हूं' ऐसी मान्यता रहे वहाँ तक अहंकार की मात्रा है। ऐसा निरहंकार तो स्वयं आत्मा है। अहंकार तो औपाधिक पर्याय है, विनाशीक चीज है, निर्मूल चीज है। आत्माके किसी शक्तिके स्वभावसे अहंकार नहीं होता, इसलिये तो अहंकार आत्माकी चीज नहीं और कर्मोंमें अहंकारभाव आनेका माद्दा ही नहीं, अतः अहंकार मर्मकी चीज नहीं। यह तो कर्मोदयके निमित्तसे होने वाली आत्मामें एक झलक है। इस विभावरूप झलकको देखकर चैतन्यस्वभावका ही अनुगम करना चाहिये। ऊपर तैरने वाले कुतत्त्वसे दृष्टि हटाकर अन्तरमें शाश्वत प्रकाशमान आधारभूत मर्मका अवलोकन करना चाहिये। सुख यहां अन्तरमें मिलेगा सुखका ठौर अन्यत्र कहीं नहीं है। अन्यत्र सुख खोजना ही क्लेश है।

वाञ्छन् गृह्णान् त्यजन् हर्षन् शोचन् कुप्यन्न वर्तते।
यत्रास्ते तत्स्वसाम्राज्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-२१॥

मैं वह आत्मतत्त्व हूं जहां मेरा स्वयंका सहज अनादि सिद्ध साम्राज्य है। वह मैं न तो इच्छा करता हुआ वर्तता हूं, न किसी वस्तुको ग्रहण करता हुआ हूं, न किसी वस्तुको छोड़ता हुआ हूं, न हर्ष करता हूं, न शोक करता हूं और न क्रोधादि करता हूं, वह मैं आत्मतत्त्व हूं। इच्छाका मुझमें स्वभाव ही नहीं है। इच्छा तो प्रकृतिके उदयका निमित्त पाकर चेतनभूमिकामें भासित होती है। यही बात हर्ष, शोक, क्रोध आदि विकारोंकी है। बाह्य पदार्थका तो मुझमें अत्यन्ताभाव है। उसका ग्रहण करना व त्याग करना तो दूर ही रहो। मैं इनको किसी रूपमें नहीं बर्तता हूं। मैं तो ज्ञानानन्दस्वभावमात्र हूं। निजस्वभावमें स्थिर होनेमें कोई क्लेश नहीं है।

जगत्के प्राणियोंको जितना भी क्लेश है, वह है सारा रागका क्लेश। जब हम क्लेशको दूर करना चाहें तब हमें ऐसा सोचना चाहिये कि हमें रागको मिटाना है। रागको मिटाया तो क्लेश मिट गया। राग नहीं मिटा सके तो क्लेश नहीं मिट सकता। तो फिर रागको मिटानेका उपाय क्या है? उसके मिटानेका उपाय है रागरहित अपने स्वभावको देखना। और भी उपायोंसे राग थोड़े कालको दब तो जायगा परन्तु मिटेगा नहीं। जैसे तपस्या की, पूजा की, तीर्थ किये। सो भैया! इन उपायोंसे राग दब तो जायेगा परन्तु राग मूलसे नष्ट न होगा। राग मूलसे नष्ट होगा तो मात्र ज्ञानसे, रागरहित स्वभावकी दृष्टि बनाने से। मैं ज्ञानस्वरूप हूं, ज्ञानमय हूं, ज्ञानको छोड़कर मैं अन्य कुछ भी नहीं हूं। उस ज्ञानमें ज्ञान ही है, ज्ञान जाननेका ही स्वरूप है, इससे अन्य कुछ नहीं।

यहां आज सब लोग जो अपनेमें राग, द्वेष, क्रोध आदि किया करते हैं; मित्र, कुटुम्ब,

धन, वैभव आदि देखते हैं वह सब मोहकी लीला है। वस्तुतः ज्ञानमें ये नटखट कुछ नहीं है, ऐसा मात्र ज्ञानस्वरूप है। अपनेमें केवल ऐसा ही ज्ञानका स्वरूप देखना जानना मात्र उसका काम है। जानना यह कि यह सारा कुटुम्ब है, जानना यह कि यह इज्जत है, जानना यह कि यह दुनिया है। जान लो, सब जान लो। जाननेके अलावा और कुछ विकल्प न करो। जाननेके अलावा और कुछ मैं नहीं हूं। यही तो मोह है और यही प्रकृतिका विकार है कि जिस ज्ञानसे जानते उसकी तो खबर नहीं और बाहर रमते हैं, किन्तु इस जाननेके बारेमें यदि और अधिक सूक्ष्म जाननेका कुछ साहस करे और देखे कि समस्त चराचरका पीछा करनेपर भी व्यक्तिका परमाणुमात्र भी उसका नहीं है तो अपने आपमें आपका प्रकाश मिल जावेगा।

वास्तवमें अपने आपको जानना ही तो ज्ञान है। मैं मात्र ज्ञाता द्रष्टा हूं, ऐसा अनुभव करनेसे ही कर्म सब दूर होंगे, विपत्तियां सारी दूर होंगी। विचार करें, विपत्तियां दुनियामें हैं कहां? ये जितने बाह्यपदार्थ हैं, कोई मनुष्यके आधीन नहीं। सो जब वे पदार्थ हमारी इच्छाके माफिक नहीं होते तो दुःख हो जाता है कि यह माफिक नहीं चले, यह उसकी तरह नहीं बने। बस इसी वितर्कके कारण विपत्तियां हैं। प्रथम तो तेरी इच्छा भी तेरे आधीन नहीं है। इच्छा औपाधिक है, पराधीन है। राग प्रकृतिका उदय होनेपर चेतनभूमिकामें एक भासना होती है वही इच्छा है। इस इच्छाका वास्तवमें कोई अधिकारी नहीं है। इच्छा न मेरा स्वभाव है और न मेरा सहजसिद्ध परिणमन है। इस रूप वर्तता हुआ जो कोई है वह मायातत्त्व है, में आत्मतत्त्व उसरूप नहीं। जब इस निकटतम विकारका भी मुझमें सत्त्व नहीं है तो अन्य सर्व बाह्यपदार्थोंकी तो कथा ही क्या? किसी भी बाह्यको न तो मैं ग्रहण करता हूं और न मैं छोड़ता हूं। उनमें तो मैं कुछ कर भी नहीं सकता। त्रिकालमें भी बाह्यपदार्थ अपने नहीं हो सकते। बाह्य तो बाह्य ही हैं। उनका तो कोई भी अंश मुझमें नहीं आता। बाह्य पदार्थोंसे कैसे विपत्तियां आईं? विपत्तियां तो उस मोहीके अन्तरमें ही उठती हैं। जो हम विकल्प करते हैं वही क्लेश है, यह ध्रुव सत्य है। जैसे कोई मानता हो कि उसके पास धन कम है, यह विपत्ति है। धनका कम होना विपत्ति नहीं है। धनमें अपना हित समझकर धन कम है ऐसा विकल्प करना विपत्ति है। यह विपत्ति ज्ञानसे दूर होगी। अज्ञानसे आई हुई विपत्तिका नाश ज्ञानसे ही होगा, इसका अन्य कोई उपाय नहीं है। जैसे किसी पुरुष को किसी बातपर भ्रम हो जाय तो वह भ्रमसे दुःखी रहता है। उस दुःखका उपाय केवल भ्रमका नाश है। भ्रम दूर नहीं होगा तो दुःखका नाश न होगा। जैसे कि स्वप्नमें देखी हुई खोटी बातसे जो दुःख उत्पन्न होता है उस दुःखका नाश नींद खुल जानेमें होता है, उसका

और उपाय नहीं है। जैसे मान लो आपको नींदमें ऐसा स्वप्न आया कि जंगलमें घूम रहे हैं, एक सिंह सामने खड़ा है। अपना ही कुशल नहीं, यह जान पड़े कि वह चला आ रहा है मुँह बाये, खाने आ रहा है। स्वप्नमें यदि ऐसी बात देखते हैं तो कितना क्लेश होता है? उस क्लेशको मिटानेका और कोई उपाय है क्या? बिजलीका पंखा चला दिया जाय तो क्या वह क्लेश दूर हो जायगा? उस क्लेशको दूर करनेका इसके अलावा और कोई उपाय नहीं कि उसकी नींद खुल जानी चाहिये। नींद खुली कि देखा न जंगल है, न शेर है। बस उसे आराम मिला।

इसी प्रकार जगत्के प्राणी मोहकी नींदमें सो रहे हैं और उनकी नींदमें स्वप्न दिख रहे हैं कि यह नगर उसका है, यह दुकान उसकी है, यह परिवार उसका है, यह दौलत उसकी है, ये मित्रजन उसके हैं, उसकी इतने लोगोंमें इज्जत है इत्यादि नाना स्वप्न दिख रहे हैं। इन्हीं बातोंको देखनेसे पल-पलपर कष्ट हो रहा है। अगर इज्जतका स्वप्न देख रहे हैं तो इज्जत संभालनेका क्लेश, इज्जत बढ़ानेका क्लेश, अगर इज्जतमें कुछ धक्का लगा तो उसका क्लेश। धनका स्वप्न देखते हैं तो एक तो धनके संभालनेका क्लेश, धन बढ़ानेका क्लेश और धनमें हानि पड़ती है तो उसका क्लेश। किसी भी प्रकारके विकल्प जो बनते रहते हैं। इस क्लेशको मिटानेका कोई उपाय है क्या? धनसे होने वाले दुःखको दूर करनेका क्या यह उपाय है कि उसे दुगुना कमा कर रख लें? नहीं इससे भी यह क्लेश नहीं मिटेगा। क्या इज्जतसे होने वाले क्लेशको दूर करनेका यह उपाय है कि किस प्रकार इज्जतको दुगुना बना लें? नहीं, यह भी उपाय नहीं है। उपाय केवल एक ही है कि मोहकी नींद तोड़ दें। अपने सत्यस्वरूपको देख लें, क्योंकि मेरा तो केवल ज्ञान ही स्वरूप है। ज्ञानके अतिरिक्त तो कुछ भी नहीं। मेरा लाभ ज्ञानसे ही है। धन, इज्जत, परिवार आदि से मेरा लाभ नहीं है बल्कि हानि ही है। यही ज्ञान जब ज्ञानवृक्ष बनकर बढ़ता है, फलता है, तब अनुपम आनन्द होता है।

विकारभाव पाप है। इच्छा हो, हर्ष हो, शोक हो, क्रोध हो, परके ग्रहणका विकल्प हो, परके त्यागका विकल्प हो, मानादिक हों, सभी ये विकार हैं, पाप हैं। तथा इन पापोंसे भी बढ़कर महापाप है इन विकारोंमें आत्मबुद्धि करना, इन्हें ही स्वयं अपना समझना, इन रागादिक विकारोंमें राग करना। इच्छा करता हुआ ही वर्तने वाला मैं हूं, परका ग्रहण व त्याग करता हुआ ही वर्तने वाला मैं हूं, क्रोध मानादिक करता हुआ ही वर्तने वाला मैं हूं, इस प्रकारके विकारोंमें आत्मीयताका होने वाला भाव महापाप है। देखो—दार्शनिक मैदान में, जब रागद्वेषादि भावोंका परीक्षण किया जाता है तो कुछ भाई यह उत्तर देते हैं कि

रागादि भाव पुरुष (आत्मा) में नहीं होते, ये प्रकृतिके विकार हैं, प्रकृतिकी चीजें हैं। जब तक यह भ्रम रहेगा कि ये रागादि मुझमें हुए तब तक संसार है। तब आगे यह भी जानना चाहो कि भ्रम किसमें है? क्या पुरुषमें भ्रमभाव होनेकी बात कहो तो जो भ्रमी है वही दुःखी हो, तब तो प्रकृति दुःखी है, मोक्ष प्रकृतिका करायो। यदि पुरुषमें भ्रमभाव होनेकी बात कहो तो रागादि पुरुषमें न हुए तो न सही, किन्तु भ्रमरूपी महापाप तो पुरुषमें हो गया। सर्व आपदाओंका मूल यही पर्यायबुद्धि है। यही भ्रमजाल है। सो अब इच्छा, विकल्प, क्रोध, शोक आदि किसी भी पर्यायमें आत्मबुद्धि न करो। मैं तो वह हूं जहां मेरे ज्ञान, आनंद आदि निजी वैभवोंका साम्राज्य है।

वास्तवमें मैं ज्ञेयको ही जानता हूं, जाननेके लिये ही जानता हूं। जानना मुझमें ही जानना है इससे आगे मेरा कुछ और कर्तव्य नहीं है, ऐसी भावनाके बलपर जो अपने आपमें रम जाया करते हैं, उन्हें जो अनुपम आनन्द मिलता है वह न तो इन्द्रको नसीब है और न महाराजाओंको। वह तो प्रभु जैसा आनन्द है। इसी आनन्दमें सामर्थ्य है कि कर्म कट जायेंगे। तपस्यासे अथवा अन्य बातोंमें भी वह सामर्थ्य नहीं है जो सामर्थ्य सम्यक्ज्ञानमें है। इसीलिए यदि किसी मनुष्यको दुःख दूर करना है तो वह निश्चय कर ले कि दुःख केवल रागमें है, जिस किसी पदार्थमें जो राग है उसीमें दुःख है तथा दुःख दूर करना है तो तुरन्त रागको दूर कर दे। राग करना मूर्खता है। कारण जिस बाह्यपदार्थसे राग करते हैं वह अपने नहीं हैं। उनका रंच भी सम्बन्ध नहीं है। क्या कोई बाह्यपदार्थ तेरे द्वारा आया है? क्या कोई बाह्यपदार्थ तेरे साथ आयगा? क्या कोई भी बाह्यपदार्थ जिसे कोई कितना भी चाहे क्या उसके साथ जायेगा? क्या कोई बाह्यपदार्थ उसके सुख दुःखमें यहां या कहीं भी साथी होगा? यह केवल आत्मा ही है और अपनेमें ही बना रहता है, इतना हो तो इसका मर्म है, इसके आगे इसकी कोई गति ही नहीं। राग करना निपट अज्ञान है कि नहीं? किससे राग किया जाय? भगवान् और आत्मामें अन्तर क्या है? केवल राग होना या न होना, यही अन्तर है। जहां राग नहीं है वहां केवल हैं भगवान् और जहां राग है वहां है केवल प्राणी। राग करना तो व्यर्थका काम है क्योंकि राग करनेसे हाथ लगता तो कुछ नहीं अर्थात् आराममें तो कोई आता नहीं। जो वस्तुके स्वरूपका ज्ञान करके राग छोड़ देता है वह भगवान बननेके समान है और जो वस्तुके प्रति राग बढ़ाता है, राग रखता है, वह संसारमें घुलनेका काम करता है। आत्मन्! तू अपने आपको ही स्वयं द्रष्टा देख या देखने वाला जो है वही तू है। जो जानने वाला है वही तू है। जाननेसे आगे न तू है, न तेरा काम। ऐसा सोचकर चिन्ताको दूर कर, विकल्पोंको दूर कर, आरामसे कुछ ठहर। आरामके मायने

हैं 'प्रभु राम आ।' चैतन्य महाप्रभु मेरे उपयोगमें आ। जब जब आप मेरे उपयोगमें रहे, मैं आराममें रहा। जब तू मेरे उपयोगसे हटा तो मैं विषयकषायरूपी शिकारियोंके चक्करमें पड़े हुए हिरनके बच्चेकी भांति विह्वल हो जाता हूं। जिन बाह्यपदार्थोंसे मैं घिरा हूं, वे मेरे लिये शिकारीवत् हैं। एक तुम मेरे उपयोगसे हटे कि मेरा आराम चला जाता है।

आराम भगवान स्वयं किसीको नही दिया करते। भगवान तो न किसीपर प्रसन्न होते हैं, न किसीपर क्रुद्ध होते है। यदि वे ऐसा करने लगें तो वह भगवान न रहें, हमारी तरह अनाथ प्राणी हो जायें। कैसा ही कोई भक्त हो उसपर भगवान प्रसन्न नहीं होते और कैसा ही कोई पापी हो उसपर भगवान क्रुद्ध नहीं होते। हां, भगवानको यह ज्ञान रहता है कि यह भक्त-आत्मा कितना पवित्र है या यह पतित आत्मा है। परन्तु वे न तो प्रसन्न होते हैं और न क्रुद्ध होते हैं। और सच पूछो तो जो कर्ममुक्त भगवान हैं उनको प्रसन्न नहीं किया जा सकता। हां उसकी प्रसन्नता अपने आपमें ज्ञानके बलपर निर्भर है, वह भी है अपने सत्य स्वरूपसे। यह ज्ञान जो कि जगत्के सब पदार्थोंसे न्यारा केवल अपने स्वरूपमात्र, परमज्योतिर्मय, केवल ज्ञानमय, विशुद्ध तत्त्व है वही सारतत्त्व मैं हूं, ऐसा अनुभव वह अपने में करे तो उसे परम प्रसन्नता होगी। जब मेरे यही मेरे भगवान मेरे प्रभु प्रसन्न हो गये तब क्या चाहिए? उससे बढ़कर और है क्या? इसलिये हे आत्मन्! तू अपनेको रागरहित देख। मेरा तो राग करनेका स्वभाव ही नहीं। तेरा भी राग करनेका कोई काम नहीं। तू तो ज्ञानस्वरूप है, तू तो जानता चला जा, सब कुछ जानता चला जा। जान कर रह, जानने से आगे मत बढ़, तो तेरे सारे क्लेश समाप्त हो जायेंगे और तू अपनेमें अपने आप सुखी हो जायगा। सुखी होनेका मूल उपाय यही है कि रागको नष्ट कर। राग करके कष्ट दूर नही हो सकते। सबसे बड़ा विकट राग तो यही है कि अपनेको नाना विकारों रूप मानना। परमार्थतः मैं शुद्ध ज्ञायकस्वरूप हूं। परपदार्थका प्रतिभास होता है, इससे परका न कोई सम्बन्ध है और न मुझमें परकी कोई करतूत है। यह तो ज्ञानका सहज विलास है। ज्ञान ऐसे ही रूपको लिए हुए है। मैं इसी सहज ज्ञानमात्र हूं सो ज्ञान द्वारा ज्ञानमय निजस्वरूपमें ज्ञानके लिये ज्ञानमात्र वर्त कर स्वयं सुखी होऊं।

यदाऽज्ञता तदासीन्मे प्रीतिभोगे स्वविभ्रमात्।
दीतवज्ञोऽपि धावानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-२२॥

यद्यपि यह जीव ज्ञान और आनन्दसे परिपूर्ण है तब भी अपने इस स्वरूपको न जाननेके कारण इसको अपने आपमें संतोष तो मिलता नहीं तब बाहर संतोष ढूंढ़ता है, किन्तु बाहर कैसे संतोष मिले? इसका सुखी होनेका स्वभाव है। भीतर तो सुखी होता नहीं, तो

सुख, बाहरके पदार्थमें ढूंढ़ता है । बाहर सुख ढूंढ़नेमें त्रिकालमें भी सफलता नहीं प्राप्त होगी, क्योंकि बाहरके जितने भी पदार्थ हैं वे सब अपनी-अपनी सत्तामें हैं, वे अपनेसे बाहर कुछ नहीं करते, उनका उनसे बाहर कुछ नहीं आता तब उनसे आशा करना विपर्यास ही तो है । जब तक यह कुज्ञान था कि परपदार्थसे उसे सुख मिलेगा तब तक भोगोंमें प्रीति थी किन्तु अब स्वयं यह जान लिया कि दूसरे पदार्थसे सुख नहीं मिलता, सुखस्वरूप हम ही तो हैं, जब यह ज्ञान वाले हुये तब उनके भोगमें प्रीति नहीं रहती । किसी धोखे वाली जगहमें प्रीति तब तक होती है जब तक उस विषयका सच्चा ज्ञान नहीं होता है । परिवारका आज्ञाकारी होना, सैंकड़ों हजारों कोशाम यश और कीर्तिका फैलना यह सब माया है और इसमें फंसे तो आत्मीय आनन्दसे हाथ धोये । जैसे अन्य लोग कहा करते हैं कि किसीने जब बड़ी तपस्या की तो इन्द्रको डर लगा कि कहीं उसका आसन न छुड़ा ले । तब कोई सुन्दर अप्सरा उसने भेजी कि वह रूप हाव भाव नृत्य दिखाकर नाना उपाय कर ऋषिको चिगा दे । अब देखो वे सब रागके कृत्य अपने देखनेमें बड़े अच्छे लगते हैं, परन्तु यह सब धोखा है, उस धोखेमें गये तो सब तप श्रम उनका बादमें खत्म हो जायगा ।

इसी तरह आत्मामें उत्कृष्ट आनन्द भरा है, अनन्त आनन्द स्वभाव है । उस आनन्द-स्वभावमय परमात्मतत्त्वको अपने स्वभावके दर्शन द्वारा प्राप्त कर सकते हैं । स्त्री पुरुष भले ही उसे मिले तो क्या मिले, वे स्वयं दीन आत्मा हैं, उनसे हममें दुःख ही होता है । कुटुम्ब अच्छा मिला तो क्या मिला ? तुम्हारी तो आत्मा ही साक्षात् भगवान है, यह स्वयं वैभव है । यह माया कुछ नहीं, केवल भूल है । अपने स्वभावकी उपासनामें लगे और इन भोगोंसे दृष्टि हटे तो वहां जानना ही जानना है । यहांके पदार्थ तो यों ही मिले हैं और यों ही जा-वेंगे । एक कथानक है कि एक चोरने किसी सेठके यहांसे घोड़ा चुरा लिया और बाजारमें खड़ा कर दिया । ग्राहक बोलते हैं बोलो क्या दाम है इसका ? उसने कहा—६०० रुपया है । तिगुना दाम बताया सो सब लौट गये । इस तरह दसों लौट गये । ग्यारहवीं बार दूसरा आया, उसने भी दाम पूछा तो उससे भी कहा—६०० रुपया है । उन्होंने समझ लिया कि इसने चोरी की है । ग्राहक बोला—इसमें ऐसी क्या बात है, चोर कहने लगा—इसकी चाल बढ़िया है । ग्राहक चाल देखनेके लिये घोड़ेपर बैठ गया, मिट्टीका हुक्का पकड़ा दिया । उसको कहा—जरा पकड़ो तो और आप घोड़ेपर जा बैठा । ग्राहक घोड़ेको बहुत दूर ले गया और खड़ा ही ले गया । दूसरे लोग आये, कहा—भाई, तुम्हारा घोड़ा बिक गया ? कितनेमें बिक गया ? बोला—जितनेमें लाये थे उतनेमें बिक गया । पूछा—मुनाफा क्या मिला ? कहा—तीन आनेका यह मिट्टीका हुक्का ।

इसी तरह ये सारे पदार्थ एक पैसेसे लेकर खरबों रुपये तक हैं। ये सारेके सारे मुफ्तमें मिले हैं चीज तो न्यारी है, तो भैया यह सब जो पाया है सो मुफ्तमें ही मिला है और मुफ्त ही में जायगा, हाथ कुछ नहीं रहेगा। क्या भाव बना कि यह मेरा है, परिवार मेरा है, ऐसा उन्होंने परिणाम बना लिया, परन्तु ज्ञानी पुरुष जानता है दुनियामें मिला मुफ्तमें यह है और मिटेगा भी मुफ्तमें यह। कोई साथमें नहीं रहेगा, परभाव मिटनेको आये हैं और मिटनेमें ही जायेंगे। कुछ मुनाफा मिला कि नहीं मिला, न कुछ लिया, न कुछ गया। कहते हैं कि मिलेगा क्या? पापका हुक्का। जो जो मिला है वह नहीं रहेगा, किसीके पास नहीं रहेगा। अरबपति, लखपतिके पास नहीं रहेगा, पंडितके पास भी नहीं रहेगा, पहलवानों के पास भी नहीं रहेगा। पर जो पुण्य पाप जिन्दगीमें किया वह साथ रहेगा, उसके अनुसार सुख दुःखके साधन सब मिलेंगे।

भैया! जब अज्ञान था, भोगोंके प्रति प्रेम था, ठीक है, पर अब तो ज्ञान है, तू तो एक चेतनामय स्वरूपमात्र सर्वस्व है, केवलज्ञानमात्र है, सबमें मिला व सबसे जुदा एक आनन्दमय पदार्थ है। सर्वसाधारण एक पदार्थ है, जिसका नाम भी नहीं है, जिसका भाग ही नहीं है, परन्तु एक जो पदार्थ है उसे तो भूल गया और आगेकी दुनियामें दृष्टि रखकर इस इस मायाकी दुनियामें लग रहा है और आनन्दके स्वप्नोंको सत्य समझ रहा है। इसीसे दुःख होते रहते हैं। अब तक तुमने कितने भव व्यतीत कर डाले? अब केवल एक इस भवको ही भोगरहित व ज्ञानसहित बिताओ कोई हर्ज नहीं। यह एक भव जो अब पाया है तो यह समझ लो कि इसको पाया ही नहीं है, पाया है तो अपनेमें गुप्त रहकर ही धर्मसाधनके लिये पाया समझो। ऐसा ही निर्णय कर अनन्त भवों भोग पाते रहे तो एक भव नहीं सही, क्या मुक्तिका मार्ग मिल जायगा, शान्ति और आनन्दका मार्ग मिल जायगा फिर तू सदाके लिये मिट जायगा? बल्कि सुखी हो जायगा। एक मोहको छोड़ दे तो सदाके लिये तेरे क्लेश मिट जायेंगे।

हे आत्मन्! तू ज्ञानस्वरूप है, तेरेमें जन्म नहीं, मरण नहीं, तू तो एक ज्ञानस्वभावमात्र है। इस स्वभावमें न जन्म है, न मरण है, न क्लेश है, न दुःख उस तेरे स्वभावमें कुछ भी तो विकार नहीं है। तू अपने इस स्वरूपको देख सबसे निराला बन, केवल तू ही यह स्वयं आत्मज्ञानमात्र है, आनन्दमय है, कोई झगड़ा नहीं, कोई विवाद नहीं। उस स्वरूपको देख, सबसे निराला बन। उस स्वरूपसे जरा भी हटे, जरा भी शिथिलता डाल दी तो गल्तियाँ बढ़ती चली जायेंगी। जहाँ कहीं सवालके हल करनेमें पहले पहले कोई गल्ती कर दे तो वह

गल्ती बढ़ती ही है। इसी तरह स्वयंमें गल्ती करते आये तो यह गल्ती बढ़ती भी चली जाती है। जितना भी यह क्लेश होता है वह तेरे भ्रमसे होता है। जब यह भ्रम होगा कि मैं कुछ नहीं हूं, किन्तु दूसरेके बलपर मेरा जीवन रहता है, दूसरेके बलसे ही सुखी होता हूं, दूसरेके बलपर ही मेरी जिन्दगीका ठौर होता है, जब ऐसा मिथ्याज्ञान तेरेमें आयेगा तो अपने आपमें कहीं संतोष कैसे पायगा ? जैसे किसीसे कोई कहे कि तुमको जो कुछ चाहिये सो ले लीजिए २४ घंटे बाद दूंगा, तो वह २४ घटे उसके पीछे सोच सोचमें ही बरबाद होगा, उसको एक घटा भी सुख न हो सकेगा। इतनी बातकी आशामें उसको इस २४ घटेकी परेशानी हुई, अब क्या ठिकाना जब २४ घंटे पूरे होंगे, तब कहा कि बोल क्या चाहता है तो कहा माफ करें अब जब तक मांगा भी नहीं, तो कल्पनामें २४ घटे खराब गये और अब मैं तुमसे ले लूंगा कुछ, तो जिन्दगी खराब हो ही जायगी।

कोई कहता है कि जीव हवा है, कोई कहता है कि सांस है, अनेक रूपमें इस जीवकी कल्पना होती है। परन्तु ऐसा कुछ नहीं है कि हवा है या सांस है। आया सो आया, गया सो गया, ऐसा कुछ नही है। यह जीव तो ज्ञानानन्दघन पदार्थ है, केवल ज्ञानमात्र है, भाव-मात्र है, केवल चैतन्यभावमात्र है, ठोस है, ज्ञानघन व आनन्दसे परिपूर्ण है, धोखेकी कोई बात नहीं। जो उसको साररूपमें नहीं पकड़ता उनके लिये धोखा है। शरीरमें जीवका बना रहना क्षणिक है किन्तु शरीर जिन परमाणुवोंसे रचा हुआ है न तो वे परमाणु क्षणिक हैं और न यह जीवतत्त्व ही क्षणिक है। जीव क्षणिक नहीं वह तो ठोस पदार्थ है, वह आनन्दघन है, मजबूत तथ्य है। उससे बढ़कर संसारमें कुछ है ही नहीं। जो इसको समझ लेता है वह आनन्दमग्न हो जाता है। जो नहीं समझ पाता वह जगत्‌में सब जगह ठोकर खाता है। बाह्य पदार्थकी हानिसे अपनी हानि समझता है, बाह्यको अपना सब समझता है। अकिंचन भाव रहा तो यह आत्मा वैभवपूर्ण है। इसका और कुछ है ही नहीं। जो बाहरमें अपना कुछ मानते हैं वे ही परकी उधेड़बुनमें पड़ेंगे। मेरा कुछ है ऐसे भावमें जो बहता चला जाता है वह तो टोटेमें रहता है और जो उसका कुछ नहीं है ऐसा निर्णय करके सबसे पृथक् होकर केवल आत्मारामसे नेह लगा लेते हैं इनके लिये सर्वोत्कृष्ट वैभव प्राप्त होते हैं। इस महत्त्वमें ही परमात्माकी हम पूजा करते हैं। बतलाओ क्या है उनके पास दूसरी चीज, एक पैसा नही, एक धागा नही, एक अनाजका दाना नहीं, जरासा कुछ नही। खराब चीज उनके पास कुछ नही है, जब भी आप उनकी उपासनामें लीन होते हैं। भैया! बाह्यपदार्थोंकी जिद न करो जो कर्म आपने किया है जो गति ठन गई है, सारी बातें यह तैयार करली है मरणके बाद तो उसमें अब बस नहीं चलेगा, मैं एकइन्द्रिय नहीं होना चाहता हूं ऐसी जिद न चलेगी। मरते समय अगर कीड़े मकोड़े बनना है तो मैं नहीं बनना

चाहता हूं यह जिद न चलेगी। इस भवमें चाहे पुण्यवश कुछ भी थोड़ी जिद कर लें। जैसे किसी ने मना भी कर दिया तो यहाँ पर जिद चल जाती है, अन्यायसे जिद चल जाती है। कब तक? जब तक पुण्य साथ दे रहा है, मगर मरणके बादकी भी बात सोचो—भैया अपना स्वरूप देखो, मैं तो इस जगत्‌का सबसे निराला जीव पदार्थ हूं, यदि यह सत्य स्वरूप उपयोगमें बसा लूं तो अपनेमें अपने आप स्वयं सुखी हो सकूंगा।

सुखका घातक तो अज्ञानभाव है। अज्ञानका अर्थ है वस्तुके यथार्थस्वरूपका पता न होना। वस्तु जगतमें अनन्त हैं। अनन्त जीव हैं, अनन्त पुद्गल हैं, एक धर्मद्रव्य है, एक अधर्मद्रव्य है, एक आकाशद्रव्य है, असंख्यात कालद्रव्य हैं। इनमेंसे किसी भी एक पदार्थको देखें, प्रत्येक पदार्थ अपनी अपनी सत्तामें है, अपने अपने ही प्रदेशोंमें अपने अपने ही स्वरूपमें अपनी अपनी एक अवस्थाका उत्पाद करता है व उसी समय पूर्व एक पर्यायको विलीन करता है और वह सत् स्वयं वहीका वही बना रहता है। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ निज निज गुणात्मक है। इस कारण किसी भी पदार्थका किसी भी पदार्थके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु इस वस्तु मर्मका जिन्हें ज्ञान नहीं है और इसी कारण सम्बन्धबुद्धि, कर्तृत्वबुद्धि, भोक्तृत्वबुद्धि आदि रूप अवगम है, सो चूंकि जीव तो किसी न किसी पदमें रमनेका काम करेगा ही। लो यों अब वह भोगोंमें रमने लगा, भोगोंमें हित बुद्धि की, इसी कारण दीन पुरुषकी भांति बाहर बाहर ही दौड़ लगाता रहता है यह। हाय बड़े कष्टकी बात है कि ज्ञानस्वभावमय होकर भी मैं दीनकी भांति परपदार्थोंमें दौड़ लगाता हूं, नाना आशायें रखकर। अब ऐसा नहीं होगा। जब तक मेरे अज्ञान था तब तक मेरे भोगोमें प्रीति थी, अब अज्ञान मिटा तब अब अन्यत्र मैं नहीं दौड़ूंगा। मैं तो अब अपने आपमें ही रमकर स्वयं सुखी होऊंगा।

ज्ञातृत्वं मयि सर्वेषु स्वायत्तं साम्यसंयुतम्।
कस्य कः ज्ञातृता दृष्ट्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-२३॥

जीवका स्वरूप है ज्ञातापना, ज्ञानस्वरूप होना, प्रतिभासस्वरूप होना। वह ऐसा स्वरूप है कि समता तो उसमें अपने आप ही भरी हुई है। केवल जानना जो है उसमें रागद्वेष नही होता। राग द्वेष होता है तब जब जाननेसे आगे बढ़ता है केवल जाननेसे राग नहीं, द्वेष नहीं। ऐसी समता वाला ज्ञान आत्माका जो स्वरूप है वह स्वाधीन है, जो स्वाधीन स्वरूप है उससे संतोष व आनन्द उत्पन्न होता है और जो स्वाधीन नहीं है, पराधीन है उसकी उपासना विपदा उत्पन्न करती है। लोकमें भी देखो जो बात पराधीन है उसकी इच्छासे विपदा है, जो अपने स्वाधीन है उसमें उतनी विपदा नहीं। यद्यपि लोकमें बाहरी चीज कोई

स्वाधीन नहीं, सब पराधीन हैं तब भी एक मोटा दृष्टान्त दिया। पराधीनतासे दुःख है, सब पराधीन हैं, धन वैभवका मिलना पराधीन है और कषाय विषयका होना पराधीन है, धन वैभवका मिलना भी पराधीन है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, जो ज्ञानस्वभाव है उसके बसकी बात नहीं है कि कषाय कर ले। कषाय उत्पन्न होती है वह भी कर्मोदयकी आधीनता है। शरीर मिलता है वह कर्मके आधीन है। स्वाधीन चीज तो कुछ मिलेगी ही नहीं। परपदार्थ में कुटुम्बके योग हैं, वे भी अपनी न्यारी सत्ता वाले हैं, वे अपनी अपनी परिणतिके आधीन हैं। मित्रजन हैं जिन्होंने कुछ उपकार किया वे भी पराधीन ही हैं। यह सब कुछ मेरा नहीं, मेरा धन तो अपना अनन्त आनन्द चैतन्यस्वरूप सत्यकी दृष्टिमें कोई धोखा नहीं, खतरा नहीं, कोई क्लेश नहीं। आत्मस्वरूपकी दृष्टिसे जो चिग जाते है उनको तो वैभव भी विपत्ति ही है। मोहमें जीवको सर्वत्र आनन्द है और मोही जीवको सम्पदाके बीचमें भी विपत्ति है, मोह है। इसलिए मोही कहा जाता है। वैसे तो मोह, मूढ़ता व अज्ञान सब एकार्थक हैं, किन्तु लोग मोही सुनकर तो बुरा नहीं मानते, लोग मूढ़ सुनकर बुरा मानते हैं, बात एक है। मूढ़ तो मोह करनेसे बना है, कुछ कहनेसे नहीं।

एक आदमी था बेवकूफ। उसका नाम मूरखचन्द रख दिया लोगोंने। उसे सब लोग मूरखचन्द कहते थे। वह गांवके बाहर भग गया और रास्तेमें एक कुंवा था उसमें पैर लटकाकर बैठ गया। इतनेमें एक आदमी निकला और उसे इस तरह जब देखा तो बोला—अरे मूरखचन्द कहां बैठा है? उसने प्रेमसे उसके गले लगाकर कहा, कैसे आपने जाना कि मेरा मूरखचन्द नाम है? किसने तुम्हें बताया कि मेरा नाम मूरखचन्द है? वह मुसाफिर बोला कि तेरी करतूत ही बताती है कि तुम्हारा नाम मूरखचन्द है? सो भैया! उपादान हम लोगोंका अशुद्ध है तो मोही है ही। जिनका उपादान है जिस-जिस रूप, उनका नाम वैसा पीछे पड़ा। करतूत है तब नाम पीछे है, यह नहीं कि नाम पहले रखा है कर्तव्य पीछे। करतूत पहले, नाम बादमें। ज्ञान उसको ही कहते हैं जो अपने ज्ञानके स्वरूपको जान जाये उसका नाम है ज्ञान और जो अपने ही ज्ञानको स्वयं न जाने और दुनियाके सारे पदार्थोंको जानता है उसको कहते हैं अज्ञान। यह मोक्षमार्गमें ज्ञान और अज्ञानकी पद्धति है। कोई कितने ही ठाट-बाट बना ले, कितनी ही सम्पदा जोड़ ले, परन्तु शान्ति तब तक नहीं मिलेगी जब तक अपने सहज ज्ञापस्वरूप ही मैं हूं, इतना स्वयंमें ही यह न मान जाय। मैं ही स्वयं को स्वयंमें सब कुछ हूं यह प्रत्यय हुए बिना शान्ति नहीं है। अपने आप जैसी सत्ता है वैसा न माना जाय तो अपनेसे तब तक शांति नहीं मिलेगी, लेकिन मोही प्राणीने अपनेको बीसों तरहका मान रखा है। है यह एक तरहका, सर्वसाधारण चेतनामात्र एकस्वरूप। परन्तु मान रखा है बीसो तरहका अपनेको। अमुक आकारका मैं हूं, मैं अमुक जातिका हूं, ऐसा अनुभव

है। अफसर हूं, मैं ऐसी इज्जत वाला हूं, बाप हूं, मामा हूं, बच्चा हूं, कितने तरहका मान रखा है कि गिनती तक नहीं करायी जा सकती है। भीतरसे इतने विकार विकल्प उत्पन्न होते हैं जिनका कोई बयान नहीं कर सकता, तो बोलो कितने रूप अपनेको मान रक्खा है? अनगिनती रूप अपनेको माना है, है तो यह एक रूपका; जैसा भगवान् वैसा मैं चेतनामात्र हूं, किन्तु मान रखा है अन्य रूपोमें ज्ञानको। कैसी मूर्खता है, मूर्खता मूढ़ता मोह सब एक ही बात है, जरा भी अन्तर नही है। चाहे मोही कह लो, चाहे मूढ कह लो। मैं स्वयं अपने आप कैसा हूं इसका निर्णय ही सच्चा ज्ञान है। इतना ज्ञान हो जानेके बाद फिर लौकिक ज्ञान भी चलता रहे तो भी यह जीव अज्ञानी नही कहलाता, क्योंकि वास्तविक ज्ञानके कारण मोक्षमार्गका ज्ञान प्रकट हो गया है। मैं प्रभुसमान चैतन्यस्वरूप एक पदार्थ हूं, इसका किसी से सम्बन्ध नहीं, इसको किसीकी अपेक्षा नही, यह तो बिल्कुल स्वतन्त्र है, ऐसा अपना स्व-रूप अनुभवमें आये तो मुख्य ज्ञान तो हो ही चुका, लौकिक बातोंका ज्ञान न हो सके, नहीं सही, उससे मोक्षमार्गमें बाधा नहीं आती। एक यह ज्ञान हुआ कि बादमें फिर सभी बातें ठीक होती चली आती है। एक बर्तन सीधा नीचे रखें तो तुम उसके ऊपर सारे घड़े सीधे रखते चले जाओ, तीसरा घड़ा रखोगे सीधा आयगा, उल्टा कोई नहीं जायगा।

तेरी आत्माको स्वयं ज्ञान हो गया तो जो तू करेगा सो ठीक होगा, बनावटकी बात ज्ञानमें नहीं आयगी। जो करोगे सीधा करोगे क्योंकि भूलमें अपनेको सीधा बना रक्खा है। यह सत्परिणाम रक्षक है उसका, दूसरा तो दूसरा ही है, उसका तो उसमें अत्यन्ताभाव है, उससे मेरी रक्षा हो ही नहीं सकती। उसकी रक्षा यही है कि बनावट, सजावट, दिखावट इससे दूर रहे, इसीसे सारा जीवन उसका ठीक होता चला जाता है। उसका स्वभाव है ज्ञाता बनना, जान लेना, यहाँ तक कि उसमें विकार नहीं कुछ। पवित्र तो मैं हूं, इतना काम करनेसे तो मैं स्पष्ट पवित्र हूं, कितना कि जान लो। केवल जानना ही जितना स्वरूप है उतना जान लो। जानना आत्माका स्वभाव है उससे आत्माको अलग नहीं किया जा सकता है, पर जाननेके अतिरिक्त जो परिणाम पैदा होता है, राग करनेके, पक्षपात करनेके भाव बनते है तो विपदा ही विपदा है। सारा काम बेकार है, अपवित्र है, इसकी बरबादीके कारण है। सो भैया! यही भाव रक्खो कि केवल ज्ञाता बनना है और यह ज्ञाता स्वयंके समझनेके लिए होना है। आत्माका सहजस्वरूप शुद्ध है, रागद्वेष क्लेश भी जहाँ नहीं है और यह सभी स्वाधीन है। बाकी यह सब बातें जो सबको आसान लग रही हैं भ्रम करके होती हैं। देख लो कैसा उसका स्वरूप है, कैसा आपका स्वरूप है, कैसा जीवका स्वरूप है, किन्तु मोही जीव यथार्थ न देखकर आपको अन्यथा देखता है। यह पर्याय धन अनित्य है ऐसा

अपने बारेमें तो ऐसा नहीं पाता, दूसरेको झट अनित्य समझ लेता है यानी दूसरेकी अनित्यता तो मनमें भर रक्खी है कि यह उसका है, मिट जाता है, लड़के उसके हैं, वे मर सकते हैं, यह दूसरा है मर सकता है किन्तु मैं यह मरने वाला हूं, अपने पक्षका खण्डन कुछ नहीं कर सकता हूं। दूसरोंके परिवार, धन, बच्चोंके प्रति कह लेता कि इनका है क्या, भला अपने घर वालोंको ऐसा कह पाता है क्या, उस जीवका स्वरूप विलक्षण कुछ अलग बैठा है क्या? किसका कौन है? कोई आदमी अपने देशसे भागकर लुटिया डोर लेकर चला; दो एक रुपया लेकर चला। किसी शहरमें ठहर गया। वह १०-५ वर्षमें हो गया लखपति। उसने यह नहीं सोचा अपनेको कि यह लाखोंका धन मेरा नहीं है किसी सालमें आ गया टोटा। रह गये कोरे, तब उसने समझ लिया कि मैं लुटिया डोर लेकर ही तो आया था मेरा क्या है? ऐसे ही आया ऐसे ही गया, इसी तरहसे वियोग होने पर तो हमने समझ लिया कि हमारा कुछ नहीं है, न मेरा कुछ होगा, पहले भी कुछ नहीं था। पुण्योदयसे जो मिला है वह सब हमारा कुछ नहीं है। यह सब तो परवस्तु है, यह बात तब समझमें आती है जब उसका वियोग हो जाता है जैसे दादा, दादी वगैरह जो मर चुके हैं उनके बारे में तो यह निर्णय कर लिया है कि वे मेरे नहीं थे किन्तु जो अभी समागममें हैं उनको नहीं सोच पाता कि ये मेरे नहीं हैं। सत्य विश्वास हो जाना कि उसका कुछ नहीं है यह कठिन है, सत्य है, विश्वास न करें तो भविष्यमें भी जरा भी संतोष नहीं होगा। अपने यथार्थ-स्वरूपको समझता है जो उसीको ज्ञानी कहा है। जो वर्तमानमें मिला है वह अत्यन्त भिन्न है, इसका कोई स्वरूप मुझमें नहीं है ऐसी दृष्टि वर्तमानमें मिली हुई पदार्थोंमें आ जाय उसे कहते हैं ज्ञानी। जिसने यह कर लिया उसका बेड़ा पार और नहीं कर लिया तो यहाँ भी दुखी और मृत्युके समय भी दुःखी और जहाँ जन्म लेगा वहाँ भी दुःखी सब जगह दुःख। जैसे यहाँ सब लोग कहते है कि ससुराल चनेकी खेती है, जैसे शुरूमें चना उग गया उसमें हरे पत्ते आये, पत्तोंकी साग काम आयी, हरे चने लगे तब बेटी तोड़कर चने खाये और गदरा हुए तो होला बनाकर खाया, जब खूब पक जाय तब दाल बनाकर खाया, सेव बनाकर खाया। ऐसे ससुरालमें सगाईमें रुपये पाये, शादीमें धन लूटा, बच्चे हुए तब धन लूटा, बच्चे की शादी हुई तो धन लूटा, लूटते चले जाते हैं। ऐसे ही यह अज्ञान है इस अज्ञानमें हर जगह दुःख है। जिस समय अज्ञान है तब तो दुःख होगा, मरणके समय वियोग है तब दुःख होगा, मरनेके बाद जो भव पाया वहाँ दुःख। सो भैया! अज्ञानसे हटकर अपने स्वरूपका निर्णय कर लो। पैसा अपने पास न्यायसे थोड़ा श्रम करके जितना आये उसीमें हिम्मत करके गुजारा कर। अपने लायक परिश्रममें जो आता है, उसका संतोष कर, धर्म छोड़ दे

कि दुनियाको कुछ दिखाना है। केवल भगवान्‌को देख तुम्हारे ज्ञानमें यह प्रभु आया कि नहीं। जो न्यायसे मिले उसमें गुजारा करना एक तपस्या है, कुछ क्लेश है और क्लेश कुछ भी नहीं, तब तो इसका आनन्द समझमें आयेगा, नहीं तो धोखा खायेगा। अपनेको ही देखो मेरा भगवान् स्वरूप मेरी रक्षा कर सकता है दूसरा कोई नहीं, जब घरेलू कार्य धन्धे बढ़ते हैं तो इसके मोक्षमार्गमें बाधा डालते हैं। सादगीसे रहना मोक्षमार्गकी बाधाओंको दूर करना है। जब शान शौकत कम करदी जाती है तब सन्मार्गमें बुद्धि चलती है। जो ज्ञानी जीव है उस जीवको इतनी फुरसत कहाँ कि वह शरीरके शृङ्गार करे। ज्ञानी तो गृहस्थीमें रहता जरूर है किन्तु जलमें कमलवत् भिन्न है, उसको तो लौकिक काम करने पड़ते हैं, किन्तु भावना यह है कि कब घर छोड़कर अपने स्वरूपमें रम स्वयं ज्ञातामात्र बनूं। ऐसा जो स्वरूप सब जीवोंमें है। जो सर्वस्व मेरा स्वरूप स्वाधीन है समतासे भरा हुआ है, मैं अपने स्वाधीन उस शान्त स्वरूपको देखकर अपनेमें अपने आप स्वयं सुखी होऊं। दूसरोंकी आशा न करें कि यह जीव उसे सुखी कर देगा, यह पदार्थ कर देगा। जब भी सुखी होंगे तब अपने ज्ञानसे अपनेमें स्वयं ही सुखी होंगे।

यत्रैव भासते विश्व सोऽहं विश्वं न साकृतिः।
ज्ञाता द्रष्टा स्वतन्त्रोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-२४॥

मैं क्या हूं, जहाँ यह सारा विश्व प्रतिभासित होता है वह मैं हूं। ज्ञानका काम जानना है, थोड़ा जानना नहीं, बस जानना है सब जानना है, क्योंकि आत्माका स्वभाव जानना है। उस जाननेमें सीमा नहीं है, कितना जानना उसका तो जाननेका स्वभाव है और जानना कोई सापेक्ष नहीं है कि सामने की ही जाने, जान जावो सामनेकी, ठीक है, किन्तु उसके हिसाबसे जानना नहीं है किन्तु यदि कोई वस्तु है उसको जानना है, सतके हिसाबसे जानना है, सामनेके हिसाबसे जानना नहीं है, १०, २० कोसके हिसाबसे जानना भी नहीं है, किन्तु है तो वह सब जानन, चाहे वह क्षेत्रकालकी दूरीके रूपसे है चाहे किसी तरहसे है, है तो जान लेना। फिर आत्माके ज्ञानका कितना जाननेका स्वभाव है? कितना है? कितना जाननेका काम है? सब जो कुछ भी सत् होता है वह सब जाननेमें है किन्तु यहाँ मुझमें जगत् नहीं है और आत्मामें जो यहाँ आकार बन गया, आत्मामें ज्ञेयाकार बन गया, प्रतिभास बन गया वह भी मैं नहीं, ऐसा मैं शाश्वत हूं, किन्तु दुःखकी बात है कि उस पर दृष्टि नहीं, जहाँ पर सारा विश्व प्रतिभासमान होता है जहाँ सारा विश्व प्रतिभासित होता है वह तो मैं हूं पर मैं प्रतिभास नहीं, क्योंकि मैं आनन्दनिधि ज्ञान चेतनामात्र हूं, शक्तिमात्र हूं। आत्म-स्मरण करके ज्ञानमें ज्ञान समझा तब योगी महासुखी हुए। संसारमें

रहता तो किसीका कुछ है नहीं, सब मिटेगा, सबका बिछुड़ना होगा, लेकिन जब यह मिलता है उस समय ऐसा समझ ले तो उसका बेड़ा पार है और यदि उल्टा समझ ले और मरण के समय छोड़ना पड़े तो सब बेकार है। जगत्में ठाट-बाट हैं, मोहके साधन हैं, पैसा है, जन है, नौकर हैं, चाकर हैं, अच्छे अच्छे महल बने हैं, मगर समझाने वाला विवेक जब भीतरसे आता है तो आरामके साधन सब विष लगने लगते हैं। समझाने वाला कोई हो छोटे बड़ेकी अपेक्षा ही नहीं। जब भविष्य अच्छा है तो उसका ज्ञान बढ़ेगा, विरति होगी, आत्मदृष्टि जगेगी, भीतरकी प्रेरणा ही इस जीवको समझा सकती है।

गुरुजी एक कथा सुनाते थे कि एक बाजारमें कुजड़िया थी, भाजी बेचने वाली। बादशाह सामनेसे निकला। देखा कुजड़ियाकी लड़की भी वहां बैठी थी, बादशाहने इच्छा की कि शादी हो जाय। वजीरने कुजड़ीको बहुत समझाया कि बादशाहको ऐसी इच्छा है कि हमारी शादी इस लड़कीसे हो जाये। कुजड़ियेके यहांकी भड़वे-भड़वेकी बोली, सो कुजड़ी यही गाली देकर बोली कि लड़कीकी शादी वहां होगी जहां १० बातें गालीकी भी सुनाई जावेंगी, बादशाहके यहां ऐसी कुछ बोलचाल ही नहीं। दीवान गया, और भी लोग गये सबको गाली सुनाई। एक सिपाही बोला—महाराज, अभी मैं ठीक कर सकता हूं। उसे क्या चाहिये था? बस, सिपाही गया, कुजड़ियेकी चोटी पकड़ी और खूब झटकारा। कुजड़ियेने कहा बात क्या है आखिर बताओ तो क्या बात है? बात क्या है, देख यह बात है कि तेरी लड़कीकी शादी बादशाहसे की जायगी, कुजड़ी बोली कि ठीक है, सिपाही बोला कि तू तो पहले करनेको तैयार नहीं थी। कहने लगी—भड़वोंका भड़वा कोई समझाने वाला नही मिला जो मुझे यों बताता। हां यों इस तरह समझाने वाला कोई है नहीं। जैसा मोहियोंने चाहा वैसा किया कर्तव्य कुछ नही सोचा। हां, तो इस जीवको जैसे कर्तव्य करना हो तो विवेक उसको संभाल सकता है। पर अन्य कोई ऐसा जीव नहीं है जो उसकी रक्षा कर सके। विवेक ही रक्षक है। संसारमें हम अपनी परिणतिको देखते हैं तो अभी हीन हैं, पराधीन हैं। इस परिणति का क्या है कुछ धन हो गया, क्या मिला? तू तो ऐसा स्वरूप वाला है कि सारा विश्व तुझमे प्रतिभासित हैं। सर्वद्रष्टा बन, इतना बड़ा तू है, मगर इस बड़प्पनको भूल गया, लौकिक इज्जतको क्या समझना? यदि मरकर कीड़े-मकोड़े बन गये तो फिर क्या होगा? अपने आप कैसा है शुद्ध, सबसे निराला, चेतनामात्र, नामरहित एक आत्मतत्त्व है, एक ऐसे जीवसे उसका जरा सम्बन्ध नही। अगर मैं मानूं कि परिवार मेरा है तो यह भी मूर्खताका नाम है। सब वस्तुओंमें से उत्कृष्ट तो निज भगवान् है, परिवारको समझा कि यह मेरे हैं, साधु इत्यादिको समझा कि मेरे है, वहां मोह है। जहां भगवान्को समझा कि मेरा है वहां

भी मोह है। केवल एक शुद्ध मैं ज्ञानस्वरूप द्रष्टा ; वहाँ मेरा क्या है ? इसका ऐसा मोह हो गया कि वह दुश्मनसे भी ममत्वका प्रेम दिखाता है कि यह उसका दुश्मन है। मेरा तो मान लिया औरोंको कि यह मेरा है। सबसे निराला जो आत्मस्वरूप है उसे तो समझा ही नहीं। किसीको अच्छा खाना मिलता है। कुछ बढ़िया खाना मिला तो क्या हो गया ? इससे बढ़िया काम, तो आत्मस्वरूपके दर्शन हैं, क्योंकि विषयकषायोंसे पूरा ना नहीं पड़ सकता, पूरा तो पड़ेगा आत्म-विश्वाससे। पर देखो यह सारा विश्व कितना बड़ा है ? ५२६$\frac{6}{19}$ योजन और एक योजन होता है २ हजार कोसका। ऐसे ५२६ योजनका यह भरतक्षेत्र है। यह क्षेत्र जम्बू द्वीपमें है। यह सब आप इसलिए बता रहे हैं कि यह ध्यानमें आ जाय कि इतना बड़ा यह सब लोक है और इसमें एक भी प्रदेश ऐसा नहीं बच जाता है जिसपर यह अनन्तों बार जन्म मरण न कर चुका हो। इस जम्बूद्वीपके चारों ओर समुद्र है। इस तरह समुद्रके बाद द्वीप चलते चले जाते हैं। अरब, खरब, नील, दस अरब, शंख, महाशंख, शंखसे अधिक आजकी भाषामें संख्या नहीं, किन्तु इनसे कई गुणा असंख्य याने जिनकी गिनती नहीं है इतने द्वीप समुद्रके हैं। अन्तमें स्वयंभूरमण समुद्र है यह सब मिलकर भी एक राजू नहीं कहलाते। इस तरह ३४३ घन राजू दुनिया है। इतना बड़ा यह सारा विश्व है। इस सारे विश्वके बीच अगर एक कोनेमें आ गये याने १०-२० मीलकी इस एरियामें परिचित हो गये तो क्या बड़ी बात हो गयी ? जगत्में अनन्तानन्त जीव हैं। इन अनन्त आत्माओंमें मनुष्य कितने हैं ? अनन्तानन्त जीवोंके मुकाबलेमें सारे मनुष्योंकी कुछ गिनती नहीं। समुद्रमें तो एक बूंदकी फिर भी गिनती है। थोड़ेसे जीवनमें अपना आत्मबोध करके अगर कुछ अपने हितका यत्न कर रखा है तब तो तुम्हारी तारीफ है और अपने इस थोड़े समय बाद आयु समाप्त हो जाय और जन्म मरणके झगड़े लगाये रहे इसमें कुछ बुद्धिमानी है क्या ? अच्छा बताओ कोई ऐसा समय था कि जिससे पहले समय ही नहीं था। क्या यह हो सकता है कि कोई भविष्य में ऐसा समय आयेगा कि उसके बाद कोई समय ही न रहे। ऐसे अनन्तकालके बीचमें यह ५० वर्षका समय बीत जाता है। यह ६०, ७०, ८० वर्षका समय क्या कुछ गिनतीमें रहता है, फिर थोड़ेसे समय ५०-६० वर्षके लिए इतना उत्पात मचाना, गर्व करना, पक्षपात करना बाहरी पदार्थोंसे झपटते रहना और उसमें अपनेको एकमेक समझना क्या यह विवेक है ?

सो भैया ! यह सब मायामय चीज हैं। अपने अन्तरमें स्वयंको देखो और शुद्ध ज्ञान-मात्र बनो। कैसा भी समय हो अपने भीतरकी दृष्टिसे भावात्मक निजमें उपयोग कर लो स्व-रूपमें केवल आनन्द ही आनन्द है, दुःखका नाम नहीं है। ऐसा चैतन्यभावात्मकरूप जहाँ कोई लोग कहते हैं—ब्रह्म है और एक है। यह चैतन्यस्वरूप आत्मतत्त्व जब भावदृष्टिसे ही

रूप हो तब इसमें अनुपम आनन्द है। हम अपने चैतन्यस्वरूपको देखें वह एक भी नहीं है, अनेक भी नहीं है, वह तो स्वरूप ही स्वरूप है वह अन्य अन्य रूपोंमें नहीं और एक भी नहीं है। मैं स्वरूपमात्र हूं ऐसा वह तत्त्व है। जहां लोग पुरुष या ब्रह्म या ईश्वर मानकर उपासना करते है ऐसा शुद्ध तत्त्व मैं हूं, ऐसा मानकर अपनी ओर दृष्टि करें तो मुझे सुख है। जहां विश्व प्रतिभासमान होता है वह तो मैं ईश्वर, विश्व मैं नहीं हूं, वह ज्ञेयाकार भी नहीं हूं, बाहरी कोई भी चीज सुखके लिए नहीं है। रागमें अन्धा बनकर चाहे कुछ भी कर लें। विवेकसे सोचो तो कौनसा सम्बन्ध सुख है वैभवका या परिवारका सम्बन्ध इस सुखके लिए है कोई भी नहीं है, सब सम्बन्धोंमें दुःख ही दुःख हैं। मैं ही स्वयं हितरूप हूं, सहज अनन्त आनन्दमग्न हूं, सर्वदर्शी हूं, मैं तो ज्ञानी हूं, द्रष्टा हूं, स्वतन्त्र हूं, अतः मैं अपने इस ज्ञानस्वरूपसे अपनेमें अपने लिए स्वयं सुखी होऊँ। किसी भी बाहरी पदार्थमें दृष्टि की या अगर किसीकी आशा की तो इतने ही में याने बाह्यवस्तुकी आशा करने भरमें ही दुःख हो गया। भैया! अपने ज्ञानस्वरूपको देख उसमें सुख है। मैं आत्मा ज्ञानस्वभावमात्र हूं यह नहीं समझता, इसलिए चमत्कार बाह्यपदार्थमें सब कुछ देखना चाहते हैं जहां यह सारा विश्व प्रतिभासित हो वह मैं हूं, मैं तो उसे जानने वाला हूं। बस जान लिया, अपने ही को जान लिया, इसमें समस्त ज्ञान आ जायगा। लोकमें भी देखो यदि इतना ही कहो कि हम तो जान गये, कोई पूछे क्या जान गये, उत्तर दो। बस जान गये, सब जान गये, हम तो जान गये तो वह इतना समझेगा कि वह क्या-क्या जान गया, सब जान गया होगा। फिर परमार्थमें तो यही सही है कि कवल जानता रहे तो वह सारा विश्व जान गया। आत्माका यह स्वरूप ऐसा महत्त्वशाली है कि यह ज्ञानमें आ जाय तो सर्वोत्कृष्ट वैभव मिल गया। बस मोह करना मिटा दे कि ज्ञानचक्षु काममें आएं। मैं ज्ञानस्वरूपकी आराधना करूं उसमें ही आनन्द है।

स्वाभिन्नं न हितं किञ्चिदद्वैतोऽहं हिते क्षमः।
द्वैताश्रिता मुधा बुद्धिः स्वां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-२५॥

अपने से भिन्न कोई भी पदार्थ अपने हितरूप नहीं। एक ही यह मैं अपना सर्वस्व हूं, अपना हितस्वरूप ही मैं हूं। मैं ही अपना हित करता हूं और मैं ही अपना अहित करता हूं। जहां विषय कषायोंमें लगे वहां अपना अहित कर डाला और जहां अपने सहज शुद्ध स्वभावमें झुक गये कि अपना हित कर डाला, हित और अहितका उपाय इतना ही मात्र है। यावन्मात्र विषय कषाय परिणमन है वह सब अहित हैं। उन विषयोंमें छटनी कर ले कोई कि ये हित करने वाले हैं व ये अहित करने वाले हैं वह सब अज्ञानके स्वप्न हैं। जो

जो समस्त विषय हैं वे सब हानि करने वाले हैं। आनन्द तो ब्रह्मरुचिमें है और सब व्यर्थ की बात है। प्रभु जैसी आनन्दकी झलक हो और सब व्यर्थकी बात है। धन, वैभव बढ़ गया, चारे लोग पूछने लगे इस बातसे क्या लाभ है, कुछ आनन्द नहीं होगा, सब जंजाल विपदाएं हैं, शुद्ध ज्ञानसे आनन्दका अनुभव है। सो वह काम उसका स्वभाव है। अंतरसे विकल्प विपदाको हटा दिया जाय तो उसका हित है। इसका सुख आत्मानुभव ही है, इसका सुख किसी अन्यके आधीन नहीं। मैं केवल यह मात्र अद्वैत अपनेमें अपना कार्य करनेमें समर्थ हूं। मुक्तिका काम मिल जुलकर नहीं होगा, मिल-जुलकर तो कोई भी काम नहीं होता है, पर फिर भी दुनिया मिल-जुलकर करती चलती दिखती है। लोगोंमें मोक्षका काम मिलकर होगा क्या? शांतिका उपाय एक ही अद्वैतभाव है। जब रामचन्द्रजी तपस्या कर रहे थे वह। सीताका जीव प्रतीन्द्र आया, इसने तपस्यामें बड़ी बाधा डाली इसलिए कि इन्हें अभी मोक्ष न हो जाय, फिर हम दोनों मिलजुल कर जावेंगे। सो भैया ऐसा हो जायगा क्या? जहां मिलने जुलनेकी बात है वहां मोक्ष बन्द है और जहां केवल अपने आपमें अकेला रह जाना है वहां मोक्ष पदार्थ है। मेरी हानि करने वाला मैं ही स्वयं हूं कोई दूसरा नहीं। परतन्त्रताका तनिक भी अनुभव न करना, स्त्री है तो क्या, बच्चे हैं तो क्या, बड़ा है तो क्या, परतन्त्रताका अनुभव न करो; हां यह बात जरूरी है कि जब जब व्यवहार लगा है तो प्रेमयुक्त विनय व्यवहार करो। एक दूसरेसे ठीक बोलना, जहां तक बने अपना कष्ट उठाये रहना, दूसरोंको कष्ट न देना, जहां तक हो सके दूसरोंकी सेवा उपकार कर देना, ठीक वचन बोल देना, पर अन्तरंगमें दूसरोंकी अपेक्षाका अनुभव न करना कि मेरी रक्षा करने वाले ये हैं, यह पिता हैं, मेरी रक्षा करने वाले हैं, यह पति है, मेरी रक्षा करने वाले हैं, यह स्त्री है मेरी रक्षा करने वाली हैं। मेरा भगवान ही मेरी रक्षा करने वाला है। कायरताका अनुभव न करो, नहीं तो यह जीवन दुःखी हो जायेगा।

देखो भैया! अपनेको मिला भी क्या है? वह तो प्रगट न्यारी वस्तु है। उसमें सम्बन्ध ही क्या? दुनियावी दृष्टिसे मन, वचन कायका संयोग है। इनका सदुपयोग करो, अपनेको ही पुण्य बना लो, ईमान साफ रखना। फिर कभी कोई गलतीकी बात भी नहीं की हो और यदि लोगोंमें पक्षपात है जिससे तुम्हारा अपमान हो तो भी मान अपमान क्या मानना? अहंकार है तो किस बातका है? तुम्हें तन मिला है, मन मिला है वचन मिला है, धन की तो कोई बात कहना ही नहीं, धनको तो विचित्रता है, किसीके पास धन है किसीके पास नहीं; पर तन मन वचन तो सबके पास हैं, वे तो विनाशीक हैं उनका सदुपयोग कर लो। वह जीवन सुखमय होता है जब तक तनमें बल है तब तक जो दूसरोंकी सेवा करे

दूसरोंका उपकार करे और न करे तो इस तनमें बलका संचय हो जायगा क्या और करोगे सेवा तो हानि नहीं हो जायगी, करोगे तो लाभ होगा। तो वचन मिला बोलनेको तो प्रिय हित वचन बोलो। प्रियवादीको कहीं विपत्ति नहीं और अप्रियवादीको जगह जगह विपत्ति है एक ऐसा कथानक है कि एक बार दांत और जीभमें झगड़ा हुआ। दांत बोला, तू क्या इठलाती है तू तो अकेली है हम ३२ हैं। तू अकेली है हम ३२ के बीचमें, जिस दिन मनमें आयेगा बस तू खत्म हो जायेगी। बड बड़ मत कर, जीभ बोली। ३२ हो तो क्या हुआ हममें तो वह कला है कि हम बत्तीसोंको तुड़वा दें। सो देख लो भैया, तुम अप्रिय किसीसे बोल दो, फिर तो दो चार मुक्कोंमें ही बत्तीसी झड़ जायगी। आपको मिला है भिन्न और विनाशीक तन, मन, वचन। सो भैया, तनसे सेवा नहीं करेगा तो तन बेकार है, करेगा तो सफल है, नहीं करेगा तो नहीं। मन है अच्छा, अच्छा विचार कर लो, सोच लो दूसरोंका सबका हित सोच लो। दूसरोंका बुरा सोचा तो अपना कल्याण करेगा? दूसरोंका अहित सोचनेसे तेरा मनोबल कम हो जायगा, दुःखी हो जायगा। जीवनमें एक गुण तो यह आना ही चाहिए कि हम तन, मन, वचनको बरबाद न करें। परमार्थसे तो तू अपने दर्शन कर आत्मस्वरूपमें रम। अपने बलमें विश्वास करो तो तुम्हें अलौकिक आनन्द प्राप्त होगा। वह आनन्द बाहर कहाँ रक्खा है जिनमें तू मोह करता है। सबसे विरक्त रह व्यवहार जरूर हित मित प्रिय वचनका कर। ममतापूर्वक दूसरोंकी ही सेवामें तू क्या पावेगा? दूसरोंसे सुख नहीं होगा यदि ठीक भी बोले तो क्या? सभी बार ठीक बोल लेंगे परिवारके लोग और यदि दो बार कडुवा कहा तो अच्छाई खत्म हो जायगी। जैसे कि बढ़िया बढ़िया भोजन बनाकर खिला दो और फिर बादमें कहो कि तुम्हारे बाप, दादाने कभी ऐसा अच्छा खाया है, बस सेवायें कीं और एक खोटा वचन बोला तो जितनी सेवा होगी वह सब बेकार हो जायगी।

सो भैया! आप पहलेसे ही समझते जायें कि यह लड़का जुदा है। इसका पालन-पोषण करने वाला अन्य कोई नहीं है यह अपने पुण्यसे पलता है। फिर आपका तो यह मात्र कर्तव्य है कि उसको पालपोस लें, अगर बापसे बढ़कर पुण्यवान् लड़का है तो फिर क्या है भाग्यसे ही तो यह लड़का इतनी सेवायें पाने वाला हुआ। बापसे भी बढ़कर पुण्यवाला लड़का हो क्या यह नहीं हो सकता। कैसा ही हो मगर बच्चेकी जो रक्षा होती रहती है उसमें ऐसा सोचना आसान है—लड़का मेरा है मैंने ही तो पाला है, इसका कुछ ठिकाना लगाया कुछ बेड़ा पार किया। मोह अगर बढ़ आवेगा तो उसका फल घोर दुःख ही है। यदि ज्ञान पहले ही से बना रहेगा तो जीवनमें क्लेश न होगा। आपसे प्यारा कोई अन्य

पदार्थ आपको हानि कर दे ऐसा कदापि नहीं हो सकता। प्रत्येक पदार्थ अलग-अलग स्वरूप लिये हुये हैं, अपने अपने ही में वे परिणमन करते हैं, एक बात जरूर है एक भले संगमें रहने से संगमें रहने वाले भी भले हो जाते हैं और बुरे संगमें रहनेसे खराब हो जाते हैं, पर भाग्य सबका न्यारा है। एकत्वका आश्रय ही अद्वैतका आश्रय है, मेरी रक्षा करने वाला मैं ही हो सकता हूं और वह कैसा है ? सहजस्वरूप लिये हुये है, सहज सत्ता लिये हुए है। ऐसा मैं हूं स्वयं स्वरूप लिए हुए हूं, यह है अद्वैत बुद्धि और अपना स्वरूप भूलकर दूसरा ही मेरा सर्वस्व है, ऐसी बुद्धि करना सो द्वैतबुद्धि करना है। दूसरोंका आश्रय करके जो विकल्प करने वाली वस्तु है, उसमें अहित ही होता है। अन्यकी ओर दृष्टि करनेसे विकल्प होते हैं, विकल्पसे मलिनता बढ़ती है।

एक कोई ब्राह्मणका लड़का था, वह लिख गया, उसने कहा हम शादी करेंगे तो अन्धी लड़कीके साथ करेंगे, हमारी अन्धीसे शादी हो। शादी हो गयी, उस स्त्रीने कहा तुमने ऐसा क्या कर लिया। कुछ दिन बादमें दो तीन लड़के हो गये। बाद वह अन्धी जिद करने लगी कि मेरी आंख खोल दो, तुम तो मंत्र बहुत जानते हो उसने आंखें खोल दी। दो तीन वर्ष बादमें एक बच्चा और हो गया। एक दिन उस स्त्रीने कहा कि तुम मेरी आंखें पहिले क्यों नहीं खोलते थे ? पुरुष बोला अच्छा, आज एक काम करना, रोटी मत बनाना लड़के आयें और कहें कि रोटी क्यों नही बनायी तो कहना कि तुम्हारे बाप हमें गाली देते हैं, नाराज होते इस कारण हमने रोटी नही बनायी, फिर जो वे उत्तर दें मुझे बताना। उसने रोटी नहीं बनाई। बड़ा लड़का आया बोला माता जी आज रोटी नहीं बनायीं, माँ बोली कि तुम्हारे बापने गाली दी है इससे रोटी नही बनाई। लड़का बोलता है कि आप माता हैं और वे पिता हैं आप लोगोंके बीचमें हम क्या कह सकते है किन्तु दुःख नही सह सकते, हम भूखे नहीं रह सकते हैं।

दूसरा आया, तीसरा आया, वही बात हुई। चौथा लड़का आया और बोला अम्मा आज रोटी क्यों नहीं बनाई ? माँ ने उत्तर दिया कि हमें तुम्हारे बापने गालियाँ दी हैं, इस से रोटियाँ नहीं बनाई। तो वह चौथा लड़का बोला कि अम्मा, बाप बापको हम अभी देख लेंगे, तू तो रोटी बना, हमें तो भूख लगी है। देखो भैया ! आंख खुलनेके बाद स्त्रीमें चतुराई आयी, लोगोंको देखा विकल्प बढ़े, विकार बढ़ा, उस ही का फल देखो चौथे लड़केने क्या कहा ? भैया ! यहाँ कोई आनन्दका साधन नहीं, आपको जो आनन्द आता है वह लौकिक एवं विनाशीक आनन्द है। आपको चाहे जो समय हो, कुछ भी साधन हो सर्वत्र जो आनन्द मिलता है वह आनन्द स्वयंका ही मिलता है।

इस वास्ते ऐसा निर्णय करके मेरे वास्ते मैं ही जिम्मेदार हूं, मैं अपने परिणामको सदा शुद्ध बनाता रहूं अपने स्वभावका दृष्टि कर सकूं ऐसा भाव बनाए रहें। किसी भी प्राणी का अकल्याण मनमें न आये ऐसा भाव बना लें तो बेड़ा पार है अन्यथा दुःख ही है। भैया! मनुष्य कुछ कर तो सकता नहीं, केवल भाव करता है। जैसे बच्चोंकी पंगत होती है तो है क्या उनके पास, कुछ नहीं और कहते हैं पत्ते परस कर कि रोटी खाओ, केवल कंकड परोस कर कहते हैं गुड़ खाओ। अरे जब कल्पना ही करना है तो पत्तोंको रोटी कहकर क्यों परोसते हो, पूड़ी कहकर परोसो, कंकड़को लड्डू कह लो। इसी तरह केवल सोचना ही है तो बढ़िया कल्पना करो। वहाँ तो भैया! परमार्थ नहीं, यहाँ तो परमार्थ है, सत्य है। सो मनुष्य कुछ कर नहीं सकता सिवाय सोचनेके, तब बुरा ही क्यों सोचे, अच्छा सोचे, अपना निधि अपना भगवान् अपना स्वामी जो कुछ है वह मैं ही अपने आप हूं। इसलिए मैं अपने आप अपनेमें अपने लिए स्वयं दृष्टि करूं और कष्टमुक्त होऊँ।

सहजानन्दभावः क्व क्वेमे रागादि वैरिणः।
सहजानन्दसम्पन्नः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१–२६॥

मेरा सहज आनंदस्वभाव है, उस आनन्दस्वरूपमें जो करता हूं वह मैं हूं। यदि राग में वैरी व्यभिचारी भाव नहीं उठा तो आनन्दमें कमी नहीं हो सकती, परन्तु जो इनमें किसी विकारमें झुक गया वह आकुलित ही होता है। आत्मन्, तू निज आनन्दस्वभाव व विकार परिणति इनका अन्तर तो देख, कहाँ तो उसका आनन्दस्वभाव है और कहाँ यह रागद्वेष? यह राग भाव दुश्मन है। इस जीवका कोई वैरी है तो वही राग है और कोई पदार्थ दुनियामें इस जीवका वैरी नही है। अपने आपमें उठा विकार ही बुरा है और कोई बुरा नहीं। अन्य सब तो पदार्थ है, चेतन अचेतन पदार्थ है। जो बाह्यदृष्टि करता है और बुरा समझता है उसे दुःख है। अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व व प्रमेयत्व–इन ६ गुणोंको लिये हुए पदार्थ हैं। वह भी एक वस्तु है। आप कहेंगे कि यह मेरे लिए खिलाफ परिणति कर रहा है। किसी जीवके कषायके अनुकूल अपनी परिणति कर रहा है। किसी जीवको तू अपन से बुरा मत समझ। तेरा बुरा कोई नही है दुनियामे, वह तेरे खिलाफ नहीं परिणम रहा। वह अपने कषायके अनुकूल अपना परिणमन कर रहा। वह तो उसके अपने कषायका पोषण है। कोई तेरा बुरा नहीं है, तेरा बुरा है रागभाव। रागके कारण सर्वज्ञताका स्वभाव ढका हुआ होता है। रागादि वैरीके निमित्तसे ही तो देखो परमार्थस्वभाव ढक गया। इससे बढ़कर वैरी और तेरा कौन हो सकता है? तेरा बुरा है राग। यदि वैरी पर तुझे झुंझलाहट होती है तो तू अपने रागपर झुंझला। और कोई तेरा

दुश्मन नहीं। राग तो इस जीवको बर्बाद करता है। राग एक पर्याय है, पराधीन है। कर्म के उदयसे होता है। तेरा स्वयंका कुछ अस्तित्व नहीं, फिर तुझे तेरा ख्याल बर्बाद कर रहा है। अथवा मुझे कौन बर्बाद करता है ? मैं ही अपने आपकी कलासे सुखी व दुःखी हूं।

जरा अपने स्वभावमें और इस पराधीन परिणतिमें अंतर तो देख, एक अपनेको देख, कुछ ही समय सही ऐसा उपयोग बना ले, इसका सारा सुख, दुःख अपने हाथ है। यह सब कुछ ज्ञानकी कलाके आधीन है। जो लोग मानते हैं कि ईश्वरकी जो इच्छा होती है कि मैं सृष्टि कर लूं—इतनी इच्छा करनेसे सब सृष्टि हो जाती है। सृष्टि कैसे बनती है ? जगत्में बे एक ईश्वर ही तो है। यह इच्छा करता है कि मैं ऐसा बन जाऊं, तो हो जाता है। आखिर प्रभुका स्वरूप ही तो है। इसकी प्रभुता विकाररूपमें विकसित हो रही है। पर हे भैया ! जरा अपना स्वभाव तो देख। कुछ तो मेहरबानी कर अपनेपर। बहुत कुछ बर्बाद हुआ। बहुत मरा, बहुत पिटा, कुछ तो अपनेपर करुणा कर। इस दुनियामें तू अकेला है, तेरा कोई साथी नहीं। भ्रमजालको भुला दे। तेरा साथी केवल तू ही है। अगर अच्छे ढंगसे चला तो स्वयं तेरा साथी तू है और अगर खराब ढंगसे चला तो तू ही तेरा बुरा है, दूसरा कोई कुछ नहीं करता। अपने ही उस सहज आनंदको देख। कैसा यह तेरा स्वभाव है और कैसा वह रागद्वेष बैरी है ? यह मिट जाता है, तो स्वभाव मिटता नहीं। यह अज्ञानमय है तो स्वभाव ज्ञानमय है। यह स्वभाव तो सदा रहता है और यह विकार सदा नहीं रहता है। जो सदा रहता है, स्वाधीन है, आनन्दसे भरपूर है, ऐसा तू ज्ञानमय है, विकटस्वरूप विराजमान है। ऐसे अपने भगवान् स्वभावको देख भूल गया और इन झगड़ोंमें रम गया, इन बाह्य पदार्थोंमें रम गया। वही वही स्वभाव देखता है, वही वही सारा देखता है। उसीमें बुरा होता है। बुरे विचारसे बाहरी पदार्थ बुरे हैं। जब तेरे लिए तू दुश्मन बनेगा तो तेरे लिए तू बुरा है। इसलिए तू तेरे लिए भला है तो दुनियामें तेरा कोई बुरा नहीं। एक श्रावक व श्राविकाकी घटना है कि वे स्त्री और पुरुष चले जा रहे थे दूसरे गांवसे। आगे पुरुष था और स्त्री पीछे। पुरुष ४०-५० कदम आगे निकल गया, स्त्री पीछे रह गयी। आगे देखा पुरुषने कि ३०-४० मोहरें पड़ी हुई हैं। सोचा कि पीछे स्त्री आ रही है, उसका दिल न दुःखी हो जाय। इन मोहरोंमें इसका परिणाम न आ जाय कि मोहरें ले लूँ ऐसा सोचकर मोहरोंमें धूल डालने लगा। इतनेमें थोड़ी देरमें स्त्री पास पहुंची तो स्त्रीने कहा कि क्या कर रहे हो ? पुरुषने कहा कि ३०-४० मोहरें पड़ी थीं तो मैं उनपर धूल डाल रहा हूं। स्त्री कहती है कि चलो आगे बढ़े चलो, क्या धूलपर धूल डाल रहे हो ? तो पुरुषके परिणाममें यह आया कि मोहरें हैं और स्त्रीके परिणाममें यह आया कि यह धूल है। परिणाम अपने

भावका अपनेमें होता है। परिणाम ही रक्षक है, हमारा और रक्षक कोई नहीं। बुरा परिणाम करके करोड़का धन आया। वह परिणाम कुछ नहीं है। अच्छा परिणाम करके अगर कुछ टोटा पड़ता है तो कुछ टोटा नहीं। अच्छे परिणामका फल मिलेगा। परिणाम निष्फल नहीं जाता। भला परिणाम है तो भला फल मिलेगा और बुरा परिणाम है तो बुरा फल मिलेगा। देखो सबसे ऊँचा परिणाम क्या है ? जब सत्य ज्ञान हो जाता है तो विश्वका प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है, अपने अपने अस्तित्वमें है। किसी पदार्थका किसी पदार्थसे कोई कार्य नहीं होता है। प्रत्येक पदार्थ स्वतः परिणमता रहता है। इसमें परिणति करनेका स्वभाव है। किसीका किसी अन्यके साथ कुछ भी सम्बंध नहीं है। ऐसा स्वरूपमें भी मैं एक वस्तु हूं। मैं स्वतः हूं और स्वतः परिणमनस्वभाव लिए हुए हूं। मेरेसे दुनियामें कोई सम्बन्ध नहीं, ऐसा ज्ञानी हूं मैं। फिर जब ऐसा परिणामस्वभाव है तो फिर अब किसको बिगाड़ सकूं, किसको अपना सकूं, किसे छोड़ सकूंगा ? वस्तु तो सब पृथक् पृथक् ही है। उनका तो किया ही क्या जा सकता है ? हां विकल्प ही किए जाते हैं। जैसे विकल्प छोड़ना है। अब विकल्पको छोड़ दे तो सर्वसिद्धि है। निर्विकल्पताके साधनमें जो आनन्द आता है वह अनुपम आनन्द है। देखो अभी यहां कुछ महिलाएं जाप भी कर रहीं; कोई पाठ भी पढ़ रही हैं। देखो एक बातका ही विकल्प कर लो और कहीं किसीकी बातमें न लगो। जो अपना है उसमे ध्यान दो। और संयम क्या है ? अगर ऐसी इच्छा न करो कि हमारे चारों काम हो ही जायें, पाठ भी हो जाय, नियम भी हो जाय, सुबहके प्रवचनमें भाग भी लें, चारोंकी चिंता न करो। अगर एक ही करो और रागको अपनेसे बाहर करना है। और करनेका काम क्या है ? बाहर के काम न करो, तेरा साथी है ही कोई नहीं। तेरा साथी तू ही है। तू भले परिणामसे रहा तो तेरा साथी तू ही है और यदि रागके परिणामसे रहा तो तू ही अपना बैरी है।

बच्चे लोग यह खेल खेलते हैं कि एक घड़ेमें पानी भर दिया और दो खिरनाके डंडे तोड़ लिए एक-एक हाथ बराबरके, दोनों डंडोंको कलमकी तरहका बना लिया। उन दोनों डंडोंको जोड़ दिया। उसमें लगा दी मिट्टी। एक डंडा डाल दिया घड़ेमें। बाहरसे जो डंडा दूसरा है उसे मुंहसे जरासा चूस लिया। अब उसमेंसे पानी पिया। अब मुंह दूर कर लिया फिर भी पानी गिरता जायगा। सारा घड़ा खाली हो जायगा। एक बार ऐसा आना चाहिए कि विकल्प छोड़कर, अपने आपके विकृत व विकल्पको छोड़कर अनुभव तो करना चाहिए एक बार जीवनमें। फिर बार बार तू अनुभव करेगा। वही आनन्ददाता है। एक बार ही यदि आत्मीय आनन्दका अनुभव हो गया तो आनन्दके स्मरणमें भी सुखी रहेगा। आनन्दकी उपेक्षा न कर। उसका ज्ञान ही जीवनभर आनन्द देता रहेगा। पर वह आनन्द कैसे आये ?

बाहरके सारे पदार्थोंमें मोह न डालो, मोह डालकर नफा नहीं मिलेगा। अच्छे परिवार आदि में लग लो। ज्यादासे ज्यादा १०-२० वर्ष तक होगा क्या? १०-२० वर्षके बाद प्रथम तो यह बात है कि १०-२० वर्षमें भी मन नहीं भरेगा। दिनमें कुछ परिणाम है, सुबह कुछ परिणाम है, शामको कुछ परिणाम है। यह तो पराधीन व विकृत चीज है। मोह किया तो संसारमें दुःख ही रहेगा। अब छूटा तो छूटा सही। सो म अपनी इन राग, द्वेष बुराइयोंसे छूटकर स्वाभाविकरूप स्वभावमें आकर अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ।

यह निश्चय समझो कि मेरा आनन्द मेरेसे दूर नहीं है। बाहरके किसी भी पदार्थसे आनन्दकी किरण नहीं आती कि जिसमें आनन्द भरा हुआ हो, ऐसे परचैतन्यपदार्थसे भी आनन्द नहीं आता। उनका आनन्द उन्हींमें है, मेरा आनन्द मुझमें है। कोई किसीका नहीं है। जो मोहके समय बड़ा अच्छा लगता है उस प्रभुकी प्रभुताकी दुर्गति करने वाला तू ही एक है। यदि मोह नहीं है तो यह प्रभु आनन्दमय बनेगा। यदि मोह है तो इस जगत्में जीव नाना संकट सहता रहेगा। निःमोहताकी प्रशंसामें श्री समंतभद्राचार्य स्वामीने बताया है—

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोही नैव मोहवान्।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोही मोहिनो मुनेः॥

निर्मोही गृहस्थ मोक्षमार्गमें स्थित है, पर मोही मुनि मोक्षमार्गस्थ नहीं। इस कारण मोही मुनिसे निर्मोही गृहस्थ अच्छा है। मोह क्या है कि भीतरमें यह भाव आ जाना कि यह चीज मेरी है और मेरा जीवन इनसे ही है। मेरा हित इनसे ही है, मेरा बड़प्पन इन चीजोंसे ही है—ऐसा भाव है, तो यही मोह दुश्मन है, बैरी है। अहो! यह मोह अन्धेरा इतने बड़े जीवोंके है कि पछतानेकी भी गुञ्जाइश नहीं। इतनी बड़ी विपत्ति में पड़ा है। यदि यह अंधेरा है कि यह जितने भी पदार्थ हैं इन्हींसे मेरा जीवन है, ये ही मेरे सब कुछ हैं, तो मनुष्य होना व्यर्थ है। यदि परिणाम बुरा है तो मनुष्य होकर नंबर भी क्यों खोया? कीड़े मकोड़े ही बने रहते, ऐसे मनुष्य बनकर कोई लाभ नहीं। मोह, अंधकार से ही प्रेम किया तो कीड़े मकोड़े ही बनना अच्छा था। मनुष्य बननेकी गिनती तो नहीं आती। २ हजार सागरके बीच मनुष्य बनकर २३, २४ बारके मौके तो आते, मगर मनुष्य बन गया तो मनुष्यके कार्य तो करने थे। अगर यह विषयकषाय करना ही था तो कीड़े मकोड़े बनते। एक कहावत है कि ये दिल्ली रहे, १२ वर्ष रहे। क्या काम किया? भाड़ झोंका। अगर भाड़ झोंकना था तो क्या भाड़ यहीं गाँवोंमें न झोंक दिया जाता। विषयकषायोंमें रहे, बुरे कामोंमें रहे तो मनुष्य होकर क्या किया? संगी बनकर खोटा बना

तो उसकी दुर्गति ज्यादा होती है। इससे देख, हम कैसे आनन्दमय हैं, हम कैसे ज्ञानमय हैं ? जो भगवान है वह मैं हूं। इतना पवित्र मैं हूं। अपने स्वरूपको भूलकर बुराइयोंको अपना लिया, इन धोखे वालोंको अपना लिया। भेद करना है तो धन उसका नहीं, दौलत उसकी नहीं। यह तो ऊपरी बात है। भेद यह करो कि रागद्वेष अपने नहीं हैं। हे राग बैरी अब तू नष्ट होनेके लिए ही तो आया है, मिटनेके लिए ही तो आया है। ये रागादि आते हैं तो आ जायें, मिट जायें, ये तो सर्वज्ञतामें बाधा डालते हैं। मैं तो सहज आनन्दमय हूं, इस तरहसे अपनेमें रहूं। रागादिको आस्तीनका सांप जैसा कहा है। अपनी ही कमीजमें आस्तीनमें सांप बैठा हुआ है। अपने ही प्रदेशमें यह रागादि बैठा हुआ है। यह महिहमान है। आनेके के लिए आया है। महिमानका अर्थ है—महिमा + न याने महिमा नहीं। यह रागद्वेष, बुराई महिमान हैं। महिमा तो इस ज्ञानस्वभावकी ही है, रागादिकी महिमा नहीं। प्रभुकी आराधना कर, आनन्द मिलेगा। भिखारी कहता है कि भगवान, भगवान, भगवान, भगवान देगा अल्ला ही देगा। देखो बराबर पैसा मिलता है। अगर इसे किसीसे पूछना पड़े तो पैसा नहीं मिलेगा। भगवान देगा, प्रभु देगा, मेरे स्वभावकी दृष्टि ही मेरी रक्षा करेगी। ऐसा दृष्टा अगर बनू तो मिलेगा, यह कायरता न कर। मेरा आनन्द मेरेसे ही निकलेगा। अचेतन पदार्थमें मेरा ज्ञान नहीं। इसी तरह अचेतन पदार्थमें आनन्द नहीं। पत्थरपर लड्डू, पेड़ा सब कुछ धरे हो तो क्या आनन्द आयगा ? परचेतनसे भी मेरेमें ज्ञान व आनन्द न आयगा। लड्डूसे आनन्द नहीं पायगा। इसी मेरे सबसे ही आनन्द आयगा। आनन्द बाहरसे नहीं आयगा। सो तू उस आनन्दस्वभावको निहार। बस यही एक उपाय है आनन्द पानेका।

प्रयत्नो वांछया तस्माद्दातो यत्नम् प्रवर्तते।
स्वे तान्यारोप्य किं दुःखी स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-२७॥

यह प्राणी केवल अपने भाव करता है। यद्यपि उसकी किसी भी पदार्थमें किसी भी प्रकारकी परिणति नहीं है, लेकिन देखनेमें ऐसा आता है कि हमने तो ऐसा किया है। घर बनाया है, दुकान चलाई, घरसे यहां तक आया हूं, वचन बोलता हूं, अनेक तरहके काम करता हूं, लगता ऐसा है, किन्तु दुनियामें प्रत्येक जीव केवल परिणाम ही करता है, अपने परिणामके सिवाय और कुछ नहीं करता है। पर ऐसा लगता क्यों है, ऐसी लोगों की विपत्ति क्यों है ? इसका कारण है—निमित्तनैमित्तिक भाव। जैसे आगके सामने गर्म पानीका बरतन रखा है तो पानी तो स्वयंकी परिणतिसे गर्म होता है, परन्तु लोगोंको ऐसा लगता है कि आगने पानीको गर्म किया है अथवा कोई पुरुष २० हाथ दूर खड़ा हुआ है और लोगोंने देखा कि वह कोई गाली देता जा रहा है और वह चिढ़ रहा है। लोगोंको ऐसा

लगता है कि वह उसको दुःखी कर रहा है, चिढ़ा रहा है, किन्तु ऐसा नहीं है। चिढ़ने वाला अपने विकल्पसे दुःखी होता है और दूसरा अपनी कषायसे चेष्टा करता है। इसी तरह जीव केवल अपना भाव करता है, भावके अतिरिक्त और कुछ काम नहीं करता है। जैसे हाथसे कोई चीज उठाकर १० हाथ दूर रखे तो लोगोंको यह भ्रम जरूर हुआ कि यह जीव ही चीज उठाकर रखता है। वास्तवमें जीवके द्वारा रखनेकी कोई चीज ही नहीं। जीवने तो केवल अपना परिणाम ही किया, भाव बनाया, इच्छा की कि मैं इस चीजको उठाकर रख दूं और इसी तरह उसके प्रदेशमें योग हुआ।

इस तरह आगे जो काम हुआ वह अपने आप हुआ, जीवने तो केवल परिणाम किया, इच्छा की, प्रदेश परिस्पन्द हुआ। उसका निमित्त पाकर जिस शरीरसे उसका सम्बन्ध है उस शरीरका अंग चला और इस चलते हुए अंगके बीचमें चीज भी चलती हुई वहां पहुंचती है। जीवने तो केवल परिणाम किया। देखनेमें आता है कि देखो यह जीव कितना काम कर रहा है? कपड़ा नापा, पैसा बनाया, हिसाब लगाया, पैसा रखा। कहता जाता है कि मैंने १०० रु० कमाये। क्या ऐसा काम बाहरमें कुछ ठीक कर लिया है? नहीं। तब तो केवल अपना परिणाम करता है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। जैसा भी परिणाम किया, धन आना चाहिए, धनसे लाभ हुआ। अभी परिणाम किया और उस परिणामको निमित्त पाकर योग हुआ और योगके निमित्तसे देह व्यापक वायु चली, वायुके निमित्तसे अवयव चले, उसके निमित्तसे संयुक्त पदार्थ चला। यह सब होता रहता है, परन्तु यह जीव बाहरी चीजोसे अपने को भिन्न समझ जाये कि मैं आत्मा ज्ञानमात्र हूं, अपनी सत्तामात्र हूं, जगत्के किन्ही भी कामोको नही करता, केवल परिणामको बनाता है। संपदाकी स्थिति है तो विपत्तिकी स्थिति है अर्थात् सर्वत्र जीव अपना परिणाम बनाता है, केवल अपने भावको करता है और जैसे भावको करता है उसी भावको भोगता है। इसके अतिरिक्त और कुछ काम नहीं करता। मेरा कही सम्बंध नहीं, मैं तो अपना स्वरूपमात्र हूँ, एक पदार्थ हूँ और परिणतिमें रहता हूँ, सबसे निराला हूँ, इसमें कोई परभाव नहीं, मैं एक ज्ञानमात्र और निरंतर, लगातार, हर समय परिणाम कर रहा हूँ—इतना मैं हूँ, ऐसी श्रद्धा, ऐसी प्रतीति अपनेमें रहे तो वहाँ दुःख का कोई नाम नहीं। यह दुःख तो बनाया जाता है, लेना न देना। दुःख होता रहता है।

इस जीवसे उसका क्या सम्बन्ध है? सदा न्यारा-न्यारा है, सब जुदा जुदा है। सब अपने आपमें स्वरूप बना है, फिर दूसरे पदार्थोंके साथमें क्या सम्बन्ध है? इस शरीर को भी भूलकर तू ध्यान अपने आपका कर। जो कुछ है वह ज्ञानमात्र तू है। तू केवल अपने स्वरूपमात्र पर दृष्टि दे। जैसे भोजन खाना हुआ तो इस स्थितिमें केवल बात खानेके

कामकी ही नहीं, वहाँ तो काम करता है, बनाता है, खाता है, तब उसका सुख मालूम करता है। इसी प्रकार अपने आपके स्वयंके विचारमें केवल बात ही करनेसे काम नहीं चलता। जैसे इनका स्वरूप है, तैसे-तैसे चलनेसे काम चलेगा। लोग कहेंगे, कैसा आदमी है, जो न घरकी फिकर, न पैसे की फिकर, न आगे की फिकर, क्या करता है, कैसा अलफ-लिया बना हुआ है? जो इस दीर्घ संसारमें पड़ा हुआ है उसे वह धन छोड़ना पड़ेगा। जो घर द्वार संभालनेमें लगा हुआ है, संभालते हुए भी नहीं संभाल पायेगा। जैसे कोई कमोजके पल्ले पर मेढक भरे तो एक यहाँसे उछलता है, एक वहाँसे उछलता है। इसी प्रकार सम्पत्ति, परिवार आदिसे मोह करके बस नहीं चलता। एक यहाँसे भागा, एक वहाँसे भागा और अपने मोहके झोलेमें उन्हें भरना चाहता है, किन्तु यह काम बननेका है नहीं और अहंकार यह करता है कि मैं संभालने वाला हूं, मैं पालने पोसने वाला हूं। इस तरह काम नहीं चलेगा। इन सब राग, मोहकी बातोंको छोड़कर असली तत्त्वमें आना होगा कि पदार्थ अपने आपमें जैसा है वैसा मानें। मैं आत्मा अपने आप कैसा हूं? मैं अपने आप हूं, केवल अपने आप पर तू ध्यान दे तो पता चल जायेगा। किसी दूसरे पदार्थका ध्यान न रक्खो। कोई भी पदार्थ हो, कोई भी बाह्यपदार्थ हो, एक ही का ध्यान दे तो आत्माके बुरे परिणाम हो जाते हैं।

कोई व्यक्ति यह कहे कि आंखके सामने तिल ही रक्खा है और कुछ नहीं रक्खा है, आंखके आगे तिल भर कागज रख दो तो सब पहाड़ ढक गया। वहां यह प्रश्न न चलेगा कि उसने तो जरासा ही कागज सामने किया है। अरे देखने में तो यह जरासा तिल बराबर का है, यों उसने पहाड़ ढक दिया। इसी प्रकार आत्माके दर्शनमें एक भी पदार्थका मोह हो तो भगवान आत्मा ढक जाता है। कोई कहे कि मैं पदार्थोंका मोही नहीं हूं, मेरे यहाँ केवल एक लल्ला है, और कोई नहीं। केवल लल्ला ही एक मोहमें रह गए हैं, जरासी थोड़ी कसर रह गया है, बाकी तो सम्यक्त्व है। सो ऐसा नहीं। एक लल्ला हो, चाहे आधा लल्ला हो, मोह है मिथ्यात्व है। जो ढेरके ढेर पर्वतके बराबर मोह रखता है उसका तो कहना ही क्या है?

जब जगत्में इस आत्माका कुछ नहीं, तो अंतरंग ही ऐसा बना लो कि भीतरसे विश्वास और ज्ञान हो ऐसा बनें तो शान्तिका मार्ग मिल जायेगा। एक कहावत है कि रपट पड़े की हर गंगा। बात क्या हुई कि बरसातमें सड़क पर था थोड़ा बरसाती पानी। एक आदमी आ रहा था उसका पैर रपट गया। लोग उसको देखकर हंसने लगे। जैसे साइकिल से कोई गिरे तो हंसी आ जाती है वैसे ही वह गिर गया। पर उसने लोगोंको यह नहीं

महसूस होने दिया कि मैं गिर गया हूं। वह कहने लगा कि हर गंगा, हर गंगा। गंगाको मानकर अपना धर्मका ‍ ... म कर रहा है, कहता है हर गंगा। दुनियामें कुछ नहीं है। तू इसका ख्याल छोड़कर ध्यानमें लग जा, क्योंकि इतनी बात मानते हो कि सब कुछ मिटेगा, चाहे १० साल बाद अथवा २० साल बाद। हम भी चले जायेंगे, आप भी मिट जायेंगे। किसीको आशा ही क्या ? जो ऐसे रपट पडे कि हरगंगाकी तरह पहले हो परसे हट जाओ, फिर तेरा धर्म न छूटेगा। जैसे रपट पड़ा और गिर ही पड़ा तो चतुर व्यक्ति हरगंगा कहकर अपनी मजाक खत्म करवा लेता है। चलो, इसी तरह अपनी दुर्गतिका मजाक धर्मकी ओर मुड़कर खत्म करा लें। जब यहां कुछ नहीं रहना है, सब मिटने वाला है तो स्वयं ही उपाय दूसरा कर ले। भाई ! यहां कुछ रहना ही नहीं है तो अपने ज्ञानको बना। यह सब रहने का नहीं, यह सब मिटनेका है, यह तेरे पास कुछ नहीं रहेगा। इनसे मोह हटा लोगे तो अपनेमें आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है, परमें तेरा कोई तत्त्व ही नहीं है। जहां तुझे तरस आनी चाहिए। तू आनन्दमय आत्मा है। अतः एक विश्वास करके २४ घंटेमें १५ मिनट तो सबका ख्याल छोड़कर, ज्ञानानन्दमय एक आत्माका तो ध्यान कर। सब यदि अलग हो जाते हैं तो अलग हो जायें, परके हिसाबसे तेरा कुछ बिगड़नेका तो नहीं है। हमेशा अकेला तो तुम्हें रहना ही है, दुकेला कब तक रहेगा ? हम दुकेले, तिकेले कब तक रहेंगे, चौकेले, दसकेले कब तक रहेंगे ? इस जीवनमें क्यों दुःखी होता है। कोई शंका नहीं कर, निःशंक रहना। इस विषय में आत्मानुशासनमें कहा है—

> जीविताशा धनाशा च येषां तेषां विधिर्विधिः।
> किं करोति विधिस्तेषां येषामाशा निराशता ॥

जिसको जीनेकी इच्छा है और धन वैभव की इच्छा है और जिसको निराशाकी ही एक आशा है अर्थात् कुछ आशा ही नहीं करता उसका कर्म कर्म नहीं है। ज्यादासे ज्यादा कर्म तो यही हानि कर सकता है कि जीवन न रहे या धन न रहे। किन्तु जो इसमें राजी है, जीवन व धनसे विविक्त आत्मतत्त्वमें अपने आपकी भावना बनाए रखते हैं, भाग्य उनका क्या कर लेगा ? भाग्य तो उन्हें ही दुखी कर सकेगा जिनको जीनेकी इच्छा है, धनकी इच्छा है। भाग्यका ज्यादासे ज्यादा बस इतना ही तो चलता है—मुर्दा हो जाए, जीवन खत्म हो जाए, टोटा पड़ जाए, परन्तु ज्ञानी इन बातोंको चेलेंज देते हैं कि ऐसा होता है सो होओ। होगा वही जो होना है, जो ऐसा प्रत्यय बनाए हैं तो आत्माको प्रबल बनानेसे दुःख न होगा। उतना ही मिलेगा जितना होगा। आत्माको प्रबल बना लेनेसे आत्माको क्लेश नहीं रहता। इस कारण तू ऐसी भावनाएँ भरकर आत्माको प्रबल बना। मैं एक ज्ञानवान्

हूं, आनन्दमय हूं, मुझे पहिचानने वाला यहाँ कोई नहीं है, मैं ऐसा हूं कि यहाँ मेरी पहुंच वाला भी कोई नहीं है। जो कुछ यहांपर दिखता है वह चलचित्र है, यह सब चलता-फिरता सिनेमा है। वहाँ तो १ गज चौड़े, २ गज लम्बे परदेमें सिनेमा होता है। यहाँ इस दुनियामें चलता-फिरता सिनेमा है। केवल परिणतियोंकी ही बात है, उसमें सार नहीं, सार जो तत्त्व है वह छिपा होता है।

इस तत्त्वको अंतरमें लगाकर अन्य किसीका ध्यान न कर। "जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ" जिन्होंने खोजा उसको भगवान् मिले। जो इस पानीके ऊपर ही देखता रहे उसको कुछ नहीं मिलेगा। ऐसी उदारता करो। तेरी भक्तिके प्रसादसे हे नाथ! तेरे गुणोंके प्रसादसे हे नाथ! तेरी ऐसी उदारताका परिणाम हो कि इस जगत्के जीव मुझे एक समान दीखें। यह भावना बने कि यह मेरा प्यारा है और यह मेरा दुश्मन है, यह मेरा भला है और यह मेरा बुरा है, ऐसा परिणाम मत बना। कोई मित्र है इस दुनियामें? कोई नहीं है। ये सब अकेले ही अपनी परिणतिसे बने हैं। अपनी अपनी कषाय हैं। उसके अनुकूल इन सबकी चेष्टा है, मेरा यहाँ कुछ आता जाता नहीं है। तू स्वयं जब बुरा बनता है तो दूसरोंको बुरा देखता है। तू जब भीतरसे चंगाभंगा रहता है। चंगा कहते हैं सुखीको, शुद्ध आनंद वालेको और भंगा कहते है कल्याणको। जब तू स्वयं चंगाभंगा रहता है तो दूसरोंको मित्र देखता है, भला देखता है, अच्छा देखता है। तू जैसा है वैसा स्वयं बाहरसे देखता है। देखेगा तू जैसे तेरी आँखें होंगी, जानेगा तू वह स्वयं जैसा तेरा ज्ञान होगा, तू जैसे बाहर देखता है और प्रसन्न है तो तुझे सब प्रसन्न दीखेगा। देखता है, कैसा शांत है, कैसा धर्मके बारेमें कहता है, धर्मके प्रति प्रेम है, ऐसा आपको बाहरमें देखना होगा और यहाँ भी कोई ऐसा हो कि बाहरसे ठीक हैं व अंतरमें नाना चालें रखता है, और देवतासा बना बैठा हो तो उन्हें सब मायाचारी दीखेंगे। साधुसे पवित्र चित्त वाले जो होंगे उनको सब जगह पवित्रता दीखेगी।

जैसे हम हैं वैसे ही बाहर देखें। किसी भी जीवको गैर मत समझो, अपना विरोधी मत समझो। हम तो उसे अपने समान ही समझें। यह बहुत हो सम्भव है कि आपका व्यवहार देखकर पवित्र बन जायेंगे। अपने उस कषायको छोड़ देंगे, पर जो दूसरोंके प्रति बुरे ही बुरे ख्याल करते हैं तो वे तो स्वयं तुरंत बुरे हो जाते हैं।

भाई! परमार्थकी बात तो यह है कि अपनेको इस तरह देखें कि मैं केवल परिणाम करने वाला हूं, अपने परिणामके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं करता। हर जगह हर समय केवल अपने परिणामके लिए अपना परिणमन करता हूं। अब मैंने पहले भी कुछ किया नहीं,

न आगे कुछ कर सकूंगा। केवल अपना परिणाम बनाया था, अपना ही परिणाम बनाया है और अपना ही परिणाम बनाता रहूंगा। व्यवहारको भी देख तो क्या बात है? सबसे आप बोलते हैं, लेकिन यह पता आपको चल जाय कि यह बोलता तो प्रिय है, किन्तु इसका परिणाम बड़ा खोटा है, तो आपको उसके प्रति ईर्ष्या हो जायेगी। और किसीसे आपका बिगाड़ भी हो जाये और यह आपको विदित हो जाये कि इसका परिणाम अपने कल्याणके लिये था। तो उससे प्रेम बना रहेगा। सब तो अपने परिणामके आधीन हो खेल बना है, परिणामके सिवाय और कुछ नहीं कर सकता। कोई जो कर्तव्यबुद्धि करेगा, वह संसारके जन्ममरणके चक्करसे नहीं छूट सकेगा। अपने आपको यह स्वयं ज्ञान जाय कि मैं एक भावात्मक पदार्थ हूं और मैं केवल अपने परिणामको ही करता हूं। इतना ही यह कर्तव्य भोक्तृत्व है और इसके अतिरिक्त कुछ नहीं, ऐसा अपने आपको निराला बना ले। आपको यह अनुभव हो जायेगा कि मैं अंतरके सिवाय और कुछ कर ही नहीं सकता, तो मैं अपने परिणामको सोच समझकर चलूंगा। सब कुछ मैं स्वयं हूं, किसीका किसीसे कोई ताल्लुक नहीं है। ऐसा दृष्टा बन तो इससे बढ़कर दुनियामें और कोई वैभव नहीं है।

पङ्गोर्दृष्टिर्यथान्धे न तथा स्वस्यैव नो तनोः।
दर्शनं मात्रमस्म्यस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-२८॥

लोग कहा करते हैं कि यह मनुष्य देखता है, जानता है, परन्तु मनुष्यसे उनका प्रयोजन शरीरसे है। तो यह शरीर न तो देखता है और न जानता है, देखने जाननेकी शक्ति तो जीवमें है। ज्ञानदृष्टि तो जीवमें विद्यमान है, वह शरीरमे नहीं पाई जाती है। लेकिन जैसे लंगड़े और अंधे आदमी मिलकर चलनेका काम करते हैं अर्थात् अंधा तो चलता है और लंगड़ा उसके कंधे पर बैठता है। ऐसा देखकर लोग कहते हैं कि अंधा देखकर चल रहा है, परन्तु उस जगह तो लंगड़ेकी दृष्टि काम कर रही है, अंधेके दृष्टि है ही नहीं। परन्तु इस सम्बन्धमें ऐसा कहा जाता है कि अंधा अपनी दृष्टिसे काम कर रहा है। इसी तरह दृष्टि तो जीवके हैं, पर जीवका इस समय संयोगसंबंध शरीरसे है। इस कारण लोग यह कहते हैं कि यह मनुष्य, यह प्राणी देख रहा है, जान रहा है। परंतु देखने, जानने वाला तो आत्मा ही है। लंगड़ा तो चल नहीं सकता और अंधा देख नहीं सकता। यदि ये दोनों अलग-अलग रहें तो दोनों बेकार हैं। न लंगड़ेका कोई काम बने और न अंधेका कोई काम बने, दोनों जब मिल जाते हैं तो हरकत करने लगते हैं। इसी तरह आत्मा और शरीर दोनों अलग अलग हो जायें, आत्मा अलग हो व शरीर अलग हो जाये तो दोनोंकी हरकत बंद हो जाती है। आत्मा बाहरी, दिखावटी क्या करे और शरीर भी क्या करे? आत्मा और शरीर जब

दोनों मिलते हैं तो आत्मा भी हरकत करता है और शरीर भी हरकत करता है। ऐसी अवस्थामें शरीरकी हरकत देखकर दुनियाके लोग जीवको कहा करते हैं कि यह सब जीव कर रहा है, यह सब जीवकी हरकत है। पर जो ज्ञानी जीव है, भेदविज्ञानी जीव हैं वे जीव का काम जीवमें देखते हैं और उनको परस्पर केवल निमित्त मानते हैं। अज्ञान इसीको कहते हैं कि है तो निमित्त और मान ले उसे कर्ता, जैसे कर्मको माना है निमित्त और अज्ञानी मानता है कर्ता। होता क्या है? जीव तो भाव ही करता है, कर्म स्वयं बंधनको प्राप्त होता हूं। भाई, कर्म तो केवल अपना परिणमन करने वाला है। जैसे जीवके विकार रूपसे होने वाले परिणाममें निमित्त कर्मोदय है, उसको कर्ताके रूपमें देखना यही अज्ञान है। प्रत्येक पदार्थको उनके ही अस्तित्वमें देखना, एकसे दूसरेको अन्यत्व न समझना, यह ज्ञान है। हमारा अपना अस्तित्व अपनेमें ही है, हमारा गुणपर्याय हममें ही है, इस ज्ञानस्वरूप आत्माका सर्वस्व आत्मा ही है, इसके बाद बाहर अन्यसे क्या संबंध है? मैं हूं और परिणमता रहता हूँ, इतनी ही मेरी सारी दुनिया है। क्यों ऐसा न मानकर बाहरी पदार्थोंको अपनेमें समझकर दुखी हो रहा है? जो इस अपने ज्ञानमें आता है वह ही योग्य है, वह ही संसारके पूज्य है। पूज्यता पवित्रतासे बनती है। पवित्र केवल रह जाना इसको ही पवित्रता कहते हैं। यह अपना तो केवल जैसा है तैसा चैतन्यस्वरूप मानता रहे, मैं यह ही हूं, इसके आगे मेरा कोई काम नहीं, न मेरी कोई इच्छा है और न मैं कहीं अन्यत्र जाना चाहता हूँ। जान गया कि मैं यह हूँ और स्वतः परिणमता रहता हूँ। इस तरह अपने ही स्वरूपकी तरह रहे तो आत्माका फिर कोई काम नहीं है। पर जो नहीं रह सकता है उस की आत्माका आकुल होना प्राकृतिक बात है। मैं तो एक दर्शनमात्र हूं, प्रतिभास मात्र हूं, मैं अपनेमें अपने लिए स्वयं सुखी होऊँ, बस यही एक कर्तव्य है कि वस्तु वस्तुको स्वतन्त्र जान लें, इसीमें पूर्ण ज्ञान होगा।

लोकमें उस ज्ञानकी महत्ता मानी जाती है जो जितना जितना बाहरी चीजको जानता जाये, जितना-जितना बाहरी पदार्थोंका आविष्कार करता जाये। पर अध्यात्ममार्गमें ज्ञानकी महत्ता उसमें बताई जाती है कि जितना जितना बाहरी पदार्थोंके विकल्प छोड़कर अपनी ओर आता जाये, अपनेको ज्ञानस्वरूप अनुभव करता जाये, ज्ञान सामान्यमात्र अपने को लक्ष्यमें ले। और छोड़ो ज्ञानकी विशेष तरंग, वितर्क विचार। ऐसे सामान्य ज्ञानमें अपने अपनेको अनुभव कर तो परमार्थमें ज्ञानकी महत्ता है। लोगोंमें बाहरी चीजोंके अज्ञानकी महिमा है, पर आत्मज्ञानसे परमार्थमें आपकी महिमा है। इसमें कोई एक विशेष पदार्थकी बात ही न उठे। यह ज्ञानका ही स्वरूप है अन्य पदार्थका कुछ नहीं। इसमें महत्व ज्ञानका

है, इसमें ज्ञान आयेगा, इसको ही सम्यक्ज्ञान कहते हैं, और इस ही ज्ञानकी ऐसी महिमा है कि जिसके बलपर चिरसंचित कर्म भी भस्म हो जाते हैं। ऐसा जाना है तो बस, यह ज्ञान है। विज्ञान ज्ञानके स्वरूपको जाना करे, यही ज्ञान अन्य कुछ कुछ जानता है तो उसमें इसका कोई मान नहीं। वह सब क्षणिक और अधूरी बातें हैं, उनमें संसार फन्द बंद नहीं हो सकते। जन्म मरणकी परम्परा उनके अज्ञानसे निवारित नहीं हो सकती है। यही वह ज्ञानस्वरूप है जिसके द्वारा कर्म ध्वस्त हो जाते हैं।

ज्ञानी ज्ञानके स्वरूपको जानता है। ज्ञानका जानना, इसीसे तो आत्मज्ञान हो जाता है और लगन भी मालूम पड़ जाती है। हमें करना क्या है? क्या जानना है? कहाँ जानना है? जाननेका स्वरूप क्या है? जाननेका स्वरूप जानो यह यथार्थज्ञान कहलाता है। बोधिदुर्लभ भावनामें आता है कि सब मिलना सरल है। सोना, चाँदी सब मिलना सरल है, परंतु यथार्थ ज्ञान मिलना कठिन है। और सब ज्ञान मिल जाता है, परन्तु जाननेका जानना कठिन है, जानने वाला है वह क्या है? इस चीजका पता नहीं लगता अज्ञानियोंको। भूलमें भूलकर देना यह कितनी बड़ी भूल होगी। एक कथा है कि एक दामाद अपनी ससुराल गया। उन दिनोंमें उसका ससुर बाहर शहरमें गया था, बीमार पड़ा रहता था, बीमारी की चिट्ठियाँ आ रही थीं। कुछ दिनोंमें एक चिट्ठी आयी, जब दामाद भी वहाँ था। लोगोंने कहा लालाजी से चिट्ठी पढ़वा लें। अब लालाजी मनमें पछताने लगे कि अगर हम पढ़े-लिखे होते तो चिट्ठी बाँच देते। लालाजी दुःखी होकर बैठ गए, और दुःखके आंसू भी आ गये। सास आदिने जब रोना देखा तो सब यह समझे कि उनका ससुर मर गया है, ऐसा समझकर घरके लोग रोने लगे, पड़ोसके लोग आ गए वे भी रोने लगे। गाँवमें हल्ला मच गया, जमींदार भी आये, कहा— क्यों रोते हो? वह बोला—करम फूट गया है। यह दुनियाकी बात कह रहा हूँ। जमींदारने पूछा कि खबर आयी है या कोई आया है या कोई चिट्ठी आई है? चिट्ठी मंगाई गयी, उसे पढ़ा तो क्या लिखा था कि हमारी तबियत ठीक है, तीन दिनमें आ रहे हैं। अब जड़का पता किसीने लगाया। भूलमें था क्या? उसमें लिखी चीजका तो कुछ पता नहीं लगाया, उसका फल यह अनर्थ हुआ। हम मूलमें क्या है, इसका कुछ पता नहीं लगा। हम ज्ञानमय हैं, सबसे निराले हैं, हम झंझट नहीं हैं। मैं एक पदार्थ हूं, इसमें कोई विवादका काम ही नहीं है, मैं अपने स्वभावको भूल गया और स्वरूपको भूलनेके कारण दुनिया भरमें भटकता रहा। जो देखा, जो सुना, बस उसीमें ही मग्न हो गए। चीजका पता तो लगावे, मूलमें है क्या बात, इसका पता लगावें, ज्ञान स्वरूपको जानें तो उसका सारा परिभ्रमण व आस्रव खत्म हो जाये। आस्रवको माना है नाला। नालाके माने है न ला, न लावे, इसीको

नाला कहते हैं। यह आस्रव क्या है ? नाला। ज्ञानके विरुद्ध या ज्ञानके अतिरिक्त जो परिणाम है यह सब आस्रव है, इसे न लायें। आस्रव ही सारे दुःख उत्पन्न करता है। अपने स्वभावको देखो तो एक दुःख नहीं, और अपने स्वभावसे बाहर देखो तो सब झंझट है। एक चैतन्यस्वरूप मात्र मैं आत्मा हू। तो यहांपर अपनेमें स्वयं अपने लिए अपने आप सुखी होऊं। जब कोई बड़ी विपत्ति आवे, कोई झंझट आवे तो इस आपको देखो, सब विपत्ति दूर होगी। क्षणमात्रको २-१ मिनटको यदि सबको भूलकर अपने ही स्वरूपको देखो तो सारे झंझट खत्म हो जायें। गृहस्थीमें है तो उसको करना ही पड़ेगा। मगर कभी-कभी तो आत्मस्मरणका आनन्द लूटना ही चाहिए। सब कुछ है मगर अपने स्वरूपकी दृष्टि करके उसका आनन्द तो लूट लो। अब झंझट हैं वह भी चलते हैं तो कभी-कभी आत्मस्वरूपकी दृष्टिका आनन्द तो लो। यही आनन्दका उपाय है, यही आपकी साथ देने वाली चीज है, तो अब मैं अपने स्वरूप को देखकर अपनेमें अपने आप स्वयं सुखी होऊँ।

यस्मिन् ज्ञानमये यत्ने मलपाषाणवत्क्रमात्।
विकल्पो नापि तत्रान्ते स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१—२१॥

मैं ज्ञानमात्र हूं, इस स्वरूपकी बार-बार भावना करनेपर अपने स्वरूपका अनुभव हो जाता है, बाहरी पदार्थोंसे विकल्प छूट जाता है। ऐसी स्थितिमें यह ज्ञानी जीव केवल अपने आपके तत्त्वमें ही अनुरागी रहता है, अपने आपके ही आत्मतत्त्वके दर्शनमें मस्त रहता है। बाहरी पदार्थोंका ख्याल, विकल्प उसका कम हो जाता है। दुनियावी लोग ज्ञानीको देखकर हंसते हैं कि क्या यह पागल हो गया है ? न इसे धनकी सुर्त है, न इसे बाहरी पदार्थोंकी सुर्त है। कैसी कहां चिता लगाये है ? ऐसा देखकर दुनियाके लोग उसे पागल कहते हैं कि यह पागल हो गया है। इसे धनकी सुर्त नहीं है, ज्ञानी अज्ञानीको पागल देखता है कि कैसा पागल हो रहा है कि दुनियामें अपनी कोई वस्तु है तो नहीं और बाह्यका लक्ष्य करके कैसा बरबाद हो रहा है ? यहाँ परमाणुमात्र भी तो अपना नहीं है, किसीसे कुछ संबंध नहीं है, फिर भी देखो असार पदार्थोंमें विकल्प करके मर रहा है। कुछ भी सोच लो, यहाँ मिलना कुछ नहीं है। इसलिए ज्ञानी अज्ञानीको पागल कहते हैं। अज्ञानीके चित्तमें यह बात है कि जो अपना घर संभाले वह चतुर आदमी है और ऐसी बात दूसरेमें याने ज्ञानीमें नहीं देखता है। तब अज्ञानी ज्ञानीको पागल मानता है। ज्ञानी अज्ञानीको मात्र देखता है और यहाँ अज्ञानीका भाव देखो, वह सोचता है कि यह ज्ञानी पागल हो गया है। इसे धनकी कोई सुर्त नहीं है, चित्त कहाँ चला गया है ? सत्संगमें ही प्रायः समय बिताता है। इस तरह अज्ञानी ज्ञानीको पागल देखता है। परन्तु जिन्होंने शुद्धतत्त्वको पहिचान लिया, जिनका किसी भी परतत्त्वमें

भ्रम नहीं, कोई भी शल्य नहीं, ऐसे ज्ञानी अज्ञानीको पागल कहते हैं।

जब सुकोशल स्वामी अपनी बीस-बाइस वर्षकी अवस्थामें विरक्त हो गए थे, उनको अनेक लोग पागल कहने वाले होंगे। अभी-अभी शादी हुई, तो घर छोड़कर चल दिए। इस तरह दुनियाके लोग अज्ञानीजन पागल कहने वाले हो गए तो यह ज्ञानी भी लोगोंको पागल देखते हैं। क्योंकि जो जैसे स्वभावका है जिनकी जैसी आदत पड़ गयी है उसी तरह वे दूसरे को देखते हैं। यह कल्पना हो जाती कि यह मूर्ख है या पागल। एक सूमको घटना है कि एक समय सूम शहरमें घूम रहा था, उसने देखा कि एक व्यक्ति भिखारियोंको मनमाना अन्न बाँट रहा था, कपड़ा बाँट रहा था, दान कर रहा था। जब सूमने यह देखा तो वहाँसे उदास चित्त घर आ गया। स्त्री कहती है कि क्या पतिदेव कुछ गिर गया या किसीको कुछ दे दिया है।

"क्या तेरा कुछ गिर गया या काहूको दीन।
तिरिया पूछे सूमसे काहे बदन मलीन॥"

अरे, आपका बदन मलीन क्यों है? तुम्हारा कुछ गिर गया या किसीको कुछ दे दिया है? सूम कहता है कि—

"ना मेरा कुछ गिर गया, ना काहूँ को दीन।
देतन देखा और को तासो बदन मलीन॥"

मैंने किसीको कुछ दे नहीं दिया है और न मेरा कुछ गिर गया है। मैंने दूसरोंको देते हुए देख लिया है कि कैसे धन लुटा रहे हैं, कैसा यह सब दे रहे हैं, उसको मैंने देख लिया, इसलिए दुःख है।

दूसरोको लुटाते देखा और दुःखी हुए। उसको तो वह दाता पागल मालूम हुआ, इसकी हैरानी भी सूमको है। सत्यवादीको, सरलको, ध्यानसे चलने वालेको, रूखा सूखा भोजन मिला उससे संतुष्ट होने वालेको लोग बेवकूफ कहते हैं, क्योंकि लोगोंके प्रति यह भावना है कि वह उतना होशियार है जो दूसरोंको धोखा देता है। किसी तरहसे अपना धन बढ़ाए, इज्जतको बढ़ाए तो लोग उसे चतुर कहते हैं। मगर जीवका धन परिणाम है, जिनका परिणाम सही है धन वही है। क्योंकि भविष्यमें वही परिणाम फलेगा। जिसका परिणाम मलीन है वह गरीब है, उसका परिणाम भविष्यमें फ़लेगा। इसलिए भाई परिणाम निर्मल रखनेका जो यत्न है वह सबसे बड़ा व्यवसाय है। यदि दो-चार पैसे आते हैं और परिणाम मलीन होता है तो ऐसा लाभ लाभ नहीं, क्योंकि परिणाम अच्छा नहीं बना है। तो क्या बना है? बाहरी बात बनी है। तो यह तो बाहरी चीज है। मुख्य काम तो यह है कि तू

निर्मल परिणाम करके ज्ञानमय रहनेका यत्न कर। निर्मल परिणाम करनेका यत्न यह है कि अपनेमें ज्ञानमात्र भावनाएँ भरो, ज्ञाता द्रष्टा बनो कि परिणाम शुद्ध सहज हो जायेगा। इस ज्ञानमय यत्नके करनेमें यह ज्ञानी आत्मा पहले तो पागलसा जँचने लगता है। इसी ज्ञानका यत्न अधिक हो जाये तो फिर वह पत्थरसा निश्चल लगने लगता है। जब ज्ञानमय पूर्ण अनुभूति जगती है तो उसका सब कार्य बन्द हो जाता है। सब कुछ अंतरमें मालूम होता है तब वह पाषाणकी तरह निश्चल मालूम देता है और फिर कितने ही विकल्प उसके अन्दर नही रहते हैं, ऐसा जो ज्ञानमय अपनेको कर दूं तो मैं अपनेमें अपने लिए स्वयं सुखी होऊँ।

जब तक अपने स्वरूपका पता न हो तब तक यह अज्ञानमें ऐसा लगता है कि मैं यह काम ठीक तो कर रहा हूं और ऐसे ही ये लोग ठीक जानकर ठीक कर रहे हैं, किन्तु अपनी आत्माका भ्रम जब जान लेता है कि यह सब विकार है, उसमें ठीक हो रहा है, यह काम आत्माका नहीं है, आत्मा तो केवल ज्ञानमात्र है, ज्ञानका स्वयं काम करता है, इसके अतिरिक्त आत्माका कोई काम नहीं है। परन्तु जब तक मोहका उदय है तब तक इस जीवको सही-सही जाननेकी दृष्टि नहीं हो सकती। अकेला तो यह रहता है और कितने विकल्पोंका बंधन बाँधे हुए है। आत्माका स्वरूप तो आनंद ही है, वह अभी तो सुखी है, परंतु जो विकल्प बना रखा है उससे निरन्तर दुःखी रहता है। बाह्यपदार्थमें क्या करता है? कुछ नही। यह भीतरसे यह आवाज नहीं उठाता कि मेरा अपनेको कुछ करना है। दूसरोंको निष्कंटक बनाना है, दूसरेकी उन्नति करना है, दूसरेका काम करना है, दूसरोंको साथी बनाना है, दूसरोंको परमात्मा बना देना है। दूसरे दूसरेकी बातें तो आ रही हैं, मुझे भी कुछ करना है ऐसी आवाजें भीतरसे नहीं निकलतीं। मुझे अपना भी कुछ करना है, तो क्या करना है? समस्त बाह्यपदार्थोंको भूलकर जैसे मैं यह चेतनामात्र हूं, ज्ञानमात्र हूं तैसे ही अपना लक्ष्य बनाना है, अपनेको मानना है, करनेका काम इतना ही है। मोक्षके लिए, कार्यके लिए, शांतिके लिए, कर्मसे छूटनेके लिए, उद्धारके लिए यही एक स्वाधीन पुरुषार्थ करना है। दुनियाकी उन्नतिकी बात तो ज्ञानी पुरुषके विपदा जंचती है। इतनी ही बात नहीं, किन्तु इस ज्ञानीको खुदकी ही ऐसी चेष्टाएँ पागलपनसी जंचती हैं जो रागादि होते उनके प्रति मैं यह क्या काम कर रहा हूं, इसका मैं करने वाला कहां? ज्ञानीको अपना ही विकार पागलपनका काम दीखता है। मैं तो ज्ञाता, द्रष्टा हूं। जैसा भगवान् कर रहे हैं वैसे ही करनेका स्वभाव मेरा है। ये विकार कर्मोदयके होनेपर होते हैं। उन्हें यह अपना माने तो यह पागलपनका काम हुआ। जो मेरे आधीनताकी बात नहीं उसमें मैं लगूं, यह मेरा अज्ञान है। विकल्प उत्पन्न होता है, यह सब अज्ञानताकी बात है, पागलपनकी बात है, यह पागल हो गया हैं। है तो

यह परमात्माकी तरह शुद्ध, मगर प्रकृतिके विकारमें लगकर यह पागल हो रहा है। ज्ञानसे अपना स्वरूपविकार पागलपनका काम मालूम होता है। यह ज्ञान भीतर देखता है। मैं निश्चल चैतन्यस्वरूपको देखता हूं। कैसा चैतन्यस्वरूप जो खुद ही मौजूद है और खुद ही प्रकट होता है। जो यह स्वभावपूर्ण विकसित होता है बस उसे परमात्मा कहते हैं। मुझमें भगवान् स्वरूप आ जाय इसके लिए कुछ बाहरी चीजें लिपटती नहीं। वह खुद ही भगवान स्वरूप हो जाता है।

जैसे कोई एक पत्थर मूर्ति बनानेके लिए लाया गया। भाई, इसमें श्री रामचन्द्रजी की मूर्ति बनाना है और देखो यह है एक रामचन्द्रजी की मूर्ति; तपस्वी, ध्यानमग्न, दिगम्बर मुद्रामें। ऐसी ही मूर्ति इस पाषाणसे बनानी है। कारीगरोंने व्यक्तमूर्ति व पाषाणको देखा। अब कारीगर क्या करते हैं कि छेनी हथोड़ा लेकर मूर्ति बनाते हैं। तो मूर्ति नहीं बनाते किन्तु मूर्तिको ढकने वाले जो पत्थर हैं उनको अलग करता है। आवरण पाषाणखंड अलग हुए कि मूर्ति प्रकट हो जाती है। मूर्ति तो उसके अन्दर है ही। केवल मूर्तिको ढकने वाले जो इधर उधर पाषाण हैं उनको अलग करके वह मूर्ति अलग हो जाती है। उसी प्रकार यह परमार्थ-स्वरूप प्रत्येक जीवमें बसा होता है। यह तो स्वभावकी चीज है। एक क्षणको भी अलग नहीं होता और न अलग होगा। चाहे वह भव्य जीव है चाहे अभव्य जीव, सबमें वह स्वरूप होता है। जीव जीव एक समान हैं। अभव्य नाम इसलिए पड़ा कि उसके परमात्मस्वरूपका आवरण कभी दूर नहीं होता, पर ऐसा नहीं है कि अभव्य जीवमें परमात्मस्वरूप ही न हो। सब जीवोंमें परमात्मस्वरूप है। उसका आवरण करने वाले ये विषयकषाय हैं। इस आवरण को जो लोग दूर कर सकते हैं उनका परमात्मस्वरूप प्रकट हो जायगा। परमात्मस्वरूप कहीं बाहरसे लेकर नहीं बनाया है। यह आवरण मोह, रागद्वेषका है। इसके दूर करनेका उपाय है, अपने ज्ञानस्वरूपकी भावना करना। मैं आत्मा शुद्ध ज्ञानस्वरूप हूं, ज्ञानमात्र हूं। आवरण रहते हुए भी विषयकषाय भावसे परे हूं। यही इसका स्वभाव है। जरा भी इसके अन्दर विकार नहीं है। यह ज्ञानस्वरूप है और ज्ञान ही इसका कार्य है। इसलिए सर्वत्र ज्ञान ही ज्ञान है। मैं ज्ञानमात्र हूं, अपनेको दुःख, द्वेष, मोह आदिसे दूर करनेका यही उपाय है। अपने को ज्ञानमय ही देखना। स्वभाव उसका कैसा है? ज्ञानमात्र। यह आत्मा कर क्या सकता है? ज्ञानमात्र। भोग क्या कर सकता है? ज्ञानमात्र। जिसका सब कुछ ज्ञानभाव है ऐसे स्वभावकी ओर दृष्टि करना मोहको दूर करनेका उपाय है। रागको दूर करना उसका स्वभाव है। यह राग कर्मोदयसे आता है। जब कर्मोदय रहता है तो राग आता है। कर्मका उदय आयेगा तो राग आयेगा। रागका संबंध कर्मोदयसे है। राग उसकी चीज नहीं, राग उसका

स्वभाव नहीं। रागरहित रहना मेरा स्वभाव है। रागरहित अपनेको निरखना, अपनेको रागरहित स्वभावमें देखना, आवरणरहित अपनेको देखना आवरण अलग कर देनेका उपाय है, सो यह कहते हैं कि ज्ञानमयताके यत्न करनेमें यह जीव पहले तो अज्ञानियोंके बीच पागलपन जनाता है और पीछे पाषाणोंकी तरह निश्चल जंचता है, वह बेकार काम जंचता है अथवा उस ज्ञानीको भी अपना सब विकार चलना, फिरना, बात करना यह सब पागलपनसा जंचने लगता है। उसका विकृत काम पागलपनका है और ये पागलपनकी चेष्टाएं हैं और जब भीतर प्रवेश करता है तो उस ज्ञानमें उसका भाव जम जाता है। और अपनेको पाषाणकी तरह स्थिर देखने लगता है। इसी तरह जिस ज्ञानकी खुदकी चेष्टाएं पागलपनकी जंचती हैं और खुदका स्वरूप पत्थरकी तरह निश्चल जंचता है वह ऐसा ही सब जीवोंमें देखता है। जीवोंकी विकारचेष्टाएं पागलपनकी चेष्टाएं जंचती हैं। अज्ञानी सोचता है कि ये सब भगवानस्वरूप हैं किन्तु इनके अन्दर कैसी चेष्टाएं हो रही हैं, कैसा स्वभाव है? परिणामके भीतरका स्वभाव देखता है तो निश्चल देखता है। यह तो सब व्यापकस्वरूप है। यह क्या है? क्या कर रहा है? बाह्य बात देखी जाती है तो वह पागलपनकी चेष्टा जंचती है। भीतरी स्वरूप देखा जाता तो वहां निश्चलता जंचती। खैर इतने चिन्तनके बाद में विकल्प शांत हो जाते हैं और पूर्ण शांतिमय हो जाता है। इन सब अपने भीतरके मर्मों के समझनेके फलमें अपना क्या कर्तव्य है कि मैं ज्ञानस्वरूप हूं, ज्ञानस्वरूप मेरा काम है। जान लूं कि मेरा स्वरूप ही इतना है। किसी वस्तुको अपनी नहीं मानो और अपने ही ज्ञानमें, आत्मामें मोह कर मैं अपनेमें स्वयं सुखी होऊं।

सुखी होनेके लिए मैं अपने आपके स्वरूपमें झुकता हूं। उस झुकनेमें आपदाएं समाप्त हो जाती हैं। एक दृष्टि दो कि दो आदमी हैं, उनको एक पहाड़में घूमना है और पहाड़पर कांटे बिछे हुए हैं। तो एक कहता है कि सारे पहाड़ पर चमड़ा बिछाकर मैं घूमूंगा। जब सारे पहाड़को मैं ढक दूंगा तो मैं खूब दौड़ूंगा। एक आदमी सोचता है कि मैं अपने पैरोंमें मोटे जूते पहन लूंगा तो सारे पहाड़में जहां चाहूंगा, घूमूंगा। तो बताओ। पहाड़में अपने ही पैरमें जूते पहिन लें और घूमें तथा चमड़ेसे सारे पहाड़को ढक दें और घूमें इन दो आशय वालोंमें कौन आदमी सफल हो सकता है? इसी प्रकार एक कोई आदमी यह सोचता है कि मैं आत्माकी ओर दृष्टि डालूं व कोई सोचता है कि इन पदार्थोंको ऐसा बनालूं फिर आरामसे रहूंगा, कोई दुःखका काम न रहेगा और पहिलेका यह सोचना है ये कि दुनियाके पदार्थ मेरे आधीन हैं, इनमें कुछ अस्तित्व नहीं। इन्हें मैं कुछ नहीं करना चाहता हूं। इस कारण परपदार्थोंसे मुख मोड़ो कि मैं अपने स्वरूपमें रहूंगा। अब बताओ

कि सफल कौन हो सकता है ? इन दोनोंमें सफल वह होगा जो अपने आप ज्ञानरूपमें अपने ही को देखता है। सफल वही हो सकता है। ज्ञानमात्र अपनेको बनाए रखना ही शान्तिका उपाय है। चैतन्यमात्र, मूर्तिस्वरूप अपनेको देखो, रागरहित अपनेको अनुभव करो केवल जाननेका तेरा अधिकार है। तो दुनियाको जानते हुए मरना यही शांतिका मार्ग है।

आत्मजागरणं यत्र चाभावे लोकजागृतिः।
अहं स ज्ञानमात्रोस्मि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१—३०॥

जिसके दर्शन होने पर आत्मजागरण रहता है और जहां दृष्टि नहीं रहने पर लोकमें जागरण रहता है वह ज्ञानमात्र मैं हूं। मैं ज्ञानमात्र हूं—ऐसी दृष्टि रखने पर आत्मामें जागृति रहती है, परम संतोष होता हूं और जिस अपने ज्ञानमात्र की दृष्टि समाप्त होनेपर वह अपने व्यवहारमें रहता है, जो बाहरकी ओर इस मायाके तत्त्वमें सार दीखता है, वह ज्ञानमात्र मैं हूं। ज्ञानमात्र आत्मामें जैसा है वैसी ही दृष्टि डालते रहना, यह चारित्र है। ज्ञानमात्र मैं हूं—इस प्रकार प्रयोग बनाए रखना यह परम चारित्र है। अन्य जो चारित्र कहे जाते हैं, नीति, अणुव्रत और महाव्रत, वह इस चारित्रके समीप ले जानेके निमित्त कारण हैं। इस कारण उन्हें चारित्र कहा जाता है। यहां पर चारित्रका सम्बन्ध आत्माके साथ है। जो शारीरिक कार्य है, मानसिक विकल्प है, वाचनिक चेष्टाएं हैं, वे पौद्गलिक चेष्टाएं हैं, उनमें चारित्र नहीं है। चारित्र जैसी आत्मा है वैसा ही बनाया जाय, इसको चारित्र कहते हैं। अपना स्वरूप सुहा जाय, अपने स्वरूपकी ओर आकर्षित हो जाय, झुक जाय, स्वरूप ही में लग जाय इसको कहते हैं चारित्र, उपासना, पूजा, आराधना, संयम यही सब। आत्माके स्वभावमें रुचि हो उसकी ओर ही झुकना, यह सब चारित्र है। बाहरी बातें तो थोड़े साधक की ओर हैं कि नियम अथवा यह बाहरी पूजा, भक्ति जो बनी रहती है तो इतना अतरमें लाभ है कि बाहर जो विषयकषाय हैं उनमें झुकनेका मोका नहीं रहता इसलिए कारण है जिस तरह कर्मका क्षय होता है वह तो आत्मारूपकी साधन ही है। आत्माके स्वरूपके समीप होना, आत्मस्वरूपका उपयोग होना और आत्मस्वरूपमें स्वयं रमते रहना, यह कर्मोंके क्षयका कारण है। सो जब उपयोग आत्माकी ओर रहता है तब आत्मा में जागरण रहता है और जब यह उपयोग बाहरी पदार्थोंमें चला जाता है तो वहां मायामें जागरण रहता है, परमार्थका जागरण खत्म हो जाता है। आनन्द आत्मजागरणमें है। दुनियाके प्रायः सब जीव उससे अत्यन्त दूर है। इस जीवके साथ जो प्रकृति लगी है उसका परिणाम यह सब दुःख है। स्वभावसे तो जीव आनन्द वाला है, अतः ज्यों ज्यों बाह्यसे निवृत्ति रहे वैसा परिणाम बनता रहे, उपेक्षा जैसी रहे सो ज्ञान कर।

हे आत्मन्, तू किसको अपनी कला दिखाना चाहता है। जो ये दृश्यमान जीव हैं ये सब दुःखी प्राणी हैं, असहाय प्राणी हैं। इन्हें कुछ दिखाकर क्या लाभ पावेगा ? मोह संसार में रुलाने वाला है, विपत्तिके संबंधमें खोटी आदत वाला है। जितना खोटापन हो सकता है वह सब संसारी जीवमें पाया जाता है। ऐसे मलीन, खोटे, बिगड़े जगत्के जीवोंमें हम कुछ अपनी बात दिखाकर लाभ उठायेंगे ? ऐसा उनको देखनेसे कोई लाभ नहीं। वे सब अत्यन्त दुःखी हैं, उनसे मेरी कोई आशा नहीं। वे मेरी किसी परिणतिके स्वामी नहीं, ऐसा विचार-कर सब जीवोंसे उपेक्षा भाव आना चाहिए और वस्तुओंका स्वरूप ऐसा है कि प्रत्येक पदार्थ अपने आपमें ही रहता है। उसका सर्वस्व अपने आपमें ही है।

मैं ही स्वयं अपने आप अपनेमें रहता हूं, अपना जिम्मेदार हूं, अपना ही परिणाम करने वाला हूं, अपनेमें ही सदा रहूंगा, इसका अपनेसे ही पूरा पड़ेगा, ऐसा अपने आपको जान, अपने आपमें झुक। ऐसा होनेपर आत्मामें जागृति होती है, आत्मामें अनुभव जगता है, स्फुरण होता है। इस स्वरूपमें शक्ति है कि कर्मोंका क्षय हो जाय तो अपने आप इस रूपमें बार-बार धारणा कर कि मैं ज्ञानमात्र हूं, मैं जाननमात्र हूं। जो जाननेका स्वरूप है वह मैं हूं। अपनेको ही अपने आपमें मान। इतना ही मेरा संबंध है, इतनेसे ही मेरा काम है, इतना ही तत्त्व है। इसके आगे यह सब प्रकृतिका विकार है, कर्मोदयका विकार है। जो कुछ दुनियामें दीखता है और वह सुन्दर दीखता है। जैसे बाहरके दृश्य, आनंदमय दृश्य, जंगलके दृश्य, बाग बगीचोंके दृश्य; जहाँ देखकर कहते हैं कि यह देखो प्रकृतिकी सुन्दरता है, प्राकृतिक सुन्दरता है। वह प्रकृति है क्या, वह प्रकृति कर्म है। एकसौ अड़तालीस प्रकृतिका यह कार्य है। बाग बगीचोंमें क्या अच्छे फूल हैं, अच्छी पत्तियां हैं, अच्छे पेड़ हैं, सुगंधित हैं ? यह क्या है ? प्रकृति उदयसे, कर्मके उदयसे होने वाली अवस्था है। उसीको प्रकृतिकी सुन्दरता कहते हैं। प्रकृतिकी चीजें छल धोखा व बरबाद करने वाली वस्तुयें हैं। यह सब उसीकी ही माया है और है क्या ? जो अच्छी चीज है वह सताए जानेके लिए है। जंगलमें रखी फूल हैं जिनमें न रूप है, न गंध है, उन्हें कोई नहीं तोड़ता है। गुलाबके फूल, बेलाके फूल, चंपा के फूल, जो सुगन्ध देते हैं, देखनेमें अच्छे लगते हैं वह तोड़े जाते हैं। जो प्रकृति सुन्दरताकी बातें हैं वे स्वभावको छोड़े हैं। ऐसी ही बात पुरुषोंकी है। ये जंगलके प्राणी स्वयं दुःखी हैं। स्वभाव इत्यादिके लिए जो स्वयं असहाय हैं, संसारमें भटकने वाले हैं उनमें तू क्यों झुकता है ? तू स्वयं ही ज्ञानानन्दमय है। इतना तो यहाँ भी देखा जाता है कि बड़े आदमीसे दोस्ती करनेसे गरीबको फायदा कुछ नहीं रहता है। खर्चा भी गरीबका हो, समय भी उसका जाय, गरीब कभी सभामें आदर नही पावेगा। बड़ेकी मित्रतामें छोटेको लाभ नहीं। फिर दुनियाके

बड़े-बड़े पदार्थोंकी ओर झुकनेमें जो दुनियामें बड़े माने जाते हैं। जैसे धन, वैभव, सोना, चांदी, इज्जत इनकी आशामें, बड़ोंकी दोस्तीमें अथवा बड़े बननेके सम्बन्धमें जीवको सुख नहीं मिलेगा। सुख तो केवल आत्मज्ञानसे मिलेगा। सही सवाल एक प्रकारसे हल होता है। गलत सवाल दसों प्रकारसे हल होते हैं। एक सवाल बोला १० बच्चोंके बीचमें। तो जो सवाल सही होंगे वह एक प्रकारके होंगे और जो गलत होंगे वह दसों प्रकारके होंगे। उनमें दसों प्रकारकी गल्तियां होंगी। इसी प्रकार आनन्दका एक उपाय है, दूसरा नहीं। आनन्दके गलत उपाय तो हजारों हैं। खा लो, पी लो, मांस खा लो, बड़ोंसे दोस्ती कर लो, मदिरा पी लो, कितने ही तरहके काम हैं। यह करना है, वह करना है, सर्विस करना है, किन्तु आनन्द का जरा उपाय तो बताओ। आनन्दका सही उपाय केवल एक है। कोई कहे यह सब किए बिना तो गुजर नहीं चलती। हां भैया! ठीक कहते हो, गुजारा तो नहीं चलता। पर ऐसे ही पड़े रहना क्या सदाके लिए ठीक है? यह तो अपने अधिकारकी ही बात नहीं। जो मनुष्य होता है वह स्थावर हो जाय तो कुछ बताओ क्या करेगा? यहांकी ये सब बातें यहां ही रह जाती हैं। इसी तरह विकल्प करनेसे लाभ नहीं है। और जैसा ही परिणाम निर्मल होगा वैसा ही फल अच्छा मिलेगा और जैसा ही परिणाम खराब होगा वैसा ही फल बुरा मिलेगा।

परमात्माके दर्शन न्यायसे होते हैं। परमात्मा जैसा है उस ह स्वरूपमें दर्शन होगा, और रूपमें नहीं होगा। परमात्मा ज्ञायकस्वरूपमें है, ज्ञानमात्र है। वह ज्ञानमात्र है तो ज्ञानमात्रके रूपमें ही तो दर्शन होंगे कि हाथ पैरके रूपमें दर्शन होंगे? ज्ञानमात्र अपने आपका अनुभव है वहां भगवान्‌का दर्शन है। क्योंकि भगवान् तो ज्ञानमात्र है। जैसे ज्ञान मात्रके दर्शनमें आत्माका जागरण है वैसा ज्ञानमात्र मैं हूं। मैं परमात्मत्वके उपयोग बनाकर उसके दर्शन कर लूं। परमात्मा ज्ञानानन्दका पिंड है। मैं यदि लम्बे चौड़े आकारमें ताकूं तो परमात्माके दर्शन नहीं होंगे। मैं परमात्माको किसी भी प्रकारकी अवस्थामें देखूं तो परमात्माका दर्शन नहीं होगा जबकि केवल चैतन्यस्वरूप, प्रतिभासमात्र, ज्ञानमात्र, ज्ञानस्वरूप अमूर्त चैतन्यभावस्वरूपके दर्शन करूं तो परमात्माके प्रगट दर्शन हों स्पष्ट दर्शन हों, उस परमात्माकी भेंटसे जो आनन्द मिलता है उस आनन्दमें ही सामर्थ्य है कि भव-भवके संचित कर्म भी स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं पर देखनेको सामर्थ्य चाहिए तो वह सामर्थ्य परपदार्थों से हटकर अपनेमें आनेसे बढ़ती है और परपदार्थोंमें लगनेसे वह सामर्थ्य नष्ट होती है। इस लिए अगर प्रभुताको रखना है और प्रभुताको बढ़ाना है तो उसका एक उपाय है कि बाहरी पदार्थोंसे उपयोग हटावे और अपने आपको ज्ञाता द्रष्टा बनावे, स्वरूपमें रुचि लगावे। इस

आत्माके दर्शन होनेमें आगरण रहता है, आश्वासन रहता है, आनन्द बढ़ता है और यदि उस ज्ञानमात्र आत्माका अनुभव नहीं है तो लोकव्यवहारमें लगा रहना पड़ता है, बड़ा कष्ट होता है। देखो परको जानना तो सरल है किन्तु कष्ट बहुत है। मान लिया कि यह उसका पुत्र है, यह उसका घर है, यह उसके बच्चे हैं, पर जो इस तरह बरबादी मिलती है वह तो कष्ट है। गुरु बनाना तो सरल है पर दक्षिणा देना सरल नहीं है। यह पदार्थ मेरे हैं—इतना मनमें विकल्प कर लेना तो सरल है किन्तु इतना माननेके फलमें क्या बीतती है सो देख लो। बाहरी पदार्थोंमें जितना लगा रहेगा उतनी ही सामर्थ्य इसकी घटती चली जायगी। और बाहरी पदार्थोंसे जितना अलग हो जायगा उतना ही इस आत्माका बल बढ़ता चला जायगा। मोहीका बल घटता है और निर्मोही में बल बढ़ता है। मोह मदिराके क्या परिणाम हैं? सो जगत्में देख लो। एक आदमी मदिरा वालेके यहाँ गया। बोला बढ़िया शराब दो। उसने कहा—यह ले लो। यह बहुत अच्छी है। कहता है कि सबसे अच्छी दो। उसने कहा—यह ले लो, यह सबसे अच्छी है। इसका प्रमाण क्या? इसका प्रमाण इन १०-२० आदमियोंको देख लो। दुकानमें १०-२० आदमी मदिरा पीने वाले बेहोश पड़े थे। इसका ख्याल और प्रमाण कर लो कि यह मदिरा ऐसी है। इस दुनियामें भी मोह-मदिरा ऐसी विकट है इस मोहमदिराका नशा देखना है तो देख लो। इन पेड़ वगैरा स्थावरोंको, कीड़े मकोड़ोंको, छोटा कहलाने वालोंको, सबको देख लो। यह मोहमदिराका फल है। जगत्में जितनी तरहके जीव हैं, ये बेचारे नाना प्रकारके जो जीव बने हैं तो यह सब उसीका तो फल है। बोलो मोहकी मदिरा चाहिए। यह भव पाया है तो यह सब मोहका फन्दा है। यदि इसमें फंसना न हो तो मोहसे अलग रहिए। और फिर व्रत, नियम, भगवान् की पूजा आदिकी क्या जरूरत है? परन्तु मोहका फल यह होता है कि स्थावर बन गया, कीड़े मकोड़े बन गया, चूहा, बिल्ली बन गया। किसे बड़ा कहा जाय? ऐसा ही तो मनुष्य बना हुआ है, इसीसे ही कष्ट हो रहे हैं। जिनवाणी सरस्वतीका प्रसाद है। जो कुछ समय कष्टरहित व्यतीत हो रहा है यदि यह नहीं है तो रात-दिन क्लेश हैं। कहीं स्त्रीसे कलह है, कहीं पड़ोसियोंसे कलह है तो कहीं दोस्तोंसे कलह है। कितनी ही प्रकारकी चिंताएँ हैं। तो कौन बड़ा है? बड़ा वह है जिसने अपने परमात्मस्वरूपके दर्शन किये हैं और जिसके प्रसादसे यह जीव आनन्दमग्न होता है। किसी जीवको अपनेसे बड़ी अपनी आत्मा ही मिलेगी। किसी जीवको शरण अपनेको अपनी आत्मामें ही मिलेगी, दूसरोंका कोई सहारा नहीं।

एक स्त्री पुरुष थे। पुरुष कुछ व्यसनमें लग गया था। स्त्रीने बहुत समझाया, परंतु न माना। स्त्री बोली कि तुम केवल एक ही काम यह कर लो और कुछ न कीजियेगा।

एक मूर्ति दी, बोली कि यह भगवान्‌की मूर्ति है इसकी रोज पूजा कर लिया करो। पूजा करनेमें २० मिनट लगेंगे तथा पूजा करके केवल २४ घंटेको व्यसनका त्याग कर दिया करो। पुरुषने स्वीकार कर लिया। वह रोज पूजा करे व २४ घन्टेको व्यसनका त्याग कर दे। १० दिन गुजर गए। एक दिन यह देखा कि एक चूहा आ गया। जो भगवानकी मूर्ति पर से चावल ले गया। उसने देखा कि मूर्तिसे तो चूहा बड़ा है। तो चूहेको पूजने लगा। चूहेको जब बिल्लीने डराया तो बिल्लीको बड़ा मानने लगा। बिल्लीको जब कुत्तेने डराया तो कुत्ते को बड़ा मानने लगा और यह जानने लगा कि इससे बढ़कर कुछ नहीं है, उसकी पूजा करने लगा। एक दिन स्त्री रोटी बना रही थी, रसोईमें कुत्ता घुस गया। स्त्रीने एक बेलन मारा। कुत्ता खूब चिल्लाकर भाग गया। उसने सोचा कि कुत्तेसे स्त्री बड़ी है। स्त्रीकी पूजा करने लगा। एक दिन आप भोजन करने बैठा। दालमें नमक ज्यादा था। बोला—नमक ज्यादा क्यों पड़ गया। स्त्री बोली—हाथ ही है ज्यादा पड़ गया तो क्या किया जावे ? एक सेर पानी दालमें डाल दो। उसने स्त्रीके एक तमाचा मारा। स्त्री रोने लगी। अब उसने समझा कि मैं सबसे बड़ा हूं। मैं बेकारमें दुनियामें भटकता रहा। मैं आप ही अपने बलसे दुनियाका काम निकाल सकूंगा। अतः जिस ज्ञानमात्र आत्मापर दृष्टि होनेपर यह आत्मा जगती है और जिसपर दृष्टि नहीं रहती तो लोकव्यवहारमें जागरण रहता है। वह मैं आत्मा ज्ञानमात्र हूं। मैं आत्मा जो कि 'ज्ञानमात्र हूं' की उपासना कर अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ।

अहं स्वं जन्ममृत्यादि सुखं दुःखं नयाम्यहम्।
मुक्तो नेता गुरुस्तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-३१॥

मेरा जो कुछ होता है उसका मैं ही जिम्मेदार हूँ। और अब तक जो कुछ मेरा हुआ है उसका जिम्मेदार मैं ही था और भविष्यमें भी जो कुछ होगा उसका भी जिम्मेदार मैं ही रहूंगा। जो भी जन्म, मरण, सुख, दुःख इत्यादि मुझे सताया करते हैं उनका करने वाला मैं ही हूं। तभी तो अन्य लोग भी ऐसा कहते हैं कि भगवानकी लीला विचित्र है। भगवानकी जो इच्छा होती है उसके अनुकूल सारे काम अपने आप बन जाते हैं—एक बात। दूसरी बात यह है कि जब चर्चा आती है कि भाई वह ईश्वर उपादानकर्ता है कि निमित्तकर्ता है। यदि उपादानकर्ता है तो जैसा चेतन ईश्वर है वैसी ही सृष्टि होनी चाहिए, फिर अचेतन सृष्टि भी क्यों होती है ? यदि ईश्वर निमित्तकर्ता है तो यह सब उपादान पहलेसे ही हाजिर हैं। इन सब पदार्थोंमें ईश्वरने भूलसे क्या किया ? जैसे ये दो प्रश्न ईश्वरके लिए कहे जाते हैं कि ईश्वर उपादानकर्ता है या निमित्तकर्ता है ? तो उसका उत्तर होता है कि वह उपादानकर्ता भी है और निमित्तकर्ता भी है। यह बात तो यहीं रखो। इस निजनाथकी ओर आवो। यह

सो सारी सृष्टिके लिए जन्ममरण करना, सुख दुःख करना, शरीर धारण करना, सबके यह उपादानकर्ता भी हैं। कितनी ही सृष्टियां इसके अन्दर ऐसी हैं जैसे कषायकी सृष्टि, योगकी सृष्टि, ज्ञानकी सृष्टि, दर्शन लेश्या। कितनी ही सृष्टियां ऐसी हैं जिनका उपादानकर्ता यह प्रभु ही है याने जीव है, और कितनी ही सृष्टियां ऐसी हैं कि जिनका निमित्तकर्ता यह जीव उपादान नहीं है।

इसकी सृष्टिका यह जीव निमित्तकर्ता है और उपादानकर्ता भी है। हम जन्म मरण, सुख दुःख आदि जो करते हैं उन सबमें ले जाने वाला मैं ही तो हूं, यह दूसरी बात है। अब पहली बातपर आवो। जैसे ईश्वरवादी कहते हैं कि ईश्वरकी इच्छा हो तो तुरन्त काम हो जाय और उसे कुछ नहीं करना पड़ता है। यही बात देखो कि जो इस प्रकारके परिणाम करता है तो सारे काम अपने आप होते चले जाते हैं। यह प्रभु केवल परिणाम करता है। अभी इसे क्या बनना है कि सशरीर वाला बनना है, मनुष्य या देव बनना है। यह सब अपने आप हो रहे हैं। जीवने तो केवल परिणाम भर किया। तो मैं ही अपने आपको जाननेमें ले जाने वाला हूं, यह तो हुई संसारकी बात। मुक्तिमें भी ले जाने वाला मैं हूं, इस कारण मेरा गुरु मैं ही हूं।

इष्टोपदेशमें लिखा है कि—

स्वस्मिन् सदभिलाषित्वादभीष्टज्ञायकत्वतः।
स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः॥

अपने ही में आप सत्की इच्छा करता है और अपने अभीष्टको ही उसमें पहुंचाता स्वयं ही हितमें प्रयोक्ता होता है। इस कारण आत्माका गुरु आत्मा ही है। यह सब मायाजाल है। जो कुछ तो जीवके निमित्तसे पुद्गल उपादानमें होते हैं और कुछ पुद्गलके निमित्तसे जीव उपादानमें होने वाले हैं। बड़े विकट मायाजाल हैं—इच्छाके परिणाम, रागके परिणाम, मोहके परिणाम। परिणाम करनेमें बहुत सुहावना लगता है और इतना ही नहीं इस रागमें अंधा हो जाता है। और क्या है कि इन्द्रिय, विवेक, मन किसी भी उपायसे इसको कुछ सूझता नहीं है। आंखका आंकना तो आंखसे ही नहीं सूझता है। किन्तु मोहके अंधेको किसी भी तरह सूझता नहीं है। ये सुहावने लगते अवश्य हैं मगर विवेक तो कर। मनको नहीं संभाला, ज्ञानको नहीं जगाया तो ये सब उसको दुःखी करनेके लिए हैं। यह संसार क्यों बना हुआ है? इस जगत्के जीव क्यों रुल रहे हैं? दुःख सुखकी पहिचानमें क्यों नहीं आते? 'मोह, राग, रुष, दुःखकी खान।' मोह, राग, द्वेष ही दुःखकी खान है। "निजको निज और परको पर जान।" मैं ही अपनेको दुःखी करता हूं और मैं ही अपनेको सुखी करता हूं।

कोई उसके दुःख सुखको मानने वाला नहीं।

एक कथानक है कि एक अतुपुण्य नामका राजपुत्र था। उसने पूर्वजन्ममें कोई पुण्य नहीं किया। सदैव देवताओं, साधुवोंका अपमान ही किया। ऐसा जीव राजाके यहाँ पैदा हुआ। पैदा होते ही राज्यमें क्षीणता आ गयी। पब्लिकको दुःख हुआ। पब्लिक ने राजासे कहा कि आपके इस पुत्रका जन्म जबसे हुआ महाराज तबसे प्रजामें दुःख आ गया। मतलब यह है कि उस लड़केको राज्यसे निकाल दिया जाय। पर माँ को पुत्र प्यारा होता है। माँ भी लड़केके साथमें चली गयी। महाराजने गाड़ियों सामान लड़केको दे दिया। खूब धन दौलत लड़केको दे दी जिससे कि बच्चा हमारा दुःखी न हो। परन्तु दुर्भाग्यवश अनाज मार्ग में छिड़कता गया। सारा दुःखी न हो। परन्तु दुर्भाग्यवश अनाज मार्गमें छिड़कता गया। सारा खत्म हो गया। मोहरें देखो आग बन गयीं। जब उदय पापका आता है तब पापका [illegible] भी दुःखका कारण बन जाता है, और जब पुण्यका उदय आता है तब आपको पता नहीं कि कहाँसे क्या आता है? चला आता है। यह सब अपने आप होता है। पर उन सबका जो कारण है वह मैं ही खुद हूं। परिणाम सबका सही है तो मेरा भवितव्य अच्छा है और यही परिणाम मेरा है तो भवितव्य भी खराब है। मैं ही तो गुरु हूं। जैसा मैं अपने को चाहूं वैसा मैं अपनेको ले जाऊँ। ऐसी दृष्टियां ३ होती हैं—एक शुभदृष्टि, दूसरी अशुभ-दृष्टि और तीसरी शुद्धदृष्टि। इन्हींमें यह कमाल है कि सारी सृष्टियां होती रहती हैं।

मनुष्य मैं हूं, अमुक नाम वाला हूं। राग द्वेष जो कुछ मैं करता हूं ठीक करता हूँ। मेरे जो विचार हैं वह ठीक हैं। अपने आपको मैं जन्मसे विचारता चला आ रहा हूँ, यह सब ठीक है। ये अशुभ दृष्टियोंका फल पापको बनाना है। पाप वर्तमानमें भी आकुलित करता है और भविष्यमें भी आकुलित करेगा। शुभदृष्टि क्या है? भगवानका गुणानुवाद करना, भक्ति करना, पूजा करना, जीवोंको दयाके भावसे देखना यह सारी शुभ दृष्टियाँ हैं। इनका फल सम्पत्ति, वैभव जो कुछ प्राप्त हो, हितकर कुछ नहीं है।

मैं आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूँ। मैं अपने आप क्या हूँ? मैं केवल चैतन्यमात्र हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ, जानने वाला हूँ। चैतन्यस्वरूप एकवस्तु हूँ, ज्ञानमात्र हूँ। जिसकी जाननेकी ही काया है। ज्ञानघन हूँ। मैं ज्ञानसे अतिरिक्त और कुछ नहीं हूँ। ऐसी मैं चेतना हूँ। ऐसी दृष्टिको शुद्धदृष्टि कहते हैं। इस शरीरके अतिरिक्त मैं जीव केवल ज्ञानस्वरूप हूँ। यही मैं आत्मा एकवस्तु हूँ। और मैं कुछ नहीं हूँ। ऐसी दृष्टिको शुद्धदृष्टि कहते हैं। आदमी सोता है तो सोतेमें भी जागता है। सोतेमें भी विकल्प होता है। इनकी बातें भी कभी कभी झलक जाया करती हैं ऐसी दृष्टि ज्ञानकी शोधी हुई है। जैसी अपनी दृष्टि की है वैसी दृष्टि बनाता

है। देखो जैसे नामकी वासना दृढ़ है, कोई नाम ले तो चौकन्ना तुरन्त हो जाता है। बड़ी भीड़में बैठा है और नाम कोई ले लो तो तुरन्त चौकन्ना हो जाता है। कैसा नामके प्रति अनुराग है। और उस नामका शब्द कितना सुहावना लगता है। कहीं नाम लिख दें, कहीं नाम बोल दें तो उससे कितना अनुराग हो जाता है? दूसरोंको वशमें करनेकी सबसे बड़ी दवाई यह है कि उसके नामकी प्रशंसा कर दे, उसका नाम लिख दे, नाम बता दे, या कहिए कि जिसे चाहें वश कर लें। जीवनको वश कर लें, दुनियाको वश करें, जो बुरा है उसको वश करलें यह क्या? वशीकरण मंत्र नामकी कीर्ति गा लें, नाम लिख दें, नाम ले लें। इनमें सब वश हो जायेंगे। यह डायरेक्ट वशीकरण मंत्र है। यह महाविष है। यह इस लिए विष है कि इसमें सब प्रभुता नष्ट हो जाती है। सब जीवोंमें मिलाजुला संसारमें एक चैतन्य वस्तु है, मेरा इसका नाम ही नहीं है और न मैं दुनियाके अन्य जीवोंसे कोई खास हूं। इसलिए नामरहित शुद्ध अपनेको देख, यही ज्ञान है, यही शुद्धदृष्टि है। जहां अपनेको नाम वाला समझा, बस समझो कि संसारमें रोनेका साधन बना लिया तभी तो शुद्धदर्शनमें नामको पहिले रखा है। सर्व आपदाओंका मूल नामकरण है।

परमार्थसे मैं नामरहित हूं, शुद्ध हूं, सबसे निराला हूं, अकेला हूं, चैतन्यमात्र हूं, इसलिए उसकी जो उपासना करेगा दृष्टि पवित्र हो जायगी और शुद्धदृष्टि बढ़ती चली जायगी और उस दृष्टिकी दृष्टि है, मोक्षका होना और पर्यायकी दृष्टि है संसारमें रोना, जन्म-मरण बना रहना, सुख दुःख बना रहना तो देखो सुख दुःख आदिमें मैं ही अपने को ले जाता हूं, मैं ही अपनेको प्रकाशमें ले जाता हूं। इसलिए मैं अपना गुरु स्वयं ही हूं और दूसरा मेरा गुरु कोई नहीं है। मेरा मार्ग बनाने वाला मैं ही हूं और कोई दूसरा नहीं है, इस विषय कषायकी फिसल रिपट कहिए, ऐसी विचित्र है कि जरा भी मनकी ढिलाई की कि वह बढ़ती चली जायगी। जैसे बरसातमें कीचड़ वाली सड़कमें असावधानीसे चलें तो जरा भी फिसलते हैं तो फिसलते ही चले जाते हैं। इसी तरह धनके आकर्षणमें, नाममें, यशमें, इच्छामें परिवारके रागमें झुके, शिथिल बनें, इस दुनियामें ठीकसे रहना, शानसे रहना, फिर देखा जायगा, बड़ोसे सम्बन्ध हो, बड़ा काम करना है फिर अन्तमें देखा जायगा, अपनेको संभाल ले जाऊंगा— ऐसी कुछ ढीलकी कि ढिलाईकी तरफ स्वयं बढ़ता चला जाता है।

मैं आत्मा धर्ममय हूं, इसलिए प्रतिदिन धर्मकी दृष्टि होना चाहिए। जीवनके रोजके २४ घंटोंमें धर्मका हिस्सा होना चाहिए। जीवनमें सब आयु की बांट नहीं करो कि हम ८० वर्ष तक जीवेंगे। सो ७० वर्ष मनमाने चले, फिर १० वर्ष अन्तमें धर्म देख लेंगे। तू २४ घंटोंमें ३ घंटे तो धर्मका काम कर। इतना समय यदि धर्म काममें जायगा तो शांति

का मार्ग मिलता रहेगा। कहीं व्यापारिक कामोंमें फंसे हुए हैं, कोई भी स्थिति हो हर स्थितिमें अपने को इन २४ घंटोंके बीच धर्मपालनका समय देना चाहिए और अगर आयुमें ही समयका भाग करना है तो पहला काल धर्मका लाए। ५ साल खूब धर्म कर लिया जाय आत्मतत्त्वका मर्म ही समझ लिया जाय तो क्या है ? कमानेको जिन्दगी बहुत है फिर देख लेना कमानेंकी बात। अगर आयुके बांटमें धर्मका समय देते हो तो पहले धर्ममार्गको दो। एक कथा है कि विधाताने कहा एक जीवसे कि बालिका होनेके बाद तुम्हारी आयुमें एक दो वर्ष तो देता हूं तुम्हारे सुखके लिए, मौजके लिए, सम्पदाके लिए, धर्मके लिए बाकी ५०, ५५ वर्ष वह देंगे तुम्हारे दुःखके लिए। अब तुम्हारी मर्जी हो तो एक दो वर्ष चाहे पहिले ले लो चाहे आखिरी पीरियड ले लो, दस वर्षके बादमें वह आदमी बालिग हो गया। वर्ष १० वर्षका हो गया तब वह बहुतसा धन रोज कमाता, उसने सोचा कि एक दो वर्षमें सब सुख करलें सबसे ठीक बोलेंगे, सबके साथ ठीक तरहसे रहेंगे। उसने खूब धर्म भी किया। अगर यह जाना कि आगे तो वर्ष खोटे आवेंगे तो जो कुछ उत्तम हो वह सब जल्दी कर लेना। उसने २ वर्ष धर्ममें बिताए तो भविष्यके पाप भी कट गए। सो भैया ! यदि यह सोचो कि अभी तो बहुत आयु है, अभी तो ५०, ६० वर्ष मौज कर लो, फिर धर्म करना देखा जायगा तो प्राय: यही समझो कि ये ५०, ६० वर्ष तो व्यर्थमें जा ही रहे हैं, सारा समय तो यूं ही खत्म हो जायगा तो अपना सारे जीवनका कुछ आगे पीछे का भाग न करके २४ घंटेमें अपना कमसे कम ३ घंटेका समय धर्मसाधनामें लगाना चाहिए। एक घंटा ज्ञान आराधनामें गया और कुछ समय भक्तिमें गया, कुछ समय साधु जनोंकी सेवामें गया। २४ घंटेमें कमसे कम ३ घंटेका समय धर्मसाधनामें व्यतीत होना चाहिए। कोई कहे कि धर्म साधना कैसी ? सो कहते हैं।

धर्मसाधनाका मतलब यह नहीं कि कोई सोचे मैं मूर्तिपूजा करता हूं और मुझे ज्ञान से साधुओंसे जनसेवा से मतलब है तो यही भले समझ ले कि मैंने धर्म कर लिया है, किन्तु धर्मकी प्रवृत्ति सब अंगोमें होती है। मैं अपनेको जन्ममें ले जाने वाला, मरणमें ले जाने वाला, दुःख और सुखमें ले जाने वाला हूँ। मेरा गुरु मैं ही हूं, और मेरा गुरु कोई नहीं है ऐसा जानकर कुछ अपनेमें आना चाहिए। इस जगत्में यह तो होता ही रहा है कि दूसरे पदार्थ उसका कुछ करनेमें समर्थ नहीं होते, तब किसीको उसकी आशा ही नहीं रखना चाहिए। कारण यह है कि दूसरोंकी परिणतिसे इसमें कुछ बढ़ता नहीं है, यह तो अपने ही परिणामका फल है। दूसरे लोग भी उसके किसी काममें सहायक हो जाते हैं। यह अपने ही परिणामकी कला है। कल एक प्रश्नमें आया था निमित्त और उपादान। निमित्त कुछ

करता है कि नहीं ? निमित्त और उपादान किसे कहते हैं ? उपादान तो वह है कि जिसमें परिणति होती है, जिसमें कार्य करे उसको उपादान कहते हैं। और जिस दूसरी चीजके बिना कार्य न बन सकता हो उस दूसरी चीजको निमित्त कहते हैं। यह तो उपादाननिमित्त के सम्बन्धमें ऐसा दृष्टा देखे कि वह दूसरी चीज जो निमित्त है, क्या उसके उपादानमें परिणति कोई आ गयी ? उसका क्षेत्र, काल, भाव कुछ भी उपादानके अन्दर नहीं गया। और फिर भी हैरानी इस बातकी कि निमित्तकी उपस्थिति बिना उपादानमें कोई विभाव कार्य नहीं हो सका। ये समस्याएं सामने हैं कि निमित्त करता कुछ नहीं परन्तु निमित्तके बिना कुछ होता नहीं। यह तो कैसी विचित्र बात है ?

फलित क्या कि यह सब उपादानकी कलाएं हैं, यह सब उपादानकी ही योग्यताएं हैं कि यह उपादान ऐसे पदार्थोंको सामने पाकर खुद ही खुद अपने आप रूपमें ऐसा बन जाता है। जैसे इस चबूतरे पर हम बैठें तो इस बैठनेका उपादान कौन है ? हम ही हैं। हमके मायने पिंडोला, हाथ, पैर, विस्तर, बंडल यह पैर मुड़े आगे ऐसे बैठें तो इसके उपादान हम ही हैं। पर इस चबूतरेको निमित्त पाकर मैंने सब कुछ कर लिया, इस चबूतरेने कुछ नहीं किया। ऐसी कोई जबरदस्ती की है ,या कोई कसूर किया है। पर मैंने ही अपनी इच्छासे पैरके अनुसार मैं स्वयं ही निमित्त पाकर अपने आप ही इस पर बैठ गया। यह समझना चाहिए कि जितने भी विषय होते हैं जन्मके, मरणके, सुखके, दुःखके उन सबमें ले जाने वाला मैं हूं। इन सबमें सारी अपनी प्रवृत्तियों को मैं ही करने वाला हूं, दूसरा कोई नहीं है। मैं दुःखी होता हूं तो मुझे दुःखी करने वाला मैं ही हूं। मैं जब सुखी होता हूं तो मेरे सुखका करने वाला मैं ही हूं। मैं यदि गड़बड़ करता हूं तो मेरा गड़बड़ करने वाला मैं ही हूं। और यदि मोक्षमार्गमें लगता हूं। तो मुझे मोक्षमार्गमें लगाने वाला मैं ही हूं। दूसरों का न अपराध सोचें और न ऐहसान सोचे। क्योंकि दूसरे पदार्थोंसे मेरा कुछ आता जाता नहीं है। यह तो उसके ही कर्मसे उसके ही ज्ञानसे आया है। मेरे घरमें १० आदमी हैं पर यहां मन बिगड़ा है यदि वह दूसरोंको ऐसे बैठा हुआ देख ले तो वह सोचता है कि यह मेरे प्रति कुछ सोचता है। मेरी ओर यह कैसे बैठा ? हाथ पैर तो उसके कहीं जा नहीं सकते वह तो रहेंगे ही, दूसरा विकल्प करके दुःख होता। अपने आप दूसरा विकल्प करके दुःखी हो रहा है। सोचो कि यह स्वयं गिरा है सो दुःख हो गया, वह स्वयं दुःख हो गया। दूसरा कोई दुःख नहीं करता। मंदिरमें जो शुरूमें विचार करता है और देखता है कि आज वह भगवान् बहुत प्रसन्न हैं। मालूम होता है कि अब भगवान् बोलना चाहते हैं। जैसा परिणाम किया वैसा दुनियाको देखता है। उसमें हमारा जो भी परिणमन होता है उसका करने

कर्त्ता मैं ही हूं अतः परके कर्तव्यका भ्रम छोड़कर अपनेमें ही विश्राम करके अपने आप ही सुखी होऊं।

देहे बुद्धया वपुः स्वस्य बुद्धया स्वः प्राप्स्यते मया।
ज्ञानमात्रमतिर्मेऽस्तु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-३२॥

सब दुःखका मूल शरीर है, यह सब साधारण दर्शन की बात है। कल्पना कीजिए कि जीवके साथ शरीर न हो और केवल यह जीव ही होता तो इसे क्या क्लेश था? जो शरीर सब क्लेशोंका मूल है, उसमें ऐसी जो ममता रहती है तो यह विवेक नहीं। यह शरीर अपने से अत्यन्त जुदा है। इसका होना, इसमें ममताका होना कितने बड़े दुःखकी बात है? आत्मा तो स्वयं भगवानस्वरूप है, आनन्दमय है, ज्ञानानन्द है, अनुपम सम्पत्तिवान है, फिर भी अपने स्वरूपको न पकड़कर बाहरी बातोंमें केवल दृष्टि लगाना यही हम सबकी खुदकी विपत्तिकी बात है। जैसे दुनियामें कहते हैं कि गजब हो गया। क्या हो गया चोरी हो गई। बड़ा गजब हो गया। अमुक आदमी गुजर गया। क्या हो गया? बड़ा गजब हो गया। यह तो विचार दुनियावी है। सबसे बड़ा गजब तो यह है कि ऐसो आनन्द अब आत्मामें अपनी दृष्टि न रखकर बाहरी पदार्थोंमें दृष्टि लगाई है—यह गजब है। बाकी कुछ और नुक्सान नहीं है। जिसे खोटा समझा वे पदार्थ है, परिणमते हैं, वर्णनशील हैं। उनका काम हो रहा है। उनके होनेसे नुक्सान नहीं है। नुक्सान तो यह होगा कि हम अपनी बेवकूफी मात्रसे अपने आपमें अनन्त संसार बनाए रहे। यह गर्व हो गया। भैया! सिर्फ ज्ञानका ही तो काम कर रहा है। चिंता कुछ न कर वस्तुओं का तू कुछ न कर, उनको ठीक तरहसे समझ ले। केवल समझसे आपकी दृष्टि होती है। बाहरी चीजें मेरी दशाके लिए कुछ नही है। वे किसी भी तरहसे मेरे लिए जिम्मेदार नहीं हैं। जो आप समझते हैं उसीपर सुख दुःख निर्भर है। केवल इतना समझना कि समझकी शैलीमें मेरा शरीर बनना निर्भर है। आना-जाना कुछ नहीं, किन्हीं पदार्थोंसे वास्ता कुछ नहीं। मगर तू उन्हें अपना न माने तो लाभ है। केवल यह जीव समझता है। समझनेके अलावा और कुछ नहीं करता है। बस इसी समझनेपर ही हमारे शरीरका बनना, न बनना निर्भर है। यह सारा शरीर दुःखोंकी जड़ है। सुख दुःख जन्म मरण जो कुछ हैं वे शरीरके ही द्वारा होते हैं।

इस तरह यह सिद्ध है कि दुःखोंका कारण शरीर हैं। दुःखोंका कारण मिटता रहे, इसमें प्रसन्न हो या दुःखोंका कारण न मिटे इसमें प्रसन्न हो। दुःखोंका कारण मिटे ऐसी बात हमारेमें उठती ही नही है। संसारी जीव दुःखका कारण जो शरीर है उसे ही चाहता है। यह वर्तमानमें सोच लिया जाता है। शरीर न मिटे यह जल्दी सोच लोगे। ऐसा सोचो

कि यह न रहे तो ठीक ही रहेगा। पर यह सब बातें हमारे किसीकी समझमें नहीं आतीं। केवल वचनोंमें हमारी बातें चलती हैं उनसे काम नहीं बनेगा। यह उपयोग संस्कारमें आवे तो काम हो। जब मेरा कुछ जगत्में है ही नहीं, न शरीर रहता है, न परिवार रहता है, न धन-दौलत रहती है, जब तुम्हारा जगत्में कुछ रहता ही नहीं। मेरा तो केवल ज्ञान ही मेरा है। इसीसे मेरा पूरा पड़ेगा। केवल एक निजसे दृष्टि लगा तो अपने हाथ सब कुछ है। बाह्य दृष्टि न रहे तो शांति सहज ही है। मतलब सब कुछ मुफ्तमें मिल रहा है। कहीं ऐसा यदि सोच ले तो समझो कि उसे सब कुछ मिल गया है। यह पदार्थ सब अपनी-अपनी सत्तामें हैं। एकका दूसरेसे अत्यन्त अभाव है। एक दूसरेका कुछ भी नहीं करता है। सभी अपने अपनेमें जुदा रहते हैं। एक दूसरेसे कोई सम्बन्ध नहीं है। सो चेतन पदार्थोंमें सब अपना अपना ईमान चला रहे हैं। पर हम हैं कुछ मानते हैं कुछ चलते हैं। उनकी यह बात अचेतनमें नहीं पायी जाती है। वे अपनी सत्तासे ईमानपर निर्भर हैं। पर यह भगवानरूप चैतन्यप्रकृतिके संबंधमें अपने ईमानको खो बैठा है सबमें सम्यक् गुण और चारित्र गुण विद्यमान है। यह मुख्य दो गुण चेतना वाले तो चेतन नहीं हैं। सम्यक् चेतन वाला गुण नहीं है, जानने वाला गुण नहीं है। यह दृष्टि नहीं जानो कि चेतनमें जितना गुण है वह चेतन ही रहे। यहाँ तो कार्य अपेक्षाकृत कर रहे हैं। आत्मामें अनेक गुण हैं जिसमें चेतन वाले दो गुण हैं। ज्ञान दर्शन तथा इसके अलावा अन्य गुण होते हैं वे चेतन नहीं। सो भैया! अचेतन प्रकृति संगसे क्या चारित्रमें बिगाड़ होता है? यह भी ईमानदारीकी ही बात है या रागद्वेष एवं उपाधिवश अचेतन गुणके विकार हैं। ईमानदारी छोड़ दी, ईमानदारी छोड़नेका नाम मिथ्यात्व है। अचेतन गुण बिगड़ता है, विपरीत होते हैं। यह सब होती है न्यायकी बात। पर उनमें राग हो जाना यह बेईमानी है। रागद्वेष भावोंको अपने स्वरूपमें बैठाता है, यह बेईमानी है। और फिर इस जगत्में दीखने वाला जो धन है, वैभव है, परिवार है उनको अपना मानना यह तो बेईमानी है ही। अपनेपर अन्याय है, अपने आपको जगत्में रुलाते रहनेका उपाय है। उसीमें यह शरीर है। यह शरीर भिन्न है, दुःखका कारण है, इसे जो अपनेमें मिलाता है वह बेईमान होता है।

जो पवित्र है वह मैं हूं, ऐसी आत्मबुद्धिको देहमें आत्मबुद्धि करना यह बेईमानी है, अन्याय है, पाप है और मोह है। इस पापके करनेसे क्या होगा कि दुःखके कारण यह शरीर मिलता ही रहेगा। जैसे किसी लड़केसे प्यार नहीं है, कदाचित् वह एक ओरसे भूलसे ऐसी चीज मांग बैठे जिसमें कोई भी सार नहीं है या जिसे अलग डालना चाहता था वही मांगे तो उसके देनेमें झिझक नहीं होती है। इसी तरह यह संसारी जीव एक असार चीजको मांग

बैठा। शरीरको जीव मांग बैठा तो इसके देनेमें कोई झिझक नहीं होती है। ले जाओ, ले जाओ, संसारमें जाकर खूब जन्म मरण करो। यह इसका फल है तो शरीर मिलता जायगा। इस शरीरमें आत्मबुद्धि करनेसे यह शरीर मिल तो जायगा तो दुःख बढ़ते ही चले जायेंगे। जैसे जैसे भवमें जायगा उसे उसी भवमें समागम दुःख मिलेगा और उसीमें राज करके अपना समय निकलता रहेगा। यहाँ तो यह समागम चल रहा है कि इस रागमें कुछ समय गुजर रहा है, पर यह सब अन्तमें न होगा। अन्तमें मरकर ऐसी दुनियामें वह कीड़े मकोड़े बन गया तो फिर क्या बस चल जावेगा? अब तो दुःख मेटनेका उपाय जल्दी बन जायगा। अगर सुख करना है तो मोह न करो और सम्यक्ज्ञानकी ओर दृष्टि दो, सम्यक्ज्ञानमें अपना समय दो। देखो तो मैं तो केवल ज्ञानमात्र हूं, पर अपनेमें स्वरूपदृष्टि न देकर दूसरे पदार्थोंमें आ गया हूं। फल उसका क्लेश है।

हे प्रभु तू तो आनन्दघन है, अतः आनन्द विराजमान है, प्रकाशवान है। इसको वही देख सकता है जिसकी मोहपर विजय है। जिसको पर्यायमें उपयोग नहीं है वह अपने आपमें विराजमान प्रभुको निरख सकता है। जो पर्यायमें आत्मबुद्धि करता है उसको भगवानके दर्शन नहीं होंगे। वह सुखके जंजालमें ही पड़ा रहेगा, यहांपर प्रभुकी भेंट व शरीरका मिलन दोनों मुफ्त मिलते हैं। पसन्द कर लो क्या चाहिए? यह एक ऐसा दुर्लभ तत्त्व है तथा कैसा मुफ्तका तत्त्व है? तुम्हारी इच्छा हो तो तुरन्त मिल जाय, देर नहीं लगेगी। जरा भी इच्छा हो तुरन्त मिल जाय। इसमें जरा भी परेशानी नहीं। जैसे जलपूर्ण देशोंमें और बरसातके समयमें जगह जगह पानी भरा होता है। वहाँ पानी मिलना कितना सरल है। उससे भी अधिक अपने भगवानकी भेंट सरल है। बिजलीके बटन दबानेसे बिजली जलती है, उसमें तो अधिक समय लगता है। एक सेकेन्डका हजारवां हिस्सा भी नहीं लगेगा। भगवान मिल जायेंगे, परन्तु शर्त यह है कि दृष्टिरूपमें ही केवल समझ कर लेनेकी बात है, भीतरसे ज्ञान विज्ञान कर लेनेकी बात है। एक साथ जगत्के सब पदार्थोंसे अपनेको अलग कर लो। यह सब कुछ भी मैं नही हूं। मैं तो एक ज्ञानस्वरूप आत्मा हू। एक साथ सबको अलग मानकर क्रमसे मान करके लक्ष्य नहीं मिलेगा। इसे कल अलग कर देंगे, इसे दो चार साल बादमें अलग कर देंगे। ऐसा मत करो सबको एक साथ अलग कर दो। उपयोगमें मैं सब कुछ वय हूं। इस जगतमें कोई भी तत्त्व मेरा नहीं है। ऐसा निश्चित करके और भगवानसे भेंट कीजिए अन्य कोई भी उपाय नहीं है। वर्षों कोई उपाय कीजिए और यदि किसी दिन कोई एकत्वदृष्टिका उपाय समझ जाओ तो अपने आपको कुछ अकेला अनुभव करो, भगवानसे भेंट हो जायगी। भगवान बाहरसे आकर नहीं मिलेगा जो बाहरसे आकर खुश कर दे। बहुत

बहुत यत्न करके कोई भगवानको खुश कर ले सो नहीं होगा। कोई दूसरा भगवान् खुश नहीं होगा, अन्य और कोई खुश नहीं होगा, मेरा प्रभु ही प्रसन्न होगा। मेरे प्रभुकी प्रसन्नता के बिना काम नहीं बनेगा। मेरा प्रभु ही प्रसन्न होगा। पहले प्रभुके सामने तो आओ, अपने सामने ही आनेमें प्रभुका सामना हो जायगा। तुम्हारा यह प्रभु दयालु है। इतना सरल है, इतना भोला भाला है कि जरा भी सामने आओ तो सब कुशल कर देगा, सब माफ कर देगा। प्रतिक्रमण में आता है कि मेरा पाप ऐसे मिथ्या होता है। जहाँ चैतन्य चमत्कारमात्र निष्पाप स्वभावको देखा वहाँ अन्य बातें मिथ्या हो जाती हैं। इस अपने प्रभुके सामने आओ दुष्कृत माफ हो जावेंगे। अपने प्रभुके सामने आनेका मतलब अपने आपको ऐसा अनुभव करो कि मैं प्रभुका स्वरूप हूं। शुद्ध ज्ञानमात्र चैतन्यमात्र, ज्ञायकस्वरूप इसका स्वभाव अपने आपको अनुभव हो तो यह प्रभुके सामने आना हुआ। ना होनेपर वह अपना दुष्कृत माफ हो जाता है। कैसे मिथ्या हो जाता है? पाप तो सम्यक् बढ़ा मैं तुरन्त मिथ्या हो गया। वह मैं नही था, वह पापमें नहीं था। वह मेरा स्वरूप नहीं था। वह तो प्रकृतिके विकार का खेल था। मैं तो सदा ज्ञानमात्र हूं। ऐसी बुद्धि बनाना था। प्रभुसे भेंट करना एक ही बात है। ज्ञानमात्र मैं हूं ऐसी बुद्धि बनाओ। इन सब बातोंको एक साथ भूल जाओ। मैं अमूर्त हूं, शरीर वाला हूं, सम्प्रदाय वाला हूं, इतने धन वाला हूँ, ऐसी दुकान वाला हूं, ऐसा जानने व ऐसा सुनने वाला हूं, ऐसा करने वाला हूं—यह भाव मिथ्या है। मुझमें यह सब बिलकुल नही है। ऐसा सब कुछ नही है। यह अनुभव लाओ कि मैं ज्ञानमात्र हूं। जब यह अनुभव होगा तब समझो कि भगवानका सामना हो गया। सब हितमें हो जायेंगे।

मोक्षका मार्ग सामने आयेगा। ज्ञानमय आत्मस्वरूपका अनुभव कर बाहरी पदार्थों में से निकट संबंध शरीर का बना रहता है। इसकी बुद्धिसे किसीको गाली दे दिया। शरीर में है आत्मबुद्धि, सो उसे बुरा लग गया। क्यों लग गया? शरीर को तो आत्मा माना था। यह आत्मा तो हवासे भी पतला है, आत्मा पानीसे भी पतला है, परमाणुसे भी पतला है। यह पतला ही नही है यह एक अमूर्तिक भावमात्र पदार्थ है। इसे गाली नहीं लगती। अब अपने स्वरूपकी दृष्टि छोड़कर अन्य पदार्थोंमें दृष्टि लगाएगा तभी दुःखी होगा। और जब अन्य पदार्थोंमें दृष्टि न लगाकर अपने स्वरूपमें दृष्टि लगाएगा तो दुःखी नहीं होगा। शरीरके ही हिस्से जिन्हें मोही अपना कहता कि यह मेरा बाप है, यह मेरी बुआ है यह मेरी मौसी है, यह मेरी सास है—यह सब सारे शरीरके नाते हैं, कुछ नहीं है। नाते शरीरमें ही हैं। यह शरीर जिस शरीरके निमित्तसे हुआ वह शरीर बाप है। दूसरा शरीर भी उसी निमित्त से हुआ वह भाई बहिन हैं। जितने रिश्तेदार हैं शरीरके संबंधसे ही है। इस शरीरको पैदा

करने वाली माँ है ; वह जहाँसे उत्पन्न हुई वहींसे आकर शरीर उत्पन्न हुआ, वह मौसी है मामा है।

सारे नाते शरीरके साथ है। मैं आत्मा सबसे निराला हूं, ज्ञानमात्र हूं, विशुद्ध हूं। ..त्के मायाजालसे हटकर अपने आपमें परिणाम करके विश्राम करनेको जाते हैं। जो इ. ा साथ करेगा सो पार होगा। जो नहीं करेगा उसको हित नहीं मिलेगा। शरीरमें ात्माको जो दुःख करे तो उसका शरीर मिटता चला जायगा। और यदि आत्मामें आत्म-बुद्धि करके ज्ञानमात्र यह आत्मा है तो ज्ञानमात्र यह आत्मा मिलेगा और शरीरसे सब छूट ायगा। इन सबकी अवस्था करने वाला मैं हूं। यह शरीर रहे या मुक्ति हो इन सबका जिम्मेदार मैं हूं, मैं ही सृष्टि करता हूं, अन्य जीव कैसी भी व्यवस्था हो नहीं करते। यद्यपि शरीर अत्यन्त भिन्न है तो भी शरीरका मिलते रहना आनन्द होना आपके परिणाम पर निर्भर है, जब केवल बुद्धिमात्रसे समझने भरसे जानने मात्रमें इन दोनोंकी प्राप्ति होती है तो शरीर की प्राप्ति कर लो या भगवान्की प्राप्ति कर लो। जिनको आना हो आवे। पास बना हुआ है। केवल अपने सोचनेसे ही अपने प्रभुसे मिल सकते हैं। यह आत्मा अपने समझमें परसे मिलता है। तब इसके आगे और क्या चाहिए ? कितना बड़ा अवसर प्राप्त है कि जिसकी उपमा नहीं दी जा सकती है। अपने आपकी महत्ता तब मालूम होती है जब अपनेसे छोटोंको देखो। यदि १० रु० हैं और महत्ता जानना चाहते हो तो भिखारियोंके बीचमें घूमो। सबके देखने के बाद अपनी स्थितिका संतोष होगा। अब जरा संसारके सब जीवोंको देखो, स्थावर कैसे है, कीड़े मकौड़े कैसे हैं ? खोटे मनुष्य खोटी जातिके खोटे कुल के ये सब कैसे है ? जरा भी संसारमें दृष्टि तो डालकर देखो तो अपने वैभवका पता चलेगा। जिससे सदाके लिए लाभ मिले ऐसा करो जिससे क्लेश मिटें सदाके लिए। अपने आपको ज्ञानमात्र स्वयं मानकर अपने आपमें रमकर आपमें स्वयं सुखी होओ।

महान् स्वभ्रान्तिजः क्लेशो भ्रान्तिनाशेन नश्यति।
यथात्स्यं श्रद्धधे तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-१३॥

जगत्में जितना भी क्लेश है वह सब आत्माके भ्रमका क्लेश है। जैसे मनुष्य सब एक ढंगसे पैदा होते हैं, एक ही ढंगसे मरते और एक ही ढंगसे रागद्वेष होते हैं, इसी तरह जगत्के समस्त प्राणी एक ही ढंगसे दुःखी होते हैं। यहाँ यह कोई अन्तर नहीं कि भाई अमुक आदमीके दुःखका ढंग और है, दुनियाके दुःखी होनेका ढंग और है, और बड़े लोगोंके दुःखी होनेका ढंग और है। ऐसा यहाँ ढंग नहीं है। दुःख होनेका ढंग एक ही है। और वह है भ्रम। बाहरी पदार्थोंमें आत्मतत्त्वका भ्रम हो गया, इसीलिए इन्हें क्लेश हुआ। यह क्लेश

स्वयंने ही तो बनाया। भ्रम किया कि दुःख हो गया। धन वैभव कुछ होता है नाशवान् होता है, दुःख होता है, क्योंकि जो परपदार्थ हैं उन सबमें सत्ता जुदी है। उसमें यह उपयोग कर लिया कि मैं हूं, यह मेरा है, बस दुःख होने लगता है। यह तो है अन्यायकी बात। अभी जीवनमें, घरमें, पास पड़ोसमें, समाजमें, मित्रोंमें अधिक तरहके भ्रमोंका क्लेश रहा करता है किसी भी बातका भ्रम हो गया बस अलग बैठे बैठे दुःखी हो रहे हैं। यह भ्रमका क्लेश हमने ही तो स्वयं बनाया है और हम ही इस भ्रमको नष्ट करेंगे। तो यह क्लेश नष्ट हो सकते हैं अन्यथा नहीं होंगे। जैसे एक उदाहरण लो कि एक करोड़पति अपनी हवेलीमें दोपहरमें पड़ा हुआ सो गया। उसे स्वप्न आया कि उसको गर्मी बहुत लगी है, सहा नहीं जाता। इसलिए चलें समुद्रकी ठंडी ठंडी लहरोंमें थोड़ा घूम आवें। वह चला। वह चला नहीं स्वप्नमें देख रहा है, समुद्रके पास गया। नाविकसे बोला कि हमें एक घंटे तक इस समुद्रकी सैर करा दो। बोला—ठीक है, ५ रु० फीस है। बोले कि ठीक है। इतनेमें स्त्री बोली कि हमें भी ले चलो, हम भी चलेंगी। घरके बच्चे वगैरा भी ऐसा कहने लगे कि हमको भी ले चलो। पहरेदार बोला—हमको भी गर्मी लगी है, हमें भी ले चलो। सब नावमें बैठकर करीब आधा मील पहुंचे तो समुद्रमें भँवर आयी। सेठ नाविकसे बोला—'तुम बड़े दयालु हो उसने कहा—नाव डूबनेसे नहीं बचेगी, हम तैरकर निकल जावेंगे। सेठ बोले— ५ हजार रु० ले लो, ५० हजार रु० ले लो परन्तु नावको पार कर दो। पार कर दो नहीं तो हम सब मर जावेंगे। इस समय स्वप्नमें देखो कि दुःख कितना हो रहा है? स्वय हम भी मरेंगे और हमारे सहायक भी मरेंगे। अब क्या होगा? सारी बातें सोच सोच करके क्लेशित हो रहे हैं। पर सेठजी होते तो हैं देखो बंगलेमें, मित्र लोग देख रहे हैं कि सेठ जी बंगलेमें सो रहे हैं। कब जागेंगे? नोकर चाकर भी काम कर रहे हैं। सेठजी स्वप्न देख रहे हैं। नौकर चाकर तथा मित्र कोई भी उनके दुःखको मिटानेमें समर्थ नहीं हैं। उनका दुःख केवल एक ही उपायसे मिट सकता है कि जाग जाएँ, नींद खुल जाए, और उनके दुःखोंके मिटानेका कोई दूसरा साधन नहीं है। जाग गये तो देखा कि यहाँ समुद्र नहीं है और न वे सारे दुःख हैं—वह सोचने लगे।

इसी तरह इस जगतके प्राणी मोहकी नींदमें सो रहे हैं और मोहकी नींद वह है जहाँपर सब दुःखी रहते हैं। यह मेरा घर है, यह मेरा वैभव है, यह मेरा परिवार है, इतना मेरा बन गया है, इतनेका नुक्सान हो गया है, अपमान हो गया है, इज्जत धुल गयी, सारे अपने मोहको ही देख रहा है। देखो कैसा यह ज्ञानानन्दस्वरूप है। यह जीव अपने आनन्द

की सत्तामें हैं। जिसका स्वरूप भगवान्स्वरूप है ? ऐसा ज्ञानानन्दस्वभावमें यह सब है। लेकिन मोहमें पड़े हुए हैं और सारा जगत् लाभ हानि मानकर दुःखी हो रहा है। इस जीव के दुःखोंके मिटाने में कौन समर्थ है ? क्या परिवारके लोग या मित्रजन, क्या अपनी चेष्टा करके दुःख मिटा सकते हैं ? क्या भगवान ऐसे मोहके दुःखोंको मिटा सकते हैं ? कोई दुःख मिटानेमें समर्थ नहीं है। यद्यपि यह जीव शुद्ध परमस्वरूप है, भगवान् स्वरूप है, ज्ञानानन्दघन है। लेकिन मोहकी नींद जो आती है उसी दुःखको भूल गया है कि मैं अपने वैभवमें हूं। भूलका फल तो आयगा। बाहरी पदार्थोंमें उपयोग कर लिया। इसके फलमें महान क्लेश होना ही है। इसके मिटानेका सामर्थ्य है केवल अपना पुरुषार्थ।

रत्नकांडमें एक कथा आती है मुछमक्खनकी। एक व्यक्तिका नाम मुछमक्खन था। वह एक जैनके यहाँ गया। वहाँ मट्ठा पिया। मूंछ पर हाथ फेरा। जब हाथ फेरा तो मूंछ में मक्खन लग गया। सोचा कि यह काम बहुत बढ़िया है। ऐसा रोज करूंगा। रोज किया। एक सालमें अच्छा घी लगभग एक सेर उसकी मूछोंमें जुड़ गया। अब जाड़ेके दिनों में माहके महीनेमें डबली को ऊपर लटकाया। नीचे आग जलाई और सो गया। अब वह स्वप्नवत् पड़े पड़े मनमें कल्पनाएं करने लगा। घी को दो रुपयामें बेचूंगा। दो रुपयासे और कोई सामान खरीद कर ४, ५ रु० में बेचूंगा, ५ रु० का सामान खरीदकर १०, २० रु० में बेचूंगा। जब १०, २०, रु० हो जावेंगे तक फिर बकरी खरीदूंगा, गाय खरीदूंगा, बैल खरीदूंगा। बादमें जमींदारी खरीद लूंगा, विवाह करूंगा बच्चे होंगे। इतने में एक बच्चा आ गया बोला कि माँ ने रोटी खाने लिए बुलाया है। कहता है कि अभी नहीं जाऊंगा। दूसरी बार फिर कहेगा कि माँ ने रोटी खाने को बुलाया है। कहा—अभी नहीं जाऊँगा। तीसरी बार फिर कहेगा कि माँ ने रोटी खानेके लिए बुलाया है। कहा—अबे कह तो दिया कि नहीं जाऊँगा। ऐसा कहकर लात फटकारी। लातकी फटकारसे डबलीमें धक्का लगा, नीचे गिर गई और फूट गई। उसकी झोंपड़ी भी जलने लगी। अब तो झोंपड़ी के बाहर निकलकर चिल्लाने लगा कि स्त्री मरी, बच्चे मर गए, गाय भैंस खत्म हो गये। लोग जो पासमें थे, बोले कि कल तक तो भूखों मरता था। आज कहाँसे यह सब कुछ आ गया। बादमे उस मुछमक्खनने सारा किस्सा सुनाया। एक सेठने कहा कि तू कल्पनाएँ ही तो करता था। तू इन कल्पनावोंमें ही क्यों दुःखी हो रहा है ? पासमें जो चतुर आदमी खड़ा हुआ था, बोला—सेठ जी, क्यों समझाते हो ? तुम भी तो ऐसे ही हो।

किसीसे तेरा सम्बन्ध नहीं। तू स्वयं एक आत्मतत्त्व है। तेरी सम्पदा कहाँ है ?

कल्पनाएँ कर रखी हैं कि यह मेरा है, वह मेरा है। सम्पदा बना रखी कि मोह जुड़ गया। यह तो अपना ही राज्य हो गया। सब व्यवस्था चलने लगी। परमार्थसे देखो तो यह आत्मा केवल ज्ञानमात्र है। इसका वहाँ कुछ नहीं है। ये सब कल्पनाएँ हैं, भ्रमजाल है। उसे भ्रम के कारण दुःख होता है। हमने अपने दुःखको भ्रमसे ही पाला है। हम ही अपने ज्ञानका सहारा करके तथा भ्रमको नष्ट करके सारे क्लेशोंको दूर कर सकते हैं। आत्माके भ्रमसे पैदा होने वाले दुःख भ्रम नष्ट करनेसे ही दूर किए जा सकते हैं और इसका कोई दूसरा उपाय नहीं है। तुमने और भ्रम बढ़ा लिया तो क्या दुःख खत्म हो जायेंगे ? दो चार बच्चे हो गए। वह अच्छे अच्छे ओहदेपर हो गए तो क्या दुःख खत्म हो जावेगा। कितनी ही स्थिति बढ़ जावे पर जब तक आत्मज्ञान नहीं होगा तब तक दुःख नहीं मिट सकते हैं। जब भ्रम खत्म है तब दुःख खत्म है। एक कथानक है कि दीवालीमें जब घरकी पुताई होती है, तो एक लालाजीके यहाँ गेरुवे रंगकी पुताई हो रही थी। लाला जी की लड़कीने जो गेरुवे रंगका भरा लोटा था लालाजी के पलंगके नीचे रख दिया। रोज वहाँ एक लोटा रखा रहता था। उनकी आदत थी कि सुबह सबसे पहले वह लोटा लेकर टट्टी जाया करते थे। झट उठे और गेरुवे रंगसे भरा लोटा लिया, टट्टी चले गए। शौच की, शुद्धि की। देखा तो वहाँ लाल लाल दिखा। सोचा कि अरे सारा खून निकल गया, सिरमें दर्द हो गया, बुखार आ गया। वहाँसे हाँफते हाँफते मुश्किलसे घर आए। खटियामें लेट गए। बुखार बढ़ने लगा। इतनेमें बिटिया आती है और कहती है कि पिताजी मैंने खाटके नीचे गेरुवे रंगका लोटा रख दिया था, वह कहाँ है ? अरे वह तो गेरुवे रंगका लोटा था। ऐसा दिमागमें आते ही उनकी तबियत ठीक हो गई। वह बोले कि मैं यह लोटा लेकर टट्टी गया था, इसलिए बुखार आ गया। भ्रम कर लिया तो बुखार आ गया। भ्रम मिटते ही शान्त हो गया। जगत्में किसका क्या है ? बड़े करोड़पतिको सामने कर लो। उसका क्या है ? दुःखकी बात देखो तो करोड़पतिको भी महान् दुःख है, रातको नींद अच्छी तरह नहीं आती है। भ्रम बना रहता है कि चोर यहाँ गए हैं, वहाँ गए हैं। सुखसे नहीं रहते है। है कुछ नहीं उनका, पर आरामसे नहीं रहते हैं। विवेक यह है कि गृहस्थका कर्तव्य है कि वह धर्म करे। पालन-पोषणके समयमें भी जो कर्तव्य है सो करे। मगर धनका आना न आना भाग्य पर छोड़ दे। और फिर भाग्यके अनुसार जो आता है उसमें अपने लिए सात्विकवृत्तिसे खर्च करे। यही गृहस्थका गुण है। जिसने खूब कमाया है वह भी मनमाने ठाटबाटसे नहीं रहता है। इसलिए रहन-सहन द्वारा हम ऐसा न करके सात्त्विकतासे रहे। ऐश आरामका बढ़ाना यदि किया तो शीलता बनाये रहना अच्छा

है। और जो अपनी आय हो, कामके मुनासिब व्यय करके शेष दूसरोंके उपकारमें खर्च हो। इसमें प्रसन्नता नहीं होती कि तृष्णा करके सोच रहे हैं कि हमने जोड़ा क्या है ? हमें अभी और जोड़ना है। हमें अभी चार आदमियोंमें इज्जत बढ़ाना है। अरे ये चार आदमी मर मिटने वाले हैं। चार आदमियोंके लिए शान क्या बनना है ? भगवान्के ज्ञानमें शान बनावे तब तो ठीक है। जो अनन्त, जो शुद्ध भगवान् है, उस प्रभुमें ध्यान दो। यदि ज्ञान आए तो तुम्हारा लाभ है। सर्व सिद्धि होगी। यहाँ सबकी दृष्टिमें इज्जत चाहना भी क्लेश है। वह सब आत्माके भ्रमके क्लेश हैं। वह क्लेश हैं। वह क्लेश भ्रमके नाशसे समाप्त होंगे। इस कारण यह कोशिश करनी चाहिए कि प्रत्येक पदार्थका यथार्थस्वरूप ज्ञात हो। यथार्थस्वरूप ज्ञात होना ही दुःखोंके मिटानेका उपाय है। अभी सामने रस्सी पड़ी है, कुछ अंधेरा और कुछ उजेला है। सामने देखा तो भ्रम हो गया कि यह सांप है। इस भ्रमके कारण उसे डर हो गया, आकुलता हो गई, दिल कांपने लगा, हाय यह तो सांप है। कुछ नहीं, रस्सी पड़ी हुई है। उसने कहा कि आखिर देखें तो कि कोनसा सांप है ? जहरीला है कि और कोई है। देखें तो कि कौनसा सांप है ? जरा थोड़ा पास गया। कुछ और हिम्मत की। फिर और चला तो देखा कि यह तो रस्सी है। लो भ्रम खत्म हो गया, आकुलता खत्म हो गयी, दुःख खत्म हो गये।

जितना भी क्लेश होता है यह सब भ्रमसे होता है। तो अपने आप ऐसा अनुभव करो, ऐसा उपयोग बनाओ कि मैं अपने सत्त्वमात्र हूं, ज्ञान और आनन्द भव मात्र हूं, शरीर से न्यारा हूं, सब पदार्थोंसे निराला हूं। केवल मैं आनन्दको करता हूं और ज्ञानानंदको ही भोगता हूं। ज्ञानानन्दमें रहनेके अतिरिक्त और मैं कुछ नहीं हूं। इसी तरहसे तू अपने स्वरूप का अनुभव कर तो वहाँ कुछ क्लेश नहीं है, कोई विपत्ति नहीं है, विपत्ति तो भ्रमसे बनती है, भ्रम समाप्त हो जाते ही विपत्ति समाप्त हो जाती है, पदार्थ उसे दुखित नहीं करते। पदार्थ तो पड़े हैं, जहाँ हैं वहाँ हैं। वे अपना स्वरूप व परिणमन लिए हुए हैं, निरंतर परि-णमन करते रहते हैं। कोई भी पदार्थ हमें दुःखी नहीं करता। न वह दुःखी करते थे और न वह सुखी करेंगे। यह जीव अपने आप स्वयं भ्रम बना-बना करके नाना कल्पनाएँ करके स्वयं अपने आप दुःखी होता है। बड़े-बड़े महापुरुषोंने राम हनुमान इत्यादि महापुरुषोंने सब कुछ छोड़ दिया, घर छोड़ दिया। न वे रहे। अपने स्वरूपमें बसे, आत्मसाधना की। क्या वह कम बुद्धि वाले थे ? यह तो बड़े पुरुष थे, पूज्य पुरुष थे, आराध्य देव थे। ऐसा उन्होंने कोई इसलिए किया कि यहाँ तो सब असार है। इससे उनसे वास्ता कुछ नहीं, फिर उनपर दृष्टि क्यों की जाती है ? सम्यक् ज्ञान हुआ। अतः उन्होंने इन सबको छोड़ दिया। और

उन्हें अपने आप आनन्द मिला। उन्होंने सब कुछ छोड़ा इसलिए कि उन्हें शुद्ध आनन्द मिला। यह आत्मा खुद स्वतंत्र है। बाहरी पदार्थोंसे दृष्टि हटाओ और अपने आनन्दस्वरूपमें दृष्टि लगाओ। सब विकल्पोंको छोड़कर अपने आपमें रमो तो वह आनन्द मिलेगा कि जिसके निमित्तसे भव-भवके संचित कर्म भी मिट जायेंगे। बड़े-बड़े रागद्वेषोंको आपदायें भी क्षणभर में ही भस्म हो जावेंगी। यह इस ज्ञानकी ही सामर्थ्य है और किसीमें सामर्थ्य नहीं है।

अब स्वयं मायाजालको छोड़कर जो मेरा स्वरूप है उस स्वरूपमें ही दृष्टि डालूं और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं। सुखी होनेका कितना अच्छा एकमात्र सरल व स्वाधीन उपाय है। जहाँ हम हैं वहाँ हमारा भगवान् है। यदि अपने स्वरूपको देखो तो मोक्षका मार्ग मिलेगा, सर्वकल्याण होगा। और यदि अपने स्वरूपको भूलकर बाहरी पदार्थोंमें दृष्टि लगाई तो दुःखी होनेका उपाय है। केवल समझने पर ही सब कुछ निर्भर है। अपनी समझ करना तो सरल काम है। इसमें अनंत लाभ है। मैं बाह्यपदार्थोंमें दृष्टि लगाता हूं तो यह खराबी है, इसमें जन्म मरणके चक्रमें फंसना पड़ता है। परमार्थतः अपना उपयोग तो किसीमें फंसता नहीं, उपयोग ही स्वयं फंस जाता है। वह तो स्वयंकी चीज है। हम स्वाधीन बने रहें और सर्वत्र सुखी रहें। दुःखका कोई काम ही नहीं है, हम स्वयं स्वाधीन बने रहे और सर्वत्र सुखी रहें। दुःखका कोई काम ही नहीं है, हम स्वयं स्वाधीन हैं। मैं जैसा हूं वैसा अपनेको समझता हूं। मैं अमूर्त ज्ञानमात्र हूं। इसी अनुभवमें आवो फिर जो कुछ कल्याणकी बात होनी है वह स्वयं होगी। और आत्मस्वरूपके जानने पर शुद्ध जानना ही रह जायगा और समस्त विकल्पजाल समाप्त हो जायेंगे। इसी सम्यक् मार्गमें ही मोक्ष का मार्ग है।

देहे स्वबोधता दुःखं सुखं स्वे स्वस्य चेतनम्।
सुखं स्वायत्तमेवातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-३४॥

जो मैं हूं, जैसा मैं हूं तैसा ही अपनेको जानें सोई सुखी है और जो न जानें; जो शरीर, धन, परिवार इत्यादिमें आत्मबुद्धि करे सोई दुखी है। सुख और दुःखके मिलनेका स्रोत यहाँ पर मैं ही हूं। इसके अभ्यासके लिए बहुत बहुत ज्ञान करना पड़ा है। सब ओर की बातोंको जानना पड़ता है और इसीलिए जितना भी ज्ञानका विस्तार है, शास्त्रोंका प्रसार है यह ज्ञान करानेके लिए है। यदि कोई शास्त्रोंमें घूमें, विवेकवश एक अपने ज्ञाना-नन्दकी पहिचान करले तो उसने सब शास्त्रोंका मर्म जान लिया और कोई पुरुष सब शास्त्रों का विद्वान् हो तो भी यदि अपने इस सहजस्वरूपका अनुभव न कर सका तो वह कुछ भी नहीं कर पाया। जगत्के जितने भी क्लेश हैं वह सब परपदार्थोंमें आत्माकी बुद्धिसे है, नहीं

तो क्लेश ही कहाँ है ? किसी दुःखीकी कहानी सुनो। उस कहानीमें यह मिलेगा कि इसको अमुक चीजका राग है। उसकी अमुकमें आत्मबुद्धि है, इसलिए क्लेश हो रहे हैं। आत्मासे मन अमूर्त है। इस ज्ञानमात्र अमूर्त आत्मामें बाहरकी क्या चीज आयेगी और उसमें इसका क्या सुधार होगा ? यह तो खुद ही कल्पनाएं करके अपना आकुल परिणाम करता है। आप कल्पनाएं छोड़ दें और जो अपना सहजज्ञानस्वरूप है, ज्ञानमात्र स्वभाव है, उसका ही तू उपयोग करले तो वहाँ कोई दुविधा नहीं है। दुविधा तो बनाई जाती है। आत्मामें विपत्ति नहीं होती है। क्लेश तो बनाया जाता है, आत्मामें क्लेश नहीं है। आत्मा तो एक चैतन्य वस्तु है जो ज्ञानघन है वह ज्ञानसे सर्वथा परिपूर्ण है। ज्ञानका ही ऐसा कमाल है कि वह आनन्दको लिए हुए है, ज्ञान और आनन्दस्वरूप आत्मा ही सम्पत्ति है। वह स्वभाव से है जो आपको सत् बनाए हुए है। ज्ञानशक्ति, आत्मशक्ति मिटती नहीं है। लेकिन इस जीवमें वैभवशक्ति है। जिससे बाहरी कई निमित्त पाकर विकारकी परिणति लेता है। यदि अपनेको जैसा है तैसा मान लें कि मैं अपने आप कैसा सत् हूं ? मैं अपने आप कैसा अस्तित्व रखता हूं ? यदि यह स्वयं समझमें आ जाय तो यह विश्वास तुरंत बन जाए कि लोकमें मेरा प्रभु मैं ही हूं, मेरा कोई दूसरा नहीं है। मैं जैसे परिणाम करता हूँ वैसी ही सृष्टि करता चला जाता हूं। शरीरमें आत्मबुद्धि होना सोई दुःख है। बड़े बड़े पुरुषोंके जीवनचरित्र देखो तो जब तक उनको मोह रहा, रागका लगाव रहा तब तक चैनसे नही रह सके कौरव पाण्डवोंका चरित्र देखो, राम लक्ष्मणका चारित्र देखो, किन्हीं का चारित्र देखो जब तक लगाव रहा तब तक वह चैनसे नहीं रह सके और जब ही उनका ज्ञान परिपूर्ण हुआ, बाहरी दबाव छूटे तो अब उनका वर्तमान सत् देखो वह कर्ममुक्त भगवान हैं, अनंत सुखों द्वारा सर्वसम्पन्न है। आज हम उनकी आराधना करते हैं और उनकी आराधनामें अपना सौभाग्य समझते हैं। रावणको देखो दुःख मिला जिन्होंने लगाव नहीं छोड़ा। जीवनके अंत तक मोह ही में रहे, ममता ही में फंसे रहे। उनका नाम लेने वाला कोई नही है और नाम भी लिया जाता है तो एक घृणाकी दृष्टिसे लिया जाता है। तो बड़े बड़े पुरुष भी इस जगत् में नहीं रहे। वह अच्छे हुए तो मुक्ति पाकर भगवान हुए और जो अच्छे न हुए वह जन्म मरणके चक्करमें पड़े रहे। जो भी उत्पन्न हुआ है वह यहाँसे गया ही है। क्या वह हमारी स्थिति नही आयेगी जिस दिन हम यहाँ नहीं होंगे ? हम नहीं रहेंगे उस दिन हमारा क्या रहेगा ? कोई भी चीज हमारी नहीं होगी। कौनसे पदार्थ हमारे साथी होंगे ? हम बिल्कुल अकेले हैं, अपने ही स्वरूपको लिए हुए हैं। जगके सब पदार्थोंसे मैं अत्यन्त जुदा हूँ। मेरेमें शरीर भी नहीं है। वह भी एक सूक्ष्म स्कन्ध है और राग, द्वेष इत्यादि विकार भी नही हैं।

मैं तो एक शुद्ध ज्ञानमात्र हूं, चैतन्यशक्तिमात्र हूं। ऐसा मैं बड़ा हल्का, भाररहित, अमूर्त, अत्यन्त पवित्र सारे पदार्थोंमें उत्कृष्ट एक चैतन्य वस्तु हूं। जैसा मैं हूं तैसे ही सब हैं और जैसे सब हैं वैसा मैं हूं। ऐसा मैं सचेतनामें साधारण एक चैतन्यवस्तु हूं। यही हूं और कुछ नहीं हूं, नाना रूप नहीं हूं। ऐसा जानकर अपने ही स्वरूपमें मस्त रहना सोई सुखका उपाय है, दूसरा कुछ नहीं है।

जगत्के कौनसे ऐसे पदार्थ हैं जो सुन्दर हैं, रमणीय हैं, विश्वासके योग्य हैं, मेरे सुख के कारण हैं, मेरे हितके हेतु हैं, ऐसे कौनसे पदार्थ हैं ? कोई हों तो बतलाओ। मोहके अज्ञान से चाहे यह जंच जाय कि यह मेरे बच्चे, परिवारके लोग यह सब बड़े सज्जन हैं, कल्याणकारी हैं, प्रेम करने वाले हैं, परन्तु जांचो तो उनसे कुछ नहीं मिलेगा। आत्माके आनन्दका मार्ग साफ नहीं हो सकेगा। उन विकल्पोंमें अपनी ही अवस्था बिगड़ जायगी, जन्ममरणके चक्कर की फांस लग जायगी, लाभ कुछ नहीं होगा। और जो प्रेमदर्शन वाले हैं वे तो कषायके अनुसार अपने ही तो परिणाम कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त मुझमें क्या कर सकते हैं ? यहां सब जीव जो कुछ करते हैं वे खुद अपना परिणाम करते हैं। इनसे बाहर कुछ उनका कर्तव्य नहीं है। उनसे कोई भी बात मुझे नहीं आती, हम उनकी प्रवृत्तियोंको देखकर फूले नहीं समाये। वे प्रेमको उत्पन्न कर लें। यह मैं अपना ही तो परिणाम कर रहा हूं। जिसके बदलेमें खुद ही मुझको कुछ मिलेगा। क्या मिलेगा ? आकुलता। अब दूसरा कुछ नहीं मिलेगा। ऐसा जीव बिल्कुल स्वतंत्र है। मगर इस लोकमें बड़ी विवशता हो रही है। जैसे कहीं कोई जुवा होता है या कोई ऐसा खेल होता है जिसमें दो आने वाला नम्बर आए। जो खेलेगा उसको पैसा मिलेगा। दो आने, चार आने लगाते जायें, जब पैसे चले गए तो सोचा जो कुछ बचे है वही घर ले चलें। तो पासमें बैठे हुए लोग ऐसा कहेंगे कि वह उठ नहीं सकता है। कहेंगे कि बस इतनी ही ताकत थी। उठ नहीं सकेगा। सब लुटाकर अपने घर जायगा। इसी तरह यह सब जीवन लुटाते चले जा रहे हैं और सोचते हैं कि जरा भी समय मिले तो हम झंझटोंसे हट लें, और अपने घर चलें, लेकिन यहां ऐसे वचन मिलते हैं कि वह जा नहीं सकता है। यहां वचन ही नहीं, अपितु दर्शन मिलते हैं तथा ऐसे ही समागम मिलते हैं कि जिसे चाहते हुए भी हिम्मत नहीं है कि अपने पूरे बलके साथ अपनी आत्मामें मिलकर प्रभुके दर्शन तो कर लें। कैसा प्रभुका आनन्द है ? ऐसा तो निकट संसारी ही साहस करता है। प्रायः यहां तो ढला चला शुरूसे चला आ रहा है। मना करना, लड़ाई करना हो द्वेष करना, शान बनाना, इज्जत बनाना, हम भी कुछ जगत्में हैं ऐसा देखना—यह सारे खेल खेला करता है। पर हम अपनेको नहीं बचा सकते हैं, न हम अपनी रक्षा कर सकते हैं और

न अपने जीवनको बरबादीसे अलग कर सकते हैं, न हम अपने परमात्माके लिए कुछ कर सकते हैं। यह इसी मोहका ही तो कारण है, अपनी ही तो कमजोरी है। जैसे कहते हैं कि 'नाच न जाने आंगन टेढ़ा'। कोई साधारण नाच जानने वाला था, लेकिन लोगोंसे खुद कहा कि हम भी नाच दिखावेंगे। जैसे कोई गर्वसे कला दिखाता है कला अच्छी तरह जानता है, फिर भी चार आदमियोंके बीचमें यदि वह स्वयं दिखावेगा तो कलामें कोई फर्क आवेगा। उसने नाचा, किन्तु ठीक नाच न हो पाया। तब उसने कहा कि मेरा नाच तो बढ़िया है, पर जंचेगा नहीं, क्योंकि यह आंगन टेढ़ा है। इसी तरह जीव आनन्दकी कलामें तो अभ्यस्त नहीं, सो आनन्द मिलता नहीं, दुःखी होता है। वही उस दुःखमें अपना अपराध तो देखता नहीं, परका कसूर कहता है। क्योंकि अज्ञानको अपना रहा है और यथार्थस्वरूपको नहीं देखता है। अज्ञानको बनाता है और दुःखी होता है, स्वच्छन्द बन गया है। मनमें जो आए करने को तैयार होता है। जिन पदार्थोंमें अपना राग मनाता है वह करता है, ऐसी अवस्थामें दुःख तो होगा ही। दुःख अज्ञानसे ही तो होता है। लड़का ठीक नहीं यह बड़ा दुःख है। यह काम नहीं हो रहा है, इसका दुःख है। अरे जगत्के सारे पदार्थ चाहे जो कुछ हों उनसे दुःख नहीं होता है। अपनेको ज्ञानस्वरूप देखा तो मैं ज्ञानमात्र हूं, ज्ञानस्वरूप हूं, ज्ञान करनेके अलावा और मैं कुछ नहीं हूं। ज्ञान करनेके अलावा मेरा कोई काम नहीं है। मैं ज्ञानस्वरूप सर्वस्व हूं। एक ज्ञानमें ही रुचि जगाओ और फिर यदि कोई क्लेश हो तो बताओ। क्लेशकी जड़ अज्ञान है। उस क्लेशको मिटानेके लिए सुधारका प्रयत्न करता है। मगर अज्ञानको मिटानेका प्रयत्न नहीं करता है। सेठ अथवा होदेदार कोई भी हो, कहीं कहींपर ऐसे मिलेंगे जो अपना आधेसे अधिक समय धर्ममें, सत्संगमें, दयामें, उपकारमें, भक्तिमें लगाया करते हैं और लक्ष्मी वैसे ही आया करती है। लक्ष्मी जोड़नेसे नहीं आती। परिणाम निर्मल हो, परिणाम तृष्णाका न हो, पदार्थोंसे उपेक्षाका परिणाम हो, अपने आपके स्वरूपमें प्रेम हो, स्वयं ही लक्ष्मी आती है। लक्ष्मी आती है वह मुझको भला करनेके लिए नहीं आती है, लक्ष्मी प्रायः पतन करनेके लिए आती है। आती हो तो आए और न आती हो तो न आए। मुझमें ऐसी कला है कि सब स्थितिमें सुखी रह सकता हूं। कोई भी परिस्थितियां हों सबमें मुझे सुख हो सकता है। ऐसी आत्मामें कला है, बल है, तप है, फिर बाह्यपदार्थोंमें क्यों झुकता है ?

मैं अपने आप स्वरूपको जानूं, मैं ब्रह्मत्वको पहचानूं और उसकी दृष्टिसे ही सुखी होऊं—यह मेरा लक्ष्य हो।

अच्छा सोचिए पहले हम कुछ थे या नहीं थे। यह बात तो है नहीं, क्योंकि नहीं

थे तो खाक ही नहीं सकते थे। जो है, वह न नहीं बन सकता। जो नहीं है, वह है नहीं बन सकता। जो सत् है वह मिट नहीं सकता। जो सत् नहीं है वह हो नहीं सकता। हम हैं तो हम पहलेके थे। क्या थे? ऐसे ही कुछ होंगे। मनुष्य हों या देव हों या और कोई हों। कौन था? कुछ था और उसके पहले अनादिसे था कि नहीं था। उससे भी पहले था। तब फिर आप वे कबसे हैं? अनादिसे। जन्ममरण होते चले आए, अनंत भव हो गए, अनंतकाल हो गया। उन भवोंमें भी तो कहीं कहीं बाबा दादा हुए होंगे। अब कुछ उनसे क्या लाभ है? मुझे तो उनका पता भी नहीं। उन भावोंका कुछ साथ है क्या? कुछ भी तो नहीं। हितका नाम नहीं, दूसरोंके पुण्यका उदय है। जिनके लिये बरबाद होना पड़ता है। अपने सर्वोत्कृष्ट सारतत्त्वमें आवो तो आनन्द मिलेगा। परमें आत्मबुद्धि होना ही दुःख है और अपने आपमें अपने आपका अनुभव होना ही सुख है। यह जीव जाननेके अलावा और कुछ नहीं करता है। ज्यादासे ज्यादा बढ़ो तो इच्छा कर लेता है। इसके बाद जो कुछ परपदार्थमें होता है वह आटोमेटिक होता रहता है। निमित्तनैमित्तिक भावोंसे जैसे होता रहता है उनका करने वाला मैं ही हूं। अधिकसे अधिक इच्छा करने वाला हूं। इच्छासे आगे मेरी करतूत नहीं है। अब ज्ञान और इच्छामें जहाँ साधारण ज्ञान रहा वहाँ आनन्द मिलता है। और ज्ञानसे बढ़कर जहाँ इच्छामें चले गए वहाँ दुःख पैदा हो जाता है। उसका इस लोकमें पूछने वाला कोई नहीं है। कहाँ पड़ा है? कैसे पड़ा है? इसका पूछने वाला कोई नही है। इस ही भवकी बात देख लो जिन इष्ट पुरुषोंका बाबा पिता आदिका वियोग हो गया उनका अब हम क्या कर रहे हैं? क्या कर सकते हैं? वास्तवमें तो उनका तब भी कुछ नहीं करते थे। जरा पहलेकी बात स्मृतिमें लाकर जरा देखो तो हम चाहते थे, हम उन्हें पूछते थे, वे हमें पूछते थे। वह कहाँ गए? कोई भी उनका पता नहीं। हम इतना भी नहीं मालूम कर सकते कि बाबा और पिता इस समय कहाँपर हैं? इतना भी उनके विषयमें पता नहीं चल सकता है तो और क्या किया जा सकता है? जो लोग प्रतिवर्ष श्राद्ध असौजमें किया करते हैं कि यह भोजन दे दिया, यह कपड़ा दे दिया, दादा बाबाके पास पहुंच जायगा। उनसे कभी इतना कहते हैं कि अरे तुम हमारे मरनेपर श्राद्ध करोगे, जिन्दामें दो कटोरा पानी तो दे दो। जिन्दामें तो उनको दुःखी करते हैरान करते और मरनेपर श्राद्ध करते, ऐसा विचित्र लोक है। मोहके बारेमें भी एक ग्रन्थमें लिखा है कि जो लोग आसक्ति करते हैं कि भाई तुम्हारे सुखमें मुझे सुख है और तुम्हारे दुःखमें मुझे दुःख है, तुम्हारी बेचैनीमें हमें बेचैनी है, तुम्हारी जिन्दगी तक हमारी जिन्दगी है और तुम्हारा मरण है तो हमारा मरण है। जिनको ऐसा तीव्र मोह है वह क्या है? निगोद जो काम करेगा उसका यह अभ्यास कर रहा है। निगोदमें एक

मरा तो अनन्त मरे, एक जीवका स्वास हुआ तो अनन्त जीवोंके स्वास हुए, एकका जन्म हुआ तो अनन्त जीवोंके जन्म हुए। उसीका तो यहां अभ्यास किया जाता है। वह चैनमें है तो हम चैनमें हैं, वह मरा तो मैं मरा—ऐसा अभ्यास कर रहे हैं। जिससे निगोदके काममें कोई बाधा न आ सके। यह संसार विचित्र है, गोरखधंधा है, इसमें फंसा रहता है और कोई काम नहीं करता। किन्तु जो ज्ञानी हैं वे बड़े आदमियोंकी, महात्माओंकी खबर लिया करते हैं। तो सब इसी कारणसे कि वह अनुपम कार्य कर सकता है। जो कार्य हमें करने चाहियें वे सब कार्य किये जाने चाहियें। इसीलिए तो उनकी आराधना करते हैं, नहीं तो कौन आराधना करता है ? अब जो आखिरमें मर गया है उनकी प्रसंसा करता है, मरते समय सबको छोड़ दिया था कि हमारा कोई कुछ नहीं है और मरते समय प्रभुका नाम लेकर मरे और ऐसा अपनेको कर गए तो उनकी प्रशंसा हुई और कोई अगर ऐसा कहे कि हमारे बाबा मरे और वह मोह करके मरे और बहुत तड़पकर मरे। हाय, मेरा घर छूटा जा रहा है—ऐसा जो कहेगा तो बाबाकी प्रशंसा नहीं हुई, निन्दा हुई। प्रशंसा भी ज्ञानमें ही है, ज्ञानके बनानेमें ही उत्कृष्टता है और ज्ञानका बड़प्पन और महिमा है। यदि सब अज्ञानके विकल्पोंको छोड़ दें तो दुनियामें इससे बढ़कर कुछ नही है, सबसे बढ़कर यह बात है। लक्ष्मी सम्पदाको तो भाग्यपर छोड़ो और अपनेको सदा क्लेशसे दूर होनेका पुरुषार्थ कर लो, यही उत्तम बात है। सम्पदाका काम श्रम करते रहनेसे नहीं हो जायगा। वह भी जैसे परिणाम करो आती है। तो पुण्यका उदय अपने परिणामको निर्मल करनेका, समता पैदा करनेका, जो जैसा है वैसा समझने रहनेका है, पुरुषार्थ कर, कषाय न कर अपने आपमें स्वयं झुक और अपने आपमें ही प्रभुके दर्शन कर, ऐसा अगर हुआ तो लोकव्यवहारमें शांति रहेगी, परिवारके लोग भी सज्जन होंगे, सभ्य बन जायेंगे और हम चाहें कि हम कैसे ही रहें और परिवारको सज्जन बना दें तो परिवार सज्जन नही बन सकता है। खुद ही ऐसा है कि जिससे तुम उत्कर्ष करते हो, ऐसा हो सकता है तो कुटुम्बपर असर आवेगा। खुद खोटा है तो उसके परिवारके लोग सभ्य तो नही बन सकते, पर जो परिणाम किया जाता है उसका लोकमें फल मिलेगा और भविष्य में भी फल है। ऐसा यह ज्ञान रखना कि एक अमूर्त ज्ञानमात्र ज्ञायकस्वभावका हूं, मैं अपने ज्ञानके परिणमनका करने वाला हूं। इसके अतिरिक्त मेरा कोई सत् नहीं, मैं स्वयं ज्ञानानन्द हूं। ऐसे स्वरूपके दर्शन करता रहूं बस यही एक इच्छा है।

तिर्यङ्नारकदेवानां देहे तिष्ठन् पृथक् तथा।
न देहेऽपि नरो नाहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-३५॥

जगत्में जितने भी सत् हैं वे अपने आपमें ही सत् हैं। तभी यह सत् रह सकते हैं।

यदि कोई पदार्थ दूसरे पदार्थकी चिंता करने लगे, उसका कुछ भी सम्बन्ध दूसरोंसे बन जाय तो जगत्में कुछ भी नहीं रहेगा । न वह खुद रहेगा और जिसे करता है वह न रहेगा । यह पदार्थ है । इसका यही कारण है कि वे सब स्वतंत्ररूप लिए हुए हैं । किसी पदार्थसे किसी अन्यका कोई सम्बन्ध नहीं है । तभी ये पदार्थ हैं अन्यथा सबका अभाव हो जाता । पदार्थोंमें ५ जो अजीवतत्त्व हैं वे भी पदार्थ हैं । उनमें कुछ गड़बड़ी नहीं । पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल इत्यादि ५ तत्त्व हैं । धर्म, अधर्म, आकाश, काल इनमें तो कुछ गड़बड़ीका प्रश्न ही नहीं, क्योंकि ये त्रिकाल शुद्ध हैं क्योंकि पुद्गलमें भी गड़बड़ीका प्रश्न नहीं है । वहां जैसी योग्यता व जैसा निमित्त व संयोग होता है परिणमनसे तो अपना परिणमन होते रहनेसे जीव पदार्थ है उसमें भी परिणमन ठीक चल रहा है । जैसी योग्यता है तैसा सम्बन्ध होता है, परन्तु यह करता कुछ है और मानता कुछ है । यह इसके अन्दर गड़बड़ी चल रही है । यह गड़बड़ी अन्य पदार्थोंमें नहीं है, जीवमें ही है और इसके ही फलमें यह संसारमें जन्म मरणका चक्र हो रहा है । यहां मोही स्वप्न देख रहा है । ८-१० आदमी ये मेरे हैं जिन्हें आंखों देख रहे हैं, सारे सम्बंध जोड़ रहे हैं । अभी यहां भी नहीं रहेंगे, यहांका ख्याल भी कोई न करेगा और यहां वालोंको पता भी नहीं रहेगा । जो अपना प्रेम देखते रहेंगे अथवा प्रेम कौन देखता है ? सब अपने-अपने कषायका परिणमन कर रहे हैं । यहां मैं ही खुद अपने रागकी कल्पनायें करके उनकी ओर झुक रहा हूं । जिनकी ओर झुक रहे हैं वह मेरे मरनेके बाद भी यह न जान सकेंगे कि मैं कहां हूं ? जो गए हैं उनका क्या पता कि वह कहांपर हैं ? इसलिए मैं तो सबसे जुदा हूं । परिवार, मित्रजन कोई भी यह न जान सकेंगे कि मैं कहांपर हूं ? मैं अपनेमें रमनेका साहस नहीं करता । इसका फल यह है कि जैसे जगके सब जीवोंको हो रहा है । यह भव मिला, वह भव मिला । स्थावर, कीट, पशु-पक्षी, कुमानुष, सूअर आदि जितने भी प्रकारके जीव हैं उन सबमें जन्म लिया, मरण किया । यही चला करता है । जो अब यहां चाहता भी है कि कुछ तत्त्वज्ञान ही मिले, अपने कल्याणकी बात ही कर लें, विवेक ही जगे, आवश्यक ज्ञान वैराग्य हो जगे, तब भी लोक समागम व चीजोंके संस्कार इनको ज्ञान और वैराग्यमें बैठने नहीं देते । यह संस्कार झट-उठा देते हैं । यह शरीर इससे बिल्कुल जुदा है । जैसे और देहोंको हम विचार लेते हैं कि इनकी आत्मा पृथक् है और यह शरीर पृथक् है । हम झट जान लेते हैं कि आत्मा जुदा जुदा, शरीर जुदा जुदा निकल गया है, हम जैसे इसका अनुभव करते हैं वहां हम भी इस मनुष्यदेहमें रहकर अपनेको पृथक् जानें । इसकी दृष्टि शुद्ध हो । जैसे इसका सहजस्वरूप है वैसा इसका उपयोग बना तो सब अपना अपने आप हो जायेगा । धर्ममें भी अनेक बातें नहीं करना है । केवल एक बात करना है कि शुरूसे अंत

तक आत्मस्वभाव साधना करना है। आखिरी तक केवल एक बात करना है कि जैसा अपना सहज अस्तित्व है उस ही में झुकना, उसपर दृष्टि बसाना, उसका ज्ञान करना। प्रथम ही यह कल्याणके लिए ठीक है। मैं एक ज्ञानस्वरूप हूँ, अन्तरदृष्टि करके देखो। बाहर दृष्टि न करके देखो। शरीर जो लगा है उसे भी भुला करके देखो।

केवल अपने आपको स्मरण करके अपने आपमें देखो। क्या इसके अंदर मिलता है? क्या कुछ ग्रहण करनेकी चीज मिलती है? क्या कोई इन्द्रियोंसे रूपादि दर्शाने वाली चीज रहती है? इसके अंदर क्या मिलता है? केवल ज्ञानभाव और इसीको करके आनंदभाव मिलता है। ज्ञान और आनंदभावके अतिरिक्त आत्मामें और कुछ नहीं मिलता है। कैसे विचित्र पदार्थ हैं कि जितने भी हैं सब यहाँ एकवस्तु हैं। यह ज्ञान है, वह निराधार नहीं। ऐसा केवल जाननेमात्रसे एकवस्तु है। जिनका और कुछ काम ही नहीं है और कोई बाहरी पदार्थों से सम्बंध ही नहीं है। केवल जानने मात्रसे आत्मतत्त्व मिलता है। क्या कोई अन्य पदार्थोंसे इसका सम्बन्ध है? फिर क्यों इतनी जबरदस्ती परतत्त्व बसाते हुए हो कि यह लड़का है, यह स्त्री है, यह नाती है और यह पोता है। यह कुछ नहीं है। जरा इसके चैतन्यस्वरूप को देखो। मेरा तो सब कुछ यही है। मेरा कुछ बाहर सत् ही नहीं, यह सब मोहके भासित पदार्थ हैं, यह सब मोहका नशा है। क्या जैसा है वैसा उपयोग बनाया नहीं जा सकता है। ऐसा किए बिना शांति नहीं रहेगी। यह आत्मा एक ज्ञानमात्र वस्तु है और आनन्द स्वभाव को लिए हुए है। कोई आकुलता नहीं रहती—ऐसा स्वभाव इसमें पड़ा हुआ है। जब हम केवल ज्ञानस्वरूप को देखते हैं तो आत्मा कितनी बड़ी है? अरे ज्ञानका नाम ही आत्मा है। जितना बड़ा ज्ञान है उतनी ही आत्मा बड़ी है। ज्ञान कितना बड़ा है? देखो कितना बड़ा है? जितनी जानकारी है उतना ज्ञान है। सारे विश्वकी जानकारी है तो सारे विश्वका जितना ज्ञान है। असंख्याते लोकप्रमाण है। इतना ही नहीं वह सर्व आकाश प्रमाण है। परन्तु उसमें जो दूसरा आनंद स्वभाव पड़ा है उस आनंदस्वभावकी दृष्टिसे देखते हैं तो जितनेमें यह पिंडका फैलाव है, इसके प्रदेशका फैलाव है उतनी बड़ी आत्मा है। आनंदका अनुभव होता है तो आनंद प्रदेशकी सीमामें होता है और जब ज्ञानका फैलाव होता है तो सारे विश्वमें अनुभव होता है। इसका स्वरूप ही जगमग ज्योति है। यह तो ज्ञानका स्वरूप है। सारे लोकका प्रमाण ज्ञान हो गया और यह आत्माका स्वरूप है। मग आनंदको को कहते हैं। और जग ज्ञानको कहते हैं। मैं जगमगस्वरूप हूं, ज्ञानानंदस्वरूप हूं, आत्मतत्त्व हूं। ऐसा यह आत्मामें अगर कदाचित् प्रदेशमें फैलता है तो सारे लोकमें फैल सकता है। इसलिए मैं लोकप्रदेश बराबर असंख्यातप्रदेशी आत्मा हूं। यह सब जितना है मैं अपने शरीर

में ही अपने आपको पाता हूँ। क्योंकि आनंदका सीमामें ही संबंध है अथवा कर्मके वश आत्मा शरीर प्रमाण रहता है। इस कारण प्रमाण रहता है। इस कारण शरीरप्रमाण ही चला आया है। जिस शरीरमें यह क्षेत्र है उस शरीरमें यह आत्मा है। यदि ठीक दृष्टिसे देखो तो शरीर जुदा है। आत्मा अपने भीतरमें रहती है।

जैसे दूध और पानी एक गिलासमें मिला दिए जाएँ, एक एक पाव तो गिलासमें दूध है और सब पानी है। और स्वरूप दृष्टिसे देखो तो पानी अपने स्वरूपमें है और दूध अपने स्वरूपमें हैं। यदि कोई यंत्र है तो उससे दूध अलग हो जायगा और पानी अलग हो जायगा। इसी तरह यह शरीर और आत्मा भी पानी और दूधकी तरह मिले रहते हैं। जिस जगह आत्मा है उस जगह पर शरीर है। अंतर मिटने तक रहता है। शरीरके एक क्षेत्रावगाहमें आत्मा भी पड़ा हुआ है। इतना होते हुए भी शरीरका असर शरीरमें और आत्माका असर आत्मामें होता है। हर तरहके भावसे यह आत्मा शरीरसे जुदा है, ज्ञानानन्द पिंड है, आत्मा अपने अमूर्त प्रदेशमें हैं और शरीर अपने मूर्त प्रदेशमें है। आत्मा अपनी शक्ति में है और शरीर अर्थात् ये परमाणु अपनी शक्तिमें हैं। आत्मा अपने प्रदेशमें रहती है। शांति, विकल्प, शोक, क्रोध, इसमें रहना है तो शरीर रस बदले, गंध बदले, इन बातोंमें रहता है। शरीर निरंतर अपना काम कर रहा है और आत्मा निरंतर अपना काम कर रहा है। इसलिए यह शरीर आत्मासे सभी बातोंमें अलग रहता है और यह आत्मा अपनेमें अलग रहता है। लेकिन मोहवश अज्ञानवश अपनी जुदाई अपनेको समझमें नही आती तो बाहरमें संतोष ढूंढते, बाहरकी बातोंका अनुभव बढ़ाते और बाहर सुख ढूँढते हैं। किसी भी पदार्थसे कुछ नही मिलेगा। किसी भी बाहरी पदार्थोंसे कुछ नहीं मिलेगा। अच्छा शरीर से ही देखो अच्छी इन्द्रियोंका विषय साधनभूत पदार्थ है। उससे भी कुछ नही आयेगा। मैं ही धर्मसे चलूंगा, मैं ही अपना बनूंगा और अपनेमें झुकूंगा, यदि इस बुद्धिसे चलूंगा तो मेरे दुःख मेरेसे ही मिट जावेंगे। जगत्में अनेक भव मिटते चले गए अथवा अनेक भवोंमें जो भी जन्म लिया है एक भी भवका स्मरण नहीं है। अनेक भव बीत गए परंतु एक भी भव अपने को स्मरण नहीं है। जब एक भी भव आपको स्मरण नहीं आ रहा है तो फिर औरकी गिनती ही क्या है? जैसे उन अनंतोंकी कुछ याद नही है इसी प्रकार इस भवको भी कुछ याद नहीं रहेगी। तब हम हिम्मत करके कि मैं इस जगत् में अणुमात्र भी नहीं हूं। किसीको तू न मान कि मेरा है, क्या यह बात हो नहीं सकती है। देखो सब जुदा जीव हैं, उनके कर्म ही उनके हाथ हैं। शरीर जैसे जुदा है आत्मा भी ऐसे ही जुदा है। कौन सी ऐसी चीज है कि वह उसके भीतर है, कोई नहीं। अज्ञान करके बुरा ही फल मिलेगा, जिद

और हठ करके बुरा ही फल मिलता है। जिद करने का, श्रम करनेका फल बुरा है।

एक किसान था। वह हल चला रहा था। बीचमें एक साँप आया और बैलके पैरके नीचे आ गया और बबड़ाकर उसने थोड़ासा उस किसानके दांत मार दिया। उसे थोड़ोसी रिस बढ़ गयी, मगर साँपके विषसे वह पागलसा बन जाता है। सो वह डंडा लेकर बैलोंको बहुत तेजीसे मारने लगा। कहने लगा कि मेरे ऊपर पैर क्यों रख दिया है? साँपके विषका असर पड़ गया था, सो बैलोंको बहुत पीटा। इतनेमें एक वृद्ध आदमी आया, उसने बहुत समझाया कि न मारो बैल मर जायगा। तुम्हारे पास केवल दो बैल है। अगर बैल मर गया तो किससे जोतेगा, क्या खायगा, परिवार कैसे चलेगा? कुछ सोच समझमें आया तो छोड़ दिया।

इसी तरह जब स्वरूपके विरुद्ध हम हठ करते हैं। भीतरसे बाहरी पदार्थोंको मान लेते हैं कि यह मेरे हैं। इस अज्ञान सर्पका ऐसा विष चढ़ जाता है कि जिसका कुछ कहना नहीं। जरा इन्द्रियोंको सुहावना लगा तो हम मानते हैं कि बहुत अच्छा है। हठ कर लेते हैं, विवेक नहीं कर पाते हैं, २४ घंटे हम कषायमें रहते हैं तो इसका फल कौन भोगेगा? खुदको ही भोगना पड़ेगा। दुष्टकर्मका उदय आयेगा तब ऐसी कुस्थिति आवेगी, जन्म मरणके चक्कर आवेंगे, सुख दुःखमें घूमना पड़ेगा। समय फेरमें ज्ञानका खोटापन बना रहेगा और वर्तमानमें कितनी ही विपत्तियोंका भार रहेगा। बात जरासी है कि यह भीतरसे कल्पनाएं ही तो करता है कि यह मेरी है। पर इसका फल कितना बड़ा है? सारे संसारको लिए हुए है, यह उसीका फल है। कैसे सृष्टि बन जाती है, कैसे देह मिलने लगती है, क्या क्या अवस्थाएँ गुजरती हैं? यह समस्त विपदायें जगत्में आ जाती हैं। देखो सब इस जरासी गल्तीका फल है कि सारे संसारमें दुःख रहता है। यहाँ चूहे, बिल्ली, केचुवे, कुत्ते, गधे जो-जो नजर आ रहे हैं किसीकी टाँग टूटी है, किसीका पेट फटा है वह सब मूल की भूलका परिणाम है। ऐसे यहाँ देखो कि जीव कितने आते हैं यह सब क्या है? वह सब भी अपने मोहका फल है। यह नहीं समझा कि मेरा तो केवल मैं ही हूं। मेरेसे बाहर मेरा कुछ नही है। अन्तरस्वरूप सत्ताकी खबर न रखो तो इसका बड़ा कुफल होगा। यह सब हमारी ही गल्तीका बड़ा फल है; मेरा फल है, मेरे लिए फल है। यदि वह भूल छूट जाय तो मैं यथाशीघ्र आनन्दमय बन जाऊँ, मैं सर्वज्ञ बन जाऊँ। यद्यपि सर्वज्ञ बननेसे लाभ नहीं है मगर सर्वज्ञ बन जाना पड़ेगा। लाभ कुछ नहीं मगर स्वयं ऐसा है कि बनना पड़ेगा। अगर शुद्धदृष्टि रखोगे तो बनना ही पड़ेगा। लाभ तो उतना है कि यह दुःखजाल सब खत्म

हो जायेंगे। भगवान्‌के शुद्ध परिणमनसे लाभ तो उतना ही है कि विपदायें सब समाप्त हो गईं। जब स्वरूप शुद्ध होता है तब अनन्तज्ञानी होना ही पड़ता है। इसका प्रयोजन भी कुछ नहीं, मगर ऐसा होना ही पड़ता है।

मैं सर्वत्र पदार्थोंसे भिन्न सत्ता वाला एक आनन्दमय तत्त्व हूं। इसके अतिरिक्त मेरा और कुछ नहीं है। ऐसा उपयोग करके अमृतका पान करूं तो मैं अमर हूं। मैं यदि इससे हटूं तो मेरे सामने दुःख है, सुख है, यह विपत्ति हम बना डालते हैं। जैसे सब पदार्थ है वैसा मैं पदार्थ हूं। क्या हूं? सब परिणमते है, मैं परिणमनशील हूं, मैं शक्तिसम्पन्न हूं। सब ठीक हो रहा है, मगर जहां मूलमें भूल हुई तो उसका फल अत्यन्त बुरा है। मोह ऐसा ही फल करेगा। जैसे किसीका किसीसे विकट झगड़ा हो जाय। कचहरियां चलने लगें, उनका धन बरबाद हो जायगा। पुलिसकी पिटाई भी चलेगी। एक दूसरेको जान लेनेको तैयार है। इस लड़ाईके मूल कारणको यदि सोचा जाय तो उसमें कोई जान नहीं, कोई सार नहीं मिलेगा। वह मूल कारण अंतमें झूठा ही मिलेगा। अपना कुछ नही है, मगर जब अंगीकार कर लिया तो बुरा फल हो रहा है। वैसे देखो तो कोई ज्यादा भूल नहीं है। यहां केवल सोच लिया कि परपदार्थ मेरे हैं। इतना ही तो किया, मगर इसके फलमें सारे संसारमें रुल गया। यही सबसे बड़ी भूल है। इसमें जाता सब कुछ है और मिलता कुछ नहीं, अतः यह भूल छोड़कर मैं अपने स्वरूपका अनुभव करूं और अपनेमें झुककर अपने सत्य आनन्दका अनुभव करूं।

अन्योन्यत्वेन दुःखं स्वत्वेन सुखपूरितः।
यते स्वदृष्टितः स्वार्थे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-३६॥

जैसे लोग कहा करते हैं कि जो अपना है सोई अपने काम आयेगा, सोई देगा और जो पराया है दूसरा है वह अपने काम नहीं आयेगा, वह अपने सुखका कारण नहीं बनेगा। दूसरा तो दूसरा ही है। वह तो मेरे लिए व्याधि है। दुःख है और सुख है तो वह ही है। दुःख है और सुख है तो वह ही है। वह अपने लिए सुखमय है। इसका स्पष्ट मतलब क्या है कि जो मैं हूं, सोई मेरे लिए सुखरूप है और जो पर है वह मेरे लिए सुखरूप नहीं, बस परवस्तुका रूप मेरे लिए सुख नहीं है। मैं परमें जाऊं तो वह मेरे दुःखका निमित्त होता है। स्व स्वमें परिपूर्ण है और जो स्व नहीं है, पर है वह दुःखका ही निमित्त हो सकेगा। जगत्‌में जितने भी पदार्थ हैं वे अपने ही गुण और पर्यायमें हैं, अपने ही गुण और पर्यायमें तन्मय हैं। ऐसे अपने गुण पर्यायमें तन्मयको सुन्दर बताया है और किसीका कुछ गुण या कुछ पर्याय किसी अन्यमें तन्मय है—ऐसी दृष्टिको विसंवादक बताया है, झगड़ा बताया

है । केवल समझकी शैलीमें ही सब कुछ निर्भर है । संसारमें रुलना, संसारसे छूटना केवल एक समझपर निर्भर है । विपत्तिमें पड़े रहना या आत्मीय आनंदका अनुभव करना एक समझ पर निर्भर है । हर तरहसे बर्बाद हो जाना या हर तरहसे सम्पन्न हो जाना केवल समझ पर निर्भर है । लोकमें भी बड़े धनी, इज्जत वाले, नेता, राजा महाराजा, चक्रवर्ती इत्यादि हो जाना और दरिद्र, भिखारी, कीड़े मकोड़े, स्थावर हो जाना केवल समझ पर ही निर्भर हैं । जैसी सच्ची समझ है वैसी सब कुछ सम्पत्तियां हैं और जैसी उल्टी समझ है वैसी सारी विपत्तियां हैं । मोही अज्ञानी पुरुष किसी भी स्थितिमें रहे, चाहे वह धनी हो गया हो, चाहे वह राज्याधिकारी बना हो, किसी भी स्थितिमें हो । यदि उसके मोह और अज्ञान हैं तो उसके फलमें तो उसे अशान्ति ही रहेगी । चाहे कुछ बन गया हो, क्योंकि उपादानमें तो दुखी होनेकी बात भरी हुई है । मोह करता है तो शान्ति कहांसे आए ? यही कारण है कि यह देखा जाता है कि छोटेसे लेकर बड़े तक इस लोकमें दुःखी नजर आ रहे है । कोई सोचता है कि लखपति सुखी होगा, क्योंकि इसके पास लाखकी माया है, पर लखपति स्वयं समझते है कि वह क्या शान्तिमें है ? लखपति सोचता है कि करोड़पति सुखी होगा । क्योंकि इसके पास बड़ा वैभव, बड़े महल हैं, नोकर चाकर हैं, बड़े बड़े अफसर भी इसको प्रणाम किया करते हैं । पर उनकी आत्माके भीतरका ढांचा देखो तो वहां भी दुःख नजर आयेगा । वह सोचता है कि अरबपति सुखी है । सर्वत्र ही जिधर देखो दुःख ही नजर आयेगा । इसका कारण है कि सुख दुःखका निर्णय बाहरी चीजोंपर निर्भर नहीं है । वह अपने ज्ञान और अज्ञानपर आधारित है । जब तक अज्ञान रहता है, उल्टा ज्ञान रहता है तब तक यह जीव दुःखी रहता है । जब ज्ञान होता है तब वह सुखी हो जाता है ।

बड़ा महान् हो जाय, चक्रवर्ती हो जाय, अत्यन्त वैभव हो जाय और एक अपने स्वरूपका पता न हो तो उसे अशान्ति ही रहेगी । चाहे वह जो कुछ हो जावे, यह सब अनुभव था उन महापुरुषोंको जिन्होंने यह निर्णय किया परको छोड़कर केवल आत्मदृष्टि करो केवल आत्मापर जायें याने अन्तरदृष्टि रहे । मैं अमूर्त, भावमात्र, चैतन्यशक्तिमात्र, आनन्द ज्ञानमात्र, सबसे अछूता, [अपने स्वरूप सत्तामात्र, यह मैं आत्मा स्वयं अपनी दृष्टिमें बना रहूँ । इसके अतिरिक्त मेरेमें कोई न आवे, उपयोगमें अन्य कोई नहीं बसे, ऐसी ही उन्होंने आराधना की, तो क्या था ? सत्य बात यह थी । परमार्थकी बात यह है कि परमार्थस्वरूप जाने बिना जो उनके आगे जाता है झांझ मंजीरासे, बाजोंसे तथा संगीतोंसे उनकी आराधना करता है, वह केवल भ्रम है । तत्वदृष्टि करके जो उनके लिए अपना सर्वस्व सौंप देता है, झुक जाता है, नम जाता है, उनके योगको अनुभूत किए बिना अपने जन्मको निष्फल समझता है, वह

कामयाब हो सकता है। हम प्रभुकी भक्ति क्यों करते हैं ? क्योंकि वह सर्वद्रष्टा है, जो हमें करना चाहिए, वह उनसे मार्ग मिलता है। इसी कारण हम उनपर बार बार अनुरक्त हो जाते हैं, सब कुछ न्योछावर करनेको हम तैयार हो जाते हैं। यह जगत्की इकट्ठी की हुई माया विकार है, अनर्थ है, स्वयं लाभ करने वाली नहीं है। अन्य तो अन्य ही है, पर तो पर ही है, अत्यन्त जुदा है। मुझसे इस आत्मामें कुछ बन नहीं पाता। प्रत्युत परकी ओर झुकें तो क्लेश ही थोड़ा आता है, क्योंकि परकी ओर झुकना यह अज्ञान है, वहां क्लेश ही क्लेश है। एक कथानक है जो सुनाया भी था कि दो स्त्री-पुरुष थे। जिनके नाम थे बेवकूफ और फजीहत। दोनोंमें लड़ाई हो जाती थी और थोड़े ही में मेल हो जाता था। उनमें लड़ाई चलती ही रहती थी, पर उससे कुछ बिगड़ नहीं जाता, क्योंकि जल्दी मेल भी हो जाता था। एक दिन ऐसी लड़ाई हुई कि दोनोंने घर छोड़ दिया। वह बेवकूफ गांवमें जाकर पूछता है कि क्यों भाई, हमारी फजीहत देखी है ? पूछा—क्यों क्या भाग गई ? कुछ उत्तर नहीं दिया। ५ से पूछा, ८ से पूछा, कुछ पता न चला। एक अपरिचित आदमी था। पूछा कि भैया, तुमने हमारी फजीहत देखी है। उसने पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है ? बोला कि मेरा नाम बेवकूफ है। उसने कहा कि भाई बेवकूफ होकर भी तुम्हें क्यों फजीहतको तरस रहती है ? जरा उल्टा बोल लो, उससे ही दूसरे लोग लाठी, घूंसा, जूते इत्यादि मारनेके लिए तैयार हो जावेंगे। तुम्हें तो हर जगह फजीहत मिल जायेगी।

इसी तरह यहां भी जो अज्ञानी हैं, मिले हुए स्वरूपको नहीं अपनाते, अपनी ओर नहीं झुकते, अपनेमें वह प्रभु समाया हुआ है—ऐसा जब तक नहीं जानते और बाह्यपदार्थों को तरसेंगे और उनकी तरफ झुकेंगे—ऐसे अज्ञानी बने रहेंगे। ऐसे मोही जब तक बने रहेंगे तब तक इस मोहीकी विपत्तिकी क्या कमी है ? किसी भी स्थितिमें रहे। धन बन गया तो क्या ? अच्छे कुल वाला बन गया तो क्या ? कुछ भी हो जाय। आत्माकी वर्तमान स्थिति तो पर्याय ही है। कुछ भी बन जाय मगर विपदा नहीं छूटेगी, चाहे तीन लोकमें उसकी सम्पत्ति एकत्रित हो जाय। वह सम्पत्ति उसके हाथमें आयेगी क्या ?

यह मैं स्वयं इक चैतन्यस्वरूप हूं, इसमें दूसरेका प्रवेश नहीं। यह खुद ही अपनेको बुरा बनाकर, बुरा देखकर दुखी हो रहे हैं। इसको दुःखी करने वाला दुनियामें दूसरा नहीं है। अन्य तो अन्य ही है, पराए तो पराए ही है, उनसे मेरी भलाईकी मुझे क्या आशा ? मैं, मैं ही हूं, मेरेसे मेरेको मैं ही कल्याणस्वरूप होता हूं। ऐसा हमें होना चाहिए। यह मैं स्वयं ज्ञानानंदमय हूं अथवा गुणोंकी प्रति समय परिणतियां हो रही हैं। बस इतनी बात है कि जब किसी परकी ओर दृष्टि करके परिणति बनती है तो केवल अज्ञान और दुःखकी परिणति

बनती है और उनमें उनको अंगीकार न करें तो मन शुद्ध होता है तब ज्ञानाकारकी परिणति बनती है। सब कुछ बनाने वाला मैं ही हूं। आत्माके सुभावसे आत्मकल्याण होता है, स्वयं होता है, भरपूर होता है। ऊपरसे ही दुःख होता है आनंद तो पड़ा हुआ है। क्योंकि आनंदस्वरूप मैं ही हूँ। पर यह जीव प्रभु है ना। समर्थ है ना। तू अपनी बर्बादी इस प्रकार बतला रहा है कि बाहरी पदार्थोंकी दृष्टि करके अपने आनन्द स्वभावमें ढला हुआ अपनेमें क्लेश बनाए हुए है। आनंद तू स्वयं है, स्वयं ही अपनेमें आनन्द प्रगट करेगा, अन्य जगहसे आनंद नहीं लाना है। केवल जो अपना क्लेश बना रक्खा है उसका परिहार करना है। देखो यह बात अन्य पदार्थोंसे नहीं होगी। अन्य पदार्थ तो यदि किसी काममें निमित्त हो सकता है तो उसके उल्टे काममें ही निमित्त हो सकता है। केवल अशांतिका ही निमित्त हो सकता है। जन्म मरणके चक्करमें पड़े रहना पसंद हो तो परपदार्थ इसमें निमित्त हो सकता है। परन्तु परपदार्थ हमारे किसी हितके कामके नहीं, सूक्ष्मदृष्टिसे देखो तो यहां तक देखते चले जाओ। सत्संग है, संत है, परमात्मा है, ये भी तो परपदार्थ हैं। परमार्थ सभी मेरे भलेके लिए नहीं होते। मेरी भलाई उनसे बाहर रहनेमें है। पर आपेक्षित बात होनेसे ऐसे ही कहा जाता है कि सब साधु, संतदेव ये सब मेरे हितकर हैं। जैसे परमार्थदृष्टिसे वे प्रभु बने हैं, उनसे ही दृष्टि करनेका उत्साह इनमें मिलता है। संत, देव, साधु, गुरु, सत्संग इत्यादि जिन परिणामोंमें निमित्त होंगे वे परिणाम शुद्ध होंगे। साधारण शुद्धपदार्थकी दृष्टि में प्रत्येकको विवाद नहीं। शुभ अशुभमें आपको विवाद है। पर वह ऐसा शुद्ध है जो मोक्ष मार्गमें हमें अधिक बाधा न दे। जैसे कोई आदमी शिखरजीके पहाड़ पर चढ़ रहा है। दो ढाई मील चढ़ने पर अधिक थक गया। एक वृक्षके नीचे बैठ गया १० मिनटके लिए हमें बतलाइये कि वह जो १० मिनटके लिए बैठ गया, वह यात्रामें साधक है या बाधक? उस जगहपर बैठ जानेसे यात्राका काम रुक रहा है या बन रहा है? परमार्थसे साक्षात् देखो तो रुक रहा है एक दृष्टिसे देखो तो यात्राका काम बन रहा है क्योंकि वह थक गया था, आगेको चल नहीं सकता था। वह स्फूर्ति लेगा, शक्ति लेगा। इसको क्या कहेंगे? उस १० मिनटके बैठनेको साधक भी कह सकते हैं और बाधक भी कह सकते हैं। परमार्थसे तो बाधक है, परम्परासे साधक भी है। इसी तरहसे यह शुद्धपरिणाम हमारा मोक्षमार्गमें साधक है या बाधक? परमार्थसे तत्काल तो वह बाधक है, क्योंकि तत्काल तो वह एक विकल्प अवस्था है परन्तु वह जहाँ विषयकषायमें रहनेसे अधिक हानिमें था, आत्मबल शिथिल हो गया था, अपने आपको खोया हुआ सा बैठा हुआ था, सो तो अब साधुवों, संन्यासियोंके स्मरणके प्रसादसे स्फूर्ति आ रही है, एक बल पैदा हो रहा है। उस विषयकषायसे दूर होकर

आत्माके अंतरमें जाऊंगा—इस स्फूर्तिके योग्य बन रहा है। देव गुरु भक्तिमें वस्तुतः वह भी तो एक विकल्प है अतः बाधक है, पर एकदृष्टिमें वह साधक है अथवा किसी भी पर-पदार्थमें दृष्टि करें तो वह साधक है अथवा मैं किसी भी परपदार्थमें दृष्टि करूं, तो मेरे किसी काममें निमित्त हो सकता है। शांतिमें आत्मशुद्धि ज्ञानके अनुभवमें कोई निमित्त नही हो सकती है। इसका कारण यह है कि वह अनुभूति जिसको हम ज्ञानमें रख रहे हैं वह स्वाधीन है। मैं एकसे उत्पन्न होने वाला हूं, एकके लिए उत्पन्न होने वाला हूं, एकमें उत्पन्न होने वाला हूं। मेरा दूसरोसे मेल नहीं है। मुक्तिको, किसी शुद्धआनंदको, किसी कल्याणको, किसी दूसरेसे मेल नही है। इसीलिए जहां भी होंगे अकेले ही होंगे, सहज होंगे, स्वरूपमात्र होंगे, अन्य तो अन्य ही हैं। वह तो 'जितना भी जब कारण होंगे तब विकल्पके कारण ही होंगे। परन्तु वह निमित्त ज्ञानानंदघन, यह आत्मतत्त्व आनंदसे परिपूर्ण स्वयं हैं। सो आनंदका आश्रय करनेसे आनंद ही होगा। तो मैं अपने ही अर्थमें अपने ही प्रयोजनमें अपनी ही दृष्टि बनाकर कोशिश करूं और अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊं।

मेरी जिम्मेदारी करने वाला इस लोकमें कोई नही; मेरी शरण, रक्षक, अधिकारी, मालिक इस लोकमे कोई नही है। अरे दूसरोंकी आशा करना क्या है? यह दूसरे भी सब मेरी ही तरह असहाय हैं। दुःखमे, क्लेशमें पैदा होकर चक्कर काट रहे है। जैसा मैं हूं वैसे वैसे ही सब है।

जैसे नदीमें डूबते हुए चार छः आदमी हैं जो तैरनेका काम नहीं जानते हैं और इकट्ठे एक जगह आ गए है। गहरे पानीमें उनमें एकको दूसरेसे क्या आशा है? क्या वे एक दूसरे का हाथ पकड़कर बच सकेंगे? वह तो सब डूबनेके लिए है।

इसी तरह इस विभावमय संसारमें डूबते हुए प्राणी परिवार सब अथाह जलमें डूब रहे हैं तो हम कैसे उद्धार कर सकते है? यह किसी मोहको बसाकर उपयोगमें सुख शान्ति की आशा करते हैं। यहां कोई रक्षक नहीं, तेरा रक्षक तू ही है। साधुवोंने गुरुजनोंने चेतावनी दी है, जागते रहो लुटेरे है, श्रद्धासे लुटोगे। फिर तुम्हें कौन माफ कर देगा? अपना जिम्मेदार अपनेको मान मोहमें बहे चले जाना यह सब क्या अविवेक नहीं है? जैनधर्मका पाना न पाना बराबर है। जैनसिद्धान्त कहता है कि सत्यस्वरूप एवं निष्पक्षस्वरूप वस्तुओं को स्वयं पहचान लो। वस्तुओंको ज्ञानमें रक्खो और परीक्षाएं कर लो। परपदार्थोंसे तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा।

हे आत्मन्! खुदके स्वरूप वाले, खुदकी सत्ता वाले तुम हो, फिर यह किसको अपना माना है, किसे अपना स्वरूप माना है? अपने ही कामके लिए अपने ही आप अपनी ही दृष्टि

लगाकर स्वयं सुखी होनेका प्रयत्न करो। सुख अपने आपमें यहीं मिलेगा।

आत्मलाभस्पृहैव कामे तदन्वास्तु मा मतिः।
नश्य बन्तर्जगच्चाद: स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-३७॥

ज्ञानी पुरुष सदा सहज आनन्दकी ही भावना करते हैं। जो अपने आप जैसे हैं तैसा ही अपना स्वरूप निरखते हैं, वे ज्ञानी पुरुष हैं। उन्हें विकार स्वीकार नहीं हैं। सर्वविकारसे हटे हुए निज स्वभावकी दृष्टि वाले हैं। वे एक शुद्ध चैतन्यस्वभावमात्र अपनेको निरखा करते हैं, इसी ही में उनको लाभ जंचता है। अतः वे आत्माको आत्मामें रमाते हैं। ज्ञानी आत्माने अपनी दृष्टिसे अपनेको अपनेमें मिलाकर अनुपम ज्योतिका दर्शन किया है। किसी भी परमें उनको लाभ नहीं दिखता है। इसी कारणसे ज्ञानी पुरुष ऐसी भावनाए रखते हैं कि मेरी तो केवल आत्मलाभकी ही चाह है। यह जो सम्पत्तियां आती हैं, पुण्योदयवश आती हैं। उनमें किसी प्रकारकी आसक्तिका होना तो बहिरात्मपनेकी बात है। ज्ञानीको उसमें भी बहुत वियोग बुद्धि बनी रहती है। इस विभूतिसे, इस नटखटसे मैं कब अलग होऊँ, कब अपने आपमें अपने आपको देखूं—इस प्रकार इस समस्त जालमें वियोगबुद्धि रहती है। केवल एक चाह है, जैसा मैं सहजस्वरूप हूं वैसे मैं अनुभवमें रहूं, वैसे उपयोगमें रहूं, केवल एक यही चाह है। इसके अलावा कहीं मेरी बुद्धि न जाय। वैसे तो भुक्त भोगीके नाते सभीको विरक्ति हो जाना चाहिए क्योंकि विपत्तियां तो सभीमें आती हैं, वे तो सभीमें आगती है, किन्तु मिथ्यात्वकी ऐसी प्रबलता है कि दुःखके गड्ढेमें भी हंसकर बसते हैं। अब ज्ञानीके निकट संसार है। सम्यक्ज्ञानका उदय है, इस कारण जो भीतरका अनुभव होता है, उनका स्मरण होता है और उन स्मृत अनुभवोंसे उनके दिलमें यह बात घर कर लेती है कि परपदार्थोंमें आत्मबुद्धि लगानेसे शान्ति मिलना तो दूरकी बात है अशान्ति ही अशान्ति रहती है। समस्त पदार्थ उन्हीं समस्त पदार्थोंमें हैं, उनकी सत्ता अन्यत्र नहीं रहती। उनसे मेरी परिणतियां नहीं बनतीं और न आकुलता ही समाप्त होती है। घरमें पुत्र है, माता पिता हैं, स्त्री है, चाहे कैसे ही आज्ञाकारी हों, वे अपने कषायभावके कारण आज्ञाकारी बने हुए हैं, वे अपने सुखकी आशासे आज्ञाकारी बने हुए हैं। कोई दूसरी वजहसे आज्ञाकारी नहीं बने हुए हैं। आपको सुखी करनेके लिए वह आज्ञाकारी नहीं है। वह खुद अपनेको सुखी करनेके लिए आज्ञाकारी बने हुए हैं। और ऐसे जितने भी जगत्के जीव हैं उनकी जो-जो चेष्टाएँ हैं अपनी ही शान्तिकी आशासे है। आपको शान्तिकी चाह है तो आपमें कोई आशा बनना आपकी अपनी शान्तिके लिए है। जब आपके चित्तमें यह बात जम जायगी कि उनको तो मेरी शान्तिकी चाह है, तो आप उन लोगोंके लिए परिश्रम करेंगे सुखी करनेके लिए। पर परमार्थसे कोई किसीको शान्ति नहीं कर सकता

और न चाह सकता है। कभी लगता होगा ऐसा कि चाहा तो करता है कोई दूसरोंकी शांति, किन्तु ऐसा नहीं है। अपनेको शान्त रखनेके लिए कोई ऐसा करता है वह न दूसरोंको शान्ति कर सकता है और न दूसरोंको शान्ति चाहता है, चाह ही नहीं सकता। दूसरोंकी परिणति से दूसरोंका रंच भी सम्बन्ध नहीं तब ऐसे पदार्थ मुझसे विमुख हैं। कितनी ही आराधना करें, ध्यान करें, परपदार्थ कभी भी मेरी ओर नहीं आ सकते हैं। वह तो अपनेमें ही रहेंगे। जब जगत्का ऐसा स्वरूप चल रहा है तब किसी भी परपदार्थको अपना मानना यह कितनी मूढ़ता है, लगती हैं अपनेको मामूली बात, किन्तु इसका फल होता है अनन्त संसार। अपनी मोह ममता बड़ी सस्ती रहती है। मोह करना, प्रेम करना, परपदार्थको अपना मानना कितना सस्ता लगता है, किन्तु यह महंगा बहुत पड़ेगा। नरकमें, कुयोनियोंमें रहकर दुःख भोगना पड़ेगा।

भैया! अब तो सजग रह ले, सावधान हो ले और विवेक कहते हैं किसको? यथार्थ विवेक ज्ञानी पुरुषसे छिपा हुआ नहीं है। देखो ना अब तक सब कुछ चाह-चाहकर सारे समय व्यतीत कर डाले, पर इस आत्माके साथ क्या रहा? इस ही भवमें बचपनसे लेकर अब तक कितने प्रकारकी, चाहें कीं, उन चाहोंसे जो कुछ लाभ हुआ हो तो बताओ, वे सब स्वप्नकी बात रह गईं। गई सो गई उनमें जो विकल्प और पाप कर डाले उनका फल तो कुछ है नहीं। बाकी तो इन पापोंका फल जब समय आयेगा, होगा। होगा क्या? बरबादी होगी। पाप ही केवल हाथ है। पाप क्या कोई अच्छी चीज है? यही तो दुःखका कारण है और यदि अपने उस ज्ञानमय चैतन्यस्वरूपकी इच्छा हुई, इस ओर दृष्टि द्वारा प्रयत्न हुआ तो कुछ पल्ले भी रहेगा। मैं बाहरकी ओर रहा इससे मेरे पल्ले कुछ भी नहीं पड़ा। अब केवल यही चाह है कि मेरेमें केवल आत्मत्व रूपका ही उपयोग बना रहे। यह समस्त जगत् जैसा है वैसा जानता भर रहूं। यह मेरे दुःखका कारण नष्ट हो जावे, यह मैं नहीं चाहता क्योंकि वह दुःखका कारण ही नहीं है उसे दुःखका कारण समझें और जो सुखका कारण नहीं है उसे सुखका कारण समझें। बस ये ही खोटी समझ मेरी दूर हो, यह बाह्य जगत् दूर हो। इसका भी मुझे विकल्प नहीं। यह कहां दूर होगा? यह भी सत् है। यह सदा रहेगा। केवल मुझमें उठने वाली तरंगें समाप्त हो जायें। बाह्य पदार्थोंसे बिगाड़ समझते हैं, वह समझ मेरी दूर हो। यह बाह्य जगत् नष्ट हो यह मैं नहीं चाहता यह अन्तर जगत्, मेरी भीतरकी दुनिया, भीतरका संसार, भीतरका कुटुम्ब, भीतरके विकार ये सब समाप्त हों—यह एक मेरी चाह है। बाहरी पदार्थ आपके भीतर नहीं हैं। वह तो वह ही हैं, आप आप ही हैं, किन्तु किसी एक जीवमें वह मेरा पुत्र है, ऐसी जो भीतरकी कल्पनायें हैं ये आपको दुःखी कर रही हैं।

बाहरका कोई कुछ नहीं है—हाँ भीतरसे कल्पनामें बस गया कि यह मेरा पुत्र है, यही कल्पना पुत्र बनकर आपको दुःखी कर रही है। बाहर कोई आपका पुत्र नहीं। इसी तरह धन वैभवकी बात है। बाहरी धन वैभवसे आप अपने को धनी न अनुभव करें। मेरे पास कितना धन वैभव है? इस प्रकारकी भीतरमें जो कल्पनाएँ आ गई हैं। उन कल्पनाओंसे अपने को धनी अनुभव करते हो, बाहरी वस्तुओंसे आप पर कुछ असर नहीं है। क्योंकि बाहरी पदार्थोंको सोच सोचकर जो अपना परिणाम बनाते हैं उन परिणामोंका असर है। मुझमें मेरा असर है दूसरेमें मेरा असर नहीं। आपका आप पर असर है, दूसरे पर नहीं।

कभी कोई साधारण आदमी को किसी कारणसे कचहरीमें जाना पड़ता है तो बाउन्डरीमें पैर रखते ही दिल कांपने लगता है, और जजको देखकर उसकी हुलिया बिगड़ जाती है। क्या उस जजका असर उस आदमी पर है? नहीं, उस आदमी पर असर उसकी बेवकूफी व देहातीपने के उपयोगका असर है। वह सब उसका अपना ही असर है, जिसका जज को देखकर दिल घबड़ा गया। जैसे कोई कहता कि मैं वहां नहीं जाऊंगा, अरे क्या उसे कोई दूसरे खा लेंगे? खुद ही में खुदका ही असर पड़ता है, किसी दूसरेका असर नहीं पड़ता है। मुझमें जो असर है वह मेरे अंतर जगतका असर है। इस बाह्य जगतका असर नहीं। मैं जो कुछ कार्य कर सकता हूं सो अपने विकल्प और निर्विकल्प स्थितिका कर सकता हूं, उससे आगे मैं कुछ नहीं कर सकता हूं। मैं जो कुछ भी भोग सकता हूं, मैं अपने ही परिणामको भोगता हूं। इसलिए किसी अन्य पदार्थको तू अपना न मान, अन्य पदार्थोंसे तेरा कुछ संबंध नहीं है। अन्य अन्य ही है, मैं, मैं ही हूं। वह अपने आप परिणमते हैं। मैं अपने आप परिणमता हूं। उनकी दुनिया उनमें हैं। मेरी दुनिया मेरेमें है। मेरा किसीसे रंच भी संबंध नहीं। राम, लक्ष्मणका जब तक संयोग रहा, संबंध रहा, रामकी वजहसे लक्ष्मणने शांति पाई हो तो बताओ, लोग कह देंगे कि वाह उसने उसका साथ किया सुख ही तो दिया। पर परमार्थसे, भीतरसे वहां अशांति ही रहती है। रामके वियोगकी बातको सुनकर लक्ष्मणके प्राण निकल गए और लक्ष्मणके प्राण निकलते देखकर राम पागल से हो गए। रामचन्द्रको शान्ति कब मिली? जब समस्त बाह्य पदार्थोंको त्याग दिया और अपनेमें रमे तब उनको शांति मिली? सीता जी मोहके रागमें विचरती रहीं, उनकी सारी कहानी देखलो। उनको शांति कब मिली जब सम्यक्‌ज्ञानके जोरसे अपने आप ज्ञान किया और उसमें ही लीन हुई तब शांति प्राप्त हुई। इस जीवको इस जगत्‌में कोई शांति देने वाला नहीं, कोई दुःखोंसे दूर करने वाला नहीं। अपना यह विवेक, अपना यह ज्ञान अपनी रक्षा कर सकने वाला है।

इस कारण ज्ञानी जीवके ऐसी भावना जगती है कि मेरेको केवल आत्माका लाभ हो, यही इच्छा है। परमार्थ दर्शनके अतिरिक्त ब्रह्म प्राप्तिके अलावा अन्य किसीमें मेरी मति न जावे, अन्यत्र कहीं भी मेरी मति न हो। मेरा यह अंतर जगत नष्ट हो। मैं इस दुनियाके बीचमें ही हूं, और रहूंगा, सदा रहूंगा। सिद्ध प्रभुको देखो वह भी मुक्त होकर दुनियासे बाहर नहीं है, दुनियामें ही है। राम, हनुमान इत्यादि महापुरुष सिद्ध हो गए और सिद्ध होकर इस दुनियाके अन्दर है, दुनियासे बाहर नहीं। मोक्षस्थान इस लोक के अंदर ही तो है, इस लोकसे बाहर नहीं है। दुनियामें रहनेसे मुक्त आत्माओंका कोई बिगाड़ नहीं, पर मैं दुनियामें रह लूं तो मेरी ही बर्बादी है, जैसे नाव पानीमें रहती है, वह जलको छोड़कर जावे कहाँ, पानीमें नाव रहनेसे बिगाड़ नहीं किन्तु नावमें पानी रहनेसे बिगाड़ है, नाव पानीमें बैठ जायगी। मैं दुनियामें हूं इससे मुझमें बिगाड़ नहीं, पर मैं दुनियाको बसा लूं तो मैं ही बिगाड़ करने वाला बन बैठा हूं। यही बिगाड़ है, अंतर जगत् की सफाई कर लो, बाह्यकी सफाई की चिंता न करो। हमारा अंतर जगत् हमने किया है तो अपने अंतर जगत्के मिटानेका हमें अधिकार है। इस अन्तस्तत्त्वके बनानेका, समुन्नति करने का हमें अधिकार है, हमें अपने आपमें ही कुछ बनाने या मिटानेका अधिकार है, किसी दूसरे को बनानेका अधिकार नहीं है, और मेरी ही यह उन्नति मेरी ही आत्माकी उन्नतिका नाम है, और उस उन्नतिका उपाय है कि परमार्थका दर्शन किया जाय, कितने लाभकी बात है सदाके लिये छूटनेकी बात है, अत्यन्त पवित्र हो जानेकी बात है और उसका उपाय भी कितना सरल है, कितना मुफ्त है। अपनेमें दृष्टि ला लाकर और बाह्य पदार्थोंको भूल भूल कर केवल ज्ञानमय, चैतन्यमात्र, जगमगस्वरूप ही अपने को मान लो। इतनी बातमें कितना आनन्द भरा है? इसके उत्थानका यही उपाय है कि जिसकी समता करने वाला और कुछ नहीं है, और उसे करनेके लिये हम सब समर्थ हैं। कीड़े मकोड़े होते तो कहा जाता कि हम विवश हैं, कोई खोटा संग होता तो मैं कहता कि भाई मैं क्या करूं विवश हूं। यहाँ तो आराम है, कमाईसे भी किसी की चिंता नहीं करना है व खूब खाते पीते हो अन्यथा शिकायत तो कहीं भी समाप्त न होगी। हजार और लाखकी भी आमदनी हुई तब भी कुछ नहीं है। ऐसा विचारने में क्या देर लगती, ऐसा बोलनेमें जीभके हिलानेमें क्या देर लगती? वैसे तो सब कुछ है कोई कष्ट नहीं, तृष्णाकी बात अलग है। लाखोंकी आमदनी भी हो तो और चाहिए। ऐसा सोचा जा सकता है। यह तो आपके मनकी बात है।

यदि आप शान शौकत दिखाते हैं तो यह अधर्मकी बात है। पर कोई चिंता नहीं, कोई बात नहीं आरामसे रहते हो। ज्ञान इतना हो गया है कि सोचने समझनेकी शक्ति है,

धर्मको पकड़नेकी शक्ति है, आत्माके तत्त्वको पकड़नेकी शक्ति है। ऐसी अवस्थामें भी हम अपनेमें जरा भी हिम्मत नहीं कर सकते तो क्या विवेक है ? जैसे जाड़ेके दिनोंमें कुछ लड़के मिलकर तालाबमें नहाने जाते हैं तो तालाबके पास गए और किनारेके पत्थर पर या भींत पर बैठ गए। नहानेमें डर लगता है, जाड़ा लग रहा है। पानीमें कैसे जावें ? उनको शांति नहीं है। पर चबूतरेसे कूदकर पानीमें गिर जावें तो आधे मिनटमें ही सब जाड़ा खत्म हो जाय। वह एक सेकेन्डका साहस तो करें, इतना कर लें और फिर अच्छी तरह नहाकर अपने घर आ जावें, पर इतना साहस नहीं करते हैं, बैठे रहते हैं और बातें करते रहते हैं, हिम्मत नहीं करते हैं तो बिना नहाए ही घर चले आवेंगे। इसी तरह भैया हम धर्म करने के लिए चाहे जो चाहते हैं, परन्तु किसी क्षण हम यथार्थ पूर्णतया मान जाएं, हम अपने कल्याणके रास्तेमें लग जावें।

बहुतसे लोग ऐसे हैं जो धर्मकी ओर आते ही नहीं हैं और धर्मकी ओर आनेको भीतरसे प्रवृत्ति ही नहीं है। कितने ही मनुष्य भरे पड़े हैं। हम आप तो कितना निकट आ गए हैं। जो वाणी सुनते हैं, इसके तत्त्वको हृदयमें रखते हैं, कल्याणकी इच्छा भी रहती है। अभी थोड़ा काम और बाकी है। किसी क्षण वस्तुके स्वरूपको देखकर हिम्मत तो कर लो कि यह मैं चिच्चमत्कारमात्र आत्मा हूं, मेरे स्वरूपमें केवल मैं ही हूं। अन्य जीवके स्वरूपमें केवल वे ही हैं। उनसे मुझमें कुछ नहीं आता और न मेरेसे कुछ उनमें जाता है। किसीसे किसीका कुछ सम्बंध नहो। इस तरह अपने शुद्ध स्वसत्तामात्र चैतन्यस्वरूपको मान लेनेकी हिम्मत तो बनाओ। फिर अनुभवका आनन्द पाकर अपने घरमें मौजसे बैठो, परमात्माकी तरह सदा आनन्दमय रहोगे, संसारके सारे विकल्प समाप्त हो जायेंगे। ज्ञानी मनुष्यकी केवल एक चाह है कि उसको शुद्ध आत्मतत्वका लाभ हो, इसके अतिरिक्त और कुछ नही है। मेरा यह अंतर जगत् नष्ट हो और मैं अपनेमें अपने लिए यहीं अपने आप सुखी होऊं।

यत्र चित्तस्य न क्षोभ: स्वे वैकान्ते वसाम्यहम्।
जनव्यूहे हितं किं मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-३८॥

जहां चित्तको क्षोभ नहीं है, मनमें अशान्ति नहीं है, आकुलता व्याकुलता नहीं है, ऐसे विज्ञानघन स्वरूप अपनेमें मैं रहूं। वह अपना कहां है तो परमार्थसे देखो तो वह अपना अपनी आत्मामें ही है। अपने आपको आत्माको शुद्ध, सबसे निराला, अपनी सत्तामात्र जैसा सहजस्वरूप है उस रूपको निरखता हूं। मैं सबसे उत्कृष्ट स्वयं एकान्त हूं, मनुष्यके सम्पर्कमें हूं तथा मैं मनुष्य हूं आदि विकल्पके सम्पर्कमें तो अशान्ति आयेगी। मैं एकान्तवासी हूं। जैसा शुद्ध एकाकी निजस्वरूप है उस स्वरूपमे बसनेको एकान्तका निवास कहते हैं। और जहां

अपने स्वरूपसे हटकर किन्हीं विकल्पोंमें पड़े बस वह एकान्तसे पृथक् है। बाह्य एकान्त निश्चय एकान्तके तैयार करनेमें सहायक है। बाह्य एकान्तसे शान्ति नहीं आती, पर अन्तरङ्ग एकान्तसे शान्ति आती है। यह आत्मस्वरूप शान्ति और आनन्दका भंडार है। इसको अकेले निरखो, शुद्ध विधानसे देखो तो इसमेंसे शान्ति और आनन्द प्रगट होगा और यदि इसमें कुछ दूसरापन आ गया तो शान्ति और आनन्दमें कमी पड़ जायगी। इस मनुष्यके समूहमें क्या कुछ हित है ? इन विकल्पोंके बीचमें पड़कर बहुत हानि है। विकल्प करते करते अनन्तकाल व्यतीत कर डाले, पर आज देखो संसारका प्राणी किस परिस्थितिमें है ? इस जगत्के प्राणियों ने जगत्के अन्य जीवोंको अपना माना। इतनी हैरानी कर डालनेपर भी जिधर देखो उधर जीव दीन हीन ही बसे हैं। आज जो हम आपने स्थिति पाई है उसमें अपना काफी उद्धारका उपाय किया जा सकता है, पर उस अपनेको अपना काम करनेकी रुचि होनी चाहिए। जो अपने थोड़े समयके लिए जैसे आया है वैसे ही मिट जाता है, वह अपना गौरव कायम नहीं रख सकता है। यह जगत् एक मायाजाल है। इस जगत्में जो बाह्य आनन्द मिलता है उसमें भी यह प्राणी दुःख ही पाता है। अतएव इस बाह्य सम्पर्ककी रुचिमें कोई हित नहीं है। मेरा जो विकल्पजाल है, वह जंजाल है।

हम समाजमें गृहस्थीमें रहते हुए भी फंसे नहीं हैं, क्योंकि जो विकल्प नहीं रखते हैं वे नहीं फंसते हैं। यह आत्मा तो एक ही है, अपने स्वरूपमें है। इसका इससे बाहर कुछ नहीं है, किन्तु अनुभव तो होना आवश्यक है। उसके लिए भी क्या करना है ? बस समझना ही समझना है। बाहरसे किसीको कैसा ही मान ले, इसमें कुछ बाहरसे फेर पड़नेका नहीं, बस अपने आपको मान लो। ये परबुद्धियाँ तो सब चक्कर हैं। इन्हींमें पड़े हुए हो। मान लो कि यह मेरा लड़का है, इससे आत्मामें क्या गुण हो गया ? अरे वह मेरा नहीं है, वह तो एक दूसरा पदार्थ है। मेरा किसी भी परसे कुछ सम्बन्ध नहीं। सब अपनी-अपनी कषायमें चलते हैं। किसी परको मान लेनेसे कुछ अपना हो जाता हो, ऐसा नहीं है। परको अपना मान करके अपनेको अंधेरेमें और डाल लेते हैं। अपने स्वरूपका अनुभव किसी प्रकार हो कर लो। बस यह एक ही कार्य कर लो जिसका सानी और कुछ नहीं है। ऐसा भी कोई निरापद स्थान है तो वह है जहाँ आत्माका शुद्ध दर्शन है। जिसको इस उपयोगमें विराजमान कर हम शान्त रह सकते हैं। जनसमुदायमें, परिणमन बुद्धिमें हम क्या कर सकते हैं ? अपने एकान्तमें हम रहें तो अपने मर्मका हम पता लगा लेंगे। समस्त आपदाओंको सहकर भी मैं इस निज एकान्तमें ही बसना चाहता हूं।

आज जो रक्षाबन्धनका दिन है। क्या हुआ था कि इसी दिन इस तिथिको आजसे

लाखों, करोड़ों वर्ष पहले चतुर्थकालमें एक महान् ७०० ऋषियोंमें अथवा ऋषिगणोंमें जिनमें अकम्पनाचार्य प्रमुख थे, वे सब इसी हिन्दुस्तानमें एक बार उज्जैन नगरीमें एक जगह ठहर गए। वहाँ बहुतसे लोग दर्शनार्थ गए हुए थे। राजा भी गया। उन मंत्रियोंको भी साथमें ले जाना पड़ा था जो धर्मसे द्वेष रखते थे। अकम्पनाचार्य जी ने निमित्तसे यह जान लिया कि यहाँ कोई विपत्ति आवेगी। सब लोगोंसे कह दिया कि यहाँ सबका मौन रहेगा जब तक यहाँ ठहरेगें। जब यहाँ सब दर्शनको गए तो मोही मंत्री भी दर्शन करते रहे किन्तु किसीने उनको कुछ नहीं कहा। मंत्री कहते थे कि राजन् देखो ये सब बेवकूफ हैं, मूर्ख हैं, वे सब समझते होते तो बात तो करते। वापिस जाते हुए उन मंत्रियोंको श्रुतसागरजी मिले, जो आहार करके वापिस आ रहे थे और जिन्होंने आचार्यजी का उपदेश न सुन पाया था। उन मुनिजीसे मंत्रियोंने विवाद छेड़ दिया। परन्तु विवादमें वे मंत्री हार गए। मंत्री लोग अपने अपने घर चले आए और उन्हें इस गतिका बहुत बड़ा धक्का लगा। जब यह घटना आचार्य को मालूम हुई तब यह सोचकर कि संघपर संकट आयेगा, सो श्रुतसागरजी को विवाद स्थान पर ही रात्रिप्रतिमायोग करनेकी आज्ञा दी। रातमें सब मंत्री तलवार लेकर पहुंचे। श्रुतसागर जी को देखकर मंत्रियोंने सोचा कि इसीको मारो। सबको मारनेसे क्या फायदा? मंत्रियोंने श्रुतसागरजी पर तलवार एक साथ चलाई पर वे चारों मंत्री कीलित हो गए। एक भी तलवार उनपर न लगी। राजा भी सुबह आए, बोले—इन मंत्रियोंको फाँसी दी जायगी। आखिर मुनिने वनदेवतासे कहा कि इनको छोड़ दो। यह सब अपने-अपने कर्मके अनुसार सुख दुःख उठाया करते हैं, सबको छोड़ दिया। मुनिजनोंने मंत्रियोंका प्राणदंड राजासे हटवा दिया। किन्तु राजाने गधेपर चढ़ाकर उन मंत्रियोंको देशसे निकाल दिया। ये मंत्री हस्तिनापुरमें पहुंचे, वहाँ पद्मराजाके मंत्री हो गए। यह राजा सिंहबलको आधीन करनेके लिए चिन्तित था। इन मन्त्रियोंने छल करके सिंहबलको पकड़ लिया। तब राजाने मुँहमांगा इनाम मांगने को कहा, कि जो चाहो सो माँग लो। बलि मंत्रीने कहा कि अभी भंडारमें रख लीजिये, जब चाहूंगा माँग लूंगा। समय बाद वे साधु हस्तिनापुर पहुंचे। बलिने बदलेका मौका देखकर कहा कि महाराज हमारा वचन भंडारमें है सो दीजिए। राजाने कहा, ले लो, क्या चाहिये? तब मंत्रियोंसे सलाह लेकर बलिने कहा कि महाराज हमें ७ दिनका राज्य दे दो। बस क्या था राज्य मिल गया। अब तो बलिने उन साधुओंको बाड़ेमें घेर दिया। अपवित्र वस्तुयें डाल दीं, और ईंधन भी। सब लकड़ी कंडा आदिमें आग लगा दी। साधु जलने लगे। श्रावण शुक्ला चतुर्दशीकी रात थी। श्रवण नक्षत्र कांपा, कहीं पर्वतपर बैठे दूसरे मुनिने ज्ञान से जाना। उन्होंने एक क्षुल्लक जी को मुनि विष्णुकुमारके पास भेजा। क्षुल्लक जी ने कहा

कि महाराज ऐसा उपसर्ग है कि आपको विक्रिया ऋद्धि है, आप उसे दूर कर सकते हैं। विष्णु जी ने विक्रिया ऋद्धि जाननेको हाथ पसारा, पसारते ही रह गए। तब राजाके यहाँ भगवान् विष्णु बावनरूप धारण कर पहुंचे। बोले—महाराज हमें कुछ मिलना चाहिये। महाराजने कहा कि जो चाहो सो मांग लो। भगवान् विष्णु ने कहा कि महाराज हमें तीन कदम भूमि चाहिये। महाराज बोले कि—१००, ५० कदम मांगलो, तीन कदमसे क्या होगा महाराज! विष्णुने तीन ही कदम मांगी। भगवान विष्णुसे बलिने संकल्प किया। तब मुनिराज विष्णुने अपना रूप बढ़ा लिया। एक पैर तो मेरू पर्वत पर, दूसरेसे मानुषोत्तर पर्वत घेर लिया। अब तीसरा पैर रखनेको जगह नहीं रही। अब राजा बलिका बस नहीं चलता कि वह क्या करे? सब लोग थर्रा गए। कहा, महाराज कष्ट निवारण करो, शांत होओ, भगवान विष्णु ने अत्याचारी मंत्रियोंको धिक्कारा व उपसर्ग शान्त कराया।

तबसे यह रक्षाबंधन चला है। धर्मके कार्योंमें सब सावधान रहो व अपनी रक्षा करो। कैसे भी उपद्रव आवें हम उनसे विचलित न होकर अपनी ओर दृष्टि करें। धर्ममें हानि होती हो तो उसे भी न होने दें। अधर्मको खुद न होने दें, इसका यह सूत्र है।

जिसने अपने बलसे ऋषियोंके उपसर्ग दूर कर दिए, वह मुनिराज विष्णु थे। कितने ही संकट थे, महान् आत्माओं, ७०० ऋषियोंकी रक्षा करके विष्णु मुनिराज समाधिविचलन का प्रायश्चित्त लेकर फिर समाधिस्थ हो गए। महात्मा लोग फिर अपनी तपस्यामें लग गए।

इस जगत्में अपना क्या है? यह परिवार, कुटुम्ब इत्यादि त्याग करके यदि अपने धर्मकी रक्षा करनी पड़े तो धर्मकी रक्षा कर लो। यदि तुम्हारे अंतरङ्गमें धन, वैभव इत्यादि का मोह आए तो उसका त्याग कर लो। मेरी बुद्धि धर्मके कार्योंमें हो, बुद्धि निर्मल हो, ज्ञानमय हो, ज्ञानका प्रसार हो, धार्मिक कार्योंकी प्रीति बढ़ावें। ऐसे कार्योंके लिए अपना कुछ उत्सर्ग भी करना पड़े तो वह भी करना चाहिए।

मेरा धन मैं ही हूँ। मैं ही सब कुछ हूँ। इस संसारमें यह शरीर नहीं रहेगा, यह घरद्वार भी नहीं रहेगा, यह धन वैभव इत्यादि भी यहाँ कुछ नहीं रहेगा। यह सब अपनी अपनी परिणतिसे हैं और अपनी ही परिणतिसे चले जावेंगे।

जगत् बाह्यपदार्थोंमें मोहकी नींदका जो स्वप्न हो रहा है, इसमें नाना विकल्प जग रहे हैं और कीचड़ अपनेमें लपेट रहे हैं जिसके फलमें भविष्यका फल भी बिगड़ेगा अपने शुद्ध फलको बनानेके लिए और दूसरोंसे बर्बादी न होने देनेके लिए साधारण सहज भावमें अपने अपने उपयोगको बनाते रहे। हम इस सहज चैतन्यस्वरूपसे बढ़कर कुछ नहीं है। धर्म ही आनन्दकी खान है। ऐसे धर्ममें हम लगे रहें। यदि धर्मके कार्योंमें हमारी क्षण गुजरे तो

समझो कि हमारा जीवन सफल है और मोह चिंतामें अगर हमारी क्षणें गुजरती हैं तो समझें कि जहां हमारी आंखें मुंदीं तहां सब कुछ यहांका यहीं खत्म है। परमार्थसे तो जब अपन गए ही। धर्मकी ओर हमारी दृष्टि है तब जीवन सफल है अन्यथा नहीं।

ऐसा कौनसा स्थान है जहां रहने पर क्षोभ नहीं हो, वह स्थान बाहर कहीं भी नहीं मिला। क्योंकि बाह्यसे अपने आपसे कोई संबंध नहीं है, बाह्यपदार्थ न तो क्षोभका कारण होता है और न शांतिका कारण होता है। वह स्थान तो स्वयं यह ध्रुव आत्मा है, जो अपने सब परिणमनोंका स्रोत है, आधार है, वह मैं ही हूं। यह मैं सबसे निराला, शुद्ध चैतन्यमात्र भगवान आत्मा हूं, ज्ञानमय हूं, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि रूप मेरा परिणमन होता है, किन्तु ये सब पर्यायें हैं दूसरे क्षण नहीं रहती हैं। ये सब रूपपर्यायें जिस शक्तिकी होती हैं वह शक्ति मैं हूं, वह है ज्ञानशक्ति। वह ज्ञानशक्तिमात्र मैं हूं। ऐसा यह मात्र ज्ञानस्वरूप मैं स्वयं एकांत हूं। इस एकान्तमें मैं बसूं तो वहां कोई क्षोभ नहीं है। ऐसे इस निज सहज ज्ञायकस्वभावमय अपने आपमें मैं रहूं और स्वयं स्वयंमें सुखी रहूँ। सुखका अर्थात् आनन्दका एकमात्र उपाय यही है। आनन्द यहीं हमारी आत्मामें है। यह सहज-आनन्द तो प्रगट होनेके लिए अनादिसे इसीकी बाट जोह रहा हैं किन्तु यह रागादि भाव उस पर अनादिसे ही पानी फेर रहे हैं। यह रागादि भाव मात्र मायाजाल है। यहां सारा ठोस चीज कुछ नहीं मिलती, कैसे मिले यह रागादिक भाव स्वयं सत् तो हैं नहीं, यह एक परि-णमन हैं सो वह परिणमन भी जीवके स्वरूपसे उठा हुआ भी नहीं, यह तो अज्ञानमें एक कल्पना हो गई है जो प्रकृतिके निमित्तसे जीवमें एक झलकरूप है। उसकी अमूलताका पता ज्ञानियोंको है, इसी कारण वे रागादिभावमें आस्था नहीं करते। अज्ञानी जीवोंको न तो अपना पता है और न रागादिभावोंकी असारताका पता है। इसका कारण बिना पता लिखे या गलत पता लिखे लिफाफेकी तरह यहां वहां डोला करते हैं और जिन चाहे विषयोंमें आ-सक्त होते रहते हैं। आसक्त ही हो लेंवे, पल्ले कुछ उनके पड़ता नहीं है, कारण कि परवस्तुसे परमें कुछ परिणति नहीं आती और न परपदार्थ पर कोई अधिकार है कि मनमाफिक उसे पास रखलें या परिणमन करा दें। अनहोनी बात तो कभी होगी नहीं परन्तु अज्ञानी जीव अनहोनीको होनी करना चाहते हैं। इसका परिणाम केवल यह होता है चित्तमें उनके क्षोभ होता रहता है।

जहां चित्तको क्षोभ न हो ऐसा यह तो सम्यक्त्व है, अपने शुद्ध स्वतःसिद्ध स्वभाव, का उपयोग है। जब कभी जिस किसी प्रकारका क्षोभ हो उसका तात्त्विक और सत्य इलाज केवल एक यही है, करना भी यही चाहिए हमको जब कभी कोई क्षोभ हो, क्योंकि सर्ववि-

कल्पजालोंको असार अहित जानकर उनसे मुख मोड़कर आनन्दनिधान ज्ञानघन निज सहज परमात्मतत्त्वकी उपासना करने लगे। मैं सर्व परपदार्थोंसे अत्यन्त भिन्न हूँ, अतः शुद्ध हूं। मैं सर्वांग नमककी डलीमें जैसे क्षार है वैसे ही विज्ञानघन एकरस हूँ, ऐसा चित्स्वभावमय हूँ अतः शुद्ध हूँ। मैं समस्त बाह्य उपाधियोंसे व आन्तरिक उपाधियोंसे अनादिमुक्त हूँ, ऐसा चित्स्वभावमय हूँ अतः निरंजन ही ऐसा मैं स्वयं धर्ममय हूँ, एकान्तस्वरूप हूं। इस ही निज तत्त्वमें रहकर मैं अपनेमें अपने आप आनन्दमय रहूँ, अन्य समूहसे कोई प्रयोजन नहीं, किन्हीं भी विकल्पोंसे मेरा कोई हित नहीं।"

हितैषी हितयन्ताऽस्मि हितज्ञोऽस्मादहं गुरुः।
अस्यैव साक्षितायां शं स्यां स्वस्यै स्वे सुखी स्वयम् ॥१—३१॥

हितका चाहने वाला मैं ही हूँ, और हित की बातको जानने वाला भी मैं ही हूं। और हितरूप बर्तावमें रहने वाला भी मैं ही हूं। इसलिये मेरा गुरु भी मैं ही हूँ। इस मुझ आत्मतत्वका साक्षी बना रहूं तो इसमें ही सुख है। अन्य पदार्थोंकी उपासनामें उनके आदरमें, उनके आकर्षणमें रंच भी हित नहीं है। यह आत्मा अनन्तगुणोंका पिण्ड है। जिनमें मुख्य है ज्ञान दर्शन, चारित्र, सुख, शक्ति आदि। ये गुण इसमें अनादिसे है, और अनंत काल तक रहेंगे। ये गुण इसमें एक ही है और एकरूप ही रहेंगे। ध्रुव हैं किन्तु इनका प्रतिसमय परिणमन कोई न कोई चलता रहता है। जैसे पुद्गलमें रूप है, रस है, गंध है, स्पर्श है, चारों शक्तियां हैं और उस पुद्गल परमाणुमें प्रतिसमय कोई न कोई परिणमन होता रहना आवश्यक है। जैसे रूपमें उसका परिणमन चाहे काला हो, पीला हो, लाल हो, सफेद हो या इसके मेल वाला कोई रंग हो, पर होता रहना आवश्यक है। इसी प्रकार आत्मामें जो गुण है वह तो अनादि अनंत हैं, किन्तु इसका जो परिणमन है वह परिणमन सादि शान्त है और मिट जाता है, और यही आत्मा अगर अपने स्वरूपमें जो इसमें ज्ञान है उस ज्ञानका परिणमन कर ले तो इतना ही यह कर पाता है। तब यह इच्छा जिसके वशमें सारा जगत है, जिसके कारण विवश होकर मिथ्यात्व अन्याय अभक्ष्यका सेवन करता है। ऐसी इच्छा यह है क्या ? यह इच्छा आत्माकी चारित्रशक्ति विकार है, आत्माका जो चरित्र गुण है, जिसका स्वाभाविक विकास आत्मामें रम जानेका है, सो स्वभाविक विकास न होकर वैभाविक विकास जब चलता है तो यह परिणमन होता है। चारित्रगुणके विकार लोभ, मोह आदि हैं। लोभका ही एक प्रकारकी इच्छा है, और इच्छा जीवमें होती है और अपने जीवको ही चाह सकता है। मैं क्या चाह सकता हूँ ? क्या मैं धन चाह सकता हूं? अरे, कभी नहीं चाह सकता हूँ। आप क्या धनकी चाह करते हैं ? आप धन नहीं चाह सकते हैं। आप जो चाहते हैं सो अपने आपको ही चाहते हैं। धनको नहीं चाहते, वैभवको

नहीं चाहते, इज्जत प्रतिष्ठा को नहीं चाहते। आप जो चाहते हैं, वह अपनेको चाहते हैं। जगत्के सभी जीव केवल अपनेको चाहते हैं, दूसरोंको नहीं चाहते। क्योंकि यह एक परिणमन है और वह परिणमन आत्मामें ही हो रहा है, तो उस परिणमनका कार्य आत्मामें ही है, सो चाहमें आत्मा ही चाहोगे। धन नहीं चाहोगे मैं धनी कहलाऊँ ऐसा अपनेको चाहते हो। धनको नहीं चाहते, परन्तु ऐसी शुद्धदृष्टि मोहमें नहीं हो पाती है। आत्माकी ऐसी चाह होते समय तो वस्तुतः कोई भी प्राणी अपनेसे बाहर किसीको नहीं चाह सकता। जो चाहता है वह अपनेको चाहता है। मैं धनी कहलाऊं ऐसी चाह है पर धनको चाह नहीं है।

अपने आपमें जो तरंग उत्पन्न होती है उसकी ही वह जीव चाह करता है। चाहकी बात तो दूर रही, बाहर किसी भी चीजको यह जीव जानता नहीं, जानता है तो अपनेको। बाहरी पदार्थोंको नहीं जानता है। यह जीव स्वतंत्र ज्योतिस्वरूप है। इस कारण इसका स्वरूप जाननेका है। सो सब कुछ जो कुछ इसमें प्रतिबिम्बित हो, ग्रहण हो, सो इसकी ज्योतिको जानता हूं। धनको, वैभवको, कुटुम्बको न जाना, पर अपने आपमें जो आकार आया है उसको जाना, बाह्यपदार्थोंका जो आकार आया है उसको तू जानता है, बाह्यको नहीं जानता।

जैसे एक दर्पणको सामने रक्खें तो हम केवल दर्पणको देख रहे हैं पर पीठ पीछे दशों चीजें दर्पणमें झलकेंगी। हम तो केवल दर्पणको देख रहे हैं पर उसमें दिखता है कि अमुक आदमी को देख रहा हूँ, अमुक लड़के को देख रहा हूँ, अमुक पेड़को देख रहा हूँ। हम दसोंको क्या देखते हैं? हम तो दर्पणको देख रहे हैं। दर्पणमें दसों चीजोंका आकार बन गया, प्रतिबिम्ब आ गया, जिसपर उनको देखकर हम दस चीजोंका बयान कर देते हैं। इसी तरह हम केवल अपनेको जानते हैं कि अपनेमें इन सब चीजोंका आकार आ गया है। हम बताते हैं कि जानते हैं, पंखा जानते हैं, बिजली जानते हैं, सब कुछ जानते हैं। पर वास्तव में अपनेको जानते हो, सबको नहीं जानते हो। यह अंतरात्मा ज्योतिर्मय है। सबका आकार आ जाता है। हम जानते हैं, अपने आपमें वर्णन करते हैं सारे जगत्का। अब बतलाइए कि जब तुम्हारा इन पदार्थोंके साथ जानने तकका भी संबंध नहीं है तो फिर यह मेरा है, यह उसका है, यह सुख देता है। यह संबंध कैसे हो? कोई पदार्थ किसी अन्यका कुछ हैं—ऐसी मान्यता करना यह सब भूल है। आपकी आत्मा दूसरेको साक्षात् जानती भी नहीं है। केवल अनंतकारी होने से इस अनंताकाररूप परिणमते हुए आत्माको जानता है, बाह्य चीजों को नहीं जानता। जब हम इन पदार्थोंको जानते ही नहीं हैं, जानने तकका भी इनसे संबंध नहीं है तब भला अन्य पदार्थोंके साथ संबंध हो क्या है?

यह मैं आत्मा जगत्‌के सब पदार्थोंसे अछूता है। यदि मेरा भवितव्य अच्छा है, मुक्ति मेरी निकट है, अल्पकालमें [ही भगवान् होने वाला है तो यह ज्ञान मुझमें जग जायगा कि मैं दुनियामें सबसे अछूता है। मैं जगके सब पदार्थोंसे न्यारा है, किसीसे छुवा हूं ऐसा नहीं है। ऐसा अवृद्ध अस्पष्ट यह आत्मा मैं अपने नजरमें आ जाऊं। मैं अपने आपको, अपने आपकी आत्माको अपने ज्ञानकी ओर बिना छुवे हुए देख सकूं। यह बात तो तभी आयेगी जब निकट कालमें परमात्मा होने वाला होगा। आप जब निकट कालमें परमात्मा होने वाले होंगे तो अंतरमें ज्ञान जगेगा और अपने आपका अछूता शुद्ध चैतन्यस्वरूप नजर आयेगा। यदि अपने आपको पर्यायमात्र ही मानते रहें तो इसके फलमें क्या होगा? संसारके जन्म-मरणके चक्करमें ही तो जाना होता है। मनुष्यसे मरकर पशु होते हैं और पशुसे मरकर अन्य किसी योनियोंमें जाना होता है। ऐसे ही योनियोंमें चक्कर लगाना पड़ता है तो संसार के पदार्थ जिन्दगी भर तक छोड़ नहीं सकेंगे। अतः आत्माको बड़ा बनानेका समय है। यह महान् बनेगा तो इसकी सद्‌बुद्धि चलेगी और इसको ऐसे ही रहना होगा तो मोहमें, बाह्य-पदार्थोंमें ही जकड़ा रहेगा। यह बड़े सौभाग्यकी बात है जो इस आत्माको अपने शुद्ध ज्ञान-स्वरूपमें देखें। इससे बढ़कर ऊंचा भवितव्य और नहीं कहा जा सकता है। स्वप्नमें बड़े हो गए तो क्या वह बड़प्पन आगे रहेगा? बल्कि स्वप्नमें देखा हुआ बड़प्पन थोड़े समय बादमें दुःख करेगा। जैसे एक कथानकमें कहते हैं कि कोई घसियारा था। वह सिर पर घासका गट्ठा धरे जा रहा था। साथमें ४, ५ घसियारे और थे। और एक पेड़के नीचे बोझ उतार कर आरामसे लेट गए। उनमेंसे एक घसियारेको नींद आ गई। नींदमें स्वप्न आ गया। स्वप्नमें देखता है कि लोगोंने उसे राजा बना दिया है। एक अच्छा महल है। बड़ी हालमें अनेकों दरवाजे लग रहे हैं। बड़े बड़े राजा मुकुटधारी आ रहे हैं। लोगोंके द्वारा प्रशंसा हो रही है। गाने ताने हो रहे हैं। सब झुक रहे हैं। इतनेमें एक घसियारा जागता है और कहता है कि चलो समय हो गया, बड़ी देर हो गई है। जब वह जाग गया तो बोला हाय, हाय मेरा सब कुछ कहाँ गया? रोने पीटने लगा।

इसी तरह मोहकी नींदमें जो सोए हुए हैं उनको जो स्वप्नमें बड़प्पन दिखाई दे रहा है, मैं ऐसा हूं, ऐसा बुद्धिमान हूं, मैं भी सरकारकी पहुंच वाला हूं आदि जो स्वप्न देख रहे हैं वह सच्चे लग रहे हैं। घसियारेको स्वप्न सा नहीं लग रहा था, जब तक स्वप्नमें था। पर जब वह जाग गया तो उसे झूठ लगा। मोह छूट जाने पर यह भी झूठा लगेगा। मोह की नींद खुल जाने पर यह जगत्‌का बड़प्पन अच्छा नहीं लगेगा। पर जब तक मोह ममत्व है, जब तक अपनेको भिन्न-भिन्न नहीं परखा तब तक यह सब कुछ है। बड़ा अच्छा है मेरा

लड़का है, मेरा पोता है, मेरा बढ़ावा है, मेरा उत्थान है, मेरा आदर है; मेरे परिवारके लोग खुश रहें। दुनिया चाहे दुःखी रहे। मेरे लड़के, नाती अच्छी तरह रहें। दुनिया चाहे जिस तरह रहे। मेरा व्यापार अच्छी तरह चले। दुनियाके चाहे चलें चाहे न चलें। पर्यायबुद्धिमें जब तक बसे रहेंगे तब तक मोहके स्वप्न सच्चे लगते रहेंगे। यह ही मैं अपना हूं। मेरा अपना मेरा आत्मा ही तो है। जगत्के सब जीव एक समान हैं। सब अपने अपने स्वरूप वाले हैं। सब मुझसे अत्यन्त भिन्न हैं। सबका स्वरूप मेरे ही समान है। मोही जीव इस प्रकारका ज्ञान नहीं करता, यह मेरा है, यह पराया है—इस प्रकारका अंतरंगमें जो घर बन गया है यह भूल निरन्तर इस जीवको शूलकी तरह दुःख दे रही है। रात दिन आकुलता उत्पन्न हो रही है। हम धर्मके समयमें भगवान्को भजते हैं, पर भगवान्के भजनेमें जो भगवान्का हुक्म है उसको नहीं करते हैं। भगवान्का हुक्म है कि इस जगत्में अपनेको अछूता निरखो। अछूता मानना यह बहुत बड़ी भक्ति है और बातें बना देना यह कोई भक्ति नहीं है। हम भगवान्के हुक्मका पूरा पालन नहीं कर सकते तो भगवान्के हुक्मकी नजर तो कर सकते हैं। भगवान्का हमको हुक्म क्या है? यह ध्यान तो बना सकते हैं। हम ध्यान ऐसा न बनाएं और २४ घंटोंमें कुछ भी जोड़ छोड़ करें, इस अपने स्वरूपका उपयोग न बनाएं और भगवान्के भक्त बननेका अपने ही मनमें दावा रक्खें उससे तो काम नहीं बनता। भगवानकी भक्ति यही है कि जैसा भगवानका स्वरूप है तैसा ही अपने अन्दरमें ऐसा स्वरूप दीख जाये और गद्गद् होकर अपने ही स्वरूपमें मिल जाय, इससे बढ़कर भगवानकी भक्ति और क्या होगी? भगवान कुछ नहीं चाहता है। उनके धन दौलत नहीं है, उनके कुटुम्ब परिवार नहीं है जो आपसे कोई सेवा करवावें। आपसे भोग चढ़वावें और द्रव्य चढ़वावें। यह भोग भगवानके पेटके अन्दर नहीं जाता। भगवानकी भक्ति हम अपने आपके अन्दर करें तो होती है। बाहर दृष्टि डालकर करें तो नहीं होती है। भगवानकी भक्ति यह है कि हम शुद्धदृष्टि वाले बने और पापरहित बनें, अपनेसे अधिक दूसरे को समझें। अपनेको तो कुछ दुःखी करना पसंद करलें, पर दूसरोंको दुःखी कर देना पसंद न करें, यह है भगवानकी भक्ति।

हे प्रभु! आप भी कभी इस अनाथ संसारमें रुलने वाले और विनोदमें सड़ने वाले थे। प्रभु इस प्रकार मेरी जैसी अवस्था आपने भी कभी पायी थी। किन्तु मुझ जैसा साधारण भाग्य भी आपने पाया तो वहां आपका विवेक जगा था। उस समय आपने अनोखा उत्थान किया जिसके फलसे अपनेको शुद्धदृष्टि पूर्ण किया। केवल अपने आपको निरखते रहे। आप केवल अपने आप स्वरूपमें सब कुछ हो गए। आप आज ऐसे स्थान पर पहुंचे

कि सारा विश्व आपके ज्ञानमें झलक रहा है। अनंत आनंदमें आप निरंतर डूबे रहा करते हैं। संसारकी कोई भी आपदा आप पर नहीं आ सकती है। ऐसा उत्तम स्थान आपका हुआ है। स्वरूप तो मेरा और आपका एक ही है। केवल एक प्रस्तावको कर लिया। दूसरे प्रस्तावको कार्यान्वित कर लिया जाता है—इतना फर्क है। हम प्रस्ताव कर रहे हैं। क्या 'आत्माके अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय।' विषय कषायोंमें आत्माकी अहित करने वाली मेरी परिणति न जावे। मेरी अपनी कमेटी इन विषय कषायोंमें न जावे। पर यह प्रस्ताव कार्यान्वित नहीं होने पा रहा है। आपने कार्यन्वित कर लिया है। यदि ऐसा साहस हम कर लेते हैं कि विषय कषायोंमें उपयोग न जाय। ऐसा दृढ़ कदम उठा लेते हैं कि अपने ज्ञानमें ही सदा लक्ष्य रक्खेंगे तो मेरी भी परिस्थिति विशुद्ध हो लेगी। कभी हम साहस भी करते हैं कि ऐसा कदम उठा लें किन्तु यह करते करते इसे मुन्ना मुन्नीका ख्याल आ जाता है। यदि ५ मिनट किसीका ख्याल न रक्खें तो क्या वे गुजर जाते हैं, मिट जाते हैं। सब मिल जायगा, मगर भीतर तो कुछ और है। कैसे काम बनें ?

सम्यक्में सीमा नहीं होती है। चारित्रमें तो सीमा होती है। सम्यक् तो वह है जिसका वह पूरा हो। न हो तो रंच नहीं है। श्रद्धामें अपनी ओरका झुकाव है। पूर्ण है, नहीं है तो नहीं है। चरित्रसे हम नहीं प्रबल हो पाते हैं। नहीं सही, पर श्रद्धा तो हमारी मजबूत रहे। क्योंकि देखो पूजामें भी कहा है कि—

कीजे शक्ति प्रमाण शक्ति बिना सरधा धरै।
द्यानत सरधावान अजर अमर पदको लहै॥

अपनी रुचि ही अगर नहीं बनाई तो वह आत्मा मिले कहाँसे ? हमारे लिए हमीं सहाय हैं, दूसरे मेरा हित नहीं कर सकते हैं और दूसरे न मेरे हितकी बात जानते हैं। यह सब स्वप्नके बड़प्पनको जिम्मेदारी अपने पर नहीं समझे। यह तो सब पुण्यकी जिम्मेदारी है। ये घरमें बसने वाले सबके पुण्यकी बात है। यह उपयोग किसकी जिम्मेदारी लेकर शुद्ध करें, अपने आप निर्मल बनाएं, अशुद्धोपयोगी रहें व संसारमें रुलते रहें—यह तो योग्य नहीं। अतः मैं अपने आपकी ऐसी श्रद्धा बनाऊं कि मैं अपने आप ज्ञानमें परिणमता रहूं। जो कुछ करता हूं, वह अपने भीतरकी दुनियामें ही कर पाता हूं। इसका इससे ही ताल्लुक है, इसका किसी दूसरेसे सम्बन्ध नहीं है। किसीसे यह छुवा हुआ नहीं है। यह तो स्वयंमें ही जगमग रहता है। इतना ही मैं हूं। इस मेरेको दूसरा पहचानने वाला भी कोई नहीं है। जब दूसरा मेरा कोई पहिचानने वाला नहीं है तो कौन मुझपर रोष करता है जब कि मुझे किसीने पहचाना भी नहीं है। लोग तो हमें जानते ही नहीं हैं और भीतर ही भीतर कल्प-

नायें करके विपत्तियां किया करते हैं। मुझे कोई जानता नहीं है और यदि कोई जान जायगा तो उसकी दृष्टि मेरे ऊपर भली बुरी हो नहीं सकती और आगे देखता है कि वह उससे रुष्ट क्यों है और वह उससे खुश हो गया है? यह पुद्गलकी चीज है। मूर्ति ही मूर्तिको देख कर रीझती है। इस अविनाशी को कोई देखने वाला है क्या? अगर १० आदमियोंने हमारा सम्मान कर दिया तो यह इसी हाड़ लूथड़का ही तो सम्मान किया। जिसको यह मान रक्खा है कि यह धनी है, यह पंडित है, यह साधु है। वह सब तो खाक हो जाने वाला है। मेरा पहिचानने वाला दूसरा कोई नहीं है। मैं तो अछूता हूं। अपने आपके स्वरूप को देखो तो क्या यह करोड़ रुपयोंसे कम है या ज्यादा? अरबों तथा खरबों रुपयोंसे कम है या ज्यादा? अरे 'चक्रवर्तीकी सम्पदा इन्द्र सरीखे भोग काकबीटसम गिनत हैं सम्यक्दृष्टि लोग।' यह दुनिया ज्ञानी जीवको नहीं सुहाती जिनको अपने ज्ञानका भण्डार मिल गया है तो उनको भगवानका सही आनंद प्राप्त होगा। ज्ञानीको यह सम्पदा पापकी तरह लगती है, क्योंकि ज्ञानी जीवको सर्वोत्कृष्ट आनंद प्राप्त हुआ है।

आप लोग दुकान करते हैं। साल दो साल पहले दुकानमें टोटा ही पड़ता है। साल दो साल पहले धन ही लगाना पड़ता है। धनका लगाना ही लगाना है और फिर बादमें मुनाफा मिलता है। जिसमें ज्यादा मुनाफा मिलनेका प्रोग्राम है तो लम्बा धन लगाना पड़ता है। लम्बा परिश्रम लगाना होता है और शुद्ध भगवानका पाना यह कितना बड़ा मुनाफा है। इसके लिए तन, मन, धन, सर्वस्व सब कुछ अर्पणको समर्पित कर देना पड़ेगा। मेरा कुछ नहीं है—ऐसी दृष्टि लेकर केवल ज्ञानमय अपनेको दर्शन करना होगा। इतना करते हैं तब यह लाभ होगा। मेरे इस कार्यको केवल मैं ही कर सकता हूं, दूसरा इसको नहीं कर सकता है। अपने आपकी जिम्मेदारी महसूस कर धर्मपर ध्यान अवश्य देना चाहिए।

ज्ञानं स्वमेव जानाति तदा स्वस्वामिता कुतः।
अहमद्वैतबुद्धिः सन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-४०॥

ज्ञान आत्मामें जानने वाला गुण है। ज्ञान किसको जानता है? ज्ञान, ज्ञानको जानता है। ज्ञान सबको जानता है। यह कथनव्यवहार है। अंगुली किसको टेढ़ी करती है? अंगुलीको टेढ़ी करती है। दीपकने प्रकाशित कर दिया। किसको प्रकाशित कर दिया? दीपकको प्रकाशित कर दिया। ज्ञान वास्तवमें अपनेको जानता है परको नहीं। इस आत्माने स्वाद ले लिया। किसका स्वाद ले लिया? अपना स्वाद ले लिया, भोजनका स्वाद ले लिया, यह कहना व्यवहार है। भोजन करते समय आत्माने यह ज्ञान किया कि यह मीठा है, स्वादिष्ट है, इसी प्रकारका ज्ञान करनेसे उसने आनंद माना तो आत्माने एक विकल्पका

स्वाद लिया। उस ज्ञानने एक ज्ञानका स्वाद लिया है, भोजनका स्वाद नहीं लिया है। भोजनका रस भोजनमें है। भोजनका रस आत्मामें नहीं आता है। भोजनको निमित्त करके आत्माने जो ज्ञान किया उस ज्ञानका रस आत्मामें आया और यह जीवको जो खुशी हुई तो अपने ज्ञानके रससे खुशी हुई, भोजनके रससे खुशी नहीं हुई। लोगोंको भोजन ऐसा लगता है कि शायद उसका रस ले लेता है, सामने जो दीखने वाली चीजें हैं। अच्छा, भोजनके अलावा और देखो। सिनेमा देखा, नाटक देखा, बंदरका खेल देखा, रीछका खेल देखा। अब उनके खेलसे आनन्द आया। किसके स्वादका आनन्द आया? बंदरके खेलका आनन्द आया या रीछके खेलका आनन्द आया या अन्य किसी खेलका आनन्द आया? इन किसी भी परवस्तुओंका आनन्द नहीं आया। उनको देखनेसे ज्ञान हुआ, उस ज्ञानका रस आत्मामें आया और खुश हो गए। आत्मा स्वाद ले लेता है, अपने आप ले लेता है। आत्मा ज्ञान करता है, अपने आप करता है, अपने आप ले लेता है। आत्मा ज्ञान करता है, अपने आप करता है। मेरा अपना जो कुछ होता है वह अपनेमें ही होता है और अपने लिए होता है। ऐसा मैं अत्यन्त न्यारा आत्मा हूं। पर मोहके वशमें बाह्यपदार्थोंमें मैं मिल रहा हूं और अपनी स्व-तन्त्रताको भूल बैठा हूं। मान लिया कि यह मेरा है, अच्छा है, बुरा है आदि। इसके विक-ल्पोंमें मैं पड़ा रहता हूं, अज्ञान मिटे तो ज्ञान जगे, ज्ञान जगे तो अज्ञान मिटे, कुछ कह लो, ज्ञानी हूं, ज्ञानमात्र हूं, शरीरसे भी न्यारा हूं, केवल ज्ञानस्वरूप हूं। इससे आगे और मैं कुछ नहीं हूं, मेरा इसके आगे और कुछ नहीं है। यदि अपने स्वरूपका ज्ञान बने तो संसारमें भटकना नहीं पड़ेगा। देखो भैया ज्ञान ही दूसरेका नहीं जानता है। ज्ञान अपने आपको ही जानता है। जब जानने तकका भी संबंध दूसरेसे नहीं है, फिर और बातोंकी चर्चा करना बेकार है। क्या मेरा धन है? मैं धनको जानता हूं। क्या मैं शरीरको जानता हूं? क्या मेरा शरीर है? यह मोही जगत्के सारे स्वप्न देख रहा है। स्वप्नके समय जैसे स्वप्नकी बातें झूठ नहीं मालूम होती हैं, इसी तरह मोहकी बातें मोहमें असार नहीं मालूम होती है, झूठ नहीं मालूम होती हैं मोहमें त्याज्य त्याज्य नहीं मालूम होता। इस जीवमें सबसे अधिक विपदा छाई है। भ्रमसे होने वाले दु:खका मुकाबला है किसी औरसे नहीं किया जा सकता है। हम दूसरोंके भ्रम और बेवकूफीको देखकर कितना अधिक मजाक करते हैं। जैसे कोई चारपाई है, खाली ढांचा पड़ा हुआ है और उसमें अच्छी तरह चादर तान दी जाय और कच्चे धागेसे चारों ओर बांध दिया जाय और किसी बालकसे कहा जाय कि आओ भाई साहब बैठो। यह बैठ जाय तो दूसरे लड़के कैसे हँसेंगे। पीठ नीचे और

पैर उसके एक जगह हो जावेंगे। क्यों हँसे ? उसके गिरनेसे नहीं हँसे, ये उसके भ्रमको देखकर हँसे। जब यह समझमें आता है कि इतनी बातमें सार कुछ नहीं था और सार मानकर इसमें फंस गए और नष्ट हो गए। दूसरोंके भ्रमको देखकर हम बेवकूफीका अंदाजा लगाते और हम उसका कितना मजाक करते हैं। इन बातोंमें सार तो कुछ है नहीं और ये भ्रम मान लेते हैं। अभी किसी लड़केको गोद ले लें और जबरदस्तीका वह बाप उस लड़केसे भारी प्रेम करे, खूब खिलाये, गोदमें रखे रहे तो देखने वाले हँसेंगे। है कुछ नहीं इसका और देखो कितना बेवकूफ बना रहा है ? और अगर खुदका लड़का है तो जो समझदार होंगे वह यह अन्दाज नहीं लगावेंगे कि यह बेवकूफ है, यह स्वतंत्र परमात्मा सदृश चैतन्यमात्र है और ऐसा भ्रम हो गया और कैसा अटक गया है। यहां इस दुनियामें कैसी विपदाओंमें पड़े हैं, दुःखी भी होते हैं और हठ भी नहीं छोड़ते हैं, मरे भी जाते हैं पर हठको नहीं छोड़ते हैं, बरबाद हुए जाते हैं। यह जगत्के प्राणियोंका हाल है। जिनका निकट संसार है, भवितव्य अच्छा है, वह अपने आपमें अपने आपको लक्ष्यमें ले सकता है अन्यथा तो मोही प्राणी बाहर ही बाहर घूमता रहता है। मेरा परवस्तुवोंसे किसीसे क्या सम्बन्ध है, कौनसा सम्बन्ध है, कौन सा आनन्द है ? जानने तकका तो परसे सम्बन्ध है नहीं औरके सम्बन्धकी तो बात ही क्या है ? मैं अमुक अमुक चीजोंको जानता हूं ऐसा कहना केवल व्यवहारसे है, कल्पनाके विचारसे है, निश्चयसे यह बात नहीं है। मेरा अपनेमें बाहरका क्या है ? कुछ नहीं है।

यह किताब किसकी है ? किताबकी है। यह चौकी किसकी है, यह चौकी अपने काठ की है, यह चौकी आदमीकी नहीं है। यह हाथ किसका है ? हाथका हाथ है। मेरा हाथ होता तो मेरे ही साथ रहना चाहिए। हम तो चले जायेंगे और यह यहीं खाक हो जायगा। जो जिसकी चीज है वह त्रिकाल तक उसके साथ तन्मय रहती है। जो आज यहां हैं कल वहां है, उसको कौन कह सकता है कि यह मेरी है। वेश्याको कौन कह सकता है कि यह मेरी स्त्री है। आज यहां है, कल वहां है। ५ मिनट यहां रही और १० मिनट वहां रही। किसी एकका उसपर कोई अधिकार नहीं, घरकी विवाहीको लोग स्त्री कहते हैं क्योंकि हमें विश्वास है कि जब तक यह जिन्दा है तब तक मेरी है। ५०-६० वर्षकी अवस्था जब तक है तब तक मेरी है और आगे चलो तो घरकी स्त्री भी उसकी स्त्री नहीं है। आप जीवनको छोड़कर चले जावेंगे, वह यहां रह जावेगी। और आगे चलो तो यह शरीर भी आपका नहीं है और आगे चलो यह कर्म भी आपके नहीं हैं, यह सब झड़ जायेंगे। और आगे चलो तो यह राग, द्वेष, कषाय भी आपके नहीं हैं, यह होते हैं। और तुरंत चले जाते हैं। जो राग, द्वेष जिस समयमें हों वह दूसरे समयमें नष्ट होंगे, दूसरे समयमें नये राग होंगे। जैसे कोई

किसी बातकी तृष्णा करता है कि इसमें २० हजारका फायदा हो जाय। २० हजार हो जाने के बाद फिर तृष्णा तो नहीं रहेगी पर दूसरे २० हजारमें फिर तृष्णा हो जायगी। यह तृष्णा का गड्ढा इतना बड़ा है कि बढ़ता ही जाता है। बड़ा कूड़ा करकट डालने वाला गड्ढा कूड़ा करकट डालनेसे कम हो जायगा, पर तृष्णाका गड्ढा बढ़ता ही जाता है। तृष्णामें कितनी हीं विभूतिका कूड़ा डालते चले जावो, तृष्णा बढ़ती ही चली जाती है। इसी प्रकार राग, द्वेष मिट गए, फिर सब राग, द्वेष आ जाते हैं। इसी तरह राग, द्वेष चलते रहते हैं। जैसे चक्की में गेहूँ पिसता है उससे भी अधिक पिसता है। उसमें तो फिर भी अधिक दाने होते हैं। यह ऐसा पिस जाता है कि इसके स्वरूपका विकास ही नहीं हो पाता है। जैसे कहा है कि "सूत न कपास कोलीसे।" वैसे ही लेना न देना मोह पूरा बना हुआ है। यह मेरा है, यह पराया है। तन लगाया गया परिवारके लिए, मन लगाया गया परिवारके लिए, धन लगाया गया परिवारके लिए। अगर पड़ोसका बच्चा बीमार है या कोई दूसरी परेशानीमें है तो उसकी ओर उसकी दृष्टि ही नहीं जायगी। यह है मोहका तेज नशा। यदि वह तुम्हारे ही घरमें पैदा होता तो उसे अपना मानते। यदि यह आत्मा तुम्हारे ही घरमें न आयी हुई होती तो तुम उसे अपना न मानते। तुम्हारा कुछ है क्या, तुम्हारी कल्पनाओंमें जो अपना आए, बस सोई तुम्हारा बन बैठा है। बाह्य चीजें तुम्हारी नहीं हैं, कल्पनाओंमें जो परिणमन हुआ वह परिणमन तुम्हारा है। उसमें सब अन्दाज किया करते हो, बाहरसे तो कोई अन्दाज करते नहीं, मेरा किन्ही परपदार्थोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं किसी भी अणुमात्र परपदार्थका स्वामी नहीं, किसी परद्रव्यका स्वामी नहीं, मैं केवल अपना ही स्वामी हूं।

करि विचार देखो मन मांही।
मूंदहु आंख कितहुं कछु नाहीं॥

अन्धे पुरुषोंको देखा होगा, प्रायः वे बेलिहाज होते हैं। जैसे यहां सूझते, दूसरेकी शर्मसे कोई काम कर दे, दूसरेका ऐहसान मान ले, यह अनुभव अन्धेमें कम होता है। कुछ थोड़ासा फर्क तो प्रायः रहता है। क्योंकि जो आंखसे देखते हैं वह थोड़ासा लिहाज करते हैं। यदि समाजमें कोई बात कहना है तो कोई नहीं कह सकेगा और अगर अंधेसे कह दो तो वह झट कह देगा। कई लोग सोचते रहेंगे कि कैसे कह दें। पर अंधा भाई आंखोंसे नहीं देखता है, वह कह देगा। जब हम बाहरी पदार्थोंमें लग रहे हैं, इनको देख रहे हैं, इनकी ओर मुड़ रहे हैं तो हम लिहाज करते हैं, शर्म करते हैं, अपेक्षा करते हैं। कैसे राग छोड़ दें, कैसे द्वेष छोड़ दें। अभी दो स्त्रीमें, दो पुरुषोंमें दो लड़कोंमें बोलचाल बंद हो जाय और जो दो चार महीने तक चल जाय तो इच्छा होती है कि मैं बोलूं, चालूं, मनमें है कि मैं बोलूं, तो भी

शर्मकी कषाय कहती रहती है कि न बोलो। अरे कोई सुन पायगा कि यह पहिलेसे बोल गए तो देखनेका, बाहरमें जगनेका, बाहर रहनेका, लिहाज चलाता है। अपेक्षा चलती है, पर 'मूंदहु आँख कितहुं कोऊ नाहीं।' बाहरके विकल्प हटा दो, कहीं कुछ नहीं है, केवल ज्ञानानन्दमात्र ब्रह्मस्वरूप है। वह ज्योतिमात्र है, अपनेको ज्योतिर्मय करता है। यह ज्ञान ज्ञानको जानता है, यह ज्ञान यह अनुभव न करके कि मैं केवल अपने स्वरूपको जान रहा हूं। मानता रहा हूं कि मैं अमुक चीजको जानता हूं। बस इसी भ्रममें बड़ा दुःख है।

मैं करता हूं तो अपने आपको करता हूं, भोगता हूं तो अपने आपको भोगता हूं दुःखी होता हूं तो खुदबखुद अपने आप बिना जड़ मूलके दुःखी होता हूं और सुखी होता हू तो अपने आप कल्पनायें बनाकर सुखी होता हूं। दूसरे पदार्थोंसे कुछ संबंध नहीं है, लगाव कुछ नहीं है। खुद ब खुद अपने आप कल्पनाएं बनाकर अपनी नाना प्रकारकी अवस्थाएं कर रहा हूं। इसका किसीसे संबंध नहीं है। आपका बाहरी किसी भी चीजोंसे रंच भी सम्बन्ध नहीं है, मेरा कुछ नहीं है। मैं किसीका स्वामी नहीं हूं। मैं अद्वैतबुद्धि वाला होता हूं। केवल अपने आपको अपने ज्ञानमें लेता हुआ केवल प्रतिभास मात्र ज्ञानस्वरूप अपनेको अनुभव करुगा। यह मैं हूं, शांत हूं और अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी हूं। अपना प्रभु, अपना रक्षक, अपनी शरण मैं ही हूँ। अंतमें तुम ही मिलोगे, दूसरा नहीं मिलेगा। दो पुरुष थे, वे स्वाध्याय करते थे। उनमें आपसमें बात हुई कि जो कोई मर जाय और देव हो जावे तो वह देव दूसरेको समझाने आवे। उनमें एक गुजर गया। और देव हो गया उसने ज्ञानसे सब जाना कि वह पुरुष स्वाध्याय कर रहा है, तब वह देव आया। अब तो राग, द्वेष छोड़ दो आत्मध्यानमें आवो। पुरुष बोला, अभी बात समझमें नहीं आती है। माता, पुत्र सदा हित ही हित चाहा करते हैं। पुत्र बड़ा अच्छा है, गड़बड़झाला कुछ नहीं है। तुम्हारी शिक्षाकी बात समझमें नहीं आ रही है। बोला—कल १२ बजे दिनमें समझायेंगे। हम देव बनकर कह देंगे। तुम पेटका बहाना करके बीमार पड़ जाना। वह पुरुष बीमार बन गया। बड़ा दर्द हो रहा है। डाक्टर आए, कुछ आराम नहीं। देव १२ बजे सड़क पर घूम रहा है। कह रहा है कि मेरे पास सब पेटेंट दवा है जो व्यर्थ नहीं जावेगी। उस पुरुषके घरके लोग बोले, इसके पेटमें दर्द है सो ठीक करदो। कहा बहुत अच्छा। एक चाँदीका गिलास ले आओ उसमें स्वच्छ पानी ले आवो। अपनी थैलियोंसे सफेद सफेद शक्कर झूठमूठकी दवा उसमें मिला दी। उस पुरुषकी माँ से बोला, माँ जी इसे पी लो, उसका पेट ठीक हो जायगा। लोगोंने कहा कि पेट किसका दर्द करता है और दवा किसको पिलाएगा? बोला, यह मंत्रसिद्ध दवा है। यह दवा जो पी लेगा वह मर जायगा और यह

अच्छा हो जावेगा। माँ सोचने लगी कि मेरे चार लड़के हैं। अगर एक गुजर गया तो तीन लड़कोंका सुख देखूंगी और अगर मैं ही मर गई तो मैं किसीका भी सुख न देख सकूंगी। उसके पिताजी से कहा, पिता जी ने भी ऐसा ही सोचा। स्त्रीसे कहा कि तुम पी लो। तो स्त्री सोचती है कि अगर मैं मर गई तो पुत्रोंका भी सुख न देख सकूंगी। वैद्यजी कहते हैं कि मैं पी लूं। हां हां पी लो, सब बोले। उसने कहा कि अच्छा आप लोग जावो, ठीक हो जायगा। अब कानमें देव कहता है कि तुम्हारे लिए कोई मर मिटने वाला है क्या? उसकी समझमें आ गया। भैया! यह तो वस्तुस्वरूप है। तो इसका बुरा न मानना चाहिए कि मेरे लिए हाय कोई मर मिटता नहीं। अगर कोई कभी मेरे लिए मर मिटे तो हमारे लिए नहीं मरा, वह अपने ही विषय कषायके लिए मर मिटेगा। अगर कोई मेरे लिए मर गया तो वह मेरे लिये नहीं मरता। वह अपने मनमें कल्पनाएं करके अपने विषय कषायकी पूर्तिके लिए मरता है। इसीसे पदार्थोंका कोई दूसरा पदार्थ स्वामी है क्या? किसीका कोई अधिकारी है क्या? किसीका कुछ लगता है क्या? आप लोग सोचते होंगे। आपसे अच्छे तो विदेशी लोग हैं। वह सरकारको लड़के सौंप दें तो सरकार ही लड़कोंका पालन पोषण करती है, पढ़ाती लिखाती है? वहाँ किसीका कोई नहीं है। वहाँ मोह ममता कम होंगे। परन्तु अपने आपमें पर्यायकी ममता है, कार्योंकी ममता है। मगर इससे झगड़ा कितना बढ़ेगा? बड़े बड़े जो भवके चक्कर लगेंगे उनमें कितना झगड़ा बढ़ेगा? ऐसा क्यों हुआ? यों ही हुआ। भूलमें बात कितनी मिली कि मैंने अपने आपको नहीं समझा। परवस्तुको यह मान लिया कि यह मेरी है, यह उसकी है। मूलमें केवल इतनी बात मिली कि इससे झगड़ा सारा बढ़ गया। ८४ लाख योनियोंमें इसे भटकना पड़ा। जैसे पुत्रादिके हैरान होनेपर लोग कहते हैं कि झगड़ेकी जड़ विवाह है, न विवाह करते न झगड़ा होता। इसी तरह संसारके सब झगड़ोंकी जड़ परकी दृष्टि है। इससे यह सारी विपदायें ले लीं, यह सारे चक्कर हो गए। इसकी विपदा करली कि यह मेरा है, परपदार्थोंको अंगीकार कर लिया। इससे इतना बड़ा झगड़ा बढ़ गया। अब मैं अद्वैत बुद्धि होकर केवल अपने आपको अपना सर्वस्व समझकर ज्ञानमय बुद्धि रखकर अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

ज्ञप्तिमात्रदशायी न दुःखं स्यात्कर्मनिर्जरा।
सैषोऽहं ज्ञप्तिमात्रोऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१–४१॥

जिसका आत्मा केवल जानता है, जाननेके अलावा जाननेके विषयभूत पदार्थमें कोई राग, द्वेषकी तरंग नही उठती है तो वहां दुःख नहीं है। अब देखिए जीवका कुछ है, तो है नहीं और उसपर मर रहा है। पहले तो यह निर्णय कर लो कि जीवका यहां कुछ है क्या?

इसी निर्णय पर सब कुछ दारमदार है, सब कुछ सार है, यही है ऋषीजनोंका उपदेश और वास्तविकता यही है कि मेरा कुछ है नहीं। कुछ लोग ऊपरी ढंगसे कह रहे हैं, मान रहे हैं कि मेरा अन्य कुछ नहीं है, क्योंकि कुछ भी साथ नहीं जाता। कोई कहीं रहेगा, कोई कहीं रहेगा, कोई साथ नहीं रहेगा। यह तो है ऊपरी ढंगका वर्णन, वस्तु स्वरूप का वर्णन यह है कि जगत्में अनन्त पदार्थ हैं। कैसे कैसे कि अनन्त जीव हैं, अनंत पुद्गल हैं, एक धर्मद्रव्य है, एक अधर्मद्रव्य है, एक आकाशद्रव्य है व असंख्याते काल-द्रव्य, यह है इनकी संख्या। यह जो कुछ चीज है, एक एक चीज नहीं है। जैसे एक किवाड़ यह एक नहीं है। एक चौकी यह एक चीज नहीं है। यह अनंत चीजोंसे मिलकर बनी है। क्योंकि एक तो उतना होता है जिसका दूसरा टुकड़ा नहीं। जो वास्तवमें एक होता है उसका दूसरा हिस्सा नहीं है। एक टुकड़ा हो जाय तो समझो कि दो चीजें थीं न्यारी न्यारी हो गई हैं। यह चौकी अनंत परमाणुओंका पुंज है। शरीर यह एक या अनंत पर-माणुवोंका पुंज है। मेरे हाथ, पैर इत्यादि जो टूट जावें तो सब अलग अलग वस्तु हैं तभी टूट जाते हैं। तो जहाँ कहते हैं कि एक चीजका हजारवां हिस्सा तो वहाँ वह एक नहीं है, वहाँ हजार हैं। सब मिलकर एक पिंड बना और व्यवहारमें उसके लिए एक पिंड कहते हैं। एक चीजका हिस्सा ही नहीं हुआ करता है। जो दृश्यमान पदार्थ हैं उनको एक एक चीज नहीं मानना। उनको हम एक पिंडकी तरह ही देखें। जो एक हो उसका स्वरूप अलग नहीं होता है। वह एक दिखाई नहीं देता है, पर ज्ञानमें समझमें आता है। जब यह अनन्तपरमाणुवोंका पिंड है तो एक एक जो वस्तु हैं वे अनन्त हैं, वे स्वतन्त्र हैं। उनमें मेरा कुछ दखल नहीं है। यहाँ यह देखना है कि मेरा कुछ नहीं है तो क्यों दुःख हो? जैनधर्म किस तरह देखता है कि हमारा कुछ नहीं है। जब लोग सीधा बोल देते हैं कि हमारा कुछ नहींहै क्योंकि न मेरे साथ आया है और न मेरे साथ जायगा। इसमें तत्त्व नहीं निकला। तत्त्व तब निकलेगा जब हम वस्तुस्वरूपसे देखते हैं, अनन्त जीव हैं, अनन्त पुद्गल है, एक धर्मद्रव्य है, एक अधर्मद्रव्य है, एक आकाशद्रव्य है व असंख्यात कालद्रव्य हैं।

एक कहते किसको है जिसका दूसरा हिस्सा हो नहीं सकता है। आकाशका दूसरा हिस्सा नहीं हो सकता है। आप यही कहते हैं कि यह दूसरे तल्लेका आकाश है, नीचे यह तीसरे तल्लेका आकाश है तो एक आकाशका टुकड़ा हो गया। नहीं हो गया। एक कहते ही उसे हैं जिसका दूसरा टुकड़ा नही है। इसी तरह धर्मद्रव्य उसे कहते हैं जो जीव और पुद्गलोंके चलनेमें सहायक हो। वह तुम्हें नही दिखता। उसमें रंग, स्वाद, गंध नहीं

होती। वह सारा अलगसे एक द्रव्य है। इसी तरह एक अधर्मद्रव्य होता है। अधर्मद्रव्य उसको कहते हैं जो ठहरनेमें सहायक हो। हम चलते हैं तो चलकर रुकनेमें यह मददगार है। अगर अधर्मद्रव्य नहीं है तो हम रुक नहीं सकते। निरंतर चलते ही रहेंगे। इन परमाणुवोंमें से एक परमाणु पुद्गल ले लो। यह भी एक द्रव्य है। उसका भी दूसरा हिस्सा नहीं हो सकता है। परमाणुवोंका क्या दूसरा हिस्सा हो जायगा? नहीं होगा। हम अपना एक जीव ले लें। क्या इसके हिस्से हो सकते हैं? नहीं हो सकते हैं और दूसरी पहिचान क्या है? एक परिणमन जितनेमें हो पूरेमें होना पड़े। और जिससे बाहर कभी नहीं हो उतनेको एक कहते हैं। जैसे इस चौकीका कोई भाग यदि जल जाय, इस खूंटमें यदि आग लग जायगी तो यही जला, सारा तो नहीं जला। जिसमें यह भाग जल रहा है तो यह परिणमन यही तो हो रहा है, सारेमें तो नहीं हो रहा है। एक कहते उसे हैं जिसमें एक परिणमन उस पूरेमें हो। इस चौकीने एक जगह रूप बदल लिया तो सब जगह तो नहीं बदला। एक चीज उतनी होती है कि एक परिणमन जिसमें पूरेमें होना पड़े। जगत् का कोई भी पदार्थ मेरा नहीं है। इसकी मूल बात चल रही है। क्यों नहीं है? यों नहीं है कि सब पात्र अपने अपनेमें रहते हैं। एक परिणमन जितनेमें पूरेमें होना पड़े उतनेको एक कहते हैं। जैसे मेरा जीव एक है। क्यों एक है कि इसमें कोई सुख परिणमन है तो यह पूरेमें यहीं होना पड़ेगा। ऐसा नहीं है कि पेटके हिस्सेमें आत्मप्रदेश तो सुखी हो रहा है और पेटके नीचेका आत्मप्रदेश दुःखी हो रहा है। कभी ऐसा होगा कि हाथमें फोड़ा है। फोड़ेमें दुःख हो रहा है। ऐसा नहीं है कि हाथका अगला हिस्सा तो सुखी हो रहा है और पिछला हिस्सा दुःखी हो रहा है। कभी ऐसा होता है कि हाथमें दुःख है, मगर दुःख परिणमन जो है वह फोड़ेका नहीं है। आत्माको जो मुझमें दुःख हो रहा है वह परिणमन मेरे हाथको फोड़ेका निमित्त पाकर कहते हैं कि फोड़ेका दुःख है, हाथको दुःख है। देखो परिणमन सारे जीवमें हो रहा है। एक परिणमन जितनेमें पूरेमें होना ही पड़े और जिससे बाहर कुछ नहीं है। नहीं तो एक वस्तु है। इस जीवका जितना परिणमन है वह मेरे जीवमें होता है। बाहर कहीं नहीं होता है। प्रत्येक वस्तुका परिणमन उनमें ही होता है। उनसे बाहर कहीं नहीं होता है। जगत्में जितने भी जीव हैं, मित्र हैं, दोस्त हैं, कोई भी हों, उनका परिणमन उनमें ही होता है। उनका परिणमन उनकी आत्मामें ही होता है। उनसे बाहर उनका परिणमन कहीं नहीं होता है। मेरा परिणमन मेरी आत्मामें ही होता है। मेरा परिणमन मेरी आत्माके बाहर कहीं नहीं होता है। तब मैं जो कुछ भी कर सकता हूं, अपनी आत्मामें ही कर सकता हूं। मैं अपनी आत्माके बाहर कुछ नहीं कर सकता हूं।

दूसरे जीव जो कुछ कर सकते हैं वह अपनेमें ही कर सकते हैं। अपनेसे बाहर वे कुछ नहीं कर सकते हैं। क्योंकि वह एक सत् है। क्योंकि उनका उत्पाद व्यय ध्रौव्य उनमें ही होता है। उनसे बाहर नहीं होता है। जब किसीका उत्पाद व्यय ध्रौव्य कोई परिणमन, कोई कार्य किसी अन्य द्रव्यमें नहीं हो सकता है फिर कौनसी ऐसी गुंजाइश है कि उसमें किसी दूसरेका सत्व माना जा सके। कोई संबंध ही नहीं है। देखो मेरा तो परको जाननेका भी संबंध नहीं। मैं व्यवहारसे केवल कहता हूँ कि मैं परपदार्थोंको जानता हूं, पर मैं परमार्थसे केवल अपनेको जानता हूं। अपनेके अतिरिक्त और मैं किसीको नहीं जानता। मैं केवल अपनेको जानता हूं, पर दुनिया भरका बयान करता हूं। जैसे दर्पणको सामने रख लें तो पीठ पीछेकी बातें, यह लड़का है, यह गिर रहा है, यह अमुक है, यह कुछ कर रहा है। जैसे दर्पणको हम जानते हैं इसी बलसे हम सबका वर्णन कर डालते हैं। इसी तरह हम अपनी आत्माको ही जानते हैं परको नहीं जानते हैं। यह है ज्ञानियोंकी दृष्टि जो जंगलमें रहते हैं और प्रसन्न रहते हैं। हम दूसरेको जानते ही नहीं हैं, तो दूसरे हमारा करेंगे क्या? दूसरे मेरे कुछ नहीं हैं। अगर श्रद्धामें यह बात पूरी तरह जम जाय और जड़से सबका संबंध काट दिया जाय, उसको सम्यक्त्व होगा ही। जिसको सम्यक्त्व होगा उसको दुःख नहीं होगा। चाहे १ भव, चाहे १० भव, चाहे हजार भव रहना पड़े, दुःख उसको नहीं होगा। अगर सम्यक्त्व लगातार बना रहे तो ७, ८ भव तकमें मुक्ति हो जावेगी। अगर सम्यक्त्व छूट जाय, मिथ्यात्व आ जाय तो वह अनेकों भव संसारमें रोक सकता है। कुछ कम अर्धं पुद्गल परिवर्तनकाल तक रोक सकता है। परन्तु फिर सम्यक्त्व पाकर रत्नत्रय पूर्ण कर मुक्ति हो ही जावेगी। एक बार सम्यक्त्व प्राप्त हो जाय फिर इस जीवका भला ही है। आप यह बतलाइए कि इस सम्यक्त्वका प्राप्त हो जाना अरबों और खरबों रुपयोंसे बढ़कर है या नहीं। अरे धन तो जिसके भाग्यमें होगा वह खायगा। वह दूसरोंके लिए है। इसमें तो केवल आपके हाथ पैरके श्रमका काम है। वह धन उनके लिए है जिनके निमित्त पापी बन कर आप संसारमें रहते हैं। यह धन धर्मियोंके लिए नहीं है, वह उनके लिए है जो पापी बनकर संसारमें रुलेंगे। स्त्रीके लिए बच्चोंके लिए, अपने लिए, परिवारके लिए संसारमें रुलेंगे और अगर सम्यक्त्व मिल जाय तो सदाके लिए कल्याण है। मोह कैसे छूटे, इसका साधन है कि जगत्के ये जो परपदार्थ हैं, वे परपदार्थ अपनेको ही अपना परिणमन करते हैं, अपनेको ही अपने परिणमनमें विलीन करते हैं और अपना जो निजी स्वरूप है, निजी स्वत्व है उसको त्रिकाल लिए रहते हैं। इसलिए परपदार्थ अपने ही ढंगमें बने रहते हैं। तब फिर किसी पदार्थका किसीसे संबंध है नहीं। इसी प्रकार जैनसिद्धांत समझाता है कि हमारा जगत्

में कुछ है नहीं। जब ऐसी दृष्टि बनेगी और ऐसा दूसरे पदार्थोंको देखने लगोगे तो एक जगत् को देखते, जानते रह जावोगे। इष्ट अनिष्ट माननेका विकल्प छूट जायगा। जब तक सही ज्ञान नहीं है तब तक इष्ट अनिष्ट बुद्धि है।

बच्चेकी तकलीफ देखकर किसीने कहा कि मेरे तकलीफ है। कैसी तकलीफ है? मेरा स्वतंत्र स्वरूप है। वह अपने चतुष्टयसे है। पक्की हिम्मत बनाओ। दूसरे लड़केको देख कर तो जल्दी मान लेते कि यह अन्य है मगर घरके लड़केके प्रति यह हो जाय कि मेरा कुछ नहीं है, मेरा किसीसे संबंध नहीं है याने जिनमें अज्ञान बस रहा था, मोह बस रहा था उनमें ऐसा अगर दृढ़ प्रत्यय हो जाय कि मेरा कुछ नहीं है, मेरा तो मात्र मैं ज्ञानस्वरूप हूँ। ऐसा निर्णय हो जाय तो सम्यक्त्व हो जाय। ऐसा निर्णय करनेके लिए सारा शरीर सौंप दिया जाय, सारा धन सौंप दिया जाय, अगर यह एक श्रद्धा मिल जाय तो सब कुछ मिल गया। मान लिया कि धन किसीके पास है तो उसे सरकार भी सताए, चोर भी सतायें, धोखेबाज भी सताएं, औरकी बात छोड़ दो खुदको ही वह चिंता करके सतायेगा। खुद ही दुःखी होता है। इस वैभवसे पुरुषको क्या आनन्द होता है? अपने ज्ञानसे ही अपने उपयोग में रहूँ तो मैं आनन्द भोगता हूँ। ऐसा आनन्द कितना सरल है? मेरे ही अधिकारकी चीज है। यह आनन्द मेरे ही में बसा हुआ है। आत्मीय शक्तिके अनुभवसे उत्पन्न हुआ आनन्द ही भीतरकी निर्जरा है। जैसे तपस्या करें मगर भीतरसे क्लेश है तो क्या दुःख व कर्म कट जावेंगे? नहीं कटेंगे। ये दुनियाके लोग जो खुद मोही है, दोषी हैं, पापी हैं, दुःखी हैं, संसार में रुलने वाले हैं, उनमें अपनेको अच्छा कहलानेको या कहलवानेकी बुद्धि लगाए बैठे हैं कि इनमें मैं अच्छा कहलाऊं, इनमें मैं धनी समझा जाऊं, इनमें मैं खास समझा जाऊं। यह सब दृष्टि छोड़कर मुझे किसीसे कुछ नहीं चाहिए। ऐसी हिम्मत करो कि मुझे अपनेमें खुद सुखी रहना है। यह हिम्मत ज्ञानीके होती है। उस ज्ञानमें जरा भी दुःख नहीं होता है और कर्मों की निर्जरा है। ज्ञाता बन जाना, केवल जाननहार बन जाना, यह तो मेरा स्वभाव ही है। यह तो मेरे अन्दरमें स्वभावसे ही कला भरी हुई है। जैसे कूदना, फांदना, छलांग मारना, हिरनके बच्चेमें प्रकृतिसे ही होता है। हिरनकी मां हिरनके बच्चेको कुछ सिखाती है क्या? उसमें खुद कला भरी होती है। इसी तरह केवलज्ञानी बननेकी कला इस जीवमें स्वयं भरी होती है। इस कलाको कोई सिखायेगा क्या? भगवान बननेके लिए मेरे अन्दर यह कला भरी होती है। मेरे स्वभावमें ही भगवान् बननेकी कला है। आनन्दमय होनेकी कला मेरे स्वभावसे ही भरी हुई है। केवल ऊधम छोड़ना है, ऊधम जो लगा रखा है, बाह्यपदार्थोंको

अपना मान रखा है उसको केवल छोड़ना है बस आनन्दमय हो जावोगे। आनन्द करनेकी कला तो स्वयंमें स्वभावसे भरी हुई है। ऐसा ज्ञानमय आत्मा मैं स्वयं हूं। ऐसे ज्ञानमात्रका अनुभव करके अपनेमें अपने लिए स्वयं सुखी हूँ।

हमारा सुख कहाँ है? भोजनसे सुख है क्या? नहीं है। भोजन करके जो ज्ञान बनता है उसके ज्ञान रसका आनन्द है। भोजन करके आनन्द नहीं मिलता है। बाहुबलि स्वामी एक वर्ष तक तपस्यामें रहे। एक वर्ष तक भोजन नही किया, आनन्दरसमें डूबे रहे। बराबर एक वर्ष तक खड़े रहे। वे आत्मीय आनन्दमें मग्न थे। अन्यथा क्या कोई यों खड़ा रह सकता है? या तो बैठ जायगा या खाने-पीने दौड़ेगा, पर बाहुबलि महाराज तपस्यामें खड़े रहे।

आत्मीय आनन्द अपने ज्ञानरससे आता है, बाहरी पदार्थोंसे नहीं आता है और वह *ज्ञान आनन्दरसमय है। तू भी ज्ञानघन है, अतः तू* ज्ञानस्वरूपको देखकर और अपने ज्ञानका रस लेकर सुखी हो ले।

जैसे कभी कभी बच्चे दूसरे बच्चोंसे जिसके हाथमें लूटका आम हो। आम ले लेनेके लिए छेडते हैं और पीटते हैं। यदि वह आमको फेंक दे तो सारे बच्चे पीटना छोड़ देंगे। इसी प्रकार पक्षी दूसरे पक्षीसे मांसका टुकड़ा छीनते है। उसपर अनेक आक्रमण होते है, पर यदि वह उस टुकड़ेको छोड़ दे तो पक्षी आक्रमण करना छोड़ देंगे।

इसी तरह ये जंगलके जीव जो दुःखी हो रहे है, लोग जो पिट रहे हैं इसलिए कि परको अंगीकार कर रहे हैं, परमें तृष्णाणु हो रहे है। एक काम कर लो, परकी तृष्णा छोड़ दो। सबसे मिलने वाली विपदा समाप्त हो जायगी, सारी तृष्णा यही खत्म हो जायगी। जानने मात्रसे ही आनन्द है और उसमें ही कर्मकी निर्जरा होती है। इसलिए अपनेको अपने ज्ञानमें रखो और शांत होओ।

यदुपासे तदाप्तिः स्यादतः शुद्धात्मतां भजे।
शुद्धाप्तिः शान्तिसम्पत्तिः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-४२॥

मैं जिसकी उपासना करूँ उसकी ही मुझे प्राप्ति हो जाती है। पर उसमें शुद्ध, अशुद्धकी बात लेना है। हर एक बात नहीं लेना है कि मैं हजार रुपया चाहूं उसकी उपासना करके वह रुपया मिल ही जाय। मैं यदि शुद्धतत्त्वकी उपासना करूँ तो शुद्ध तत्त्व मिल जायगा और यदि अशुद्ध तत्त्वकी उपासना करूँ तो अशुद्धतत्त्व मिल जायगा। जैसे धनकी उपासना की तो शुद्धतत्त्वकी उपासना की? नहीं, शुद्धतत्त्वकी उपासना नहीं की। यह मैंने अपनेको माना कि मैं धनी हूं, अमुक हूं, मेरा कितना मान है, राग है? इस तरहसे अपनेको

देखो तो क्या शुद्धतत्त्वकी उपासना की ? अपनेको मोहरूप अनुभव कर रहा है कि यही मैं हूं तो अशुद्धतत्त्वकी उपासना हुई। मैं ऐसा जानने वाला हूं, ऐसा बुद्धिमान् हूं, ऐसा अपनेको समझने वाला हूं, यह भी अशुद्ध तत्त्वकी उपासना हुई। मैं अच्छी समझ वाला हूं, ज्ञान वाला हूं, जानने वाला हूं, यह भी अशुद्धतत्त्व हुआ।

मैं केवल शुद्ध चैतन्यमात्र हूँ, इस तरहकी उपासना की तो वह शुद्धतत्त्व हुआ। मैं केवल शुद्धचैतन्यस्वरूप हूँ, ऐसी उपासनाको शुद्धतत्त्वकी उपासना कहते हैं और इसके अलावा किसी भी रूपमें हो अशुद्धतत्त्वकी उपासना कही जायगी। मैं अपने को एक समझ रहा हूँ। अपनेको समझने पर ही सारे सुख दुःख निर्भर हैं। सुख, दुःख न धन पर निर्भर हैं, न परिवार पर निर्भर हैं, न मित्र जनों पर निर्भर हैं। मैं अपनेको जैसा समझता हूँ उसीपर सुख, दुःख निर्भर हैं। यदि मैं अपनेको सब जीवोंके समान शुद्ध चैतन्यमात्र जिसका नाम नहीं है किन्तु चेतनास्वरूप एकवस्तु हूँ— इतनामात्र अपनेको अनुभव करूँ तो वहाँ व्याकुलता नही है। जो अनुभव संसारमय अपनेको करता है, अपनेको नाना रूपोंमें करता है, न जाने किन किन रूपोंमें अनुभव करता है, वह जगजालमें रुलता है। जिसका निरन्तर ज्ञानमय चित्त रहता है, जो मोहियोंके संगमें कमसे कम रहता है, जिसने दुनियामें कार्य करनेका भार नहीं लादा है, जिसके अपनेको दुनियामें दिखानेका अभिप्राय नहीं आता है वह शुद्ध तत्त्वकी उपासनाके योग्य है। दुनिया उसे जान नहीं जाती है। यह सब दुनिया मायारूप है। इसको समझनेसे मुझमें सुधार कुछ नहीं आता है। और यह दुनिया उसे जानती भी नही है और यदि जानती है तो वह और चीज है। शुद्ध ज्ञानमें जिसका उपयोग प्रायः लगता है, ऐसा पुरुष ही ऐसा अनुभव कर सकता है कि मैं शुद्ध चैतन्यमात्र हूँ।

धर्म करो, धर्म करो, धर्म क्या करें ? एक टांगसे खड़े रह जाएं। धर्म क्या करें ? यही धर्म करना है कि अपनेको ऐसा अनुभव करो कि मैं शुद्ध चैतन्यमात्र हूं, चेतनामात्र हूं, इसे कोई पहिचानता भी नहीं है। लोग मुझे क्या कहेंगे ? यदि यह समझमें आता है तो समझो कि मेरी बुद्धि कहीं बाहर फंसी है। लोग यदि कुछ कहते हैं तो समझो कि हमारी कहीं बाहरमें बुद्धि गई है। चाहे वह धर्मके नाममें हो ऐसी बात आवे। मैं धर्ममें कमी करूँगा, लोग मुझे क्या कहेंगे ? तो भी समझो कि बाहरमें बुद्धि लगी है। लोग मुझे जानते ही नहीं तो मुझे कहेंगे क्या ? मैं अपने स्वरूपमें हूं, अपनी चैतन्यशक्तिमें हूं, प्रभु हूं, भगवान् या भगवत् स्वरूप हूं, अपने कुलकी आन रखो, चैतन्य मेरा कुल है। ज्ञाता, द्रष्टा बने रहना ही कुलका उजेला है। यही उसका कल्याण है।

सारा जगत् यदि मेरी प्रशंसा कर दे तो क्या कुछ इससे मुझमें फेरफार हो जाय गा।

जगत्‌के लोग मेरी निन्दा कर दें तो क्या मेरा बिगाड़ हो जायगा। खोटे कार्य किये हैं तो मर कर नरक तिर्यञ्चमें जाना पड़ेगा। मैं अन्तरमें भला हूं, शुद्ध दृष्टि वाला हूं, पूर्वोदयवश सारा जग निन्दा करे तो क्या मेरा स्वर्ग, मोक्ष रुक जायगा ? मेरे करनेसे ही मेरेमें फेरफार होगा। दूसरेके करनेसे फेरफार नहीं होगा। जहाँ अपने कल्याणका प्रश्न हो वहाँ अपने आपके परिणामपर ही सारा निर्णय छोड़ना चाहिए। कल्याणकी बात दूसरे जान जावें तो क्या कल्याण हो जावेगा ? लोग मुझे पूजा करते हुए देख लें तो क्या मेरा कल्याण हो जावेगा ? ऐसी दृष्टि जो रखते हैं वे लौकिक पुरुष हैं।

मैं इस जगत्‌में अनाथ हूं, मैं तो लोकमें असहाय हूं, केवल अपने आपका ही मैं आप हूं, इसके लिए दूसरा कोई नहीं है। मुझे अपनी जिम्मेदारी निभानी चाहिए। इस समस्या पर पदार्थ चाहे लाखों हजारोंकी माया हो, चाहे सचेतन पदार्थ हो, कोई भी मेरी मदद करने वाला नहीं है। मैं तो मात्र परिणाम करता हूं, फिर जैसे यह आटोमेटिक हो वैसे ही मेरी दशा हो जाया करती है। हमें अपने आपका ज्ञान व विश्वास निर्मल रखना चाहिए, जिससे मेरी रक्षा हो। मेरी इसीमें सहज व्यवस्था है कि मैं अपने सहजस्वरूपको देखूं और उसे ही अपना मानूं। मैं जिस रूपमें अपनी उपासना करता हूं, मैं उसी रूपको पा लेता हूं। मैं स्वयं एक कल्पवृक्ष हूं। मैं दूसरेसे क्या मांगूं ? जो मैं अपनेको मानता हूं, वही रूप मेरेमें हाजिर हो जाता है। यदि मैं शुद्धता अपनेमें भासता हूं तो शुद्धता हाजिर हो जाती है और यदि मैं अशुद्धता अपनेमें मांगता हूं तो अशुद्धता हाजिर हो जाती है। मैं अपनेको जैसा देखता हूं उसी प्रकार अपनेको बना लेता हूं। इसी कारण योगी जन अपनेको निरंतर अछूता, सबसे निराला, अनादि अनन्त अपनेको देखते हैं।

एक कथानक है कि एक आदमी था। गर्मीके दिनोंमें दोपहरीमें चला जा रहा था। जब गर्मी लगी तो सोचा कि अगर कोई वृक्ष मिल जाय तो आराम कर लूं। रास्तेमें एक वृक्ष मिल गया। वह वहीं बैठ गया। वह कल्पवृक्ष था। वह सोचने लगा कि अगर थोड़ीसी हवा चल जाय तो और आराम मिले। हवा चलने लगी। फिर सोचा कि अगर थोड़ासा ठंडा पानी मिले तो और आराम मिले। ठंडा पानी भी आ गया। अब उसने सोचा कि और फल मिल जावें तो बड़ा ही अच्छा हो जाय। फल भी आ गए। फिर सोचा कि यह क्या हो रहा है ? यहां कोई आदमी भी नहीं है। सोचा यहाँ कोई भूत तो नहीं है, जो आकर खा जाय। तो भूत भी आ गया और उसको खा गया। हाँ तो कल्पवृक्षके नीचे जैसा सोचे वैसा आ जावे।

आप हम भी स्वयं कल्पवृक्ष है या चिंतामणि है। जैसा मानो वैसा बन जाओ।

अब बताओ कि शुद्ध बनना चाहते हो या अशुद्ध बनना चाहते हो। यदि हम अपनेको अशुद्ध देखना चाहें तो अशुद्ध बने रहेंगे और यदि हम अपनेको शुद्ध देखना चाहें तो शुद्ध बन जायेंगे। जैसे मैं अपनी उपासना करूँ तैसे मैं बन जाऊँ। राम, हनुमान जी, भरत जी, बाहुबलि जी भगवान् कैसे बन गए? इन्होंने अपने आपमें मैं शुद्ध आत्माकी उपासना की। मैं शुद्ध चैतन्यमात्र हूं, मुझमें कोई बखेड़ा नही है। मुझमें किसी दूसरेका अस्तित्व नहीं है। मैं अपने ही तत्त्वमें हूँ, ज्ञानमें हूं, सबसे निराला हूं। जहां इस केवलकी भावना की तो केवल ही रहोगे। केवल रह जानेका नाम भगवान् है। अपनेको केवल देखो तो केवल बन जावोगे और अपनेको दूसरा रूप देखो तो दूसरा रूप बन जाओगे। जैसा ही अपनेको देखोगे वैसा ही अपनेको बना लोगे। मंत्रोंमें और क्या है? मैं बीमार हूं तो मंत्रोंसे ठीक हो जाता हूं। मंत्र से यह भावना की जाती है कि मैं ठीक हूं, अनन्त बलशाली हूं तो मैं ठीक हो जाता हूं। कभी-कभी कोई आदमीके खराबी हो, कहते हैं कि टी. बी. हो जानेके लक्षण हैं और यदि उससे कोई कह दे कि तुम्हारे रोग है तो वह घबड़ा जायगा और यदि वह कह दे कि स्वस्थ है तो उसका दूसरा ही असर पड़ेगा। किसी सेठसे किसीका मुकदमा था। सेठके विपक्षी वकीलने सलाह दी कि सेठ मुकदमेमें जायगा, वहां तुम पहुंच जावो। ५-१० आदमियोंसे जैसे टिकट देने वालोंसे, तांगे वालोंसे पुलिस वालोंसे बता देना कि अगर सेठ जी आवें तो उनसे कहना कि सेठजी तुम्हारा चेहरा आज क्यों गिर गया है? आज तो चेहरा बिलकुल बदल गया है, बीमार थे क्या? सेठ जी टिकट लेने गए तो टिकट देने वाले बाबूने सेठसे कहा कि आज तुम्हारा चेहरा क्यों गिर गया है? आज तो तुम्हारा चेहरा बिल्कुल बदल गया है, बीमार थे क्या? इसी प्रकारसे रिक्शे वालेने, तांगे वालेने तथा पुलिस वालोंने भी सेठ जी से पूछा। चेहरा तो बिल्कुल बदल गया है। अब सेठजी का हुलिया बिगड़ गया, बुखार आ गया, आखिर मुकदमेका ख्याल छोड़कर घर लौट आए।

जैसी उपासना कर ली, वैसा परिणाम कर लिया। अपने आपमें अगर शुद्ध चैतन्य की उपासना करो तो शुद्ध चैतन्यस्वरूप बन जाओ। यह बड़े मर्मकी बात है। केवलज्ञान, जो सारे विश्वको ज्ञान करता है। ऐसा केवलज्ञान जो सारे विश्वको जाने। केवलज्ञान पैदा होनेका उपाय क्या है कि हम अपनेको केवल देखें, केवल ज्ञानमय देखें। केवल, सिर्फ, मात्र, (एलोन) ही अपनेको देखें कि मैं ज्ञानमात्र हूं। केवल ज्ञानमात्र अपनेको अनुभव करनेका फल है केवलज्ञान हो जाना। तो योगियोंने क्या किया? बस केवल अपनेको ज्ञानमात्र अनुभव करनेमें ही जोर दिया और केवल अपनेको ज्ञानमात्र ही अनुभव किया। बस केवल अपनेको ज्ञानमात्र अनुभव करनेमें सम्यक्त्वका अनुभव है। मैं केवल ज्ञानमात्र हूं, यह अनुभव शुद्ध

तत्त्वका अनुभव है। शुद्ध तत्त्वका ज्ञान करनेसे शुद्धता मिलती है और अशुद्ध तत्त्वका ज्ञान करनेसे अशुद्धता मिलती है। भगवान् बननेका उपाय अपनी शुद्धता है। ऐसे में अपने शुद्ध आत्मतत्त्वको भजता हूँ। स्थापना किसी चीजकी करते हैं तो हजारों, सैंकड़ों आदमी भावना करते हैं। जैसे यह मूर्ति केवलज्ञानी भगवान की है, ऐसा मानकर हम भगवान्‌की स्थापना करते हैं। गर्भकल्याणक हुआ, जन्म-कल्याणक हुआ, ज्ञान कल्याणक हुआ। भावना ही से तो सब है। भगवान स्वरूप हम अपनेको मानकर एक बार अपनेमें स्थापना तो कर लें। जैसे हम भगवान्‌की मूर्तिका आदर, सत्कार, पूजा इत्यादि करते हैं, वैसे ही हम अपने आपमें भगवानकी मूर्ति मानकर आदर व सत्कार तो कर लें।

जैसे लड़का, लड़की की शादी हुई। लड़की की यह भावना हुई कि यह मेरे पति हैं और लड़केकी यह भावना हुई कि यह मेरी स्त्री है। केवल भावनाओंका अन्तर है। भावनाएँ भरकर वह ऐसा कहलाए कि वास्तवमें वह ही उसका सब कुछ है। केवल भावनाएँ भरकर वह ऐसा कहलाये। किसी स्त्री और पुरुषको देखकर कोई नहीं कहेगा कि यह उसकी स्त्री है और वह इसका पुरुष है। केवल भावनायें भरनेसे ही संकल्प हो गया है। वह स्त्री दूसरे पतिपर अपनी बुद्धि नहीं लगाती है और वह पुरुष दूसरी स्त्रीपर अपनी बुद्धि नहीं लगाता है। इसका कारण यह है कि उनकी भावनायें स्त्री और पुरुषकी भरी हुई हैं। जैसे मैं अपनेको देख लेता हूं तैसे ही मैं अपनेको पा लेता हूं। जब बालक लोग आपसमें खेलते हैं कि मैं चोर बन जाऊँ, तुम बादशाह बन जाओ, वह सिपाही बन जावे, वह कोतवाल बन जावे तो सब बन जावेंगे। जब जजके सामने चोरको पकड़कर लाता है तो कभी कभी इसीमें बालकोंमें झगड़ा हो जाता है, पिटाई भी हो जाती है। कहीं-कहीं नाटकोंमें तो जैसे अमरसिंहका नाटक बड़ा प्रसिद्ध बतलाया जाता है। उस नाटकमें एक बार जो अमरसिंह बना था उसने जवाब सवालमे ही सलामतखाँको याने जो बालक बना था उसको मार डाला था। अमरसिंहको जोश आ गया। उसने जो सलामतखां बना था उसको तलवारसे मार दिया था। उसकी भावना ऐसी भर गई कि मैं अमरसिंह हूं। उसने ऐसा नहीं सोचा कि मैं एक लड़का हूं। बस जो जैसी भावनाएं करता है वैसी ही भावनाएं अपनेमें प्राप्त कर लेता है। तो मैं निरतर अपनेमें अशुद्ध भावनाएं किया करता हूं। मैं गृहस्थी हूं, साधु हूं, पंडित हूं, त्यागी हूं, मैं अमुक हूं, इत्यादि नाना प्रकारसे अपनेको अनुभव करता है। तू अपनेको अशुद्ध बनाता चला आता है। अपनेको जो अशुद्ध मानेगा वह अशुद्ध ही बनता चला जायगा और जो शुद्ध मानेगा वह शुद्ध ही बनता चला जायगा। यदि में नहा लेता हूं, तो भावना यह हो जाती है कि मैं शुद्ध हूं, भावनासे ही शुद्ध है। पेटके अन्दर चाहे

विकार ही भरा हो परन्तु स्नान कर लिया तो शुद्ध हो गए। यह भावना हो गई कि अब मैंने स्नान कर लिया है और शुद्ध हो गया हूं, अच्छा यह बताओ कि शरीर शुद्ध है कि आत्मा शुद्ध है। शरीर शुद्ध है कि नहीं ? यह तो डाक्टर ही जांच करके बतायेगा। तो न शरीर शुद्ध है और न आत्मा शुद्ध है। केवल भावनाकी बात है कि मैं शुद्ध हूं अथवा अशुद्ध। उस भावनाका क्यों बनानेका रिवाज चला ? केवल एक प्रकारका व्यवहार चलाने के लिए यह भावना चली कि मैं शुद्ध हूं अथवा यह भावना बनी कि मैं अशुद्ध हूं। पाप साधनोंसे दूर रहनेके लिए भावना बनी है। मनुष्य भावना बनानेके अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकता है। एक बार तू ऐसी हिम्मत किसी क्षण कर ले कि चाहे कितनी ही परि-स्थितियोंमें फंसा हुआ हो, चाहे कैसा ही अवसर हो, किसीका उपयोग ज्ञानमें न आवे मुझे कुछ नहीं सोचना है। सब असार है, सब पर चीजें हैं। इस मुझमें कुछ भी नहीं आता है। मैं केवल ज्ञानमात्र हूं, ऐसा ज्ञानमात्र ज्योतिर्मय अपनेको देख, ऐसी हिम्मत तो बन जाय। भीतरसे जो आनन्द आयेगा वह भगवानके समान है। अपने आप ऐसा अनुभव करनेका उपाय करना चाहिए। यदि मैं इस प्रकार शुद्ध आत्मतत्त्वकी उपासना करता हूं तो मैं शुद्ध बन जाऊंगा और यदि मैं अपनेको अशुद्ध ही अनुभव करता हूं तो अशुद्ध ही बना रहूंगा।

जगत्के जितने सुख हैं उन सब पर लात मारना होगा। इतनी हिम्मत जो कर सकता है वह शुद्ध आत्माको प्राप्त कर सकता है। मैं चार आदमियोंमें अच्छा कहलाऊं, यह भी एक जगत्का सुख है। मेरे दो चार बच्चे हों। लोग समझें कि बाल बच्चे वाला है। यह कल्पनाएं जगत्के सुख हैं। कोई भोजन करके सुखी होता है, वह भी जगत्का सुख है। कोई पूजा उपासना करके सुखी होता है, कोई पंडित बनकर सुखी होता है। धर्मकी बात अभी नहीं आयी। विद्या पढ़ो, देखो इसमें क्या रक्खा है ? यह भी एक जगत्का सुख है। धर्म वहां है कि इस जगत्की सारी सुखकी बातें हटा दें और केवल निराकुल ज्ञानमात्र का अनुभव जिसके आ रहा है, किसीका ख्याल नहीं है तो वह धर्म है। तो यह धर्म मिलता कैसे है ? इस धर्मस्वरूपकी ही ऐसी उपासना करें तो धर्म मिलता है। अधर्म किसे कहते हैं ? जब नाना रूपोंमें उपासना करें तो अधर्म मिलता है। धर्मका मिलना, शुद्ध आत्माका मिलना सदा यह अलौकिक वैभव है, सुख है। मैं अपनेमें शुद्ध आत्माकी भावना करके अपने में सुखी होऊं।

लोग कहते हैं कि ईश्वर पहले जब अकेला था, संसार न था। उसने सोचा कि मैं अकेला हूं। बहुत हो जाऊं तो बहुत हो गए। जीव असंख्य हो गए। उसमें समाधान मि-

जता है कि हम सब एक हैं, शुद्ध चैतन्यस्वरूप हैं। हम जब संकल्प करते हैं कि मैं अमुक हूं, मैं अमुक हो जाऊं तो अपनेको नाना रूप बनाता रहता है। नाना शरीरोंमें जन्म मरण कर रहा है। जैसे १० तरहकी आग लगती है, कोयलेकी आग, लकड़ीकी आग, कपड़ेकी आग, तृणोंकी आग आदि आदि। उन सबमें आग है, मगर १० तरहकी नहीं। स्वरूप सबका एक है। यह बताओ कि क्या आग गोल है, चौकोर है, टेढ़ी टाढ़ी है तिखूटी है, लम्बी लकड़ी यदि जल रही है तो क्या वह लम्बी है ? आग कैसी होती है, बताओगे।

केवल गर्मीका नाम आग है, गोलको नाम आग नहीं, लम्बीका नाम आग नहीं। केवल मात्र गर्मीका नाम आग है, वह एकस्वरूप है। इसी तरह यह जीव नाना रूप हो रहा है। यह मनुष्य है, यह कीड़ा है, यह पेड़ है, यह पक्षी है, यह काला है, यह गोरा है, यह नाग है, यह देव है। इस जीवका स्वरूप उतना है क्या ? नहीं वह तो एक है। क्या यह जीव लम्बा है, नहीं है। क्या वह दूसरे प्रकारका है ? नहीं है। कैसा है वह जीव ? एक चैतन्यशक्तिका नाम जीव है और वह चैतन्यशक्ति एक ही स्वरूप है। ऐसे एक स्वरूप चैतन्यस्वभावको जिन्होंने उपयोगमें लिया वह ज्ञान है और जिसने नाना रूपोंमें उपयोग लिया वह अज्ञान है। एक हमारा सहपाठी था। उसने यह प्रश्न किया था कि बोलो महाराज क्या बात है कि साधु जनोंको यदि कोई नमस्कार नहीं करता तो वे गुस्सा भी होते हैं और दुःखी भी होते हैं। इसका कारण क्या है ? हमने कहा कि तुम्हीं बताओ कि इसका कारण क्या है ? निर्णय निकला कि जो यह मानते हैं कि मैं साधु हूं, इसने नमस्कार मुझे नहीं किया तो गुस्सा आ जाता है। अरे मैं साधु नहीं हूं, मैं एक चैतन्य वस्तु हूं। ऐसा उपयोग हो तो कषाय मर आवे मैं एक चैतन्यस्वरूप वस्तु हूं। ऐसा अनुभव करे तो वह ज्ञान है। इसमें जैसे गृहस्थीने अनुभव किया कि मैं कुटुम्ब वाला हूं और साधुने अनुभव किया कि मैं साधु हूं। अगर गृहस्थ अपनेको गृहस्थ अनुभव करे तो वह मिथ्यात्व है और अगर साधु अपनेको साधुका अनुभव करे तो वह भी मिथ्यात्व है।

तू ऐसा अनुभव कर कि मैं शुद्ध चैतन्यमात्र हूं, यदि ऐसा अनुभव नहीं करता है तो अज्ञान है। इसी प्रकार वह साधु भी अनुभव करे तो वह अज्ञान है। यह तो कर्मका उदय है कि इतना अनुभव कर चुकनेपर भी फिर आहार करना पड़ता, अपनेको गृहस्थ जीवन बिताना पड़ता है, गृहस्थ बनना पड़ता है, अपनेको महारथी बनाना पड़ता है क्यों ऐसा करना पड़ता है ? यह सब कर्मोंका उदय है। मैं आत्मा वास्तवमें एकस्वरूप हूं। अतः अपनेको चित्स्वामी मात्र अनुभव करे तो वह शुद्ध होता है और यदि अपनेको नाना रूपोंमें अनुभव करे तो वह अशुद्ध बन जाता है।

संवम्याक्षानि मुक्त्वा च कल्पनां मोहसम्भवाम् ।
अन्तरात्मस्थिता शान्तः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-४२॥

यह जीव स्वभावसे ज्ञानघन एवं आनन्दमय है। इसका स्वरूप, इसका अस्तित्व इस ही प्रकारका रचा हुआ होता है कि ज्ञान और आनन्द ही इसका सर्वस्व है। पर इस स्वरूप की श्रद्धा न होनेके कारण किसी न किसी परपदार्थोंमें आनन्दकी आशा लगायेगा ही। फल यह होगा कि यह बाह्य पदार्थोंमें आशा लगाता है। बाह्य पदार्थोंका ज्ञान इन्द्रियोंके निमित्त से हो रहा है। इसलिए इन्द्रियाँ उनके ज्ञानका कारण तो बनती हैं पर स्वभाव ही इन इन्द्रियोंका ऐसा है कि किसी न किसी कुपथमें ले जानेमें सहायक होती हैं। फल यह होता है कि हम इनमें अपना हित मान लेते हैं। इन सब विपत्तियोंका मूल इन्द्रियों द्वारा ज्ञात करना हो जाता है। जिन इन्द्रियोंके द्वारा हम गर्व करते हैं उस गर्वके ही मूलमें हमारे पतन का कारण निहित है। जब आपको इन्द्रियज्ञान हो रहा है, चाहे इन्द्रियज्ञानसे देख रहे हो, चाहे सुन रहे हो, हर जगह इन्द्रियज्ञान चला करता है। यही इन्द्रियज्ञान हमको भूल देनेमें कारण बन गया। हम जानते हैं कि इन इन्द्रियोंके द्वारा हम तो समझ रहे हैं, स्वाधीन हो रहे हैं, पर इनके कारण हम अपनेको भूल रहे हैं। आँखोंसे बाहर देखा तो जो देखा वह सही लगा। भूल गया अपने आपको। कानोंसे जो सुना वह सही लगा। अपने आपके पर-मार्थको भूल गया। इन इन्द्रियोंसे जो भोग किए वह सही लगे, हम अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूपको भूल गए। इतनी बड़ी विपत्तिमें आ गए। इसी कारण ज्ञानी जीव अपनेको भूल गए। इतनी बड़ी विपत्तिमें आ गए। इसी कारण ज्ञानी जीव अपने कर्मविजयके मैदानमें कूदते हैं तो वह सबसे बड़ी इन्द्रियोंका संयम करते हैं। जहाँ इन्द्रियोंका संयम हुआ, इन इन्द्रियों द्वारा काम करना बन्द किया। इनकी ओर हम ज्यादा उत्सुक न रहे। इन्द्रियविषयोंका नियंत्रण किया कि हमने अपने आपका अपने आपको दर्शन पाया। जब तक ये इन्द्रियाँ जीवित हैं, जिन्दा हैं तब तक हमको दुःख होना प्राकृतिक बात है। कुन्दकुन्द भगवानने तो प्रवचनसारमें जो लिखा, उसकी टीका करते हुए श्री अमृतचंद्र जी सूरि कहते हैं—

'तेषां जीविदवस्थानि हतकरनीन्द्रियाणि तेषामुपाधिप्रत्ययं न दुःखं किन्तु स्वाभाविकमेव।'

जिन जीवोंकी इन्द्रियाँ जिन्दा हैं, उनको दुःख होना प्राकृतिक बात है। उसमें उन्हें जो दुःख होता है उसमें उन्हें यह नहीं करना चाहिए कि मुझको किसी उपाधिसे दुःख होता है। नहीं, जहाँ इन्द्रियोंमें रत हुए वहाँ उनको दुःख होना स्वाभाविक ही है। हाथी पकड़े जाते हैं स्पर्शन इन्द्रियके वशीभूत होकर। मछलियाँ पकड़ी जाती हैं रसना इन्द्रियके वशीभूत

होकर। भंवरे मर जाते हैं तो घ्राणके वशीभूत होकर। पतिंगा दीपकमें जल जाता है नेत्रइन्द्रियके वशीभूत होकर। हिरन, सांप पकड़े जाते हैं तो श्रोत्रइन्द्रियके वशीभूत होव यह इन्द्रियज्ञान जिसमें हम रस इत्यादि पाते रहते हैं बड़ा विसंवादपूर्ण है। इनके वश हे जीव अपने आपको भुलाए रखते हैं। इन इन्द्रियोंका संयम करना ही धर्मकी शुरूआत चारित्रकी शुरूआत है। ये इन्द्रियां हैं, भीतर आत्मा है। यह आत्मा इन्द्रियज्ञानसे सुख अनुभव करता है। पर यह आत्मा इन्द्रियज्ञानको छोड़कर केवल अपने स्वरूप रसका स ले तो अत्यधिक सुखी हो जाय। ज्ञानी गृहस्थको भी गुजर करना पड़ता है, खाना पड़त किन्तु इस तरहसे जीव चलाकर भी अपने आत्मास्वरूपकी ओर दृष्टि रखता है।

मेरा स्वरूप केवल ज्ञानमात्र है। ज्योतिर्मय, ज्ञानस्वरूप बनना मेरा कार्य है। सब जानते हुए भी उपाधिवश करना पड़ता है। यह सब पर्यायके चक्कर है, परन्तु ं स्वरूप तो शुद्धज्ञानमय है। यदि ऐसा कोई रहे तो वह इन्द्रियज्ञानसे ढका है तो भी उ सम्यक्त्व कहा जाता है। एकका भीतर झुककर भी बाहरका काम करना पड़ता है द एक भीतर न रहकर बाहर ही करनेमें आसक्त हो जाता है। दृष्टियां मुख्य दो हैं। । सम्यक्त्व दृष्टि, दूसरी मिथ्यात्व दृष्टि। मनुष्य खाते तो सभी हैं। भोगते, पालते पोषते सभी हैं परन्तु एकका अंतरमें झुकाव है। एकको करना पड़ रहा है। आंखोको अंदरसे कु पता ही नहीं है। यह सब कुछ उत्तम मालूम देता है और आसक्त होकर इसका उपयं करता है। इन दोनोमें इतना अंतर है कि ज्ञानी कर्मोंका संवर करता है और यह बा झुका हुआ अज्ञानी कर्मोंका आस्रव करता है। समझके अलावा जीवके पास कुछ नहीं है सारा जोहर समझका है। समझके द्वारा यह जीव दुःखी हो जाता है और समझके द्वारा यह जीव सुखी हो जाता है। सारी स्थितियोंमें समझ ही मूल है। समझके अलावा इस अन्दर और कोई कारण नहीं है। यह आत्मा अपने सहजस्वरूपमें कैसा है? इसकी सच्च समझ ही सबको सुखी कर देती है और अगर इसमें समझ नहीं है तो वह विपत्तियोंमें ं पड़ा रहता है। यह चार दिनकी चांदनी कितने दिन तक रह सकती है। फिर विपत्ति आवेंगी और फिर वही अंधेरी रात आवेगी। यह भाव कब छूटेगा, इसका भी ठिकाना न है। चलते फिरते ही कई गुजर जाते हैं। ऐसी घटनाएं अनेकों दीखती है। प्रथम तो इ जीवका भी भरोसा नहीं है और यह भी कर लिया, भरोसा भी कर लिया तो कोई दि तो जरूर आने वाला है जब हम यहां नहीं रहेंगे। जैसा परिणाममें आयेगा, जैसे तत्त्वं आयेगा तैसे ही एकदम परिणमन हो जायगा, परिणमन मिल जायगा। ऐसा यह चमत्क चक्कर है। यहां इस इन्द्रियज्ञानमें एक विश्वास बनाया। यह सब मेरे सुखके साधन नहीं

है। मैं इन्द्रियोंको संयमित कर लूं और मोहसे उत्पन्न कल्पनाओंका त्याग कर लूं। जैसे कोई जा रहा है और अपने साथमें खाना लिए जा रहा है, जब उसे भूख लगती है तुरंत डिब्बा निकाल लिया और खा लिया। वह बिल्कुल स्वाधीन है। वह भूखसे छटपटा नहीं सकेगा। उसे किसीसे पूछताछ नहीं करना पड़ेगा। जब कभी भूख लगी तुरंत निकाल कर खा लिया।

इसी प्रकार जिस ज्ञानी पुरुषको अपने आत्माके सहजस्वरूपकी दृष्टि मिल गई है, वह किसी भी परिस्थितिमें हो, कैसे ही झगड़ोंके बीचमें हो, जब वह चाहे सारी बातोंको भूलकर अपने ज्ञानमात्र स्वरूपको लक्ष्यमें लेकर तुरंत सुखी हो सकता है। वह जानता है कि जगत्में परपदार्थोंसे विपत्तियां कहां क्या होती हैं? जब हम इन असार पदार्थोंकी ओर झुकते हैं तो विपत्तियां हैं। जब हम बाह्यपदार्थोंकी ओर झुकेंगे तभी विपत्तियां आवेंगी। ये बाह्यपदार्थ मुझसे अत्यन्त भिन्न हैं। जैसे जगत्के सब जीव भिन्न हैं, ठीक उसी प्रकार पूरे तौरसे जिसे स्त्री, पुरुष, बच्चे मान रक्खा है वह जीव भी उनसे भिन्न हैं। रंच भी गुंजाइश नहीं है कि यह जीव भी मेरा होगा। बस कल्पनाएं बन गईं कि यह मेरा है और परिस्थितियां ऐसी बन गई हैं कि वह छोड़ नहीं सकती हैं। घरमें ही तो रहता है और जीव कहां है? वहां तो काम करता है और यह समझ लेना तो ठीक मानता हूं। परन्तु यह अपने स्वरूप व कर्तव्यको नहीं देखता कि क्या करना चाहिए? मैं तो केवल ज्ञानमात्र हूं और ज्ञानमात्र रहना चाहिए, ज्ञाताद्रष्टा रहना चाहिए। पहली अवस्थामें गल्तियां कर डाली थी। परकी ओर झुकनेका संस्कार दृढ़ कर डाला था। उसके फलमें यह व्याकुल हो रहा है। यह संस्कार भी ज्ञानकी दृढ़तासे छूटेंगे। जैसे रस्सीकी रगड़से पत्थरमें भी लकीर हो जाती है, इसी तरह मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानस्वरूप हूं, अन्य रूप नहीं हूं। मैं मनुष्य ही हूँ, मैं धन सम्पत्ति वाला नहीं हूँ, मैं गृहस्थ नहीं हूँ। अतरङ्गसे देखा जाय तो मैं जगमग देखनहार तत्त्व हूं। जो आत्मा है वह अमूर्त, ज्ञानमात्र, आत्मस्वरूप है। मैं ज्ञानमात्र हूं, इसी प्रकारकी भावनाके बलसे यह मोहका संस्कार सब दूर हो सकता है। फल तो करनेसे ही मिलता है। बातोंसे फल नहीं मिलता है। प्रयोगसे ही फल प्राप्त होता है। रोटी बना लिया, खा लिया, अपना पेट भर लिया, इतने शब्द कहनेसे नहीं रोटी बनती है और न पेट भरता है। हम काम खुद करते हैं। इसी तरह मोक्षमार्गके लिए ऐसा उपयोग बनाते हैं कि मैं ज्ञानमात्र, जगत्में सबसे निराला, सबसे जुदा हूं। सबसे पूरा जुदा मान लिया। घरके एक दो आदमियोंमें अपनेको मिला हुआ तू चाहे मान ले चाहे हजारसे मिला हुआ मान ले, उसमें अन्तर नहीं आता है। किसी एक जीवमें मोह करो या अनेक जीवोंमें मोह करो, अन्धकार तो वही

है। इसे ज्ञानबलसे हटाना यह तुम्हारा ही तो काम रहा। आँखके आगे एक कागज लग जाय तो सब जगह अन्धेरा रहता है। इसी तरह एक भी परपदार्थमें, एक भी जीवमें, एक भी अणुमें यदि अपनेको मिला लिया है, मान लिया है, उसे अपनी श्रद्धामें मान लिया है तो यह ठीक नहीं है। वहाँ भी अंधेरा ही अंधेरा है। यह बात तो तब समझमें आयेगी जब अपनेको सबसे निराला, केवल ज्ञानस्वरूप देखो। यह लिया दियासे धर्मका पालन नहीं है। जैसे स्त्रीके साथ, बच्चोंके साथ पूजा कर रहे हैं तो वहाँ भी राग लगा रहे हैं। अरे यह पूजा नहीं कर रहे हैं, यह तो जगत्का मोह कर रहे हैं। अरे धर्मका पालन करनेके लिए जगत्में अपनेको सबसे निराला अनुभव करो, बच्चोंको साथमें लेकर पूजा करनेमें राग हो रहा है। लड़कोंने अगर पूजा पाठ पढ़ लिया तो बड़े खुश हो रहे हैं। अरे यह धर्म नहीं है। धर्मका पालन तब होगा जब अपने आपको जगत्में निराला अनुभव करोगे। संकल्प तो यह किया कि मैं अपनेको एकत्वस्वरूपका अनुभव करूँगा। जब यह पढ़ते हैं कि—

अर्हन्पुराणपुरुषोत्तमपावनानि वस्तूनि नूनमखिलान्ययमेक एव।
अस्मिन् ज्वलद्विमल केवलबोधवह्नौ पुण्यं समग्रमहमेकमनाजुहोमि॥

हे पुराण, हे पुरुषोत्तम, यह फल है, यह अक्षत है, यह पुष्प है, यह चमर है, ये अनेक पवित्र चीजें हैं; पर मैं इसे कुछ नहीं देख रहा हूं। हमें केवल एक दिख रहा है। यह सारी चीजें मुझे तो एक ही दिख रही हैं केवल शुद्ध ज्ञानस्वरूप। यहाँ कुछ नजर ही नहीं आता है। अभी किसीसे कुछ हो जाय, कोई गुजर जाय तो नाना जी बैठे हैं, फूफाजी बैठे हैं, मौसाजी बैठे हैं, मगर उसे कुछ नजर नहीं आ रहा है। वे मन बहलाते हैं कि गप्पें लगाना चाहिए, पर उसे कुछ दिखता नहीं। न मौसा दिखे, न बुआ दिखे, न सिनेमा दिखे। उसे केवल एक ही दिखता है जो गुजर गया है, उसमें ही केवल नजर है। इसी प्रकार इस पुजारीमें ज्ञानस्वरूपका इतना प्रेम है, उस सारे तत्त्वका इतना प्रेम है कि इसे थाली भी नजर नहीं आती। उसे लोग भी नजर नहीं आते हैं, प्रभुकी प्रतिमा ही केवल नजर आती है। उसे कुछ दिखता नहीं है। उसे केवल ज्ञानस्वरूप, ज्ञायकस्वरूप ही दिखता है। जैसे इष्टदेवको एक ही दिखता है, उसे १० रिस्तेदार नजर नहीं आ रहे हैं। वह केवल एकके ही गुण गाता है। उसपर ही आसक्त होता है और इतने आनन्द और शोकमें गद्गद् होकर आँसू बहा देता है। आनन्द आया गुणोंकी दृष्टि करके, और शोक आया वियोगकी दृष्टि करके। यह पुजारी जिसको यह ज्ञानस्वरूप ही रुचा है, उस एक परको ही वह तन, मन, धन सब कुछ वार कर जाता है। वह सब कुछ उसके लिए है जो कहते हैं कि मैं केवल ज्ञानकी अग्नि में समस्त द्रव्योंको एक मन होकर स्वाहा करता हूं, त्याग करता हूं। इतनेको ही जो यह

द्रव्य रखा है, यह तो मेरे दिल लगानेका साधन है। वह पुजारी तो उन समस्त सम्पदाओंको त्याग देता है, जो व्यवहारमें उसके हैं। वह केवल अपनेको एकाकी निरखता है। समस्त वैभवको त्याग देता है। सोना, चाँदी तथा अन्य सम्पदाएँ सब कुछ त्यागनेकी बात कह रहा है। कोई मानो भगवानका वकील पूछे कि उनको त्यागनेकी कोनसी बड़ी चीज है ? पुद्गल द्रव्य हैं, अत्यन्त भिन्न है तो आगे सुनो—जिस पुण्यके उदयसे वह प्राप्त है उसको भी त्यागता हूं, पुण्य कर्म है उसको भी त्यागता हूं। अब पुनः प्रश्न हो कि पुण्यकर्म भी तो अन्य द्रव्य हैं। केवल बातें करता है कि मैं पुण्यको भी त्यागता हूं। तो सुनो वे पुण्यकर्म भी किस भावसे बनते हैं, जैसे भक्तिका भाव है, उसको भी मैं त्यागता हूं। जब निज शुभ भावका भी संन्यास ले लिया तो सारा वैभव कहाँ रहेगा, वह सब छूट जायगा। शुद्धभक्ति यह है। जिस भक्तिमें भगवानको तू तू मैं मैं हो जाती है, जब भगवानका स्वरूप ही दृष्टिमें रह गया है तो भगवानको भी कहते हैं कि मैं उनकी भक्तिको ही त्यागता हूं और मैं शुद्धदृष्टि भक्ति रखता हूं, सब विकल्पोंको त्यागता हूं, ऐसी शुद्ध दृष्टि करते हुए पुजारी केवल एक तत्त्वको निरख रहा है। ऐसा विकल्प किए हुए पुजारी पूजामें खड़ा है।

केवल एक शुद्ध ज्ञानस्वरूप ही नजरमें आना चाहिए था। आँख खोलकर भगवानको देखो तो स्पष्ट नहीं दिखाई पड़ते हैं और यदि आँख मूँदकर देखो तो स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। ये इन्द्रियां इस इन्द्रियज्ञानको इतना दबा देती हैं कि मैं अपनी समझमें नहीं आता हूं। इस इन्द्रियज्ञान का मोह छोड़, यह इन्द्रियज्ञान पद है। कुछ ज्ञान भी नहीं है। मुझे इस ज्ञानकी जरूरत भी नहीं है। मैं हूं और परिणमता हूं। इसके आगे मेरेमें कुछ काम होता ही नहीं है। मैं हूं और परिणमते चला जाता हूं। ऐसे शुद्ध निजस्वरूपकी दृष्टि करके जो अपनी अंतर आत्मामें दर्शन होता है वह यहीं अपने आप सहजस्वरूपमें आनंदमग्न हो जाता है। यह सब धोखेकी मायाके लिए है। इन्द्रियोंकी माया ही असत्य ही नजर आता है, पर्याय ही नजर आता है। ऐसा पर्याय जो जाननेमें आता है वह सब असत्य है। सत्य तो वह है जो इन्द्रियज्ञानके परे है। यह सब कुछ मोहकी नींदमें स्वप्नसा हो रहा है। मैं इसको छोड़ कर अपनेमें अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

भावनाप्रभवः क्लेशो भावनातः शिवं सुखम्।
भावयेऽतः शिवं स्वं स्यां स्वस्मै स्वे सुखीस्वयम् ॥१—४४॥

क्लेश जितने भी होते है वे सब भावनासे होते हैं। जैसी भावना हुई उसीके अनुसार सुख दुःख भी होते हैं और जीव तो केवल अपनी भावना ही कर पाता है। बाह्यपदार्थों को परिग्रह कर ले, यह जीवके बसकी बात नहीं है। जीवके वसकी बात केवल परिणाम कर

लेना है। क्योंकि वह जितना स्वरूपमय है, उतने ही स्वरूपमें रह सकता है। स्वरूपसे बाहर किसी भी पदार्थका अस्तित्व नहीं है। आध्यात्मिक मार्गमें इसीको मिथ्यात्व कहते हैं कि परिणाममें द्रव्यकी बुद्धि कर ले, असारमें सार बुद्धि कर ले, अध्रुवमें ध्रुव बुद्धि कर ले, इसीको ही मिथ्यात्व कहते हैं। पदार्थ जितने भी हैं वे सब स्वतः ही हैं। उनको किसीने बनाया है नहीं। जो भी पदार्थ बने होते हैं वे पदार्थ नहीं हैं किन्तु पदार्थोंकी पर्यायें हैं। सो पर्याय भी किसी दूसरेके द्वारा बनाए हुए नहीं होते हैं, पर अनुकूल परपदार्थ निमित्त पाकर परिणमन वाले पदार्थ परिणमन कर लेते हैं। कोई दूसरे पदार्थ उसको परिणमाते नहीं हैं। उनका किसी प्रकार कोई दूसरा कर्ता नहीं है। यह तो सब पदार्थोंका स्वभाव है कि वह हैं और निरंतर परिणमते रहते हैं। इसके अलावा उनका कुछ प्रयोजन नहीं है। किसी अन्यसे किसी अन्यका संबंध नहीं है। हैं और परिणमते रहते हैं। यही उनका काम है। पुद्गलमें कितने ही पदार्थोंका समूह बना रहे, वहाँ कोई झगड़ा नहीं होता है, क्योंकि सब अपने अपने काममें लगे रहते हैं, अर्थात् स्वयं परिणमते रहते हैं। पर जीव ही झगड़ा करता रहता है क्योंकि वह कल्पनाएं करता, भावनाएं करता, उल्टी सीधी बातें मानता रहता है। पदार्थ कैसा है, मानता और तरहका है। इतनी बात होनेसे जीवके साथ संकल्प लगा और किसीके साथ संकल्प न लगा। सब हैं और परिणमते हैं। एक लकड़ी है, एक ओर जल गई। जल जानेमें उसमें कोई संकट नही। राख हो गई तो यहाँ भी परिणमन है। द्रव्य वहींका वहीं है। उन्होंने ही पर्यायमें यह अवस्था रख ली, पर बबाल तो इस जीव में आ गया है। यह यों करता है तो करने दो। वह एक पदार्थ है, अपनी योग्यतासे परिणम रहा है। हमारा इसमें क्या अंश है? ज्ञाता द्रष्टा रहे, परंतु जो जीव ज्ञाता द्रष्टा नहीं रह सकता है उसके बड़े विकल्प संकल्प होते रहते हैं। यह ऐसा ही होना चाहिये, ऐसा विकृत स्वभाव बना लेता है तो दुःख होता है। अभी किसी संगीतमें या नृत्यमें कोई कमी जानी जाय तो खेद हो जाय। अरे कैसी तान कर दी, कैसा तबला बजा दिया। क्यों दुःख होता है, क्योंकि उनका राग है, कल्पना है।

परिवारमे, घरमें निरंतर विवाद ही बना रहता है। झगड़ा हुआ, वह भी तो विवाद है; प्रेम है वह भी तो विवाद है। विसम्वाद दोनोंमें है, मिल-जुल कर रहे, प्रेमपूर्वक रहे, वह भी तो विवाद है। झगड़ा कर रहे, प्रेम कर रहे, वह भी तो विसंवाद है। अपने स्वरूप से अलग होकर बाह्यमें किसीमें लगना, वह साराका सारा विसंवाद है। अच्छी तरह रह लिया, कब तक रह लिया, अवधि तो है, सीमा तो है। अपने स्वरूपसे अलग होकर कौनसा सुख पाया, कौनसी शांति पायी? यह जीव अपनी भावनाएँ बनाता है और उन्हींके अनुसार

सुख, दुःख प्राप्त करता है। भावना ही संसारको नष्ट करने वाली है और भावना ही संसार की वृद्धि करने वाली है। जहाँ पर्यायमें आत्मबुद्धि किया वहाँ संसार बढ़ने लगा जहाँ पर्याय को पर्याय मानकर, अध्रुव जानकर उससे हटकर सत् निज चैतन्य स्वरूपमें आए वहाँ संसार का नाश होने लगता है। अर्थात् अपनी गतियोंका विनाश होने लगता है, प्रत्येक पदार्थ अनन्त ज्ञान वाले हैं, अनन्त शक्ति वाले हैं। जैसे यह आत्मा है इसमें ज्ञान, दर्शन चारित्र अनेक गुण हैं और वह अपनी अनंत शक्तियोंसे भरा हुआ है। यह अपने शाश्वत गुणोंमें रहता है, सामायिक पर्यायमें रहता है, व्यक्तिगत रूपमें रहता है। उनका कोई न कोई प्रगट रूप बना रहता है। जो प्रगट रूप बना रहता है उसको ही सर्वस्व मान लेना सो ही मिथ्यात्व है। जैसे मनुष्य पर्याय यहाँ प्रगट रूप है, कषायादिक यहाँ प्रगट रूप हैं। इसको मान लेते हैं कि यह मेरा है, इसको स्वीकार करना ही मिथ्यात्व है। तीन चीजें हुआ करती हैं– द्रव्य, गुण और पर्याय। जितना भी शास्त्रोंमें ज्ञान भरा है वह आपका सब सफल है, यदि पर्याय, गुण और द्रव्यकी बात ठीक समझमें आए। यदि वह समझमें नहीं आए और सब कुछ ज्ञान बढ़ने लगे तो वह निष्फल है। सो द्रव्य, गुण पर्यायका निर्णय नहीं है तो फिर सारा जानना बेकार है।

द्रव्य, गुण, पर्याय क्या कहलाते हैं? द्रव्य तो वह चीज है जो अनादिसे है और अनन्त काल तक है। वह एक वस्तु है और द्रव्यकी जो नाना शक्तियाँ हैं, जो शक्तियाँ द्रव्य में तन्मय हैं, अनादिसे अनन्त काल तक है, वह गुण कहलाती हैं। जो उत्पादन व्यय हो रहा है, जो बन रहा है, बिगड़ रहा है, यह सब पर्याय हैं। जगत्के जीवोंमें प्राण पर्यायको सर्वस्व माननेका तो ज्ञान आ गया, किन्तु जिसकी पर्याय है उस ध्रुव पदार्थकी ओर दृष्टिपात भी नहीं किया। आँखोंसे जो देखा है वह सब पर्याय है। इन्द्रियोंसे जो ज्ञान आया वह सब पर्याय है। मोटी पहिचान यह है कि जो नष्ट हो जाय उसे पर्याय कहते हैं। जिसका नाश हो जाता है उसको पर्याय कहते हैं। न नाश होने वाली चीजोंमें किसी बिरले जीवकी रुचि है और नाश होने वाली चीजोंमें यहाँ सबका बखेड़ा लग रहा है। जो नष्ट हो उसे पर्याय कहते हैं। यह जो काला, पीला, नीला, लाल, सफेद दिखता है वह नष्ट हो जाता है। यह सुगंध, दुर्गन्ध आदि जो प्रतीत होते हैं वे सब नष्ट हो जाते हैं। रूखा, चिकना, कड़ा, नर्म, ठंडा, गर्म इत्यादि सब नष्ट हो जाते हैं। खट्टा, मीठा, कडुवा आदि ये पर्याय भी नष्ट हो जाते हैं। गुण वह कहलाता है कि जिसकी ये पर्यायें चलती हैं। आपमें काला, पीला, नीला ये रंग बदलते हैं, पर रंग जो शक्ति है, रूप जो शक्ति है, वह शुरूसे अंत तक एक है। उसको बदलनेकी बात नहीं है। परन्तु रूपशक्तिको ज्ञानसे ही जाना जाता है, रूप पर्यायको सब ही देखते हैं।

इसी तरह जो कषाय है या कषायरहित परिणमन हैं ये तो समझमें आ जाते हैं पर यह जो इन पर्यायोंका स्रोत रूप है, जिसे चारित्र कहते हैं, इतना यह किसकी समझमें आता है ? चौकी जान लिया, भींत जान लिया, अमुकको जान लिया, यह सब समझमें आता है, परन्तु यह परिणमन जिस शक्तिका हो रहा है वह किसकी समझमें आता है ? पर्यायमें तो सारा मोह होता है, द्रव्यकी ओर दृष्टिपात नहीं है। पर्यायमें बुद्धि करके अनिष्ट बुद्धि इष्ट करता है परन्तु द्रव्योंकी ओर दृष्टि भी नहीं करता है। यह मेरा भला है. यह मेरा बुरा है। यह होता तो रहता है बड़ा सस्ता, क्योंकि झट कह देते हैं, मान लेते हैं, परको अपना मान लेना, यह बड़ा आसान काम बन रहा है। झट अपना मान लिया, झट अपना सोच लिया, परन्तु यह बहुत महंगा पड़ता है। इसके मीठे रसका कितना भयंकर परिणाम होता है कि ८४ लाख योनियोंमें भ्रमण होना, चारों गतियोंमें चक्कर लगानेका फल सामने होता है। इतनी बातका ही यह भयंकर फल है कि पर सत्को यह कहना कि यह मेरा है। इस बीजका इतना भारी यह संसार वृक्ष बन गया। ये ५ इन्द्रिय, ६ काय, ३ वेद, २ कषाय, ये क्या है ? यह संसारवृक्ष ही तो यह इतने भारी वृक्षका बीज केवल मिथ्यात्व है। मोहमें बहे जाते हैं। परवस्तुओंमें ममता लगाकर उन्हें अपना सर्वस्व समझकर, उनको ही अपना जानकर अपना जीवन गुजारते जाते हैं, पर इस बीजका कितना बड़ा फल है, तो यह सारे संसार में भटकना ही फल है।

यह क्लेश सारे भावनासे ही बने हैं और यह भावनासे ही मिटेंगे। यह सारे उपद्रव केवल भाव करनेसे ही हैं और भावसे ही उपद्रव नष्ट होंगे। जैसे लोकमें किसीको बुरा कह देना, गाली दे देना, कितना आसान काम है। झट जिसे चाहे जैसा चाहे बोल दिया, पर इसके फलमें दूसरेकी लाठियाँ लगीं, मार पीट हुई और बाँधे भी जावें, यह सारी विपदाएं कितनी बड़ी हो जाती हैं ? किसी किसीकी तो जान भी ले ली जाती है। इतनी बड़ी बात क्यों हो गई ? कहा कि मैंने उसको उल्लू कह दिया था। इतनी बड़ी बात कहनेका झगड़ा इतना बड़ा बन गया। न कहते, न झगड़ा बनता। यह सारा संसार जितना बहेगा उतनी ही विपत्तियाँ आयेंगी। ये विपत्तियाँ क्यों आ गयीं ? भाव झूठा आ गया। ममताकी भावना आ गयी। ऐसे ही यह सारा संसार बन गया। हमारा काम क्या है ? हम अपना सही काम सोचें।

किसी नगरका एक राजा गुजर गया था तो मंत्रीने यह सोचा कि अब वह राजा बनाया जाय, जो कल सुबह अपनेको इस फाटकमें सोते हुए पड़ा मिले। ऐसा सब मंत्रियोंने इस सम्बंधमें निर्णय किया। सुबह फाटक खोला गया तो एक सन्यासी लंगोटी पहिने हुए

मिल गया। मंत्रियोंने कहा कि चलो हम तुम्हें राजा बनावेंगे। उसने सुन लिया कि हमें राजा बनाया जायगा। सुना क्या मानो वज्रपात हो गया। संन्यासी ने कहा कि हम राजा नहीं बनेंगे। मंत्रियोंने कहा कि तुम्हें राजा बनना ही पड़ेगा। संन्यासीको पकड़कर ले गए। संन्यासी ने कहा कि देखो राजा बन जावेंगे, मगर एक शर्त है कि हम राजपाटका काम नहीं करेंगे। हम तो केवल एक जगह पर बैठे रहेंगे। मंत्रियोंने कहा कि मंजूर है। मंत्रियोंने संन्यासीकी लंगोटीको उतार दिया और सारे कपड़े जो राजाके होते हैं उनको पहना दिये। लंगोटी को एक काठकी पेटीमें संन्यासी ने रख दिया। दो, चार वर्ष तक काम चलता रहा। इसके बाद किसी राजाने चढ़ाई कर दी। मंत्री लोग घबड़ाकर एकदम राजाके पास आ गए पूछा, राजाजी क्या करना चाहिए? शत्रुओं ने चढ़ाई कर दी है। राजा कहता है कि सोच कर बताता हूं। कहा, अच्छा हमारी काठकी पेटी उठाओ। पेटीसे लंगोटा निकालो। राजसी कपड़ोंको संन्यासीने उतार दिया और लंगोटी पहन लिया। हम राम रामको यह करना चाहिए। जिसको जो कुछ करना हो वह जानें। सर्वत्र अपने अपने को सोचो कि हम राम को क्या करना चाहिए? सर्वत्र दृष्टि डाल लो, सर्वत्र घूम लो। सर्वत्र घूमनेके बाद यह सार मिलेगा केवल आत्म अनुभव एक अपना केवल आत्म अनुभव है, दूसरा अपना नहीं है। जैसे मैं सहजस्वरूप मात्र आत्मा हूं वैसे ही अपने को अनुभव करो बस इतना काम है सार भूत और इसके अलावा जितनी भी हमारी चेष्टाएं हैं, राग, द्वेष, अधर्म, मोह, पाप इत्यादि की हैं वे सब हमारे लिए विपत्ति हैं। सम्पदा केवल एक मोक्ष अनुभव ही है। धन्य हैं वे जीव जिन्होंने मनुष्य भव पाकर यह काम किया। जो सार बनकर असारसे दूर हुए। जो चैतन्य सामान्य होकर बड़े बड़े योगी ज्ञानी, बलधारियोंके उपासनीय बनें। जब तक यह जीव अपने को विशेष विशेष मानता है तब तक यह संसारमें भटकता है और जब केवल अपनेको चैतन्यस्वरूप मानता है तो इन ससारी बंधनोंसे मुक्ति प्राप्त कर लेता है। जैसी उसमें सब विशेषताएं हैं वह उनको लादे फिरता है, बताता फिरता है। ज्ञानीकी दृष्टिमें, योगीकी दृष्टिमें उसका कोई सम्मान नहीं और जो अपनेको सबमें घुला मिला एक ही बताता है, उसकी दुनियांमें इज्जत है और ज्ञानीकी दृष्टिसे वे अन्तरमें उठते हैं और उठते ही चले जाते हैं। हम अपने स्वरूपको न समझकर यह समझ जाते हैं कि हम उठ रहे हैं किन्तु हमारे उतने ही कर्म उठते चले जाते हैं। धर्मका पालन यही है।

कहते हैं ना कि प्रभु कैसे कहां बाहर हैं? जब चाहो तब अपने प्रभुको गर्दन झुकाकर देख लो। प्रभु बाहर नहीं है। जहां यह गर्दन झुकाई, जहां दृष्टि गई तहां अपने प्रभुके दर्शन कर लो। जहांपर बैठे हो उसका भी ध्यान न हो कि मैं कहांपर बैठा हूं? चाहे अनेक पदार्थों

के बीचमें बैठा हूं तो भी मुझे यह ध्यान न हो कि मैं कहाँपर बैठा हूं ? केवल अपने सामान्य स्वरूपका ही अनुभव अपनेमें आ रहा हो, ऐसी स्थितिको आत्मानुभव कहते हैं। यह सारा जगत् पर होता है। इसमें ऐसी छंटनी करना कि यह मेरा है, हित है, उत्तम है, इष्ट है, ऐसे इन पदार्थोंमें छंटनी करना अज्ञान है। मैं तो मैं हूं, मैं गृहस्थी हूं और सारे काम देखने पड़ते हैं। कमाना, पालन-पोषण करना, यह बात तो किन्ही औरके लिए होगी। इनसे मेरा क्या मतलब है ? ऐसी बात न सोचो।

आत्मा जब विषय कषायमें थक जाती है तो इसको शांति देने वाला, यथार्थ जानने वाला यह ज्ञान ही है। बड़े बड़े वैभव उन्होंने पाए। बड़ा कठिन गोरखधन्धा है। दो बातें साथ-साथ नहीं हो पाती हैं—संसारका मजा लूटना और मोक्षमार्ग पा जाना। चित्त तो यह चाहता होगा कि यहाँका मजा भी मिल जाय, और मोक्ष भी मिल जाय तो यह हो नहीं सकता है। जैसे एक सूई दोनों तरफसे नहीं सी सकती है, दो कपड़ोंको एक साथ नहीं सीं सकती है या कोई मुसाफिर क्या एक साथ दो दिशाओंमें जा सकता है ? नहीं जा सकता है। जैसे कलकत्ता जाना है, एक ही साथ जयपुर भी जाना है तो क्या दोनों जगह एक साथ जा सकते हैं ? नहीं। इसी प्रकार यह दोनों काम भी एक साथ नहीं हो सकते हैं। विषय-भोग और मोक्षका मिल जाना। यह लौकिक आनन्द बना रहे और मोक्ष भी मिल जाय, यह नहीं हो सकता है। इन दोनोंमें एक करना चाहिए। अरे एकको तो देख लिया, विषयभोगों को तो देख लिया। अब तो जागो और मोक्षका मार्ग देखो। यदि मोक्षका मार्ग देखोगे तो धर्ममें लग जाओगे। और धर्म ही ऐसा है जिसमें शांति मिल सकती है और कोई दूसरा उपाय नहीं है। यदि कोई भी जीवन बनाओ तो सही बनाओ। धर्ममें तो सबका जीवन लग रहा है परन्तु यह बात कि कोई किसी तरहका धर्म करता है और कोई किसी तरहका धर्म करता है। एक भी मनुष्य ऐसा नहीं मिलता, जो कुछ न कुछ धर्म न करता हो, निरन्तर दूसरोंको सताता हो. ऐसा कोई नहीं हो सकता है। जहाँ यह जाना कि मैं ज्ञानस्वरूप हूं, शुद्ध आत्मा हूं, वहाँ सब दुःख दूर हैं और जहां पर्यायमें बुद्धि की वहां क्लेश ही आ जाता है।

देखा होगा कि कछुवा वगैरा पानीमें चलते फिरते रहते हैं। कभी कभी कछुवा अपना सिर ऊपर पानीमें करके चलता है। कोई चिड़िया आए तो झट कछुवा पानीमें चला जावेगा। इसी प्रकार हम अपनेसे बाहर उपयोग करके चीजोंको देख रहे हैं। अरे अपना उप-योग अपनेमें दबा लो, अपनेमें डूब जाओ, जो सारी विपत्तियां है, दूर हो जावेंगी। जितने उप द्रव हैं सब समाप्त हो जावेंगे। अंतरमें अपनेको केवल देखो तो केवल ज्ञान ही सारा बाहर है। विपत्तियां हैं, स्वप्न देखने वाले जैसे घबड़ा रहे हैं। जब जग जाते हैं तब दुःख मिट जाता

है। अरे यहाँ कहाँसे रहें ? मैं आराममें तो हूं, मेरे क्लेश मिट गए हैं। इसी तरह मोहके क्लेश हैं। अन्तरमें देखनेमें मैं ज्ञानमात्र हूं, ज्ञानमात्र वस्तु हूं। यहाँ किसीका कुछ लगा ही नहीं है। जो मौजमें बैठे हैं तो वहाँ क्लेश हो जाता है। मगर जिन्हें यह कला याद है उन्हें ज्ञानी कहते हैं, और अगर यह कला नहीं याद है तो उसे मोही कहते हैं।

सारे देहिषु सर्वेषु व्यक्ताव्यक्ते बुधाज्ञयोः।
ज्ञानमात्रे चिरं तिष्ठन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-४५॥

इस जगत्‌में अनन्तानन्त जीव हैं और भिन्न-भिन्न प्रकारकी पर्यायोंमें हैं। देखो यहाँ ये कितने प्रकारके जीव हैं ? कोई पृथ्वी है, कोई अग्नि है, कोई जल है, कोई वायु है, कोई वनस्पति है, कोई लता वगैरा, कोई चींटी वगैरा तीन इन्द्रियके जीव। भौंरा, ततैया वगैरा चार इन्द्रिय जीव। गाय, बैल, भैंस आदि पंचइन्द्रिय जीव होते हैं। मनुष्य पंचइन्द्रियमें होते हैं, नारकी देव भी पंचेन्द्रिय ही होते हैं और भेदसे देखो तो असंख्य प्रकारके जीव हैं। इन जीवोंमें सार बात कितनी तुमने देखी ? क्या वह सब जो हैं वह पर्याय हैं। यही सब सार है। मनुष्यरूप वगैरा जो हैं वह सब क्या सारभूत हैं ? इन सब प्राणियोंमें सारभूत क्या है, बतलाइए ? इन सारे तत्त्वोंको क्या अज्ञानी बता सकेंगे ? वे अपने असारको ही सार समझ रहे हैं। तीसरे लोग सारकी चीजको क्या बतावेंगे ? पर ज्ञानी जीवको सारकी बात एकदम स्पष्ट है। वह सारकी चीज क्या है ? जैसे ये मनुष्य दिख रहे हैं, कोई बच्चे हैं, कोई जवान हैं, कोई बूढ़े है, कोई स्त्री हैं, कोई पुरुष हैं। ये सब जो नाना प्रकारके मनुष्य दिख रहे हैं, इन मनुष्योंमें एक सारकी चीज क्या है ? सदा रहने वाली चीज क्या है ? वह है मनुष्यपना, वह है इंसानियत। अच्छा बतलाओ कि क्या किसीने ऐसा मनुष्य देखा है, जो जन्मसे लेकर वृद्धावस्था तक एक रूप रहता है, वह मनुष्य किसीने देखा है ? देखनेमें कोई जवान आ रहा है, कोई बूढ़ा आ रहा है पर असलमें मनुष्य तो कोई भी आँखोंसे देखनेमें नहीं आ रहा है। मनुष्य तो ज्ञानसे देखनेमें आता है। ऐसी दृष्टि लगानेसे जो जन्मसे लेकर वृद्धावस्था तक रहा वह मनुष्य है। जो मनुष्य एक है वही बच्चा हुआ, वही बड़ा बना, वही जवान बना और वही बूढ़ा हुआ परंतु मनुष्य वही एक है। क्या उसे किसी ने देखा है, जो एक जन्मसे लेकर वृद्धावस्था तक एकरूप रहा हो। क्या उसे किसी ने देखा है। एक रूप रहता है हो ऐसा क्या दिखाई देता है ? कोई ब्राह्मण है, कोई क्षत्रिय है, कोई वैश्य है, कोई शूद्र है, कोई धनी है, कोई गरीब है। ये सब मनुष्य एक दृष्टिसे बराबर हैं। जैसे कहें कि एक मनुष्य ले आओ। वह बूढ़ा ले आवे तो कुछ नही कह सकता है कि सब एक है। तुम इसे क्यों लाये ? क्योंकि वह भी मनुष्य है। धनी या रंक ले आये तो भी नही कह सकते कि इसे क्यों ले

ले आए ? चाहे धनी हो चाहे गरीब हो सब एक समान हैं। मनुष्य मनुष्यकी अपेक्षा सब समान हैं। पर लौकिक प्रयोजन होने पर मनुष्य समान नहीं दीखते हैं। यद्यपि काम पड़ता है, व्यवहार होता है फिर भी किसी ने मनुष्यको समान नहीं देखा है। कोई शृङ्गार करता है, कोई ऐसा शृङ्गार करता है, कोई वैसा शृङ्गार करता है, ऐसे तो दीख रहे हैं पर मनुष्य नहीं दीख रहे हैं। सब मनुष्योंमें रहने वाला जो एक मनुष्यपना है वह सबमें एक रूप है। चाहे आजका पैदा हुआ बालक हो वह भी मनुष्य है। चाहे ५०, ६० वर्षका जवान हो वह भी मनुष्य है। मनुष्य सब एक है। इसी प्रकार ध्रुवतत्त्वकी दृष्टिसे सब जीवों को निगाह दौड़ाकर देखो, सब जीव किसी दृष्टिके एकसे हैं या नहीं। कोई कीड़ा है, कोई मकोड़ा है, कोई पेड़ है, कोई छातीसे सरकता है, कोई पंखोंसे उड़ता है, कोई शरीरसे ज्यादा बलका काम करता है। अरे यह सब जीव किसी दृष्टिसे एकसे बराबर हैं या नहीं ? वह तत्त्व सबको नजर नहीं आ सकता, अज्ञानीको नजर नहीं आ सकता है। ज्ञानीकी दृष्टि में आ सकता है। वह तत्त्व जिसकी दृष्टिसे सब जीव एक समान हों। जैसे हम हैं वैसे सब जीव हैं। इसका पता भी लग जाना सबसे बड़ा ज्ञान है। यही धर्मका पालन है। यही मोक्ष मार्गमें चलना है। यह सब है।

हम अपने ज्ञानके लिए, धर्मात्मा होनेके लिए बड़ा कष्ट सहते हैं, तप करते हैं, खाना पीना छोड़ते हैं, भक्ति करते हैं, पूजा करते हैं, सुबह नहाते हैं सब कुछ करते हैं।

मगर क्रोध, माया, लोभ इत्यादि कितने कम हुए, बताओ। अरे धर्मका पालन करने वालों, अपनेमें फर्क क्यों नहीं आया ? अधर्मोंमें याने विषयकषायोंमें तो यही परिस्थिति है। यह अधार्मिक जीवन क्यों है ? ज्यों का त्यों है। कर्मोंका श्रम करते बड़ा समय हो गया। धर्म नहीं किया था। अरे धर्म किया होता तो मोह, छल, अन्याय ये सारे कम हो जाते। धर्म नहीं किया, अब धर्म करना चाहते हो तो अब धर्मकी पाटी शुरू करना चाहिए। पाटी कैसी है ? संसारके समस्त जीवोंको एक समान नजरसे देखना। यह धर्मकी सीढ़ीकी पहली पाटी है। कुछ लोग कहते हैं कि यह बात तो कम समझमें आती है। हमने तो दस लक्षण पर्वके लिए बड़े बड़े प्रोग्राम बना रक्खे हैं। ऐसी पूजा करेंगे, ऐसे शास्त्र करेंगे, ऐसी बिजली लगवायेंगे, और दो साड़ी नई खरीदकर रख लेंगे, गहने भी मांग-कर रख लिए थे धर्म करनेके लिए। दुकानका हिसाब भी ठीक-ठीक लगा लिया था, सब कुछ धर्म करनेके लिए कर लिया था। हम पहले ऐसी पूजा करेंगे, दूसरी सिफ्टमें ऐसी पूजा करेंगे, तीसरी सिफ्टमें ऐसी पूजा करेंगे, इस प्रकारकी भारी भारी तैयारियाँ कर रक्खी थी। यहाँ तो यह कहा जा रहा है कि सब जीव जिस तत्वकी दृष्टिसे एक समान है उस तत्त्वको

देखो। यही धर्मकी पहली पाटी है। प्रयोग करके देखो। विषयमें, कषायोंमें फर्क जरूर आयेगा। चाहे मैं ५० वर्षसे ही धर्म लगावमें हूं और फर्क न आया हो। कितने विषय कषाय हों पर धर्मका अन्तरमें पालन होनेसे उन विषय कषायोंमें फर्क अवश्य आयेगा।

यह क्या कि सब प्राणी एक समान हैं, जैसे मां अपने बच्चोंके दुर्गुण नहीं देखती है, बच्चेको बच्चा ही देखती है, दुर्गुणरहित देखती है। इसी प्रकार ज्ञानी जीवको इन समस्त जीवोंके अवगुण नहीं नजर आते हैं। किन्तु एकस्वरूप नजर आता है, जिसकी दृष्टिमें सब जीव एक समान हैं। चाहे पेड़ हो, चाहे और कोई छोटा, बड़ा जीव हो सब एक समान हैं। सब चैतन्यस्वरूप, ज्ञानघन व आनन्दघन है। ये समस्त गुण समस्त प्राणियोंमें व्यक्त हैं और यह स्वरूप सब प्राणियोंमें सारभूत है। यह तत्त्व ज्ञानियोंको तो व्यक्त है और अज्ञानियोंको अव्यक्त है। अब उसी निगाहमें हम अपने आपमें भी चलें। मैं ज्ञानमात्र हूं, मैं अपने असली स्वरूपको देख रहा हूं, साफ, शुद्ध जो कुछ मैं हूं उसको लक्ष्यमें ले रहा हूं। वहां कोई अमीर भी नजर नहीं आता है, कोई रंक भी नहीं मालूम पड़ता है; कोई तनासा खड़ा हो ऐसा भी नही मालूम पड़ता है। नजर केवल आता है शुद्धचैतन्यस्वरूप, जहां मैं अन्य सबको भूल जाता हूं। ऐसा मैं यह ज्ञानमात्र हूं। जैसा कहते हैं ना कि जो गरजते हैं वह बरसते नहीं और जो बरसनहार हैं वे गरजते नहीं। इसी प्रकार जब मन कायकी चेष्टा है तो अनुभव नहीं और जब अनुभव है तो चेष्टाएं नहीं हैं। सत्य तो यह है कि मैं अपनेको सबसे निराला, ज्ञानमात्र देख लूं ऐसा यदि कर पाया तो मनुष्य होना सार्थक है, और यदि न कर पाया तो मनुष्य होना निरर्थक है। प्रेम कर लिया, अपना मान जाओ, दुःखी हो जाओ और कभी दुःखी और कभी सुखी, जीवका यह जीवन तो निरर्थक रहेगा और एक सबसे निराला केवल ज्ञानमात्र अपनेको निरख लो तो सब कुछ पा लिया। तीन लोकका सारा वैभव अहितकर है, असार है, क्लेशका कारण है। कोई सोचे कि मेरे पास खूब धन है तो खूब खाते हैं, उपकार भी करते हैं, इज्जत भी बढ़ती है, दश आदमी आते जाते हैं, दश आदमी पूछते हैं, सुख हुआ या नहीं। अरे सुख कैसे हुआ ? भीतर तो अहंकार वह तृष्णासे पिस कर मरे जा रहे हैं। देखने वाले बेचारे क्या जानें ? वह तो जानते हैं कि यह सुखी है, पर वह सुखी नहीं है। वह दस आदमियोंके बीच अपनी शक्ल सुखी सी बना लेता है। कोई नहीं जान पाता कि वह दुःखी है। वह भीतरसे अहंकार भरे हुए है। पर्याय, मोह और मूढ़ता इत्यादिकी चक्कीमें वह पिस पिस कर बर्बाद होता चला जा रहा है। जगत्‌के सब जीव दुःखी हैं, जगत्‌के सभी साधन दुःख हैं। धन है वह भी दुःखका कारण है, परिवार है, चार आदमियोंमें इज्जत है, वह भी सुखका कारण नहीं है। वह सब भी दुःखके कारण है

तो फिर सुखका कारण क्या है ? वह तो बतलावो । सुखका कारण धर्म है । और वह धर्म इसमें है कि जहाँ स्वरूपमें सब जीव एक समान हैं, इस बातको अपने लक्ष्यमें लिया इसका नाम है धर्म करना । अगर धर्म करना धनके हाथमें है तो गरीब बेचारे मोक्ष ही न जा सकें । अथवा जो साधु मोक्ष गए हैं उनका रास्ता ही बन्द हो जाय । धर्म है एक शुद्धनिगाह, धर्म है निज आत्मदृष्टि । परकी दृष्टिमें, परकी निगाहमें धर्म ही नहीं । समस्त प्राणियोंमें सार भूत चीज क्या है ? इस जीवन भावमें चैतन्यस्वरूप, ज्ञानशक्ति है, इस ज्ञानशक्तिको जिसने लक्ष्यमें लिया वह जीव ज्ञानी है, मोक्षमार्गी है, उसका जन्म सफल है । अपने आपको अधिक से अधिक ऐसा अनुभव करो कि मैं ज्ञानमात्र हूं, सबसे निराला हूं । कोई मेरी सहायता कर दे, ऐसा कोई नहीं है । कोई मेरी शरण हो जायगा ऐसा दुनियामें कोई नहीं है । मैं ही अगर भव्य हूं, पुण्यवान् हूं, योग्य उपादान वाला हूं, तो मैं ही शरण रहूंगा और दूसरे लोग भी मेरे सहारे बनेंगे । यदि अपने पल्लेमें कुछ नहीं है तो किसी भी घरानेमें पैदा हो, उसका सभी तिरस्कार कर देंगे । और यदि पल्ले कुछ है, पुण्य है, धर्म संस्कार है तो उसको सब करनेको तैयार हो जावेंगे । यह सब निज परिणाम वैभवके संबंधकी महिमा है, दूसरा कोई साथी नहीं है । अपनी आत्माके शुद्धस्वरूपका ज्ञान करो, शुद्धस्वरूपका ही विश्वास करो और उस शुद्धस्वरूप पर ही निगाह करो । सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान व सम्यक्चारित्रका पालन हो, तब हमारा भला होगा, उत्थान होगा । पर इस आत्मधर्मका पालन किए बिना इस अपने आपको विश्वास किए बिना, रुचि किए बिना मेरी गति नहीं होगी, मेरा उत्थान नहीं होगा । हम किसी भी प्राणीका यह विश्वास न करें कि मेरी रक्षा करने वाला अमुक है । अरे आपकी रक्षा करने वाला आपका धर्म है जिसके प्रसादसे ऐसा पावन अवसर बना, मनुष्य बना, अच्छे समागममें आया । अगर चींटी चींटा होता है, कीड़े मकोड़े होता तो क्या होता ? अरे हम ठीक हैं तो हमारा सब ठीक है और अगर हम ठीक नहीं हैं तो हमारा कोई ठिकाना नहीं है । धर्मकी पाटी यहाँसे शुरू होती है । सब जीवोंको एक समान जिस निगाहसे देखा जा सकता है उस निगाहको बनाओ । सब एक एक चीज हैं, सब एक एक पदार्थ हैं । जो दीखता है आँखसे वह न दीखे तो सच्चा ज्ञान है ।

देखो भैया जब बहिन बेटी घरसे ससुराल जाती है तो पिताका, भाईका भेंट करती हैं । भेंट करती भी किस तरह हैं कि छातीसे लगाकर, रोकर, प्रीति दिखाकर रोया करती हैं । अब बताओ जो आँखोंसे शकल, सूरत, रूप रंग दिखता है, क्या बाप व भाई के ज्ञानमें दिख रहा है ? नहीं । उस पिताके ज्ञानमें रंग नहीं दिखता है । बाप, भाईको तो बेटी बहिन ही दिखती है । ज्ञानीको भी जो दिख रहा है वह आकार कीड़े, मकोड़े, पेड़ इत्यादि उसे

नहीं दीखते हैं। केवल उसे ज्ञानस्वरूप, चैतन्यमात्र ही दिखता है। जिस तत्त्वकी दृष्टिमें सब जीव समान हैं वही स्वरूप मेरा है। जैसे पिता घरमें बच्चोंको एक समान देखता है, उनसे एक समान बर्ताव करता है। अगर एक बच्चा हठ करता है, जिद करता है, उस बच्चेको यह पिता नहीं रुचेगा, वह अपने इस पितासे द्वेष करेगा, वह उसे महान् नहीं मान सकेगा। इसी तरह ज्ञानी जीव सबको एक समान निरखता है पर इन जीवोंमें से कभी अपनी कल्पना करके कोई जीव ज्ञानीको बुरा देखता है, उपद्रव करता है, कहीं तो अज्ञानी ज्ञानीको आग लगा देता है, शरीर छील देता है, कष्ट देता है, जान ले लेता है। तिस पर भी ज्ञानी जीव की दृष्टिमें सब जीव एक समान हैं। जिस जीवत्वकी दृष्टिमें सब जीव एक समान है वह जीवत्व ही नजर आवे तो यह धर्मकी पहिली सीढ़ी है। ऐसा इस ज्ञानस्वरूप अपनेमें चिर-काल तक ठहरते हुए अपनेमें अपने आप सुखी होऊं।

अपनी दृष्टिको बन्द करके और भीतरसे भीतर ले जाकर जहां अपने शरीरका भी पता नहीं है, यह मैं केवल ज्योतिमात्र, ज्ञानमात्र उजेला स्वरूप हूं, जिसको कोई पकड़ नहीं सकता है—ऐसा मैं ज्ञानमात्र हूं। ऐसी निगाह रखकर अपने आपमें मैं निर्विकल्प ज्ञानका अनुभव करूं इसीमें आत्म-अनुभव है। ऐसा करके ही इस जीवका गुजारा चलेगा, भला होगा, पूरा पड़ेगा। बाकी जितने काम हैं उनको हटाना पड़ेगा, सबसे निवृत्ति जरूर लेना पड़ेगा। जो वर्तमानकी परिस्थिति है उस परिस्थितिमें ही अपना धर्म करे, अपनेमें निर्विकल्प होनेकी व्यवस्था बनाले। और अगर कोई सोचे कि धर्मका पालन करेंगे दो तीन वर्ष बादमें पहिले दुकानकी परिस्थिति बना लें, फिर धर्म कर लेंगे। धर्मका पालन करेंगे तो वह नहीं हो सकता है क्योंकि जो वर्तमानमें शिथिलता है, वर्तमानमें प्रमाद है वह क्या धर्मका कारण बनेगा? प्रमाद, प्रमादका कारण बनेगा। शिथिलता, शिथिलताका कारण बनेगी? इसलिए कैसी भी स्थिति हो, गरीबी हो, कठिन परिस्थिति हो तो भी अपनेको ही निरखनेके काममें प्रमाद न करो। जैसी शक्ति हो उस माफिक धर्मका पालन करो। पुण्यका उदय है तब तो जैन धर्मका प्रसाद मिला, तब तो आत्माकी बात मिली। जो बाहरी बात है वह तो पर है। जो इस आत्मस्वरूपको मानता है वही धनी है। जो परपदार्थोंमें अपना बड़प्पन मानता है वह गरीब है। इस मनुष्यपर्यायमें मिले हुए क्षणिक समागमसे बड़प्पनका निर्णय नहीं। गरीब तो वह है जो परमें रम गया और परमें ही अपना बड़प्पन समझने लगा। सम्यग्दृष्टि सब अमीर है और मिथ्यादृष्टि सब गरीब हैं। क्योंकि मिथ्यादृष्टिका तो रास्ता बन्द हो गया। अब आगे बढ़नेकी गुन्जायश नहीं है। पर ज्ञानी जीवका आगे सद्गतिका रास्ता खुला

है। सो मैं अपनी आत्मामें भी अपना ज्ञानस्वरूप पहिचानूं, यही इस आत्मामें सारतत्त्व है। ऐसी आत्मामें ठहरते हुए मैं अपने आपमें स्वयं सुखी होऊं। सुख बाहर खोजना व्यर्थ है बाहरमें सुखके खोज करनेके परिणाममें हैरानी भरी हुई है इससे तो क्लेश ही होता है। अपनेको स्वतः स्वयं आनन्दघन देखूं अपने आपका जो भी परिणमन हो रहा है चाहे वह प्रदेशपर्याय हो, चाहे गुणपर्याय हो वह सब क्षणिक हैं। उस उस पर आत्मस्वरूपकी श्रद्धा न करके जो उन सब पर्यायोंका आधार ध्रुव सार तत्त्व है, चित्स्वभाव भाव है उसही निज सहज परमात्मतत्त्वमें उपयोग द्वारा ठहरूं और स्वयं स्वयंमें चैतन्य चमत्कारमात्र परिणमता हुआ सहज आनन्दमग्न होऊं।

सद्दृष्टिज्ञानचारित्रैकत्वं मुक्तिरदः सुखम्।
तच्च ज्ञानमयं तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-४६॥

यह आत्मा एक भावात्मक पदार्थ है। यह भावोंसे ही रचा हुआ पदार्थ है। भावोंके अतिरिक्त इसमें अन्य कुछ नहीं मिलता। यह आकाशके समान अमूर्त है। रूप, रस, गंध स्पर्शसे रहित है। यह तो एकभावात्मक चीज है, चैतन्यस्वरूप वस्तु है, सर्वोत्कृष्ट विलक्षण, पदार्थ है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र, श्रद्धा, आनन्द इत्यादि भावमय एक चीज है। यह आत्मा ऐसी विलक्षण वस्तु है कि जिसमें ज्ञान होता है, विश्वासका माद्दा है, कहीं न कहीं ज्ञानको यह लगाये रहता है और आनन्द या कल्पनाएं या सुख दुःख विकल्पोंको करता है। ऐसा यह एकदम सबसे छुट्टा पदार्थ है। किसी भी अन्य वस्तुसे जिसका कुछ लगाव नहीं है, अन्य पदार्थोंसे इसका अत्यंताभाव है। लेकिन अज्ञानी जीव अपने इस स्वरूपको न देखकर अपना सारा पता भूलकर बाहरमें देखता है, बाहरमें ही उसको सार नजर आता है और इसी कारण यह दुःखी होता रहता है। बाहर पदार्थोंमें इसने इच्छाएं बनायीं, मेरे पास अमुक चीज रहे, अमुक चीज इस प्रकारसे परिणम जावे, नाना प्रकारकी कल्पनायें बनी परंतु ऐसा तो कभी नहीं होगा कि कोई परपदार्थ किसी परके आधीन बन जाय। कोई भी परपदार्थ इस आत्माके आधीन तो बनते नहीं, इच्छा बराबर है। इच्छाका काम होता नहीं, बस यही तो दुनियामें दुःखका साधन लगा हुआ है। इच्छाएं करते हैं, पर इच्छाओंसे काम नहीं होता है। आनन्द तो तब आता कि इच्छा करें और इच्छा करनेसे तुरन्त काम हो जाये या कोई इच्छा ही न हो। अज्ञानी तो इच्छाके काममें लगा रहता है और ज्ञानी पुरुष इच्छाके अभाव करनेमें लगा रहता है। ज्ञानी अन्तरमें दृष्टि करके देखता है कि मैं तो यह ज्ञानमात्र पदार्थ हूं। जानन जिसका स्वभाव है, जानना ही जिसका स्वरूप है, जानना ही जिसका सर्वस्व है ऐसा ज्ञानमय एकवस्तु हूं। इतना ही विश्वास हो, इतना ही ज्ञान हो और इसमें ही लग जाओ, रम

जाओ। इन तीनोंमें एकता आजाय, इसीके मायने मुक्ति है। कहते हैं कि धर्ममें लगो। धर्ममें कहाँ कहाँ लगें? मंदिरमें लग जाएं कि जंगलमें लग जाएं। कहाँ लग जाएँ धर्म है? तो धर्म उस आत्माके स्वरूपमें ही है। धर्म साक्षात् यह आत्मा ही है। इस आत्माको श्रद्धासे अपने स्वरूपमें देखो और देखते रहो। यही धर्मका पालन है। यह आत्मा मैं ज्ञानमात्र हूं, ऐसा ही विश्वास हो, ऐसा ही उपयोग बनें और ऐसा ही उपयोग बनाकर स्थिर हो जाओ। इन तीनों बातोंकी जहाँ परिपूर्णता हो जाती है इसीके मायने मुक्ति है। धर्मकी साक्षात् मूर्ति यह सहज ज्ञानमय आत्मा है। इस ही स्वरूपके श्रद्धान ज्ञान आचरणसे आत्माको सुख होगा है। यह बात जब तक घटित नहीं होती है तब तक इसका उपाय करना चाहिए। इसका उपाय क्या है? सबसे पहला उपाय वैसे तो सम्यक्ज्ञान करना ही बताया, किन्तु व्यवहारिक उपाय सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरुकी श्रद्धा करना है। किसी भी कामको करना हो तो उसमें यह त्रितयकी पद्धति आती ही है। जैसे संगीत सीखना है तो संगीतमें जो अत्यंत निपुण है, इस लोकमें सर्वथा प्रसिद्ध है, परिपूर्ण है, ऐसे व्यक्तिकी ओर निगाह जरूर रहती है कि मुझे भी ऐसा बनना है, ऐसा संगीतज्ञ बनना है। लेकिन वह एक आदमी जो उसमें पूर्ण निपुण है, वह हमें मिल जाय, पहिले तो यही बात कठिन है। शायद कहीं मिल भी जावेगा अर्थात् कभी दर्शन भी हो जायेगा तो वह मेरे साथ दिमाग लगावेगा, ऐसा भी नहीं है। इस कारण अपने गाँवमें किसी उस्तादको देखें तो कहते हैं कि वह सिखा दे। यहाँ तक देव और गुरुकी दो बात हुई। तीसरी बात सरगमके शब्दोंका उसे सहारा लेना है। यही संगीतका शास्त्र हुआ। इस तरह संगीतके देव, संगीतके शास्त्र और संगीतके गुरु हुए। किसी को रसोई सीखना है तो वह किसी निपुणका नाम जो जानता है उसे दिमागमें लेगा जो साग, दाल, भात आदि सब कुछ बहुत ही उत्तम बनाना जानता हो, यह तो हुआ रसोईविषयक देव, अब यह निपुण तो मिलना कठिन है। अगर ऐसा आदमी उसे मिल भी गया तो उसे अच्छी तरहसे सिखा दे यह मुश्किल है। तब क्या करना होता है कि जो सहज घरमें मिल जावे ऐसी कोई बड़ी हो जैसे बुवा हुई, जीजी हुई, जो भी हुए उनसे वह कहता है कि सिखा दो। जिसके प्रति श्रद्धा हो कि बढ़िया यह भी बना लेता है तो उससे ही वह बनाना सीखेगा। फिर सिखाने वाला कुछ शब्द तो बोलता ही है। जैसे यदि उसे चावल बनाना है तो वह बतावेगा कि १ घंटा पहले चावल भिगो दो, फिर जब बटलोहीमें पानीका तेज उबाल आ जाय तो चावल डाल दो। और ऐसे ढक्कनसे बन्द कर दो जिससे भाप न निकल सके। पानी उतना रखो जितनेमें कि चावल समा जावें। शब्द तो बोलना ही पड़ता है। वही शब्द हो जाते हैं शास्त्र, देव, गुरु। शास्त्रकी पद्धति हर बातमें चलती है। तब मुक्तिका पाना

अगर हमें सीखना है, मोक्ष जानेका काम हमें करना है तो उसके लिए भी हमें धर्मके देव, शास्त्र, गुरुकी श्रद्धा रखना है। जो मुक्त हो चुके हैं, जो केवलज्ञानी हैं, अनंत आनन्दमयी हैं, ऐसे परम पवित्र भगवानकी श्रद्धा कर लो कि मैं ऐसा बन सकता हूँ। यह तो हुई देवकी श्रद्धा। मगर यह देव रोज हमें कहाँ मिलेगा और कहीं मिलेगा भी तो वह हमारे लिए दिमाग लगायेगा क्या, वह हमसे बोलेगा कैसे, वह हमारी ओर झुकेगा कैसे ? देव तो न संगी हैं, न असंगी हैं, अनुभय हैं, कषायरहित हैं। वे तो अपने आनन्दरसमें मग्न हैं। उनकी तो श्रद्धा ही श्रद्धा काम करेगी। अगर हमारे गांवमें कोई उस मुद्राके सत्संगी हमें गुरु मिल जाय तो उसे भी ढूंढना चाहिए। ऐसा गुरु जो आरंभपरिग्रहसे सर्वथा रहित है, जो ज्ञान, ध्यान, तपस्यामें ही निरत रहता है। ऐसा यदि होगा तो उसके सत्संगसे, उसके वचनोंसे हम कुछ धर्मकी बात पा सकेंगे। यह धर्मोपदेश जो हमारेमें गुरुवोंके द्वारा आया वह शास्त्र है। इससे देव, शास्त्र, गुरुकी श्रद्धा सर्वप्रथम व्यवहारमें आती है। मंदिरमें भगवानकी मूर्तिकी पूजा करते हैं। मूर्तिकी मुद्रा कैसी है ? कषायरहित, कहीं आने जानेका काम नहीं, इससे पद्मासन से बैठे हैं, कुछ करनेका काम नहीं, क्योंकि ज्ञाता द्रष्टा हैं, सो हाथपर हाथ लगाये बैठे हैं। कहीं कुछ देखनेका काम नहीं। इस कारण नासाग्रदृष्टिसे बैठे हैं। जिनका कोई शृंगार नहीं, जिनके पास परिग्रह नहीं, केवल वही वही हैं—ऐसी उनकी मूर्ति है, जिसको देखकर हम यह भाव कर सकते हैं कि जगत्में अगर कोई सार काम है तो यही सार काम है कि सब माया-जालको त्यागकर, परिश्रमोंसे दूर होकर अपने आपमें रमो। यही मोक्षमार्ग है, इसमें ही शान्ति मिलेगी। ऐसा उपदेश जिनकी मुद्रासे मिला है उनमें हम भगवानकी स्थापना करते हैं और ज्ञानसे हमें देखना है परमात्माको, जो शिवमय है। हमें उस परमात्मामें दृष्टि ले जाना है जो अनंत ज्ञानमय है, अपने आपमें परिपूर्ण विकसित है। ऐसी श्रद्धा करना यह व्यवहार में प्रथम आवश्यक है। जिसने अपने आपको निरख लिया है ऐसा मनुष्य ही भगवानकी सच्ची श्रद्धा कर सकता है। जिसने भगवानकी सच्ची श्रद्धा कर ली, ऐसे मनुष्यमें वह बल है कि जब चाहे वह उसकी ओर झुक जाय और अपने आनन्द रसका पान कर ले।

हे आत्मन्! तू स्वयं बना बनाया प्रभु है। तेरी आत्मामें भगवान बसा है। तेरी आत्मा भगवानसे न्यारी नहीं है। भगवान इन आत्माओंमें वास करता है। यहाँ तक भी जहाँ भेद नहीं है यही आत्मा साक्षात् भगवान है, क्योंकि यह आत्मा ज्ञानघन है। भगवान का स्वरूप भी ज्ञानघन है। उस अपने स्वरूपको पहिचान ले तो संसारके सारे उपद्रव समाप्त हो जाएँ और यदि भगवानको, जो अपना है नहीं निरख पाता तो ८४ लाख योनियोंमें चक्कर काटना, यही बराबर जारी रहा करेगा। सबसे बड़ा काम है अपने आपकी सही

जानकारी कर लेना । यह नहीं कर पाया तो कुछ नहीं रहनेका है, यह आत्मा तो केवल भावात्मक वस्तु है, भावमय है, भाव ही लेकर आयगा, भाव ही लेकर बना हुआ है, भाव ही हमारा सर्वस्व है । सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रकी एकता ही मुक्ति है और यह एकत्व ही वास्तविक सुख है ।

धन्य है वह अन्तरात्मा जिसने सत्यका आग्रह किया है, असत्यमें असहयोग किया है । सत्यका असहयोग करना ही सत्य आन्दोलन है । यह सब दिखने वाला ठाट-बाट असत्य है । होकर भी नहीं है, न होकर भी है । यह सारभूत चीज नहीं है, यह परमार्थ चीज नहीं है । जैसे नींदमें स्वप्न आनेमें जो कुछ दिखता है वह सच लगता है, इसी तरह मोहकी कल्पनाएँ होनेपर जो मनमें आता है, जिसका संबंध अच्छा लगता है वह सब उसे सत्य दिखता है । पर सत्य है कुछ नहीं । सारा जीवनभर गुजर जानेके बाद अन्तमें वृद्धावस्थामें अक्ल ठिकाने आती है कि सारा जीवन गुजर गया, मैंने अपना हित कुछ नहीं किया । जिनके लिए विकल्प किया, दुर्भावविभाव किया वे लोग भी नहीं रहे । उनका कुछ पता नहीं, और जो बचे हैं वे भी छोड़कर चले जा रहे है । यह शरीर भी यहाँ नहीं रह जायगा, हम स्वयं यहाँ नहीं रह जायेंगे । यह मैं केवल आत्मा, मैं अपना कुछ नहीं कर सका । जो बुद्धि थकनेके बाद, परेशान हो चुकनेके बाद, हर तरह शिथिल हो जानेके बाद आती है । यदि हाथ पैर चलते समय, दुरुस्त रहते समय यह बुद्धि आ जाय और अपनी ममता बाहर करके अपने आत्माका दर्शन करनेका प्रयत्न कर ले तो यह बड़ी सफलताकी बात है । और इतना नहीं कर सके तो कुछ नही है । कुछ तो कभी भी नही है, केवल कल्पना कर लो । पदार्थ तो खुदकी अपनी सत्ताके जुम्मे है ।

एक साहबके एक चपरासी नोकर था । साहबने सोचा कि इस नोकरके नामसे १० रु० की लाटरी लगा दें । अगर इसका इनाम आ जायगा तो दो लाख रुपया दे देंगे । अपने लिए तो बहुत लगाया, हजारों रुपये बरबाद कर दिए, पर कुछ न आया । सुयोगसे उसी चपरासीके नाम लाटरी खुल गई । अब वह साहब सोचता है कि इसको अगर दो लाख रुपया यों ही दे देंगे तो यह फूला नही समायेगा और इसका हार्ट फेल भी हो सकता है । सो पहिले उसको बैंतोंसे मारा और फिर कहा कि देखो तुम्हारे दो लाख रुपये आये हैं । वह हार्ट फेलसे तो बच गया । अब वह सोचता है कि रुपया तो रख नहीं सकता, कोई काम तो करना जरूर है । तब उसने कहा कि ये रुपये हमारे किस काममें लगेंगे ? आप ही किसी काममें लगा लें । उन साहबने मैनेजर बनकर कारोबार खोल दिया । अब उसका काम चलने लगा । कल्पना ही तो हैं कि उसके पास ये चीजें हैं और यह काम कर रहा है । खैर और आगे चलकर देखो

तो लाखों और अरबोंकी सम्पदा है तो क्या है ? यह मनुष्य तो यों का यों ही है । वे तो पुद्गलकी चीजें हैं उनसे इस आत्माकी सिद्धि नहीं है । आत्माकी सिद्धि बस आत्माके ज्ञान में की जाय तो समझो कि सब कुछ पा लिया । इसमें ही अनुपम आनन्द आयेगा । बस अपने आपकी श्रद्धा होनेका नाम सम्यक्ज्ञान है और इस स्वरूपकी ओर झुके रहना, इसमें ही आनन्दका अनुभव करना, यह ही प्रिय लगना, इसकी ही भावना बनाते रहना, इसका ही नाम सम्यक्चारित्र है । इन तीनोंकी एकताका नाम मुक्ति है । जो कुछ अच्छा लग रहा है, लड़के हैं, लड़कियाँ हैं, यह कुटुम्ब है, यह परिवार है, बड़े अच्छे हैं, बड़े भले हैं, जो कुछ भी दिख रहा है उसका विकल्प होना दुर्गतिमें जानेका रास्ता है, उपाय है, धोखा है, आत्माके पतनकी चीज है । यह सब कुछ तो छूटेगा ही, मगर इन सबको छोड़ दें, अपने उपयोगको बदल लें तो हम भी सुखी हो जायें । मगर जैसे जुवारियोंका दल है, वहां दिमाग सही नहीं रह सकता है । इसी तरह जहाँ मोहियोंका दल है, वहाँ संसारमें इस झुंडसे निकल जाना सरल नहीं हो सकता है । पर कोई प्राणी जिसने अपना ज्ञानबल बढ़ाया, जिसने अपने आनन्द का स्वाद चख लिया ऐसे ही आत्मा इन सबसे विरत होकर अपने आपमे रम सकता है । ऐसा जिसका भाव है वही हमारा गुरु है । ऐसा भाव जिसका पूर्ण बनकर स्वभाव पूर्ण विकसित हो गया वह ही हमारा देव है और जो ऐसा बना रहा वह ही हमारा गुरु है । यह भाव जब हम करेंगे तभी सोचेंगे कि यह देव है, यह गुरु है । तो वास्तवमें मेरा भाव ही गुरु है और वही मेरा रक्षक है । और ज्ञानमय आत्मा ही अपना सर्वस्व है । अतः मैं स्वयंमें रुचि करूं और अपने आप अपनेमें स्वयं सुखी होऊं ।

तत्त्वतो ज्ञानमात्रोऽहं क्व विकल्पावकाशता ।
ततोऽहं निर्विकल्पः सन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-४७॥

मैं क्या हूं, कैसा हूं, कितना हूं, इस ओर दृष्टि करें तो यह ज्ञानमात्र मालूम होता है । जो जान लिया, जो जाननेमें आ गया, जो जानन बन गया । इसकी शक्तिरूप जो ज्ञानशक्ति है उतना ही मैं हूं । इससे आगे इसमें कुछ नहीं है । इसमें कहीं पानी नहीं भरा है, जो कोई ढेला मार दे तो इसमें छींटे उछल पड़ें । इसमें कहीं आग नहीं जल रही कि लकड़ी घुसेड़ दें तो जल जायगी । यहाँ रूप, रस, स्पर्शका नाम नहीं है । यह तो केवल ज्ञानभाव शक्ति है, ज्ञानानन्दभाव है, उतना ही मैं हूं । क्या मैं हवासे पतला हूं ? अरे हवासे तो मैं कितने ही गुना पतला हूं । मैं तो आकाशकी तरह अमूर्त हूं जिसमें किसी मूर्तिका नाम नहीं है । ऐसा मैं केवल ज्ञानमात्र वस्तु हूं । बस अधिक बाहर न जाओ और यही देखो । जानने का ही नाम आत्मा है । ऐसी इस ज्ञानमात्र मुझ आत्मामें विपत्तियां कहां हैं, विपत्तियां कहां

से छूटेंगी ? यह तो मैं ज्ञानमात्र ही हूँ, वियोग कहांसे होगा ? संयोग कहांसे होगा ? यह तो मैं ज्ञानमात्र हूं। लोग कहते हैं कि मुझे बड़ी तकलीफ है ? दादी गुजर गई, दादा गुजर गए, माँ गुजर गई। मुझे बड़ी तकलीफ होती है। अरे तू अपनेको समझता है कि तू क्या है ? तू तो ज्ञानमात्र है, जाननस्वरूप है, इसमें कहां संयोग है, इसमें कहां वियोग है ? कहीं कुछ लगा हुआ है क्या ? मैंने इस कामको कर लिया तो इसमें फंस गया। इतना हमसे खर्च हो गया, बड़ी तकलीफ है। अरे तू आत्मा तो ज्ञानमय है। केवल तूने उल्टी सीधी कल्पना बना लिया है, इसीसे दुःख होते हैं और यदि सीधा सच्चा भाव बना लेता तो सुखी होता। केवल तेरे जानन पर ही सब कुछ निर्भर है। इस सारे संसारवृक्षमें यह जगत्के जन्म मरण अथवा अपने आपमें आनन्दका पाना, सारी बातें तेरी जाननेकी कलापर निर्भर हैं। इससे आगे तेरा कुछ करतब नहीं है। ऐसा प्रतिभासस्वरूप ज्ञान, ज्ञानमें बैठ जाए तो यह सारा अमृत है। यह सर्वोत्कृष्ट है। और तो चीजें सब मिट जावेंगी, नष्ट हो जावेंगी, किसीका भरोसा नहीं। केवल यह ज्ञान यदि मेरे ज्ञानमें आ गया तो मैं अन्तरात्मा हूं। यही ज्ञान है, यही मोक्षमार्ग है, यही मुक्तिका उपाय है। किसी भी पदार्थमें ऐसी शक्ति नहीं है कि वह मुझे मोक्षमार्गमें लगा दे। सब कुछ मेरे ज्ञानकी कलापर निर्भर है। किसी भी पदार्थमें ऐसी शक्ति नहीं है कि वह मेरे मोक्षको रोक ले, यदि अपने आपमें इस ज्ञानस्वरूपका ज्ञान आता हो। जो अपनेको ज्ञानस्वरूपके अलावा और और किन्हीं रूपोंमें मानता है अथवा मेरा धन है, मेरा घर है, मेरा कुटुम्ब है, मेरा परिवार है, मेरे अच्छे मित्र हैं, मेरा अच्छा रुतबा है, कुछ भी माने, बस वही गरीब है। अन्य कोई इस दुनियामें गरीब नहीं है। अरे जो अपने सही स्वरूपको समझ ले कि यह तो मैं केवल ज्ञानमात्र हूं, जो जानन चीज है, जो ज्ञानभाव है, वही मैं हूं, इसके अतिरिक्त मुझमें कुछ नहीं है—ऐसा जिनको स्पष्ट दिख जाय, अपने सच्चे विश्वासमें आ जाय, वह अमीर है और इन अमीरोंमें सिरताज है। वह सिद्ध भगवान हैं जिनकी हम उपासना करते हैं। खुदकी चीज खुदमें पूरे रूपसे रहे, दूसरेकी चीज मुझमें रंच भी न रहे, यह सबसे बड़ी भारी पवित्रता है। जो मेरी चीज है वह मेरेमें परिपूर्ण रहे, जो मेरी नहीं है वह रंच भी मेरेमें परिपूर्ण न रहे, जो मेरी नहीं है वह रंच भी मेरेमें न आवे। इसीको पवित्रता कहते हैं।

पवित्र दूध कैसे कहलावे कि जो दूधका स्वत्व हो वह उसमें पूरा पूरा रहे और बाहरी कोई चीज दूधमें रंच भी न आवे। दूधका जो निजी स्वत्व है वह मशीनसे बाहर निकाल लिया जावे, केवल सपरेटा रह जावे तो वह दूध अच्छा है क्या ? पवित्र है क्या ? दूधमें बाहरी चीजें डाल दी जावें, पानी या छेरीका दूध डाल दिया जावे तो क्या वह दूध

पवित्र है ? नहीं। दूधका स्वत्व दूधमें पूरा रहे और कोई चीज दूधमें न आवे तो इसको उत्कृष्ट दूध कहते हैं। इसी तरह आत्माकी निजी बात आत्मामें पूरी रहे और जो आत्माकी निजी बातें नहीं हैं वे आत्मामें रंच भी न रहें, इसीको परमात्मा कहते हैं। हमारा अपना हममें कुछ तो है। चाहे पूरा न विकसित हो मगर कुछ तो है। मेरी आत्मासे बाहरकी जो बातें हैं वे बहुतसी हममें नहीं हैं, कुछ तो हैं। जैसे बहुतसी बाहरी बातें हममें नहीं हैं, इसी तरह जो हैं उन्हें भी निकालकर फेंक दें और थोड़ा हम विकसित हैं तो जरा और बढ़कर हम विकसित हो जावें। यही भगवानका स्वरूप है। अपने आपके यथार्थस्वरूपमें आ जाना सबसे दुर्लभ धन है।

धन कन कंचन, राज सुख, सबहि सुलभ कर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान ॥

आज देवतावोंके नाममें, धर्मके नाममें, परपदार्थोंमें अपनेको बड़ा विवाद है। कोई कहता है कि भगवानका स्वरूप यों है, कोई कहता है कि भगवानका स्वरूप यों है, कोई कहता है कि दुनिया ऐसी है, कोई कहता है कि दुनिया इस प्रकारकी है। जुदे जुदे शास्त्र है, जुदी जुदी उनकी कथनी है, जुदी जुदी उनकी पद्धतियां हैं। यदि तू कल्याणार्थी है तो उनके झगड़ोंमें न पड़। तू तो समझ ले कि तू यथार्थमें है क्या ? तू अपनी यथार्थ बातें समझना नहीं चाहता, बाहरमें मन लगाता है। इसीसे धर्मके नाममें, सम्प्रदायके नाममें विवाद होता है, झगड़े होते हैं, मन मोटाव हो जाता है। अरे इन बातोंके झमेलोंमें तू मत पड़। तू सबको छोड़कर अपने आपका निर्णय तो कर ले। तू केवल अपने आपका ही निर्णय कर लेगा तो सभी निर्णय आ जायेंगे क्या होता है भगवान्, धर्म क्या कहलाता है, यह भी स्पष्ट हो जायगा और यदि अपना निर्णय नहीं कर सका तो कुछ भी नहीं वश चलेगा, कुछ भी निर्णय न होगा, विवादमें पड़ा रहेगा, विसम्वादमें बढ़ जावेगा, लोभ जरा जरासी बातोंमें बढ़ेंगे, शांति कहीं ढूंढ़े भी न मिलेगी। तू अपने आपका ऐसा निर्णय करके तो समझ ले कि मैं एक ज्ञानमात्र पदार्थ हूं। इसके आगे मेरी कोई शक्ल सूरत नहीं, रंग नहीं, आकार नहीं, ढांचा नहीं। मैं केवल ज्ञानमात्र हूं, ऐसा ज्ञानमात्र स्वरूपकी हां तो कर कि मैं यह हूं। यह पक्का समझ। फिर चरित्र मोहके उदयमें भी अन्तरमें कोई झंझट नहीं आयेगा और यदि झंझट पड़ भी जायेगा तो कोई परेशानी नहीं आयेगी।

"होता स्वयं जगत परिणाम" पड़ोसका परिणमन है, जगत्का कुछ होना है, समाज का परिणमन है वह सब वहीं का वहीं है। यह मैं ज्ञानमात्र आत्मा किसी भी परपदार्थका क्या काम करता हूं। इसका तो जाननेका ही काम है। जानता रहे और यह बिगड़ जाय

तो इच्छा कर लेवे, चाह कर लेवे, विकल्प कर लेवे, इष्ट मान लेवे, सो ऐसी नाना कल्पनायें भी कर ले तो वह कल्पनाओंसे अधिक कुछ नहीं कर सकता है। इस आत्मामें दूसरे पदार्थ का प्रवेश नहीं है, दाखिला नहीं है, अधिकार नहीं है, ऐसा यह मैं शुद्ध केवल ज्ञायकस्वभाव मय हूं। यहा कुछ अपना नहीं है। तू अपने भ्रमको छोड़ और अपने ज्ञायक स्वरूपको देख, तू तू ही है। तू अपनेमें जगत्के सारे पदार्थोंका निषेध कर। तू अपने को ऐसा जान कि मेरे परिवार नहीं हैं, मेरे कुटुम्ब नहीं है, मेरेमें जगत्की कोई भी चीज नहीं है, किसी भी चीज का प्रवेश मेरेमें नहीं है। मैं केवल ज्ञानमात्र हूं, ऐसा तू अपने आपको अच्छी प्रकारसे निर्णय कर ले। शायद यह संकोच हो कि घर वाले यह समझेंगे कि घरको नहीं समझ रहे हैं, यह मेरेको नहीं मान रहे हैं। अरे हम मानते हैं कि तू नहीं समझ सका, तू नहीं मान सका ऐसा समझ लेंगे। पर ये मानते हैं, ऐसा भी वे क्या जानते हैं? अरे तू तो अपने यथार्थज्ञान को तो कर। ऐसा ज्ञान जो अपने ज्ञानमें रख लेता है वह ज्ञानी पुरुष कोई अनुचित व्यवहार नही कर सकता है। फिर उस ज्ञानीके घर वाले लोग क्या बुरा मानेंगे? ज्ञानकी महिमा तो अलौकिक है। परमार्थसे तो मैं ज्ञानमात्र हूं। यहां विकल्पोंका वास नहीं, आत्मामें कोई झंझट नही, यदि आत्माको अपने ज्ञानमें रक्खो तो। सोते हुएमें स्वप्न आता है तो वहां सारे झंझट हैं। और यदि जग जाए' तो सारे झंझट दूर हैं। अपने आपके यथार्थस्वरूपको ज्ञान में न लिया, मोहके विकल्पोंमें ही रहे तो उसके लिए सारे झंझट हैं।

जैसे कोई पुरुष मार्गमें कहीं बैठा है। पासमें कुंवा है। आने जाने वाले मुसाफिर कोई मोटरसे आ रहा है, कोई तांगेसे आ रहा है, कोई किसी चीजसे आ रहा है। कोई मोटरसे आने वाला मुसाफिर पानी कुवें पर पीने लगता है। खड़ी हुई मोटरको देखकर वह बेवकूफ समझ लेता है कि यह मेरी मोटर है। जब वह पानी पीकर मोटरसे चला जाता है तब वह मोटरको न देखकर रोने लगता है कि हाय मेरी मोटर चली चली गयी। इसी प्रकार इस संसारमें भटकते हुए एक मार्गमें हम आकर बैठ गए हैं, अब इसी जगह प्रयोजन वश १०, ५ आदमी आते हैं; मोटर, बग्घी, हाथी, घोड़े आते हैं, यह बेवकूफ मान लेता है कि यह मेरे हैं यह मेरे हैं, यह मानना ही बुरा है। तो इसका भिन्न-भिन्न रास्ता है, सब जुदा जुदा, पर मैंने मान लिया है कि यह मेरे हैं, यह मेरे दादा हैं, यह मेरी दादी है, यह मेरे बाबा हैं। अरे यह सब चले जावेंगे, दादा, दादी तथा बाबाका यहां कोई भरोसा नहीं है। मैंने इनको मनमें बसा लिया कि यह मेरे हैं। जिन्होंने इन सबको अपने मनमें बसा लिया है कि यह मेरे हैं उनको दुःख होता है। वे रोते हैं, हाय मिट गया, रास्तेमें बैठे हुए देखो प्राणी यों रोते हैं। लोग कहेंगे कि यह पागल है। जैसे वह रोता था

कि हाय मेरी मोटर चली गई। रोता है तो रो। हाय यह गया, यह घट गया, अमुक हानि हो गई, हाय नुक्सान हो गया, यह चला गया। इस प्रकारसे उसे देखकर विवेकी लोग तो पागल कहेंगे। भ्रमसे यह मोही रोता है तो रोओ। इसका दुःख तो अन्य कोई मेट नहीं सकता। ज्ञानी पुरुष ही यह समझ पाते है कि यह पागल हो रहा है। रोता है तो रो, रोने से तो कुछ मिलेगा है नहीं। दुःखी होनेसे तो कुछ आयेगा हो नहीं। अरे भाई अपने सही स्वरूपको तो देख, तू है क्या? यदि अपने आपको नहीं देखेगा तो करेगा क्या? तू शांति कैसे पायेगा? तू अपने आपको समझ ले कि मैं ज्ञानमात्र हूं। इसमें उपद्रवोंका अवकाश नहीं। झंझट और विकल्पोंकी निगाह नहीं। यह तो केवल जाननहार वस्तु है सो निरन्तर तू ज्ञानसे ही काम कर, मैं निर्विकल्प ज्ञायकस्वभावमात्र हूं। इसलिए मैं निर्विकल्प होता हूं।

अब क्या हूं, अरे मैंने जान लिया कि यह मैं ज्ञानमात्र वस्तु हूं। इसमें उपाधियोंका प्रवेश नहीं, झंझट इसे छू ही नहीं सकता। मुझे तो झंझटोंसे रहित तथा निर्विकल्प होकर सारे परपदार्थोंकी आशाओंको, तृष्णाओंको छोड़ते हुए केवल ज्ञानस्वरूप अपनेको निरखना है। और फिर अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी हो जाना है। सुखी होनेका दूसरा उपाय मत खोजो, वह सब धोखा है, उसमें सुख नहीं। कोई व्यापारका काम करते हैं वहां जब सुख नहीं मालूम देता है तो उसको भी छोड़ करके सर्विस करते हैं, कहते हैं अब यों करेंगे, अब यों करेंगे, कितना भी कुछ कर ले और ज्ञानको छोड़कर वह सब मायाजाल है, ज्ञानातिरिक्त सर्वचेष्टाओंसे रहित निज ज्ञायकस्वभावको देख, अन्य सबसे उपयोगको हटाकर निर्मल बनाए रहो, बाकी तो सब एकसा मायाजाल है।

एक ब्राह्मणी मां के तीन लड़के थे—बड़ा, मंझला और छोटा। एक बनिया था, बनिया तो बड़ा चतुर होता है, हर बातमें पैसोंका हिसाब लगाता है। बनियेने सोचा कि एक ब्राह्मणको जिमाना है सो ब्राह्मणी मां के लड़कों को जिमाऊँ। मगर छोटा लड़का सबसे कम खाता होगा, उसीको जिमाऊं तो अच्छा रहेगा। ब्राह्मणी मां के पासमें बनिया गया, बोला कि मां जी आज तुम्हारे छोटे लड़केका निमंत्रण है मैं उसे जिमाऊँगा, मां ने कहा—बहुत अच्छा है, हमारे तीनों लड़के तिसेरिया हैं याने तीन तीन सेर खाने वाले हैं, किसीका निमंत्रण करो, वे सब बराबर हैं।

इसी तरह ज्ञानके कामोंको छोड़कर बाकी दुनियाके पदार्थोंमें जितने भी काम हैं वे सब झंझट हैं, एक बराबर हैं, झंझटरहित तो केवल एक निज स्वरूपकी दृष्टि है, और यही धर्मका पालन है, यही करना है। घरमें बैठे हुए यह दृष्टि बन जाय तो अपना बड़ा काम कर रहे हो। यदि यात्रामें यही बात दृष्टिमें आ जाय तो समझो कि धर्म कर रहे हैं और मनमें

कषाय है, रंज है, सारी बातें हो रही हैं, लड़ाइयां हो रही हैं, झगड़े हो रहे हैं, वहां धर्म नहीं होगा। कहो चलते फिरते धर्म मिल जाय, किसी जगह मिल जाय और जहां धर्म मिलने का साधन बनाया वहां नहीं मिले और जहां मिलनेका साधन नहीं बनाया, वहां मिल जाय।

हमारा सब काम हमारे आधीन है। जैसे हम अपनेको बनाना चाहें, बना सकते हैं, अपने आपका निर्णय कर लो कि मैं क्या हूं, मैं केवल ज्ञानमात्र हूं, जिसमें दूसरी चीजका प्रवेश नहीं है, मैं यह ज्ञानमात्र हूं सहज परमात्मतत्व हूं, ऐसी ही अपनी दृष्टि बनाकर मैं अपने आप अनुपम आनन्दका अनुभव करूं।

देखो, यह ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व ही भगवत्स्वरूप है, यह ज्ञानघनतत्त्व ही इन्द्रियोंके विषयोंको जीतता है, कर्मोंका क्षय करता है, इससे यह ज्ञानस्वरूप ही जिन है, यह ज्ञानस्वरूप ही पूर्णानन्दमय है, कल्याणस्वरूप है, इससे यह ज्ञानस्वरूप ही शिव है, यह ज्ञानस्वरूप ही समस्त ऐश्वर्य है और अपना काम करनेमें आप ही स्वयं सर्वकारणरूप है। इससे यह ज्ञानस्वरूप ही ईश्वर है, यह ज्ञानघन आत्मतत्त्व ही अपनी सृष्टिका मूल है अतः यह ज्ञानस्वरूप ही ब्रह्मा है। राम व्युत्पत्यर्थ हैं—"रमन्ते योगिनो यस्मिन्निति रामः।" जिसमें योगी जन रमण करें उसे राम कहते हैं, योगी जन इस पवित्र ज्ञानस्वरूपमें ही रमण करते हैं। अतः यह ज्ञानस्वरूप ही राम है, यह ज्ञानस्वरूप पूर्णव्यापक है, सर्वव्यापक है, समस्त लोकालोकज्ञ है, अतः यह ज्ञानस्वरूप ही विष्णु है, यह ज्ञानमय आत्मतत्त्व ही समस्त पापों और विकल्पोंका हरने वाला है। अतः यह ज्ञानस्वरूप ही हरि एवं हर है, यह ज्ञानस्वरूप ही सर्व देवतामय है, सर्व प्राणिमय है, सर्वहितमय है। इसका स्वयंसिद्ध स्वरूप निरुपद्रव है, निर्विकल्प है।

हमारे पुराण महापुरुषोंने लोकके बड़े-बड़े वैभवोंको त्यागकर इस ही ज्ञानस्वरूपमें हित एवं आनन्दका अनुभव किया था, जिसके परिणाममें वे ज्ञानमय व आनन्दमग्न होकर भगवान हुए, ऐसे ही इस निर्विकल्प ज्ञानस्वरूपमें अपनेको उपयुक्त करके स्वयं शिवमय होऊं।

स्वैकत्वस्य रुचिस्तस्माद् भव्यता निश्चयेन मे।
अस्वभावे कथं वृत्तः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-४८॥

जितने भी चेतन पदार्थ हैं उन सबमें किसी न किसी ओरकी रुचि रहा ही करती है। जिन्हें सम्यग्ज्ञान हो गया उनकी रुचि, उनका झुकाव अपने आत्मस्वरूपके उपयोगमें होता है, जिन्हें अपने यथार्थस्वरूपका पता नहीं उनकी रुचि बाहर रहा करती है। बाहर रुचि क्यों हो जाती है ? इसका कारण यह है कि जीव तो आनन्दस्वभाव ही है। इसके आनन्दका परिणमन निरंतर होता ही है, किन्तु पर-उपाधि सहित अवस्थामें अज्ञान होनेके कारण इन्हें यह

भ्रम लग गया कि मेरा आनन्द बाहरी पदार्थोंसे आता है, इसलिए उनकी दृष्टि विषयोंकी तरफ दृष्टि होते रहते भी आनन्दगुणका परिणमन तो चलता ही रहता। सो वहाँ इष्ट विषय पानेपर आनन्दगुण सुखरूप परिणमन तो चलता ही रहता है। आनन्द तो अपने ज्ञानसे ही अपनेमें है। बाहर दृष्टि होनेसे इस बाहरी पदार्थोंसे आता है, लेकिन है बात उल्टी। आत्मा का ज्ञान और आनन्द बाहरी पदार्थोंकी दृष्टिके कारण ढका है, रुका है, प्रगट नहीं होता है। परंतु इसकी शक्ति अद्भुत है। कितने ही आवरण, कितने ही विघ्न आवें तो भी मूलसे इस ज्ञान और आनन्दका निरोध नहीं हो सकता। ज्ञान और आनन्द तो हुआ ही करेगा। अब भ्रमके कारण यह दृष्टि बन गई कि आनन्द अमुक वस्तुसे होता है। सो भ्रममें इसकी उल्टी मति हो जाती है। यह यथार्थ ज्ञान है कि यह मैं आत्मा अपनी शक्तिस्वरूप हूं, ज्ञानमय हूं, आनन्दघन हूं। ज्ञान और आनन्दके पिंडके अतिरिक्त यह मैं आत्मा कुछ नहीं हूं। यह जो शरीरमें रुका है, इसको शरीरने नहीं रोक रक्खा क्योंकि शरीर मूर्त है, वह अमूर्त आत्माको कैसे रोके ? यह ही शरीरमें मोह करके और अपना संस्कार बना करके रुका है। और कोई पदार्थ तो उसे रोक नहीं सकते हैं अर्थात् जब तक निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध नहीं हो पाता तब तक यह नहीं रोका जा सकता है। यह आत्मस्वरूप स्वतःसिद्ध तत्त्व है। इसके सहज-स्वरूपको देखो तो यह प्रभु है। इसमें किन्हीं बातोंकी कमी नहीं है। परमानन्दका स्वभाव अनादि अनंत रहता है। समस्त लोकके जाननेका स्वभाव अनादि अनंत है। इसमें किन्हीं बातोंकी कमी नहीं। परिपूर्ण तो यह है ही। जो अपनेको ऐसा देखे वही तो परिपूर्ण बनेगा।

जैसे घरमें चाहे लाखोंका धन गड़ा हो, जब तक उसे गड़े हुए धनका पता नहीं है तब तक वह उपयोगमें दरिद्र ही है। उसकी प्रवृत्ति गरीबकी जैसी होगी क्योंकि उसको पता नहीं है कि घरमें लाखोंका धन गड़ा है। कहीं पता चल जाय; कहींपर लिखा हुआ मिल जाय या किन्हीं पुरखोंके द्वारा पता लग जाय कि तेरे घरमें लाखोंकी निधि गड़ी है तो इतना मालूम होते ही उसको आनन्द आ जायगा। अभी उसने देखा भी नहीं है, परन्तु इतना पता लग गया, लिखा हुआ पा गया, उसीसे उसको आनन्द आ जायगा। वह आनन्दमय हो जा-यगा। अब उसको निकालनेका प्रयत्न करेगा। कुदाली लायगा, सब्बल लायगा, फावड़ा ला-यगा। उसको खोदेगा। ज्यों ज्यों वह खोदता जायगा, जो कुछ आसार देखता जायगा वह आनन्दमग्न होता जायगा। कहीं देखा कि मिट्टीकी खपरियाँ मिलीं, कहीं देखा कि कोई मटका मिला, इतनेमें ही वह बहुत खुश हो जाता है। जब धन निकल आता है तो धन पाने का जो अनुभव है उसमें सब कुछ भूल जाता है और विलक्षण सुखका अनुभव पाता है। इसी तरह इस आत्मामें बहुतसी निधि गड़ी हुई हैं। वह है अनंत ज्ञान और अनंत आनंदकी निधि किन्तु यह निधि कर्मरूपी पृथ्वीके नीचे गड़ी है, अतः इसी कारणसे यह भिखारी होता हुआ

परकी आशा करके बेचैन हो रहा है, पराधीन हो रहा है। मेरा सुख तो अमुक भैयाके हाथ है। ऐसा समझकर भैयाका दास बन रहा है। मेरी जिन्दगी तो इन्हींके हाथ है ऐसा सोचकर उसकी ही दासता कर रहा है। ऐसी परिस्थिति है इस ज्ञानघन प्रभुकी, जिसको अपने धनका पता नहीं है। जब इसको पता लग जाय किसी भी प्रकार तो शास्त्रोंमें लिखा हुआ देखकर, अपने पुरुषोंके उपदेशोंको बाँचकर, ज्ञानी धर्मात्माओंसे सुनकर जब पता लग जाता है कि मैं तो आनन्दस्वरूप हूं, मेरेमें तो ज्ञान और अनंत आनन्द भरा हुआ है। इतना पता लगते ही वह आनंदविभोर हो जाता है।

मैं गरीब हूं, मुझे दूसरोंसे कम सुख है। इन कुवासनाओंसे जो क्लेश होता है वह साराका सारा मिट जाता है। यदि अपने आनन्दस्वरूपको पहिचाना तो ज्ञानी अब इस निधि के विकसित करनेका प्रयत्न करता है कि मेरा ज्ञान और आनन्दस्वरूप शीघ्र विकसित हो। इसके लिए वह क्या करता है, भगवानकी स्तुति, बारह भावनाओंका चिंतन, वस्तुस्वरूपका अध्ययन, मनन, ध्यान, यही उसके खोदनेकी कुदाली और सब्बले होते हैं। इन साधनोंसे ज्ञानी कर्मपृथ्वीको खोदता है। जैसे ही उसको कुछ आसार भावोंमें मिलने लगता है वैसे ही वह एकत्वकी ओर आने लगता है और उसे हिम्मत बँधती है। ऐसे उसे आनन्द प्राप्त हो सकता है। वह आनन्दस्वभाव है। देखो ना, ज्ञानीने शुद्ध आनन्दभावको ही अपने उपयोगमें लिया है। यह आनंद बढ़ता जाता है, तब ही तो वह अनुभवमें आनेके लिए एकदम शीघ्रता करता है, अनुभव करता है और फिर आनन्दमग्न हो जाता है। ऐसी शुद्धवृत्ति आत्माके एकत्वस्वरूपकी रुचि होनेपर आत्माओंमें होती है। जिसकी आत्माके एकत्वमें रुचि है, निश्चय है कि यह भव्य ही है। जरा अपनेको तो निहारो कि तुम क्या चाहते हो ? चाह लो, जो-जो चाहोगे सोई मिल जायगा। चाहे दो-चार लाख रुपये चाहते हो, वह भी मिल जावेंगे, इसके बाद शांति मिलेगी क्या, कुछ अन्दाज कर लो, तृष्णा बढ़ेगी, परिचय बढ़ जायगा, चोरों, डाकुओं, राजाओंसे बहुत दुश्मनी बढ़ जायगी, लाखों, अरबों रुपया पानेके लिए बेचैन हो जावोगे। जैसा चाहो वैसा चाह लो, अपने भवितव्यका यथार्थ विचार कर लो, शांति कहीं नहीं मिलेगी। शान्ति है तो केवल अपने शुद्धस्वरूपके उपयोगमें है और इसके द्वारा पूर्ण शांति स्थित रह सकने वाली शान्ति है, मेरेमें जो सुख प्रगट होता है वह दूसरोंके द्वारा होता है तो वह पराधीन है। कभी मिलता है और कभी नहीं मिलता है, इसमें सन्देह है। पर अपनी चीज अपनी ही है, वह अपने उपयोगसे ही मिलती है, और अपने ही उपयोगमें आ-यगी। यह मैं ही सदा रहने वाला हूं। इसका उपयोग भी सदा रहने वाला है। यह संसार का प्राणी अपने इस धनको छोड़कर पराये धनमें रहकर दुःखी हो रहा है। परन्तु यदि इस

एक अपने आत्मधनमें न आया तो क्या है ? इस जीवने सब व्यवस्थाएं की, यदि अपनी व्यवस्था नहीं की तो क्या है ? यह सब क्षणिक बातें हैं, मिट जाने वाली बातें हैं। इससे आत्माको क्या मिलेगा ? अपनी व्यवस्था करना सर्वप्रथम कर्तव्य है। अपनी व्यवस्थाके मायने अपने घरकी नहीं, अपने कुटुम्बकी नहीं, अपने परिवारकी नहीं परन्तु अपना रूप पहिचानमें आ जाय, यही इसकी व्यवस्था है।

एक कथानक है कि एक बाबू साहब थे। वह शामके बाद अपने दफ्तरकी सुन्दर व्यवस्थामें लग गए, जहाँ जो चीज रखना चाहिए उन्होंने वहाँ पर रक्खी, घड़ी जहाँ रख दी तो उस जगह लिख दिया घड़ी, छड़ी जिस जगह रख दी तो उस जगह लिख दिया छड़ी जूते जहाँ रख दिये तो वहाँ पर जूते लिख दिया। कमीज, कोट इत्यादि जहाँपर रख दिये तो वहाँ पर कमीज, कोट लिख दिया। इस तरह सारी व्यवस्था बनाते बनाते ६ बज गए, नींद आने लगी परन्तु व्यवस्थाओंका बनाना नहीं छोड़ा। खुद पलंग पर जब जाकर बैठे तो उस पलंगमें भी लिख दिया मैं, और उसी पलंग पर सो गए, सुबह जब हुआ, सोकर जगे तो घूम घूमकर देखते हैं कि हमारी सब व्यवस्था ठीक है कि नहीं ? घड़ी की जगह पर घड़ी, छड़ी की जगह पर छड़ी तथा अन्य चीजें भी ठीक ठीक उसी जगह पर रक्खी हुई हैं जहाँ पर रख दिया था। पर मैं नहीं दिखता। गोरसे देखते हैं पर मैं कहीं नहीं दिखता। बोले कि मेरा मैं कहाँ गया है ? जब न मिला तो उसी पलंगको झिटकाया पर मैं उस पलंगसे नहीं टपका, उन्होंने सोचा कि मैं तो गुम गया है। नौकरको झट बुलाया बोले मनुवा, ओ मनुवा यहाँ आवो, बड़ा गजब हो गया है, मेरा मैं कहीं गुम हो गया है। नौकर यह सुनकर हंसने लगा और मनमें सोचा कि क्या बाबू जी का दिमाग खराब हो गया है ? नौकर बोला बाबू जी घबराओ नहीं, आपका मैं आपको मिल जायगा। आप थके हुए हैं जरा सा आराम कर लें। मैं आपका निश्चित ही मिल जायगा। बाबू जी को विश्वास हो गया कि यह पुराना नौकर है, झूठ नहीं बोल रहा है। बाबू जी पलंग पर लेट गए। जब सोकर जागे तो नौकर बोला कि अब आपका मैं मिला कि नहीं, बाबूजी ने जब अपने आप को टटोला तो बोले कि हाँ मिल गया मेरा मैं, बोले तुम्हें धन्यवाद है।

इस आनन्दको बनाने वाला यह भगवान आत्मा ही है और इस आनन्दका बनाने वाला कोई द्रव्य नहीं है। इस जीवको यह पता ही नहीं है। इसका ही मतलब है कि इस का मैं इसके लिए गुम गया। मैं ज्ञानमात्र हूं, इसका भी पता इस जीवको नहीं है। जो बाहरी पदार्थोंमें अपना ज्ञान माननेकी वासना लगाए हुए है उसको मैं का पता नहीं, जो किन्हीं भी विषयसाधनोंमें आनन्द ढूंढ़ता है उसको मैं का ही पता नहीं, मैं तो ज्ञान आनन्द-स्वरूप हूं, निरन्तर परिणमता रहता हूं, ज्ञानमय हूं।

आनन्दघन है तो आनन्दके विकासमें परिणमेगा। जैसे इसका विश्वास भी परद्रव्योंके प्रति हो तो भी परद्रव्योंके विश्वाससे तो आनन्द नहीं आयेगा। अरे तू तो भगवत्स्वरूप है। तू इस अपने स्वरूपको छोड़कर बाह्यपदार्थोंमें क्यों लग रहा है? तुझे इन बाह्यपदार्थोंमें न लगना चाहिए। ज्ञान होने पर भी लगन बाह्यकी ओर कभी लगानी पड़ती है किन्तु रुचि को देखो, यदि अन्तःकी ओर है, बाह्यपदार्थोंकी ओर रुचि नहीं है तो अन्य कार्योंके करनेकी लगन नहीं कही जायगी। जैसे कोई नौकर मन लगाकर काम नहीं कर रहा है तो उसे कहते हैं कि यह काम नहीं कर रहा है। काम करनेमें जब मन नहीं है, जब रुचि नहीं है तो उसे कहते हैं कि यह काम नहीं करता है। इसी कारण जैसे ज्ञानीको अपने भगवत्स्वरूप का पता नहीं है कि यह स्वच्छ है, सबसे निराला है, परिपूर्ण है, इसे कुछ बाह्य कार्य करने को नहीं है तो इसके पास झंझट नहीं हैं। परन्तु परपदार्थ तो अपनी सत्तामें हैं और अपने आप परिणमते रहते हैं। यह आत्मा तो स्वयं स्वरूप सर्वस्वमय है और अपने स्वरूपमें परिणमता रहता है। देखो ना, इसमें कोई झंझट नहीं कोई विवाद नहीं, कोई क्लेश नहीं। पर इसका जब पता सही लगता है तो सारी विपत्तियाँ अपने ऊपर लग जाती हैं। गल्ती तो इतनी सी है कि परपदार्थोंको यह मान लिया कि यह मेरे हैं। केवल माननेकी गल्ती है और इसका फल कितना बडा है कि जन्म मरणकी परम्परा हो गई, संसारवृक्ष बन गया। इतनी बड़ी विपत्तियाँ आ गईं। बीज तो इसका छोटा होता है पर वृक्ष बहुत बड़ा हो जाता है। इतने बड़े संसारका बीज केवल परको अपना मानना भर है। इतनी बड़ी गल्तीका इतना महान कुफल हो गया कि जन्म मरणके चक्कर लग गए। कीड़े मकोड़े बनाना पड़ा। अरे तू केवल अपने मिथ्याभावकी गलती को मिटाकर अपनेको संभाल ले तो समझ जायगा कि हमने सब कुछ कर लिया। इसीसे मनुष्यजन्मकी सफलता है।

इस तन, मन, समस्त बाह्यपदार्थोंको नश्वर जानकर इसका ध्यान न करो। अपने स्वरूपकी आस्थाको बनाओ तब तुम्हारा पूरा पड़ेगा। उसमें ही रमकर मैं अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं। इसके आनन्दका उपाय अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा। ऐसी शुद्धस्वरूपकी भावना हो, इसीमें मेरा सब कुछ है। जीव तो अनेक मनुष्य जन्म पाते हैं और मनुष्यभवको छोड़कर चले जाते हैं। परन्तु मनुष्यभव पाना उन्हीं जीवोंका सफल है जिन्होंने इस भवमें पाए हुए श्रेष्ठ मन को निमित्त करके आत्मतत्त्वका अध्ययन किया है और इसके परिणामस्वरूप कभी निर्विकल्प निज ज्ञायकस्वरूपका अनुभव किया है। अपने आपकी अन्तर्दृष्टि करके देखो। क्या इस मेरेको अपने आत्मस्वरूपके एकत्वमें रुचि है या नहीं। यदि मुझे आत्मस्वरूपकी रुचि है तो निश्चयसे भव्य हूं। मैं परभावमें क्यों लगूं?

अपनेमें ही अपने द्वारा रमकर सुखी होऊं।

अद्वैतानुभवः सिद्धिर्द्वैतबुद्धिरसिद्धता।
सिद्धेरन्यश्च पन्था न स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-४६॥

अपने आपमें अपने अकेलेका अनुभव करना, इस ही का नाम सिद्धि है। ऐसे अकेले का अनुभव करना कि जो वास्तविक अकेला है, स्वतःसिद्ध है, निजस्वरूप सत्तामात्र है, परपदार्थों और परभावोंसे जो जुदा है, अपने आप चतुष्टयमें सत् है ऐसा ज्ञानमात्र व ज्योतिमात्र अपने आपका अनुभव कर। इस ही का नाम सिद्धि है। अन्य कोई चीज अपनेमें कुछ मिलती नहीं। मैं किसी अन्यरूप नहीं हूं अथवा मैं अन्य कुछ मिल करके भी नहीं हूं। यदि किसी दूसरी चीजमें अपनी बुद्धि रखते हो तो इसीका नाम असिद्धि है। मैं आत्मस्वभावमें साक्षात् भगवान् स्वरूप हूं। लोग कहते हैं कि भगवान् घट घटमें बसता है, भगवान् अलग नहीं है। जो बसनेको घट घटमें जाता है या एकदमसे वह फैलकर घट घटमें आ गया है, ऐसा नहीं है किन्तु जितना घट घट है, जितना आत्मा है, जितना चैतन्यस्वरूप है, वह सब भगवान् है। हम स्वयं ही सत्य आनन्दमग्न हैं, किन्तु अपने इस स्वभावका विश्वास न रखकर बाह्यपदार्थों से आनन्द हो या आनन्दमें बाधा होती है। ऐसी एक दृष्टि हो गई है। इस दृष्टिसे वह अपने आनन्दको रोकता है। वह स्वयं आनन्दस्वभावकी निधि है। आनन्द कहीं बाहरसे नहीं आता है। स्वयं यह आत्मा ज्ञानमय है। ज्ञान किसीसे लेना नहीं है। इसी प्रकार यह आत्मा आनन्दमय है। कभी भी दूसरी जगहसे आनन्द इसमें लाया नहीं जाता है। यह खुद आनन्दस्वरूप है और इसी कारण किसीने इसे आनन्दमय ब्रह्म कहा है अर्थात् ब्रह्मका स्वरूप है आनन्दमय है और इसीको किसीने ज्ञानका स्वरूप कहा है और किसीने इसको सत्का स्वरूप कहा है। इस तरह पृथक् पृथक् कहा है किन्तु स्याद्वादहष्टिने इसे सत्चिदानन्द बतलाया है। यह आत्मा अपने स्वभावसे बढ़ते हैं, अतः यह स्वभाव वाला है। अतः इसे कोई ब्रह्मा कहते हैं और कोई आनन्दकी प्राप्ति कहते हैं, किन्तु वह तो सत्स्वरूप भी है, चित्स्वरूप भी है, आनन्दमय भी है अतः उसे सच्चिदानन्दमय कहा है। जहाँ आनन्दका स्वरूप चित्का स्वभाव पूर्ण विकसित है, उसीका नाम परमात्मा है। प्रत्येक जीवको स्वरूपसे देखो कि ऐसा है कि नहीं। वह ऐसे ही है इन जीवोंमें चैतन्य भी है, क्योंकि अगर चैतन्य नहीं होता तो इन जीवोंमें ज्ञान और समझ कहाँसे आती? और आनन्द है कि नहीं? आनन्द भी है। यदि आनन्द न होता तो जीवोंमें आनन्द आता कहाँसे? इस तरह यह सच्चिदानन्दमय आत्मा है। मतलब यह है कि जैसा यह स्वयं है अद्वैत, वैसा ही अनुभव करना चाहिए। परपदार्थ भी अद्वैत है। किसी में कोई दूसरा मिला नहीं है। दूध और पानी मिला हो, फिर भी दूधमें दूध ही है और पानी

में पानी ही है। दूधमें पानी नहीं गया और पानीमें दूध नहीं गया और यहाँ तक कि दूधके जितने परमाणु हैं वे सब पृथक्-पृथक् उसी दूधमें है और पानीके परमाणु पानीमें पृथक् हैं। वे स्वयं सत् हैं। यही बात है कि एकसे दूसरेमें परमाणु नहीं आते। प्रत्येक पदार्थ अपनी सत्ता लिये हुए हैं। प्रत्येक पदार्थ अद्वैत है। अद्वैत कहते उसे हैं जो दूसरेसे न लगा हो। जो दो चीजोंसे मिलता है उसे द्वैत कहते हैं और जो दूसरेसे नहीं मिला है, खुदबखुद अपने आप एक ही है उसे अद्वैत कहते हैं। जगत्के सब पदार्थ खुदबखुद अपने आपमें अपनी सत्ता लिये हुए हैं। इस तरह सभी अद्वैत हैं। सब पदार्थोंको अद्वैत निरखना है। प्रत्येक पदार्थ अपनेमें एक ही है। इसमें दूसरेका प्रवेश नहीं है। इसलिए दूसरेका प्रवेश न होनेसे स्वयंको अद्वैत निरखना है। और इसी प्रकार अपने आपमें भी अद्वैतका अनुभव करना कि यह मेरा भैया है, यह तो मेरा बच्चा है, यह तो मेरा घरद्वार है, यह मेरा वैभव है, यह मेरा शरीर है, मैं कुछ हूं, इस प्रकार द्वैतको अनुभव करना रहा तो उसीको असिद्धि कहते हैं, उसीके मायने संसार है। पदार्थ जैसे हैं वैसा न अनुभव करना, वैसा न मानना, बस इसीका नाम है जग-जालमें फँसना। जो अपनेको नाना वेशों रूप ही अनुभवता है उसे शांति नहीं मिलती है। क्योंकि नाना रूप इसके बन गए सो ये तो वे हैं सब पराये हैं और फिर हैं नाना, अतः उनकी संभाल कैसे हो? मुक्तिका रास्ता और कोई दूसरा नही है। यही अपने आपको जैसा शुद्ध अकेला स्वरूप है वैसा मान जाना बस यही मोक्षका रास्ता है, मुक्तिका पंथ यही है। अभी धर्मपालनके लिए बहुत बहुत काम किए जाते हैं। कर लो किन्तु अपने आपके इस अद्वैत स्वरूपका अनुभव नहीं है तो धर्मपालन नहीं हुआ, शांतिका मार्ग नहीं मिला, मोक्षका मार्ग नहीं पाया। धर्म एक ही होता है, धर्म पचासों नही होते। दुनियामें जो ये मजहब है वे तो मत हैं, धर्म नहीं है। आज जो दुनियामें प्रसिद्ध है यह अमुक सम्प्रदाय है, यह अमुक मजहब है, वह सब मत कहलाते हैं, धर्म नहीं होता है। मत अनेक होते है पर धर्म अनेक नहीं होते। धर्म अनेक हो ही नहीं सकते हैं। अब हमें धर्मपालन करना है या मतपालन करना है। अगर मतपालन करना है तो मतपालन किया जाय और अगर धर्मपालन करना है तो धर्मपालन किया जाय। धर्म है वस्तुका स्वरूप, वस्तुका अनुभव, यह मैं आत्मा कैसा हूं, क्या हूं, कैसे स्वभाव वाला हूं, जैसा हूं तैसा मानना इसीके मायने हैं धर्मका पालन। जैसे जातियाँ अनेक हो गईं, जैसे हिन्दू, मुसलमान ईसाई आदि। इन सबके रहन सहन अनेक प्रकार हो गए, बुद्धि अनेक हो गईं। एकसा ही उन मनुष्योंका जन्म हुआ और एकसा ही उनका मरण होता है। इसी तरह इन सब लोगोंने अपने अपने मतको बदल दिया है, पर वह हैं सब एक किस्मके आत्मतत्त्व जैसे। उन सबने अपने अपने मत बदल दिए हैं, पर रंगको तो नहीं बदल पाया

अपना आकार तो नहीं बदल दिया है । उन परकी चीजोंका फर्क बना लिया है कि कोई चोटी रखता है, कोई नहीं रखता है। यह सब कुछ हो जाता है पर उनका रूप नहीं बदलता है। जैसे मनुष्यका स्वरूप नहीं बदलता है, इसी तरह चाहे जितनी ही कल्पनायें आ जायें, चाहे जितने हो मत आ जावें उनकी आत्माका स्वरूप नहीं बदलेगा। उनकी आत्माका एक ही स्वरूप है, एक ही स्वभाव है। कोई ऐसा भी जीव है जिसका यह मत है कि आत्मा फात्मा कुछ नहीं है। आत्माका अस्तित्व कुछ नहीं है। वे आत्माको मना कर रहे हैं। आत्मा का विरोध कर रहे हैं। आत्मा ही आत्माको निषेध कर रहे हैं। निषेधबुद्धि करनेसे सत् नहीं मिट गया। वैसे आत्माको अन्य रूपमें कल्पनायें कर ले तो कल्पनायें कर लेनेसे आत्मामें वह कुछ नहीं हो जायगा। आत्मा वही है जैसे रस्सीकी डोरका भ्रम हो जाय कि यह सर्प है तो भ्रम हो जानेमें कहीं रस्सीकी डोर सर्प नहीं बन जायेगी। वह तो रस्सी ही रहेगी। हम कितनी ही चीजोंके बारेमें कितनी ही कल्पनायें कर डालते हैं परन्तु इतनी कल्पनायें कर लेने से ही वह चीज नहीं हो जाती। वह तो सत्तासे हो गई है, वही है। हम इस आत्माके बारे में कितनी ही कल्पनायें करें, हम नाना नहीं बन जावेंगे। हमारा तो एक स्वरूप है, जो अनादिसे अनन्त काल तक रहेगा।

यह निगोद कीड़ों जैसी पर्यायोंमें भी पहुंचा है, इस आत्माका प्रदेश आकार भी बदल गया है, फिर भी निगोद जैसी निम्न अवस्थाओंमें भी इस आत्माका स्वरूप वही एक रहा है, वह नहीं बदल गया। उसका जो स्वत्व है, सो ही है, वह नहीं बदल गया। ऐसी आत्मा का वह अद्वैतस्वरूप जिनके ज्ञानमें आया है उनको सिद्धि होती है और जिसे द्वैत आया है, जिसने द्वैतका अनुभव किया है उसको असिद्धि होती है। उस एकको जिसने चाहा है उसको सर्वस्व मिला है और एकको छोड़कर जिसने नाना पदार्थोंमें दिल लगाया है उनको कुछ नहीं मिला है।

एक ऐसा कथानक है कि एक बार एक राजा किसी दूसरे राजासे लड़ाई करने गया। दो माह तक युद्ध होता रहा। उसमें उस राजाकी विजय हो गई। इसके बाद वहाँपर राजाने बड़ा उत्सव मनाया और खुशीमें देशकी सब रानियोंको पत्र लिखा कि जिसको जो कुछ चाहिए हमारेको पत्र लिखे। तब किसी रानीने साड़ी लिखी, किसीने जेवर लिखा, किसी ने अमुक खिलौनेको लिखा, किसीने कुछ लिखा, किसीने कुछ लिखा। जो सबसे छोटी रानी थी उसने अपने पत्रमें लिख दिया केवल १ का अंक, और कुछ नहीं लिखा। पत्रको लिफाफे में भरकर भेज दिया। जब राजाने पत्रोंको खोला तो किसीमें कुछ लिखा था किसीमें कुछ मगर छोटी रानीके पत्रमें केवल १ का अंक लिखा था। राजा इस केवल एक या १ का अर्थ

न समझ सका। उसकी समझमें केवल १ का मतलब न आया। उस राजा ने मंत्रीसे पूछा कि इस छोटी रानीने क्या मंगाया है ? मंत्री पत्रको देखकर कहता है कि छोटी रानीने केवल एक आपको ही चाहा है और कुछ नहीं चाहा है। राजा सभी रानियोंको किसीको साड़ी, किसीको गहना, किसीको खिलोने लेकर अपने देश जाता है। जब वह वहाँ पहुंचता है तो जो जो कुछ देना था वहाँ, उनके घर पहुंचा दिया और छोटी रानीके महलमें स्वयं पहुंच गए, जिसने केवल एकको चाहा था, पर अब यह बतलावो कि राजाकी सारी चीजें, सारा वैभव, हाथी, सेना, शासन, इज्जत इत्यादि सब कुछ उसके महलमें पहुंच गया या नहीं।

इस जगत्में जितनी भी व्यवस्थाएं चल रही हैं वह सब चैतन्य ज्योतिका ही तो प्रसार है। एक चैतन्य ज्योतिको जिसने चाह लिया, एक अद्वैत स्वभावको जिसने चाह लिया उसको सर्वसिद्धि है। इस आत्मानुभवकी ओर आवो। बाहरकी ओर दृष्टि कम करके अपनी प्रकृति, रहन सहनको सात्विक बनावो और मुख्य प्रयोजन जो आत्मसिद्धिका है उसे करो। बनावट, दिखावट, सजावट न करके कर्ममें दृष्टि दो तो बस यही धर्मका पालन है। शांति भी इसी उपायसे प्राप्त होगी। मोक्षमार्ग भी इसी उपायसे प्राप्त होगा। पर पदार्थोंमें भटकना, नाना प्रकारकी कल्पनाएं करके उपयोग को बाहर फंसाना, यह सब अशांतिके साधन हैं, अधर्मका पालन है, धर्मकी उपेक्षा है। अपने इन २४ घंटोंमें जबकि प्रायः सारा समय दुरुपयोगमें जाता है; मोह, राग, द्वेषोंमें जाता है, नाना कल्पनाओंके विकल्पोंमें जाता है। भाई पन्द्रह मिनटका संकल्प करके, सत्यका आग्रह करके, अपने आपकी भी व्यवस्था बना लो अपने आपमें १०, ५ मिनट आनेमें कुछ बिगड़ नहीं जायगा। एक अमूर्ततत्वकी प्राप्ति होगी। अद्वैतका ही अनुभव हो, उसे ही सिद्धि कहते हैं। जगत्के जीव अहंकार भरे हुए हैं। मैं परिवार वाला हूं,धन वाला हूं, इज्जत वाला हूं, यह मैं अमुक हूं, उत्तम हूं, शुद्ध हूं, नाना प्रकार की कल्पनाएं लिए हुए यह प्राणी विचर रहे हैं। अरे तू तो वह स्वरूप है जिसका स्वरूप सर्वत्र एक है।

यदि मैंने अपने ही स्वरूपको माना तो धर्मका पालन किया और यदि अपने अद्वैत स्वरूपको छोड़कर नाना रूपोंमें माना तो अभी धर्मसे बाहर हैं। अपने धर्मसे अर्थात् अपने आत्मस्वभावसे स्नेह करो। जगत्में कहाँ भटक रहे हो ? शरण कहीं नहीं मिलेगी, हर एकसे धोखा मिलेगा, बहकावा ही मिलेगा। शरण तुझे अपने आपमें बसे हुए उस सहज परमात्मतत्वकी शरण लेना है। यही मुक्तिका मार्ग है। दूसरा कोई मुक्तिका मार्ग नहीं है। जैसे कहते हैं कि "सम्यग्ज्ञान-सम्यग्दर्शन-सम्यग्चारित्रं विमोक्षमार्गः।" सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी एकता ही मोक्षका मार्ग है। जहाँ दर्शन ज्ञानचारित्रमें विकल्प भी नहीं

उठते। इसका एकरस उपयोग ही जाना, यही एक मोक्षका मार्ग है। जो कि सर्वसिद्धि है। जो इस आत्माके सहज चैतन्यस्वरूपकी श्रद्धा पा लेगा, वही अपने स्वरूपमें रम जायगा। ऐसी स्वाधीन शाश्वत सम्यक्की श्रद्धा बिना मोक्षका मार्ग नहीं मिलेगा। किसी बहुकावे व किसी बालबच्चोंकी उलझनमें पड़कर शांति नहीं मिलेगी और आगेका रास्ता भी बन्द हो जायगा। बाहरी चीजोंमें पड़कर इस आत्माका हित कुछ नहीं है हित तो यह स्वरूप है। यह तो धर्मकी साक्षात् मूर्ति है। यह आत्मा चैतन्यस्वरूप आत्मा ही धर्मकी मूर्ति है। वह भगवानस्वरूप है। वही कल्याण है। मैं इस एकको छोड़ दूं तो संसारमें भटकते हुए कुछ पता भी नहीं लगेगा। कितनी योनियाँ हैं, कितने शरीरके कुल हैं, कितने जगत्में लोकके साधन हैं। किस स्थानमें, कितनी बार, कहाँ जन्म लूंगा, कितने कितने शरीरोंमें कितनी बार जन्म लेते रहेंगे, कुछ पता तक भी नहीं रहेगा। अभी मनुष्य है, ज्ञान साफ है, स्वाधीन है। हम दूसरोंकी बात समझ लेते हैं। दूसरोंको अपनी बात समझा देते हैं। पशु पक्षियोंको देखो ऐसा जन्म होता क्या ? उनके अक्षरमय भाषा नहीं है। दूसरोंकी बात वह दूसरोंसे क्या कहेंगे, उनमें धर्मकी चर्चा क्या होगी ? कीड़े, मकोड़े बहुतसे जीव हैं, वे क्या कर सकते हैं ? उन जीवोंके मुकाबलेमें देखें तो हमारी अब कितनी उच्च अवस्था है ? हम और आप सम्यग्दर्शनके पात्र हैं, सम्यग्ज्ञानके पात्र हैं और सम्यक्चारित्रके पात्र हैं। अपनेमें पुरुषार्थ करनेकी योग्यता है, हमें कुछ अपना हित भी निरखना चाहिए; घर, द्वार, धन-वैभव इत्यादिमें ज्यादा दृष्टि नहीं रखनी चाहिए। यद्यपि इस गृहस्थावस्थामें सबका प्रायः यह निर्णय रहता है कि इसके बिना गुजारा चल ही नहीं सकता है। परन्तु जब यह घर-द्वार, धन वैभव छूट जावेंगे तो क्या इसके बिना गुजारा नहीं चलेगा। धन वैभवके बिना, घर द्वारके बिना आत्माका गुजारा चल जायगा, पर सम्यग्ज्ञान बिना आत्माका गुजारा नहीं चलेगा। इस अपने सम्यग्ज्ञानको छोड़कर यदि परपदार्थको महत्त्व देगा तो अशांति, कर्मोपासना तथा कर्म बँधना ही रहेगा और यदि अपने इस शुद्धस्वरूपको महत्त्व देगा, वहीं रमेगा, वही पहचानेगा, वहीं झुकेगा तो उसके बंधन कटेंगे, शांतिका मार्ग मिलेगा और भविष्यमें इसका जब तक संसार है, उत्तम उत्तम भव समागम मिलेगा और निकट समयमें मुक्ति प्राप्त होगी। इसलिए अपने आपका सम्यग्ज्ञान करो, प्रमादी मत हो, इस अपने स्वरूपको देखकर प्रसन्न रहो। यह मेरा शाश्वत आनन्दमय चैतन्यस्वरूप है, सदा अलग है, यह सब अहंकारोंसे दूर है, मैं अपने स्वरूपमें हूं। एक अपने आपमें सही स्वरूपका पता लग जाय तो इससे बढ़कर कुछ जगत्में नहीं है। इस तरह अपने अद्वैतका अनुभव करो, यही मोक्षका मार्ग है। और ऐसा ही अद्वैत सब पदार्थोंमें है। उन सबमें भी उनके अद्वैतस्वरूपका बोध करें इसीका नाम सिद्धि है। आत्माके ध्यानमें, चिंतनमें, मननमें, अध्ययनमें, अनुभवमें अधिकसे अधिक पुरुषार्थी बनकर अपने जीवनको

सफल बनावें।

स्वैकत्वं मंगलं लोके उत्तमं शरणं महत्।
रक्षादुर्गं तदेवास्ति स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-५०॥

आत्माके शुद्धस्वरूपको आत्माका एकत्व कहते हैं अर्थात् जो आत्माका अपने आप, अपनी सत्ताके कारण जो कुछ सर्वस्व है वह आत्माका एकत्व है। इस एकत्वमें दृष्टि जाना यही शरण है। आत्माके केवल स्वरूपकी निगाह होना यही रक्षाका सबसे बड़ा दृढ़ किला है। जैसे बड़े मजबूत किलेके भीतर राजा लोग अपनेको सुरक्षित अनुभव करते हैं, इसी प्रकार इस निज सहज स्वरूपमें ही यह मैं हूं। ऐसा अनुभव करने वाला ज्ञानी अपनेको सुरक्षित अनुभव करता है। जब इस दृष्टिसे हट जावेगा तब इसे नाना विकल्प होंगे और उसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं होगा। उसको आराम करनेका, सुख शांति मिलनेका साधन व मार्ग नहीं मिलेगा। देखो इस एकत्वका शरण गहे बिना ही इतना बड़ा जगजाल बिछ गया। इसीसे सैंकड़ों आपदाएँ बिछ गईं। परन्तु जो आत्मा अपने इस स्वरूपके किलेमें प्रवेश करके बैठता है उसकी सारी विपदाएँ खत्म हो जाती हैं। एक भी संकटमें प्रायः वह नहीं रहता है। यदि इस जीवने आज तक ऐसा कार्य नहीं किया है तो इसीका फल है कि उसका संसार में जन्ममरणका चक्र आया। यहांका परिवार यदि अच्छा लगता है, स्त्रीका, बच्चोंका, धन का यदि मोह लगा हुआ है तो खूब एकदम खुले हुए दिलसे डटकर मोहको कर लो। खूब मोह कर लो, इसके बीचमें मोह कर लो। अधकचड़े क्यों रहते हो? अच्छा अजमा लो मोह करके, फिर बताओ कि क्या अपनेमें लाभकी व्यवस्था हो जायगी? यदि इसमें सार नजर आता है तो इसमें ही लग जाओ। अपने आपमें ही पता चल जायगा कि मुझे इससे हानि मिली है कि लाभ मिला है? इससे कुछ नहीं मिलेगा, क्लेश ही मिलेंगे, आत्मबल ही घटेगा, नाना शल्य बढ़ेंगे, बाहर दृष्टि एकदम फैल जायगी, फिर आनन्दका उपाय बनाना कठिन हो जायगा। अनेक खोटी परिस्थितियाँ आ जायेंगी, यदि बाह्यमें मोह कर लिया तो। बाह्यमें कोई मंगल नहीं है, कोई मुझे सुख देने वाला नहीं है। मंगल वह होता है जो मंगल है। मंग अर्थात् सुखको जो लावे वह मंगल कहलाता है। आनन्दको, सुखको जो लावे उसे मंगल कहते हैं। आप लोग णमोकार मंत्र पढ़कर फिर चत्तारिदंडक पढ़ते हैं उसमें यही तो बोला जाता है।

चत्तारिमंगलं, अरहंता मंगल, सिद्धामंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। अर्थात् चार मंगल हैं; अरहंत मंगल हैं, सिद्ध मंगल है, साधु मंगल हैं और केवली भगवानके द्वारा प्रणीत धर्म मंगल है। मंगलका अर्थ है जो मंग लावे व मंगलावे। मं का अर्थ है पाप जो पापको गलावे। वही परिणाम सुख दे सकता है। पापोंको बढ़ाने वाला जो परिणाम है

वह मोह और अज्ञानसे भरा अर्थात् विषयोंमें लगा हुआ रुचिकर तो होता है परन्तु उसका परिणाम खोटा ही निकलता है। यहाँ किसीका कुछ करने वाला कोई नहीं है। आत्मा और कर्म इन दोनोंके परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव चल रहे हैं। जैसे परिणाम हों तैसे ही कर्म इसमें बँधेंगे। जैसा बद्ध कर्मोंका उदय आवेगा वैसे आत्मामें भाव होंगे। ज्यों ही आत्माने खोटापन किया त्यों ही आत्मामें कर्मके बन्धन हुए और वह बँधा हुआ कर्म जब अपना समय पायेगा, अपने उदय कालमें आयेगा उस समय ही आत्मामें दुःख और खोटा परिणाम उत्पन्न हो जायेगा। न इस आत्माको कोई समझाने वाला है कि देखो खोटा उदय आ रहा है तो खोटा बन जावो और न कर्मको समझाता है कोई कि आत्मामें खोटा भाव आ रहा है तो तुम बँध जावो। परंतु ऐसा प्राकृतिक सुयोग है कि जहाँ आत्मामें खोटा भाव आया कि वहाँ कर्म बँध गए। तात्पर्यकी बात यहाँ यह समझनी चाहिए कि यहाँ करने हरने वाले कोई नहीं हैं जिनकी भक्ति करें, जिनकी मिन्नत करें। तो कुछ अपनी जूस निकाल लें, यहाँ तो ओटो-मेटिक सब हो रहा है। खोटेपनको रख लो तो दुर्गति प्राप्त कर लो, अच्छे भाव कर लो, लो सद्गति पा लो। यह तो जिस समय किया उस ही समयपर निर्भर है, इस कारण सदा अपने परिणामको स्वच्छ व संयत बनानेका यत्न होना चाहिए। परिणामकी निर्मलताके लिए क्या करना है ? जैसा यह मैं हूं तैसा समझ लेना है। यह मैं आत्मा सबसे निराला हूं ना, हूं तो सबसे न्यारा, सबसे निराला मान लो। बस यही मौलिक यत्न आवश्यक है। अच्छा देखो यह पीछी चोकीसे न्यारी है कि नहीं, पुस्तकसे न्यारी है कि नहीं ? है ना न्यारी, फिर न्यारा माननेमें कोनसा हर्ज होता है ? है नहीं यह शरीर सबसे न्यारा, जो बैठे हैं उन सबसे यह शरीर जुदा है कि नहीं ? है जुदा तो जुदा मान लो, इसमें कौन सी कठिनाई पड़ती है ? अब जरा भीतरकी बात परख लो कि यह मैं आत्मा जो दुःखी होता, सुखी होता, विकल्प करता है, समझनेकी चेष्टा करता है, यह आत्मा है ना सबसे न्यारा। यदि यह न समझमें आए, यह बात तो फिर धर्मके लिए और काम छोड़ दो, पहिले यह निर्णय कर लो। यह बताओ कि मैं सबसे न्यारा हूं कि नहीं ?

भैया ! इस निर्णय बिना तो धर्मका पालन ही नहीं होगा। अपने आपकी ठीक ठीक समझ बना लो। यह काम सबसे बड़ा है और यह बात स्वाधीन है। जरा विकल्प छोड़ करके सच्चा विश्राम लेकर देखो कि तुरन्त समझमें आ जाता है। यदि कोई ज्ञानी ज्ञानका निषेध भी करे तो भी ज्ञान ही तो यह है, जो निषेध करेगा। इस ज्ञानसे इस ज्ञानको इस ज्ञानके अन्दर ले जायें और देखें कि इस ज्ञानका स्वरूप है क्या ? जिस ज्ञानके द्वारा हम सारी दुनियाको जाना करते हैं वह ज्ञान खुद कैसा है ? मैं ज्ञानके स्वरूपको देखनेमें लग

जाऊं तो सब ओरके विकल्प हट जावेंगे क्योंकि हम ज्ञानस्वरूप ही ज्ञानके स्वरूपको देखनेमें चल उठें और कुछ विशेष अन्तरमें पहुंच करके देखें तो शरीरकी सूरत भी भूल जायगी। शरीर है या नहीं है, यह भी भान न रहेगा। वहाँ केवल ज्ञानज्योति, ज्ञानस्वरूप ज्ञानतत्त्व ही अनुभवमें आयेगा। यह ज्ञानघन पदार्थ देखो जुदा है सबसे या नहीं, इसका ठीक निर्णय कर लो। समझमें आवे कि जुदा है तो बस ऐसा मान लो। यही धर्मका पालन है और समझमें न आवे कि जुदा है तो अच्छी तरहसे पहिले इसी तरहके निर्णयमें लग जावो। अगर जुदा नहीं है तो ऐसा ही मानते रहो। जैसा है तैसा मान लो। यद्यपि आत्मा जुदा है ऐसा ज्ञान होनेपर भी गृहस्थीमें जुदी जुदी व्यवस्थावोंमें भी यह ज्ञानी लग जाता है तो भी आत्मा जुदा है। यह उसकी आत्माकी प्रेरणा अन्तरमें रहा करती है। यह सब तो लोकव्यवस्थाके लिए है। सबका जुदा जुदा परिवार है और यह उठकर उसी परिवारमें जायेगा, बात भी करेगा, उसी दुकानमें जायेगा। यह सब व्यवस्था है। जैसे व्यवस्थाका काम ठीक चले तो सब लोगोंने मिलकर व्यवस्था बना ली कि ये इतने लोगोंकी व्यवस्था कर लें, ये इतने लोगोंकी। यह बात परिवारके रूपमें दी गई, सो सब जुदा जुदा कर रहे हैं। सब काममें व्यस्त हो रहे हैं। केवल लोकव्यवहारमें उच्छृंखलता न आ जावे इसके लिए व्यवस्था बना रखी है। इस व्यवस्थामें ज्ञानी भी पड़ रहे हैं। लेकिन प्रतीतिमें यह रहता है कि मैं तो अपनेमें आ रहा हूं, अपनेको सबसे निराला, चैतन्यमात्र एक पदार्थ जिसका कुछ भी नाम नहीं है, जिसका कुछ आकार प्रकार नहीं है। यह मैं एक चैतन्य वस्तु हूं। इसके सिवाय अन्य किसी पदार्थमें इसका रंच भी सम्बन्ध नहीं है, ऐसा देखना बस यही मंगल है। पापके कामसे पाप नहीं कटेगा और पापके काममें सुख नहीं मिलेगा। करोड़ोंका धन मिल जाय तो उससे सुख नहीं मिलेगा। कितना ही वैभव बसा लें, शांति नहीं मिलेगी। अगर बाह्य पदार्थोंमें शांति होती तो तीर्थंकर चक्रवर्ती जैसे महापुरुषोंको लोकवैभवमें शांति क्यों न मिल जाती? उन्हें ज्ञान जगा तब वे लोकका मोह छोड़कर अपने एकत्वस्वरूपमें युक्त हो गए।

देखो मंगल पाठ पढ़ते हैं तब अरहंत सिद्ध साधुको मंगल कहकर, फिर अपने एकत्व को मंगल कहकर विश्राम पाते हैं। चार मंगल हैं ना, अरहंत भगवान मंगल हैं, चार घातियाकर्मोंसे रहित, मोहसे अत्यंत परे परम पवित्र ज्योति आत्मा अरहंत भगवान्, हैं वह जिसके स्वरूपके स्मरणसे भव भवके पाप कट जाते हैं। वह अरहंत मंगल है जिसके स्वरूपके स्मरण करने व अपने स्वरूपका ज्ञान करनेसे और वर्तमानमें जो कुगति हो रही है उसको मद्दे नजर रखनेसे, जो आनन्दसे मिला हुआ पछतावा होता है उसमें जो आंसू बहता है उससे मानो भक्तके कितने ही पाप कट जाते हैं, पापकर्म धुल जाते हैं। बहुत शुद्ध चित्त होकर ध्यान तो

बताओ कि आसमानमें यहाँसे ५ हजार धनुष ऊपर, मायने २० हजार हाथ ऊपर एक प्रभु विराजमान हैं जिनकी पूर्ण महिमाके कारण स्वर्गके देवता लोगोंने आकर एक बड़ा मंडप बनाया है जिसके आगे जगत्में कोई ज्ञानीका वैभव नहीं हो सकता है। दस बारह कोशमें चौबीस कोशमें एक मंडप बना हुआ है जिसमें कई गोलोंमें कितने ही सुन्दर कोट, खातिका, वाटिका, चैत्यालय आदि रचे हैं, बीचमें प्रभुका दरबार है, स्फटिक भित्तिकाओंसे घिरी १२ सभायें हैं, इसे समवशरण कहते हैं।

समवशरणका अर्थ है जीवोंको अच्छा पूरा शरण मिले। इसके नीचे कितने ही सोपान लगे हुए हैं। बहुतसे पर्वत जहाँ नीचे आ गए हैं उस मंडपकी ओर, जिसमें कहते हैं कि समवशरण अच्छी तरहसे पूरा है जहाँ शरण मिलता है, ऐसे समवशरणकी ओर देवता तथा मनुष्य लोग मनमें पुलकित होकर धर्मसाधनोंमें उनके उपदेशोंको सुनते जा रहे हैं। देखो ना, आनन्दमें नाना प्रकारके गुणानुवाद करते हुए नृत्य कलामें साथ चले आ रहे हैं। ये देवांगना व देवता लोग हर्षित हो रहे हैं और प्रभुमें गुणानुवादोंके पीछे अपने परिवारको भूल गए हैं। देखो भैया, यहाँ ही जब आप किसी त्यागीका आदर करते हैं तो पहले अपने त्यागी को ही अपना मानते हैं, पहले त्यागीको खिलाते हैं, चाहे बच्चे भूखे पड़े रहें, फिर तो यहाँ तीन लोकके नाथकी बात कही जा रही है। अपने प्रभुके पीछे अपने परिवारको त्यागकर चले जा रहे हैं। उन्होंने अपने परिवारको भूलकर उस प्रभुको कितना अधिक माना होगा? उनका विश्वास है कि मेरा शरण मेरा प्रभु है। मेरे समस्त संकटोंको टालने वाला मेरा प्रभु है। कितने ही प्रकारके गीतवादित्रोंके दिव्य शब्द होते चले आ रहे हैं। धन्य है उन परम आत्माओंको जिनके विकासके कारण दुनियाके लोग एकचित्त होकर, आकर्षित होकर जिनका चरणसेवन प्राप्त कर रहे है। यही अरहंत भगवान मंगल हैं। फिर कहते हैं कि सिद्ध भगवान् मंगल हैं जो इस शरीरके झंझटसे सदाके लिए मुक्त होकर ज्ञानानन्द स्वरूपमें विराज रहे हैं। ऐसा सिद्ध प्रभु वही मेरा सब कुछ है।

ममताके साधनभूत परिवारके बच्चे भी कुछ कहने आवें तो भी भक्तिके समय तो विशेषतया ही ज्ञानीके भाव रहता है कि मेरेको किसी कार्यसे प्रयोजन नहीं है। जगत्के बड़े बड़े बाह्यपदार्थोंसे या सबसे उत्कृष्ट तो यह प्रभु हमारा है, जो समस्त राग, द्वेष, मोह भावोंसे रहित और इस शरीरसे रहित, ज्ञानानन्दस्वरूप विराजमान है। वह प्रभु इसके लिए मंगल है। वह साधु जिसको केवल अपने शुद्ध स्वरूपके अनुभवका ही काम है, केवल अपने शुद्ध स्वरूपमें ही जिनकी रुचि है, इसी कारणसे जिनके शरीरमें एक धागा भी नहीं है, न वस्त्रों की रुचि है, न सांसारिक कार्योंकी रुचि है, जिनके वैराग्य मुद्राके दर्शन करने मात्रसे

उसके आत्मरसका भी अनुमान हो जाता है। शरीरका साधन समझकर यदि शरीरके लिए आवश्यक समझा विवेक ने तो वह विवेक दिनमें एक बार विधि मिली तो आहार करा देता है जिनको भोजनसे भी रुचि नहीं है, जो अपने स्वरूपके अनुभवके यत्नमें रहते हैं अन्य कुछ झंझट नहीं रखते हैं, ऐसे वे ज्ञानानन्दघन साधु परमेष्ठी हैं। ऐसे साधुवोंके दर्शनसे भव भव के पाप कट जाते हैं। अरहंत सिद्ध इस आत्माका मंगल बनकर अपने केवल स्वरूपमें परिणमता रहे। केवल भगवान् स्वरूपकी ओर दृष्टि होना यह धर्म है। सो धर्म ही मंगल है। इस आत्माका सहज शुद्ध जो स्वरूप है उसको लक्ष्यमें लेना यह धर्म बतलाया है। अन्तमें देखो वह धर्म ही मंगल कहा है। देखो जिसकी दृष्टि, जिसका विचार, जिसका उपयोग अपने काममें अधिक रहता है उसको बड़े बड़े पुरुष भी आदरसे देखते हैं। इस ही धर्म मंगलके प्रसादसे साधु पूज्य हैं, इस ही धर्म मंगलके प्रसादसे साधु अरहंत सिद्ध भगवान् बने हैं। यह निजधर्म हमारा मंगल है। इसका हम केवल भावका विचार करेंगे। हमको मिलता है या सबका काम बन सकता है, यह भी मालूम होता है। दूसरी बारमें शुद्धिके उपकारमें, आनन्द में, अपने आपके धर्मसे धर्मका काम हो सकता है। उसके समान आनन्दमें किसीका उपयोग अपने द्वारा कुछ नहीं हो सकता है। केवल भगवान्की ओर अपना उपयोग करनेसे धर्म मंगल हो सकता है। इसी प्रकारसे ये चार उत्तम हैं और ये चार शरण हैं। देखो इन चारोंमें पहिले हितकारी अरहंतका ध्यान किया है जिनके कारण सिद्धका भी ज्ञान हुआ। बादमें सुगमप्राप्त उपकारी साधुका ध्यान भी किया है। अन्तमें पूर्ण सार शरण कहा है। केवली भगवान्के द्वारा कहा गया धर्म ही शरण है। केवल भगवान्ने इतना कहा है। क्या कहा है? इतनी बात जो हम भूल गए थे, इसका ही प्रभुने बोध कराया है। ऐसा केवल अपने स्वरूप सत्तामात्र चैतन्यमयकी दृष्टिमें अनुभवो तो यह एक ऐसी दृढ़ कला है कि ऐसा भी उपद्रव आ जाय कि जिससे तीन लोकके जीव अपना अपना रास्ता छोड़कर कहीं भी हटकर घूमने लगें, बिछुड़ने लगें, डरने लगें, किन्तु यह ज्ञानी पुरुष अपने पंथसे विचलित न होगा, जो अपने स्वरूपरक्षाके किलेमें आराम कर रहा है। जैसे माना कि जीव पानीसे ऊपर मुंह उठाकर चलते रहते हैं और जरासा भी उपद्रव उनके सामने आवे तो वे पानीमें डूब जाते हैं। सारे उपद्रव तो शान्त हो गए।

इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष भी कभी अपने ज्ञानसे बाहरी ऊपरी पदार्थोंकी ओर जब मुंह करता है और वहां आकुलता तो होती ही है तो तब झट ही बाहरी पदार्थोंसे मुख मोड़कर अपने उपयोगको अपने ही ज्ञानमें डुबा दे तो सारे उपद्रव खत्म हो जाते हैं। पर ऐसा कर सकने वाले विरले ही ज्ञानी होते हैं। जगत्के ये बाहरी पदार्थ जहां अज्ञानी आनन्द

मानता है उसको ज्ञानका पता भी नहीं। इसी कारण ज्ञानियोंमें रहने वाले, ज्ञानियोंके संगमें ही बसने वाले शीघ्र आत्मानुभव करनेके योग्य हो जाते हैं। बस जिन्होंने अपने आपके अन्तर्मर्मका पता लगा लिया वे पुरुष उपास्य हैं। हम उनके गुणानुवादमें अधिक अनुरागी रहें। हमें जीभ मिली है तो इस जिह्वाका अधिक उपयोग कर लें। जिह्वाके द्वारा गुणी पुरुषोंके गुणानुवादोंसे अपनेको गुण लाभ मिलता है। जिह्वा मिली है तो हम कल्याणके लिए। हमें विनाशीक इस जिह्वाका मन मिला है तो गुणी पुरुषोंका वैयावृत्य कर लो। सर्व व्यवहार धर्मका प्रयोजन आत्मधर्मका पालन है। आत्मस्वभाव व वस्तुस्वभावका दर्शन करना ही धर्मका पालन है। वस्तुस्वभावके जाननेका सुन्दर उपाय स्याद्वादकी विधि है कि भाई अपने आपको पहिचानो, सब वस्तुओंको यथार्थरूपमें पहिचानो। देखो जितनी वस्तुयें हुआ करती हैं वे अपने अपने उत्पाद व्यय ध्रौव्यमें ही रहती हैं। वे सब केवल अपने आप सत्ता लिए हुए हैं। वे सब अनादिसे हैं और अनन्त काल तक हैं और वे अपने आप ही अपने स्वरूपमें परिणमते रहते हैं। अपने ही परिणामसे अपने लिए उत्पाद करते हैं और अपनेमें अपने लिए अपने आप अपनी पूर्व पर्यायका व्यय करते हैं। प्रत्येक पदार्थ अपनेमें अपने लिए अपने आप विकसित व विलीन होते हैं। फिर भी प्रत्येक पदार्थ अपने आप अपने लिए अपनेमें अपना सत्त्व बनाए रहते हैं। यही पदार्थोंका स्वरूप है।

हे आत्मन्! हम सब भी एक पदार्थ हैं। अपने आप बनते हैं। इन पदार्थोंका अन्य किसी पदार्थोंसे रंच भी सम्बन्ध नहीं है। सम्बन्ध नहीं है तब श्रद्धामें पूरे तौरसे सबसे न्यारा अपनेको समझो। सत्य श्रद्धा नहीं पकड़ी तो संसारमें रुलना पड़ेगा।

हे आत्मन्! तू पवित्र है, अपनी प्रभुताको देख, इस ही प्रभुके प्रभुत्वकी भक्तिसे तू पाप काटेगा व सुख पावेगा। यही मंगल है, यही उत्तम है, यही शरण है, यही रक्षक है, यही महान् कला है। यह ही अपने आप और स्वयं ही ज्ञानानन्दमय अपने आपको संसारके सर्वक्लेशोंसे मुक्त करनेका उपाय है।

स्वैकत्वमौषधं सर्वक्लेशनाशनदक्षकम्।
चिन्तामणिस्तदेवास्मिन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-५१॥

जीवका शरीरसे घनिष्ट सम्बन्ध है और शरीरमें जब-जब रोग होते हैं तब तब इस जीवको दुःखी भी होना पड़ता है। पर इस रोगका मूल कारण क्या है और इस रोगके मिटनेका मूल उपाय क्या है? इस बातमें मोही जीवकी दृष्टि नहीं जाती। यह शरीर मिला है तो जैसे गति नामकर्मका उदय हुआ शरीर नामकर्म संघात, आपद नामकर्मका उदय हुआ, उस उसके अनुसार जीवको शरीर मिला करता है और वह नामकर्म कैसे मिलता है? जैसे जैसे

जीवके परिणाम होते हैं वैसे वैसे कर्मोंके बन्धन होते हैं, शरीरमें रोग होते हैं, व्याधियां होती हैं, मृत्यु होती है, शरीर सड़ता गलता है, खोटा शरीर मिलता है, इन सबका कारण आत्माका परिणाम है। इन सब विपदाओंका मूल कारण क्या है? इसके अन्तरमें कारण खोजो तो खोटा आत्मपरिणाम उनका कारण मिलेगा। जो जो गुजरते हैं उन सबका कारण आत्माका परिणाम है। जैसा परिणाम किया वैसा कर्मबन्धन हुआ। तैसी सामने स्थिति आ गयी। इस शरीरमें विपदाएं, विपत्तियां कैसे मिटें? इसका कारण सोचें तो वह भी आत्मा का परिणाम है। अर्थात् जो उपयोग निज आत्माके सहज, शुद्ध चैतन्यतत्त्वको पहचानता है, वहां ही रमता है, उसको ही आत्मा अंगीकार करता है। वह परिणाम तो सर्वक्लेशों, व्याधियोंके नाश करनेके लिए औषधि रूप परिणाम है। सब क्लेशोंको नष्ट करनेका शुद्धपरिणाम ही उपाय है। जो अपने आपके यथार्थस्वरूपको छोड़कर अन्य किसी जगहमें लगते हैं तो विपत्तियां आती हैं, संकल्प होंगे, विकल्प होंगे, क्लेश होंगे। जगत्के सब कोई पदार्थ मेरे नहीं है, सब न्यारे-न्यारे हैं, एकका दूसरेसे त्रिकालमें कुछ सम्बन्ध नहीं होना। चाहे जितना वैभव हो, चाहे जितना पुण्यवान् हो, उन्हें अपना स्वरूप ही उनको मिलेगा। इसके अतिरिक्त परमाणुमात्र भी नहीं है। जो अपना नहीं है उसको अपना मान लेना उसको अध्यात्मलोक में चोर चाहते हैं। कैसे चोर कहते हैं? देखो यहां भी जो दूसरोंकी चीजोंको उठा लें, अपने घरमें रखलें और मनमें यह धारणा बना लें कि यह चीज मेरी हो गई। यह धारणा जिसने बना लिया तो वही चोर है। इसी प्रकार जगत्के ये सब पदार्थ अपनी अपनी सत्ताके हैं। एक दूसरेसे परस्पर अत्यन्त भिन्न हैं। जो भिन्न चीजें हैं, जिनसे त्रिकालमें हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है, जो अपनेमें ही अपना उत्पाद करता है, अपनेमें ही अपनेको बिगाड़ता है और अपने स्वरूपसे बना रहता है। त्रिकालमें उनका अपना यही काम है। किसीका किसी से रंच सम्बन्ध नहीं। फिर भी उनमें यह धारणा करना कि यह मेरा है। यही तो परमार्थकी चोरी है। यह भगवान् आत्मा तो शुद्ध स्वरूप है। यह भगवान् स्वरूप आत्मा अपने स्वरूपको भूलकर बाहरी पदार्थोंमें आपा अंगीकार करता है। यह मेरा है, यह उसका है आदि। यही चोरी होती है। हमारा है नहीं पर मानते हैं कि हमारा है। जैसे लोकमें चोर क्यों कहते हैं? हमारी चीज नहीं है पर मानते हैं कि हमारी चीज है। जो चोरी करते हैं वह गिरफ्तार किए जाते हैं, उनको सजा होती है। यही हमारी बात है। हम परमार्थको चोरी करते हैं। कर्म हमारे गिरफ्तार कर लेते हैं। यह हमारी सजा उस सजासे अधिक है। नाना प्रकारके शरीर धारण करना, जन्म मरणके चक्रमें आना आदि यह भी जो विपदाएं हैं, घर बार, स्त्री, बच्चे वगैरह इस आत्माको वह सत्य नजर आ रहे हैं, ज्ञान को दबा

रहे हैं, सच्चाईको नहीं सोच सकते हैं। ऐसी विपदाएं देखो परमें आपा माननेसे ही पैदा कर लेते हैं। जैसे यह मेरा है, वह मेरा है आदि प्रकारसे सोचा तो तभी उन्हें आकुलता हो जाती है। क्यों ऐसा होता है वे अपनी दृष्टि बाहर लगाते हैं, जो जैसे हैं उन्हें वैसा नहीं मानते। जो जैसा हो वैसा मानना ही आकुलताओंको दूर करनेमें समर्थ है। अपने शुद्धस्वरूपका परिज्ञान कर लेना, यह सब विपदाओंको नष्ट करनेमें समर्थ है। दूसरा और कोई इन विपदाओंको नष्ट करनेमें समर्थ नहीं है। कहीं बाहर दृष्टि न जावे। धर्मके प्रसंगमें, वेशभूषा मे, मजहबोंमें, क्रिया पद्धतियोंमें उन सबमें दृष्टि न डालो। केवल अपने अंतरमें दृष्टि डालो, अपनेको केवल ज्योतिमात्र समझो अपने आत्माके प्रकट रूपमें दर्शन करो। इसीमें अपने प्रभु का दर्शन प्राप्त होगा। दूसरा उपाय नहीं है कि विपदाएं दूर हो सकें। एक यही अनुभव का उपाय है जो सब आपदाओं, विपदाओंको समाप्त कर देता है। जैसे बच्चे लोग एक कथानक कहते हैं कि किसी जंगलमें स्यार, स्यारनी थे। स्यारनीको गर्भ था, प्रसवका समय था। स्यारने स्यारनीसे शेरके बिलमें प्रसव वेदनाको समाप्त करनेके लिए कहा। बच्चे हो गए स्यारनीको विधि समझा दी। स्यार ऊपर चट्टानपर बैठ गया। स्यारनीने अपने बच्चोंको समझा दिया कि जब कोई आवे तो रोने लगना। एक शेर आया। बच्चे रोने लगे। स्यारने स्यारनीसे पूछा—बच्चे क्यों रोते हैं? स्यारनीने कहा कि बच्चे भूखे हैं, शेरको खाना चाहते हैं। शेर डरकर वहाँसे भाग गया। इस इस तरहसे १०-२० शेर आए तो वह सब भी डरकर भाग गए। सब शेरोंने मिलकर एक मीटिंग की। सबने सोचा कि चट्टानमें ऊपर जो बैठा है उसकी सब करतूत है। सब शेरोंने हिम्मत की और उस स्यारके पास पहुंचे अब सब यह सोचते हैं कि इसके पास कैसे पहुंचा जाय? सोचा कि एकके ऊपर एक खड़े हो जावें। उन सबमें से एक लंगड़ा शेर था। सलाह हुई कि यह उपर चढ़ तो सकेगा नहीं सो इसको नीचे ही खड़ा करो। लंगड़ा शेर नीचे खड़ा होता है और एकके बाद दूसरा, तीसरा, चौथा खड़ा होता चला जाता है। इतनेमें ही स्यारनीके बच्चे रोने लगते हैं। स्यार स्यारनीसे पूछता है कि बच्चे क्यों रो रहे हैं? स्यारनीने कहा कि बच्चे लंगड़े शेरका माँस खाना चाहते हैं। लंगड़ा शेर इतना सुनकर घबड़ा गया। वह एकदमसे भागा। दूसरे शेर जो ऊपर चढ़ गए थे, भद्भद् गिरने लगे और सब भाग गए।

इसी प्रकार हम सब पर अनेकों विपत्तियाँ छाई हैं। जितने जगत्के क्लेश हैं वे सब परमें आपा बाँधे हैं, इस बुनियादपर खड़े हैं। ये सारे क्लेश, सारी विपदायें यों ही खत्म हो जायें। यदि परमें ममत्वबुद्धि जो है वह खिसक जाय। अच्छा परीक्षा ही करके देख लो। जैसे कहते हैं कि यह मेरा घर है। बताओ आपके पास क्या निर्णय है कि आपका हो घर

है। आपका शरीर भी नहीं है। विषय कषाय, विकल्पोंका परिणाम तक भी आपका नहीं है। यह जो कुछ होता है यह भी आपका नहीं है। यह विषय कषायोंके परिणाम आपके स्वभावमें नहीं हैं। अन्य कषायोंके करने वाली भी यह आत्मा नहीं है। केवल मैं अपने स्वरूपको भूल गया हूं, इसलिए सारे झंझट लग गए हैं। अब इस आत्माकी दृष्टि करनेसे शुद्ध स्वरूपकी पहिचान करो। समस्त क्लेश इस आत्मस्वरूपकी दृष्टिसे नष्ट हो जाते हैं। सब क्लेशोंके नष्ट करनेकी सामर्थ्य इस आत्मदृष्टिमें ही है। देखो अंतरंगमें तपस्या करके जो निर्मल परिणाम होते हैं जिनसे घातिया कर्म नष्ट हो जाते हैं तो अरहंत अवस्था मानी जाती है। अरहंत अवस्था आते ही उनका औदारिक शरीर परमौदारिक शरीर हो जाता है। घातिया कर्मके क्षयसे पहिले कोई साधु रोगी हो, कोई जर्जरित हो गया हो, वृद्ध हो, कैसा ही हो अरहंत होनेपर सारा शरीर निरोगपूर्ण, देदीप्यमान हो जाता है। इस शरीरमें कितने ही परिणमन आते हैं परन्तु वीतराग सर्वज्ञ अवस्थामें जब आत्मा हो जाता है तो फिर वह शरीर औदारिक न होकर परमौदारिक हो जाता है। अब भी देखो जब कोई रोग हो तब यदि भगवानकी भक्तिमें लीन होता है, शुद्ध निर्मल परिणाम होता है तब देखो रोग भी दूर हो जाते हैं। इसी कारण जो रोगी बुद्धिमान् होता है, पड़े पड़े निरन्तर णमोकार मंत्र जप किया करता है। इन मंत्रोंमें इतनी विशाल महिमा है कि संसारके क्लेश दूर हो जाना तो सरल बात है, भव भवके बन्धन भी नष्ट हो जाते हैं, क्लेश और झंझट भी समाप्त हो जाते हैं। ऐसी आत्माएं शुद्ध होती हैं।

दो प्रकारके पवित्र आत्मा हैं, एक तो जो आत्मा शुद्ध हैं वे हैं और दूसरे वे हैं जो शुद्ध होनेके प्रभावमें सफल हो रहे हैं। जो शुद्ध हैं वे हैं अरहंत व जो शुद्ध होनेके प्रयत्नमें सफलता पा रहे हैं वे हैं आचार्य उपाध्याय और साधु कहते किन्हें हैं जिनको अपने यथार्थस्वरूपका विश्वास हो गया है, जो अपने आत्माके केवलज्ञानस्वरूपको शुद्ध निरखते हैं। ये आत्मा किन्हीं रोगोंसे सम्बन्धित नहीं हैं, ज्ञानस्वरूप हैं। ऐसा जो आत्मचिन्तनमें दृढ़ हो जाता है, ऐसा जो अपनेको देखनेके लिए बड़ा उत्कृष्ट लालायित हो जाता है, उसे दूसरी चीज जगतमें नहीं रुचती है, उसका परिवार छूट जाता है। असार परिग्रह छूट जाते हैं, यह शरीर नहीं छूट पाता है। यदि शरीर भी छोड़ा जा सकता तो वह शरीरको छोड़कर बाहर ही आत्माकी उपासना करता। वे तो आहार भी नहीं करते, किन्तु विवेक आहार करवा लेता है। यह शरीर धर्मसाधनके लिए है। शरीरकी स्थितिके लिए आहार आवश्यक है सो दिनमें एक बार ही वे आहारकी एषणा करते हैं। एक बारसे ही यह शरीर टिका रहता है। एक बार जो आहार कर ले और बाकी समय तपस्यामें व्यतीत करे, निरन्तर आत्मसाधनमें लगा-

रहें, ऐसी आत्माको साधु पुरुष कहते हैं। उनमें जो ज्ञानी साधु हैं, औरोंको पढ़ाते हैं जिनको आचार्य उपाध्याय घोषित करदेते हैं वे ज्ञानी साधु उपाध्याय कहलाते हैं। जो बड़े बड़े ज्ञायक हैं, साधुओंमें प्रमुख हैं, जिनकी आराधनामें साधु रहते हैं वह आचार्य कहलाते हैं।

देखो यह आत्मा ही परमेष्ठीका स्वरूप है। आत्मा ही मोक्षका मार्ग है। इस निज आत्मतत्त्वको, परमेष्ठित्वको निरखकर अपनी दृढ़ आत्मसाधना द्वारा अपना आत्मकल्याण कर लेना महान् विवेक व पुरुषार्थ है। वह आत्मा जिनके ज्ञान-दर्शन-चारित्र श्रद्धा पूर्ण विकास को प्राप्त हो गए हैं, जिसके ज्ञानमें सर्वविश्वके सकल ज्ञेयतत्त्व प्रतिभास होते हैं, ज्ञात हो रहे हैं, वे हैं सिद्धात्मा। ये प्रभु सर्वज्ञ होकर भी अपने आनन्दरसमयी हो रहे हैं। ऐसा परमानन्दका जो पिंड है उसीको परमात्मा कहते हैं। भगवान्के दर्शन करना है तो अपने स्वरूपमें दृष्टि दो। बाहरी चीजोंमें न अपनेका पता चलेगा और न अपने भगवान्का पता चलेगा। यह इन्द्रियाँ इनको आत्माका घात करने वाला कहा गया है। जब यह जीव इन्द्रियोंके घात करने में लगा रहता है तो यह बरबाद हो जाता है। मुझे केवल ज्ञानदृष्टिसे काम लेना है। मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानका ही कार्य करता हूं और इसके अतिरिक्त कुछ नहीं करता, मैं अपने आपकी दृष्टिमें रहूँ, ऐसे उपयोगमें जो आनन्द होगा उस आनन्दमें वह शक्ति है जिसके कारण भव-भवके संचित कर्म भी ध्वस्त हो जाते हैं। बाकी तपस्याएं जो की जाती हैं वे इन्द्रियोंका कन्ट्रोलमें लानेके लिए की जाती हैं। इन बाहरी चीजोसे कर्म नही कटते, पर आत्मदृष्टिमें जो संतोष होता है उससे कर्म कट जाते हैं। हम इस संसारमें अनंतकालसे भटकते चले आए। उन अनन्त पर्यायोंमें कितनी इच्छायें की होंगी कर्मके प्रसंगमें, किन्तु उन चेष्टाओंसे कुछ नहीं हुआ। अब धर्मका संयोग होता है। ऐसेमें भी यदि हमारी दृष्टि बाहर रमी, बाहर ही हम उलझे रहे, हम केवल अपने आपको न पहिचान सके तो यह सब बाहरी बातें मिट जायेंगी, हम कोरेके कोरे रह जावेंगे।

एक सेठ था। उसकी राजासे बड़ी मित्रता थी। कुछ दिन बादमें वह सेठ गरीब हो गया। कुछ नहीं उसके पास रहा। एक दिन बोला—राजन्! कुछ निधिका संयोग हो तो पुनः व्यापार करूँ। राजाने कहा—२ बजेसे ४ बजे तकका समय देता हूँ। रत्नोंके खजाने मे जाकर जितना तुमसे हो सके रत्न ले आओ। सेठ रत्नोंके खजानेमें चला गया। ज्यों ही वह खजानेके अन्दर पहुंचा वहाँ एक भारी महल था, हाल था। वहाँ देखता है कि यहाँ बहुत सुन्दर सुन्दर खिलौने भी हैं, बड़े कलायुक्त खिलौने हैं, चलते फिरते खिलौने हैं। खिलौने देखना शुरू किया। खिलौनोंमें ही उसका मन रम गया। इतनेमें ही चार बज गए। चपरासी ने निकाल दिया। वह फिर राजाके पास आया। बोला—महाराज मैं तो खिलौनोंमें ही रह

गया। मैं कुछ नहीं कर सका। राजाने कहा—कल २ बजेसे ४ बजे तककी इजाजतमें तुम्हें स्वर्णके खजानेमें जानेको देता हूं। बस सेठ उस स्वर्णके खजानेमें गया। वहांपर भारी मैदान था। वहां उसने सुन्दर सुन्दर घोड़े देखे। वह घोड़ोंका बड़ा शौकीन था। यह घोड़ा देखा, वह घोड़ा देखा, एक घोड़ेपर बैठ गया। चपरासीने जब चार बज गए तो खजानेसे बाहर निकाल दिया। वह सेठ राजाके पास गया। बोला—महाराज, यह भी समय मेरा यों ही गया। मैं घोड़ोंमें ही पड़ा रहा। राजाने कहा—कल २ बजेसे ४ बजे तकका समय देता हूं। एक चांदीके खजानेमें जाना। जितनी चांदी ला सको ले आना। वह सेठ चांदीके खजानेमें गया। वहांपर उसने सुन्दर सुन्दर चित्र देखे। नाना रूपके, भिन्न-भिन्न प्रकारके चित्र देखे। उन बाह्यचित्रोंको देखनेमें ही उसका मन रम गया। इस तरहसे ४ बज गये। चपरासीने खजानेसे बाहर निकाल दिया। सेठ फिर राजाके पास गया। बोला—राजन्, आजका भी दिन व्यर्थ ही गया। राजा बोले कि ३ दिन हो गए, तुम नहीं चेते, अच्छा तुम्हें एक दिनका समय और दिया जाता है। एक तांबेके खजानेमें कल जाना। जितना तांबा ला सको ले आना। चौथे दिन जब सेठ खजानेमें गया तो वहांपर एक बहुत ही अच्छा स्प्रिंगदार पलंग था। पलंग की परीक्षाके लिए वह उसी पलंगपर लेट गया। नींद आ गई। इस तरहसे ४ बज गए। तब चपरासीने निकाल दिया। इसी तरह भाई इस मनुष्य पर्यायके चार पन होते हैं। बच्चा हुआ, फिर बालक हुआ, फिर युवा हुआ, फिर वृद्धावस्था हुई। कुमारावस्थामें भी धर्मपालन करना आवश्यक है। ८ वर्षका बालक भी अरहंत हो सकता है। बालिग जैनोंके सिद्धांतमें ८ वर्षका माना गया है। आठ वर्षकी आयुमें तो सम्यग्ज्ञान सम्यक्त्व व संयम करता है, परमात्मा हो सकता है। कुमार अवस्थामें भी धर्मसाधना नहीं किया, खेलोंमें ही समय बीत गया। युवावस्थाका समय भी स्त्रीप्रेममें व्यतीत हो गया, वृद्धावस्थामें पड़े पड़े अधमरेसे हो गए। बताओ किस पनको इसने सार्थक किया ? देखो छहढाला एक बहुत सुन्दर पुस्तक है। वह तो प्रत्येक गृहस्थको कंठस्थ भी होनी चाहिए। उसमें पहली ढालमें चारो गतियोंके दुःख बताते हुए मनुष्यगतिमें वर्णन किया है कि—

बालकपनमें ज्ञान न लह्यो। तरुण समय तरुणीरत रह्यो ॥
अर्धमृतकसम बूढ़ापनो। कैसे रूप लखे अपनो ॥

बचपनमें तो ज्ञान नहीं किया, जवानीमें स्त्रीरत रहा, बुढ़ापा अर्धमृतकसम है, बताओ अपना रूप कैसे लख सकता है ? भाई कुछ लोग ऐसा सोच सकते हैं कि बुढ़ापा तो आता ही है, सब कुछ कर लें, बुढ़ापा तो आयेगा ही और बुढ़ापेमें सब खराबी होगी तो किस लिए धर्म पुरुषार्थ करें। इसका समाधान यह है कि जिस जीवने बचपनमें ज्ञान नहीं

किया व उसी यौवनमें संयम न कर विषयरति की, ज्ञान नहीं किया तो युवावस्थाके बादमें यह जीव बूढ़ा हो जाता है, अधमरा हो जाता है तो वह कुछ नहीं कर पाता है। जहाँ धर्म की ओर दृष्टि रहे ऐसा पुरुष बूढ़ा है तो क्या हानि है? आत्मस्वरूपकी ओर तो दृष्टि ज्ञानी ही डाल सकता है। बड़ी अवस्थामें तो उन ज्ञानियोंका ज्ञान ही मंज जाता है, उनको हानि नहीं होती है। ज्ञानी तो वह है जिसकी आत्माके स्वरूपकी ओर दृष्टि रहे, वही ज्ञान वास्तविक है। बड़े बड़े रेडियोका आविष्कार, वैज्ञानिक कलाएं आ जावें तो यह वास्तविक ज्ञान नहीं है। मैं आत्मा ज्ञानस्वरूप हूं, यदि ऐसा अनुभव नहीं है तो जगत्में रंच भी शांति नहीं हो सकती है। यदि मैं बाहरी पदार्थोंमें दृष्टि कर लूं, उनको ही अपना मान लूं तो क्या बाहरी पदार्थोंमें कुछ अधिकार पाना अपने बसकी बात है। अरे इन बाहरी पदार्थोंका प्रवेश भी इस आत्मामें नहीं है। पर जिन्होंने विकल्प बनाया है उन विकल्पोंके यों ही भ्रमसे परको अपना मान लिया है। इसका फल यह होता है कि वे कर्मबन्धनोंमें बंध जाते हैं। ऐसा एक निर्णय करो कि मैं आत्मा ज्ञानघन हूं, मेरेसे ही मेरा काम पूरा पड़ेगा। यहाँके चकाचौंध चार दिनके हैं, मिट जावेंगे। यहाँ कुछ नहीं रहेगा, मैं एक सत् सार वस्तु हूं, मैं रहूंगा, अनादिसे हूं और अनन्त काल तक रहूंगा। अब हमें क्या करना चाहिए जो हमें क्लेश न हों। मैं अमुक जातिका हूं, कर्मके उदय हैं, मैं अमुक कुलका हूं, अमुक मजहबका हूं, अमुक धन वाला हूं, इतना समझदार तथा धर्मात्मा हूं—ये सब विकल्प ही विपदाएं हैं। ये बाधाएं वह अपने आपमें डाल रहे हैं। इन सब बातोंसे दूर रहना चाहिए। अरे तू तो निर्विकल्प है। तेरेमें विषय कषाय ही नहीं हैं। तू तो ज्ञानसे रचा हुआ है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यही दृष्टि धर्मका पालन है, यही कल्याणका उपाय है। यह अगर कर लिया तो सब कुछ कर लिया और अगर नहीं कर पाया तो कुछ नहीं कर पाया। यदि ऐसा नहीं कर पाया तो उद्धार नहीं होगा। दिखाकर नहीं, बनाकर नहीं, गुप्त ही रहकर तू अपना कल्याण कर सकता है। बनावट, सजावट, दिखावट इत्यादि करता है। गुप्त होकर आत्मरूपकी देखने की कोशिश नहीं करता है। बननेसे धर्मकी बात कैसे होती है? दिखानेसे धर्म हमारा खत्म होता है, सजानेसे धर्म हमारा नहीं रहता है। सो अपने आत्मस्वरूपको अपना लो और मनन करलो। इसमें ही रमने से तुम्हारा कल्याण हो सकता है अन्यथा कल्याण कोसों दूर है। जो अपनेमें है उसे देखो और अगर न देखो तो अहंकारोंसे घुलमिल जावोगे। कहीं कीड़े मकोड़े हो गए तो सारी इज्जत धुल जायगी। यह क्यों धुल गयी? यह सब क्या है? परिणाम आया, सारी इज्जत धुल गयी। एक जगह एक छोटी कहानी लिखी है कि एक साधु था और एक शिष्य। दोनों एक राजाके बगीचेमें पहुंच गए। वहाँ पलंग पड़े हुए थे।

एक पर संन्यासी आकर बैठ गया और दूसरेपर शिष्य आकर बैठ गया। संन्यासीने शिष्यसे कहा कि तुम बनना नहीं। थोड़ी देर बाद राजा घूमने आया। उन्हें देखकर राजा ने सिपाही से पूछा कि बगीचेमें ये कौन बैठे हैं ? सिपाहीने कहा महाराज दो अपरिचित व्यक्ति बैठे हैं। पता नहीं है कि कौन हैं ? सिपाही शिष्यके पास आकर कहता है कि तुम कौन हो ? शिष्य ने कहा कि तुम देखते नहीं हो कि हम साधु हैं। उस शिष्यको सिपाहीने कान पकड़कर बाहर निकाल दिया। सिपाही संन्यासीके पास आकर पूछता है कि तुम कौन हो ? साधु कुछ नहीं बोलता है। अब सिपाही राजाके पास गया तो बोला कि राजन् एक मनुष्य है, मौन है, वह कुछ बोलता ही नहीं है और शिष्यसे पूछा कि तुम कौन हो ? उसने जवाब दिया कि देखते नहीं हो कि मैं एक साधु हूं। सो मैंने उसे कान पकड़ कर बाहर निकाल दिया है। राजाने कहा कि जो मौन है, कुछ बोलता नहीं उसे छेड़ा तो नहीं था। अरे वह कोई संन्यासी होगा। राजाके पास जाने पर शिष्यने गुरुसे पूछा कि मैं क्यों पीटा गया ? आप तो यहां बैठे हैं। गुरुने कहा कि तुम बने तो नहीं थे ? शिष्य बोला कि मैं बना तो नहीं था, यही कहा था कि देखते नहीं मैं साधु हूं। गुरु बोले यही तो बनना हुआ। अरे तू तो ज्ञानस्वरूप आत्मा है। तू अपने आप भ्रमवश मानता है कि मैं गृहस्थी हूं, साधु हूं।

इन बाह्य वेशभूषाकी दृष्टि छोड़कर अपने परमार्थ स्वरूपको देखो। है तो यह ज्ञान-स्वरूप आत्मा, और बनता है और कुछ; अन्तर्दृष्टि करनेपर यह अनुभव करेगा कि मैं सर्व साधारण एक चैतन्यमात्र वस्तु हूं। जो अपने आप चैतन्यमात्र हो अनुभव करे वह न कलेगा। निकट समयमें ही उसकी मुक्ति हो जायगी। हमें न देखना है कि मैं दयालु हूं अथवा न देखना है कि मैं तपस्वी हूं। मुझे अपने ज्ञानस्वरूपका चिन्तन करना है। यह चिन्तन ज्ञानसे होता है, ज्ञानकी उपासना की तो भी यह ज्ञान होता है कि मैं ज्ञानघन हूं। यह दिखानेमें, बनावटमें, सजावटमें, सोचनेमें न मिलेगा। उससे कीड़े मकौड़े बनते रहना होगा। अपने आपमें ही रमनेका प्रयास करो। इसीमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र हैं। इस रत्नत्रयके एक तत्त्वमें आत्माके एकत्वका विकास है। यह एकत्वदर्शन चिंतामणि दर्शन हैं। इसके दर्शन बिना ही शरीरके क्लेशोंका सम्बन्ध हो जाता है। यही ज्ञानमात्र स्वरूप हमारे और आपके उपयोगमें रहे। यह ही आत्माका रूप है। जिसने बाहरी पदार्थोंमें दृष्टि नहीं डाली उसका ही जीवनमें कल्याण है।

ज्ञायकत्वे विकारः क्व रागादेः सन्निधावपि।
सोऽहं ज्ञायकमात्रोऽस्मि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-५२॥

इस आत्मामें राग आदि विकार व्यक्त हो रहे हैं। उन रागादिकोंके होते हुए भी

आत्माका जो ज्ञायकत्व है, उस ज्ञायकत्वमें विकार नहीं है। सफेद बल्बमें जैसे हरा रंग चढ़ा देनेसे वह प्रकाश हरा मालूम होता है, खूब हरा मालूम देता है। पर क्या वह हरा होता है ? नहीं। उसपर हरा रंग चढ़ा दिया गया है। जैसे जल है, उसमें हरा रंग मिला दिया जाय तो क्या जलमें हरा आदि रंग आ जायगा ? नहीं। जल जल ही रहेगा। जैसे बिजली के तारका प्रकाश है, वह प्रकाश क्या हरा, नीला, पीला, आ जाय और उससे फिर हरा, नीला प्रकाश भी झलके तब भी बिजलीका जो काम है, बिजलीका जो निजी प्रकाश है, ज्योति है, क्या उस ज्योतिमें विकार आ जायगा ? नहीं। उस ज्योतिमें विकार नहीं आ जायगा। इसी प्रकार यह शुद्ध ज्ञायक स्वरूप भगवान आत्मा इस शरीर देवालयमें विराजमान है। इस शरीरमें कई प्रकारके रूप रंग आदि नजर आ रहे हैं। क्या इन पौद्गलिक पदार्थोंसे जीवोंमें विकार आ गया, ज्ञायकस्वरूपोंमें क्या विकार आ गया ? नहीं। अन्तरमें क्रोध, मान, माया, लोभ, असंयम, योग तथा नाना प्रकारके विकार होते रहते हैं। विकार हैं, पर इस आत्माका जो स्वरूप है वह ज्ञानमय है। क्या उस ज्ञानमय स्वभावमें विकार आ गया ? अरे विकार होते हैं फिर भी वहाँ विकार नहीं होते। ऐसा मर्म जब आपकी समझमें आता है तब आत्माके मर्मका पता चलता है। ५ सेर पानीमें लाल, गुलाबी, हरा कोई रंग डाल दो तो वह सारा पानी बिल्कुल हरा, नीला, गुलाबी या अन्य कोई रंगका ही नजर आता है। यह पानीका स्वरूप है क्या ? उस पानीके स्वरूपमें हरा, पीला, नीला अथवा गुलाबी रंग आ गया। वह केवल रंग डालनेसे ही रंगीन नजर आता है, पर पानीका स्वरूप रंगीन नहीं। पानी अब भी अपने स्वरूपमें स्वच्छ ही है, पर उस पानीकी स्वच्छता रंगसे ढक गयी है। यह ज्ञायक स्वरूप भगवान अपने स्वरूपमें स्वच्छ है, अपने स्वभावमें अविकृत है, किन्तु इन विपत्तियोंके सम्बन्धसे, इन कषायोंके परिणामोंसे इस भगवान आत्माका यह शुद्ध स्वच्छ स्वरूप ढक गया है। ढक गया है तो भी स्वरूपमें विकार नहीं आया। स्वरूपमें विकार आ गया होता तो त्रिकालमें भी यह विकार नहीं मिट सकता था। पानीमें रंग आ जानेपर भी कुछ समय बाद रंग बैठ जाता है और ऊपर पानीमें पतला रंग मालूम होता है। कभी कभी पानी बिल्कुल ऊपर स्वच्छ ही दिखता है। रंगमें रंग है और पानीमें पानी है। रंगको घोल दें तो सारा रंग ही दिखता है और वहींका वहीं पानीमें सारा पानी दिखता है।

अब घरकी बात देख लो। घरमें पिताजी अपनी धोती और साफा पीले रंगसे रंगते हैं तो बोलते हैं कि साफा पीला कर दिया। साफा पीला हो गया, नीला हो गया, लाल हो गया। धोती पीली हो गई, लाल हो गई, नीली हो गई क्या ? चाहे इनको बार बार धोवें, फिर भी रंग नहीं निकले तो भी रंगमें रंग ही है, धोतीमें धोती है, वस्तुमें वस्तु है। वह

तो चीजें अपने स्वरूपको लिए हुए है। इतनी ऊपरी भेदकी बातें भी मोही जीव कैसे पा सकते हैं? भींतमें कलई पोती गई तो भींत लगती है कि सफेद है अथवा यदि रंगमें परिवर्तन करके हरा रंग पोत दिया गया तो कहते हैं कि भींत हरी है। भींत हरी नहीं होती। भींत भींत ही है, जैसी थी वैसी ही है। यह हरा रंग हरा हो गया है। भीत हरी नहीं हुई। इतनी बाहरकी भेदकी बातें समझमें जल्दी नहीं आती है, पर कुछ तो समझमें आ ही रही हैं। यह हरा रंग है, वह रंग ही है। भींत इसमें वहीकी वही है। लेकिन लोग इसको भूल गए हैं। वह समझते हैं कि भींत हरी है। भीतका आश्रय पाकर वह आधी कर्ष इंचका रंगका ढेला १ हजार वर्ग गजमें फैल गया, पर देखने वाले लोग यह समझते हैं कि भींत हरी है, पर ऐसा नही है। भींत तो भीत ही है। ऐसे अनेक उदाहरण ले लो।

अब भाई धीरेसे अपनी आत्माकी ओर आवो। शरीरमें यह जीव बद्ध है। पर जीव इस प्रकार नहीं होगा जैसा कि यह शरीर है। बुद्धिमत्ता है तो अपने ज्ञानस्वरूपमें ही दृष्टि देकर परख लो कि हम हम ही में हैं। गायको जेवरीसे बांध दिया जाय। लोग देखते हैं कि गायको इस जेवरीसे बांधा है। गायका गला रस्सीसे बांध दिया गया है पर गायका पूरा गला ज्योंका त्यों है। वह रस्सीसे नही बँधी है। उसके गलेके चारों ओर रस्सी लटकी है। उसके चारों ओर रस्सी है। उसका ही एक छोर दूसरे छोरसे एकदमसे ऐसा लगता है कि गला रस्सीसे बँधा है। अरे गलेमें गला है, रस्सीमें रस्सी है, रस्सीका यह बन्धन है, गलेका बन्धन नहीं। देहमें देह है। शरीरमें आत्माका बन्धन नहीं है। जरा बाहर देख लो, फिर वही विकल्प आता है कि मैं देहमें बँधा हूं। अरे बाहर न देखो। अपने आनन्दघन स्वरूपको देखो तो अपना स्वरूप अपनेमें मिलेगा। बहुत विषय कषाय हैं, होते रहते हैं, काम मेरा रह गया है, इसमें टोटा पड़ गया है, इसमे यह करना है। पुत्र, स्त्री तथा परिवारको नहीं छोड़ते हैं, उनको ही अपना सर्वस्व देखते हैं, विपत्तियाँ उठाते हैं। अरे तू केवल शुद्ध, ज्ञायकस्वरूप, सबसे निराला, ज्ञानघन, अपनेको निरख, तू एक पदार्थ है जिसमें वही वही है। वह तो एक पदार्थ है और ज्ञानस्वरूप परिणाम रहता है। जहाँ विकल्प एक नहीं हैं, ऐसा यह स्वयं स्वरूप है। चमड़ेकी आँखें खोलकर यदि अपनेको देखेंगे तो उतनी ही विपदाएं आयेंगी। सर्वज्ञदेव तो कहते हैं कि उन प्राणियोंके रागादिक भाव जब होते हैं उस समय भी आत्माका जो स्वरूप है, स्वभाव है, ज्ञायकत्व है, उसमें विकार नहीं होते हैं। मैं शुद्धस्वरूप हूं। यह दृष्टि हो तो आते हुए विकार भी खतम हो जावेंगे। और यदि शुद्ध स्वभावमें दृष्टि नहीं है तो समझो कि विकार बुलाए आ रहे हैं। ख्यालमें ख्याल रखो तो ख्याल होता चला जायगा और अगर उस ओरसे मुड़कर किसी आरामके स्थानपर उपयोग लगाया तो वह बात ख्याल

होते हुए भी भूल जायेगा।

तात्पर्य यह है कि आत्माके स्वभावमें रागादि दोष नहीं है। जैसे कोयलेकी आग जल रही है और उसीमें गंधक, लोबान भी डाल देते हैं। गंधक लोबान डाल देनेसे हरे, पीले रंगकी लौ निकलती है। उस हरी, नीली लौ के होनेसे क्या अग्नि हरी, नीली हो गई। अग्नि तो इस उष्ण प्रकृतिमय सदा एकस्वरूप है। चाहे उसमें लौ हों या न हों, किसी रंग या आकारकी हो इससे क्या? प्रत्येक परिस्थितिमें अग्नि एक समान ही है। इसी प्रकार कर्मोंके विविध सम्बन्धसे इस आत्मामें क्रोध आता है, मोह आता है, माया आती है, नाना प्रकारके विकार, नाना प्रकारके विकल्प छाये रहते हैं। इतनेपर भी इस भगवान् आत्माके स्वरूपको देखो तो वह सदा एक ही स्वरूप है। यह बात सुननेमें समझनेमें थोड़ी आती हो तो भी इस बातका पता लगाये बिना उत्थानका मार्ग नही मिलेगा, और और प्रकारसे तो धर्मके मार्गपर चलकर ही जहांका तहां अन्य उपायोंसे तो मात्र कल्पित सन्तोष प्राप्त किया जा सकता है। जैसे गर्मीके दिनोंमें रातके समयमें समुद्रके पास एक नदीके किनारे खड़े हुए जहाजमें या बड़ी नावमें कुछ मनुष्य बैठ गए। जहाज या नाव रस्सीसे खूंटेसे खोला नहीं और उसपर बैठ गए। नावको वे खे रहे हैं, ताकत लग रही है, परिश्रम लग रहा है, दो, तीन, चार घंटे तक नाव चली, ६ घंटे तक चली, सवेरा हो गया, सोच रहे थे मन ही मन कि अब चार मील पहुंच गए हैं, अब ५ मील पहुंच गए हैं, अब हम अपने गांवके किनारे लगे जा रहे हैं, खुश हो रहे हैं। जब सवेरा हुआ तो देखा कि नाव अपनी ही जगहपर स्थिर है। बोले, अरे भूल हो गई। बहुत परिश्रम किया, ताकत लगायी, पर नाव वहींकी वहीं रही। क्या किया कि खूंटेसे रस्सी खोली ही न थी।

इसी प्रकारसे धर्मकी बातें सोचकर बहुत बहुत बातें कर डालीं। ४०, ५०, ६० वर्ष बहुत बहुत बातें कर लीं। इस तरहसे बहुत श्रम करनेपर भी जो हम अपनेको पाते हैं तो हममें अशांति ही नजर आती है। उस २४ घंटेके समयमें कोई दो क्षण तक ऐसा नहीं नजर आता कि वह धर्म करता है। यदि ऐसा समय आ जाय तो उसे शान्ति मिलती है अपना स्वरूप तो देखो यहाँ सब कुछ है। मैं कृतार्थ हूं, स्वरूपवर्तनके अतिरिक्त मेरेको कुछ करनेका नहीं है, लेकिन मोहके खूंटेसे उपयोगकी रस्सी बँधी हुई है, उसे खोला नहीं है। हमारे १० लाख हैं, हमारे महल हैं, हमारे यही परिवारके लोग सब कुछ हैं। परिवारमें दो-चार लोग हैं, वे ही सबसे बढ़कर हैं। भगवानकी उतनी कदर नहीं है जितनी कि बच्चोंकी है, उनका जो कुछ सर्वस्व है वही दो-चार लोग हैं। परम पवित्र ज्ञान जिसके दर्शनसे मिलता है उस स्वरूपका दर्शन ही नहीं हुआ। वह अपना आया कैसे?

अनेकों काम कर डाले, बड़े-बड़े प्रयत्न कर डाले, और बड़े-बड़े प्रयत्न करके भी जगत्में जहाँ के तहाँ रह जाते हैं, किन्तु आत्मशांति, आत्म-आनन्दके लिए जो यत्न करना चाहिए उस यत्नके लिए तैयार नहीं होते। करते हैं पर तैयार नहीं होते। जैसे उपयोगमें कोई जमा ले जाता है कि हमको तो यह दूकान करना ही है। इस तरह जम करके यह बात नहीं आयी कि हमको तो आत्मशान्ति लेनी ही है। मुझे तो आत्मकल्याण करना ही है। इस तैयारीके साथ भाव उत्पन्न हुआ हो तो यह सब अपने स्वरूपकी बात बहुत जल्दी सुगमतया अन्तरमें बैठ जाय। देखो यह आत्माका स्वरूप जो केवल ज्ञानरसमय है, जानन जानन ही जिसकी पूरी बोडी है, विचित्र जगत्के सब पदार्थोंका सार यह ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा है। इस आत्मामें न विकार हैं, न विपदाएँ हैं। स्वरूपकी बात यह है पर सत्के इस पिंडकी बात यहीं सब सामने है। क्रोध है, माया है, लोभ है, ये सब सत् पिंडमें हैं पर स्वरूपमें नहीं। शरीर तो केवल चल रहा है। हाँ केवल शरीरको पिंड मान लिया तो एक ब्रह्मवाद निकल आया है। मैं निर्विकार हूं। ठीक स्वरूपसे निर्विकार हूं किन्तु इस पिंडमें परिणमन तो निरन्तर चल ही रहा है। पानी गर्म हो गया है। पानीमें बहुत गर्मी आ गयी है, पर पानीके स्वभावमें गर्मी है क्या? पानीके स्वभावमें गर्मी नहीं है। इतनी बात सुनकर कि पानीके सत्त्वमें गर्मी नहीं है। कहीं उस खौले पानीको पी लिया जाय तो पता चल जायगा कि पानी के स्वभावमें गर्मी नहीं है पर इस पिंडमें तो अभी कोई पानी पी ले तो बोलता है कि हाय जीभ जल गई। कहता है कि यदि पानी स्वभावसे गर्म नहीं होता तो मैं जल कैसे जाता? इसका तो पता लगानेके लिए ज्ञानीसे मालूम कर पानीके पिंडमें गर्मी है, पानीके स्वभावमें नहीं। बस इतने ही अन्तरसे वेदान्तोंके व स्याद्वादके स्वरूपमें ही अंतर है। इस ज्ञायकस्वरूप में विकार कहाँ है? जिस स्वरूपमें विकार नहीं है, ऐसा ज्ञायकमात्र मैं हूं; मैं आत्मा अनन्त-ज्ञानानन्दस्वरूप हूं।

हे आत्मन्! तू परमें दृष्टि न लगा। पर मिट जाने वाले हैं, तू मिटने वाली चीजोंका विश्वास करता है। परमें दृष्टि लगानेसे दुःख होगा। अभी घरमें दादाके गुजरनेसे दुःख होता है। क्यों दुःख होता है? यों दुःख होता है कि उनके बाबा, बच्चेके बारेमें यह निर्णय किया था कि ये सब अमिट हैं। अब तक उनके मनमें यह नहीं आया था कि जो समागम होगा वह मिटेगा ही। सो अगर कोई कह देता है कि क्या बापजी मर जावेंगे तो कहेंगे कि कैसे तूने सोच लिया कि बापजी मर जावेंगे। यह तू असगुनकी बात क्यों सोच रहा है? अरे यहाँपर जो कुछ है वह सब मिटेगा। शिकारी आदमीको कोई अगर साधु मिल जाय तो उसे बड़ा गुस्सा आयेगा। शिकारीके लिए साधुका दर्शन असगुन हो गया। मोहियोंके लिए ज्ञानी

और वैरागी तो असगुन हैं। यदि सत्यस्वरूपको देखा जाय तो समझमें आता है कि सगुन तो ज्ञान और वैराग्य ही है। मोह सम्बन्धी यदि तूने अपना समय असगुनमें ही व्यतीत किया तो कष्ट तो लगेगा ही। यदि अपने स्वभाव सगुनमें उपयोग दिया तो तेरेमें तू ही है, तुझे कष्ट नहीं होंगे। जहांपर ज्ञानदृष्टि होगी वहांपर दुःख अनित्यमें अनित्यकी दृष्टि होनेपर वह पदार्थ मिट जाय तो वह ज्ञाता रह सकता है। वह तो यही कह उठेगा कि देखो वही बात हो गई ना, जो हम पहले समझते थे। अरे वही तो होगा जो हम समझते थे। किसी सौदेके खरीदनेमें तुरन्त यदि अनुभव हो जाय कि इसमें तो ठग गए, १० हजारका खरीदा हुआ बेचनेसे ६ हजारका पड़ता है तो इतनेकी हानि हो रही है। वह इस सौदेको वर्षभर रखकर बेचता है और उतना टोटा पड़ता है तो पड़े, परन्तु इससे उसे दुःख नहीं होगा। क्योंकि वह समझता है कि इसे एक वर्ष पहले खरीदा था, तब भी यह टोटा था। देखने सुननेका ही आत्माके भीतर कितना कमाल हो गया? यह प्राणी अनित्यको नित्य समझे तो जब हम मरते हैं तब हम रोते हैं। इस असार शरीरको जब हमने सार समझ लिया तब रोते हैं। असार चीजको जब हमने सार समझा तब हम रोते हैं, दूसरेकी चीजोंको जब हमने अपना समझ लिया तब हम रोते हैं, असत्यको सत्य समझ लिया तब हम रोते हैं। वहाँ पवित्रता नहीं है जहाँ मोह है।

लेकिन कहते क्या हैं कि नाली गन्दी है, यह पानी गन्दा है, सड़ा हुआ है, इसमें बदबू है अर्थात् इसमें बहुतसे गन्दे पदार्थ पहुंच गए हैं, गन्दगी है, सड़े गले मांसकी तथा अन्य बाह्यपदार्थोंकी वह गन्दगी कैसे हो गई? सोचो तो सही। पहले तो इस गन्दगीमें मिष्टान्नके टुकड़े थे, बर्फी थी, बून्दी थी, लड्डू थे, परन्तु अब तो विष हो गया। अब वह गन्दगी बन गई। अब जो गन्दगीकी शक्ल है वह भी पहले एक साफ पिंड थी और उससे पहिले देखो तो वे अणुस्कन्ध थे, आहारवर्गणायें थीं। उनसे भी पहिले परमाणु परमाणु थे। उन स्कन्धों पर जब आत्माने कब्जा कर लिया, उन्हें ग्रहण कर लिया तो ये शरीरकी शक्ल बन गए। वे बनकर इस शक्लमें आ गए हैं। इन सब बातोंका मूल कारण क्या है? इनका मूलमें कारण यह हुआ कि इन परमाणुवोंमें आत्माका कब्जा हुआ, जीवका सम्बन्ध हुआ तब उन्हें ये विभिन्न शक्लें मिलीं। जब तक इस पिंडके साथ आत्माका सम्बन्ध न हुआ तब तक अपने आत्मासे सम्बन्ध होनेपर, मोही आत्मासे सम्बन्ध होनेपर इन वर्गणावों जैसी प्रगति होने लगी। ये सब गंदगियाँ अशुद्ध हैं, किसके प्रसादसे? जीवोंके सम्पर्कके प्रसादसे। जीवोंके नहीं, मोही जीवोंके। तब मोह ही तो मूल हुआ। देखो लोकमें जो लड़का अशुद्ध हो जाता है उसको छूते तो नहीं हैं। बाहर रहो, बाहर रहो, कहीं छू न लो। यदि उस लड़केने छू लिया तो

अशुद्ध हो गए, दिलमें अशान्ति हो गई। दूसरेने तीसरेको, तीसरेने चौथेको छू लिया, जहाँ तक नजर चलती है वह सब अशुद्ध ही होते चले जाते हैं। यह क्यों अशुद्ध हो गए ? उसने हमें छू लिया। उन सबमें मूल खराब है केवल एक लड़का। अरे यह तो शुद्ध है, किन्तु हो गया जठराग्निसे सम्बन्ध। यह जठराग्नि कैसे बनी ? मोही जीवके संबंधसे। लो जठराग्नि भी गन्दी हो गई जीवका सम्बन्ध होनेसे। अब सब गन्दी शक्लें बनने लगीं। अब मूल कारण का विचार करें तो मूलमें क्या अशुद्ध है ? किस वजहसे सारी चीजें अशुद्ध हो गयीं। अरे रागी जीवने कब्जा किया तो यह अशुद्ध हो गया। जीवके सम्बन्धसे यह अशुद्ध नही हुआ किन्तु रागके सम्बन्धसे यह अशुद्ध हो गया। फिर यह राग हुआ क्यों ? यह अशुद्ध राग बना क्यों ? अरे मिथ्यात्वकी वजहसे यह अशुद्ध राग बन गया। दुनियामें सबसे गन्दा होता है मोह। क्या मांससे गन्दा है ? हाँ मांससे भी गन्दा है, खादसे भी गन्दा है तथा अन्य अशुचि पदार्थोंसे गन्दा है। हाँ हाँ सब पदार्थोंसे गन्दा है। गन्दगी जो है उसका करने वाला भी यह मोह ही है। मोह है, मोहका सम्बन्ध जीवसे है तो राग पैदा हुआ। तो राग तो मोह परिणामोसे हुआ। शरीर बन बैठा तो यह मोह दुनियामें जो गन्दी चीज है तो केवल एक मोह है और कोई दूसरी चीज इस दुनियामें गन्दी नहीं है। मोहने इस समस्त जगत्को गन्दा कर दिया है। उसका महत्त्व इतना है कि भगवान् भी छूट जाय, धर्म भी छूट जाय, सबसे मुंह मुड़ जाय, पर मोहसे मुख नहीं मोड़ते। यही वजह है कि हमारे धर्मके प्रयत्न तो होते हैं, धर्मको नाव चलाते तो हैं किन्तु उपयोग की रस्सी मोहको खूंटीसे गड़ी हुई है ? ४० वर्ष तक धर्म किया, पूजा की; सेवा की ५० वर्ष तक, परन्तु आज हम उसी जगह पर हैं। कषाय में फर्क नही पड़ा। वह सहज उजेला नहीं मिल सका। यही चीज समझनेकी है कि इस आत्माके ज्ञायकस्वभावमें क्या विकार है ? मैं तो मैं ही ज्ञानमय हूं। ज्ञानमय होना ही मेरा स्वभाव है। ऐसा ही मै शाश्वत निश्चल हूं। यही साक्षात् भगवान है। भगवान होनेके लिए बाहरसे कुछ नही आता मैं तो बना बनाया भगवान हूं। मेरेमें विषय कषाय नहीं हैं। विषय कषायोंको ज्ञानदृष्टिकी छेनीसे काटकर बाहर कर देना है और फिर है बना बनाया प्रभु। जैसे पत्थरकी मूर्ति बनाई जाती है तो पत्थरसे जो कारीगरोंने मूर्ति तैयार की। उसमें केवल बाहरी ढकने वाले पत्थरोंको काट दिया, मूर्ति तैयार हो गयी। कुछ बाहरसे मूर्ति तो नहीं रची। इसी प्रकारसे मूर्तिको तैयार कर लेते हैं तो अन्य काम नहीं करने पड़ते हैं। यह मूर्ति वही तैयार कर सकते हैं जो कुशल कारीगर हैं। जो मूर्ति पहले थी वह अब भी है। जरासा ढकने वाले पत्थरोंको काटकर हटा दिया मूर्ति तैयार हो गई। इसी प्रकार इस आत्मामें भगवान बननेके लिए कुछ नही बाहरसे लाना है। केवल ज्ञानस्वरूपको ढकने वाले जो विषय

कषायोंके परिणाम हैं उन विषय कषायोंको ज्ञान-छेनीसे बाहर करना है। यह स्वरूप कृत-कृत्य है। दूकान करनेको पड़ी है। यह नहीं चलेगी तो इसके बिना गुजारा नहीं होगा। ऐसा कुछ नहीं है। विषय कषायोंकी गन्दगीको हटाकर इस ज्ञानस्वरूपमें भगवानके स्वच्छ व सही दर्शन तो कर लें, और अगर न कर सकें तो हम जहांके तहां मौजूद मिलेंगे।

दुःखी किं विवशः किं मेऽत्रैव न्यायो विधिर्जगत्।
सुखागारोऽप्ययं तस्मात्स्वां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-५३॥

हे सांसारिक प्राणी, हे ज्ञानानन्दघन आत्मन्! दुःखी क्यों हो रहा है? विवश क्यों हो रहा है? अपने स्वरूपको तो देखो। तेरा तू ही है, एक ज्ञानघनरस, आनन्दपुञ्ज है। तुम्हारा आनन्दस्वरूप ही है। दुःख तो तूने कल्पनाएं करके बनाए हैं। स्वभावमें तो आनन्द ही भरा हुआ है। तेरा स्वरूप चतुष्टय तुझमें ही है, तेरा उत्पाद व्यय ध्रौव्य तुझमें ही होता है। सभी पदार्थोंका अपना अपना स्वरूप उन उन ही में है। अन्य पदार्थोंका दूसरे पदार्थोंसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, किन्तु जब यह चैतन्यमय ज्ञानमात्र वस्तु बाह्यपदार्थोंमें कल्पनाएँ करता है कि यह मैं हूं, यह मेरा है, बस इन कल्पनाओंसे दुःख उत्पन्न होने लगता है। दुःख का मूल दृढ़ नहीं है। एक केवल भ्रमसे बाह्यमें आ जानेसे, अध्रुवका आश्रय मान लेनेसे क्लेश उत्पन्न होते हैं। क्लेशोंका मूल दृढ़ नहीं, परन्तु हिम्मत करना नहीं तथा अपने आपके स्वरूपमें ही आपा बुद्धि रखना नहीं और क्लेश यों ही मौज करते करते खत्म हो जायें, सो कैसे हो? सबसे न्यारा विज्ञानघन एक निजी आत्मतत्त्व मैं समझूं तो सारे क्लेश समाप्त हो जावेंगे। तेरा न्याय तू ही है तेरा न्याय करने वाला कोई दूसरा नहीं है। तेरी पुकारका सुनने वाला दूसरा कोई नहीं है। तेरी प्रभुता तेरेमें ही है। तू ही अपनी पुकारको सुन सकता है। तेरी आवाज तेरा प्रभु आत्मा ही सदा सुनता रहता है अर्थात् जैसे परिणाम उत्पन्न होते हैं वैसे ही इस प्रभु आत्मामें परिणतियां होती चली जाती हैं। तेरा निर्णय तुझमें है। तू अन्यत्र दृष्टि मत कर। तूने अन्यत्र दृष्टि बहुत की, इसीकी वजहसे दुःख होते आ रहे हैं। यह मेरा स्वभाव नहीं है। परको तो महिमान जान। महिमान कहते हैं उसे जिसकी कोई महिमा न हो। आते हो तो आओ, न आते हो तो चले जाओ। ऐसे ही महिमान होते हैं। जिनके प्रति लोग कहा करते हैं कि इसकी चाहे यह बड़ा भी हो, मेरे यहाँ महिमा नहीं है। तू अपने ज्ञानस्वरूपको देख और कर्मोंके स्वभावसे उत्पन्न हुए भाव, राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह आदि यह तेरे स्वभावमें नहीं हैं। तू तो निश्चल एकस्वभाव मात्र है। तू अपने को ज्ञानस्वरूप ही अनुभव कर। जैसे कोई पुरुष इसके मित्र हैं, मैं इसका मित्र हूं, इस तरह से जो अनुभव करता है जिनको मित्र माना है, जिनको वैभव माना है, उन्हींसे उसे क्लेश

होते हैं और उन क्लेशोंसे उसे रंज होता है, दुःख होता है। इसी प्रकार यह किन्हीं पदार्थों को अपना मान लेते हैं तो इस बिगाड़से ही उसे दुःख उत्पन्न होता है। इन रागात्मक भावों को तू अपना मान लेता है तो दुःख उत्पन्न होता है। भेदविज्ञानकी चरम सीमा यह है कि तू अपने औपाधिक भावोंको अपने आपसे न्यारा समझ। यह धन वैभव तो प्रकट न्यारे दिखते हैं। मकान है देखो यह तो प्रकट न्यारा दीखते हैं, ये मित्र तो प्रकट न्यारा दिखते हैं, परिवारके लोग भी जुदा जुदा हैं और इसी आत्मभूमिकामें जो अष्ट प्रकारके कर्मबन्धन बंधे हुए है, वे भी इस आत्मासे जुदे हैं। वे पुद्गल कहलाते हैं। रूप, रस, गंध, स्पर्श वाले हैं, वे सब भी न्यारे है। इस आत्मामें जो रागादि विकार उत्पन्न होते हैं उन्हीं से सुख व दुःख उत्पन्न होते हैं। अच्छा जरा परीक्षा तो करो कि न्यारा है कि नहीं। एक दृष्टिसे देखते हैं तो वह न्यारे नहीं जचते हैं।

मेरा द्रव्य ही तो इस समय यों परिणमता है। जब इसके कारण देखते हैं तो जुदा समझमें आ जाता है। यह विकार मेरा नहीं, यह मेरे स्वभावके कारण नहीं हुआ, रागादि भाव मेरे स्वभावसे उठकर नहीं होते किन्तु कर्मके उदयके निमित्त पाकर झलके होंगे। जिन महात्माओंने, जिन सौभाग्यशाली पुरुषोंने इस निराले तथा चैतन्य चमत्कारमात्र स्वरूपको पहिचाना है वे आनन्दमय हैं और जिन्होंने अपने स्वरूपको नहीं पहिचाना है वे प्राणी संसार में रुलते हैं, रोते हैं। ए रोने वाले प्राणियों, व्यर्थमें दुःखी हो रहे हो, व्यर्थमें विवश हो रहे हो। तेरी सहायता करने वाला संसारमें है क्या, तेरे को दंड देने वाला कोई दूसरा इस जगत् में है क्या? तेरा अहित करने वाला, तेरा पहिचानने वाला, तुझे मुक्तिमें ले जाने वाला, तेरे को इस संसारमें भटकाने वाला कोई दूसरा इस जगत्में है क्या? कोई नहीं है। आप तो परिणाम करते हैं और ये क्लेश अपनेमें ही औटोमैटिक बनते चले जा रहे हैं। इन दुःखोंसे बचना है तो अपने स्वरूपको देखो, दूसरा कोई उपाय नहीं है। धर्मका पालन इसीको कहते हैं। धर्म बाहर नहीं, वेशभूषामे नहीं, नाना स्थानोंमें नहीं, नाना पद्धतियोंमें नहीं, केवल निज सहज स्वभावमें यह ही मैं हूं—ऐसा मान लेनेसे, ऐसा अंगीकार कर लेनेसे, ऐसी दृष्टि बना लेनेसे धर्मका पालन है। इस ही बातके लिए यह व्यवहार धर्म है। सत्संग करते हैं किस प्रयोजनके लिए कि हमारी दृष्टि ऐसी बनी रहे कि हम धर्मके पालनके योग्य बने रहें। इसके लिए सत्संग किया जाता है। उपकार सत्संग जो किए जाते हैं वह इसलिए किए जाते हैं कि मेरी बुद्धि ऐसी व्यवस्थित रहे कि मैं अपने स्वभावके दर्शन करने के लायक बना रहूं। अपने स्वभावके दर्शन करना सो ही धर्मका पालन है। दुःख तो कल्पनाओंसे बनाया गया है। कोई भी दुःख हो रहा हो, यही निर्णय कर लो कि और कुछ नहीं है केवल कल्पनाएं बनी

रहीं, बस इसीसे दुःख होता रहा है। इन कल्पनाओंका बना लेना, इसीका नाम दुःख है। जैसे न तो ढोका पड़ा है, न विपत्तियां आती हैं, न हमारे लिए कोई अनर्थ की योजना कर रहा है, केवल कल्पनाएं बना बैठा है कि हमारे अनर्थके लिए कोई योजना कर रहा है। वहां कुछ नहीं हो रहा है। वहां अपने हितकी बात बन रही है और मनमें कल्पनाएं कर लिया कि मेरी हानिके लिए योजनाएं ये बना रहे हैं तो इसीसे दुःख होता है। बाह्य पदार्थ हैं, हैं, वे अपने आपमें परिणमते हैं, हम ऐसे हैं, वह वैसे हैं, इस प्रकारकी वस्तुस्वरूपके अनुकूल विचार चलें इसमें उन्हें आनन्द है। सुख और दुःख कहीं बाहरसे नहीं आते हैं। जैसी भावना है वैसे ही दुःख तथा सुख हैं। वस्तु है, किसी दूसरे प्रकारकी और मान लेना उसे भिन्न प्रकारकी तो दुःख होगा ही और वस्तु जैसी है तैसी मान लें तो सुख होगा। वस्तुका स्वरूप जैसा है तैसी बुद्धि बने तो सुख है। चाहे बाहरकी नरकगतिके दुःख भी भोगे जा रहे हों किन्तु यदि आत्मामें मिथ्यात्व नहीं है तो आत्मामें सुख है, कोई क्लेश नहीं है और अन्तरमें सम्यक्त्व नहीं है तो उसकी आकुलता बराबर लगी चली जाती है। सम्यक्त्व बराबर सुखको पैदा करता है और मिथ्यात्व सदा आकुलताओंको पैदा करता है। जैसा है तैसा ज्ञान हो जाना यही ज्ञान है। ज्ञानी गृहस्थ यद्यपि असंयमके काम करता है, चरित्रके प्रतिकूल भी चलता है, पर जैसे पतंग उड़ाई गई, पतंग कितने ही ऊपर चढ़ गई है तो डोर तो अपने हाथमें है। वह पतंग कहीं बाहर नहीं जा सकती है। इसी प्रकार सम्यक्त्व है तो चाहे उपयोग थोड़ा भ्रमकी ओर हो जाय, विचलित हो जाय, यहां वहां पहुंच जाय तो वह सब सम्यग्दृष्टिके आधीन बात है। वह अपने उपयोगको शीघ्र अपनी ओर बना सकता है। होता भी ऐसा ही है कि श्रद्धा तो सही है फिर भी मार्ग पर नहीं चल पाता। कौन नहीं जानता कि हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह संसारमें भटकाने वाले हैं। इनकी निवृत्ति होने पर भलाई है फिर भी लोगोंको कुछ समय तक करना पड़ता है। पर यदि श्रद्धा है तो पाप कम हो जाते हैं।

जैसे सामने अग्नि पड़ी है, एक पुरुषको जबरदस्ती ढकेल कर कहा जा रहा है कि आग पर चलो तो वह पैरोंको आगमें ऊपर ऊपर रखकर निकल जायगा। पर एक ऐसा आदमी जिसके पीछे अग्नि पड़ी हुई है और कहनेसे नहीं किन्तु किसी कारण पीछे पैर रख लेता है। इन दोनों पुरुषोंमें जरा बतलाइए कि अधिक कौन जलेगा? जिसने पीछे बिना प्रेरणाके पैर रख दिया है, उसको पता नहीं था तो वही अधिक जलेगा। उसको आगका पता न होनेसे जल्दी उठनेका परिणाम नहीं है सो अधिक जल जायगा और जो सामने देख रहा है वह जल्दी जल्दी पैर रखकर निकल जायगा। इसी प्रकार जिसको ज्ञान है, श्रद्धान

है, वैराग्य है फिर भी कोई परिस्थिति आती है जिससे कुछ प्रतिकूल चलना पड़ता है। पर प्रतिकूल चलने पर भी उसके विपरीत खिंचा हुआ रहता है। जिसके [illegible] नहीं, विषयोंमें आसक्ति है, उसके कर्मबन्धन विशेष है। ज्ञानीको विषयोंमें आसक्ति नहीं होती, इससे वह मोक्षमार्गस्थ है।

एक कुत्ता जानवर होता है, वह बड़ा स्वामिभक्त होता है, आज्ञाकारी होता है। दो रोटीके टुकड़ोंमें ही २४ घन्टे पहरा देता है। अपनी पूंछ हिलाकर बड़े प्रेमसे अपने मालिकको बड़ा प्रेम दिखाता है। देखो कुत्ता कितने काम आता है? एक सिंहको देखते हैं तो दिल दहल जाता है। किसी किसीका तो हार्ट फेल हो जाता है। कोई कोई तो शेरसे डरकर मर जाता। कितना अहित करने वाला यह शेर है। क्यों जी जो उपकारी है, जो भला है उसकी उपमा देना चाहिए या नहीं। अच्छे पुरुषको किसी सभामें खड़े होकर कहें कि फलाने भाई तो बहुत उपकारी हैं, इनका कहना क्या है? यह बहुत ही उपकारी एवं धर्मात्मा हैं। यह तो एक कुत्तेके समान हैं। इसकी बड़ी भव्य आत्मा है। यह बड़े उपकारी हैं और उसीको या अन्य किसीको यह कह दिया जाय कि यह शेरके समान है, याने दूसरोंकी जान लेता है, ऐसा नाम सुनकर वह खुश हो जाता है, पर इसका बुरा अर्थ होता है। यदि किसी व्यक्तिको यह कह दिया जाय कि यह व्यक्ति कुत्ता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वह व्यक्ति कुत्तेके समान स्वामिभक्त तथा आज्ञाकारी है। यह अन्तर किस बातका आ गया? यह आध्यात्मिक मर्मको बताने वाला अन्तर है। अगर कोई कुत्तेको लाठी मारता है तो उस लाठीको कुत्ता चबाने लगता है। वह समझता है कि मेरा दुश्मन यह लाठी है। मेरा अहित करने वाली यह लाठी है, यह हुई निमित्तदृष्टि अर्थात् निमित्त ही मेरा सब कुछ करने वाला है, ऐसी दृष्टि हुई कुत्तेकी जैसी दृष्टि। उसको यह पता नहीं चल पाया कि मेरा दुश्मन लाठी नहीं है बल्कि यह पुरुष है। जब कि शेरको कोई लाठी, तलवारसे मारे तो वह शेर यह नहीं समझता है कि मेरा दुश्मन लाठी और तलवार है बल्कि वह समझता है कि यह व्यक्ति ही मेरा दुश्मन है। इसलिए वह शेर पुरुष पर ही हमला करता है। एककी दृष्टि है कि मेरा दुश्मन लाठी है और एक की दृष्टि है कि दुश्मन मेरा पुरुष है। यही ज्ञानी और अज्ञानीमें अन्तर है। ज्ञानी देखता है कि धन, वैभव, परिवार किसीमें मेरा सुख नहीं है। मेरा सुख मेरे अन्तरसे उठता है परन्तु अज्ञानी यह देखता है कि धन, वैभव, कुटुम्ब, परिवार आदिमे ही सुख है। ज्ञानी यह सोचता है कि बाह्यपदार्थोंसे सुख नहीं होता, पर अज्ञानी यही सोचता है कि बाह्यपदार्थों पर ही सुख दुःख निर्भर है। अज्ञानी जीवने अपनी प्रभुताको बरबाद कर दिया है। वह सोचता है कि यदि प्रपंच, परिवार, सदस्य तथा अमुक अमुकको मैं न देखूंगा

तो मेरा नुकसान है, परन्तु नुकसान है इसी बाह्य दृष्टिमें। यह आत्मा पूर्ण स्वच्छन्द हो तो दुःख नहीं होगा।

एक पुरानी घटना है कि वज्रदंत चक्रवर्ती जब फूलमें मरे हुए भंवरेको देखते हैं तो देखकर विचार करते हैं कि यह भंवरा फूलकी सुगंधमें आसक्त होकर इस फूलमें ही छिपा मर गया। कोई फूल ऐसे भी होते हैं कि दिनमें तो खुले रहते हैं और शाम होते ही बंद हो जाते हैं। भंवरा मकरंद रस चूसनेके लिए बैठ गया। शामको उसी फूलमें बंद हो गया। जिस भंवरेमें इतनी ताकत है कि काठमें छेद करता है। एक ओरसे छेद करके दूसरी ओरसे निकल जाता है। फूलकी उन कोमल कोमल पंखुडियोंमें आसक्त होकर भंवरा मकरंद रसका पान करता है और वहीं मर जाता है। इसी तरह आत्मामें तो अनंतशक्ति है, आनन्द शक्ति है, केवल ज्ञानीकी शक्ति है। परन्तु विषयोंमें आसक्त होकर अपने ज्ञान प्राणको बरबाद कर रहा है। आत्मामें क्लेश केवल जाननेकी कला पर निर्भर है। इसी प्रकार आनन्द भी जानने की कला पर ही निर्भर है। लो, शरीरको देखो, आनन्द खत्म हो गया और लो ज्ञानस्वरूप देखनेमें उपयोग बन गया तो आनन्द प्रकट हो गया। ऐसी महान् चमत्कारकी कलासे युक्त यह भगवान् आत्मा है। यह प्राणी बाह्यदृष्टि करके कि मुझे तो बाहरी चीजोंसे आनन्द मिलता है, बाहरमें ही आसक्त होकर बाहर बाहर ही घूमता है। इस प्रकारका प्राणी बाहरी पदार्थोंको नहीं छोड़ सकता है। यह भूला हुआ प्राणी भ्रममें ही रह रहकर अपना आत्म-बल खो देता है और बरबाद हो जाता है। ऐ प्राणी! क्यों दुःखी हो रहे हो? तेरा तो स्वरूप भगवान्का है। तेरमें भी तो वही द्रव्य, वही गुण है। भगवान्की आत्माका तत्त्व शुद्ध दानके द्वारा आनन्दमय है, ज्ञानघन है, मेरी आत्माका उपयोग अशुद्धकी ओर है यही तो अन्तर हो गया है। चीज तो एक है जिसमे दुविधापन नहीं है। तो जैसा सुखका भंडार प्रभु है वैसा तू है। परन्तु अपने आपको नहीं जानता है। इसी कारण बाहरी फंसावमे फस रहा है। २४ घण्टेके समयमें २ क्षणको सबकी कल्पनाएँ छोड़कर अन्तरमे तो देखो। तू उत्कृष्ट ज्ञानानन्दका पिंड है। कहते है कि जीव हवा है। फूंक मारा उड़ गया। यह जीव हवासे भी अत्यन्त सूक्ष्म हैं। शरीरसे अत्यन्त जुदा स्वरूप वाला है। शरीरके अन्दर है। इसमे निमित्तनैमित्तिक भावोंका होना कारण है। नहीं तो शरीरसे इतना संयोग होने की भी गुंजायश नहीं। तेरे परिवारके लोग तेरे नहीं हैं, जिनसे तू इज्जत चाहता है वह तेरे नहीं हैं। तू तो चैतन्यस्वरूप एक वस्तु है। ऐसा सुखका भंडार तू है। अन्तर भीतरमें देखो और अपनेमे अपने लिए अपने आप देखते रहो।

भावयेद् भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया ।
तावद्यावत् पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठितम् ॥

समयसार ग्रन्थ अध्यात्मका एक ही ग्रन्थ है । जिसमें अध्यात्मपद्धतिसे आत्माका स्वरूप बताया है । उसमें आत्माका स्वरूप बताते बताते उसका उपाय, भेद, ज्ञान कहते हैं और शिक्षा देते हैं कि हे आत्मन् ! तब तक भेदविज्ञानकी भावना करो जब तक यह ज्ञान ज्ञानमें प्रतिष्ठित नहीं हो जावे । मैं ज्ञानमात्र हूं, शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूं, इस प्रकार सबसे निराला अपने आपके चैतन्यस्वरूपको देखो । यही काम अभी पड़ा हुआ है । यही काम कठिन है, पूजा सरल है । अरे नहीं भैया अपना यह काम सरल है पूजा कठिन है । पूजामें १० साधन जुटाने हैं । यहाँ क्या है ? जैसे हो वैसे अपनेको देख डालो यह क्या कठिन है ? धर्म का पालन यही है । बाहरी चीजें तो सहारा मात्र हैं, उनमें दृष्टि न दो । जैसे नीचेसे ऊपर आनेमें जो सीढ़ियाँ हैं वे तो सहारा मात्र हैं, ऊपर आनेके लिए सीढ़ियोंसे प्रेम नहीं करो सीढ़ियाँ बहुत अच्छी हैं, बड़ी सुखद हैं, मैं नहीं छोड़ूंगा । अरे तू न छोड़ तो वहीं पड़ा रहेगा । बाह्य तो तेरे सहायक हैं । पहली सीढ़ीपर कदम रखकर उसको छोड़ दे, दूसरीको छोड़ दे, तीसरीको छोड़ दे । ग्रहण किया है छोड़नेके लिए । ऐसा न चलो कि हम तो पहलेसे ही छोड़े हैं, पहलेसे ही छोड़े पड़े हैं । नहीं, ग्रहण करके छोड़नेकी बात है । यहाँ कुछ छोड़ना नहीं । यथार्थ जान लो । इसमें ही ज्ञान है, इसमें ही आचरण है । ऐसा रूप वाला यह मैं निश्चल रूप अपने आपमें रहूं और अपने आप सुखी होऊँ ।

ज्ञानपिण्डोऽन्यभिन्नोऽहं निर्विकारी स्वभावतः ।
स्वतन्त्रः सहजानन्दः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥ १-५४ ॥

मैं क्या हूं, इस बातको समझनेके लिए इस श्लोकमें पाँच बातें बताई गयी हैं । पहली बातमें कहा गया है कि यह आत्मा ज्ञान पिंड है, दूसरी बातमें अन्य समस्त पदार्थोंसे भिन्न बताया है, तीसरी बातसे स्वभावसे निर्विकार कहा है, चौथी बातमें स्वतन्त्र कहा है और पांचवीं बातमें सहजानन्दमय दिखाया है । इन्हीं पाँच बातोंके विवरणसे मनन करनेपर आत्मा में यथार्थ बल बुद्धि हो जायगी । मैं ज्ञानपिण्ड हूँ, स्वरूप मेरा ज्ञान ही है । जैसे गर्मी ही अग्निका स्वरूप है वैसे ज्ञान ही मेरा स्वरूप है । जैसे कोयला तिकोन, चौखूंटा है, जलता है तो तिकोना, चौखूंटा अग्निका स्वरूप नही है । अग्निका स्वरूप तो केवल गर्मी है और बातें तो निमित्त पाकर होती है । यह मैं आत्मा मच्छके शरीरमें इतना लम्बा, चौड़ा हो गया और चींटीके शरीरमें इतना छोटा हो गया । ऐसा छोटा बड़ा हो जाना, फैल जाना यह आत्माका स्वरूप नही है । यह तो निमित्त पाकर होता है । आत्माका स्वरूप तो ज्ञान है । ज्ञान पिंड

यह आत्मा है और अन्यसे भिन्न है। मेरे अतिरिक्त जितने भी पदार्थ हैं उन सबसे मैं जुदा हूं। यहाँ अस्ति और नास्तिका जिक्र किया है।

मैं मैं हूं, कुछ और नहीं हूं। तू तो ज्ञान पिंड है और मेरे अतिरिक्त जितने भी पदार्थ हैं वे सब मैं नहीं हूं। इसीको कहते हैं एकत्व विभक्त्व है। तू एकत्व विभक्त्व है। इसके आगे और कुछ नहीं है। वस्तुकी पहिचान स्याद्वादसे होनी है। स्याद्वादका आश्रय लिए बिना वस्तुवोंसे परिचय नही होता। यह पिछी है तो यह पिछी ही है, और और नहीं है। पिछी चौकी हो जाय, पिछी ही दरी हो जाय तो यह सत् नही हो सकता है। पदार्थ सत् कहलाते हैं तब तब अपने स्वरूपसे हों और परके स्वरूपसे न हों। यदि वह परके स्वरूपसे न हों और निज स्वरूपसे हों तब तो वह पदार्थ रह सकता है अन्यथा नहीं। पदार्थ तभी रह सकते हैं जब अपने स्वरूपसे तो हों और परके स्वरूपसे न हों। यह चौकी है। यह स्पष्ट दिखती है। यह चौकी अपने आपमें तो है पर इसके अतिरिक्त जितने पदार्थ है, उन सब रूप नहीं है। तभी तो यह पदार्थ है। इसी तरह अपने आत्माकी बात लगाइए। यह मैं आत्मा अपने स्वरूपसे हूँ और परके स्वरूपसे नहीं हूं। अपने आपमें हूं, मैं अन्य जीव नहीं हूं, अन्य किसी द्रव्य रूप नहीं हूं, कोई पुद्गल नही हूं। वह मैं क्या हूं ? इसके बारेमे बताया है कि मैं ज्ञानपिंड हूँ। आत्मामें ज्ञानका ही तो सारा वैभव है, ज्ञानका ही सारा कमाल है, ज्ञान ज्ञान ही तो सारा आत्मा है, अमूर्त है, ज्ञान भावात्मक है। ऐसा ज्ञानरस इस आत्माके साथ अन्य अन्य गुण भी मालूम देते हैं। जैसे आनन्द है, श्रद्धा है, चारित्र है परन्तु यह सब भी लगा रहता है। मानो ज्ञान धर्मके अस्तित्वकी सेवाके लिए सर्व गुण है। सबमें प्रधान एक ज्ञान गुण ही है। जब हम आत्माको पहिचानने चलें तो और और बातोको देखकर हम आत्माको अनुभवमें न ला सकेंगे। जैसे सोचा कि यह मैं आत्मा कितना लम्बा चौड़ा हूं। तीन चार हाथका लम्बा, एक हाथका चौड़ा और इतना ऊँचा सोचते रहें, पर ऐसा सोचनेसे आत्माका परिचय न मिल सकेगा। आत्माका अनुभव न हो सकेगा, आत्माकी पकड़ न आ सकेगी। यह मैं आत्मा कैसा हू ? अरे जो गुस्सा आ रहा है वह है आत्मा, दर्द का अनुभव है जो वह है आत्मा—ऐसा सोचनेसे आत्माका अनुभव नहीं हो सकता। तो है क्या आत्मा ? अरे आत्मामें अनन्त शक्ति है और उस शक्तिके प्रति समय परिणमन चलते रहते हैं। अनादिसे परिणमन चला आया और अनन्त तक परिणमन चलेगा। परिणमन तो होगा पर परिणमन या शक्तिभेदको दृष्टिसे परिचय नहीं हो सकता, आत्माका अनुभव नहीं हो सकता। ऐसा पकड़मे नही आ सकता कि जिससे स्पष्ट पहिचानमें आवे। यह तो है

आत्मा । जैसे हाथमें स्वर्णका डेला रखा है, पहिचानमें आ जाता है कि यह है । एक दृष्टि ज्ञानसे आत्माको सोचो तो कि यह स्वरूपमय आत्मा है, जो जाननका ही काम करता है । त्रैकालिक जो ज्ञानस्वरूप है वह आत्मा है । इस तरह केवल ज्ञानस्वरूपको ही लक्ष्यमें रखो तो ज्ञानस्वरूप ही लक्ष्यमें रहते रहते यह लक्ष्य भी छूटकर ज्ञानमात्र आत्माकी ओर अनुभव हो जाता है । यह चीज प्रयोग की है । जितने शब्द कहे गए उतने शब्द सुननेसे आत्माका अनुभव नहीं, इतना बयान करनेसे ही आत्माका अनुभव नहीं । इसका तो भीतरमें ही उपयोग बने कि मैं ज्ञानमात्र हूं और जाननका जो काम है वह स्वरूप ही लक्ष्यमें लेवे, इतना मात्र मैं हू । ऐसा मनन करनेसे आत्माका परिचय मिलता है, आत्माकी पकड़ होती है । यह इस नास्ति वाले दूसरे न्यायसे अलग बात नहीं है । मैं अन्य सब पदार्थोंसे जुदा हूं, इसको भी साथमें विचारना चाहिए । अरे नहीं यह तो पहलेको बात है । जब ज्ञानानुभवका असर आ रहा हो वहां विभक्तपनेकी बात सोचना विघ्न है । आनन्द तो आ रहा है ।

मैं ज्ञानमात्र हूं । ऐसा उपयोग करनेसे ज्ञान ही ज्ञानमें पहिचानका आनन्द आनेको हो और वहां नास्तिका विचार करो तो वह विघ्न है । यह तो वस्तुस्वरूपके पहिचाननेकी जड़ है । अरे दूसरी बातसे तो निर्णय कर लो कि मैं जगत्के सब पदार्थोंसे न्यारा हूं । अनुभवके मार्गमें सोचनेकी आवश्यकता नहीं । यह तो निर्णयकी बात थी । मैं तो स्वचतुष्टयसे हूं, परपदार्थोंके चतुष्टयसे नहो हूं । यह बात निर्णय कर लेनेके लिए थी, पर जब ज्ञानके अनुभव का टाइम चल रहा हो उस समय स्याद्वादका आश्रय लेनेकी जरूरत नहीं । स्याद्वाद निर्णयके लिए है । निर्णय होकर फिर हमें उसके मर्ममें ही चले जाना चाहिए । फिर स्याद्वादके विकल्पोंको न लिए फिरें । मैं ज्ञानपिंड हूं और सब पदार्थोंसे भिन्न हूं; स्वभावसे निर्विकार हूं । यहां क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि विकार मुझमें आते तो हैं परन्तु यह मेरा स्वभाव नहीं बन गया । स्वभाव होता तो सदा काल ही यहां रहा करता । जैसे अंगुली टेढ़ी कर दें तो टेढ़ी ही रहेगी ऐसी बात तो है नहीं । क्योंकि टेढ़ी रहना अंगुलीका स्वभाव नहीं है । अग्नि की गर्मीका निमित्त पाकर पानी गर्म हो गया । गर्म तो हो गया, पर गर्म हो जाना पानीका स्वभाव नहो है । विकार तो आ गए, पर विकारोंका आना आत्माका स्वभाव नहीं है । मैं स्वभावसे निर्विकार हू, अपने आप सहज स्वरूप जो मेरी सत्ता है, तावन्मात्र ही हूं । मैं कैसा सत् है इस बातको जब देखो तो मैं एक चैतन्य वस्तु हूं, निर्विकार हूं, ऐसा अपनेको देखना चाहिए । और मैं धनी हूं, मैं गरीब हूं, मैं लड़कों बच्चों वाला हूं, कुटुम्ब वाला हूं, परिवार वाला हू—यह सब क्या है ? यह सब विकारमें फंसना है । विकाररूप ही अपनेको माननेपर आत्मा विकाररूप नहीं हुआ । विकाररूप माननेसे आत्मा कहीं विकारमय नहीं हो गया,

किन्तु अपना उपयोग विकाररूप बनाना ही विकारोंमें आना हुआ। मोही तथा अज्ञानी पुरुष ही अपना उपयोग अपनेको नाना विचित्र रूपोंमें मानकर विकाररूपमें बनाते हैं, परन्तु ज्ञानी पुरुष मैं पुरुष नहीं हूं, मैं स्त्री नहीं हूं, मैं बालक नहीं हूं, मैं बालिका नहीं हूं, मैं धनी नहीं हूं, मैं गरीब नहीं हूं, इस प्रकारसे सब विचित्रताओंको अपना मानकर यथार्थरूपमें बनाते हैं।

मैं केवल चैतन्यमात्र वस्तु हूं। इस मुझ चैतन्य वस्तुका अन्य वस्तुओंके साथ रंच भी संबंध नहीं है। वे सब पदार्थ हैं। वे अपने आपमें हैं। मैं एक पदार्थ हूं, अपने आपमें हूं, सब पूर्ण स्वतन्त्र हैं, आजाद हैं, अपने अपने स्वत्वमें मौजूद हैं। किसी पदार्थका किसी दूसरे पदार्थके साथ रंच भी सम्बन्ध नहीं है। स्पष्ट देखो यह वस्तुका स्वरूप है। यह प्रत्येक पदार्थ अपने सत्में है, अपने स्वतन्त्र स्वरूपमें है। पर ऐसा न मानकर किसी दूसरेके साथ सम्बन्ध हो—ऐसी झूठी बातें बनाए, ऐसा झूठा विश्वास बनावे, बस यही संसारके दुःखोंकी जड़ है। धन्य है वह उपयोग, धन्य है वह आत्मा जो संसारके सारे पदार्थोंका स्वयसिद्ध स्वतन्त्र यथार्थ समझते रहते हैं। ज्ञानी गृहस्थी जहां पर रहते हैं वह अपने कुटुम्ब, परिवार, पुत्र, स्त्री इत्यादिको भिन्न ही समझते हैं। उन्हें यह प्रतीत है कि मेरा कुछ नहीं है, रच भी इन से सम्बन्ध नहीं है। यह चीजें मेरी हो ही नहीं सकती है। और जो कुटुम्ब, परिवार, बच्चों स्त्री इत्यादिको अपना मानते हैं, अपना ही सब कुछ समझते हैं तो उनके हाथ केवल पापका कलंक रहता है। यह तो त्रिकालमें उसके नहीं हो सकते हैं। अगर कुटुम्ब, परिवार, स्त्री, बच्चोंको अपना माना तो प्रोफिटमें पापका कलंक आ जायगा और संसारमें रुलनेकी बात आ जायगी। अन्य वस्तु तो आ नहीं सकती। अरे इस संसारमे तेरा कुछ नही है। जगत्के बाह्य पदार्थोंको अपना माननेमें कितना प्रोफिट है ? अपना मान लेनेसे क्या वह अपने हो गए। वह अपने नहीं हुए। वह तो अपनी सत्तामें है। त्रिकालमें भी वह अपने नहीं हो सकते हैं। मिथ्या समझकर अनेक विकार बन गए, अनेक कषाय बन गए, संसारमें बहुत समय तक दुःख सहा, रुलते रहनेकी रजिस्ट्री करा ली। यह सब मुसीबतें आजीवन रही। अन्य वस्तुका तो कुछ अंशमें भी मुनाफा न हुआ। जो दुनियामें कुछ चाहता है उसको ऐसी ही हालत होती है।

एक सेठ थे, हजामत बनवा रहे थे। वह सेठ वहमी था। नाई बाल बना रहा था। अब सेठने जब देखा कि नाई तो बाल बना रहा है, इसमें तो मेरी जिन्दगी नाईके हाथ है। सेठ डरता है। वह सोचता है कि कहीं बाल बनातेमें गला न कट जाय। इस डरसे वह नाई से कहता है कि बहुत बढ़िया समझकर बनाना, तुमको हम कुछ देंगे। जब नाई बाल बना चुका तो सेठ जी ने एक चवन्नी निकालकर नाईको दी। नाईने कहा कि हम चवन्नी नहीं लेंगे

हम तो कुछ लेंगे। सेठ जी एक अशर्फी, दो अशर्फी, दस अशर्फी देते हैं पर नाई कहता है कि हम यह नहीं लेंगे, हम तो कुछ लेंगे। सेठ जी को कुछ भूख-प्यास लगी थी। नाईसे कहा कि आलेमें जो गिलास रखा है, ले आवो। दूध पी लें। हम भी पी लें और तुम भी पी लो। नाईने गिलासमें जो देखा तो उसमें कुछ काला काला था। नाईने कहा—सेठजी, इसमें तो कुछ पड़ा हुआ है। सेठ बोला कि कुछ है तो वह कुछ तू ही ले ले। तू कुछके लिए पड़ा भी था। उठाया तो क्या निकला, कोयला। जो कुछकी जिद्में पड़ा उसको क्या मिला? कोयला।

इसी तरह यहांके प्राणी कुछमें ही पड़े हुए हैं। उनको मुनाफेमें मिलता क्या है? मिथ्यात्व। भ्रम, संस्कार हो गए, कुछ मिला नहीं। मान लिया एक करोड़, पर आत्मामें आता क्या है? उसमें नए पैसेका हजारवां हिस्सा भी नहीं। सब अपने स्वरूपमें हैं किन्तु मुनाफा यह मिला कि मिथ्यात्व बढ़ गया, अज्ञानता बढ़ गयी, खोटे संस्कार हो गए। यही एक मुनाफा हो गया। चीजें तो कुछ मिलती ही नहीं। क्योंकि जगत्के प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र हैं। किसी भी पदार्थका किसी भी पदार्थसे रंच भी सम्बन्ध नहीं है। यह आत्माके स्वरूपकी बात चल रही है और इस श्लोकमें पांच बातोंसे आत्माका रूप खोला गया है। जिसमें चौथा विशेषण चल रहा है कि मैं स्वतन्त्र हूं, मैं स्वतंत्र हो सकता हूं। जब मैं सबको स्वतंत्र निरखूं तब स्वतंत्र हो सकता हूँ अर्थात् मैं अपने आप स्वतन्त्र श्रद्धामें रहता हूँ। जब तक प्रत्येक पदार्थको भी स्वतन्त्र स्वरूपमें न देखें कि वे स्वतन्त्र हैं तो मैं भी कैसे स्वतन्त्र रह सकता हूं? मैं तो स्वतंत्र रहूँ व मेरे घरके बच्चे, अरे वह तो मेरे हैं, वे मेरे आधीन हैं, अरे वे भी एक सत् हैं। जब वे पराधीन बन गए तो तुम भी पराधीन बन गए। ये मेरे हैं, मेरे आधीन हैं सोचते हैं, पर बच्चे पराधीन नहीं बने, तुम स्वयं पराधीन बन गए। तुम स्वयं अपने अनुभव से पराधीन हो। जो मेरा नहीं है उसे मैंने मान लिया तो पराधीन बन गए। मैं तो स्वतन्त्र हूँ और जगत्के पदार्थोंको पराधीन देखूं, उन्हे मैं अपने आधीन देखूं तो मै स्वतन्त्र नहीं बन सकूंगा। अपने स्वरूपका अनुभव न कर सके कहे कि यह प्राणी जो लोकमें मोहको लिए हुए हैं वे राम हो जावें। अरे तू भी तो राम नहीं बना। कहते हैं कि स्त्री सीता हो जावें और पुरुष राम बनें। तो क्या स्त्रियां सीता नहीं बन सकतीं वे कहते हैं कि यदि पुरुष राम नहीं बनते, स्त्रियां सीता नहीं बनती तो सुख और शांति कैसे हो सकती है, आराम कैसे मिल सकता है? तुम्हीं उनके गुणकी श्रद्धा करने वाले हो सकते हो। खुद पुरुष रामका स्वरूप है। यदि खुदके स्वरूपको राम निरखोगे तब बात बनेगी। इसी प्रकार खुद स्वतन्त्र बनो व सबको स्वतंत्र देखो। सब मेरे आधीन रहें ऐसी कल्पना जहां आई तहां पराधीन बन गए। यह स्त्री मेरी है, यह बच्चे मेरे हैं, ऐसी कल्पना आनेसे माने हैं कि स्त्री तथा बच्चोंके आधीन

बन गए। 'यह पदार्थ मेरे है' के मायने है कि आप पदार्थोंके आधीन बन गए। मैं स्वतंत्र हूँ जगतके सभी पदार्थ अपनी सत्तामें हैं। कोई दूसरेके आधीन नहीं।

तीसरी विशेषता है कि मैं सहज आनन्दस्वरूप हूँ। सहज स्वाभाविक आनन्दस्वरूप हूं। आनन्द मुझमें लाया नहीं जाता। जैसे ज्ञानी जीवका स्वरूप है वैसे आनन्द भी जीवका स्वरूप है। जीवोंका सर्व प्रयोजन इसी बातमें है और इसी बातमें प्रयत्न रहता है। एक तो जाननका और एक आनन्दका—इस जीवके यही दो प्रयोजन हैं। इन दोनों ही चीजोंको प्राणी चाहता है कि जानन भी खूब हो और आनन्द भी खूब हो। सो भाई ज्ञान और आनंद यह आत्मामें ही हैं। आत्मामें स्वभाव है और आत्मामें स्वरूप है। ज्ञान और आनन्द कहीं बाहरसे नहीं लाना है। किन्तु जैसे हो वैसा अपनेको मान लेना, बस यही ज्ञान और आनन्द के प्राप्त होनेका उपाय है। इस श्लोकमें पहले विशेषणमें ज्ञान है और आखिरीमें आनन्द है। मेरा भी तो प्रयोजन ज्ञान और आनन्दसे है। वे मेरे ठीक बनानेके लिए और आनन्दके विकासके लिए है। ज्ञान और आनन्द ही जीवका वैभव है। यदि अन्य वैभवके दर्शन करेगा तो तू अपने अमूल्य वैभवको गँवा देगा। केवल यह मैं ज्ञानानन्द आत्मा हूं ऐसा ही अपने को अनुभव करो तो अपनेमें अपने आप अपने आनन्दका अनुभव कर सकते हो। देखो जैसा मैं नहीं हू वैसी भावना करूँ तो वैसा ही उपयोग बन जाता हूं। तब मैं जैसा हूं वैसा अनुभव करके वैसा ही उपयोग बनाऊं तो वैसा बन जानेमें कोई सन्देह नहीं है। मैं भैंसा नहीं हू किन्तु अकेले बैठे बैठे समझ लिया कि मैं भैंसा हूँ तो ऐसी ध्वनि बन जायगी और अपने शरीरको भूल जाऊंगा। यही सोचूंगा कि मै भैंसा हूं, मेरे एक बड़ा पेट है, दो सींगें है, एक पूंछ है, चार पैर हैं। ऐसा यदि एकचित्तसे अपनेको भैंसा समझ लेवें तो मैं भैंसा ही नजर आऊंगा, मै अपने उपयोगसे भैंसा ही बनूंगा और अगर दिलमें ऐसा अनुभव आ जाय कि मंदिरका दरवाजा छोटा है तो रंज करूंगा कि मै कैसे निकलूं मैं मंदिरसे बाहर कैसे निकल पाऊंगा। हमारा शरीर तो इतना मोटा है, दो सींगे है, एक पूंछ है, अच्छा काला काला बड़ा मोटा सा हूं। मैं कैसे बाहर निकल पाऊंगा? सारी बातें सोचने सोचनेमें ही अपने आप अनुभव कर डालता है। जैसा कि है नहीं, फिर जैसा यह है ज्ञान रस, आनन्दघन, ज्ञानमय, सबसे निराला वैसा ही अपनेको माने तब तो यह स्थायी रूपसे ऐसा ही हो जाता है। मैं भैंसेकी कल्पना बनाए बैठा था तो क्या मै भैंसा बन गया? भैंसा मैं नहीं बन जाऊंगा; परन्तु यह तो आनन्दमय है और ऐसा ही मान लेवे तो स्थायी रूपसे ज्ञानमय यह आत्मा बन जायगा। तो यह मैं आत्मा सहज आनन्दरूप हूं तो यह मैं अपनेमें अपने लिए रमकर अपने आप आनन्दमग्न होऊं।

निजचेष्टाफलं ह्यन्ये दृष्टिः संसार उच्यते ।
विज्ञाय तत्त्वतस्तत्त्वं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-२५॥

थोड़ेसे शब्दोंमें यदि कहा जाय कि संसार क्या है, सारी झंझटें क्या हैं तो कहा जा सकता है कि अपनी चेष्टाका फल अन्यमें होता है, ऐसी मान्यता ही झंझट है, इस ही को संसार कहते हैं। हम जो कुछ करते हैं उसका असर दूसरोंमें होता है, उसका फल दूसरों में होता है। इस प्रकारकी बुद्धि होनेका नाम संसार है, सारी विपदाएँ हैं ऐसी दृष्टिका नाम ही संसार है। संसार शब्दका अर्थ देखा जाय तो निकलता है कि 'संसरणं संसारः' परिभ्रमण करनेका नाम संसार है। बाहरी दृष्टिसे ३४३ घन राजू प्रमाण लोकमें परिभ्रमण करना संसार है और अध्यात्मदृष्टिसे अपने आपको विभावोंमें आकुलित होकर, फिर फिर कर विकल्पोंमें बने रहनेका नाम संसार है, परिभ्रमण है। यह संस्करण क्यों लग गया ? इसका मूल कारण क्या है तो अपनी चेष्टाका फल दूसरोंमें माननेकी दृष्टि ही इसका मूल कारण है। हम एक स्वतंत्र पदार्थ है। जगके ये सभी स्वतत्र स्वतत्र पदार्थ हैं। किसीका किसी से रंच भी सम्बन्ध नहीं है। अपने ही तो उत्पाद व्यय ध्रौव्यमें रह करके अपने ही स्वभाव से ये परिणमते रहते हैं। अपने रूपकी सीमाका उल्लघन कोई नहीं करता है। फिर कोई वजह ही नहीं कि किसीके करनेसे किसीको कुछ हो जाया करता हो। परन्तु यह मोही प्राणी भी करता है तो यह समझता है कि मैं अमुकमें यह परिणमन कर दूंगा। बस इसी दृष्टिके कारण संसारके सारे क्लेश लग गए। इसीको कहते है कर्तृत्वबुद्धि। अर्थात् परको कुछ कर लेनेका ख्याल में दूसरोंको कुछ कर देता हू, दूसरे मुझे कुछ कर देते हैं। इस प्रकारका जो विकल्प चलता है, खोटा अभिप्राय रहता है। इस ही का नाम संसार है और इन विकल्पोसे छुट्टी लेनेका नाम ही मोक्ष है। घरमे, समाजमें, समूहमें जहां भी जो विवाद खड़े होते हैं उन विवादोका मूल कारण देखो तो अहंकार निकलेगा। अहंकार बिना विवाद नहीं होता है। घरमें स्त्री पुरुषमें, देवर जेठानीमें, सास बहूमें अगर विवाद खड़ा होता है तो विवाद दो के बीचमे होता है ना; क्योंकि एकसे विवाद क्या ? सो जिससे विवाद खड़ा हो; समझो इसमें अहंकार ही है। क्यों दुःखी होते हो ? अमुक काम न हुआ तो न सही। वह भी पदार्थ है। वह ही परिणम गया। इसमें तुम्हारा क्या बिगड़ गया ? मैने हुक्म दिया, पर उसने नहीं माना अथवा मैं ऐसा कहता था, ऐसा क्यों नही किया ? यह हो गया अहंकार। मैंने इनका बड़ा पालन पोषण किया और इनकी सेवा करता हू और फिर भी ये मेरे अनुकूल नही चलते यह भी हुआ अहंकार। मेरे जितने विवाद होते हैं वे सब अहंकारसे होते हैं। धंधे करनेके मामलेमे निरंतर जैसे चिन्ताएँ रहा करती हैं—इतना क्यों नहीं हुआ,

कमाया कैसे कमा लिया जाय, यह कैसे कमा लिया जाय अथवा इज्जत रखनी है। सारे जितने पाप हैं उनका भी मूल है अहंकार। उनका क्या बिगड़ा कि ५ लाख थे और २ लाख निकल गए, केवल ३ लाख रह गए। अरे इसमें क्या तुम्हारा तत्त्व बिगड़ गया ? इन मायामयी मूर्तियोंके बीच इस मायामय मूर्तिको जो चाह रहा है इस मायामय शरीरको जिसने सामने रखा है और इस मायाकी दुनियामें अपनेको कुछ बताना चाहता है वह अहंकार ही उन व्याधियोंका स्वयं कारण है।

जगत्में जितनी भी विपदाएं हैं सब विपदाओंकी व्याधियोंका कारण अहंकार है। हम कुछ करते हैं फल दूसरेमे होता है। कर्तृत्वको माननेका नाम ही ससार है। परमार्थ से बात तो यह है कि हम जो करते हैं उसका फल हम ही भोगते हैं। हम करते क्या हैं, क्या दुकान चलाते हैं, रोटी बनाते हैं, घरकी लीपापोती करते हैं ? हम विकल्पका ही काम करते है। कभी विकल्पके अतिरिक्त अन्य काम नही करते हैं। हम तो विकल्प करते हैं फिर इसके निमित्तसे जो कुछ होता है वह अपने आप होता है। तुम आत्मा हो। आत्मा एक ज्ञानमय पदार्थ है। वह इस शरीरके अन्दर रहते हुए भी इस शरीरसे जुदा है। यह ज्ञानमय जीव पदार्थ केवल अपने परिणाम कर पाता है। परिणाम किया कि इस शरीरमे रहने वाला यह आत्मा जो शरीरसे न्यारा है। सब प्रदेशोंमें हिल जाता है, कंप जाता है। जैसे अभी भयका परिणाम हो तो यह आत्मा हिल जाता है। कम भयका परिणाम हुआ वहाँ भी हिल जाता है। खुशीका परिणाम हुआ, चिंतनका परिणाम हुआ, इच्छा की, वहाँ भी हिल जाता है, यहाँ भी परिणाम करता है तो उस परिणामके फलमें यह जीव कँप जाता है, हिल जाता है, प्रदेश परिस्पन्द होने लगता है। इसे कहते है योग। पहली बातको कहते हैं उपयोग। यह जीव केवल उपयोग और योग करता है और दूसरा काम ही नही करता है। मैं तो केवल उपयोग और योग करता हूं। इसके बाद जो कुछ होता है वह अपने आप होता है। देखो यह जो ज्ञानकी बात है, यही अमृत है। इसको पी लोगे तो अमर बन जाओगे। बस, अमर तो होना ही है। समझमें आ गया कि अमर क्या है।

मै अपने स्वरूपसे हूं, अपनेमें रहता हूं, सदा अकेला ही रहने वाला हूं। यहाँ तो बह मै ही मैं दिखता हूं, मैं ही मैं यहाँ हूं। जरा आँखें खोलकर देखो, अरे यह तो शरीरमे है। परमार्थसे शरीरमे नहीं है यह तो व्यवहारकी बात है। शरीरमे तो वस्तुतः यह नही है और व्यवहारसे है तो रहने दो। यह मैं इस शरीरको छोड़कर दूसरी जगहके लिए जाऊँगा। तो मै तो वहीका वही हुआ। यहाँसे छोड़कर दूसरी जगह पहुंच गया, मैं तो पूराका पूरा हूं। उतनाका उतना, पूराका पूरा मैं अमर ही तो रहा। मरा कहाँ ? मगर वह दृष्टि यह

विकल्प कर डालती है कि देखो हमारा कमाया हुआ यह धन छूटा जा रहा है अथवा इतनी बनी हुई थी, अब वह छूटी जा रही है। यह जब ख्याल करता है तो दुःख हो जाता है। नहीं तो दुःखी होनेका कुछ काम ही नहीं है। मैं यहाँ रहूँ अथवा न रहूँ, इससे उसमें क्या फर्क आयेगा? मगर बाहर जब मोहकी दृष्टि बनी रहती है तब तो क्लेश उत्पन्न होते हैं। बाहर दृष्टि ही दृष्टि बनती है, पदार्थोंमें फेर ऊपर कुछ नहीं होता। व्यर्थ ऊधम मचाते हैं और दुःखी होते हैं। ये ऊधम तथा दुःख कहाँसे आ गए? हमारे अज्ञानसे हम खुद कसूर करते हैं व दुःखी होते हैं, किसीसे ठिनकनेका क्या प्रयोजन, ऊधम किया तो दुःखी होंगे ही। अब दूसरोंसे क्या आशा रखते हो। उनसे मेरे हितकी बात होती— यदि ऐसा विचार कर लेते हो तो दुःखी हो जाते हो। अनहोनीको होनी बनाना चाहते हैं। इसका तो फल दुःख ही है।

एक लड़का था। वह इस बातमें मचलने लगा कि हमें तो हाथी चाहिए। उसका पिता हाथी वालेको बुलाकर हाथी ले आया। फिर लडका बोला कि इसे खरीद दो। बापने कह सुनकर हाथीको पालेमें खड़ा कर दिया और कहा कि खरीद दिया। लड़केने कहा कि हाथी मेरी जेबमें रख दीजिए। अब बताओ भैया, यह काम कौन कर देगा? उसकी जेबमें हाथी कौन रख देगा?

जैसे लड़का मचलता है कि हाथीको जेबमें रख दीजिए उसी प्रकार जीव परपदार्थोंको लेनेके लिए मचलता है। अरे भैया, अनहोनी बात क्यों चाहते हो? जो होना है सो होगा। उसे भगवान सब कुछ जानता है। जो कुछ वह जानता है सो होगा। वह जानते हैं इसलिए होगा ऐसी बात तो नहीं है किन्तु जैसा हुआ था, जो हो रहा है, जो भविष्यमें होगा सबको भगवान जानता है, यह बात है, और कोई बात नहीं। बाह्य दृष्टिमें आपदा ही आपदा है। आत्मामें धोखा है? नहीं। यह परिचयको जगहमें माया रूप है। परमार्थसे तो शुद्ध चैतन्य-स्वरूप है। यहाँ कोई यह प्रश्न कर सकता है कि जब जो भगवानने जाना है वह होगा, फिर पुरुषार्थ करना व्यर्थ है। भैया! जो आप करेंगे वही प्रभुने जाना है। फिर इसकी ओरसे क्यों ऐसी उपेक्षा कर ली जाय? हाँ परवस्तुवोंसे क्या सिद्धि है सो परके बारेमें सोचो। यह जैसा होता है होने दो। अन्य पदार्थ तुम्हारे सोचनेसे वैसे हो नहीं जावेंगे। तब जैसा भी हो गया होने दो। उसका भी यह जाननेसे बिगाड़ कुछ नहीं होता और मोह है इसलिए दुःख होता है। जैसे कोई नाच रहा हो और नाचनेमें एड़ियाँ कुछ गलत उठ गयी हों, ठीक-ठीक ठेकेके अनुसार एड़ियाँ न चलें। नाचनेकी कलाको जानने वाले जो लोग बैठे हुए हैं वे दुःखी हो जावेंगे। वह गल्ती देखकर वे दुःखी हो जाते हैं इसका कारण है कि उनको भी शौक है, उनको भी अहंकार है। देखो जाननेकी कलापर ही सब कुछ निर्भर है। जगत्के सब पदार्थ

से निराला अपने आपको जो शुद्ध ज्ञायकस्वरूप है वह जब तक अनुभवमें नहीं आता, कर्तृत्वबुद्धि नहीं मिटती तब तक अज्ञानी सदा अपने घमंडमें रहता है ।

कोई बड़ा धनी था और अब वह बिल्कुल गरीब हो गया हो तो वह अनेक कल्पनायें करता कि मेरे दरवाजेपर सैंकड़ो जूते उतरते थे, मेरा सम्मान होता था । ऐसा कहकर अपना बड़प्पन जताता है । चाहे अर्थ ऐसा निकले कि पापका उदय आ गया । सो देखो सब खत्म हो गया । यद्यपि उसके सुनानेमे इज्जत नहीं है, बेइज्जती है तो भी उनकी कर्तृत्वबुद्धि का नशा है सो कहता है । वर्तमानकी बातका भी कोई अहंकार करता व भविष्यका भी । वह यों बन जायगा, वह ऐसा हो जायगा, यों इज्जत वाली बातमें घमंड किया । इस कर्तृत्वबुद्धिमे अपने हितका मार्ग नहीं सूझता । तो इन संसार भावोंको छोड़कर हमें मोक्षमार्गमें आना चाहिए । मैं जो करता हू वह उपयोग और योगको ही करता हूं । इसके अतिरिक्त करनेका कहीं काम नहीं है । इतना कर लेनेके बाद शरीरमें जो वायु भरी है, चक्कर करने लगती है । तब आत्माके भावोंके अनुसार चक्कर काटना शुरू हो जाता है । यों उपयोगके अनुसार योग व योगके अनुसार वायु चलती है । जब आत्माके प्रदेशमें बोखलाहट होने लगी तो वहाँ एक क्षेत्रमें रहने वाले इस शरीरके स्कन्धोंमें भी वायुकी बोखलाहट होने लगी । जहां इस शरीरमें वायु चले तो शरीरके अंग भी चल उठे । जैसा उपयोग किया था उस ही के अनुसार योग हुआ, वायु चली, अनेक अंग चले और उन चलते हुए अंगोंके बीचमे कोई रोटी ले आए तो उसके भी परिणमन हुए । उसको देखकर लोग कहते है कि इसने रोटी बनाया, दुकान, चलाई, वस्तुवें खरीदी इत्यादि बातें लोग कहने लगते हैं । परमार्थसे अन्य कुछ नहीं किया । जीवने तो केवल उपयोग और योग ही किया है । उपयोगके योग होनेके अतिरिक्त इस जीवकी करतूत कुछ नहीं है ।

लोकमें कहावत कही गई है कि 'घी शक्कर मीठा या बहूके हाथ ।' घी, शक्कर होनेके कारण पकवान मीठा है । हाथ निमित्त है । इसमें मीठा क्या है ? बहूके हाथ मीठे हैं क्या ? नहीं, शक्कर मीठी थी । तो पकवान बहूने बनाया या शक्करने बनाया । देखो हाथमें हाथ चला और रोटीमे रोटी बनी । व्यर्थका ही अहंकार होता है कि रोटी मैंने बनायी है । रोटीका उपादान तो वह आटा ही है । हाथ तो निमित्तमात्र हैं । निमित्त वह कहलाता है जो अलग रहा करते हैं । हाथ रोटीसे अब भी अलग है । लोकमें जो भी काम होता है उन सब कामोंसे भी हाथ अलग हैं । निमित्त अलगको ही कहते हैं । जो भिन्न चीजें हैं सारी अलग है तभी तो निमित्त पाकर भी यदि उपादान योग्य नहीं है तो कार्य नहीं होता । आज भाई आटा नहीं बचा । अरे नहीं बचा तो नहीं सही, कैसे बनेगा ? धूल धर दो । क्या रोटी बन

जावगो ? नहीं। क्यों ? अरे उपादान तो है ही नहीं। कार्य जितने होते है वे उस ही वस्तु में होते हैं, जहाँ कि वह कार्य है। मैं जो कुछ परिणाम करता हूँ, कार्य करता हूँ, मेरा असर मुझमें ही है, मेरेसे बाहर मेरा असर नहीं है। मोह करके दुःखी हो गया, बरबाद हो गया। दुःखी हुआ तो दुनियाके अन्य किसी वजहसे दुःख कुछ नहीं हुए। मोह हुआ उससे ही दुःख हुआ। मोहकी गंदगी जो दुनियामें है, हमारी ही है। बाहर कोई गंदगी नहीं है। इस गंदगी का कारण यह आत्मा मोही ही है, मोहका परिणाम ही है। इस मोहके परिणामने हमें निगोद जैसी खोटी योनियोंमें पहुंचने वाला बना दिया। बतलावो इसमें कौनसी स्थिति ऐसी है जो अच्छी है और संतोषके लायक है। जैसे कहावत है कि—'घर घरमें मिट्टीके चूल्हे।' घर घरमें क्लेश हैं, घर घरमें विपदाएँ हैं। कहीं चले जावो, कचहरीमें जज बैठता है कुर्सीपर और हुकूमत करता है। अनेक लोग आकर सलाम कर रहे हैं और बाबू बने हुए बैठे हैं। देखने वाले सब लोग सोचते हैं कि जज साहब सुखी है। अरे वह सुखी नहीं है। वह अहंकारसे भरे हुए हैं। निरंतर दुःखी होते हैं और चिंताओंसे युक्त हुआ करते हैं। तो बतावो कि वह मजेमें कैसे होगे ? ऊपरी शानसे सुखी हैं, पर वह भीतरी मनसे दुःखी हैं। जैसे ऊपर से चांदीका घडा दिखता है और अन्दरमें विष्टा भरा रहता है तो वह कैसा है ? इसी तरह संसारके प्राणी ऊपरसे चिकने चुपड़े लगते हैं व भीतरसे अज्ञान व अशांति भरी है। कहा है न वैसे ही। लखनऊ जैसी नजाकत है। यही बात है कि दिखने मात्रमें वह सुखी है, पर भीतरसे वह विकल्प भरे हुए हैं और दुःखी हो रहे है। भीतरमे राग द्वेष, मोह इत्यादि भरे हुए है। कौनसी ऐसी स्थिति है जिससे अहंकार किया जाय, संतोष किया जाय। जैसे रास्ता भूलकर कोई पुरुष कुछ आगे बढ़कर चला गया है तो भूल मालूम होनेपर सामनेके बडे बगीचो, वन उपवनोसे अपना मुख मोड लेता है, उन्हें मुडकर भी नहीं देखता है। इसी प्रकार खोटे मार्गमे, भ्रमकी बातोमें पड़कर बहुत दूर तक चला फिरा, भटकता हुआ प्राणी जब यह समझ जाता है कि ये सब विषय कषाय हैं, भूलका मार्ग है। निज सहज स्वभावकी दृष्टि छोडकर परपदार्थोंको अपना मानना यह सारी भूल है। हम मार्गको भूल गए हैं। यह तो व्याधियोंका मार्ग है—जब ऐसा सही ज्ञान होता है तो यह जीव अपने कुटुम्ब, परिवार इत्यादिसे अपना मुख मोड़ लेता है। अपने धन वैभवका लिहाज नहीं करता है। अपने लड़कों पर निगाह नहीं डालता है।

यदि अपनेको व्याधियोसे रहित मार्गमें लाना है तो सुमार्गकी ओर देखो। अपना मेहाओप। फल दूसरोमे होता है ऐसी दृष्टि पापे फैलाए हैं। यही खोटा मार्ग है, यही संसार है। यह विपरीत मार्ग है, यही संसार है। इसमें चलनेसे इसमे ही भटकते रहोगे। जब

समझ आती है तब ज्ञान इससे मुड़ जाता है। मेरी शक्तियोंका परिणाम मुझमें ही होता है। मेरा मित्र मैं ही हूं, मेरी विपदाएं मैं ही हूं, यह ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान् आत्मा है, इसको ही अपने आपके लक्ष्यमें लो। इस शरीरकी समस्त आकुलताएं समाप्त हो जायगी। अपनी चेष्टाओंका फल दूसरोंमें मानना सोई कुबुद्धि है, संसार है। अगर कुछ असंयममें भी पड़ा रहना पड़ता हो तो फिर भी प्रतीति तो पूर्ण सही रखना चाहिए। अपनेको ऐसा ही प्रतीत करना चाहिए कि मैं सबसे निराला, केवल ज्ञानस्वरूप ही आनन्दमय भावात्मक एक विलक्षण चैतन्य पदार्थ हूं, जिसका यहां कुछ नही है। इसमे जो कुछ हरकत होती है, चेष्टा होती है वह इस आत्मस्वरूपकी होती है और जो असर बनता है वह इसके ही बननेकी चेष्टा हो रही है। जो होता है इसके ही प्रयोजनके लिए होता है, इसमें होता रहता है। इसके लिए ही होता है। जैसे सर्प कुण्डली बना लेता है, अपने लिए ही अपनेको घेर लेता है। इसी तरह इस जीव ने जो कुछ उपयोग किया और योग किया वह सब अपनेमे ही अपने लिए किया। इसका इसके बाहर कुछ वास्ता नही है। अन्तर दृष्टि होनेका नाम मोक्षमार्ग है और बाहरमे दृष्टि फैलानेका नाम संसार है संसारका मार्ग है।

देखिये—भावनासे ही यह संसार मिल जाता है। अब बुद्धिमानी यह होनी चाहिए कि हम किसे प्राप्त कर लें? केवल भावनासे ही मिल रहे हैं सब कुछ। रातको एक भाईने यह प्रश्न किया कि हम जैसी चीजोंका सौदा करते है, सौदा तो करते है और चीज खरीदते नहीं। केवल भावना ही कर लेते हैं। इसमें नफा नुक्सान क्या होता है? बड़े गजबकी बात यह हो गई। नुक्सान तो सौदा लेनेपर होता कि भाव करने पर? लेकिन यह भाव कर्मका बन्ध करा देता। रोजगारमें भावना करनेसे नुकसान नही होता। नफा नुक्सान तो सौदा कर लेनेपर ही होता है। सो भैया, प्रथम तो यह बात है कि तू जो केवल भावनाओंको बना सकता है, काम कुछ कर सकता नही है। भीतरसे विषय कषायके परिणाम भरे हुए है, उनसे कर्मबन्ध होता। हिंसा, झूठ आदिके कारण कर्म नही बँधता। यह विचित्र रोजगार है। जीव भाव ही कर पाता है और भावसे ही नफा नुक्सान होता है। भावके कारण कर्मबन्धन है। हां यह बात जरूर है कि भाव बुरे है तो कार्य भी बुरा किया जाता है। इसीसे कहो कि हिंसा, झूठ आदि भावनाओंके कारण कर्मबन्धन है। यह रोजगार विलक्षण है। यदि अपनी खोटी भावनाओंसे हटकर सही रूपमें कार्य करने लगे तो नफा हो जाय। भाव खोटे नहीं तो बाह्य परिणतिसे पापबंध नहीं। ऐसे अनेक उदाहरण मालूम होंगे।

सुदर्शन सेठ थे। रानीने सेठको बुला लिया। महलमें सब चेष्टायें कर लीं, परन्तु सुदर्शन विरक्त ही थे। राजाने गुस्से में आकर शूलीका आदेश दिया, परन्तु सुदर्शन सेठका

परिणाम रंच भी बुरा न था। उनका विचार था। रानीसे कहा था—माँ मैं तो नपुंसक हूं, उसका परिणाम निर्मल था। उसके कारण उसके कार्य बन्धन नहीं हुए। तथा परवस्तुओंके कारण मोक्षमार्गमें बाधा नहीं आयी और ये दुनियाके विचित्र गुण्डे लोग परिणाम बिगाड़ते हैं, पर कहीं बस थोड़े ही चलता है, फिर भी कर्मबन्धन हो रहे हैं। जैन सिद्धान्त तो यह कहता है कि कायसे कर्मबन्धन नहीं, कर्मबन्धन भावनाओंके कारण है। हाँ यह बात और है कि भावनाओंके बिना कार्य हो नहीं सकता। यदि साधु ईर्या समितिसे जाते हों और अचानक मार्गमें कोई कुन्थु प्राणी मर जाता है तो प्राणिघात होते हुए भी कर्मबन्धन नहीं हुआ। उन्हें जीवहिंसाका पाप नहीं हुआ। कोई बिना देखे चले और उसके शरीरसे किसी प्राणीका घात भी न हो रहा हो तो कर्म बँधेंगे। कर्मबंधनका रोजगार भावसे चलता है, चीज के लेन-देनसे नहीं। सबसे बुरा भाव, बुरा पाप तो मिथ्यात्व है। अपनी चेष्टाका फल दूसरे में देखना यह भाव भी मिथ्यात्व है। इस मिथ्या आशयको त्यागकर मैं निज चैतन्यस्वभाव मात्र देखूं और अपने में अपने आप सहज विश्राम पाऊँ।

अनंतज्ञानसौख्यादिगुणपिंडोपि तृष्णया।
भ्रमाणि दीनवत्कस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-५६॥

मैं अपने आप किन तत्त्वोंसे बना हुआ हूं, किन तत्त्वों रूप हूँ—इस पर विचार करनेसे जब आत्मामें देखते है तो यही मालूम होता है कि यह एक ज्ञानमय वस्तु है, ज्ञानसे ही रचा हुआ है, ज्ञान ही उसका सर्वस्व है, ज्ञानके मायने जानना। जानना आत्माके आधीन बात है। परपदार्थोंके आधीनताकी बात नहीं। जाननेमें परपदार्थ आते हैं पर जानना तो आत्माकी चीज है, आत्मामें उठता है। जानना आत्माके स्वभावकी कला है। इस कारण जाननेकी सीमा नहीं होती कि इसको ही जान, आगे न जान, इससे अधिक न जान। ऐसा जाननेमें कोई सीमा नहीं है। स्वभावसे ऐसा जाननेका स्वरूप है। जिसे कहते हैं अनन्त ज्ञान। यदि ज्ञान कम जाने, इतना जान पानेका कोई कारण होता है। इतनी बात बतला- इए कि दस कोशका जान लेनेका काम है और ग्यारहवें कोशके जाननेका आत्माका काम नहीं है, क्यों? अरे इसमें तो जाननेका ही मात्र स्वभाव है। सीमा बनावेगा तो स्वभाव ही मिट जावेगा। जो है सो जाननेका स्वभाव है, जाननेका विषय सत् है, वह सब जाननेका स्वभाव है। आगे पूछनेकी गुंजाइश नहीं। क्यों ऐसा नहीं है? इसने हजार कोश तकका जाना, पर हजार कोससे आगे न जाना। पूछा जा सकता है कि वह हजार कोश तक सबको जानता है, इसके आगे वह किसीको नहीं जानता, इसका क्या कारण है? यह कितना जानता है? अरे यह सबको जानता है। इससे आगे वह किसीको नहीं जानता है। विश्वके समस्त

गुण पर्यायोंको जानता है। क्यों जानता है? जाननेका क्या कारण है? अरे पूछनेकी बात नहीं। अनहोनीके होनेका कारण पूछा जाता है। कुछ उल्टा बन गया है, उसके ही कारण पूछा जाता है। जो स्वभावसे होने वाला है उसका कारण क्या पूछा जाय? मेरा स्वभाव जाननेका है। जानना ही आत्मा है।

जैसे वर्णन किया जाता है कि आत्मामें अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व है; अगुरुलघुत्व प्रदेशत्व, प्रमेयत्व तथा असाधारण गुणोंमें श्रद्धा है, चारित्र है, आनन्द है, ज्ञान है। यदि इन सब गुणोंमें से केवल एक गुण ज्ञानका न हो, ज्ञानको न मानो, ज्ञानको बाहर निकाल दो और कहें कि सब खुशीसे रहो, अस्तित्वसे रहो तो न रह सकोगे। एक ज्ञानभरको न रहने दो, निकाल दो, ऐसा मान लो तो अपनी कल्पनाएं कर लो तो अस्तित्व न रख सकोगे, श्रद्धा और चारित्र न रख सकोगे। देखो ज्ञानके न रहनेसे कितनी विपदाएं आ गयों? ज्ञान ही जिसका एक स्वभाव है, वह सारा मैं आत्मा हूं। गुणोंका अन्तर्भाव ज्ञानमें तो किया जा सकता है पर ज्ञानका अन्तर्भाव किसी अन्य गुणोंमें नहीं किया जा सकता है। आध्यात्मिक शास्त्रमे तो सब कुछ यह ज्ञान ही है। श्रद्धा है तो ज्ञान है, सम्यग्दर्शन है तो ज्ञान है। जीवादि तत्त्वके जानने के स्वभावसे ज्ञानके होनेका नाम सम्यग्दर्शन है और रागादिका परिहार करनेके स्वभावसे ज्ञानका होना तो सम्यक्चारित्र है। ऐसा यह मैं ज्ञानमय हूं मै ज्ञानमय वस्तु हूं, ज्ञान ही जिसका सर्वस्व है। मैं तो अनंत ज्ञानादि गुणोंका पिंड हूं, फिर भी तृष्णाके वशीभूत होकर अपनेमें कैसे कैसे बखेड़े पैदा कर डाले। हीन, दीन, दरिद्र, दुःखी अपनको कर डाला।

जिसकी वजहसे जगह-जगह भटकता रहा। सर्वत्र कल्पनाओंका ही तो नाच है। दुःख हैं, कठिनाई है। इस तरहकी कल्पना कर डालो तो दुःख है। दुःख मिटाना है तो यह कल्पनायें बदल दीजिए। वस्तुस्वरूपके अनुकूल कल्पनायें कर लों जायें तो दुःख मिट जायगा यह दुःख और सुख कैसे कल्पनाकी हवामें चल रहे है? कल्पना कर ली दुःख हो गया सही बात सोच ली तो आनन्द हो गया। यह जीव अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य और अनन्त सुखोंका पिंड है। लेकिन कोई ऐसा न माने तो वही दुःखी रहेगा। जैसे ज्ञानको सीमा नही है इसी तरह अनन्त ज्ञानसे अनन्त जानने वाले आत्माके दर्शन भी अनन्त ही अनन्त हैं आनन्दका अन्त तो उसका होता है जो आनन्द झूठा हो, पराधीन हो, कल्पना भावसे बना हो। जिसकी मूल जड़ कुछ नही है। केवल संकल्पका ही फल है। ऐसे सुखका अन्त तो आया करता है, और उस आनन्दकी सीमा भी नहीं रहती है। जैसे गुड़से शक्करमें रस ज्यादा होता है उससे मिश्रीमें रस ज्यादा होता है तो उस रसकी सीमा बन जाती है। इसी तरह आत्मीय आनन्दमें तो भेद नहीं, सो आत्मीय आनन्द रसकी सीमा नहीं हो सकती है

आत्मीय आनन्द कितना आया ? देख लो कितना आत्मीय आनन्द है । ऋषभदेव और महावीर स्वामीके आनन्दमें अन्तर है क्या ? रामजी और हनुमानजीके आनन्दकी सीमा है क्या ? नहीं है । और यह ज्ञानी जीव भी जब आत्मीय आनन्द अनुभव करता है तो उसके आनन्द की भी सीमा नहीं है । सीमा कहाँ बताई जाय ? जिसकी कमी हो वह सीमा है । इसी प्रकार समस्त विकासको बनाए रहनेकी ताकत ही अनन्तवीर्य है । मैं अनन्त आनन्द, ज्ञानानन्दका पिंड हूं । ऐसा होते हुए भी यह भगवान् आत्मा केवल कल्पनाओंके भुलावेमें पड़कर बाधाके बन्धनमें आकर दीनवत् संसारमें भ्रमण करता है ।

जैसे लोग कहते हैं कि हम अपने घरके बादशाह हैं और दूसरे लोग चाहे जो कुछ हों । अरे अपने घरका भी सही पता लग जाय कि मेरा निजी स्वरूप ही घर है, जो ज्ञानस्वरूप, ज्ञानमात्र है, इस मेरेका किसीसे कुछ संबंध नहीं है, इसे कोई पहचानता नहीं है, इससे कोई बोलचाल होती ही नहीं है, मैंने कभी किसीको कुछ किया ही नहीं, कोई मुझसे अब तक बोला-चाला ही नहीं, मैं सबसे निराला ज्ञानस्वरूप, ज्ञानमात्र हूं, इस जगत्के प्राणियोंको यदि निजी घरका पता लग जाय तो यह बात सत्य है कि वह अपने घरका सर्वस्व हो जावे । सारा जहान चाहे जैसा उसे माने, उससे कुछ अहित नहीं हो सकता है । सारा जहान अनीति कर यदि उसके विपरीत चले तो भी उसका अहित कुछ नहीं हो सकता है । अपना हित और अहित अपनी कल्पनाओंसे, संकल्पसे होता है । लोग कहते हैं कि ईश्वरने संकल्प किया कि सारा संसार बन गया । ऐसी ही उसकी विचित्र लीला है, मगर कुछ नहीं करना पड़ता, हाथ-पैर नहीं चलाने पड़ते । वह तो सर्वव्यापक, सच्चिदानन्दमय एक अद्भुत शक्ति है । उस ईश्वरने संकल्प किया कि ससार बन गया । जैसे कि लोग कहते हैं कि अब इस ईश्वरके मर्मको विचार कर अपने आपका बोध कर । तू अपनेको ऐसा निरख कि मैं ज्ञानमय आत्मा हूं । जिस आत्मामें हाथ पैर नहीं हैं, केवल ज्ञानका पिंड है ऐसा मैं आत्मा हूं । ज्ञानमें क्या जानना है ? ओह, ज्ञानका जानना । अरे जो है सो जान लो, वस्तुओंको जान लो । ज्ञान इस आत्माका प्रधान धर्म है ।

इस दृष्टिसे देखो तो इस आत्मामें ज्ञान लोकालोक व्यापक है । यह आत्मा संकल्प करके ही अपने आपकी सृष्टि-रचना कर लिया करता है, और ऐसे सभी आत्मा हैं । तो उन आत्माओंके स्वरूपमें दृष्टि देकर विचार करो । यह ज्ञानमय स्वरूप अपने संकल्पमात्रसे सारे संसारको रचता है । संकल्प ही तो करता है । कर्मके बन्धन होते हैं । कैसे इसने संकल्प किया कि बंधन हो गए ? पुण्यका बन्धन होता है । कैसे संकल्प तूने किए कि पुण्य नहीं हो पाया । पुण्यका बंधन होता है कैसे ? सेवा निर्जरा होती है कैसे ? अपने निर्विकार यथार्थ

स्वरूपको संकल्पमें लो। संकल्प मात्रसे अपनी सृष्टिकी रचना करते हैं। हम तो अनन्तज्ञान के पिंड हैं, मगर मोहसे, तृष्णासे रहते हैं, इसलिए इस असार संसारमें घूम रहे हैं। ये दस लक्षण प्रति वर्ष आते हैं। ये हमें ख्याल कराते हैं।

हे आत्मन्! तेरा क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, अकिञ्चन व ब्रह्मचर्य जैसे पवित्र विकासरूप रहनेका स्वभाव है। ऐसे ही स्वभावमें रहे तो तेरे सारे सकट समाप्त हो जावेंगे। इस स्वभावको छोड़कर अन्य बातोंमें लगे तो संसारमें भटकना ही बना रहेगा। आज इस वर्षके दस लक्षणका प्रथम दिन है, क्षमाका दिन है। क्षमा करो, माफ करो, अरे अपने प्रभुको ही क्षमा कर, जानने वालेको ही माफ कर। अपने आपको मैंने कितना सताया है, अपने आप पर कितना गुस्सा किया है। अनन्तानुबन्धी यह कषाय अपने आप पर किए जा रहे हैं। अपने अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि अपने आप पर किए जा रहे हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि उन्हें कहते हैं जो सम्यक्त्व नहीं होने देते। क्यों भैया, एक ऐसा मनुष्य है जिसके घरमें स्त्री व पुत्र दो प्राणी हैं, कमाते है, पैसा आता हैं, किरायेका आता है, कमाना भी नही पड़ता है, किसीसे गुस्सा होनेका कोई काम नहीं है, वह तो पड़ा रहता है तो उसमें सदैव क्षमा बनी रहती होगी। अरे इसमें क्षमा नहीं बनी रहती है, अपने प्रभुकी प्रभुताको भूल रहा है और अपने पर निर्दयी होकर अपनी प्रभु आत्मासे विमुख हो रहा है। अपने प्रभुकी प्रभुताको बिगाड रहे हो यह कितना बड़ा भारी क्रोध है।

हे आत्मन्, तू अब अपने आपको मत सता। तू तो ज्ञानमय ईश्वरसम परम पवित्र है। तू समस्त पदार्थोंसे अत्यन्त जुदा है। विवादोंसे तू अत्यन्त परे है। तेरेमे झंझटोंका नाम नहीं है। ऐसे अपने महान ऐश्वर्यको तो देखो। उसकी रक्षा तो करो। अपने आप पर दया करो, अपने आपको माफ करो। अपने आपमें क्षमा आयेगी तो उत्तम क्षमा बनेगी। मैं दूसरे जीवोंके कसूरोंको बिल्कुल माफ कर देता हूं। ऐसी दृष्टि अगर अपनेमें हो, ऐसा विश्वास अगर अपनेमें हो तो वह तो मिथ्यात्व है। जैसे लोग कहते हैं कि मैंने क्षमा कर दिया। अरे वह क्षमा नहीं है। उत्तम क्षमा हो तो अपनेको क्षमाकी मति बना देती है। अपने आपकी दयामे सबकी दया आ जायगी। जो अपने आपको सहज स्वरूपके दर्शनमें लगानेके लिए लालायित हैं, उनके लिए दूसरोंके अपराधोंके करनेमें क्या लगेगा या दूसरेके अपराधोंको दिलमें रखेगा क्या? दूसरोंकी क्षमा सहज बन जावगी। विषय कषायोंके परिणामोंमें क्यों अधिक लगे हुए हो। धन कमाते हो तो अरे धन किसके लिए कमाते हो अथवा न्यायकी सीमासे बढ़कर किसलिए इतना श्रम करते हो? अरे जिसके लिएश्रम कर रहे हो वे तुम्हारे कोई नही हैं,

कुछ नहीं हैं; और हैं तो तुम्हारी अक्ल ठीक करनेके लिए हैं अर्थात् विपदाओंमें गिरानेके लिए हैं, विपदाओंमें डालनेके वे एक निमित्त कारण हैं, वे तुम्हारे कोई नहीं हैं। अपनेको संभालो। जैसी दृष्टि अपने आपको क्षमा कर देनेकी है वैसी दृष्टि परको क्षमा कर देनेकी बनाओ। अभी १००-२०० वर्ष पहले पं० दौलतराम जी, भगवतीदास जी आदि थे। जिनमें यह निर्णय रहता था कि एक रुपया कमाया वही बहुत है। आज एक रुपयेसे १० रु० कमा लेनेका ही भाव रखें सो भी गनीमत है। एक रुपयेमें एक आना मुनाफा या एक पगड़ीमें एक आना मुनाफा। यदि १६ रु० का माल बेचा तो १६ आनेका मुनाफा हो गया, बस इतना होते ही तुरंत दुकान बंद कर देते थे और मंदिरमें आकर धर्मध्यान करते थे, स्वाध्याय व चर्चामें समय व्यतीत करते थे। वे लोग थे ज्ञानी पुरुष, उनका ध्येय दूसरा था।

आत्माके दर्शन कर लें और उसी आत्मीय आनन्दके रसका पान कर लें तो यही आत्मानुभव पार कर देने वाला है और सब असार काम हैं। ऐसी धुन लगनेके कारण दुकान से होते हुए मुनाफेको छोड़कर चले आए और मन्दिरमें बैठकर विचारोंमें लग गए। मंदिरमें धर्मकी चर्चा होती है उसको सुना। धर्मकी चर्चा सुननेसे स्वाध्याय तो हुआ। इतना तो संतोष कर रहे हैं कि रागकी आगमें जल नहीं रहे हैं। वीतराग मन्दिरमें बैठे हुए हैं। प्रभुकी वाणी तो सुन रहे हैं। ऐसे सुन्दर चरित्रसे रहें तो जगत्के सारे पाप दूर हो जावेंगे। मोहसे तो दूर हो रहे हैं, क्योंकि यह बोध तो स्पष्ट है कि जो समागम प्राप्त है वह इस संसारमें कुछ नहीं रहेगा। जैसी दृष्टि वृत्ति बने, जैसा जिसने परिणाम किया उसके अनुसार ही जो कुछ भोगना होगा भोगेगा। क्षमा कर, अपने आपको क्षमा कर। परवस्तुओंके बारेमें अन्य जीवोंके बारेमें राग, द्वेष, मोह, हठ इत्यादि न बनावे। राग होता है उसमें भी पछतावा होता है। द्वेष होते हैं तो अपने आपको दुःखी कर लेते हैं। सो भाई अपने आपपर दया करो, अपनेको क्षमा करो। अपने आपकी ही तरह जगत्के सब जीव हैं, अतः सब जीवोंपर क्षमा करो। क्रोध सब गुणोंको जला देता है। क्रोधको अग्निकी उपमा दी जाती है। सो यह बड़ा भारी क्रोध किया जा रहा है। हम अपने आपको सताते चले जा रहे हैं। दूसरोंके प्रति नाना प्रकारके राग, द्वेष करते हैं तो यह बुरा ही तो करते हैं। यह परमें राग द्वेष क्या है? अपने आपको सताना है। अतः अपने आपको सताते चले जा रहे हैं। सो भाई बढ़ते हो तो बढ़ते जाओ, करोड़पति या अरबपति हो जाओ, यह तो मामूली बात है। वह मोक्ष जाये तो जाने दो, जाओ, बड़ी जल्दी जाओ। उससे मेरी कोई हानि है क्या? अरे जाओ परमात्मा हो जाओ या जाओ अपने आपमें रमो। दूसरोंको बड़ा बना देनेमें, दूसरोंके बड़ा हो जानेसे यही

कुछ कम नहीं हो जायगा। सबके प्रति कल्याणभाव हो, अपने आपके स्वरूपका परिचय हो क्षमा तभी पैदा होती है। सबने अपने-अपने यहाँ क्षमाकी महिमा गायी है। कोई कहता है कि तुम्हारे गाल पर कोई तमाचा मारे तो कहो अच्छा लो यह दूसरा गाल भी तुम्हारे तमाचेके लिये हाजिर है। यह ईसाई लोगोंके यहाँ कहा है। अरे तमाचा तो केवल मन बह-लानेके लिए लगाया है तो लो और बदला लो। किसी ने किसी प्रकार कहा। मतलब क्षमा को धर्म सबने कहा।

हे आत्मन्! निज नाथको पहिचाने बिना अंधेरा है। तूने अपने यथार्थ स्वरूपका अनुभव नहीं किया, इसलिये तेरेमें क्षमाका अनुभव नहीं हुआ। यदि तेरेमें क्षमा नहीं है तो समझो तूने कुछ नहीं किया। इस वर्ष भी ये भादोंमें दस लक्षण आए और भादों सुदी पंचमीसे आए। ऐसा हुआ क्यों? एक एक कल्प कालमें प्रलय काल हुआ करता है तो इस कालमें भी प्रलय हो चुका था। प्रलयमें वर्षके अंतिम ४६ दिन खोटे होते हैं। बहु वर्षा, तूफान इत्यादि चला करते हैं। सारे विश्वमें नहीं चलते। भरत व ऐरावतके आर्य खंडोंमें चला करते हैं। वे दिन आषाढ़ सुदी पूर्णिमा तक खत्म हो जाते हैं। फिर ४६ दिन तक अच्छी वर्षा होती है। उत्तम वृष्टि होती है, अमृत वृष्टि, दुग्ध वृष्टि होती है, जिससे कुछ शांति छा जाती है। वह ४६ दिन भादों सुदी चौथको खत्म हो जाते हैं। इसके बादमें आपके धर्मकी वृत्ति सिर्फ होती है। जो कुछ होना था इन्हीके ४६ दिनोंमें हो गया। अब धर्म बुद्धि होती है। वह तिथि भादों सुदी पंचमी को पड़ती है। यह दस लक्षण पर्व प्रतिवर्ष हमें धर्मभावका स्मरण कराने आते हैं। हमको चाहिए कि अपनी शक्तिके अनुसार हम क्षमादि धर्मोंको अपनेमें उतारें। सबसे बड़ी चीज यही है कि अपने पर यथार्थ क्षमा कर लो तो समझो कि सब कुछ कर लिया। हमने अनंतज्ञानमय होकर भी स्वभावदृष्टिसे दूर रहकर इस संसारमें घूमकर अनंत दुःख उठाए। अब मैं अपने स्वरूपको देखकर, अहंकारसे दूर रह कर अपनेमें अपने आप आनन्दमग्न होऊं।

ज्योतिर्मयी महानात्मा बञ्चितोऽक्षविषैरहम्।
सम्बन्धमाचरन्यैस्तु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१—५७॥

यह आत्मा ज्ञानज्योतिस्वरूप है। उस स्वरूपको देखकर जगतके सभी पदार्थोंमें दृष्टि डालते हुए जब निर्णय करते हो तो यह आत्मा सर्वमें महान् है। इसे समयसार कहा जाता है। समयका अर्थ है 'सं एकत्वेन अयते स्वगुणपर्यायान् गच्छति इति समयः।' जो अपने गुणपर्यायमें तन्मयसे हो रहे उसे समय कहते हैं। सभी पदार्थ समय हैं, वे अपने ही गुण पर्यायमें तन्मय हैं। तन्मय होना तो स्वभाव ही है। इस कारण सब पदार्थ समय कहलाते

हैं। उनमें सार क्या है? यह आत्मपदार्थोमें ऐसा अनुभव करना कि जगत्में सब कुछ होता है, धर्म है, अधर्म है, पुद्गल है, काल है, आकाश है, पर एक जीव न हो, एक चैतन्यपदार्थ न हो तो क्या हो? व्यवस्थाएं न हों, कुछ चहलपहल न हो। इन सबका जानने वाला, इन सबमें व्याप्त यह जीव पदार्थ जीवत्व ही व्यवस्थापक है। सबको जानने देखनेका ही इसका स्वभाव है। कितना भी दूर हो, इस आत्मामें कुछ सत् हो तो यह शक्ति है कि उन सबको जान लेना। सामने हो या पीठ पीछे हो लेकिन ज्ञान सबका रहेगा। कोई पदार्थ कहीं भी रहे। सामने हो तो क्या है? ज्ञान तो अमूर्ततत्त्व है। इसमें स्वभावसे ही ऐसी कला है कि जो कुछ भी हो इसके जाननेमें आ जाता है। जाननेका जिसका स्वभाव है वह मैं आत्मा हूं। उस आत्माका महत्त्व क्या होता है? इस आत्माके महत्त्वको बतानेका कोई दावा करे तो वह विद्वानोंमें हंसीका पात्र है। उस हमारी आत्माका महत्त्व और क्या हो सकता है।

जगत्के जितने भी जीव हैं सब भगवानस्वरूप हैं। राम, विष्णु, ब्रह्मा, हरि और बड़े राजा महाराजा जो महापुरुष हुए हैं, जितने भी हैं, वे सब क्या हैं? उस आत्माकी ज्योति ही तो हैं, वह आत्मस्वरूप ही तो है। निगोदसे लेकर सिद्ध तक जो जितने विकास हैं वे सब इस आत्मामें ही तो हैं। कितने प्रकारके भोग विलास रहें? यह आत्मा वह है जिसमें अनन्त गुण हैं। यों तो कहनेमें ४, ६ आवेंगे पर गुण अनन्त हैं। ज्ञान, दर्शन, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, योग, शक्ति आदि अनेक गुण हैं। उन गुणोंमें से केवल एक गुणको लें तो उसमें अनन्त पर्याय हैं। उन पर्यायोंमें से एक पर्यायको लें तो एक पर्यायमें अनेक अविभाग प्रतिच्छेद हैं। प्रत्येक अविभागप्रतिच्छेदोंमें अनन्त रस है। ऐसे अनन्तरसका पिंड यह मैं आत्मा हूं। परन्तु जो अब इस आत्माकी दशा हो रही है वह इन्द्रियोंके विषयोंके वशीभूत होकर हो रही है। इन्द्रियोंसे इस आत्माका लेन-देन कुछ नहीं है। फिर भी इस जीवने स्वयं भ्रम करके, अज्ञान बना करके अपनेको ऐसा बना रखा है कि न इसकी इन्द्रियोंमें शांति है, न विषयोंमें शान्ति है। शांति तो परमात्मतत्त्वसे होती है। अगर हम मान लें कि हमें शांति नहीं है तो हमें समझ आयेगी कि इन्द्रियोंके विषयोंने ठग लिया है।

देखो तिर्यञ्चोंमें हिरन है, हाथी है, मछली है, भैंवरा है, ये जीव एक एक विषयमें तन्मय होकर मरणको प्राप्त हो जाते हैं। पर इस मनुष्यकी दशा तो देखो यह तो सर्वविषयों के आधीन है। जो समागम पाया उसका भी उपयोग विषयोंके लिए किया। इस मोही प्राणी ने कभी धर्मका सेवन भी किया तो भोगके निमित्तसे किया। परिवार सुखसे रहे, मुकदमेमें विजय हो, पैसा मिलने आदिकी भावनाएँ धर्मसेवन हो जाती हैं। धर्मपालन किया तो भोग

के खातिर किया। केवल राग, अज्ञान, मोहमें आकर धर्मका पालन तो किया, मगर वह भोगके निमित्त हो रहा है। आत्माके लिए धर्मका पालन नहीं किया। आत्मा था स्वरूपमें ज्ञान दृष्टि रहना तो इस आत्माके स्वभावका काम है। इसका काम बस प्रतिभास मात्र जो सत् है वह झलक गया, बस इतना मात्र काम है। इसके आगे आत्माका काम नहीं है। आत्मामें देखो तो समस्त प्रदेशोंमें ज्ञान और आनन्दरस ही भरा है, पर उससे रुचि नहीं है। जीवका उपयोग बाह्यकी ओर है, पर उस उपयोगमें शांति न मिल सकी। अपने आपको देखा तो सब पदार्थोंको त्यागकर ऐसी बुद्धि बन जाय कि यह तो मैं चैतन्यमात्रस्वरूप ही हूं तो आत्माको शांति प्राप्त हो सकती है। यदि इस बुद्धिसे विलग हुए तो शांतिका कुछ पता है क्या? विषयोंमें पड़कर भोग किया, मरणके समय क्लेश और विकल्प होंगे। यों विषयभोग का ही मार्ग लिया, यह तो शांतिका मार्ग नहीं। शांतिका मार्ग तो गुप्त है। शांति अपने ही अन्दर अपने आपसे ही प्रकट होती है। ऐसा यह महान् आत्मा इन्द्रियोंके विषयोंके कारण ठगाया गया, वंचित रहा। ये इन्द्रियाँ तो सुन्दर लगती हैं पर आनन्दकी जगहपर क्लेश भोगना पड़ता है। औरकी बात छोड़कर अपनेमें आवो, क्योंकि बड़ी अवस्था हो जानेपर फिर पछतावा होता है। इतना समय गर्द कर दिया, दुःखोंमें, चिंताओंमें समय गुजर गया। जो समय गुजरा वह समय वापस नहीं आता।

देखो उम्र १० वर्षकी हो गयी, ज्ञानकी वृद्धि हुई, बाह्य सिलसिले चलने लगे। युवावस्था आ गई। युवावस्थामें भी ज्ञान नहीं मिला। वह अवस्था भी दुःखोंमें ही बीत गई। अब बुढ़ावस्था आ गई तो पछतावा करते हैं। अरे अब तो सही परिणाम बनाओ, अभी काम बन जायगा। रागमें, मोहमें, विषयोंमें आत्माको शांति नहीं प्राप्त हो सकती है। जगत् के कौनसे जीव तुम्हारे हैं जो राग करते हो। केवल मायामय मूर्ति ही तो देखते हो कि आत्मा भी देखते हो। अच्छा, तुम राग किससे करते हो? क्या शरीरसे, इस अशुचि पिंड से? इससे तो करते नहीं। तब क्या आत्मासे करते हो? आत्मा तो अमूर्त चैतन्यमात्र है। जैसा एक चेतन है तैसे सब चेतन हैं। अतः आत्मस्वरूपके जाननेपर व्यक्तिभेद तक भी नहीं रहता, फिर राग हो क्या करोगे? यही मायामय मूर्ति ही तो देखते हो। वह कुछ प्रीतिकी चीज है क्या? आत्मासे प्रीति करना है तो आत्माके स्वरूपको देख। यह आत्मा एक ज्ञान भाव मात्र है। जाननमात्र, आकाशकी तरह अमूर्त किन्तु एक ज्ञानगुणको लिए हुए है। एक विलक्षण पदार्थ है। वह तो वह है और ऐसे ही सब हैं। स्वभाव और आत्मामें भेद ही नजर नहीं आता। मुझ ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वको देखता ही कौन है? अरे देखने से राग नहीं आ सकता है। वह ज्ञाताद्रष्टा ही रह सकता है। उस आत्मासे कौन प्रीति करता है? ये

जितने भी बाह्य पदार्थ हैं वे सब बिल्कुल असार है। इनमें हितका नाम ही नहीं है। यदि पर पदार्थोंसे अपना हित मानते हैं तो समझें कि हम भ्रममें पड़कर उल्टे मार्गमें चल रहे हैं।

अरे इन विषयोंके मार्गको छोड़ो और अपने स्वरूपमार्गमें आवो, जिसमें उस सहज स्वरूपके ज्ञानानन्दमय आत्मतत्त्वके दर्शन होंगे। वह तो प्रभु पवित्र है। जैसा प्रभुका आनन्द है वैसा ही आनन्द उसका है। मैं अपने स्वरूपको देखूं बाकी सब व्यर्थ हैं। जगत्का कोनसा ऐसा तत्त्व है जो हितकर हो? फिर कोनसी बातमें अहंकार हो? आज दस लक्षणों का दूसरा दिन है और मार्दव धर्म है जिसका अर्थ है कोमलता, नम्रता ऐसी विनम्रता हो जो खुद खुदमें समा गयी हो, खुद खुदमें ही विलीन हो गयी हो। ऐसे आत्मानुभवका रस पी लो। यही शुद्ध आत्महितका मार्ग है। जगत्के अन्य पदार्थोंको तू न मान। कोनसे पदार्थ तेरे हैं? कोई नहीं। प्रत्येक पदार्थ अपने अपने ही सत् हैं और फिर विनाशीक हैं। नष्ट हो जाने वाले भी हैं। कोनसी ऐसी वस्तु हैं जो सदा रहती हो? भगवान् स्वामी समन्तभद्रने कहा है—

स्वास्थ्यं महात्यन्तिकमेव पुंसां स्वार्थो न भोगः परिभंगुरात्मा।
तृषोनुषंगान्न च तापशान्तिरिती दमाख्यद्भगवान् सुपार्श्वः॥

कहते हैं कि जीवका आत्यान्तिक स्वास्थ्य क्या है? अथवा उसका वास्तविक स्वार्थ क्या है? आत्मप्रयोजन क्या है? सदाके लिए स्वस्थ हो जाना यही जीवका परम स्वार्थ है, परम हित है। स्वास्थ्य कहते किसे हैं? स्वस्मिन्, तिष्ठति इति स्वस्थः स्वस्थस्य भावः स्वास्थ्यम्।' अपने आपमे ठहरे रहनेकी बातको कहते हैं स्वास्थ्य। सदाके लिए अपने आपमें रम जावो, ठहर जावो—ऐसा जो स्वास्थ्य है वह उत्कृष्ट स्वार्थ है। यह भोगविलास रहित नहीं, वह तो क्षणिक है। भोगकी प्रीतिमें केवल खोया हुआ है। देखो मोहीजन जो कर रहे हैं वह सब कल्पनाके समय सस्ते लगते हैं पर ये भोग विषय बड़े मंहगे पड़ेंगे। हाथ पैर मिलते हैं, मन मिलता है, बहुतोंमें हुकुमत चलाई जा सकती है, बहुतोंसे बात बनाई जा सकती है। इस प्रकारके विचारों वाले प्राणीका स्वरूप या सर्वस्व खोया हुआ रहता है। वह नरक वाली योनियोंमें भ्रमण करता रहता है। जन्म मरणके चक्रमें पड़कर वह कोड़े मकोड़े हो जायेगा और उसे सदा दुःख ही दुःख होंगे। देखो तो गजबको बात हमारी यह विविध सृष्टि इतने जीवोंके रूपमें कैसे बन गई? यह सब प्रकृतिकी उपाधिमें चेतन प्रभुकी अवस्था है। परमार्थसे तो मैं एक शुद्ध आत्मतत्त्व हूं। यदि बाह्यपदार्थोंमें दृष्टि लगी है तो पतन है और यदि स्वमें दृष्टि लगी तो उत्थान है। जो शुद्ध आत्मतत्त्व, वीतराग सर्वज्ञ निर्दोष भगवान आत्मा अरहंत एवं सिद्ध है और ऐसे शुद्ध बननेके प्रयत्नमें जो लगा रहता है वह साधु है।

ऐसा ज्ञानमय, चरित्रमात्र मैं सत् हूं। अपने आपमें तन्मय हुआ ज्ञानानन्द आदि त्रैकालिक शक्तियोंमात्र जो जो अनंत विलासको लिए रहती है। जो अनेक प्रकारके पर्यायोंको धारण करता है फिर भी वहींका वही है। वह चैतन्यप्रभु मैं हूं। इसका ही पूर्ण विकास अरहंत व सिद्ध भगवान् है। ऐसे शुद्ध भगवान्की उपासना करें तो यह हमारे उत्थानकी बात है। शुद्धके आश्रयसे शुद्ध होता हूं और अशुद्धके आश्रयसे अशुद्ध होता हूं। वर्तमानमें तो मैं शुद्ध नहीं, भगवान् पर हूं तो किसके लक्ष्यसे मैं शुद्ध बनूं? स्वरूपको लक्ष्यमें लूं तो मैं शुद्ध हो सकता हूं। शुद्धका लक्ष्य करनेसे आत्मा शुद्ध हो गयी और अशुद्धका लक्ष्य करनेसे आत्मा अशुद्ध हो गयी। अब क्या पसंद करोगे कि आपकी आत्मा अशुद्ध हो कि शुद्ध हो? अब देखो शुद्ध आत्मा क्या है? जिसकी आत्मा रागी है, द्वेषी है, जो विषय कषायोंसे भरा हुआ है, जो घूम रहा है ऐसी आत्माको अशुद्ध कहेंगे। उसके लक्ष्यसे शुद्धि नहीं होगी तथा भगवान् परमात्मा है। परका लक्ष्य परमार्थसे होता नही। उनके ध्यानसे, उनके आश्रयसे आत्मा शुद्ध नहीं हो सकती है। परमार्थसे देखो तो इस आत्माके लिये यह महान् शुद्ध द्रव्य कहलाता है। कहते हैं कि मैं प्रत्येकसे न्यारा अपने आपमें तन्मय हूं। इस आत्माके अतिरिक्त जितने भी पदार्थ हैं उन पदार्थोंपर मेरा अधिकार नहीं है। मैं ही वह उपास्य हूं, मैं ही परमात्मतत्व हूं—इस प्रकारका तू मनमें विचार कर। तू उन बाह्य पदार्थोंका ध्यान न कर। तू उनको ज्ञानका विषय न बनाकर अपने ही ज्ञानका परिणमन कर। अर्थात् अपने ही भावोंका ध्यान बनाकर तू परमात्मोपयोगी बन। परद्रव्योंमें ध्यान देकर कोई परमात्मा नहीं बन सकता है। सो एक तो यह बात है। दूसरी बात यह है कि वह अपने शुद्ध परिणमनको छोड़कर लुटेरे घसीटोंका हाथ पकड़ मोक्षमें ले जाय, ऐसा हो नहीं सकता। अपने आपको ही देखो कि मैं आत्मा शुद्ध हूं, सबसे निराला हूं। अपने शुद्ध आत्मतत्वकी दृष्टिसे तू पार होगा। तू परमें दृष्टि लगाकर माया, मोह आदिमें पिसा जा रहा है। तो ऐसा करनेसे क्या हम शुद्ध बन जायेंगे, नहीं। हम आत्माकी श्रद्धा करके शुद्ध बन सकेंगे और आत्माकी श्रद्धा न कर सके तो शुद्ध न हो सकेंगे। तब फिर शुद्ध होनेका उपाय क्या है? इस आत्माका जो शुद्ध सहजस्वरूप है, शुद्धस्वभाव है, वह स्वतःसिद्ध आत्मतत्व है। मैं शुद्ध आत्मतत्वकी श्रद्धा करनेसे शुद्ध हो सकता है। हमारे इस कूड़े कचरे शरीरके भीतर जो चैतन्यस्वरूप है, जो ज्ञानमें आ रहा है उस शुद्ध आत्मतत्वको लक्ष्यमें लें तो यह गंदगी, कूड़ा करकट नष्ट हो जाता है। हम अपनी आत्मा तथा ज्ञानदृष्टिके बहुत भीतर चलकर शुद्धतत्वको जान सकते हैं। वह कोई एक पिंड जैसी चीज नहीं, बल्कि ज्ञानको लिए हुए है। ऐसा यदि अपना ध्यान नहीं करेगा तो जगत्में तेरा कोई शरण नहीं है। बाहरमें जो शरण

माया है वह तेरे कोई नहीं हैं। वे सब स्वार्थी हैं, अपने अपने विषयोंमें वे लगे हुए हैं। वे सब अपने ही प्रयोजनमें लगे हुए हैं, वे मुझसे बात ही नहीं करते हैं, वे मेरा कुछ नहीं करते हैं। तो हम किसकी शरणमें जावें? अरे वह तेरे लिए संकट है। उनसे तुझे शरण नहीं मिलेगी। तेरी शरण तुझे तेरी प्रभु आत्मा ही मिलेगी। मैं अन्तर्दृष्टि करके देखूं तो वह ज्ञान-स्वरूप है, ज्ञानस्वभाव है। शरण तो सहीमें वह हमारा प्रभु है, भगवान् है, परमात्मा है, वही हमारा रक्षक है। तूने परको निज समझ लिया तो वह तेरे नहीं हो गए। वह तेरे हो नहीं सकते हैं। अन्यमें दृष्टि करनेसे हम बहुत गलत रास्तेमें बढ़े चले जा रहे हैं तो लौटना भी हमें उतना ही पड़ेगा। जैसे यदि हमें कलकत्ता जाना है और हम पश्चिममें चले जावें तो हमें वहांसे लौटना ही पड़ेगा। इसी प्रकार यदि हमारी दृष्टि परमें है तो हमें उतना ही उन सबसे निवृत्त होकर निजस्वरूपकी ओर दृष्टिको लाना पड़ेगा। यदि हम बाहरी तत्त्वों को उपयोगमें लाने लगें, अपने परिवार तथा मित्र जनोंको सर्वस्व मानें तो मुझे मेरा प्रभु नहीं मिल सकेगा। यदि हम विषयभोगोंमें आसक्ति न करें, अन्य तत्त्वोंको अपने उपयोगमें न लें कुटुम्ब, परिवार तथा मित्र जनोंको अपना सर्वस्व न समझें तब हमारा प्रभु हमें मिलेगा। जैसे कोई मुसाफिर भूलकर ५०० मील आगे चला गया हो तो उसे उतना ही तो लौटना पड़ेगा सही मार्ग पर आनेके लिए। इसी प्रकार इस जीवको जो अपने आपको भूलकर परमें दृष्टि लगाए हुए है उसे भी सर्व परसे निवृत्त होकर अपने निजस्वरूपको पहिचानना होगा। देखो, अपने धन, वैभव, कुटुम्ब, परिवारसे सबको प्रीति है पर अपने ज्ञानस्वरूपसे प्रीति नहीं है। ज्ञानस्वरूपमें प्रीति करनेमें तो कहीं रुकावट नहीं है। तू अपने निजस्वरूपसे प्रीति कर।

एक दुकान मालिक यहां बैठा है। कल्पना कर लें कि मैं अपनी दुकानमें गया, दुकानकी तिजोरी खोली, तिजोरीमें संदूक है, संदूकमें डिब्बा है और उस डिब्बेमें कपड़ेमें बंधा हुआ हीरा रक्खा है, उसमें अंगूठी रक्खी है तो वहां तक ज्ञानके पहुंचनेमें कमरा कोई बाधा नहीं कर सकता है। तिजोरी वगैरह कोई बाधा नहीं डालते। अरे तू अपने ज्ञानकी रुकावट न कर। ज्ञानकी रुकावट तो विषयकषायसे होती है। ज्ञानके आ जानेसे बाधाएं नहीं फैलती हैं भाई इन विषयोंमें पड़ करके ज्ञानको खोए हुए हो। इन विषयोंमें पड़नेसे तेरा कोई रक्षक नहीं। तेरी रक्षा करने वाला रुकावट करने वाला तू ही है। तेरेमें ज्ञान है, जरा अपने अन्तरमें दृष्टि तो दो। यथार्थ विकासोंके बिना तेरेको बड़ा कौन कर सकता है? इन विषयोंमें यह दम नहीं कि तुझे बड़ा बना दें। हे आत्मन्! तेरी रुकावट करने वाला ही तू है। तेरी ही सैन पाकर कर्म व विषय प्रबल होते हैं। जैसे मालिकके साथ कुत्ता हो। यद्यपि कुत्तेमें कुछ दम नहीं, परन्तु मालिकके छू छू करने पर कुत्ता बलिष्ठ बन जाता है।

वह नहीं देखता है कि यह युवक पुरुष है, इससे न जीत सकूंगा, पर वह आक्रमण कर देता है। इसी प्रकार आत्माके विषय कषायकी सैन पाकर ये इन्द्रिय विषय दुःखदाई हो जाते हैं। इस आत्माको जब निजकी पहिचान मिल जाती है तो यह बाह्यकी इच्छा नहीं करता है और अपने निजस्वरूपकी उपासना करता है। इस निजस्वरूपकी पहिचानसे ही आत्मा बलिष्ट हो जाती है।

अतः यदि हम अपने निजस्वरूप पर दृष्टि दें तो हम सुखी हो सकते हैं। यदि मैं निजस्वरूपमें दृष्टि न दे सका, बाह्यपदार्थोंसे ही संयोग रहा तो जीवन भर ही उसे दुःखी रहना है। यही पहिलेसे सोच लें। किसीमें ऐसी सामर्थ्य नहीं जो हमें सुखी कर दे। परको जिसने अपना इष्ट माना है वे दुःखी होते हैं। यदि वह विषयोंमें आसक्त है तो उससे दुःख होते हैं। यदि विषयोंमें आसक्त रहे तो विषयोंमें कोई ताकत नहीं जो उसे सुखी कर दें। सर्वथा सुखी होना तथा दुःखी होना अपने ऊपर ही आधारित है। दूसरोंके सुखी करनेसे सुखी नहीं हो सकता और दूसरोंके दुःखी करनेसे दुःखी नहीं हो सकता। मैं दूसरोंके दुःखी करनेसे दुःखी होऊँ तो इसका अर्थ है कि मेरी आत्मामें बल बुद्धि नहीं है। ऐसी कल्पना करने वाली आत्माओंको पराधीन आत्माएँ कहते हैं। हम बाह्यमें दृष्टि न करें तो हम पराधीन नहीं होंगे। मुझे पराधीन होनेसे ही दुःख होता है अर्थात् अपनी दृष्टि बाह्यमें लगा दूं तो मुझे दुःख होता है। बाह्यमें मेरा कुछ नहीं है। मेरेको बाह्यसे कुछ मिलता भी नहीं है। पर मैंने मन बना लिया है कि पर मेरे सब कुछ हैं, उनसे हमें बहुत कुछ मिलता है। यही कारण है कि दुःख होते हैं। अरे बाह्यपदार्थोंसे तुझे गौरवके लायक कुछ मिलता है? शरीर है तो वह भी असार, धन-वैभव है वह भी असार है। वह किसीके लिए भी सार नहीं हो सकेगा।

तू तो अकेला है, ज्ञानानन्दमय है। ज्ञान और आनन्दके परिणमन कर रहा है। बाहर कुछ नहीं है। तू अपने पर कृपादृष्टि रखे तो आध्यात्मिक चक्रवर्ती बन जाय। तू बाह्यसे अपनी बुद्धि छोड़ दे, तू अपने बाह्य उपयोगोंको छोड़ दे और अपने आन्तरिक उपयोगोंमें आ। यदि तू अपने आन्तरिक उपयोगोंमें आया तो सुख होंगे और यदि बाह्यमें तूने अपना उपयोग बनाया तो तुझे दुःख होंगे और तुझे पागल बनना पड़ेगा। भाई, देखो कितनी पवित्र यह आत्मा है। यह आत्मा निरंतर विषयोंसे भी ठगाई गयी, फिर भी यह आत्मा अपने आपमें स्वभावसे ठगी नहीं गयी। तू अपने शुद्ध आत्माका अनुभव तो कर तो तेरे समस्त क्लेश समाप्त हो जायेंगे। यदि तू अपने आपका अनुभव न कर सका तो तू ठगाया जायगा। तुझे क्लेश होंगे। तूने यह कल्पनायें बना रखी हैं कि विषयोंसे सुख है इसलिए तू उन विषयोंमें ही समय लगा रहा है। हाय, तू विषयोंमें पड़ रहा है। अरे विषय ही तुम्हें दुःखी बना

देते हैं। अगर मोह, राग, माया बने तो ये भी विषय हैं। इनसे भी तू पराधीन हो जायगा। तू पराधीन मत बन। यदि ऐसी दृष्टि बन गई कि यह मेरा है, यह पराया है— इससे अहंकार प्रतीत होता है। अरे मेरा कुछ नहीं है। मैं तो सबसे न्यारा हूं, यदि यह उपयोग बन जाय कि मेरा प्रभु मैं ही हूँ, मैं जगत्के सब पदार्थोंसे न्यारा हूँ। यदि ऐसा उपयोग बन जायगा तो तेरा उत्थान होगा और यदि ऐसा उपयोग न बन सका तो तेरा पतन होगा और संसारमें रुलना पड़ेगा।

यथार्थ बात तो यह है कि सुख दुःख अपनी समझपर ही निर्भर हैं। तू अपनी आत्मा में ही विश्राम कर। वहीं तुझे शरण मिलेगी और यदि तूने अपनी आत्मामें विश्राम न किया तो संसारमें भटकना पड़ेगा, तुझे सहारा कोई नहीं देगा। यहाँ तक कि मरणके समय भी तुम्हें सहारा नहीं मिलेगा। तेरा शरीर भी तुझसे मिला नहीं रहेगा। परिवारके लोगोंको खूब खिलाया, पिलाया, अपने सब सुख दुःख भूलकर परिवारके लोगोंकी सेवा भी की, पर अंतमें कोई किसीका नहीं हुआ। तेरा साथी तू ही है और कोई दूसरा नहीं है। चक्रवर्तियों के साथ भी कोई नहीं रहेगा। ये जो बाह्य पदार्थ हैं वे भी हमारे नहीं होंगे। यह जो संसारका नृत्य है वह आप निजके स्वरूपकी भूलसे ही होता है। अतः बाह्यदृष्टिको छोड़कर अब अपने आत्मस्वरूपमें दृष्टि दूं और अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ।

पूर्णदृग्ज्ञानसत्सौख्यी सिद्धात्मा देशतोप्यहम्।
पूर्णश्च भवितुं शक्यः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-५८॥

सिद्ध आत्मा, पूर्ण दर्शन, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण सुख और पूर्ण शक्तियोंसे सम्पन्न है। यह मैं आत्मा एक देश दर्शन, एक देश ज्ञान, एक देश सुख और एक देश शक्तिसे युक्त हूं। किन्तु मैं वैसा ही पूर्ण, वैसा ही सर्वज्ञ होने योग्य हूं। मेरी और प्रभुकी जाति एक है। हम और वह सिद्ध वस्तुसे एक हैं। मैं चैतन्यमात्र हूँ। जैसा सर्वोत्कृष्ट ज्ञानानन्दघन प्रभु है वैसा मैं हूँ। केवल जरा आविर्भाव तिरोभावका अन्तर है। यह अन्तर कैसे किया? हमने अपने अपराधसे किया। निमित्त कुछ भी हो, मगर अपराध हम ही करते हैं और उसके ही करनेसे मुझमें हैरानी होती है। यह तो स्वभावसे ही असीम विकास वाला है। इसका अपराध मैं ही तो करता हूं, अपराधका कारण हूं, किन्तु प्रभु पूर्ण है इसका कारण नहीं। जैसे कभी बच्चोंको मेढकका खिलौना दिया जाता है। मेढकका खिलौना टीनका बना हुआ है। उसमें पत्ती न ी लगी रहती है और पासमें चिपड़ा लगा रहता है जिससे वह चिपक जाता है। मेढकको कभी पत्तीसे चिपकाकर रख देते हैं तो वह छूटकर छिटक छिटककर उसी जगहपर उछलता है। उसके उछलनेके मायने यह नहीं कि उसका कुछ यत्न किया जाता है। वह छूटते स्वभावसे

उछलता है। उसमें कुछ करना नहीं पड़ता है। एक किवाड़ अपने आप लग जाते हैं। किवाड़ खोलनेमें तो यत्न करना पड़ता है, पर लगानेमें कुछ नहीं करना पड़ता है, छोड़ा और लग गए। जो जैसी स्थितिका स्वभावका है उसके लिए यत्न नहीं करना पड़ता है, क्योंकि उसमें कारण है। उसके खिलाफ बात है तो यत्न करना पड़ता है, क्योंकि उसमें भी कारण है। हमारे ज्ञान कम है तो इसका कारण है और भगवानका ज्ञान सारे संसारमें विकसित है उसका कोई कारण नहीं है। वह स्वभावसे ही विकसित है। वह बीचमें नहीं पैदा हुआ है। अभी अल्पसुख है, फिर दुःख होंगे, फिर सुख होंगे। इसमें कारण चलता है, पर आत्मीय आनन्द है तो इसमें कोई कारण नहीं है।

आत्माका स्वरूप ही है कि वह आनन्दमें रहा करे। भगवान पूर्ण ज्ञानमय है, पूर्ण दृष्टिमय है, पूर्ण आनन्दी है, पूर्ण शक्तिवान् है। इस शुद्धविकासके बने रहनेका कोई कारण नहीं है। क्यों कारण नहीं है, क्योंकि वह स्वभावतः ही अपने आप जैसा स्वरूप है तैसे वे हैं। सर्वत्र ही देख लो किसीका ज्ञान बड़ा है और किसीका छोटा है। इस ज्ञानको आकुलताके कारण है। यह मोटा दृष्टान्त दे रहा हूं। जलको अग्नि या धूपमें रख दें तो उष्ण हो जायगा, उसका कुछ कारण है। आत्मा शांत रहे इसका कारण नहीं है। आत्मा सर्वज्ञ है, परमानन्दमय है तो इस आत्माकी क्या तारीफ है? क्या कमाल है? अरे उसका तो यह स्वभाव ही है। तारीफ तो उन संसारमें रहने वालोंकी है जो तिर्यञ्च बन जाते हैं, कीड़े मकौड़े बन जाते हैं। भगवान्की हालतमें क्या कमाल है, वह तो स्वयं ही शुद्ध है। कमाल तो इनमें है जो कैसे थे और पेड़ हो गए, पत्तियां लग गयी। वाह, बाहरी आत्मा कमाल तो तेरा है। भगवान तो एक पदार्थ है, शुद्ध है, अकेला रह रहा है। भगवानका जो अंतिम शरीरके प्रमाणका आकार रहता है उसकी वजह यह है कि पहले जैसे शुरूमें थे, जब तक वह शरीरमें रह आए तब तक कर्मोंका उदय कारण था। जैसा कर्मोदय था तैसा उनको शरीर मिला, तैसा ही आत्माका प्रसार हुआ। अंतिम समयमे जो मिला उस शरीरमें आत्मा थी। पहले तो यह हुआ कि आत्मा फैलती है तो कर्मके कारणसे आत्मा सिकुड़ता है तो कर्मके कारणसे जैसा कर्मका उदय है उस ही प्रकारका आत्मा सिकुड़ता और फैलता है। अब अंतमें शरीर भी चला गया तो जब शरीर छूटा तो अब कोई प्रस्तावको रख देवे कि इस आत्मामें क्या होना चाहिए? जिस शरीरसे मोक्ष गए उस शरीरसे आत्माको फैलाकर बड़ा बनाना चाहिए या छोटा बनाना चाहिए। यदि बड़ा बनाना चाहते हो तो क्यों बड़ा बनाओगे और यदि छोटा बनाना चाहते हो तो क्यों छोटा बनाओगे? यह बड़ा और छोटा

जो कर्मोदयका कारण हुआ करता है ।

अब नामकर्म मुक्त बन रहे हैं तो न फैलनेका कारण है और न छोटा होनेका कारण है । इसी तरह सिद्ध भगवान जिस शरीरको छोड़कर मुक्त होते हैं वह जितने प्रमाणमें थे उतने प्रदेशमें वह रह जाते हैं । मैं एक शुद्ध निराला पदार्थ हूं । जैसा स्वरूप भगवानका है तैसा मेरा है । तो जैसा उनका स्वरूप है वैसा ही है । आवरण नहीं बदलता है । देखो यह स्वरूपकी शक्ति है । यह प्रभुकी भक्तिमें ऐसा दिखता है कि यह प्रभु क्या है ? हम जो हैं, सो ही रह रहे हैं । जैसा स्वरूप है तैसा ही सिद्धिका विकास हो गया । अब प्रभुमें रागबाजी नहीं चल रही है । क्षणमें कुछ, क्षणमें कुछ, लीलायें संसारी प्राणी रचा करता है । पर मालूम पड़ता है कि यह प्रभु प्रभुताकी ऐसी लीला करके थक गया है, इसलिए प्रभुने लीलायें बंद कर दी हैं ।

यहां देखो—वाह रे संसारी प्राणी ! तेरा तो थकनेका काम ही नहीं है । तू तो अनेक कल्पनायें करता है, समागम करता व संयोग वियोगके विकल्प तथा अनेक कर्मव्यताएं करता है । आजसे ५० वर्ष पूर्व तू किस योनिमें रहा होगा ? वहां क्या कोई कल्पनायें थीं कि यह घर द्वार मेरा है, यह धन-वैभव, कुटुम्ब, परिवार मेरा है और अब यहां क्या कल्पनायें करने लगा ? जब मैं यहांसे जाऊंगा तो यह कल्पनायें रहेंगी क्या ? कितना श्रम कर यह संसारी कार्य कर रहा है । तू कितना कर्मठ बन रहा है । विकल्प, निरंतर विकल्प, यह छोड़ा, वह छोड़ा और यह क्या है ? यह सब सांसारिक आपदायें हैं । जैसे किसी बड़े संग्राममें बड़े सिपाहीको चैन न हो, छिप-छिपकर, खेल-खेलकर गोली चलाये, दौड़े, भागे । इस प्रकारसे दुनियाके लोग श्रम कर रहे हैं । इस तरहसे यह प्रभु इस संसारमें नाना खेल कर रहा है । आंख मिच गईं कि आगे उसका कुछ पता नहीं । आगे गया और ढंगका बन गया और आगे बढ़ा तो कल्पनायें करके और ढगका बन गया । यों कल्पनायें करके दुःखी होता है । कोई भी इसका कुछ हो तो बतला दो । क्या है इसका, मगर कल्पनायें इतनी बड़ी बना लेता है । सो हे प्रभु ! आपने भी यह सब भारी काम किया । बड़ी कर्मठतासे ८४ लाख योनियोंमें चक्कर लगाये, अनेक लीलायें खेलीं । अब मालूम होता है कि उन कलाओंसे तू थक गया है और थक करके ही उन अपनी लीलाओंको छोड़ दिया है ।

हे प्रभो ! तुम शुद्ध पदार्थ हो, शुद्ध आत्मा हो । अरे अशुद्धिको मेटो तो शुद्ध हो जावो । अशुद्धि मेटी तो उसका परिणमन अच्छा हुआ । क्या गजब हो गया, हां महान् जरूर हो । यहांपर क्या है ? स्त्री हो गई, बाल बच्चे हो गए । अरे हो गए तो इनसे तुम्हें क्या मिला ? लाखों और करोड़ों रुपयोंका धन उनके लिए जोड़कर भर दिया । अरे वह सब

साथमें जाता नहीं, फिर क्यों इतना माया मोहके चक्करमें फँस रहे हो। इस तरहसे यह प्राणी माया मोहमें रहकर ही जाता है। अपने आत्मस्वरूपको भूल जाता है और बरबाद हो जाता है। इन बाह्यपदार्थोंमें कहाँ सुख है ? सब बाह्यपदार्थोंको ही देख रहे हैं, परमें ही सुखकी बातें सोच रहे हैं और यह बाह्य सब झंझट हैं। अपनी दृष्टिको ठीक-ठीक अपने ही स्वरूपमें डालो तो झंझट तुम्हें नहीं मालूम पड़ेंगे। प्रभु पूज्य अवस्था तो यह तुम्हारी ही है। इस प्रभुने जैसा आनन्द किया है वैसा ही आनन्द इस मेरी प्रभु आत्मामें भरा है। बस अशुद्धि मेटने लगें, मिल जायगा। जैसे पैरके आगे पैर रखकर चलें तो हम मंजिलपर क्यों नहीं पहुंचेंगे। चलनेसे ही हम आगे पहुंचेंगे और बैठनेसे हम बैठे ही रहेंगे। यदि तूने बैठनेका ख्याल किया तो बैठा ही रहेगा और यदि चलनेका ख्याल किया तो आगे बढ़ जायगा। अपने भगवानके पास कैसे नहीं पहुंचोगे ? अरे पैर भी थक जावें तो सोचो कि अभी मेरे पास ही तो हैं। यदि थक भी जावोगे तो हिम्मत तो बनी रहेगी। इस तरह अशुद्धिको मिटा दो, अभी यह काम बन जायगा। मोक्षमें पहुंचनेके लिए कोशिश करो। परमार्थसे देखो तो उसमें रुचि जायगी। जैसे कोई काम करता है, हलुवा बनाना सीख रहा है तो उसमें उसकी रुचि होती है, उत्साह होता है। इसी तरह शुद्ध हो रहा हो, आनन्द हो रहा हो, दर्शन हो रहे हों, उस अपनेके निकट पहुंच रहा हो तो उसमें उसकी रुचि बढ़ेगी, उसका उत्साह बढ़ेगा।

कोई घटना ऐसी आ जाय कि जिससे हजार पांच सौ मिलते हों, मगर उसमें झूठ या अन्याय करनेकी नौबत हो, उस समय सच्चा निर्णय करनेके लिए दिल बना रहे। झूठ न बोलो, सच्चाईमें दिल बना रहे और यह देखो कि हजार पाँच सौ जाते है तो जाने दो। उन हजार पांच सौ जानेसे भी बड़ा आनन्द मानो, और यह बात मानो कि मुझे बड़ी प्रसन्नता है। उसने अपनेसे अशुद्धिको मिटाया और जो शुद्ध है उससे ही प्रसन्न हुआ। तो भैया संतोषकी बात यही है कि अपनी अशुद्धिको मिटाओ और शुद्धिको पहिचानो। इसी प्रकारसे अशुद्धियोंको बाहर करते करते वह मंजिल आ जायगी और ज्यों-ज्यों निकट आती जायगी त्यों-त्यों संतोष बढ़ता चला जायगा, आनन्दका अनुभव होगा।

एक मुसाफिर था। वह पैदल यात्रा करते हुए जंगलमें रास्ता भूल गया। शामका समय था। दो तीन मील जाकर भूल गया था और पगडंडियोंसे चल रहा था। एक घंटा हो जानेके बाद वह सोचता है कि यदि मैं और आगे बढ़ता ही चला गया तो फिर मुझे भूल निकालनेका मौका भी न आयेगा। ऐसा सोचकर वह रुक गया और वहीं रात व्यतीत करनेका निश्चय किया। पर चिंता लगी हुई है कि मैं कितना भूल गया ? अब मुझे कहाँसे जाना है ? कहाँ रास्ता मिलेगा ? इसी भूलमें पड़ा हुआ वह देखता है कि क्षणिक बिजली चमकी।

उसने देखा कि सामने सड़क है जिससे मुझे जाना होगा। अब वह निःशंक हो गया। ऐसा निःशंक होकर वह सोचता है कि मैं रास्ता भूल तो गया हूं, पर इतनी ही भूलमें पड़ा हूँ। यह भूल यों ही मिट जाया करती है तो मिट जायगी। सवेरा हुआ तो सामने देखा कि थोड़ी दूर पर सड़क है, सड़कपर लोग चल रहे हैं। वह भटक गया था, पर संतोष किए हुए था। इसी प्रकार यदि ज्ञानी विषयोंसे भटककर अपने ज्ञानको भूल गया है तो कुछ भी विवेक हो तो वह भूलको न बढ़ायेगा, रुक जायेगा। कभी उसका ज्ञान सच्चाईको लेकर आता है तो वह समझ जाता है कि यह आत्मदर्शनका मार्ग है, जिसपर हमें चलना है? देखो भूलका मिटना व ज्ञानका होना दोनों एक साथ होते हैं। इसमें ज्ञानका तो उत्पाद है और अज्ञानका व्यय है। यह सब धर्मपालन एक इस आत्मापर ही निर्भर है। क्या आनन्द भी आयेगा? हां, इस आत्मामें आनन्द भी आयेगा। आनन्द तो आत्माका स्वभाव ही है।

जब भूले हुए पथिकको ज्ञान होता है तभी यह उत्साह बढ़ता है कि अब मैं अपनी भूलसे उऋण हो रहा हूं। अब मैं अपने सही मार्गमें आ रहा हूं। अब वह ऐसे उत्साहसे चलता है कि जो पगडंडियां सड़कसे मिला देंगी उन्हीं पगडंडियोंसे समझकर चलता है। जब सड़क पर वह मुसाफिर पहुंच जाता है तो उसे बड़ा संतोष होता है। अब तो करने योग्य जो काम था कर लिया, अब आनन्दमें बढ़ता चला। जहां जाना चाहता था उस स्थानपर पहुंच जाता है। पहुंचकर वह विश्राम कर लेता है। अब बिल्कुल निश्चिन्त हो गया। इसी तरह जगत्के प्राणी अज्ञानके अंधेरेमें विषयकषायोंकी गलियोंमें भटक गया, वहीं अपनेको भूल गया है। इस भूलमें बढ़नेसे बढकर भूल हो जाती है तो वह सोचता है कि इस भूलसे बढ़ो मत, नहीं तो जितनी भूल बढ़ जायगी उतना ही वापिस होनेमें कठिनाई पड़ेगी। विषय कषायोंमें मत फंसो, तुम निर्णय कर शांतिका मार्ग ढूंढ़ो, बस इसीसे प्रेम करना भक्ति होता है। यदि तूने विषयकषायोंसे अपनेको दूर रखा और शांतिके मार्गका पता लगाया तो तुझे संतोष आयेगा, भक्ति आयेगी। तो इन साधनोंके बीच रहते हुए कभी अन्तर बिजली चमकती हैं तो निर्मूल अवस्थाका अवलोकन होता है और केवल ज्ञानमात्र स्वरूपका निर्णय करता है। शांतिका मार्ग यही है। इसी तरहके मार्गसे जो आप चलना चाहें तो मोह और विषयोंमें जी लगा रहे तो उसको भूलकर सही मार्गका पता लगाओ। जब उस सही मार्गका पता लगा लोगे तब तुम्हें शांति प्राप्त होगी, संतोष प्राप्त होगा। जब तू अपनी भूलोंमें पड़ जाता है, तू विषयोंमें पड़ जाता है तो संतोष नहीं प्राप्त होता है। यदि अपनेको भुलावेमें डाल लिया तो शांतिका असर उसके दिलमें नहीं होगा। यदि वह ज्ञानसे अच्छे मार्गमें आ जाता है तो वह संतोष प्राप्त करता है क्योंकि उसे भूलका पता लग गया। यह तो सब

भावबस्तु हैं। इनसे मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं है। यह कल्पना बना लेनेसे कि यह परपदार्थ मेरे हैं उसकी शांति खत्म हो जाती है, मोक्षमार्गसे हटता रहता है और संसारके जन्ममरण के चक्रमें फंसा रहता है। उस मोही प्राणीकी यही स्थिति बनी रहती है। परन्तु यह मेरे नहीं है, ऐसी कल्पना जो बना लेता है उसे संतोष प्राप्त होता है और उसे जन्ममरणके चक्करसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। पानीमें कमलका पत्ता पड़ा हुआ है, पानीसे वह पत्ता बिल्कुल भिन्न हैं। पानीका पत्ते पर कुछ असर नहीं। पत्ता गला है या सड़ा। पानी तो सूखा ही सूखा होता है। निकालकर देख लो सूखा ही निकलेगा। यह गृहस्थी प्राणी भी घरमें रहते हुए भी सुखी रहता है। कोई उसका पता लगाने वाला नहीं है। घरमें रहते हुए भी घर वालोंका उसपर असर नहीं है। वह सदा सुखी रहते हैं। जो बाह्यपदार्थोंसे संतोष प्राप्त करता है वह इस भूल जगत्से हट जावे और अपने निजस्वरूपसे ही संतोष प्राप्त करे। जो प्राणी इस जगत्के मोहमें पड़कर भूल गए है वे यदि अपने निजस्वरूपको देखकर संतोष प्राप्त करें तो वे आनन्दमग्न हो जावें। जिस प्राणीको आत्मसंतोष प्राप्त करना है, आनन्दमग्न हो जाना है उसे सारे आनन्द परिग्रह त्यागना होगा और उसे कुछ काम करना नहीं है। यदि किसीने महान् पुरुषार्थ किया, कल्याण किया, संन्यास लिया और अपने आपसे प्रेम किया तो वह इस जगत्में आनन्दमग्न हो जाता है। अशुद्धिको दूर किया और शुद्धिको प्रकट किया तो इस मार्गसे चलनेपर तो निर्विकार मार्गमे पहुंच जायगा। अपने आपको यदि अशुद्धिमें रखा तो विकारयुक्त होकर उसे असंतोष हो जाता है। हे प्रभु तुम कोई बड़ी गजबकी वस्तु नहीं हो। जानता हूं कि अशुद्धिसे हटकर शुद्धिके मार्गमें अपने को ले गए हो। हैरानीकी बात कुछ नहीं है। गजब कुछ नही है किन्तु इसका स्वरूप बहुत महान् है। कैसी अद्भुत शक्तिका विकास है। इस अपने आपको देखनेमे भक्ति है और बातों भक्ति नही है। यह भगवान है, बड़ा है, बलशाली है इत्यादि बातोंमें भक्ति नही है। मुझे तो कुछ गजब नही दिख रहा है कि भगवान् कोई गजबकी चीज है। जैसे बिरादरीमें कोई धनी है। कैसा भी हो बिरादरीका तो है। उसे कोई धनी नहीं देखता। यहाँ हम बैठे हैं, वहाँ वह धनी आदमी बैठा है। हम दोनोंमें कोई अन्तर नहीं दिखता है। तुम्हारी नगर महापालिकाका उच्च अफसर जो तुम्हारे बगलमें बैठे हैं वे तुम्हें गजबका काम करते हुए नहीं दिखते हैं। अरे वह शुद्ध प्रभु भी मेरी बिरादरीका है। जैसी वस्तु वह है तैसा मैं हूं। उस शुद्ध प्रभुकी अशुद्धि मिट गयी, विकार मिट गए, वह तो वहीके वही हैं। पर हे जगत्के प्राणी! महत्ता तो तुम्हारी है उस प्रभुकी कौन महत्ता है? उस प्रभुमें तो कोई गजब नहीं दिखता है। अपनेसे अपरिचितको जरूर गजब दिखता है। हाँ क्या है? कैसे हो गया? बड़े

गजबकी बात है। भगवान् कोई और चीज हुआ करती होगी, ऐसा देखने लगते हैं। अरे हैरानी की चीज नहीं। भगवान्की अशुद्धि मिट गयी, विकार मिट गए। वह तो वहींके वही हैं। हे जगत्के प्राणी तू बलशाली है, तेरी महत्ता है, तेरेमें बलशाली ज्ञान भरा हुआ है। उस अपने ज्ञानको बाहरी पदार्थोंमें लगा रहे हो और अपने परिणामोंको अनन्तरूपोंमें बना रहे हो। हे प्राणी ! अपने ही परिणामोंसे अपनेको अनन्तयोनियोंमें डाल रहे हो। कहीं कीड़े मकोड़े बन गए कहीं पेड़ बन गए, कहीं कुछ बन गए, कहीं कुछ। इस प्रकारके जन्म-मरणके चक्रमें डाल लिया। इसलिए हे प्राणी ! गजब तो तूने किया है। यदि तू अपने को अनन्तरूपोंमें न माने तो समझ कि ज्ञान आ गया। यदि केवल एक ही ज्ञानका प्रताप तुझ में पड़ा हुआ है तो सारे क्लेश दूर हो जावेंगे। हे प्रभु ! आपके ज्ञानमें इतनी शक्ति है कि तीन लोकके समस्त पदार्थ आपके ज्ञानके एक कोनेमें पड़े रहते हैं। यदि प्रभुके होते विशाल ज्ञानका आदर है तो मेरे मनमें उनकी महत्ताका आदर है। मैं भगवान्में गजब कुछ नहीं देखता हूं। विकार हट गए, पवित्रता आ गयी, ऐसी दृष्टिसे वह ज्ञानी पुरुष हो गए। जिनकी दृष्टि प्रभुताके निकट विराजमान हो गयी उनके ज्ञानमें अनन्त बल है। जो बल उस भगवान्में है अन्य प्राणियोंमें भी वह बल हो सकता है। अरे यदि मेरेमें ज्ञान बल नहीं है, पवित्रता नहीं आ गयी है, विकार रहित नहीं हो गया हूं, इससे मेरी पराजय है। यदि मुझे अपना भान हो गया है तो जब चाहूं भगवान्से मिल सकता हूं। इस ज्ञानी पुरुषका वह भगवान अत्यन्त निकट है। अन्तरदृष्टिमें देखो तो वह विराजमान है। शुद्ध प्रभु जैसी स्थिति मेरेमें भी हो सकती है। इसमें कोई संदेह नहीं है। आत्मा तो दर्शन, ज्ञान, सुख, शक्तिका पिंड है। इस ज्ञानमें कोई सीमा नहीं है। हमने अपनी अज्ञानतासे ही इसमें सीमा डाल दी है। वह अज्ञानताकी मेड़ बीचमें पड़ जाती है। इससे हमें क्लेश होते रहते हैं। मैं अज्ञान की मेंड़को तोड़ डालूं, बाह्यपदार्थोंमें दृष्टि लगानेकी मेड़ तोड़ दूं तो सब ज्ञान एक असीम हो जायगा। अरे अपने आपके शुद्ध अशुद्ध स्वरूपको और वीतराग बुद्धिके विकासको तो देखो।

मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान।

जलके स्वभाव और निर्मल जलमें कोई अन्तर है क्या ? निर्मल जल पहिचानमें झट आ गया और जलके स्वभावमें दिमाग लगानेका काम है। जैसा निर्मल जल मुझे मालूम पड़ रहा है वैसा ही जलका स्वभाव भी पड़ा हुआ है। उस कीचड़ वाले जलमें जल भी निर्मल है, कीचड़ मिला हुआ है पर वह जल स्वच्छ है, निर्मल है। इसी प्रकार संसारको नाना स्थितियोंमें पड़े हुए इस मलीन आत्मामें भी स्वभाव वही है, वैसा ही स्वच्छ है। जैसा

कि भगवान शुद्ध है वैसा ही यह आत्मा शुद्ध है। शुद्धिके विकासमें कोई अन्तर नहीं है। इस प्रकार प्रभु अनन्तज्ञान दर्शन और अनन्तशक्तियोंका पिंड है। इस ज्ञानके विकासके लिए सामर्थ्य तथा अन्तरदृष्टि इत्यादिकी आवश्यकता है। अपनेको अपने सही रूपमें निरखकर स्वयं ही अपनेमें शान्तिका मार्ग प्राप्त करें।

निर्दूयाज्ञानजान्धं स्वं दृष्टा ध्यानाग्निना विधिम्।
दहानि निष्कलंकः सन्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-५६॥

स्वरूप न सूझना और विषयकषायोंमें ही उपयोगको बनाए रखना यह बड़ा अंधकार है। यह अंधकार अज्ञानसे पैदा होता है। अज्ञान क्या वस्तु है? पदार्थोंका जैसा स्वरूप है वैसा न मानना अज्ञान है। प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र है। अपनी अपनी सत्ताको लिये हुए है। अपनी ही सत्तासे परिणमता है। किसीका किसीमें प्रवेश नहीं है। इनके खिलाफ ऐसा समझना कि मैं अमुक वस्तुको कुछ कर दूंगा या अमुक मेरे लिए कुछ कर देंगे। इस प्रकार स्वतन्त्रताके खिलाफ विकल्प करना यह मोह है। पदार्थ अपनेमें ही उत्पाद करते हैं। अपनेमें ही अपनी अवस्थाको विलीन करते हैं और खुदबखुद सदा बने रहते हैं। जैसे एक अंगुली है, अभी सीधी है इसको टेढ़ी कर दी तो टेढ़ी बन गयी। वह अंगुली उस टेढ़ी अवस्थामें उत्पाद वाली हुई और टेढ़ी अवस्थामें उसका व्यय हुआ यानी सीधी अवस्था विलीन हो गई और अगुली वही की वही बनी हुई है। इसी प्रकार परपदार्थ अपने ही स्वरूपमें अपनी अवस्था का उत्पाद करते हैं, अपने ही स्वरूपमें अपनी ही अवस्थाका व्यय करते हैं और अपने ही स्वरूपको बनाए रहते हैं। इसे कहते हैं त्रिगुणात्मक पदार्थ। पदार्थोंमें यह तीन गुण भरे हुए हैं। प्रथम अवस्थाका उत्पाद, द्वितीय पूर्व अवस्थाको विलीन करना और तृतीय वह खुदबखुद बनी रहे। ये तीन बातें परमार्थमें सदा चलती हैं। प्रत्येक पदार्थ प्रत्येकसे अलग है। जो खोटा रूप भी परिणमता है वह भी खुद ही परिणमता है। दूसरा उसके साथ मिलकर खोटा रूप नहीं परिणमता है, पर दूसरे पदार्थ जिसका निमित्त पाकर खोटे भाव होते हैं उन सबमें ऐसा मानना कि वे ही करते हैं, इसके मायने अज्ञान है। जो पदार्थ जिस रूपमें हैं उनको वैसा न मानना अज्ञान है और जो जैसा है तैसा मानना ही ज्ञान है। इस ज्ञानके कारण विषयोंका अंधेरा समझमें आ जाता है। वस्तुकी स्वतन्त्रताका उपयोग करके जो वास्तविक आनन्द आता है तो उसमें आकुलता रहती है। उसमें परिणमन नहीं रहता है और अज्ञान रहता है। एक दूसरेके साथ सम्बंध माननेकी बात रहती है, ऐसी स्थितिमें विषयोंको लगाए रहना प्राकृतिक बात है, बाह्य पदार्थोंमें खपना प्राकृतिक बात है, यह बड़ा अंधेरा है। विषयोंमें प्रीति होना, यह बड़ा अंधेरा है। विषय ६ प्रकारके होते हैं—स्पर्श, रस, गंध,

ठंडा नहीं बना रहता है तो हवा चाहिये, ठंडी लगती है तो गर्मी की जरूरत है इत्यादि यह वर्ण, शब्द व संकल्प विकल्प। इन ६ प्रकारके विषयोंमें रति होना यह अंधकार है। अपने आपको टटोलना चाहिए कि हम अंधकारमें हैं या उजालेमें है। स्पर्श विषयमें तो मुख्य वेद संबंधी विषय है। फिर स्निग्ध रूक्ष ठंडा गर्म आदि जो ८ प्रकारके स्पर्श हैं वे हैं स्निग्ध, रूक्ष, उष्ण, शीत, कड़ा, नर्म, हलका, भारी। यह ८ प्रकारके स्पर्श स्पर्शनेन्द्रियके विषय हैं। सो देखो निरन्तर ये प्राणी इनमें बहते ही रहते हैं। गर्मी लगती है तो ठंडी चीज चाहिये, सब स्पर्शइन्द्रियके विषय हैं। नरकमें रहने वाले अन्य पशु पक्षियोंमें हो तो क्या सहन न कर लिया जायगा। हम ही गरीब हों तो इतनी ठंडी गर्म न सह लेते। इन्द्रिय विषयमें मीठा होना, खट्टा होना, स्वादिष्ट होना ये रसना इन्द्रियके विषय हैं।

संसारके प्राणी इन रसोंमें कैसे रत होते हैं ? कितनी तरहके व्यञ्जन बने, कितनी प्रकारकी खानेकी चीजोंका आविष्कार हुआ जिनका नाम लिया जाय तो ३००, ४०० नाम हो जावें। खानेकी चीजोंका नाम हम कहते हैं और वस्तुओंके नाम हम नहीं कहते हैं, फलों की बात हम नहीं कहते हैं। भोजन बनाया जाता है तो कितनी तरहके बनते हैं। मिठाई बनती, चाय बनती, नमकीन बनती इत्यादि अनेक वस्तुवें बनती हैं। यह सब क्या है ? रसना इन्द्रियके ही विषय हैं। सामने मिठाइयाँ सेब वगैरह रखे हैं, दाल रोटी भी रखी हैं। दाल रोटीमें ही संतोष कर लें तो समझो विजय है। वस्तुओंको देख लिया तो चख लिया, स्वादसे लिया, यह सब क्या है ? यह सब रसना इन्द्रियके विषय हैं। रसना इन्द्रियका जो विषय है वह भी अंधकार है। एक अंगुली या दो अंगुली की इस नाकको खुश करनेके लिए कितने प्रकारके सुगन्धित तेल हैं, कितने प्रकारके पुष्प हैं। इन सुगंधित पुष्पों तथा तेलोंसे इस नाकको खुश करते हैं। कहीं फूल या इत्रका फोवा नाकमें लगा है, कहीं कानमें लगा है, कहीं इत्र लगा दिया, कहीं कोई दूसरा सुगन्धित तेल लगा दिया। यदि कोई तेल लगा दिया तो वह खुशबूदार होना चाहिए। ये सब घ्राण इन्द्रियके विषय हैं। विषय सेवते सेवते भी संतोष तो नहीं आता।

जो है वह ठीक है। यह हुआ तो क्या हुआ ? इष्ट है उसमें क्या हुआ ? यह सब अन्धकार है। विषयोंका रस सुहाया यह अन्धकार है और इस अन्धकारमें ही चुलबुल करता हुआ यह जगतका प्राणी छिन्न भिन्न बरबाद होता रहता है। चक्षु इन्द्रियका विषय देखो। नेत्रोंने एक एक अंगुलमें नये नये खेल देखे तो मन बढ़ गया। जो कुछ देखा वह वहीं का वहीं है। पर जो कुछ देखा उससे मोह कर लिया। इस मोहके कारण वह दुःखी रहता है। सिनेमा देखा, नाटक देखा, इनमें कुछ है क्या ? किसीका रूप देखो तो क्या, वह तो अपने शरीरमें देखलो ना ? शंका हो तो अपने शरीरमें तोड़फोड़ कर देख लो। बरसातके

दिन हैं तो शरीर पर कपड़े नहीं सुहाते। और भी जीव पदार्थोंको सुन्दर सुन्दर रूप, ड्रेसेज, आकार तथा अन्य नई नई कमीजें वगैरह बनाना, नई नई डिजाइनोंका बनाना, कहीं कुछ बनाना, कहीं कुछ बनाना। यह सब क्या है? यह सब चक्षुइन्द्रियके विषय हैं। नेत्रइन्द्रिय के विषयमें यह रत होता रहा है, पर यह यही तो बनेगा।

गुरु जी सुनाते थे कि सागरमें एक कान्सटेबिल था। वह वेश्यामें आसक्त था। जो कुछ धन-दौलत उसके पास थी सब वेश्याके पास पहुंच गयी। अब वह बड़ी अवस्थाका हो गया था। अब धन तो वेश्याके पास आ गया। अब उसे क्या परवाह है? वह अपने घर न आने देवे उस सिपाहीको। कांसटेबिल उसके घरके सामने ही रात-दिन पड़ा रहे। किसीने पूछा—भाई साहब, तुम यहाँ क्यों पड़े रहते हो? कहा—पड़ा रहता हूं। रात-दिनमें कभी तो घरसे निकलेगी ही, देख लूंगा। हाय हाय क्या मिल गया? रात-दिन पड़े रहे। वह पदार्थ अपनी जगहपर है। आत्मामें आत्मा है, शरीरमें शरीर है, जो जहाँ है तहाँ ही रह जाता है, हाथमें कुछ आता नहीं है। यह क्या है? यह नेत्र विषयके रूपोंका अंधकार है।

कर्णोंका विषय देखो—कितनी तरहके राग हैं। अभी कोई शब्द हो, सुन्दर गायन हो, तो यह संगीत सुनने चला कि कुछ सुन लें। देहातोंमें रद्दी आलाप होते हैं उनको सुननेकी भी इच्छा होती है। सपेरा बीन बजाता है वह भी सुहाती है। हर तरहके जो सुहावने शब्द सुनाई पड़ते हैं वह भी सुहाते हैं। यह क्या है? यह कर्णोंके विषयोंकी रति है। यह विषयों का अंधकार है। मनको देखो विषय उसका सबसे बड़ा है। मन चाहता है कि इतना धन वैभव रहे, किसीसे पीछे न रहूं, आगे बढ़ूं, यह सब मन सोचता रहता है और ये ही विकल्प जन्ममरणके चक्रमें डालनेको प्रेरित करते हैं। जैसे कलकत्ताकी सोच लें तो सोचनेमें देर नहीं लगती है। एक मिनट भी नहीं लगता, आधा मिनट भी नहीं लगता, एक सेकेण्ड भी नहीं लगता। मनमें इच्छाएँ कीं कि हमें फलां चीज खाना है, फलां चीज पहनना है तो यह सोचने में देर नहीं लगती है। यह है मनका विषय और जो पंच इन्द्रियोंके विषय हैं वे भी मनके विषय बन गए। ये मन वालेके विषय तो पंचइन्द्रियोंके विषयोंमें भी मनके साथ सदा चला करते हैं। ऐसे जो विषयोंमें अंधेरा है जो कि अज्ञान स्वभावसे उत्पन्न होता है, उस अंधकार को नष्ट करके अपने आपको सुखी करूँ, इस अंधकाररूप अज्ञानको दूर कर ज्ञानके द्वारा इस कर्मको जलाऊँ, कल्पनाएं करके दुःखी हो गया, फिर कल्पनाएं ही करके सुखी हो गया, आत्मध्यानसे आनन्दमय हो गया। कुछ लेना पड़ा न कुछ देना पड़ा, न कुछ खटपट पड़ी केवल अपना ध्यान बना लिया, सारे दुःख मिट गए।

देखो—दुःख तथा सुख हैं क्या? केवल कल्पनाएं बना लेते हैं। मैं इन कलंकोंसे

रहित विषयकषायोंके बन्धनसे रहित शुद्ध ज्ञानस्वरूपका अनुभव करूं और अपने शुद्ध ज्ञान तत्त्वमें रमकर इन कर्मोंको जलाऊं। यही ज्ञानावरणादि कर्म आत्माके साथ रम गए हैं ये कैसे दूर होंगे ? इसका उपाय केवल यह है कि सबसे निराला, शुद्ध, ज्ञानमात्र अपनेको पक्का जानूं तो उपयोग बनानेका यह काम हो सकेगा। यह कर्म बाहर हो जाते हैं, शुद्ध स्वभाव वाला मैं प्रेक्टिकल हूँ तो कर्म बाहर हो जाते हैं। केवल बोलीके सुननेसे कर्मोंमें असर नहीं होता है। जितने भाव बने हैं शुद्ध अशुद्ध उन भावोंसे कर्मोंमें असर होता है। यदि शौकसे नाना ज्ञान सीखे तो यह तो मनका विषय बन गया, पर विषयकषायोंमें फर्क है। इस मनके विषयके भीतर आत्मनिर्णयकी भावना साफ है और दुनियाके विषयोंमें केवल मनको बुरा लगनेकी बात है। इतना ही अंतर है तो इन सब विषयकषायोंकी तरंगोंसे परे जो ज्ञायकस्वरूप शुद्ध आत्मतत्त्व है उस ही रूप अपनेको मानो, ऐसा ही उपयोग बनाओ। बस यह ही कर्मोंको बाहर करनेका उपाय है। कर्म और तरहसे अलग नहीं हो सकते। कर्म अलग हैं; धर्म भी करें, पूजा भी करें, भक्ति भी करें, दान भी दें, सब कुछ करें, मगर जितने अंशोंमें भाव निर्मल है उतने अंशोंमें काम हो रहा है। इसी कामके होनेसे सब कुछ मिल जाता है। क्रोध, मान, माया, लोभ ये तीव्र कैसे होते हैं ? अधिक क्रोध किसे कहा जाय ? पदार्थोंकी बातमें क्रोध बढ़े उसे अधिक क्रोध कहा जाय। धर्मके कार्योंमें क्रोध बढ़े तो तीव्र क्रोध है। धर्मधारणा करके क्रोध बढ़े तो जैसे मुझे किसीने छू लिया अभी हम स्नान करके आए। धर्म का कार्य समझते हुए क्रोध करना तो यह तीव्र क्रोध हुआ। धर्मके इस प्रसंगमें क्रोध साफ हो जाना चाहिए था। क्रोध तीव्र कैसे हो रहा है ? धर्मधारणा हो जाय तो क्रोध ठहरेगा नहीं।

मानकी बात भी देखो—एक आत्मा ऐसी है कि धर्मके होनेके कारण अपनी सभी इज्जत मान रहा है—यह तो हुआ उसका घमंड। गरीबसे धनी हो रहे हैं, धनको और जोड़ना चाहते हैं। एक आदमी ऐसा है जो पूजा उपवास आदि धर्मका काम करके अपनेको धर्मात्मा जानता है, यह अधिक घमंड हुआ। धर्मके काममें छल-कपट करना तीव्र माया है। धर्मके काममें लोभ करना तीव्र लोभ है। कोई पुत्र आदि बीचमें बीमार हो जाय। पाँच सौ रु० मासिक उसमें निकल जायें, ६ मास पड़े ही रहे। यह सब करनेसे वह मोह कर रहा है। अपने पुत्रके लिए दवा कर रहा है कि ठीक हो जावे, उसमें भी मोह है। किसीका मोह किसी जगहपर उतरता है और किसीका अन्य दूसरी जगहमें। लोभ परिवारमें हो जाता है। जितना भी करते हैं वह सब अपने परिवारके लिये करते हैं, वे अपने परिवारके लोगोंको ही सर्वस्व समझते हैं तो यह धर्म नहीं हुआ। इसमें लोभ है।

हे आत्मन् ! तेरा स्वरूप शुद्ध ज्ञायकस्वरूप है। अपने ज्ञानानन्द स्वभावको देखो। एक पुरुष पिताके खूब गुण गाता है, पर पिताकी आज्ञाका पालन नहीं करता है। पिताके भीतर होने वाली इच्छाओंका आदर नहीं करता है और एक पुरुष वह है जो पिताकी आज्ञा पालन करनेके लिए तैयार है तो बतलाओ कि कौनसा पुरुष अच्छा है व भक्त है ? पुरुष वही अच्छा है जो पिताके गुणानुवाद तो नहीं गाता, पर पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिए तैयार है।

एक आदमी ऐसा है जो भगवानको दस बार पूजा करता है और भगवानको हैरान कर डालता है और एक पुरुष ऐसा है जो केवल भगवानका स्मरणमात्र कर लेता है, शुद्ध-स्वभावका ध्यान करता और भगवानका हुक्म मानता है तो बताओ कौन भक्त है ? भक्त वह है जो भगवानका हुक्म मानता है। भगवानका हुक्म यह है कि अपने आपको ज्ञानमात्र, सबसे निराला, शुद्ध ज्ञायकस्वरूप समझो। अब सोचो मैं अज्ञानसे उत्पन्न होने वाले अंधकारको नष्ट कर ज्ञानमात्र, आनन्दमय अपने आपको देख करके ध्यानरूप अग्निके द्वारा इन कार्योंको जलाऊँ और निष्कलंक होकर अपने आपमें अपने आप सुखी होऊँ।

रागादि पीडयेत्तावन्नाविष्टो ज्ञानसागरे।
अतो ज्ञानेऽवगाह्याहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-६०॥

यह रागादि जीवोंको बड़ी पीड़ा दिया करते हैं। देते हैं तो दें, कब तक देंगे ? यह तब तक ही पीड़ा देंगे जब तक कि मैं ज्ञानसागरमे डूब न जाऊँ। यह कर्म तब तक जीवको सताते हैं जब तक कि वे ज्ञानसागरमें नही डूब जाते। जैसे धूपसे पीड़ित मनुष्यको गर्मी तब तक सताती है जब तक उसको छाया प्राप्त नही होती। जब तक ज्ञानमें ज्ञान नहीं प्रवेश करे तब तक संतोष कैसे प्राप्त हो सकता है ? जब तक ज्ञानसागरमें डूबे रहें तब तक रागादि संताप नहीं रह सकते हैं। ज्ञान दो किस्मके हैं ? एक आत्माका ध्यान और दूसरा परवस्तुवों का ध्यान। परवस्तुवोंकी कल्पनाओंसे दुःख होता है और अपने स्वरूपका ध्यान करनेसे दुःख दूर हो जाते हैं। लेना-देना कुछ नहीं है केवल परिणामकी बात है। सुख दुःख आनन्द होना केवल भावोंके परिणामकी बात है। देखो इतनी बड़ी समस्या, इतनी बड़ी प्रोबलम केवल एक विचार परिवर्तनसे ही हो जाती है तथा हल भी हो जाती है। कम धन होनेसे दुःख होता है। रोजगार करते हैं, यह करते हैं, वह करते हैं, कितने ही यत्न करते हैं, पर उनकी यह समस्या हल न होगी। घर आदिकी समस्या बाह्यसंचयसे हल न होगी। लड़कोंको संगमें रखना, कुटुम्बको बांधकर रखना, परिवारमें रहना, इन सबसे घरकी समस्या हल नहीं हो सकती है। इस समस्याका हल विकारके तिरस्कारसे तथा स्वभावके दर्शनसे होगा। स्वभाव-

दर्शन क्या है ? जैसा खुदका स्वरूप है वैसा उपयोग बन गया, वह स्वभावदर्शन है । इसीसे समस्यायें हल होंगी । कैसा है यह अपना स्वरूप पहले तो सबसे निराला, किसीसे मिला-जुला नहीं । अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखने वाला, अपने आपके स्वभावको अपने आपके अस्तित्वके लिए हुए हूं, यह भाव मात्र है; उसमें कुछ खटपट नहीं, उसमें कोई झंझट नहीं । इस मुझमें लेने-देनेका कुछ नहीं मिलेगा, केवल भावमात्र हूं । ज्ञानभावमात्र, आनन्दमात्र हूं । रंच भी दूसरे पदार्थके साथ सम्बंध नहीं है, मगर जहां मोह उठता है तो वह साराका सारा कैसा मालूम पड़ता है ? यह मेरा लड़का है, यह मेरा घर है, यह मेरा परिवार है, जिसमें उछल उछलकर रहता है । विपदाओंका कारण यह मोह है, नहीं तो मैं आनन्दानुभव वाला तथा सबसे निराला हूं ।

आत्मा स्वयं ज्ञानघन है, आनन्दमय है, पर मोह ऐसा गंदा विष है कि अनहोनीको होनी बना देना चाहता है । मोह ही तेरे दुःखका कारण है । दूसरा तेरे दुःखका कारण क्या है वह बतला ? अरे दुःखका कारण दूसरा नहीं, मोह ही दुःखका कारण है । यह मेरा है यह उसका है, यह क्या है ? यह मोह ही तो है । अरे यदि यह मोह हट जावे तो दुःख भी हट जावेंगे । ये सब यहींके यहीं रह जावेंगे । जिनमें तू मोह कर रहा है वे भी नहीं रह जावेंगे, तू भी नहीं रहेगा । रहेगा तो हमारा स्वरूप ही साथ रहेगा । रागादिभाव पीड़ा देते हैं तो दें । अरे यह पीड़ा ही क्यों देंगे ? यह तेरेको तभी पीड़ा दे सकते हैं जब तक तू ज्ञान संसारमें डूबकर प्रवेश न कर जाय । तू जिसको जान रहा है उससे ही तुझे दुःख होते हैं अरे तू इनको न जानकर अपनेको जान । परिवारके छोड़नेका क्या दुःख ? अगर तेरा ज्ञान परिवारमें लीन हो गया तो दुःख होंगे और अगर तेरा ज्ञान याने तू ज्ञानसागरमें डूब गया तो सुखी रहेगा । दुःख तो तुझे तब होंगे जब तेरा मोह, तेरा लगाव उनसे होगा । जैसे कहा वतमें कहते हैं कि तुम्हें आम खानेसे काम कि पेड़ गिननेसे, तुम्हें आनन्दसे काम है या लड़के बच्चोंसे काम है ? तुम्हें यदि लड़कों, बच्चोंसे आनन्द मिलता है तो उनसे ले लो या अपने आपसे मिलता है तो अपने आपसे ले लो । आनन्द तो इस आत्मामें है । यदि आत्मामें दृष्टि रहे, आत्मामें ही झुकाव रहे तो सुखी रहेगा । दुःख तो तब है जब तेरा झुकाव पर होगा, मोहमें होगा कुटुम्ब परिवारमें होगा । यदि आप अपने ख्यालको अपने कुटुम्ब परिवारसे छोड़ दें तो दुःख कैसे होगा और यदि अपना लगाव अपने कुटुम्ब, परिवार, धन-वैभव आदिमें होगा तो तुझे दुःख होंगे ।

देखो भैया ! बाहरी बातोंमें क्या रखा है ? यदि तू धनी है तो ज्यादासे ज्यादा क

होगा कि दो-चार मोही पुरुष यह कह देंगे कि यह बहुत धनी है। करोड़ोंका धन जोड़ लिया और इसका फल क्या मिला कि केवल दो-चार मोही यही कहेंगे कि यह बड़ा धनी है और तुझे तो पेट भरना है और दो कपड़े पहिनने हैं। इतना ही तो यहांका काम है। इससे ज्यादा और क्या काम है ? तूने इतना श्रम करके, मिथ्या बन करके करोड़ोंका धन एकत्रित कर लिया है। उसका परिणाम केवल इतना है कि दो चार मोही यह कह देंगे कि यह धनी पुरुष है। इतना फल है। कितनी मेहनतकी, रात-दिन चिन्ताएँ रहीं, विपदायें रहीं, यह चिन्तायें और विपदायें केवल इस प्रयोजनपर रहीं कि मोही पुरुष दो शब्द बोल दें। वे मोही ऐसे हैं जिन्हें अपनेका ख्याल नहीं है, जो गंदे हैं, मोही हैं, संसारमें घूमने वाले हैं, संसारका पता भी नहीं है और ममत्वमें फँसे हुए हैं। ऐसे ही दो-चार व्यक्तियोंके द्वारा उसे प्रशंसा मिलती है। इतना परिश्रम करनेपर हे संसारके प्राणी ! तेरेमें इतनी ही भूल भरी रहती है, नहीं तो धर्म का मार्ग गृहस्थोंके लिए बिल्कुल सीधा है। अपनी दिनचर्यामें ६ घंटेका काम करनेको दिया तो ज्यादासे ज्यादा ८ घंटे काम करो। अपनी दुकानमें इतना ही समय दो और जो कुछ पुण्यके अनुसार मिल जावे उसका ही हिसाब लगाकर, व्यय कर संतोष प्राप्त करो। जो कुछ आमदनी हो जावे उस ही में संतोष रखो। चाहे चना नमक खाने भरको ही हिस्सेमें आवे, उससे ही संतोष प्राप्त करना चाहिए और उसी स्थितिमें भी अपनी धुनको धर्ममें लगाना चाहिए। इतनी हिम्मत हो कि न्यायसे काम करूंगा चाहे कुछ मिले अथवा न मिले। अपने सादे कपड़े पहिनकर धर्मके गुणानुवादमें, स्वरूपके ध्यानमें अगर मन लगता है तो वह सुखी है। उसके चाहे खराब दिन भी आवें तो परवाह नहीं है। वह उत्साहसे कार्य करेगा, वह आनन्दमग्न होगा। यदि इन लुटेरोंमें ही उपयोग बना तो दुःख होगा। यह तो सब घसीटे खचोरे हैं। इन सबमें तू अपना उपयोग न बना। नहीं तो तुझे दुःख होंगे। यहाँ जो कुछ आया है वह सब मिट जायगा। यह मालूम होते हुए भी यह मोही प्राणी केवल उन दो मोही प्राणियोंके दो शब्दोंको सुनना चाहता है। उसीके खातिर वह अनेक विपदायें सहन किया करता है। अपनेको पीड़ा दिया करता है। यह धनका राग उसे दुःख देता है। उसमें क्लेश उत्पन्न कर देता है।

जैसे कोई बच्चा अपनी मांके पास बैठा हुआ है। बच्चा अपनी मां से यह कहेगा कि वहाँ चलो, वहाँ बैठो, वह लाओ और यदि मां नहीं करेगी तो बच्चा अपना मुँह घुमा लेगा, रोवेगा, जमीनमें लेट जावेगा। केवल इतनी बात पर कि मेरी बात नहीं रही, मां ने कहना नहीं माना। मां से वहाँ चलने के लिए कहा, नहीं गयी, केवल इतनी ही बात है। बच्चा कितना उपद्रव करता है ? इसी प्रकारसे यह मोही प्राणी मायामें पड़कर दूसरोंसे

दुश्मनी कर डालते हैं। कौनसी बातका असर है जो दुश्मनी कर डाली। निजी चीज जिसे मानी वह भी निजी नहीं। यदि पूछा जाय कि दुश्मनी क्यों कर डाली तो यही कहेंगे कि मेरी बात नहीं रही। ये रागादि विकार करके दुःखी होते हैं। ये रागादि विकार कब तक दुःखी करेंगे जब तक कि ज्ञानसागरमें हम डूब न जावें। राम, लक्ष्मण, सीता इत्यादि महान् आत्माओंके जीवन चरित्रको देखते हैं कि जब तक इन्होंने संन्यास नहीं धारण किया है, त्याग नहीं किया है तब तक दुःखी रहे हैं परन्तु अन्तिम जीवनमें उन्होंने त्याग किया, संन्यास किया तो उनका जीवन सुखी हुआ। आज उन्हींकी महिमाका गुण गाया जाता है। जब तक कि इन आत्मावोंका जीवन घरमें ही व्यतीत हुआ है तब तक उनकी कोई कीमत नहीं थी परन्तु अपने अंतिम एक चौथाई जीवनमें ही संन्यास धारण कर अपने जीवनको सफल बनाया। जब तक वे अपने घरसे न निकले थे, पालनेमें झूला झूलते थे तब तक उनके गुणोंका गान न होता था। परन्तु जब अपने घरसे निकलकर संन्यास हुआ तो उनके गुणों का गान हुआ और वह मोक्ष गए। इस कारण पुराना जो घरेलू जीवन था उसके चारित्रके भी गुण गाये जाते हैं। इसी तरह तीर्थंकर भी जब तक अपने घरमें रहते थे तब तक उनके गुणोंका वर्णन नही होता था परन्तु बादमें चरित्र निर्मल हुआ, अपने आपमें रमें, अपने घर बार स्त्री आदिसे विमुख हुए और अपने जीवनको सफल बना सके। निर्वाण पधारे तब पुराना सारा जीवन प्रभु भक्तिकी पद्धतिमें आ गया।

हे जगत्के प्राणी! इतना जीवन गुजर गया और इस इतने जीवनमें बहुतसी बातें रही। उन उन बातोंमें क्यों रोते हैं? अब इस अपने इतने ही कारण वह मर गये। अनेक लोग उनके गुण गाने लगे कि जीवनको संभाल लें तो कल्याण है।

राजा श्रेणिक पहले तो मांस भक्षी थे, अज्ञान चोर आदि थे, वेश्यामें आसक्त थे, अत्यन्त दुराचारी थे। बादमें उन्हें ज्ञान मिला। उस ज्ञानके ही देखो यह कितने मांसाहारी थे और तर गए। बादमें उनकी महिमाका गुणगान हुआ।

उदयसुन्दर अपनी वज्रभानु स्त्रीमें अत्यन्त आसक्त था। वह मोह मायामें अत्यन्त लीन था। वे रास्तेमें मुनिमुद्राके दर्शन करके विरक्त हो गए। तबसे ही उनके गुणोंका गान किया जाता है। लोग बादमें कहने लगे कि वाह, वह कैसे थे? अशुद्ध थे, शुद्ध हो गए। अच्छा चरित्र बनने पर पहिले चरित्र भी किसी रूपमें भावानुवादमें आ जाते हैं। हे आत्मन् तू अपने रागादिसे उत्पन्न दुःखोंसे क्यों रोता है? तूने ही तो इन दुःखोंको बनाया है। यह तेरे रागादि भाव तब तक तुझे पीड़ा देगें जब तक तेरी आत्मामें ज्ञान प्रविष्ट नहीं होगा। तू अपनी आत्मामें ज्ञान प्रविष्ट कर अपने आनन्दस्वरूपको निरख। इसीसे तेरे समस्त क्लेश

समाप्त हो जावेंगे। यदि तुम्हें आत्मस्वरूपमें आनन्द मिलता है तो उसमें झुको और यदि दुनियाके परपदार्थोंसे आनन्द मिलता है तो उनमें झुको। यदि तू अपने निजस्वरूपसे आनन्द प्राप्त करेगा तो तुझे आनन्द प्राप्त होगा और शांति मिलेगी। यदि बाह्य पदार्थोंसे आनन्द प्राप्त किया तो उसमें अशांति ही अशांति रहेगी। जिस काममें दो-चार वर्ष तक टोटा ही टोटा रहे तो उसको बुद्धिमान व्यापारी बदल देता है। इस बाह्य आनन्दमें ही यदि तू पड़ा रहा तो शांति नहीं मिलेगी। तो तू ऐसे रोजगारको बदल दे। अपने आपके आत्मस्वरूपमें आनन्द प्राप्त किया तो उससे शांति मिलेगी। इसलिए तू ऐसा ही व्यापार कर। यदि तूने एक जन्मकी बातें सही जान लीं तो करने योग्य २० बातें खुद ही जान लेगा अन्य १० बातों को बतानेकी जरूरत नहीं।

एक घटना है कि बुन्देलखंडमें एक राजा रहता था। वह राजा गुजर गया, उसका पुत्र नाबालिग था। अब वह लड़का २०-२१ वर्षका हो गया। उसकी मां ने कहा कि मेरे लड़केको राज्य सौंप दिया जाय। उसकी मां ने उसे समझा दिया कि बादशाह जैसा पूछे उसका उत्तर देना। यदि यह प्रश्न पूछे तो यह उत्तर दे देना, यह प्रश्न पूछे तो यह, और यह प्रश्न पूछे तो यह उत्तर देना। इस तरहसे १० बातें मां ने उसे समझा दीं। उस राजकुमारने कहा कि यदि इन १० बातोंमें से एक भी न पूछेंगे तो क्या कहेंगे? मां बोली कि कुछ अपने आप उत्तर दे सकते हो। राजकुमारने कहा कि क्या मुझे कल्पना भी अपनानी होगी? मां बोली कि यह तो बड़ी बुद्धि और प्रतिभाकी बात है। राजकुमार बादशाहके सामने बुलाया गया। बादशाह कुछ नहीं बोला, उस लड़के के दोनों हाथ पकड़ लिये और कहा कि अब तुम पराधीन हो गए, विवश हो गए, अब तुम मेरा क्या कर सकते हो? राजकुमारने कहा कि अब क्या है? अब तो मैं सब कुछ कर सकता हूं और अब मैंने सब कुछ कर लिया। जब स्त्रीके साथ शादीमें हथेलवा होता है तो एक हाथ पकड़ लेनेसे स्त्रीकी जिन्दगी भर रक्षा करनी पड़ती है तो दोनों हाथोंके पकड़नेपर क्या कहना है? हम तो अब बिल्कुल स्वतन्त्र हो गए। यह सुनकर बादशाह प्रसन्न हो गए और राजकुमारको राजगद्दी दे दी गयी।

इस कमंडलको कैसे उठाना है, कैसे क्या करना है आदि बातोंको क्या सीखना है? यदि इस यथार्थ बातको समझ लिया तो इतना ही क्या है? बीसों बातें अपने आप समझमें आ जावेंगी। यदि अपने ज्ञानस्वरूपकी प्रतिमा जग जाय तो सारी बातें आ जाएं। यहां उपद्रव करने वाले बहुत हैं, मगर ज्ञानसागरमें प्रवेश करने पर कुछ नहीं।

गंगा नदीके पानीमें एक जानवर था। आराम करनेके लिए मुंह उठाकर पानीके बाहर

थोड़ा शरीर निकालकर आता है। चारों तरफसे सैंकड़ों पक्षी उस जानवर पर हमला करने के लिए आते हैं। वह जानवर थोड़ासा पानीमें खिसक जाता है। वे सब पक्षी बेकार होकर भाग जाते हैं।

ये रागादिक भाव, नाना प्रकारके विकल्प, नाना प्रकारके विचार इस ज्ञानगंगाके बाहर मंडरा रहे हैं। सब हमारे ऊपर हमला कर रहे हैं। यदि हम जरासा इन रागादिक भावोंसे विलग हो जावें व ज्ञानगंगामें मग्न हो जावें तो ये हमारा कुछ नहीं कर सकते हैं। जिस प्रकारसे गंगा नदीमें जीवके दब जानेसे सारे पक्षी व्यर्थ हो जाते हैं, सारा उन पक्षियों का परिश्रम बेकार हो जाता है, उसी प्रकार इन रागादिक भावोंको जो कि हमें पीड़ा देते हैं, हम अपनेको ज्ञानमें दबा लें तो यह रागादिक भाव हमारा कुछ नहीं कर सकते हैं। जब तक ज्ञानस्वरूपमें ज्ञान नहीं है तब तक ये रागादि पीड़ा देते हैं। सो अब उन मोहियोंके दो शब्दोंसे हटकर ज्ञानमें ही डूबकर मग्न होकर, ज्ञानके ही स्वरूपको ज्ञानमें देखकर जहाँ ज्ञान ही जानने वाला है, ज्ञान ही जिसमें जाना जाने वाला है याने ज्ञेय होता रहता है और वह जान जानकर ज्ञानी मात्र होता रहता है। इसी प्रकार ज्ञाताज्ञात और ज्ञेयमें भेद नहीं है। जिसमें भेद नहीं है उसमें ही यह अद्भुत परम आत्मानुभवका आनन्द है। जानने वाला तो मैं हूं और ज्ञेय बने रहते हैं दुनियाके अनेक पदार्थ जहाँ, वहाँ तो आकुलता रहेगी और जिनका जानने वाला मैं हूं और मैं ही ज्ञेय बना रहता हूं। ज्ञेयको ज्ञानमें आने, यह है सबसे अच्छा रोजगार, जिसमें तीन लोकका नाथ बना दे यह है विलक्षण व्यापार। किसलिए जान रहे हैं? इसलिए जान रहे हैं कि इस जाननेके आगे और कुछ प्रयोजन नहीं तो अब इस ज्ञानमें ही प्रवेश करके मैं अपनेमें अपने आप सुखी होऊँ। ये रागादिक उपद्रव तो तब तक होंगे जब तक इस ज्ञानसागर निज आत्मतत्त्वमें अपने आपका प्रवेश न हो जाए। यही ज्ञान-योग ज्ञानियोंका, योगियोंका एकमात्र कार्य है। इस ही से महात्मा होते व महात्मासे परमात्मा हो जाते हैं। करनेको काम केवल एक ज्ञानानुभव ही है। सो अब ज्ञानमें ज्ञानका अनुभव करके मैं अपनेमें अपने आप आनन्दस्वरूप होऊँ।

स्वभावः सिद्धतैते तु पर्यायाः कर्मविक्रमाः।
न्वहं स्वविक्रमं कुर्यां स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-६१॥

इस आत्माका स्वभाव सिद्ध बननेका है। सिद्धि कहते हैं उसे जिसने अपने आपके गुणोंकी प्राप्ति कर ली है, जिसने अपने आपमें सब कुछ कर लिया है। जो अपना गुण है, अपनी शक्ति है, उसको पूर्ण कर लेनेका आत्मामें स्वभाव है अथवा पूर्ण विकासरूप बन जाने का इस आत्माका स्वभाव है; अनन्तज्ञानी, अनन्तद्रष्टा, अनन्तसुखी, अनन्तशक्तिवान् हो जाने

का स्वभाव है। यह ही इस आत्माका विक्रम है, परिश्रम है, करतूत है, शूरवीरता है। पर अन्य जो इसमें पर्याय उत्पन्न होते हैं जैसे गतिमार्गणामें नारक, तिर्यंच, देव आदि व इन्द्रिय-मार्गणामें एकइन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय और पंच इन्द्रियोंमें बताया गया है अन्य कषाय, असंयम आदि जो कहा गया है कि वह किसके विक्रम हैं? ये कर्मके विक्रम हैं। जैसे निर्मल शुद्ध काँच है वह शुद्ध बना रहे, स्वच्छ बना रहे तो काचका ही विक्रम हुआ। जैसे काचको किसीके सामने कर दो या काँचके सामने कुछ आ गया, मानो हाथ ही आ गया तब उसमें हाथ की छाया आ गयी, उसमें करतूत किसकी चल गयी? हाथकी। तो यह हाथ निमित्त हुआ, हाथका ही विक्रम हुआ, हाथकी ही कलाएँ हुईं। यह एक दृष्टि है, इसी दृष्टिसे देखना चाहिये। इसी प्रकार जीवमें शुद्ध ज्ञानरूप बर्ताव केवल ज्ञानरूपमें रहना, ज्ञाता दृष्टा रहना, यह तो हुआ आत्माका विक्रम और इसमें क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह आदि जो कुछ भी विभाव पर्यायें होती हैं वे सब कर्मके विक्रम हैं। यहाँ यह प्रेरणा लेनी चाहिए कि जो मेरा विक्रम है उस विक्रमको करूँ और कर्मके जो विक्रम हैं उनकी उपेक्षा करूँ। मेरा तो काम है ज्ञाता, दृष्टा रहना। यह चीज कठिन है, ऐसा जानकर भी निरुत्साही नहीं होना चाहिए। जैसे कि बहुत दिनोंसे पढ़ते आए, सुनते आए, कुछ लाभ नहीं दिखता है, अन्तर नहीं आता है। भाई बात तो कठिन है; जिस दिन ठीक होना होगा, ठीक हो जायेगा। कोशिश करते रहना है, उपयोग बनाए रहना है, जब होना होगा ठीक हो जायगा।

एक बाबूने एक कोरीको पायजामा दिया। अब वह नहीं जानता था कि कैसे पहना जाता है? वह उस पायजामेको कभी कमरमें लपेटता, कभी हाथमें डालता तो कभी गलेमें लपेटता था। इस तरहसे उसने बहुत बहुत काम किये। एक समय उसने पायजामेका पैर अपने एक पैरमें डाला और पायजामेके दूसरे पैरको भी अपने दूसरे पैरमें डाला। अब पायजामा झट ठीक ढंगसे बन गया। उसकी समझमें आ गहा कि ऐसे पहिना जाता है। इसी तरह जो पढ़ते हैं, सुनते हैं, कोशिश करते हैं तब भी बात फिट नहीं बैठती है। बात यदि फिट नही बैठती है तो न सही। कोशिश करना बन्द न करो। किसी दिन परद्रव्यकी अपेक्षा छूट जायेगी और अपने आपमें सहज विश्राम पाने लगोगे। अपने आपका सहज अनुभव हो जायेगा कि यह बात है, यह प्रभुके स्वभावका मर्म है। मैं तो अपना विक्रम करूँगा। चींटी चढ़ती है तो चढ़ती ही चली जाती है। कभी-कभी गिर भी जाती है, फिर भी हिम्मत नहीं हारती है। वह ऊपरको चढ़ती ही चली जाती है। बार-बार करनेके लिए काम यह है कि परमें उपेक्षा और आत्मामें दृष्टि हो और कुछ करने लायक काम नहीं है। धन कमाया है, चला जायेगा या अंतमें मृत्यु हो जायेगी।

एक आदमीका भाई मर गया, पढ़ा-लिखा था। दूसरे लोग आकर पूछते हैं, सहानुभूति दिखाते हैं। कैसे परिणामोंसे तुम्हारा भाई मरा ? आदमी बोलता है कि क्या बतायें, मेहनत करके बी. ए. किया, नौकर हुआ, पेन्शन मिली और अंतमें चले गए। भाई नौकरी करता था और अपना परिवार चलाता था। कितना बड़ा कार्य किया ? आज वह मर गया। जगत्के सब जीवोंको ऐसा होता है कि नौकरी की, धन-वैभव जोड़ा, मर गए और चले गए। जीवनको छोड़कर अन्य योनियोंमें पहुंच गए। आत्मप्रभुके, आत्मस्वभावके दर्शन हों तो परिश्रम सफल है। आत्मस्मरणसे जो आत्मसंस्कार बनता है उसका संस्कार तेरा भला करेगा, अन्यथा नहीं। कितनी दृष्टि फँसी हुई है ? घरके चक्कर, परिवारके चक्कर, यह काम, वह काम इत्यादि अनेक प्रकारसे दृष्टि फँसी हुई है। ये सब तेरे रक्षक नहीं। तेरा तो रक्षक अंतरस्वरूपका दर्शन है। जैसे रोते हुए बालकको किसी खिलौनेमें रमा दें तो उसका रोना बंद हो जाता है। इसी तरह दुःखी होते हुए इन प्राणियोंको जब कभी अपना खिलौना मिल जाये, चैतन्यस्वभावके दर्शन हो जायें तो यही मोक्षका मार्ग है, शान्तिका मार्ग है। यह कोई कठिन बात नहीं है। इस ही स्वरूपमें इस तरहका उत्साह लग जाये, अपने खिलौनेमें लग जाये तो सारे क्लेशके रास्ते ही उसके बन्द हो जाते हैं। यह अमोघ उपाय है। जैसे रेल, मोटर चलती है तो उनके जो यंत्र बनते हैं, घुमा दें, तेज चला दें, धीरे चला दें, जरासा दबा दें तो तेज चल देते हैं और यदि निःशंक होकर और थोड़ासा दाब दें तो अधिक तेजीसे चल देती हैं। जो चलने वाले यंत्र हैं उनको जरासा स्टार्ट कर देते हैं तो चल देते हैं। उनको चलानेके जो प्रयत्न हैं वह व्यर्थ नहीं जाते हैं।

इसी तरह आत्मस्वरूपका दर्शन भी ऐसा उपाय है कि अगर प्रयत्न करें तो व्यर्थ नहीं जाता है। परिणाम तो करता, स्वभावमें दृष्टि तो करता, श्रद्धा तो बनाता, प्रतीति तो बनाता है। मेरा तो रक्षक मैं ही हूं। दूसरा कोई मेरा रक्षक नहीं है। मैं अपने प्रभुको पहिचानूँ तो मेरा रक्षक मैं ही हूं, मेरा शरण मैं ही हूं। मैं अपने परिणामोंको पहले देखूँ। कर्म जो कुछ विक्रम करते हैं तो करने दो। मैं अपने विक्रमको करूँ, अपना पुरुषार्थ आप करो, कर्मका विक्रम होने दो। अपना पुरुषार्थ यह है कि अपने शुद्ध ज्ञायकस्वरूपको देखो। कर्मके विक्रम कषायादिक हैं, वह चारित्रमोहमें होने दो। आत्मस्वरूप दृष्टिका काम करे, कर्म चारित्र मोह करे, जीवके विक्रम और कर्मके विक्रममें होड़ लगने दो। तू अपने उपद्रवको समाप्त कर। जब तू अपना उपद्रव समाप्त करेगा तभी तेरा कल्याण होगा। हे प्राणी, तूने तो कल्पना बना ली। अपने परिवारको, अपने कुटुम्बको अपने सामने रख लिया और जन्ममरणका चक्कर ले लिया। मैंने तो अपने आपमें यह विक्रम लगाया है। अपने आपको

शुद्ध ज्ञायकस्वरूप, ज्ञानमात्र, जाननस्वरूप, जो केवल जानता है, जानना ही जिसका स्वरूप है, जो परपदार्थोंसे भिन्न है, किसी अन्यसे सम्बन्ध नहीं है ऐसे उपयोगमें हमें लगना है। यह प्रथम चीज है, इससे ही मेरेमें आनन्द आता है, इसके बिना गुणोंका विकास नहीं। इस प्रकारका ध्यान बनाकर ज्ञानी जीव अपने को ज्ञाता द्रष्टा बनाये रहनेका अपना विक्रम करते हैं। क्रोधका उदय वहां नहीं है, अन्य प्रकारके विकार भी वहां नहीं है। इसमें मोह नहीं है, दुःखोंसे रहित है। जहां पर मोह, मान, क्रोध, माया, लोभ हैं वहां पर विपत्तियां हैं। वे अपना विक्रम कर रहे हैं और यह अपना विक्रम कर रहा है।

देखो एक जानवर है कछुवा। उसे कोई सताए तो वह अपना मुंह भीतर दबा लेता है। और यदि वह अपना मुंह भीतर दबा ले तो वह भीतर ही घुस जाता है। केवल ढांचा पड़ा रहता है, मुंह भीतर पड़ा रहता है। कछुवेका बाकी शरीर तो कड़ा रहता है, उसको चाहे ठोकते रहो, पीटते रहो परन्तु वह सुरक्षित रहता है। यह तो उदाहरणकी बात है। इसी प्रकार हमारे ऊपर चाहे जितनी आपत्तियां आयें आने दो। हमारे पास तो ताकत है, हम अपना विक्रम करें, अपने विक्रमको हम भीतर ले जाएं और स्वरूप मात्र, आनन्दभाव मात्र अपने स्वरूपको निरखें। यहां तो मेरा कुछ नहीं है। मैं ज्ञानमात्र हूं। क्रोध, मान, माया, लोभ, इत्यादि मेरेमें नहीं हैं, पर मेरे हो जाते हैं। कर्मका विक्रम है होने दो। मैं अपना विक्रम करूं अर्थात् ज्ञाता-द्रष्टा रहूं और अपना विक्रम करके अपने आप सुखी होऊं।

करनेका एक यह ही काम है कि मैं अपना विक्रम करूं परन्तु वह करनेमें नहीं आ रहा है। अपनी कमजोरीसे अपने भावोंको ढीला कर दिया, मनको ढीला कर दिया तो हम स्वच्छन्द हो गए। अपने मनके स्वभावके दर्शन कर लिए तो उत्साह हो गया। मुझे क्या करना है? मैं तो कृतकृत्य हूं, मेरा तो कृतकृत्यके अतिरिक्त और काम ही नहीं पड़ा है। कौनसा काम पड़ा है? अमुक अमुक। अरे वह तो मेरा काम ही नहीं है, वे प्रत्येक द्रव्य तो अपने आपमें परिणमते हैं। उनमें मेरा कुछ नहीं है, मैं कृतकृत्य हूं मैं जो कुछ करूंगा वह यही कि जानना चाहिए, ज्यादा जान जाऊंगा। चेतनाका चमत्कार है, केवल जानता हूं, प्रतिभास्वरूप हूं, मैं इतना मात्र आत्माका मर्म हूं। अपनी शूरवीरतासे हटे तो दुनियाके सभी पदार्थोंसे मुझे दुःख है, हम दुःखके कारण बन जावेंगे, और यदि हम प्रबल रहे तो दुनियाके कोई भी पदार्थ मुझे दुःखी नहीं कर सकते हैं।

कभी देखा होगा कि जब बच्चे अथवा कोई भी कहते हैं कि पीठपर मुक्के लगाओ, जितने लगा सकते हो, लगाओ। उस बच्चेकी हिम्मत बड़ी हो जाती है। वह पीठ कड़ी कर

लेता है और साँस भर लेता है; वह मुक्के लगवा लेता है, सह जाता है, उसे क्लेश नहीं होता है। उनकी बात क्या कहें ? जो व्यायाम सिखाने वाले होते हैं, अपनी छातीपर से हाथी का पैर रखवाकर निकलवा देते हैं, वे भीतरसे तैयारी कर लेते हैं, इस कारण उन्हें दुःख नहीं होता। उनका दिल कड़ा बन जाता है, वे क्लेश महसूस नहीं करते हैं। इसी प्रकार यदि भीतरके मनको कड़ा बना लिया जाय, संयम कर लिया जाय तो यह जानना ही तो है ना। अरे मैं तो जान गया, जानना ही तो मेरा स्वभाव है, मैं तो अपने आपके ज्ञानस्वरूपको जान गया। ऐसी कड़ी हिम्मत कर लो तो जो विपदाएँ भी आती हैं वे चली जाती हैं। इन विपदाओंका मुझ पर असर नहीं होगा, अपने विक्रममें रहे तो कर्मके विक्रमसे विपदाओंका असर न होगा। ढीले-ढाले बैठे हैं, भीतरसे कोई तैयारी नहीं है और यदि कोई मुक्का लगा देवे तो अत्यन्त दुःख होगा। इसी तरह ढीला-ढाला शिथिल मन पड़ा हुआ है तो यह असर करता है। यह आत्मा खुद ही बाहरी चीजोंका निमित्त पाकर अपने आपमें आपका असर डाल लिया करता है। जैसे कहते हैं कि खुद तो जगते नहीं, खुद तो स्वाधीन नहीं होते और कहते हैं कि स्टेशन लुटेरा है। अरे खुद जगते रहो, कौन लूटेगा ? इसी तरह हम खुद स्वाधीन नहीं होते, नाम लगता है घरका, गृहस्थीका, धनका, वैभवका। इन चीजोंने तो उसे लूट लिया, बरबाद कर दिया, फाँस लिया। नाम बदनाम करता है परपदार्थोंका, यों ही देखनेसे उस अज्ञानीको दुःख हो रहे हैं। दुःख तो कोई चीज ही नहीं है। दुःखोंका तो केवल नाम ही नाम है। ऐसी कल्पना करो कि जहाँ यह जंचे कि दुःख कोई चीज नहीं है, तब सुख होगा।

तीन चोर थे। चोरी करने जा रहे थे। रास्तेमें एक नया आदमी मिला, बोला—कहाँ जा रहे हो ? बोले—चोरी करने जा रहे हैं। उसने कहा कि इससे क्या होगा, बोले—धन लूटेंगे, अगर धन लेना है तो तुम भी चलो। नया व्यक्ति साथमें चल देता है, वह यह नहीं जानता है कि घरमें कैसे घुसा जाता है और कैसे बाहर निकला जाता है ? घरके अन्दर सब घुस गए, एक बूढ़े आदमीने खाँस दिया। वे तीन तो भाग गए, अब वह नया आदमी भागना नहीं जानता था, उसने और कुछ न सोचा, घरमें जो ऊपर कड़ी लगी हुई थी उसपर जाकर बैठ गया। गाँवके बहुतसे लोग एकत्रित हो गए, हल्ला मच गया, वहाँ दसों आदमी थे, सभी तरहके सवाल होते थे। घरके मालिकने कहा कि हम सब बातोंको क्या जानें, ऊपर वाला जाने। उसके कहनेका तात्पर्य भगवानसे था कि भगवान जाने, पर उस छिपे हुए नये चोरने यही समझा कि यह मेरे लिए कह रहा है। उसने सोचा कि मैं पकड़ा न जाऊं, इसलिए बोला कि क्या मैं ही जानूं, वे तीन आदमी क्यों न जानें ? अब वह नया चोर पकड़

लिया, बाँधा गया, मारा-पीटा गया, बन्द हो गया।

यहाँपर उसने केवल कल्पना ही तो की थी कि यह मेरे लिए कह रहा है, इसलिए पकड़ा गया, मारा गया और बन्द कर दिया गया। अब मुझे अपने आपको उठाना है, कर्मके विक्रम यदि चलते हैं तो अपने विक्रमको करूं, ज्ञाता द्रष्टा बनूं, इसके आगे हमें कुछ नहीं चाहिए। क्योंकि कुछ मिलेगा नहीं पर से। उनका परिणमन उनमें है, हमारा परिणमन हमारेमें है। जो कुछ मुझे ज्ञान होता है वह मेरेसे मेरेमें होता है। जो मुझको आनन्द प्रकट होता, वह आनन्द मेरेसे मेरेमें प्रकट होता है, दूसरा निर्णय नहीं, दूसरा न्याय नहीं, फिर किस बातकी आशा करते हो ? अपनी अन्तरदृष्टि बनाओ कि जैसी उसकी प्रतिमा है वैसे मेरी प्रतिमा है। सब अपनेमें हैं, मैं अपनेमे हूं। इस प्रकारसे वस्तुके स्वरूपको निरखना यही पुरुषार्थ, यही विक्रम है। एक शुद्धज्ञानका पुरुषार्थ करके अपनी इन सब वासनाओंको दूर करो, जो जो संस्कार भरे हुए हैं, जो जो वासनाएं भरी हुई है, जो-जो क्रोध मान, माया, लोभ इत्यादि भरे हुए हैं उन सबको अपने पुरुषार्थसे अपने विक्रमसे दूर करो।

एक सांप था। उसने यह विचार किया था कि मैं किसीको सताऊगा नहीं। वह शांत था, सुबह उस घरमे बच्चेको एक कटोरा दूध दिया जाता था। वह बच्चा अपने सामने कटोरा रखे हुए दूध पी रहा था, इतनेमें सांप आया और उस कटोरेसे दूध पी लिया। उस बच्चे ने सांपके कई थप्पड़ मारे, पर सांपने सहन कर लिया। खूब दूध पीकर वह मस्त हो गया। इसी तरह वह नित्य प्रति दूध पीकर मस्त हो रहा था। दूसरे सांपने कहा कि तुम क्या खाते हो जो कि मोटे-तगड़े हो रहे हो, उसने कहा कि तुम इसकी कला नही जानते हो। मैं नित्य प्रति बच्चेको पिलाया जाने वाला दूध पी लेता हू, बच्चा मुझे मारता है और मैं क्षमा करता रहता हू, थप्पड सहन करता रहता हूं, खूब दूध पीता हू। दूसरा सांप बोला कि मैं भी ऐसा ही करूंगा। पहलेने कहा—कैसे करोगे ? बोला कि मैं सौ थप्पड़ तक क्षमा कर दूंगा। सवेरा हुआ बच्चेके लिए दूध आया, दूसरा सांप बच्चेका दूध पीने लगा, बच्चेने एक थप्पड मारा, दो थप्पड़ मारे, दस थप्पड़ मारे, पचास थप्पड़ मारे, निन्यानवे थप्पड़ मारे और सौ थप्पड़ मारे सांप सब सहन करता गया। जब उस बच्चेने एक थप्पड़ और मारा तो झट उस सर्पने फुंकार मारी। अब उस फुंकारको सुनकर सब लोग उसके ऊपर टूट पड़े और उन्होंने उसे मार डाला। वह सर्प मनमें वासनायें भरे हुए था कि मैं सौ थप्पड़ तक सहन करूंगा, आगे नहीं। इस वासनाके ही कारण वह मारा गया।

अन्तरमे कषाय, विषय जो भरे हुए हैं, वे सब परेशान करते हैं। लोग कहते हैं कि

जब जाप करते हैं तो कहीं जगहों पर मन जाता है और अगर अपनी दुकानपर रहते हैं तो एक ही जगह पर मन रहता है। इसलिए जापसे अच्छी तो मेरी दुकान है। अरे, दोनों एक ही जगह हैं। संस्कारसे कर्मबन्धन हुआ करते हैं। यह न समझो कि दुकानपर बैठनेसे उपयोग दस जगह नहीं जाता, सो कर्मबन्ध नहीं होता। जैसी वासना है, वैसा बंध है। बात तो बल्कि यह आपको समझनी चाहिए कि जो नाना विषय कषाय भरे हुए हैं उनको जापका प्रसंग सब बतला देता है। अब ज्ञानोपयोग करके उन विषयकषायोंको निकाल दो, अब यह करना चाहिए कि अपने ज्ञानस्वभावका, ध्यानका, मननका, चिंतनका विचार तो करना ही चाहिए और वासनाओंका, कषायोंका तिरस्कार करना चाहिए। यही मेरा विक्रम है कि मैं ज्ञानस्वरूप रहूं और अपना विक्रम मानूं। यदि मैंने यह विक्रम कर लिया तो मैं अपनेमें अपने लिए आनन्दस्वरूप हो सकता हूं।

॥ मुक्ष यही प्रथम भाग समाप्त ॥

ॐ आत्मभक्ति ॐ

मेरे शाश्वत शरण, सत्य तारणतरण ब्रह्म प्यारे ।
तेरी भक्तीमें क्षण जाय सारे ॥ टेक ॥

ज्ञानसे ज्ञानमें ज्ञान ही हो, कल्पनाओंका इकदम विलय हो ।
भ्रान्तिका नाश हो, शान्तिका वास हो, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ॥१॥

सर्व गतियोंमें रह गतिसे न्यारे, सर्व भावोंमें रह उनसे न्यारे ।
सर्वगत आत्मगत, रत न नाहीं विरत, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ॥२॥

सिद्धि जिनने भि अब तक है पाई, तेरा आश्रय ही उसमें सहाई ।
मेरे संकटहरण, ज्ञान दर्शन चरण, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ॥३॥

देह कर्मादि सब जगसे न्यारे, गुण व पर्ययके भेदोंसे पारे ।
नित्य अंतः अचल, गुप्त ज्ञायक अमल, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ॥४॥

आपका आप ही प्रेय तू है, सर्व श्रेयोंमे नित श्रेय तू है ।
सहजानन्दी प्रभो, अन्तर्यामी विभो, ब्रह्म प्यारे । तेरी० ॥५॥

* आत्म-रमण *

मैं दर्शनज्ञानस्वरूपी हूं, मैं सहजानन्दस्वरूपी हूं ॥ टेक ॥

हूं ज्ञानमात्र परभावशून्य, हूं सहज ज्ञानघन स्वयं पूर्ण ।
हूं सत्य सहज आनंदधाम, मैं सहजानंद०, मैं दर्शन० ॥१॥

हूं खुदका ही कर्ता भोक्ता, परमें मेरा कुछ काम नहीं ।
परका न प्रवेश न कार्य यहां, मैं सहजानंद०, मैं दर्शन० ॥२॥

आऊं उतरूं रम लूं निजमें, निजकी निजमें दुविधा ही क्या ।
निज अनुभव रससे सहज तृप्त, मैं सहजानंद०, मैं दर्शन० ॥३॥

मुद्रक:—मैनेजर, आत्ममाला प्रेस, १८५-ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ ।

॥ ॐ ॥

सुख यहां द्वितीय भाग

(सहजानन्द गीता प्रवचन)

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री
पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज

++++

卐 अध्याय २ 卐

य: संयोगजया दृष्ट्या भाति संयोगज: किल ।
तो नाहं मे न तो हित्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१॥

इस लोकमें इस संयोगजन्य दृष्टिके द्वारा जो जो कुछ संयोगजन्य पदार्थ मालूम हो रहे है सो न तो यह संयोगजन्य मैं हूं और न संयोगजन्य पदार्थ मैं हूं । मैं देख रहा हूं किन को देख रहा हूं ? इन संयोगजन्य पदार्थों अर्थात् परमाणुओंके संयोगसे बने हुए इन ढांचोंको देख रहा हूं । कमंडलु है यह भी संयोगजन्य पदार्थ है, अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखने वाला पदार्थ नहीं है क्योंकि यदि यह अपनी स्वतन्त्र सत्ता वाला है तो यह मिट नहीं सकता । जो सत् है वह त्रिकाल है वह मिटा नहीं करता है । दरी है, चौकी है, शरीर है ये सारेके सारे संयोगजन्य पदार्थ हैं स्वयं सारभूत नहीं हैं इसीलिए ये माया रूप हैं, परमार्थ नहीं है । जो कुछ भी देख रहे हैं वे कुछ परमार्थ नही हैं, ये सब संयोगजन्य हैं, माया रूप हैं मिट जाने वाली चीजें हैं । वास्तविक रूप तो कुछ और हो परन्तु रूप कुछ और बन गया हो, तो वे सब बनावटें हैं, माया है, इन्द्रजाल हैं । यदि कहा जाय कि यह ईश्वरकी लीला है तो विचार करनेपर निर्णय पावोगे कि खाली जीव खाली ईश्वरसे यह लीला नहीं बनती, यह कर्म उपाधिसे बनती है, यह प्रकृतिके निमित्तसे बनती है, प्रकृतिकी चीज है । किसी भी

तरफ देख लो ये सब मायामय वस्तु हैं, संयोगजन्य पदार्थ हैं, सहजरूप नहीं हैं। तो मोहमें मैं क्या बन रहा हूं, यही सब मैं हूं मैं और कुछ नहीं हूं ऐसा अज्ञानी बन रहा हूं, अरे भैया, ये असारभूत मायामय पदार्थ मायाकी वस्तुएं हैं प्राकृतिक हैं याने प्रकृति विकार हैं। किन्हीं भी शब्दोंमें कहें जो कुछ माया दिख रही है इसको देखने वाला कौन है? किसके द्वारा हम देख रहे हैं, इस एकके द्वारा नहीं, जिस दृष्टिके द्वारा यह दिखता है वह दृष्टि ही संयोग जन्य होती है, जिसकी ओर देख रहे हैं वह भी मायामय वस्तु है, केवलके द्वारा होने वाली बात नहीं है। यह दृष्टि भी केवल पुद्गल नहीं है केवल जीव भी नहीं है जो देखनेका काम करती है। दिखने वाले तो ये पुद्गल हैं, वे कुछ नहीं देखते हैं। पुद्गल देखें तो मुर्दा शरीर भी देखें, जीव देखें तो ऐसी गंदी दृष्टि सिद्धकी भी हो जाय, ऐसा देखना केवल न आत्माका काम है, न केवल पुद्गलोंका काम है और दोनोंका मिल करके भी काम नहीं, और काम होता रहता है। देखो तो यह दृष्टि भी गजबकी माया है। मायामय चीजें हैं। मायामय ही दिखाई पड़ती हैं। तो न मायामय चीजें मेरी हैं और न मायामय दृष्टि मेरी है और न ये दोनों मेरे हैं। इस कारण उन दोनोंको समाप्त करके त्याग करके अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊं।

भैया! त्याग कहते किसे हैं? यथार्थ ज्ञान कर लेना इसीके मायने त्याग है जैसे कहते हैं ना कि तुम्हारी इससे दोस्ती है और दोस्तीका त्याग कैसे होगा? जब उसके सम्बन्धमें अहितपनेकी कल्पनाएं बनावेंगे तो दोस्तीसे त्याग हो जायगा और यदि हितपनेकी कल्पनासे उसीको ढंगसे जान लगे तो इसीके मायने दोस्ती हो जायगी। इसको मेरेसे अन्दर विरोध है इसी जाननेके माने मित्रताका त्याग है। तो जैसी ही कल्पना होगी वैसी ही मित्रता होगी और वैसा ही मित्रताका त्याग होगा। इसी तरह यह धन वैभव बना हुआ है तो यह कुछ मूल्य नहीं रखता है। वह भी भिन्न पदार्थ है, उनका लेना देना आत्मामें नहीं है।

यदि यह कल्पना बनी कि मेरे पास धन है तो मैं धनी बन गया और यदि यह मैंने मान लिया कि मेरे पास धन नहीं है तो मैं गरीब बन गया। इस जीवमें पूर्ण सामर्थ्य है। यह अपनेको जैसा माने तैसा हो जायगा। जो जो कुछ दिखते हैं वे संयोगजन्य पदार्थ हैं। खास यथार्थ परमार्थमें कुछ भी तत्त्व नहीं दिखता। जिस जीवमें प्रीति होती है मोह होता है वह परमार्थसे अत्यन्त भिन्न है, उसको प्रीति करके उन पदार्थोंमें कुछ असर नहीं बदला जा सकता, कुछ अपने हो नहीं जाते। जैसे देखा होगा कि बहुतसे मनुष्य हैं जिनसे बोलनेका भी प्रसंग नहीं होता और आपको उनके प्रति मोह और प्रीति उत्पन्न हो जाती है। तो मोह और प्रीतिका कारण तो तुम्हीं हो याने तुम्हारी कल्पना है। केवल अपने अन्दर मोह और

प्रीतिकी कल्पनायें भर ली हैं। अब तुम्हीं दुःखी रहो, वह तो जो है सो है। जैसे किसीको बुरा लग जाय तो कहते हैं कि तुम्हारे पेटमें दर्द चुभने लगा। जो संकल्प करे बुरे विचार करे तो वह अपने अन्दर घुल जाता है, मिट जाता है, बरबाद हो जाता है। सो जो खोटे भाव करेगा वह वह स्वयं मिट जायगा। इस नश्वर मायामय वस्तुओंका संग्रह करनेके उद्देश्यसे अपने आपकी रुचि छोड़कर छल, धोखा आदि करे तो यह अपने आपपर बहुत बड़ा अत्याचार है। और यदि अपने ईमान और सच्चाईपर दृढ़ हो और फिर अपने बलसे, धर्मसे स्खलित न होकर शान्त रहे तो आत्मामें एक चमत्कारसा बैठा हुआ आनन्द उत्पन्न होगा ही। ये कुछ नहीं, इन मायामय चीजोंको मायामय दृष्टिसे निरखकर मायामय प्रयोगके द्वारा इनकी कल्पना बना लें तो उत्थान नहीं होगा। मंदिरमें भगवानकी मूर्तिके सामने ध्यान करते हैं तो किस बातसे करते हैं इस प्रभुकी मूर्तिकी मुद्रा ऐसी है कि मानो वह कह रही है कि "तू समस्त जंजालोंको छोड़। हे आत्मन्! कुटुम्ब परिवार इत्यादिको त्यागकर मुझ जैसा विश्राम पा। तेरा किसीसे प्रयोजन नहीं है। तू अपना प्रयोजन किसीसे न रख। तू अपने आपमें ध्यान करके शांत हो जा। और अपने आपके स्वरूपमें आनन्दमग्न हो जा। केवल तू शुद्ध अपने आप रहेगा और आनन्दमग्न हो जायगा।" हे भगवान आप तो शुद्ध हो गये, अपने आपमें आनन्दमग्न हो गये। धन्य है तुम्हें भगवन्! यही आपकी महत्ता है।

सो भैया, किसीसे तेरा प्रयोजन न रहे और स्वयंमें विचार करके आनन्दमग्न हो तो तेरी स्थिति उस भगवान सरीखी हो सकती है। तू मंदिरमें मूर्तिको देखकर इस प्रकारसे ध्यान कर कि उस मूर्तिके देखनेसे तुझे शांतिकी शिक्षा मिले, त्यागकी शिक्षा मिले। यही वास्तविक मूर्तिकी पूजा है और यदि मूर्तिको खूब सजायें, ऊँचा आसन बनायें, सिंहासन बनायें और उस मूर्तिको बैठायें और यदि उस मूर्तिसे शिक्षा न हो सके तो वास्तविक पूजा नहीं कही जायगी। जिस मूर्तिसे तुम्हें त्यागकी शिक्षा प्राप्त हो तथा शांति एवं धैर्यकी शिक्षा प्राप्त हो वही तो प्रभुकी मूर्ति है।

हे आत्मन्! त्याग ही सार है। तू त्यागको ही अपनाकर यदि ध्यानको बनाता है तो आत्माको क्लेश नहीं है, और यदि त्यागसे विमुख होकर इस प्रकारके दूषित वातावरणमें पड़े तो आजीवन क्लेश रहेंगे। मूर्ति जो कि मंदिरके अन्दर होती है उसकी मुद्रा त्यागमय है, उसके दर्शनसे त्यागकी शिक्षा मिलती है।

हे जगतके प्राणियों! यदि परिग्रहका त्याग नहीं, स्त्री पुरुषोंसे वैराग्य नहीं और ऊट पटांग बैठनेका ही काम रहा तो आजीवन क्लेश होंगे। अरे अपनेमें विराजमान साक्षात् परमात्मतत्त्वको देखो और अपने समस्त माया, मोहको त्यागो। यदि यह भाव उत्पन्न होता है

तो तुझे सुख है । तेरे सुखी बननेका अमोघ उपाय है । जैसी प्रभुकी शांति मूर्ति है वैसा शांत बननेकी कोशिश करो । उस मूर्तिके दर्शनसे जो शिक्षा मिलेगी वह तेरे लिए कल्याणकारी है । देखो जिनमें फँसे हुए हो वे सब मायामय पदार्थ हैं, उन समस्त मायावी पदार्थोंसे प्रीति मत कर, सावधान, डेन्जर (खतरा) है, ये सब डेन्जरस हैं । तू परसे प्रीति मत कर । यदि परकी प्रीतिमें फँस गया तो तुझे क्लेश है । प्रीति करते समय तो वह सब अच्छा लगता है । स्त्री बड़ी उत्तम है, बड़ी गुणवान है, बड़ी रूपवान है, पुत्र बड़े अच्छे हैं, मित्र बड़े अच्छे हैं; परन्तु भैया ! ये तेरे नहीं हो सकते हैं, ये सब तेरे लिए जंजाल हैं । उनसे तेरा हित कुछ नहीं, अहित हो रहेगा । यह गृहस्थी बनाई गई है । गृहस्थ धर्म बताया गया है, पर स्त्री पुरुषोंसे आनन्द प्राप्त करना ही नहीं बताया गया है । इसलिए वह गृहस्थ धर्म है कि हे भाई ! तेरा काम तो यह है अपने सारे आरम्भ परिग्रहका त्याग करके अपने अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, आकिञ्चन्यमे आ करके आत्मयोगी बन मोक्षमें पधारो । किन्तु जो कोई कायर है, कमजोर है, कुछ करते नहीं हैं तो उसे बताया है कि इस प्रकारकी गृहस्थचर्याको धारण करके तुम धर्मके कामोंमें लगो । यदि धर्मके कामोंमें लगोगे तो तुम्हारा कल्याण है । यह गृहस्थी इसलिए बसाई है कि तुमसे महाव्रत नही पल सकता तो एक स्त्री व छोटी गृहस्थीमें संतोष करके बाकी सब पापोंसे दूर रहो ।

हे आत्मन् ! आकुलतायें बनाये रहना और झंझटोंमें पड़ा रहना यह गृहस्थीका धर्म नही हैं । इसलिए तू इन समस्त झंझटों एवं आकुलताओंसे विलग होकर अपने आपमें रमो । जब अपने आपमें रमोगे तभी गुजारा होगा अन्यथा नहीं, जो बच्चा अच्छी तरहसे नही चल सकता है उसके लिए माता अंगुलीका सहारा देती है । इसी प्रकार जो सकल संन्यास नही कर सकते है । उन्हें गृहस्थ धर्मका सहारा दिया गया है, भाव तो वहाँ भी शेष समस्त पापों से दूर होनेका है । ज्ञानीके प्रतीति है कि यह मैं नही हूँ, यह मेरा नहीं है इसलिए मैं इन सबको त्याग देता हूं । त्यागना क्या है, यह मान लो कि यह भिन्न है, मेरा इनसे कुछ संबंध नहीं है । मैं तो एक ज्ञानानन्द भावात्मक वस्तु हूं । स्वयं आनन्दस्वरूप हूं, परिपूर्ण हूं, अधूरा नहीं हूं । मुझमें कमी नही है हमें बनना नही है हम बने बनाये है । मेरेमें सब वैभव भरा है, सब तैयार है । केवल ऊपरकी ढकी हुई अज्ञानकी चादरको उठानेकी जरूरत है । जैसे भोजन भीतर सब तैयार है, किन्तु उस थालीपर छन्ना ढका है तो सिर्फ छन्ना उठानेकी जरूरत है । आत्मामें ज्ञान, आनंद, दर्शन, चारित्र इत्यादि समस्त चेतन गुण भरे पड़े हैं । केवल जानने भरकी जरूरत है । अज्ञानका छन्ना पड़ा हुआ है उसे हटा लो । पूरी सावधानी करके अपने जौहरको देखो और उसका आनन्द लूटो इन त्यागे जाने योग्य पदार्थोंमें पड़नेसे अपना

कभी कुछ पूरा नहीं पड़ेगा, अतः यह साहस करो कि मैं इन संयोगजन्य पदार्थोंका त्याग करूं और अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ।

अब यहां यह जिज्ञासा होती है कि जब मैं यह दृष्टि नहीं हूं तो क्या हूं या कुछ भी नहीं हूं और हूं तो कहां देखूं ? इसके समाधानमें कहा जाता है—

नाहमन्यत्र नान्यस्य न नष्टो न बहिर्गतः।
किन्तु ज्ञायकभावोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२॥

यह मैं आत्मा अन्य किसी जगह नहीं हूं, मुझमें ही हूं। यह मैं आत्मा किसी अन्य का नहीं हूं, मैं मेरा ही हूं। यह मैं आत्मा कभी नष्ट नहीं हुआ और न नष्ट हूंगा, मैं ध्रुव हूं। यह मैं आत्मा अपनेसे बाहर कभी नहीं गया जो मुझको अपनेको ढूंढ़नेकी हैरानी करनी पड़े, क्योंकि यह ज्ञान स्वरूप आत्मा यहीं का यहीं विराजमान है। यह तो ज्ञानके चमत्कार के कारण त्रैलोक्याधिपति है। तीन लोकके अधिपति बनानेका उपाय अकिंचन स्वरूप आत्माका दर्शन है। एक जगह गुणभद्र स्वामीने कहा है कि—'अकिञ्चनोऽहमित्यास्व त्रैलोक्याधिपतिर्भवेः। योगिगम्यं तव प्रोक्तं रहस्यं परमात्मनः॥'

गुरुजी अपने शिष्योंसे कहते हैं कि आज मैं तुम्हें परमात्मा बननेका रहस्य बतलाऊं तो शिष्योंने कहा कि हां हां गुरु जी बतलाओ। गुरु जी ने कहा कि देखो मैं अकिंचन हूं, मेरा कहीं कुछ नहीं है, मेरा मैं ही हूं, मेरेसे बाहर मेरा न तो गुण है, न पर्याय है, न असर है, न लगाव है और कुछ भी नहीं है, ऐसा मानकर टन्नाकर बैठ जाओ, ऐसा अपने मनमें जिद्द बनाकर ठहर तो जाओ, तो तू तीन लोकका अधिपति हो जायगा। देखो भैया, यह परम औषधिमय उपदेश है। सर्व क्लेश मिटनेकी सबसे उत्कृष्ट परम औषधि है तो है अकिंचन की भावना। जैसे कोई रोग हो जाय तो कही उस डाक्टरसे इलाज करवाया, कहीं इस डाक्टरसे इलाज करवाया परन्तु किसीसे भी आराम न हुआ तो जिसको वह ज्यादा समझदार समझता है उससे आखिरीमें इलाज करवानेके लिए कहता है और उसीसे इलाज करवायेगा। अरे अब आखिरी एक इलाज तो करवालो। इसी तरह संसारके दुःख दूर करनेका इलाज बहुत तरहका करवाया। धन वैभव हो जाये, कुटुम्ब परिवार हो जाए, लड़के बच्चे हो जाएं इस भावसे बहुत यत्न किए, इलाज किए, किन्तु इन उपायोंको करके भी कष्टसे दूर नहीं हुए। कितने ही विपरीत उपाय कर डालो पर दुःख दूर नहीं होंगे। बस दुःख दूर करनेका तो इलाज यह है कि अपनेको अकिंचन मानो, बस संसारकी सारी चिंताएँ सारे क्लेश समाप्त हो जावेंगे। अपनेको मानो कि मैं अकिंचन हूं, मेरा तो मैं ही हूं, अन्य कोई नहीं है। यही सबसे अच्छा इलाज है। सो भैया अपनेको अकिंचन मानकर अपने आपमें विश्राम तो कर लो। यदि अपनेको अकिंचन मान लिया और अपने आपमें ही विश्राम पाया

तो त्रिलोकके अधिपति हो जावोगे । मैं यहाँ अपने आपमें हूं, अपने ही स्वरूपको लिए हूं, मेरेमें अनन्त आनन्द भरा हुआ है, मैं कैसा विलक्षण, सबसे निराला, ज्ञानानन्दमय, परम-पवित्र पदार्थ हूं, कहीं बाहर नहीं हूं, अन्यत्र नहीं गया हुआ हूं । भैया, अपने आपको न निरखकर यह जीव शून्य बन जाता है, अपना पता ही नहीं रखता है, बाह्यमें दृष्टि रखता है, अपनेको सकिंचन भावमें लगाता है । इसीसे उसे क्लेश हुआ करते हैं । हम अपने आपको समझें कि मैं अकिंचन हूं, मेरेसे बाहर मेरा कुछ नहीं है और जो कुछ मुझमें है वह बाहरसे नहीं आता है । मेरेमें तो मेरा स्वरूप चतुष्टय विद्यमान है । यह मैं ज्योतिस्वरूप पदार्थ हूं । देखो लोक–व्यवहारमें भी उस मनुष्यकी इज्जत बढ़ती है जो मनुष्य यह कहता है कि मैं कुछ नहीं हूं, जीवन भर बड़े बड़े दानके काम भी कर लिए, देश और समाजकी सेवाओंका भी काम कर लिया, उनकी प्रतिष्ठा भी बढ़ गयी, उनकी शोभा भी बढ़ गई, यश भी चारों ओर छा गया, उनका सम्मान भी होता है पर यह तब तक है जब तक वह अपनेको 'ना कुछ' कहता है । उसने परमार्थसे भी देख लिया कि मैं औरोंके लिए कोई चीज नहीं हूं, मेरा जगत्में कुछ नहीं है । मैं केवल अपना स्वरूप मात्र हूं यदि मैं अपनेको इस तरहसे समझूं तो अन्तरमें पारमार्थिक इज्जत हो जायगी । आनन्द चाहते हो तो आनन्दका उपाय इसी अमूर्ततत्त्वको ही उपयोगमें लेना है । मैं अकिंचन हूं । मेरा कुछ नहीं है, अन्यत्र ।

एक साधु था । उसकी लंगोटीको चूहे काट जाया करते थे, अब साधुको यह बहुत बड़ी हैरानी हुई । साधुने चूहेसे रक्षाके लिए एक बिल्ली पाली । बिल्ली दूध पीती थी अब उस बिल्लीको दूध पिलानेके लिए एक गाय पाली । उस गायको चराने वाला कोई नौकर या नौकरानी होना चाहिए सो गायको चरानेके लिए एक नौकरानी रख ली । कुछ समय बाद उस दासीके कुसंग होनेसे लड़का पैदा हुआ । उस साधुने देखा कि पहले बिल्ली थी, फिर गाय हुई, फिर गायका बच्चा हुआ, फिर नौकरानी हुई, फिर लड़का हुआ, इस तरह से मेरा घर तो भर गया । अब उन्हें किसी गाँव जानेकी जरूरत पड़ी क्योंकि घर तो भर गया था उसका, गुजर सबका करना था । रास्तेमें एक नदी मिली, उस नदीसे सब निकलने लगे । अचानक ही नदीमें एक छोटी सी बाढ़ आयी जिससे सबके पैर उखड़ गये, सब बहने लगे । दासीने झट साधुको पकड़ा, क्योंकि रक्षा करने वाले तो वही थे । इस तरहसे सब उस साधुकी शरण गए । बिल्ली भी गई, गाय, गायका बच्चा तथा लड़का इत्यादि भी उस साधुकी शरणमें गये । अब तो साधु भी डूबने लगा । अब वह साधु सोचता है कि अरे ये सारी बला तो केवल लंगोटके कारण आई है । लंगोटके ही कारण गाय, गायका बच्चा, बिल्ली दासी, दासीका लड़का इत्यादिसे विडम्बना हो गई है । अब उस साधुने लंगोटको झटकेसे निकालकर फेंक दिया और सत्य विचारने लगा कि ये जीव मेरे कुछ नहीं हैं । इनके

मेरा कोई संबंध नहीं है, उसे ज्ञान हो गया। देखो भैया, उस साधुने परसे सम्बन्ध स्थापित कर लिया था तो उसे अब क्या क्या तकलीफें उठानी पड़ीं? जो अपनेको परसे मिला हुआ समझता है वह डूब जायगा और जो अपनेको कुछ नहीं समझता है वह तर जायगा।

किसी घरमें ऐसा भी होता है कि कोई बाप बड़ो उमरका हो जाता है। पांच सात बच्चे भी हो जाते हैं। बच्चोंका रोजगार भी अच्छा चलता है। बाप जब बच्चोंके काममें दखल देता है तब दखल देनेसे नुकसान हो जाता है। कहीं ४-६ महोनेको वह बूढ़ा बाप न रहे व किसी जगह चला जावे तो बच्चे सुख शांतिसे काम करते हैं। बाप तो यह समझता है कि हम काम कर रहे हैं पर बच्चे मुसीबत उठाते व नुकसान भी। यदि बाप बच्चोंके काम न पूछे तो इस स्वतन्त्रतामें देखो बाप खुश है और बच्चे भी खुश हैं। देखो ना, इस जीवने भी शरीर वर्गणावोंमें दखल दिया तो शरीर भी खराब हो गया और आत्मा भी खराब हो गया। यह आत्मा तो बड़ा भला है। इस आत्माका जाननेका ही काम है। मेरेमें कोई भी विपदायें इस आत्मामें नहीं आती है। इन वर्गणावोंमें जब यह दखल देता है तो यह भी बुरा होता है व शरीर भी बुरा होता है।

यह जीव अकेला रहकर बड़े आरामसे बना रहता है। पुद्गल भी मोसादि रहित पवित्र बने रहते हैं। इस जीवकी बड़बड़ाहटसे पुद्गलकी यह दशा हो गई। इसीसे जोवकी यह दशा हो गई। अच्छी नुक्तीका बढ़िया लड्डू खूब बढ़िया बना है, खूब मजेदार है, तबियत भी ठीक है, स्वास्थ्य भी अच्छा है, यह आदमी अच्छा है, बस अब लड्डू खाये तो लड्डू खानेसे लड्डूकी क्या हालत हुई सो मुंह बाकर आईनामें देख लो और बीमारीने आक्रमण कर लिया, यह हुई खाने वालेकी दशा। खाने वालेकी तो तबियत खराब हो जाती है और लड्डू बेकार हो जाता है, यह तो हुई लड्डूकी दशा। लड्डू अपनी जगह पर अच्छा था, आदमी अपनी जगह पर अच्छा था अपनी जगह पर रहते तो दोनों मजेमें थे।

ये दुनियाके सारे वैभव, मित्र जन, कुटुम्ब, परिवार इत्यादि भी हों तो इन किन्हींसे भी हमारा पूरा न पड़ेगा, खराबी ही रहेगी। जो पदार्थ जहां जिसमें जिस स्वरूपमें हैं, बना रहने दो। उनमें यदि पड़े तो उनमें भी खराबी है, खुदमें भी खराबी है। यह अकिंचन भाव संकट रोगकी अमोघ औषधि है। कितने ही कष्ट हों, जरा अपनेको ज्ञानमें अकिंचन बना लो तो सब क्लेश मिट जायेंगे। अरे भाई अपनेको सबसे निराला समझो कि मैं अकिंचन हूं, मेरा कहीं कुछ नहीं है तो आनन्दमग्न हो हो। यह अकिंचन भाव अच्छा है। यदि अकिंचन भाव अपनेमें न आया तो बड़ी बड़ी झंझटें पड़ जावेंगी। जैसे कि लौकिक झंझटें बहुत पड़ गईं हो, बड़ी चितायें हो गई हों इसमें २० हजार लगे, इसमें ५ हजार लगे, टोटल किया तो

७४ हजारका नुकसान आया। अरे यह नुकसान मेरा कुछ नही है, हो जाने दो। उससे मुझे कुछ नुकसान नहीं पहुंच सकता है, इस प्रकारका यदि विचार बन जावे तो लो दुःख मिट गया और यदि इसके विपरीत विचार बने तो क्लेश बढ़ते ही चले जावेंगे। जैसे सट्टा खेलते हैं तो मिलता कुछ नहीं है, केवल कहते हैं कि इतने पैसे लगे हैं, यह खरीदा वह खरीदा। खरीदना कुछ नही पड़ा, पैसे कुछ नहीं लगाने पड़े, सट्टा खेलते हैं। इसका फल केवल यह हुआ कि पूरे रात-दिन जगे इसी तरह इन पदार्थोंसे हमें लेना देना कुछ नहीं इनसे अपना सम्बन्ध कर लेने से नुकसान ही है, जैसे सट्टा खेलनेका फल केवल पूरी रातका जागरण है उसी प्रकारसे पर-पदार्थोंसे सम्बन्ध स्थापित करना, उनको अपना इष्ट अनिष्ट मानना इसका फल केवल क्लेश है, यह सब धोखा है, परन्तु यदि अपनेको अकिंचन मान लें तो तीन लोकके अधिपति हो जावें। देखो—घरमें बच्चोंमें कोई चीजका झगड़ा हो जाय, किसी चीजके वितरणमें कोई बच्चा यह कहे कि हम यह चीज नही लेंगे हमें कुछ नही चाहिए, माँ बाप कहते जाते हैं कि नही बेटा और ले लो, बेटा नही कर देता है। अब उस नहीं कर देनेके बदलेमे और और मिलता है, जो शान्तिरूप हैं, जिन्होंने नहीं, नहीं कहा। जो यह कह देते हैं कि हमें चाहिए तो उनके लिए माँ बाप कहेंगे कि अब नहीं मिलेगा। इसी प्रकार हे आत्मन्! ज्यों-ज्यों पर-पदार्थोंसे बाहर होते जाओगे, उनके लिए यह कहोगे कि मुझे कुछ नहीं चाहिए तो पावन होता जायगा और त्रिलोकके अधिपति हो जाओगे। यदि कुछ माँगो तो कुछ नही मिलेगा। आचार्य देवके वचनोंसे हमें यह शिक्षा मिलती है कि हे जगतके प्राणियों! परपदार्थोंमें न पड़ो ये सब गोरखधंधा है।

भैया! तुम कहाँ अपना विश्वास कर रहे हो? ये सब परपदार्थ तुम्हारे लिए हितकर नही है। कौन सी ऐसी चीज है जिससे पूरा पड़ जायगा। अरे पूरा पडने वाली कोई चीज नहीं है, यदि तू इनमे पड़ा तो तेरी दशा खराब हो जायगी। तू अपनेको अकिंचन मान। अपने आपमें विश्वास कर कि मै अपने आपमें हूं, अन्यत्र नहीं हूं, परिपूर्ण हूं, नष्ट नही हूं, मैं बाहर नहीं गया हूं। इस तरह सबकी ओर उपेक्षाभर रहे तो आत्मवैभव वृद्धिगत होता है, और जिसके केवल पर्यायबुद्धिके कारण भीतरमे लगाव होता है कि मैं यह इन्सान हूं, मैं अमुक हूं, उसके पर्यायबुद्धिके हो जानेसे खोटे अभिप्राय बढ़ जाते हैं।

देखो भैया! एक अपने आपसे परिचित न होकर जिन्दगी बेकार चली जा रही है। आपको भावो, चाहे अकिंचन भावना हो, चाहे ज्ञानमात्र भावना हो, प्रयोजन दोनोंका एक है, मैं केवल ज्ञानमात्र हूं। जानन एक विलक्षण भाव है जिसका उपाय दुनियामें अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है, किसीको स्पष्ट नहीं दिखता है, उस जाननके पेट नहीं है, पैर नही हैं, शकल

नहीं है। रूप, रस, गंध इत्यादि उस ज्ञानमें नहीं है। यदि हम अपनेको ज्ञानमात्र मानते हैं तो आनन्द है और यदि इसके विपरीत अपनेको समझते हैं तो हमें क्लेश हैं।

हम अब तो अपने घरमें रहते ही नहीं। कितने कष्टकी बात है? अरे बाहर भी रहते हो तो घरमें दो-चार घंटेको तो घुसा ही करते हो। अनन्तकाल व्यतीत हो गए। बाहर ही बाहर दृष्टि रही, विपदाओंके साधनोंकी ओर ही दृष्टि रही। अरे ज्ञानघन आत्माको तो देखो। सोने चाँदीके ढेरोंमें क्या रखा है? दौलतसे, धन-वैभवसे तुम्हारा क्या विकास, क्या उत्थान हो जायगा? व्यर्थ ही क्यों हे जगतके प्राणी! तू अपनेमें ही संकल्प विकल्प करके दुःखी होता है। तेरी आत्मामें तो दुःख रूप है ही नहीं। वह तो आनन्दघन है फिर तू क्यों दुःखी हो रहा है? अरे इन संकल्प विकल्पोंको टाल दो तो आनन्द उत्पन्न हो जायगा। मेरा सुधार करने वाला, मेरा बिगाड़ करने वाला मैं ही हूं, मुझे अपनेको ज्ञानस्वरूप, ज्ञानानन्दमात्र निरखकर आनन्दमग्न होना चाहिए। यह प्रभु तो यहीं विराजमान है, अति निकट क्या, यही मैं हूं। परमात्मतत्त्व कुछ अन्य वस्तु नहीं है, चेतनतत्त्व ही परमात्मा होता है। केवल पदार्थ समझ लेने व न समझ पानेका ही सारा अन्तर हो जाता है। जिन्होंने अपना यथार्थ स्वरूप समझा और इसी कारण द्रव्येन्द्रिय भावेन्द्रिय व विषयभूत वस्तुमें अपना प्रयोजन नहीं समझा और इन तीनोंसे उपेक्षा की और उपेक्षा करके अपने ज्ञानस्वभावमें रत हुए तो परमात्मतत्त्व प्रकट हो जाता है, ऐसा ही स्वरूप मेरा है। उसका ध्यान कर सर्व क्लेशों से मुक्त हो जानेका उपाय कर लेना ही परम विवेक है।

विषयवद्विषयांस्त्यक्त्वा पृथक्कृत्य वपुर्धिया ।
स्वात्मानमेव पश्यामि स्वां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥ ३ ॥

देखो भाई! ये विषय जिनमें संसारके प्राणी अंधे हो जाते हैं, विषसे भी भयंकर हैं विष तो एक ही भवमें प्राणका हरण करता है, परन्तु विषयोंकी आसक्ति भव-भवमें मूल प्राणका, चैतन्य प्राणका हरण करता है अर्थात् ज्ञान दर्शनका विकास नहीं होने देता। संसार के विभिन्न तिर्यंचोंको तो देखो, ये तो देखनेमें आ ही रहे हैं। हाथी हथिनीके सम्पर्कको धुन में जंगलमें बनावटी हथिनीके समीप दौड़कर जाता है और उस स्थल पर जाते ही गड्ढेमें गिर जाता है, दुःखी होता है और पराधीन हो जाता है। मछलियोंको देखो—जरासे माँसखंडके खानेके लोलुपी होकर धीमरके जालमें फँस जाती हैं। धीमर लोग फिर उनको पकड़कर अलग रख देते हैं वे मर जाती हैं या कहीं-कहीं पर मछलियोंको जिन्दा ही आगमें भून डालते हैं। भ्रमर गंधके वशीभूत होकर पुष्पके भीतर ही निःस्वास हो जाते हैं। पतंगे रोशनी में ज्वालापर पड़कर मर जाया करते हैं, यह तो प्रायः देखते ही रहते होंगे। साँप, हिरण

आदि जो शब्दरागके विषयमें मस्त करके पकड़ लिए जाते हैं सपेरे व शिकारियोंके द्वारा, जब इन जीवोंकी एक-एक इन्द्रियके विषयके वशमें ही ऐसी दुर्गति हो जाती है तो हाय यह मनुष्य कीट जो पांचों इन्द्रियके विषयोंका दास है इसका क्या हाल होगा।

अतः भैया! पुण्यके उदयसे पाया तो सब कुछ समागम है, परन्तु उसके भोगनेसे पहिले कुछ विवेकका भी आदर कर लो, अन्यथा पछतावा करना ही हाथ रहेगा। विषयों को विषकी तरह अहितकारी समझकर और कषायोंके साधनभूत शरीरको आत्मासे पृथक् मानकर उन सबसे उपेक्षा करना, बस यही धर्म मार्ग है। ये विषय भोग संसारमें परिभ्रमण कराते हैं, जन्म परम्परा बढ़ाते हैं तब कर्तव्य क्या है कि इन विषयोंको छोड़कर और इन विषयोंके साधनभूत शरीरको भी आत्मासे पृथक् देखकर सबसे उपेक्षा कर दो। मैं अपने आपमें उपयोगी होऊं। इन्द्रिय विषयोंको जीतनेके लिये मुख्य उपाय ज्ञान ही है। घर छोड़ दें अथवा किसीके नाम पर धर्मकी उपासना कर लें, बड़े बड़े कार्य कर लें सब ठीक हैं, परन्तु निर्विषय आत्मतत्त्वका जब तक दर्शन नहीं तब तक इन्द्रियोंको जीता नहीं जा सकता है और जब तक इन्द्रियोंपर विजय नहीं होगी तब तक मोक्षमार्ग नहीं प्राप्त हो सकता है। इन्द्रियविषयोंको जीतनेके लिये कैसा उपयोग बनाना है, इस सम्बन्धमें समयसारमें श्री पूज्यपाद अमृतचंद सूरि जो कहते हैं कि विषयभोगका संबंध तीन बातोंसे हुआ करता है—१. द्रव्य इन्द्रिय २. भाव इन्द्रिय और ३. विषयभूत पदार्थ। विषयभोगका सम्बन्ध इनसे रहा करता है। द्रव्य इन्द्रियके निमित्तसे उनके विषयभूत पदार्थोंमें इन्द्रियज्ञान करके रमण होता है। इस तरहसे भोग भोगनेके लिये तीनसे वास्ता पड़ता है—द्रव्य इन्द्रिय, भाव इन्द्रिय और विषयभूत पदार्थ। द्रव्येन्द्रिय तो शरीरमें दिखने वाले ये हैं। इन्द्रियके निमित्तसे जानकारी होती है, वह जानकारी भावेन्द्रिय है। और विषयभूत पदार्थ जगतके ये पुद्गल पदार्थ हैं। ये विषय पांच प्रकारके होते हैं—स्पर्श तो स्पर्शनका विषय है, रस रसना का विषय है, गन्ध घ्राणका विषय है, रूप चक्षुका विषय है, शब्द श्रोत्रका विषय है। चक्षु इन्द्रिय और रसना इन्द्रिय तो दुनियामें कमाल कर रहे हैं। हम इन इन्द्रियोंके प्रति कैसा ज्ञान बनावें कि विषयोंसे हटकर अपने स्वभावमें लग जायें। कहते हैं कि इन्द्रिय क्या हैं? इन्द्रिय पुद्गल हैं, जानने वाली नहीं हैं। यह मैं आत्मा ही चैतन्यस्वरूप हूं जो जानता हूं, ज्ञानमय तत्त्व हूं, सबसे निराला हूं। मुझमें और इन पौद्गलिक इन्द्रियोंमें कितना अन्तर है? ये इन्द्रियां तो मैं हूं ही नहीं, ये तो मेरेसे भिन्न हैं।

विशिष्ट ज्ञान करके ही हम इन इन्द्रियोंके वशीभूत हो जाते हैं, और इन्द्रियोंके वशीभूत होकर दुःख उठाते हैं। हमें इनको विजय करनेके लिये इनकी उपेक्षा कर देनी चाहिए, लोग

कहते हैं—'बड़ी मार करतारकी दिलसे दिया उतार।' जैसे किसी परिवारमें प्रधान पुरुष तथा स्त्री पुत्रमें कुछ अनबन हो जाय और प्रधान पुरुष उन आधीनस्थोंसे उपेक्षा कर जाए, अलग रहे, उनसे बोलना ही छोड़ दे तो स्त्रीको दुःख होगा, और कहेगी कि 'बड़ी मार करतारको दिलसे दिया उतार।' वह सोचती है—पतिने हमसे बिलगाव क्यों कर लिया है, इससे अच्छा तो यह था कि दो-चार दिन खाना न देते, मार देते, परन्तु हमें दिलसे क्यों उतार दिया है? हमसे वह स्नेह क्यों नहीं करते, हमसे बोलते नहीं हैं, हमारी ओर निगाह भी नहीं डालते हैं। सो देखो भैया! इससे बढ़कर और दण्ड क्या होगा? ऐसा ही इन इन्द्रियोंको दण्ड दे दो। इन्द्रियोंको विजय करनेके लिए जीभ काट डालो, कान काट डालो, नाक कतर डालो, आँखें फोड़ दो। क्या? नहीं, इन्द्रिय-विजयका उपाय है उपेक्षा। क्या करो कि किसी दूसरेकी ओर मुड़कर भी न देखो, अरे यह तो जग है, उससे तू विलग है, तू तो एक चैतन्य पदार्थ है, तू इन्द्रियोंमें क्यों फँसा है? भैया! इन इन्द्रियोंमें वशीभूत होकर तेरा ज्ञान दब रहा है। इन इन्द्रियोंके कारण ही तो स्पष्ट बात समझमें नहीं आती है। तू तो अपने आपको सोच कि मैं इन्द्रियोंसे अपना सम्बन्ध नहीं रखता, तू अपनेको जान कि मैं आत्मा स्वतंत्र हूँ, यदि तू अपने को इस प्रकारका बना ले तो यही हुआ इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना। इन इन्द्रियोंके द्वारा ही नाना कषाय बढ़ते हैं, इन्द्रियोंके निमित्तसे जो ज्ञान होता है उसे कहते हैं भाव इन्द्रिय। इन्द्रियोंके निमित्तसे हमारा जो ज्ञान होता है वह अपूर्ण ज्ञान है, पराधीन ज्ञान है। किन्तु मैं आत्मा तो अपूर्ण नहीं हूँ। यह आत्मा तो पूर्ण ज्ञानमय है। इन्द्रियोंके द्वारा जो ज्ञान होता है वह अपूर्ण ज्ञान होता है। अतः परस्पर इन दोनों ज्ञानोंमें अन्तर है। मैं अपूर्ण ज्ञानवान नहीं हूं, मैं तो अपनेको इन्द्रियज्ञानसे भिन्न सहज ज्ञानमय देखता हूँ। वह तो अपूर्ण ज्ञान है। मुझे तो चाहिए कि इन इन्द्रियोंसे, खंड खंड ज्ञानसे पृथक् अखण्ड ज्ञानमय अपने आपको अनुभवूं और इन्द्रिय ज्ञानसे विलग होऊँ। इन इन्द्रिय विषयोंमें से स्पर्शन इन्द्रिय विषय तो उन्मत्ततापूर्ण है। इसका विषयकषायी रागी पुरुष ब्रह्मविद्याकी आराधनाका पात्र नहीं है।

रसना इन्द्रियको देखो इसका विषय भावेन्द्रिय द्वारा ही जान पाया है। खण्ड खण्ड ज्ञान है वह। जैसे कोई अंधेरेमें बैठा हुआ आम चूस रहा है। उसको पता नहीं कि आम कलमी है कि दशहरी है कि देशी है। केवल उस आमके रसको जब जिह्वापर रखता है तब उसे आमका पता चलता है, उसे यह पता नहीं चलता कि आम किस रंगका है, किस रूपका है, देखो यह अपूर्ण ज्ञान हुआ ना। आमके विषयमें पूर्ण जानकारी नहीं हो पायी, ऐसे ही सब इन्द्रियज्ञान है। सो भैया! अपनेको इन इन्द्रियोंके उपयोगोंसे हटाओ। अब विषयभूत पदार्थोंको देखो—ये बाह्यपदार्थ जड़ हैं, संग हैं, परिग्रह हैं, पर वह मैं आत्मा चैतन्यस्वरूप

हूं, केवल हूं, असंग हूं, किसी अन्य पदार्थोंसे मेरा सम्बन्ध नहीं है। वे सब अपनी-अपनी स्वरूपसत्ता मात्रमें हैं, मैं अपनी सत्तामात्र हूं। ऐसा भेद करके उन बाह्य पदार्थोंसे अपना सम्बन्ध न स्थापित करो, उनमें दृष्टि न डालो, केवल अपने आपको निरखो। अपने इन विषयोंको जीतनेका क्या कोई और उपाय है। कुएंमें डाल दो अथवा तोड़ फोड़ दो, इन इन्द्रियोंको बरबाद कर दो, कान कतर दो, आंखें फोड़ दो, विषयोंपर विजय प्राप्त करनेका क्या यही उपाय है। अरे! इन इन्द्रियोंका बहिष्कार कर दो, दिलसे उतार दो। इसी प्रकार से विषयोंको दिलसे उतार दो, मोहको भुला दो, जो भिन्न भिन्न रूपोंमें जन्म मरणके चक्रमें डालने वाले हैं। इन विषय कषायोंको त्याग दो। इन विषयोंके बेसिक इस शरीरको अपने स्वरूपसे पृथक् देखो तथा अपनेको ज्ञानमात्र, सबसे निराला समझो और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होओ।

इस जगतमें जितने भी लोग पराधीन बने रहते हैं वे विषयोंके कारण ही पराधीन बने रहते हैं। इसलिए विषयसे छुटकारा प्राप्त करो। कोई किसीसे बंधा है क्या? कोई किसीसे बंधा हुआ नहीं है। केवल खुदमें ही वस्तुस्वरूपसे विपरीत कल्पनाएं बना लेनेसे बन्धन बना लिया है।

सुकौशल राजकुमार अपनी कुमार अवस्थामें विरक्त हो गया। वह घर छोड़कर चल दिया। तब राजकुमार की अवस्था छोटी थी। वे अपनी माँ और अपने साम्राज्य सुखसे विमग्न हो गए। देखो मंत्रीजनों ने उन्हें बहुत समझाया, पर वह न माने; कैसे मानते उन्हें ज्ञान हो गया था। वे अपनी आत्मामें ही लीन होना चाहते थे। तब फिर उनको रोकने वाला कौन था? उनमें यथार्थ ज्ञान हो गया था। तब फिर दूसरोंका असर उन पर किस प्रकारसे हो सकता था। यदि खुदमें अज्ञानभाव होता तो दूसरोंके समझाने पर यह अपनेमें अपनी उत्सुकताके कारण उस तरहका असर कर लेता। मंत्रियोंने राजकुमारको बहुत समझाया कि आपकी स्त्रीके गर्भ है, बच्चा तो हो जाने दो। फिर चाहे चले जाना। बेटा! उस बच्चेको तो राजतिलक दिए जाओ। दुनियाको तो यह बता जाओ कि मैं अपने बच्चेको राजतिलक दे रहा हूं इसलिए हे महाराज! अभी इतनी जल्दी न जाओ। दो तीन माह बाद फिर चाहे चले जाना। राजकुमार सुकौशल कहते हैं कि अच्छा गर्भमें जो संतान है उसे मैं तिलक किए देता हूं। जो गर्भमें संतान है उसे मैं राजा बनाए देता हूं। ऐसा कहकर सुकौशल राजकुमार विरक्त हो गये।

ज्ञान ही सुख, आनन्द व शान्ति देता है। और यदि ज्ञान नहीं है तो आजीवन क्लेश है। अतः मैं इन विकारोंको, विषय कषायोंको त्यागकर अपनेमें ज्ञान उत्पन्न

करूं, अपने आपके ज्ञानसे आनन्द लूं और सारे संकल्पोंसे मुक्त होऊं।

शांतिके मार्गमें बढ़नेके लिए सबसे पहिला कदम है इन्द्रिय विजय अर्थात् इन्द्रियोंके विषयोंपर विजय प्राप्त करना। यह इस उपायसे संभव है कि इन विषयोंसे पृथक्, विषयों के ग्रहणके साधनभूत द्रव्येन्द्रियोंसे पृथक् और विषय ग्रहण विकल्प रूप भावेन्द्रियसे पृथक् ज्ञानमात्र अपने आत्मतत्त्वका संचेतन करूं। इसके लिए हम प्रारम्भमें सीधा इतना ही काम कर लें कि विषयके निमित्तोंको दूर करें तथा विषयोंके कारणभूत इस शरीरको आत्मासे अलग समझें। फिर इन विकल्पोंके दूर होनेपर आत्मामें परम विश्राम होगा जिससे शांतिके मार्गका साक्षात्कार होगा। सुख इस ही स्वरूपमें हैं अन्य विषयोंमें सुख खोजना महामूढ़ता है।

न मे वर्णो न मे जातिर्न मे देशो न विग्रहः।
नैवामहं न्वहं त्वेकः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४॥

जो आत्मामें हो उसको तो हाँ करना और जो आत्मामें नहीं है उसे ना करना। आत्मामें ज्ञान है सो ज्ञानकी हाँ करना और आत्मामें वर्ण नहीं, देश नहीं, शरीर नहीं, कर्म नहीं तो उसको ना करना, ना को हो हाँ कर दे और हाँ को न कर दे उसीका नाम मिथ्यात्व है। आत्मामें ज्ञान है, पर उसे न कहने वाले बहुत हैं, कुछ दार्शनिक भी ऐसे हैं जो आत्माका स्वरूप ज्ञान नहीं मानते बहुत-बहुत बातें है, यहाँ कौन अपनेको ज्ञानस्वरूप मानता है? अरे विशुद्ध व्यवस्था नहीं है तो मैं हूं क्या? जैसा भी जिसने कह दिया वैसा ही मान लिया और बहक गए। यह तो हाल है संस्कार परिणाममें, जैसा जिसने समझ लिया, जैसा संग जिसको मिल गया तैसा ही असर बना लिया ऐसोंकी संख्या ज्यादा है। जिनको हाँ का पता नहीं है और जिनको ना ही का भूत लगा उनकी तो चर्चा ही यहाँ नहीं है, और भीतर दर्शनशास्त्रमें चलें तो ज्ञानकी न करने वाले बहुत हैं। कोई दार्शनिक तो आत्माका स्वरूप नहीं मानते। क्योंकि ज्ञानस्वभाव आत्माको नहीं मानते। ज्ञानके सम्बंधसे आत्मा ज्ञानी है। आत्मामें ज्ञानरूप नहीं है, ऐसा मानते हैं। और इसी तरह और और भी हैं, आत्मामें रूप है क्या कि हरा है, कि काला है, कि सफेद है, कुछ भी नहीं; किन्तु मोही मानता है कि यह गोरा है, यह काला है, यह सफेद है, मैं गोरा हूं, मैं काला हूं, मैं गेहुंवे रंगका हूं। अरे यह आत्मा अनेक रूप नहीं है। आत्मामें जातियां हैं क्या? भैया! आत्मामें कोई जातियाँ नहीं। आत्मामें वर्ण नहीं, वह तो चैतन्यस्वरूप, चेतनात्मक प्रभु सरीखा एक वस्तु है, वह आत्मा है। मेरी जाति नहीं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इत्यादि कोई जाति आत्मामें नहीं है।

विकार और अविकार भावोंकी तो बात ठीक है कि मेरी इस आत्मामें विकार तो

है, किन्तु स्वभावमें विकार नहीं हैं। वह निर्विकार है, निर्विकल्प है, ज्ञानानन्दमय है, ज्ञानघन स्वरूप है। विकारोंका होना आत्माका काम नहीं है, वह तो चैतन्यमय पदार्थ है। यद्यपि पर्यायमें परिणामोंके अनुकूल ही जातियोंमें विभाग हैं अर्थात् जितने प्रकारके परिणाम होंगे उतनी ही जातियां होंगी, परन्तु परमार्थसे जैसा मैं हूं तैसा ही हूं। मेरे अस्तित्वमें कोई जाति नहीं। जैसे आज हिन्दुस्तानमें हूं और हिन्दुस्तानी कहलाता हूं। आगे अगर मरकर इंग्लैण्ड में जाकर किसी अन्य योनिमें जन्म ले लूं तो अंग्रेज बन जाऊँगा और कहूंगा कि मेरा देश इंग्लैण्ड है, मैं अंग्रेज हूं। वास्तवमें भैया, मेरे स्वरूपमें कोई जातियां नहीं, मेरा कोई देश नहीं। जब तक जिन्दा हूं तब तक तो हिन्दुस्तानी हूं, अंग्रेज हूं, फलां हूं इत्यादि विकल्पकी बातें रहती हैं, पर ज्यों ही मृत्यु हो जाती है उसका विकल्प बदल जाता है। देशकी बात देखो, देशके प्रदेशकी बात देशमें है; मेरा देश नहीं, मेरे विग्रह नहीं, सुख दुःखका अनुभव तो चैतन्य प्रदेशमें होता है। शरीरमें सुख, दुःखोंका अनुभव नहीं होता है, ज्ञान, शिक्षाकी बात चैतन्य प्रदेशमें होती है, शरीरादिमें नहीं होती है। मेरे विग्रह नहीं, शरीर नहीं। मैं इनका नहीं और ये मेरे नहीं, मैं तो केवल एक ज्ञानमात्र हूं ऐसी भावना ज्ञानी जीवके होती है।

भैया! जाति और धर्म वेशभूषा या पहनावाका जिनके आग्रह हैं उनको मोक्ष प्राप्त नहीं होता। मैं किसी जाति वाला किसी शरीर वाला नहीं हूं, मैं आत्मा चैतन्य जातिका हूं, ऐसा जानूं। कोई भी आग्रह हो चाहे जानूं कि मैं ब्राह्मण हूं, मैं क्षत्रिय हूं, वैश्य हूं, शूद्र हूं अथवा किसी प्रकारका विकल्प भरे हुए हैं तो उस आग्रहके कारण मोक्ष नहीं होता है। हालांकि बात ठीक है कि तमाम जातियोंमें यह कोई श्रेष्ठ जाति है। हम श्रेष्ठ जाति व आचरण वाले मोक्षपात्र हैं। यदि संस्कार निम्न जातियोंमें हुए तो मोक्ष नहीं है तो भी अपने आपमें किसी भी पर्यायका आग्रह हो तो मोक्ष नहीं होता। मैं पुरुष हूं अथवा स्त्री हूं ऐसे कोई भी विकल्प मेरे मोक्षमार्गमें बाधक होंगे। मोक्षमार्गकी प्रगतिकी बात दूर रही इस पर्यायबुद्धिसे तो मुझे सम्यक्त्व भी नहीं होगा। मेरा मेरे सहज स्वरूपके सिवाय अन्य कुछ नहीं है। अगर शुद्ध स्वभावका विश्वास नहीं है तो सम्यक्त्व नहीं है। मैं तो एक चैतन्यवस्तु हूं, मैं तो सबसे अछूता चैतन्यमात्र हूं। वह ज्ञानी नहीं है जो अपनेको सबसे निराला तथा अछूता न निरखे। अपने आपकी सहज चैतन्यभावके रूपमें पहिचान होगी तब सम्यक्त्व है। यह बात कहो कि हंसी हंसीमें ही शांति मिल जाय तो शांति नहीं मिलने की। हंसी हंसीसे ही यदि यह चाहो कि मोक्षका मार्ग मिले तो नहीं मिल सकता है। मेरे लिये तो आध्यात्मिक तपस्याकी जरूरत है। तपस्या तब होगी जब कि यह समझो कि मैं पुरुष नहीं हूं, मैं स्त्री नहीं हूं। अपनेको पुरुष स्त्री बनाने वाले भावका तिरस्कार कर दो और ऐसी भावना

बनाओ कि मैं मनुष्य नहीं हूं, मैं सदा आनन्दघन चैतन्यस्वरूप वस्तु हूं, मेरी आत्मात्मक ज्योति बढ़े यही मेरा काम है। देखो इंग्लिशमें आइ शब्द है जिसका मैं अर्थ होता है वह आइ शब्द न पुरुष लिंग है और न स्त्रीलिंग है। अहं शब्द जो कि अस्मद्से बना है वह भी न पुरुषलिंग है और न स्त्रीलिंग है, इसी प्रकार मैं शब्द भी न पुरुषवाचक है न स्त्रीलिंग है। तब सोचो कि मैं शब्द भी जब स्त्री पुरुष दोनोंसे परे है तो वाच्य जो यह मैं चेतन वस्तु हूं सो यह मैं भी न स्त्री हूं और न पुरुष हूं। मैं तो चेतनात्मक, जगमगस्वरूप, प्रकाशमान चकचकायमान एक प्रतिभासस्वरूप वस्तु हूं।

हे आत्मन्, तेरेमें तो विकार नहीं है पर तेरेमें जो विकार हो गये, विकल्प हो गये, विषयकषाय हो गये वह तूने ही भ्रमवश ही झलका लिया। तू धनके ही पीछे पड़ा रहा, अपने परिवारके ही पीछे पड़ा रहा, विकल्प तो तूने स्वयं ही इस जगतमें बना लिये हैं। अरे यदि तू नुकसान मान लेता है तो नुकसान है और यदि नुकसान नहीं मानता है तो कोई नुकसान नहीं है। चाहे हजारका नुक्सान हो, चाहे लाखका, चाहे करोड़का, उसे तू नुकसान न समझ। वे तो सब परद्रव्य हैं उनसे तेरा क्या सम्बन्ध है। हे जगत्के प्राणी! तू विकल्पोंको जिनका कुछ मूल ही नहीं, भ्रमकी काल्पनिक भींतपर ही जो भासते हैं, छोड़ दे तो तुझे शान्ति हो जायगी।

भैया! घरमें यदि कोई बीमार हो जाय, जिसके बचनेमें संदेह हो, तो उसके परिवारका इष्ट पुरुष कितना विह्वल रहता है। वैद्य आता है तो उससे पूछता कि सच तो बता दो कि यह बचेगा कि नहीं। कितनी विह्वलता है, इतनी विह्वलता तो उसकी मृत्युके बाद भी नहीं रहती। यदि बीमार मर जावे तो दुःख वियोगका तो जरूर है किन्तु अनिर्णयका अंधेरा नहीं है। उसे पूर्ववत् भीतरी अज्ञानकी आकुलता नहीं है। पहिले क्लेश डबल था। अब केवल वियोगका क्लेश है।

यदि कोई बीमार पुरुषके बारेमें उससे यह कह जावे कि बचनेकी कोई आशा नहीं है, हां हो सकता है कि भाग्य अच्छा हो तो बच जावे। ऐसा कहनेसे उस इष्टका दिमाग खराब हो जाता था और उसके हृदयमें अशांति फैल जाती थी। अब मर जानेपर भी अनिर्णयकी व्याकुलता तो नहीं है। अज्ञानमें होने वाली आकुलता बड़ी आकुलता है। मैं पुरुष हूं, मैं स्त्री हूं, इस प्रकारके विकल्पसे सही ज्ञान नहीं मिल सकता है। ऐसी अवस्थामें वह कितने ही धर्मके नामपर काम कर डाले, तपस्या कर डाले, उपवास कर डाले, पर अहंकार भरे हुए हैं कि मैं शुद्ध हूं, मैं तपस्याका काम करता हूं, मुझे मोक्ष जाना है। तो विकल्पोंसे तो काम नहीं हो जाता। जिसका कोई आग्रह नहीं होगा वह ही निर्वाणका पात्र है। मुझे

अपने आपमें विश्वास करना चाहिए कि मैं सब जीवोंकी भाँति चैतन्यस्वरूप लिए हुए हूँ। उसका कोई नाम नहीं, आकार नहीं, रूप नहीं, मैं तो केवल भावात्मक चीज हूँ, ज्ञानानन्द घन हूँ। यदि ऐसी ही बात होवे तो मैं निर्वाणका पात्र हूँ, सम्यक्त्वका पात्र हूं। सम्यक्त्व मेरेसे कहीं बाहर नहीं है।

जैसे नदी या सागरके तटपर पहुंचने पर फिर नदी या सागर दूर नहीं। वैसे ही सम्यक्त्व भी मोक्षका एक तट है, उस तट पर पहुंचने पर मोक्ष दूर नहीं। हाँ कोई विरला ही आत्मा आन्तरिक तपस्यासे खिसक जाय ऐसी अवस्थामें निर्वाण कुछ दूर-सा रह जाता है पर अधिक दूर नहीं रह जाता है और अगर अधिक दूर नहीं रह जाता है तो मोक्षका मार्ग भी ज्यादासे ज्यादा निकट समझिये। यदि सम्यक्त्व बना रहे तो मार्ग अत्यन्त निकट है। सम्यक्त्वमें सही ज्ञान है और सही ज्ञानमें ही उजेला है। वही बना रहे तो निर्वाणका सुख अभीसे है। निर्वाण सुखका ही एक रूप तो आत्मानुभव है।

जैसे आजकल लोग प्रायः मसालेकी लकड़ीसे रसीला पानी पीते हैं। भरा हुआ गिलास लोग पीते हैं। उस भरे हुए गिलासमें एक रस है। गिलासमें रस भरा हुआ होता है वही तो एक संतान हो लकड़ी द्वारा मुंहमें जाता है। यद्यपि गिलासमें सर्वांगसमृद्ध रस है और मुंहमें अंश जाता है, फिर भी वह आंशिक अंश व गिलासका रस एकरूप हो रहा है। तो देखो वह एक निर्वाणका सुख है। वह यद्यपि लबालब आनन्दसागर कुछ आगे है, मगर सम्यक्त्वके प्रभावमें उस आनन्दका स्वाद लिया जा रहा है, उसका ही आनन्द लिया जा रहा है। उसके लिये निर्वाण दूर नहीं है। सम्यक्त्वमें हो आकुलताएँ व्याकुलताएँ नहीं हो पाती हैं, और सम्यक्त्व भी निर्वाणका एक रूप है। मैं एक भावात्मक वस्तु हूँ। स्थानका नाम ही निर्वाण हो सो नहीं है। जहाँ भगवान स्वयं विराजमान है वहीं अनन्त निगोद हैं किन्तु निगोदिया जीव वहाँ जैसे ही निगोदियोंकी तरह हैं और भगवान अनन्त आनन्द लिये हुए हैं। यह जीव भी भगवानके स्वरूपके ही समान है। जो अपनेको इस सहज स्वरूपमें नहीं समझता है वह जन्म-मरणके चक्रमें पड़ा रहता है। आत्मा जैसे आकारमें है, जिस क्षेत्रमें है उस स्वरूपसर्वांगमें अनन्त आनन्द भरा हुआ है। परन्तु जो आत्मा अपने आपपर विश्वास करता है, अपने आपपर दृष्टि करता है, वह अनन्त आनन्द अपनेमें भरे हुए है इससे उसे शंका नहीं होती। इस अपने अनन्त आनन्दस्वभावी आत्मा भगवानपर विश्वास करता हुआ, अपने आत्माको देखता हुआ चलूँ तो जीवनका प्रत्येक क्षण आनन्दसे पूर्ण होता चला जायगा।

मैं एक ज्ञानानन्द पदार्थ हूँ, सत् हूँ, अपने स्वरूपमें हूँ, परके स्वरूपमें नहीं हूँ, मैं अपने ही द्रव्यसे हूँ और अपने ही क्षेत्रसे हूँ। भैया! प्रत्येक सत्में ४ चीजें पायी जाती हैं—१–द्रव्य,

२—क्षेत्र, ३—काल, ४—भाव। जैसे यह चौकी है तो यह एक वस्तु हुई। जितनी लम्बी चौड़ी तथा मोटी है, यह उसका क्षेत्र हुआ। और काली है कि पीली है अथवा यह चौकी कब तक रहेगी यह हुआ काल, जो उसमें सर्व शक्तियाँ हैं, योग्यतायें है वे हुए सर्वभाव। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव बने बिना कोई सत् नहीं हुआ करता है। कोई सत् है तो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावको लिए हुए है। चाहे वह मूर्त पदार्थ हो चाहे अमूर्त; प्रत्येक पदार्थमें द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका चतुष्टय अवश्य होता है। आत्माको देखो कि मैं आत्मा गुण पर्याययुक्त होनेसे द्रव्य रूप हूँ तथा क्षेत्र, काल और भावको लिए हुए हूँ, जो गुण पर्याय है उसका मैं पिंड हूँ, मेरेमें विकार नहीं, विकल्प नहीं। देखो गुण पर्यायका पिंड आत्मा है। यह सब ज्ञान द्वारा यों बतलाओ जा सकेगा जैसे पुद्गल पिंडको उठाकर बता देते है। ज्ञानसे उसका प्रतिसमय कोई न कोई परिणमन है वह ही समझमें आता है कि इसमें जो त्रैकालिक शक्ति है वह गुण है, पर्याय है उसको देखकर कहा जा सकता है कि यह आत्मा एक सत् है। इसमें अन्य द्रव्योंकी भाँति द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव हैं। जैसे एक धोती है तो वह एक पदार्थ है, उसको फना दिया जाय तो व्यक्तरूपसे क्षेत्र है और उसका काला, पीला इत्यादि जो रंग है वह काल है। उसमें जो शक्ति है वह भाव है। इसी तरहसे यह आत्मा एक द्रव्य है। इसमें गुणका प्रसार है, फैलाव है, यही इसका क्षेत्र हुआ। इस आत्माका क्षेत्र आकाशके किसी क्षेत्रके बराबर नहीं, बल्कि अपने आपमें जितना फैला हुआ है उतना ही उसका क्षेत्र है। भावदृष्टिसे जितना मेरा ज्ञान है उतना ही मेरा क्षेत्र है। यदि मैं २-४ कोसकी दूरी तक जानता हूँ तो २-४ कोसका क्षेत्र है और यदि हजारो कोसकी दूरी तक जानता हू तो हजारों कोसका क्षेत्र है। और यदि विश्वके विषयमे जानता हूं तो विश्वके बराबर क्षेत्र है। प्रदेशतः जितनेमे यह मैं द्रव्य विस्तृत हू उतना निजी असख्यात प्रदेश मेरा क्षेत्र है।

हमारा स्वरूप दुःख रूप नही, क्लेश रूप नही, वे सब केवल हमारे विभाव परिणाम है। इन परिणामोसे ही दुःख होते है। यदि हम खोटे परिणाम न करें तो क्लेश नही हो सकते है। ऐसी खराब भावनाए हो जानेसे हम विकास नही कर पाते। यदि हम विभाव न करें तो भी हम परिणमते तो प्रतिसमय ही हैं, जैसे कि प्रत्येक वस्तु प्रतिसमय परिणमता रहता है, इस परिणामको व इसके आधारको जो नही मानता है उनका परिणमन भिन्न भिन्न रूपोमे रहता है। भैया! इस ज्ञानानन्द भावमात्रको तो देखो। यह देखनेके योग्य है इसमें कोई विकार नही है।

केवल यह आत्मा स्वरूपसत् मात्र है, इस जगतमें जितने भी पदार्थ है वे सब द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावको लिए हुए हैं। इस भावस्वरूप चैतन्यका जो ज्ञान करे वह सम्यक्त्व के निकट है, बात कठिन पड़ रही है मगर वस्तुकी यह खास तत्वकी चीज है।

जितने भी दर्शन बने, जितने भी वेदान्त, सांख्य, बौद्ध, इत्यादि सिद्धान्त बने, सबकी बुद्धि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें से ही विद्यमान है। यह बात अन्य है कि किसी सिद्धान्त ने एकका ग्रहण किया किसी ने दो का। चारोंका ग्रहण करनेमें वस्तु पूर्ण आ जाती है। अहो, यह मैं आत्मा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे परिपूर्ण अपने सत्‌मात्र हूं। अपने ही द्रव्य में मैं सत् हूं। प्रत्येक द्रव्य अपनेमें ही सत्‌रूप होते हैं। अन्य द्रव्यकी अपेक्षा सत्त्व इस आत्मामें नहीं होता है।

यह कमण्डल, यह दरी कोई भी पदार्थ हो, सब अपना-अपना अलग-अलग सत्त्व रखते हैं। ये व्यवहारमें पदार्थ माने जाते हैं, परमार्थसे तो ये पदार्थ नहीं हैं, ये तो पदार्थोंके समूह हैं। कभी-कभी इस प्रकारकी दृष्टि बन जाती है कि कोई सर्व पदार्थोंको मिलाकर अपनेको एक सत् मानते हैं। यदि वे स्वतन्त्र सत् नहीं मानते हैं तो एकान्त अद्वैतवाद आ गया। पर द्रव्योंको सत् रूप न देना ही एकान्त अद्वैतवाद है। मैं तो अपने ही क्षेत्रमें सत् हूँ, परके क्षेत्रमें सत् नहीं हूं, ऐसे ही सब अपने अपने ही क्षेत्रमें सत् है। ऐसा मान लूँ तो मेरेमें आकुलतायें व्याकुलतायें नहीं आवेंगी। और यदि इसके विरुद्ध अपनेको मान लिया तो अनेक प्रकारकी आकुलतायें व्याकुलतायें आ जावेंगी। इस तरहसे मैं अपनेको ज्ञानानन्द, चैतन्यस्वरूप निरखूं। और यदि किसीने अपनेको निरखा कि मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूं, मैं साधु हूँ, मैं अन्य कोई हूं तो उसका निर्वाण नहीं होता, वह दुःखके बन्धनमें ही फंस जाता है। मेरी दृष्टि बाहर नहीं होना चाहिए। मुझे यह समझना चाहिए कि मैं सबसे निराला, चैतन्यस्वभावमय पदार्थ हूं, मेरेमें वर्ण नहीं, जातियाँ नहीं। मैं तो सबसे जुदा हूं, ऐसा ही मुझे अपनेको निरखना चाहिए। मैं स्त्री स्वरूप नहीं हूं, मैं पुरुष स्वरूप नहीं हूं, मैं किसी अन्य रूप नहीं हूँ, मैं एक चैतन्यमात्र वस्तु हूँ, इस प्रकारसे जो अंतरमें अपने आपको निरखता है वह शांतिका मार्ग प्राप्त कर सकता है।

जैसे कुछ लोग कहीं बाहर चले जा रहे हैं। मक्खियां सिरपर मंडरा रही हैं। शरीर में बराबर मक्खियाँ चोट मार रही हैं, यदि वे व्यक्ति किसी तालाबमें डुबकी लगा लेवें तो सारी मक्खियोंका प्रयास बेकार हो जाता है। वे मक्खियां उन पुरुषोंको कष्ट नहीं दे पाती हैं, वैसे ही इस जगत्के जीवपर अनेकों विकल्प विपदायें मंडरा रही हैं। यदि इस जगत्का यह प्राणी अपने ज्ञानसागरमें डूब जावे तो अनेक प्रकारके जो विकार हैं, वे उन्हें परेशान नहीं कर पावेंगे। ये जगत्के प्राणी यदि अपने ज्ञानसागरमें डूब जावें तो उनके विकल्प समाप्त हो जावेंगे। और वे मोक्षके मार्गको प्राप्त करेंगे। मैं केवल ज्ञानमात्र हूँ, मेरेमें अन्य अन्य रूप नहीं हैं, मैं चैतन्यरूप हूं। ऐसा मुझे अपने आपको मानना है। इसमें ही मेरी

सर्वार्थसिद्धि है।

कल्पना यत्र भासंते सोऽहं नास्थिरकल्पनाः।
श्रद्धामृतं पिबानीदं स्वो स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५॥

जहां कल्पनाएं प्रतिभासित होती हैं वह तो मैं हूं, किन्तु ये अस्थिर कल्पनाएं मैं नहीं हूं। इस श्रद्धामय अमृतको पीऊं और मैं अपनेमें अपने लिए स्वयं सुखी होऊं। इस जगतके प्राणियोंकी कल्पनामात्रसे ही क्लेश होते हैं। जो कुछ वे कल्पनायें बना लेते हैं, वही सत्य दीखती हैं। पर वे सत्य नहीं होती हैं। उन कल्पनाओंसे उन्हें क्लेश होते हैं। जैसे सोते हुए व्यक्तिको स्वप्नमें सब बातें सही दिखती हैं वह उस स्वप्नमें आनन्दमग्न हो जाता है, परंतु ये सब बातें सही नहीं होती हैं। जैसे सिनेमाके पर्देमें चित्र उछलता है पर्दा नहीं उछलता है। पर्दाका स्वरूप चित्र नहीं हो जाता है। पर्दा तो वही है जिसपर चित्र उछल गए। अपनेमें यह भावना बनाओ कि मैं चैतन्यमात्र हूं, मेरेमें सुख दुःख नहीं हैं, सुख दुःख आदि विकार मुझमें उछल जाते हैं, पर मैं तो चैतन्य शक्तिमात्र आत्मतत्त्व हूं। मैं सबसे निराला हूं मेरेमें मोह नहीं हैं। मैं तो अविनाशीतत्त्व हूं, मिटने वाला नहीं हूं, ऐसी श्रद्धा हे आत्मन् तू अपने आपमें बना।

हे आत्मन्, यदि तू अपने आपको सबसे निराला, शुद्ध, अविनाशी समझे तो तुझे अविनाशी सुख प्राप्त होंगे, तेरेमें कभी आकुलतायें व्याकुलतायें नहीं आवेंगी और यदि तूने अपने आपको इसके विपरीत समझा, मैं तो संसारके समस्त प्राणियोंसे मिला हुआ हूं, यह मेरी माँ है, यह मेरा भाई है, यह मेरी बुवा है, यह मेरे फूफा हैं, ऐसी श्रद्धामें तो उस को तो कष्ट ही रहेगा, मैं तो जैसा हूँ वैसा ही सदा बना रहने वाला मैं हूं। अन्य अन्य रूपों में नहीं हूं यदि तू अपने को अन्य रूपोंमें मानेगा तो तुझे क्लेश प्राप्त होंगे और यदि अपने को भगवान जैसा स्वभावरूपमें मानकर अपनेमें ही रम गया तो तुझमें आकुलतायें व्याकुलतायें नहीं आवेंगी।

मैं ज्ञानमात्र हूं, सबसे निराला हूं, ऐसा अपने आपको निरखो। तू अपनेको भगवत्स्वरूप मान, इस तेरेमें तो कोई विकार ही नहीं दीखते हैं। तू तो निर्विकार है तेरेमें दुःख कहां हैं। तू तो सदा सुखी है। दुःखोंका रंच भी तेरेमें नहीं है। तू अपनेको शुद्ध चैतन्यमात्र समझ, अपने आपको भगवान स्वरूप मानकर अपनी ही अन्तर आत्मामें रम और अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होओ।

देखो भैया! जो आत्मा है वह स्थिर व एक स्वरूप है उसमें जो अस्थिर व अनेक स्वरूप भाव झलकते हैं वे औपाधिक हैं, वे कल्पनायें मैं नहीं हूं। किन्तु जिस पदार्थमें कल्प-

नायें प्रतिभासित होती हैं वह मैं हूं। जैसे फिल्मका चित्र सिनेमाका पर्दा नहीं है किन्तु जिसपर चित्र झलकते हैं वह पर्दा है। यह मात्र लौकिक दृष्टान्त है। मैं निजकी समस्त पर्यायोंका स्रोत हूं किन्तु किसी पर्यायमात्र मैं नहीं हूं। जो पर्यायमात्र अपना अनुभव करे वह परसमय अर्थात् मिथ्यादृष्टि है। इसीका अपरनाम पर्यायबुद्धि है और जो चैतन्यात्मक स्वस्वभावमय अपने को अनुभव करे वह स्वसमय अर्थात् सम्यग्दृष्टि है। अपने सहज स्वरूप की अपनी श्रद्धा करना सो परमार्थ अमृतका पान करना है, इस अमृतपानसे आत्मा अमर अनुपम आनन्दमय हो जाता है, आनन्द तो यहीं इस आत्मामें है, सो मैं अपनेको सहज चैतन्यस्वरूप मात्र निरखकर निर्विकल्प हो अपनेमें आप सुखी होऊं।

भैया! परकी अनुरक्तिमें परसे कुछ मिलता ही नहीं है और कभी भी कुछ मिल ही नहीं सकता है प्रत्युत हानि ही हानि है विकल्प और संक्लेशोंके संतापमें भुनना पड़ता है। गहराईसे विचार करो तो ये कल्पनायें न तो आत्माका तत्त्व है और न उपाधिका (प्रकृतिका) तत्त्व है। ये कल्पनायें अध्रुव हैं, आत्माके स्वभावरूप नहीं है अतः आत्माके (पुरुषके) तत्त्व नहीं और कल्पनायें जड़ उपाधिके परिणमन हो नहीं अतः उपाधिके तत्त्व नहीं। इसी कारण कल्पनाओंको मायाजाल कहते है। कल्पनाओंको जिन्होंने आत्मरूपसे नहीं स्वीकारा, बल्कि कल्पनाओंसे पृथक् ज्ञायकस्वभावमात्र मैं अपनेमें हूं इस श्रद्धामृतका पान किया वे अमर होते हैं, स्वरूपमय हैं, अपनेमें अपने द्वारा अपने आप सुखका अनुभव करते हैं।

भिन्नदर्शी भवेद्भिन्नः संकरेषी च संकरः।
तत्त्वतः सर्वतः प्रत्यक् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६॥

हे आत्मन्, तुझे जगत्से न्यारा बनना है या जगत्से मिला हुआ रहना है। पहले तो इसका निर्णय कर, जगतसे न्यारा रहनेकी स्थिति कैसी होगी तो देखो वहाँ न कुटुम्ब है, न शरीर है, न क्रोध है, न मान है, न माया है, न मोह है, न कषाय है, न इच्छा है, न व्याकुलता है, न आकुलता है, केवल ज्ञानमात्र निराकुल, शांत, तेरी स्थिति होगी। यदि जगत् से मिला हुआ रहना है तो उसमें स्थिति कैसे होगी? कुटुम्ब, परिवार, मित्रजन, समागम, प्रशंसा, निन्दा, कभी बड़ा बन जाय, कभी छोटा बन जाय और फिर मरकर मनुष्य हो सकता है और यदि मनुष्य न हो पाया तो कहीं नरक हो जाय, कहीं तिर्यंच हो जाय, कहीं कुछ हो जाय, कहीं निगोद हो जाय, कीड़ा, मकोड़ा बन जाय, उसका कोई भरोसा नहीं कि वह क्या न बन जावे, निम्न शरीर मिला तो कुछ सोचने समझनेकी शक्ति नहीं मिलती है, जगतसे मिला हुआ रहनेपर देखो भाई ऐसा हो जाता है।

अब तो निर्णय कर लो कि इस संसारसे न्यारा रहना है या जगत्से मिलकर रहना

है। यदि तुझे जगतसे भिन्न रहना है तो अपनेको जगतसे भिन्न देख और यदि अपनेको जगतमें मिला हुआ रखना है तो अपनेको जगतसे मिला हुआ देख। यदि जगतमे मिला हुआ रहता उसे संकर कहते हैं तो तू अपनेको जगतसे भिन्न रखनेका प्रयत्न कर। जगतसे भिन्न रखनेका एक सही उपाय यह है कि तू अपनेको जगतसे भिन्न देख। जो अपनेको जगतसे भिन्न देखता है वह भिन्न हो जाता है, और जो अपने को संकर याने जगतसे मिला हुआ मानता है वह संकर अर्थात् जगतसे मिला हुआ रहता है। भाई कल्याणका बड़ा सरल उपाय है। केवल अन्तरमें अपने आपको मानना है कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, निर्मल हूँ, जगतसे न्यारा हूँ। भाई अपने आपमें ऐसी दृष्टि बनाना कुछ कठिन है क्या? अरे यह तो अत्यन्त सरल है मगर अंतरंग संयम चाहिए। अपनी अतंरंग आत्माको संयत कर सके ऐसा ज्ञान चाहिए। देखो भैया! तू कमाने वाला है क्या? हजारों रुपयोंका मुनाफा मिलता तो वह तेरी करतून है क्या? कभी कभी बड़े बड़े सेठ लोगोंको देखा होगा कि उनके पास लाखों रुपयोंकी सपत्ति होती है और वे आयकी प्रत्येक मदोंमें जुतते भी नहीं है। बतलाओ कि उनके पास संपत्ति कैसे आ जाती है। पहिले वे शुद्ध मार्गके प्रेमी थे व अब वे धर्मका कार्य करते हैं, दान करते हैं तो उनके पास करोड़ोंका धन आ जाता है। उन्हें परिश्रम नहीं करना पड़ता है। और दूसरे वे लोग जो गरीब है, जो दूसरोंको गाली देते है, अधर्मका कार्य करते हैं, वे लोग बड़ा परिश्रम करते है फिर भी सपत्ति हाथमे नहीं आती है। धनका आना पुण्योदयपर निभर है। उन व्यक्तियोंको देखा होगा कि अचानक ही अपने धार्मिक सत्संगके पास चले जाते हैं। अपने घरद्वार की फिक्र नहीं करते है। फिर भी उनको लाखों रुपयोंकी आय हो जाती है। पुण्यहीन आसक्तजन दुकान पर बैठे ही रहें तो क्या इससे कमाई हो जायगी। नहीं हो जायगी। कमाई तो पुण्यसे होती है। अपना कर्तव्य समझकर अर्थ पुरुषार्थका उचित समय पर कार्य करें और धर्मका लक्ष्य करें तो ऐसी स्थितिमें पुण्यवृद्धि होती ही है, तो कमाई होती ही है, और वर्तमानमें भी पुण्य धर्मसे चलते हैं तो लम्बे समय तक सपत्ति साथ रहती है। लक्ष्मीकी चिंतामें अपनेको अधिक फंसानेकी जरूरत नहीं है। गृहस्थको तो यह देखनेको आवश्यकता है कि उसके भाग्यसे जो आता है उसके ही भीतर वह गुजारा बनाए। लो। इज्जत करते हैं तो इज्जत करनेके लिए उनके पास पोजीशन चाहिए और यदि पोजीशन नहीं मिलती है तो मनकी बात नहीं बनती है।

लोग इज्जत रखनेके लिए प्रयत्न करते हैं परन्तु इस यत्नसे उनकी इज्जत नहीं रहेगी। परिवर्तनशील संसारमें मोजीपन रखनेका ध्यान करना अविवेक है जिस किसी प्रकार से यदि धन वैभव आता है उस पर विश्वास करना चाहिए कि वह भाग्यके उदयके निमित्त

से प्राप्त होता है। अत: जो कुछ भाग्यवश प्राप्त हो जावे उसपर ही गुजारा करना चाहिए। जो निरहंसे जो रहे और अपने आत्मकल्याणकी ओर ध्यान रखे तो वह मजेमें रहेगा। हम कुछ दिनके लिए यहां हैं, सदा नहीं रहेंगे। अचानक ही चले जाएंगे। यहांके लोगोको क्या अपना मानें। अपना पूरा कैसे पड़े तथा आनन्द कैसे अपनेमें भरे इसकी फिक्र तू कर तो तेरा भला होगा। यदि तू अपनेको जगतसे न्यारा निरखे, शरीरसे, कषायोंसे न्यारा रक्खे और केवलज्ञान और आनन्दको ही प्राप्त करने की दृष्टि रखे तो तेरा भला होगा। दूसरोंसे मुहब्बत जोड़ जोड़ कर तू कब तक गुजारा करेगा? यदि तूने इस प्रकारसे अपना गुजारा भी किया तो यह मोह है। जिन लटोरों खचोड़ोंको तू अपना मान रहा है वे अपने नहीं हैं और देखो मोहका महात्म्य कि जिनसे मोह होता है वे निकृष्ट भी है तो भी अच्छे लगते हैं। उनमें कुछ ज्ञान नही है, उनमें दुर्गुण हैं, वे सब स्वार्थी हैं, गर्जी हैं, उनसे अपना कल्याण नही है, फिर भी उनमें मोह है, उनको आकुलता होना निश्चित है, जिनकी दृष्टि परमें ही होती है उनसे तेरा क्या पूरा पड़ेगा। अरे! उन भटकने वालोंसे अपना सम्बन्ध न स्थापित करो। उनसे तुम्हे कुछ नहीं मिलेगा। तुझे संसारी हो रहना है तो तू नमार्ग ही अपनेको देख। यदि तू शंकर बने रहनेको चाहता है तो बाह्य पदार्थोंमे ही तू अपनी रुचि बना, तू अपनेको बाह्य पदार्थोंमे मिला जुला रख। यही तेरा संसारी बने रहनेका मुख्य उपाय है।

भैया! अगर अपने को जगतसे न्यारा रखना है तो तू अपनेको जगतसे न्यारा निरख आनन्द तो तेरेमें ही है। तुझे आनन्द कहीं बाहर से नही लाना है, तू अपनेको यह समझ कि मैं ज्ञानमात्र हूं, इसके आगे मैं और कुछ नही हूं, इस भावनासे ही तेरेमें तेरा सब कुछ आयगा, तू जगत के अन्य प्राणियोंसे भिन्न हो जायगा। मैं कोई ऐसी चीज मुट्ठीमें ले लूं और मुट्ठी बन्द करके कहूं कि इसमें क्या है? इस बातको मैं फिर बताऊँगा कि इसमें क्या है? मैं पूछूंगा कि मेरी मुट्ठीमें क्या है? मैं यह उत्तर देता हूं कि मेरी मुट्ठीमें सब कुछ है। चौकी है, ताला है, चाबी है, बाल्टी है इत्यादि। लोग यदि कहें कि दिखलावो तो मैं दिखलाऊँगा। हाथमें कौनसी चीज निकली? स्याहीकी टिकिया। अरे उस स्याहीकी टिकियामें ही सब कुछ है। क्या है? वह बिल्डिंग है, बाल्टी है, समुद्र है, चौकी है, सब कुछ है। उस स्याही की टिकियाको पानीमें घोल लिया, फिर उस स्याहीसे बिल्डिंग बना ली, बाल्टी बना ली, समुद्र बना लिया इत्यादि। यह देखो एक स्याहीकी टिकियासे ही तीन लोककी रचना कर दी। बतावो ये सब कहांसे आए? अरे ये सब स्याहीसे ही आए। अत: मेरे हाथमे वह चीज है कि इसमें सब कुछ है। यह एक विनोदकी बात है, मेरे हाथमें सब कुछ है। यहां

प्रकृत बात पर आइए।

मेरेमें क्या है ? मेरेमें सब कुछ है। मेरेमें ज्ञान है, वह ज्ञान ही सब कुछ है। ज्ञान की विचित्र कलासे ही देखो—यहाँ राग है, मोह है, शोक है, ज्ञानका अंधेरा है, ज्ञानका उजेला है, ये सब ज्ञानके ऊपर ही निर्भर है। बड़ी-बड़ी विपदाओंके सामने यदि ज्ञानसे काम लें तो विपदायें दूर हो सकती है। ज्ञानके बिना आकुलतायें व्याकुलतायें दूर नहीं होती हैं। कल्पनायें करके ही विपदा बना ली जाती है। देखो कोई एक नौजवान लड़का है। अभी अभी चार-छः वर्ष शादीके हुए है दोनोंमें परस्पर प्रीति है। एक दूसरेका जीवन आनन्दसे व्यतीत हो रहे हैं याने दोनो ही एक दूसरेके इष्ट बन हैं और यदि स्त्री किसी कारणसे गुजर जाती है तो स्त्रीके पीछे उस पुरुषको कितना क्लेश होगा ? वह पुरुष यह समझ लेगा कि हाय मेरे लिए सब कोई मर गया। इस प्रकारसे वह व्यक्ति २४ घंटे दुखी होता रहता है।

यदि वह व्यक्ति अपना ज्ञान बनावे अथवा उस व्यक्तिका ज्ञान बन जाय कि अरे ये स्त्री पुत्र वगैरह मेरे कहीं कुछ नहीं है, यह सब माया है, ये सब अपना-अपना अलग अलग अस्तित्व रखते है, उनसे मेरा परमाणु मात्र भी सम्बन्ध नहीं है, ऐसा यदि यथार्थ ज्ञान जग जाय तो उसकी विपदाए समाप्त हो जावें। बाकी अन्य उपायोंसे विपदाए समाप्त नहीं हो सकती हैं। चाहे दूसरी शादीको बात चलने लगे धन दौलत मिल जाय, जेवर गहना मिल जाय, सारी चीजें मिल जावें, मगर जो इष्ट उसके दिलमे बस गया है उसकी कल्पना उसे दुःख देती रहती है। उसका केवल ज्ञान जग जाय तो सारी विपदाएं समाप्त हो जावेंगी व्यापारमें भी ऐसा ही होता है, कोई समय ऐसा आवे कि चारों तरफसे नुक्सान हो जावे, तो चारों तरफसे नुक्सान होने पर उस व्यापारीको दुःख हो जाता है कि हाय मैंने कितनी कमाई की, सब चला गया, नुकसान हो गया। अरे व्याकुल होनेसे क्या धन वापस लौट आयगा। क्या उस नुक्सान होने वाले धनको कोई वापस कर जायगा। अरे नहीं कोई बन्धु वापस नहीं दे जायगा। उल्टे लोग तो उसे लूटनेकी सोचते है और सोचेंगे।

दुःख दूर करनेका उपाय तो यह ज्ञान ही है जिस ज्ञानसे यह जाना कि धन तो भिन्न चीज है। तू उस धनकी चिंता न कर, अरे तुझे तुझमें बाहर कोई शरण नहीं मिलेगी, तू व्यर्थमें शोक मत कर, तू व्यर्थमे मत घबड़ा, तेरे शोक करनेसे तुझे लाभ नहीं मिलेगा, तुझे तो केवल तेरे ज्ञानसे लाभ मिल सकता है। ज्ञानको छोड़कर अन्य किसी चीजसे लाभ नहीं प्राप्त होता है। अरे मुझे पार कौन कर देगा ? जिस भगवानकी हम उपासना करते हैं क्या वह हमें पार कर देगा। भगवानकी उपासना करके अपने स्वरूपकी पहिचानो अपने आपके स्वरूपको निर्मल बनाओ तो यह निज भगवान तुम्हे पार कर देगा और तुम पार हो जावोगे।

भैया ! हमारे आचार्योंने हम लोगोंको करुणा करके समझाया है कि तू तो पवित्र ज्ञान-मय है, तेरेमें तो कोई क्लेश हैं ही नहीं, तू तो सर्वोत्कृष्ट है, दुःखी क्यों हो रहा है ? अरे इन बाहरी पदार्थोंमें जिनमें तू दृष्टि डालता है वे सब असार हैं, अहित करने वाले हैं, भिन्न हैं। इसलिए जब कभी परमें दृष्टि होगी तब क्लेश होंगे। वे परपदार्थ तेरे लिए शांतिके कारण नही होंगे। तू उनके लिये क्यों मरता है ? अपने स्वरूपको तो देखो। तू तो परमार्थ स्वरूप है। अपने आपको देख तो प्रभु हो जायगा। भैया ! बतलाओ तो जरा कि अपने आपको जगतमें सब पदार्थोंसे निराला मान लेनेमे क्या बिगाड हो जायगा ? अपनेको सबसे निराला मान ले तो तेरे सभी दुःख समाप्त हो जायेंगे। ठीक-ठीक ज्ञान कर ले तो सारे दुःख दूर हो जावेंगे। यदि इसके विपरीत तूने अपनेमें आपका ज्ञान न किया, भीतरमे ज्ञानका अंधेरा ही रहा तो आजीवन तुझे क्लेश ही रहेंगे और तू जगजालमें फंसा रहेगा। तू अपनेको निर्मल देख, अपनेमें ज्ञान उत्पन्न कर ज्ञानमात्र आत्मस्वरूपके लक्ष्यमें हमें अविनश्वर आनंद मिलेगा।

भगवानकी वाणी एक आध घन्टे पढ़ लिया, सुन लिया और बाकी समय मोहियोंके संगमे रहते हैं तो फिर वे ही सोचें कि अपनेको कैसे सम्हाला जायगा। उनको तो वे मोही प्राणी ही रुचते हैं। उनके लिए वे ही सब कुछ हैं। भयानक विपत्तियां उन मोहियोंसे मिलती है फिर भी वे उन्ही मोही प्राणियोंके पास दौड़ते हैं। और जिनसे अपना उद्धार होगा उनको पहिचानते भी नही है। जो अपनेको शुद्ध आत्मतत्त्वरूप देखेगा वह शुद्ध बन जायगा। मैं मनुष्य हूं, मैं अमुकचन्द हूं, मैं फलां हूं, ऐसी दृष्टि अगर बन गयी तो क्रोध, मान, माया, मोह इत्यादि हो बढ जावेंगे और अहंकार भीतर आ ही जायगा। इस प्रकारसे मैं अशुद्ध बन जाऊँगा। हे आत्मन् ! तेरे ऊपर कूड़ा लदा है। तू इस कूड़ेकी फिक्र मत कर। तू अपनेमे विद्य-मान ज्ञानके उजेलेको सम्हाल, अपनेको देख कि मैं सबसे निराला ज्ञानमात्र हूं। तू अपनेको यदि ज्ञानमय देखेगा तो तेरे सारे क्लेश, सारी विपदायें, सारे कूड़े खत्म हो जायेंगे। तू अन्य की चिंता न कर। तू तो अपने भीतरको शुद्ध देखनेका पुरुषार्थ कर।

भैया ! जो अपनेको शुद्ध देखता है वह शुद्ध हो जाता है और जो अपनेको अशुद्ध देखता है वह अशुद्ध हो जाता है। बहुत सी चीजें मिल जायें फिर भी किसी जीवमें किसी दूसरी चीजका प्रवेश नही। एक बोरेमे गेहूं, चना, मटर इत्यादि मिल गये हैं फिर भी वे सब सबसे न्यारे हैं। समुदायोंको देखकर कहते हैं कि मिल गए है, पर उनके स्वरूपको देखें तो सब न्यारे हैं। और भी चीजें देखें जैसे कि दूध और पानी मिल गया हो तो समुदायमें कहते हैं कि दूध और पानी मिल गया, पर दूध अलग है और पानी अलग है। दूधमें दूध है और पानीमें पानी है। अब भी दूधमें पानी नही मिला और न पानीमें दूध मिला। सब

न्यारा-न्यारा है। यद्यपि यहाँ जीव शरीरसे न्यारा नहीं रहता है, क्योंकि यदि तुम चाहो कि शरीर कि यहीं रहे और मेरा आत्मा किसीके पास पहुंच जाय तो आत्मा शरीर छोड़कर आगे वहीं पहुंच जायगा। तो भी शरीरमें शरीर है और आत्मामें आत्मा है। इस विज्ञानको जानना अधिक कठिन नहीं है। केवल भेदज्ञानका यंत्र चाहिये, पता चल जावेगा। जैसे दूध और पानीको अलग-अलग समझनेका यंत्र होता है, यंत्रोंके द्वारा दूध और पानीको अलग-अलग समझ लिया जाता है। इसी तरह मिले हुये शरीर और आत्माको, आत्मा और शरीरको पृथक् निज-निज स्वरूपमें समझनेका यंत्र चाहिये। वह है क्या? प्रज्ञा स्वरूपकी दृष्टि और स्वलक्षणदृष्टि।

भैया! इन्द्रिय संयत कर लो। इन्हींकी उद्दण्डतासे बरबादी होती है इन्द्रियको संयत करके अपनी अन्तर आत्मामें चला जा, अपने आपका ध्यान कर, ऐसा निर्विकल्प ध्यान कि इस शरीरका भी ध्यान न रहे, इन इन्द्रियोंको भी ध्यान न रहे तो अनुपम सुख प्राप्त होगा। तू इन्द्रियोंको निःसंकोच उपयोगसे त्याग दे। किसी भी इन्द्रियका रंच भी कार्य न रहे तो तुझे तो तेरा स्वलक्षण साक्षात् ज्ञात हो जायगा कि जो केवल ज्ञानका वर्णन है वहीं तो तेरे स्वरूपका वर्णन है। तू अपने स्वरूपको पहिचान ले तो तू प्रभु हो सकता है। जिन्होंने जगत भिन्न अपनेको देखा है वे जगतसे भिन्न होकर भिन्न ही चलते रहेंगे। और जो अपनेको मिला हुआ देखता है कि मैं अमुक हूं, मैं साधु हूं, मैं ऐसा बलिष्ठ हूं, यह गृहस्थ है, यह साधु है, यह मनुष्य है, घरमें रहता है, श्रावक है इत्यादि, तो वह इस जगतसे मिला हुआ ही बन रहेगा। और आजीवन ही उसको क्लेश रहेगा। जो व्यक्ति अपनेको सबसे मिला हुआ समझता है व सबसे बोलता-चालता है, देखता सुनता है, सबसे सावधानीसे मिलता है, पर आत्मकल्याणकी फिक्र नहीं करता है, वह इसी कारण जीवनभर दुःखी रहता है। अगर भीतर के सत्में स्वयं निरखें कि मैं तो सबसे निराला केवल ज्ञानमात्र, शुद्ध हूं तो इससे यह दृष्टि, वह चिनगारी है जो कि विपदाओंके कर्मोंके पहाड़ोंके पहाड़ोंको जला सकती है। यह एक छोटी दृष्टि, सूक्ष्म दृष्टि है, मगर वह इतनी चमत्कारिणी है कि वह सारे पहाड़ोंको भस्म कर सकती है। यदि इतनी अपनी बातको सम्हाल लिया कि मैं जगतसे निराला ज्ञानमात्र, अपनी स्वरूप सत्तामात्र त्रैकालिक शक्तिको लिए हूं तो हे प्रियतम तू प्रभु बन जायगा।

देखो एक शब्दकी बात, पतिके कितने नाम हैं—प्रियतम बोलते हैं, सनम बोलते हैं, बालम बोलते हैं, सैंया बोलते हैं, पिया भी बोलते हैं। ये सब क्या है? ये सब आत्माके नाम हैं। पिया वह कहलाता है जो प्रिय है। मगर यह बताओ कि तुम्हारा पिया कौन है? अरे! तुम्हारा पिया तुम्हीं हो। मगर जान पर कोई आफत आ जाय तो यदि हाथमें खड़ा।

हो जो आत्मतिभ्रमामें कभीके लिए लड़केसे भी मोह छोड़ देगा। इसीलिए तेरा प्रिय दूसरा नहीं है तुम्हारा प्रिय (पिया) तुम ही आत्मा हो। पीतम शब्द बना है प्रियतम शब्दसे यानि जो सबसे अधिक प्रिय हो। जैसे—गुड, बैटर, बैस्ट (अच्छा, अधिक अच्छा, सबसे अच्छा) रूप बनते हैं अंग्रेजीमें, वैसे ही प्रिय, प्रियतर, प्रियतम हैं। 'प्रियतम' शब्दके मायने हैं जो सबसे अधिक प्रिय हो। तेरा प्रीतम कौन है? तेरा प्रीतम आत्मा है। आत्माको छोड़कर अन्य कोई तेरा प्रिय अधिक नहीं है। कितने ही तो धर्मकी खातिर सब कुछ छोड़ देते है।

सीताजी अग्निपरीक्षामें उत्तीर्ण हो गयीं। जब वे अग्निमें कूद रही थीं तब क्या ऐसा विचार हो सकता था कि हम बच जावें तो फिर घरमे आनन्दसे जावें, उनकी तो धर्ममें प्रीति थी। सब कुछ छोड़कर एक आत्मधर्ममें रुचि थी। हमारा घर छूटा जा रहा है इस विकल्पकी तो सम्भावना भी नहीं थी। उनके लिए धर्म ही प्रिय था। वह सोचती थीं कि यदि मर जाऊँगी तो धर्मसे ही रहूंगी। धर्मके मायने है स्वभावरमण, सही स्वरूपको जानने व उसमें रमनेका नाम ही धर्म है। प्रीतम तुम्हारा कोई नहीं है। तुम्हारी आत्मा ही तुम्हारा प्रीतम है। आत्माको वल्लभ बोलते हैं। वल्लभका अर्थ प्रिय है। सैंया बना है स्वामीसे। अब यह बतलाओ कि तेरी आत्माका स्वामी है कौन? तेरा स्वामी तो तू ही है, तेरा सैंया तो तू ही है।

देखो भगवानकी भक्तिसे भगवानके सब विशेषण लगते हैं। हे भगवान, हे प्रियतम, हे प्रिय, हे सैंया आदि। तो भजनमें भी इन्हीं शब्दोंको कहकर भगवानके गुण गाया करते है। भगवान और आत्मामें भेद क्या है? स्वभावको देखो कुछ भी भेद नहीं। तो यह आत्मा ही तुम्हारा प्रीतम है, तुम्हारा सैंया है, तुम्हारा प्रिय है तुम्हारा प्रियतम है तुम्हारा सर्वस्व है। और हे आत्मन्! इस दुनियामें तेरा कुछ नही है। सबसे निराला अपने आपको देखो। यदि सबसे निराला इस जगतमें तू अपने आपको नहीं देखता है तो इस संसारमें तू रुलेगा।

अब देखो जिसकी कल्याणमें लगन लगी है उसको दूसरी चीज सुहाती नहीं। हे आत्मन् तुझे तो कल्याण चाहिए। तेरा काल्पनिक लौकिक वैभव चाहे लुटता हो, परवाह न करनी चाहिए। ज्ञानकी बातको ज्ञानी ही समझ सकता है और अज्ञानी ज्ञानकी बातोंको नहीं समझ सकता है। ज्ञानी व्यक्ति मोही व्यक्तिको भी परख सकता है पर मोही तथा अज्ञानी व्यक्ति मोहीको भी नही परख सकते हैं और ज्ञानीको तो परखेंगे ही क्या? दशलक्षणीके ये दिन आए हैं। जैसे कोई तो पर्वको घरसे निकलता है फिर पर्वके बाद घर जाता है किन्तु हमको तो सभी दिन पर्वके दिन हैं। ये सिखा रहे हैं आपको कि परवाह न करो, घर का जो होना हो जायगा उसकी चिन्ता न करो। अगर तुम चिन्ता न करोगे तो क्या

तुम्हारे घर काम नहीं चलेगा ? चिन्ता न करो घरका काम तो चलेगा ही, जैसा होना होगा। चिन्ताएँ नहीं करनी चाहियें। चिन्ताएँ करनेसे नुकसान है। जीवको एक आत्म-कल्याणकी भावना रहे तो शांति प्राप्त हो सकती है।

सुकुमाल स्वामी मकानसे चले। जिसका शरीर ऐसा सुकुमार था कि भातमें आम मे पहुचने वाले चावल ही जिसके गलेसे निगले जा सकते थे, जिसको रोशनी देखकर आंसू आ जाते थे, ऐसे सुकुमार जब विरक्त हुए; घरसे चले, नंगे पैर चले जा रहे थे, खून बह रहा था। अब उनके लिए वैभव, वैभव नहीं रहा। वे साधु हो गए। ध्यानमें वे बैठ गए ऐसी सुकुमार अवस्था थी जब कि इन्होंने अपने शरीरको तपस्यामें लगा डाला था और अन्त मे उनको एक स्यारनीने खाया था। क्या उन्हें कष्ट था ? कोई कष्ट नहीं था। यदि कष्ट मानते हो तो कष्ट है और यदि कष्ट न मानो तो कष्ट कहो नही है। अरे देखो रात दिन कितने गृहस्थीमें संकट सहते हैं, किन्तु कष्ट नही मालूम होते हैं पर धर्मके कामोंमें कष्ट मालूम होते हैं। जहाँ मन नहीं लगता है वहाँ कष्टोंका नाम लगता। धर्मका काम जहाँ पर हो रहा हो वहाँ बैठनेमे ही मोही आत्मा परेशान हो जाता है। जहाँ थोड़ा सा भी समय हो गया, कहते है कि अरे १ घन्टा हो गया, दो घन्टे हो गये। पौन घन्टेमें हो जाना चाहिए था, स्वाध्याय जल्दी खत्म हो जाय तो अच्छा है। यद्यपि गृहस्थीके कार्योंमें या अन्य सबके काममे वे आरामसे घुटने टेके बैठे रहे, कोई परेशानी नही है, कितनी ही अड़चनें हों फिर भी उनको परेशानी नही होती है. आत्महितमे प्रमाद किया जाता है।

भैया ! अन्दाज कर लो कि जिसका जिसके ऊपर मन रमा है, वहां चाहे जितने कष्ट हों, कष्ट नही है और जिसका मन जिस किसीमे नही रमता है, वहाँ यदि कष्ट भी नही हैं तो कष्ट कल्पनासे आ पडते है। कल्याणका उपाय सरल है। जरा अपनेको ज्ञानमात्र सबसे निराला तो देखो। अपने भीतरके स्वरूपको ओर तो देखो तो भिन्न हो जाओगे, परमात्मा हो जाओगे। यह मैं तो ऐसा ही हूं। इसलिए अब अपनेको सहज सत्य स्वरूपमें देखकर अपनेमे अपने आप विश्राम पाऊं। आखिर सब दुःखोंसे छुटकारा पाना हो तो हित है। दुःख लगे हैं परके सगमे सो परसगसे मुक्त होनेके लिए परसे भिन्न अपनेको देखूं और अपनेमें अपने आप निराकुल होऊं।

न मे लोको न चाज्ञातो नहो नष्टे विकल्पिते।
तदित्थं ज्ञानमात्रोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४२॥

पदार्थोंके जाननेके प्रसगमे तीन बातें हुआ करती हैं। एक तो शब्द पदार्थ दूसरे अर्थ पदार्थ, और तीसरे ज्ञान पदार्थ। जैसे यह चौकी है तो यह तीन तरहको चौकी कहलाई,

चौकी) अर्थ चौकी और ज्ञान चौकी। घरमें भी शब्द घर, अर्थ घर और ज्ञान घर ऐसे ये तीन शब्द वस्तुओंके हुआ करते हैं। शब्द चौकीके मायने 'चौकी' ये दो अक्षर जो कि मुखसे बोला जा रहा है कि यह तो 'चौकी' है या किसी कागजपर लिख दिया जाय 'चौकी' और वे अक्षर लिखकर अगर आपसे पूछें कि यह क्या है तो क्या कहोगे? यह कहोगे कि यह चौकी है। तो यह हुआ शब्द चौकी। यह काम करने वाली चौकी नहीं है। जैसे रोटी है उसमें भी शब्द रोटी, अर्थ रोटी और ज्ञान रोटी—ये तीन प्रकारकी समझनी चाहिए। किसी कागज पर लिख दें और आपसे पूछें कि यह क्या है तो आप बतलायेंगे कि यह रोटी है। यह रोटी किसी कामकी नहीं है। इससे क्या आपका पेट भर जायगा, उस रोटीसे क्या आपकी भूख मिट जायगी? नहीं। वह अर्थ रोटी नहीं है। जो बनी हुई होती है, जिसको खाते है वह है अर्थ रोटी। ज्ञान रोटीके मायने यह है कि रोटीके बारेमें जो ज्ञान हो। इसी तरह अर्थ चौकी वह है जिसपर हम पुस्तक रखते हैं और ज्ञान चौकी वह होती है जो कि चौकीके बारेमें ज्ञान होता है। उस ज्ञानका नाम है ज्ञान चौकी। इस तरह पदार्थमें तीन चीजें है—शब्द पदार्थ, अर्थ पदार्थ और ज्ञान पदार्थ।

इसी तरह लोकको भी तीन तरहसे देखो, शब्द लोक, अर्थ लोक और ज्ञान लोक। यह जितना भी लोक है, यह दुनिया जितनी है वह है अर्थ लोक। क्या अर्थ लोक मेरा है? नहीं, मेरा नहीं है, वह तो मुझसे भिन्न है, वह मेरा नहीं है। जो लोक शब्द लिखा है या लोक शब्द बोलें तो क्या वह लोक मेरा है, नहीं। यह तो केवल शब्द लिखा है। यह तो शब्द लोक है। यह शब्द लोक मेरा है क्या? नहीं, यह मेरा नहीं है। शब्द भी मुझसे भिन्न है। दुनियाके बारेमें जो ज्ञान होता है वह ज्ञान लोक है। वह मेरा पर्याय है, फिर भी मेरा नहीं है क्योंकि वह विकल्प है। यह विकल्प नष्ट तो हो जाता है पर इस विकल्पके नष्ट हो जानेसे क्या यह लोक भी खतम हो जाता है। लोक खतम होता है अपनी परिणतिसे। और भी समझ लीजिए—शब्द चौकी, अर्थ चौकी और ज्ञान चौकी होती है पर आपको दिखती केवल एक यह अर्थ चौकी है। चौकी शब्द बोला गया, वह क्या है, शब्द चौकी। जिस पर यह किताब रखते हैं यह क्या है? यह है अर्थ चौकी और, चौकीके संबंधमें जो ज्ञान बन रहा है वह है ज्ञान चौकी। उस शब्द चौकीमें हमारा कुछ लगता है क्या? वह तो शब्द है, अक्षर है, वह तो हमसे भिन्न है। क्या अर्थ चौकी हमारी है? नहीं वह हमारी नहीं है, वह हमसे भिन्न है। ज्ञान चौकीको अपनी कह सकते हो। वह विकल्पमात्र ही तो है। उस कल्पनाकेनष्ट हो जानेपर क्या यह चौकी नष्ट हो जाती है, नहीं। चौकी नष्ट होती है उसकी ही परिणतिसे। इसी तरह यह लोक मेरा नहीं है और लोक अज्ञात है, ऐसा भी

नहीं है। जाननेमें यह लोक आ रहा है। मगर वह जानना क्या है, विकल्प है। ज्ञानकी एक पर्याय है। उसके नष्ट हो जाने पर यह लोक नष्ट हो जाता है क्या? यह सब कुछ लोक मैं नहीं हूं मेरा नहीं है। अब मैं क्या रहा। केवल एक ज्ञानमात्र ही रहा।

अब भैया! देखो भगवानको, तो उस भगवानकी भी तीन किस्म हैं—शब्द भगवान् अर्थ भगवान और ज्ञान भगवान! मैं मुखसे भगवान शब्द बोल दूं या किसी कागज पर भगवान शब्द लिख दूं तो वह क्या है? क्या वह भगवान है, कौनसा भगवान है? भैया! वह ज्ञान या अर्थ भगवान नहीं है। वह तो शब्द भगवान है। अर्थ भगवान् कौन है? सयोगकेवली व अयोगकेवली व गुणस्थानातीत, ये हैं अर्थ भगवान। जैसा भगवान् है उस भगवानके बारेमें जितना ज्ञान होता है वह ज्ञान भगवान कहा जायगा। भगवानके बारेमें जो विकल्प होते हैं, ज्ञान होता है वह कौनसा भगवान है? ज्ञान भगवान है। तो आपकी भेंट क्या उस शब्द भगवानसे हो सकती है? अर्थ भगवानसे हो सकती है? नहीं। इस ज्ञान भगवानसे ही हमारी भेंट हो सकती है। भगवानके बारेमें हम जान जायें और उसी जाननेमें हम तन्मय हो जायें तो उस भगवानसे भेंट हो सकती है। शब्द भगवान तो अन्य पदार्थ है, उसे मैं नहीं जान सकता। मैं तो केवल ज्ञान भगवानको ही जान सकता हूं, उस ज्ञान भगवानको ही पूज सकता हूं। मैं ज्ञान भगवानकी ही भक्ति किया करता हूं। मैं शब्द भगवान तथा अर्थ भगवानकी भक्ति नहीं करता हूं, और न कर सकता हूं।

कुटुम्बकी बात देखो। पुत्रमें भी शब्द पुत्र, अर्थ पुत्र और ज्ञान पुत्र होते हैं। जरा शब्द पुत्रसे कहो कि एक गिलास पानी दो तो क्या वह ला देगा। अरे वह तो किसी कागज पर पुत्र शब्द लिखा है या बोला हुआ शब्द है, सो वह सब पुद्गल है। वह कैसे पानी ला देगा? अब जरा अर्थ पुत्रको देखो जो कि घरमें बैठा है, जो दो हाथ, दो पैर वाला है, जो पुत्र आपके घरमें जन्मा होवे, वह है अर्थपुत्र। ज्ञानपुत्र वह है जो पुत्रके बारेमें ज्ञान बनावे। आप यह बतलाइए कि शब्दपुत्रमे आप मोह करते हैं कि अर्थपुत्रसे या ज्ञानपुत्रसे आप मोह करते हैं। अरे शब्दपुत्रसे तो तू मोह करेगा कैसे? क्योंकि वह तो भाषावर्गणारूप पुद्गल चीज है, उससे तू तन्मय नहीं हो सकता। आप तो अपने ज्ञान पर्यायमें तन्मय हैं। पुत्र शब्द से तू मोह करेगा नहीं। तो क्या तू अर्थपुत्रमे मोह करता है जो घरमें बैठा है। वह भी अन्य पदार्थ है उसमें भी तेरी पर्याय नहीं पहुंचती। उससे भी तू मोह नहीं करता, और न कर सकता है, क्योंकि वह तो भिन्न पदार्थ है। अर्थपुत्रसे भी तू मोह नहीं कर सकता। फिर किससे तू मोह करता है। पुत्रके बारेमें जो विकल्प बनाया, जो ज्ञानकी परिणति बनायी उस ज्ञानपुत्रसे ही तू मोह करता है। इस तरहसे आप ज्ञान पुत्रसे मोह करते हैं अर्थात् पुत्रके

बारेमें जो आपको विकल्प होते हैं उन विकल्पोंसे आप मोहसे करते हैं, उन विकल्पोंको आप मोहसे करते हैं। पुत्रसे मोह नहीं करते हैं। यह यथार्थ बात कही जा रही है। यह भी समझनेकी चीज है जिससे कि मोह घटता है।

मोह करनेसे ही आकुलताएँ हैं। बाह्य तो बाह्य ही हैं। मैं तो अपने ही विकल्पमें तन्मय हूं। मैं अपने ही विकल्पसे मोह करता हूं और अपने ही विकल्पसे भला बुरा करता हूं। दूसरेसे मैं न राग कर पाता और न द्वेष कर पाता। मैं तो अपने आपमें ही राग और द्वेष किया करता हूं। इसी कारण मेरे विकल्प नष्ट होते रहते हैं और बनते रहते हैं। अब जरा और भी बात सोचो कि विकल्प नष्ट होनेसे क्या वे बाह्य पदार्थ भी नष्ट हो जाते हैं या वे बन जाते हैं? नहीं, वे तो अपने स्वरूपचतुष्टयसे ही आविर्भूत तिरोभूत होते है। वे वे ही हैं और हम हम ही हैं। ये सारी बाह्य चीजें कुछ भी मेरी नहीं हैं। मेरा तो मात्र मैं ही हूं यह लोक मेरा नहीं है। मैं तो ज्ञानस्वरूप हूं इससे लोक अज्ञात भी नहीं है। और यह ज्ञान मुझसे छिपा हुआ नहीं है इस ज्ञानसे जाननेमे सब कुछ आयगा। जाननेमें आ गया तो मेरेमे कुछ अन्य नहीं आ जाता और जानना अगर मिट गया तो चीज नहीं मिट जाती है।

भैया! जितने भी शास्त्र ज्ञान देते है उनका सार तत्त्व यह है कि भाई, अन्य चीज अन्य ही है और मैं मैं ही हूं, मुझमें मैं हूं, परमें पर हैं, वे सब अपनेसे भिन्न है। फिर खोटी कल्पनाएँ करना कि यह मेरी है, यह उसकी है, यह सब क्या है? जैसे बाह्य वस्तुओंको सुखकारी मानते हो, कल्याणकारी मानते हो तो असलमें देखो तो वे ही निमित्त रूपसे दुःख के कारण बन रहे हैं। कौनसे ऐसे पदार्थ हैं जो मेरी शांतिके कारण हैं।

एक गुरु शिष्य थे। शिष्य गुरुके पास पढ़ने आता था। एक दिन वह देरसे आया। गुरु जी ने पूछा कि देरसे क्यों आए? शर्मीले शब्दोंमें कहा कि मेरी सगाई हो रही थी। गुरु जी कहने लगे कि अब तो तुम गाँवसे गए अर्थात् अब तुम्हारा गांवसे मोह नहीं रहा। सगाई हुई कि घरसे गए। जहाँ सगाई की, वहीं दृष्टि गयी। अब तो तुम्हारा अपने घरसे भी मोह नहीं रहा। कई दिन बाद वह शिष्य फिर देरसे पहुंचा। गुरुजी ने पूछा कि देर क्यो हो गई? शिष्यने कहा कि शादी हो गई। गुरुजीने कहा कि अब तो तुम अपने मां बापसे भी गए। उनको तू नही पूछेगा। और फिर गुरुजी ने कहा कि कुछ दिन बादमे बच्चे होंगे तो तू अपने से भी जायगा। तू उन बच्चोंमें ही लगा रहेगा। कमायगा, खिलाएगा, उनका पालन पोषण करेगा। इस तरह तू बाहर-बाहर ही रहेगा और अपने आपको भूल जायगा। अरे ये तो बाहरी पदार्थ हैं। इनमें तू क्यो पड़ता है, इनसे तो तेरेमें आकुलताएं आवेंगी, और तुझे शांति नही प्राप्त होगी।

भैया ! ज्ञानमें यह ज्ञान है, मुझमें मैं हूं, बाह्यमें बाह्य है, ये सब स्पष्ट भिन्न रूपोंमें नजर आते हैं, सब अपना भिन्न-भिन्न अस्तित्व रखते हैं, यदि ऐसी दृष्टि आवे तो उसे ज्ञान कहते हैं। ज्ञान हो और मोह दूर न हो यह नहीं हो सकता है। ज्ञानका स्वभाव ही है कि वह मोहके आवरणको हटाता है। सूर्यका जब उदय होता है तो अन्धकार हट जाता है। इसी प्रकार जब भीतरमें ज्ञान उगे तो मोहका अन्धकार मिट जाता है। मोहका अन्धकार ज्ञानके उदय होनेपर मिटे नहीं, यह नहीं हो सकता है। यदि मोह अभी मिटा नहीं है तो समझो कि अभी ज्ञानका उदय नहीं हुआ है। ज्ञानके होने पर राग तो कदाचित् हो जाता है पर मोह नहीं हो सकता है। राग और मोहमें अन्तर है। राग उसे कहते हैं जो वस्तुओं को सुहा देवे और मोह उसे कहते हैं जो बाह्यको यह समझे कि यह मेरा है या यह मैं हूं। बाह्य वस्तुमें ममत्वबुद्धि कर लेना ही मोह है और बाह्य वस्तुयें सुहा जानेका नाम ही राग है। मोहमें है अज्ञानताका अंधेरा और रागमें है परका लगाव। ज्ञान होनेपर कदाचित् किसी रूपमें परमें लगाव तो हो सकता है पर अज्ञानताका अंधेरा नहीं हो सकता है। यह मोह तो उत्पन्न होता है लगावसे लगाव रखनेसे। लगाव पर वस्तुओंमें हो जाता है और उन पर वस्तुओंमें लगाव हो जानेसे विकल्प हो जाता है और उस विकल्पमें लगाव रहने से मोह उत्पन्न हो जाता है। जिसे कहते हैं रागमें राग, पर वस्तुओंमें राग हो गया है, यह राग का काम है और रागमें यह वासना होना कि यह राग मैं हूं, रागसे ही मेरा कल्याण है, मेरी भलाई है, यह हुआ रागका राग। रागमे राग हो जानेका नाम ही मिथ्यात्व है। यह महान् अन्धकार है। सो मैं परपदार्थ रूप नही हूं पर पदार्थोंके विषयमें होने वाला जो संकल्प विकल्प का जाल है उस रूप मैं नहीं हूं। मैं तो अनन्त आनन्दरूप, त्रैकालिक ज्ञानस्वरूप हूं। सो मैं अपनेमें आपको निरखकर अपने लिए अपने आप स्वयं अपनेमें सुखी होऊं।

अब मैं कैसा हूं, इस विषयमें कहते हैं कि—

देहे स्थित्वापि न स्पृष्टो नानाकारो निराकृतिः।
जानन् सर्वं न सर्वोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥ ८ ॥

मैं देहमें ठहरा हूं फिर भी देहसे नहीं छुवा हूं। मैं उस देहसे मिला हुआ भी नही हूं। देह तो जड़ है। मैं चेतन हूं, मैं अमूर्त पदार्थ हूं। यह तो मूर्त है। तो इस मूर्त पदार्थमें एक अमूर्त पदार्थ मिल जाय तो यह कैसे हो सकता है ? मिल तो मूर्तमें अन्य मूर्त पदार्थ भी नही सकता। अतः यह आत्मा इस शरीरमे रहते हुए भी शरीरसे जुदा है। अरे तूने परिवारको अपना माना है, पुत्रोंको अपना माना है। यह बतलाओ कि क्या वे तेरे हैं ? नहीं, वे तेरे नही हैं। इनमे तुम किस लिए फसे हो, क्या वे तेरे है ? नही, वे तेरे नहीं हैं। इनमें

तुम किसलिए फंसे हो ? ये बच्चे जो हैं इनमें तू फंसा है । अच्छा बता, कैसे फंसा है ? ये तेरे नहीं हैं और न कभी तेरे हो सकेंगे । भाई आप तो यहां मौजूद हैं । कुटुम्ब परिवार इत्यादि कहींके कहीं बैठे हुए हैं । आप उनसे किस तरहसे बंधे हुए हैं, किस तरहसे फंसे हुए हैं । आप उनसे बंधे हुए नहीं हैं । आप अपने कुटुम्ब, परिवार इत्यादिसे फंसे हुए नहीं हैं । केवल आपने कल्पनाएं बना ली है और उन कल्पनाओंसे ही मोह बना लिया है यही कारण है कि तू अपनेको यह समझता है कि मैं परिवारमें फंसा हूं ।

भैया ! अब यह ख्याल न कर कि मैं फंसा हुआ हूं । किससे फंसे हो जरा बताओ तो । अपनी कल्पनाओंको छोड़ दे तो तू किसी बन्धनमें नहीं है । मैं तो अमूर्त हूं, चैतन्यस्वरूप हूं तो फिर मैं कैसे फंस गया । मैंने केवल अपने आप ही विकल्प बनाकर अपने आप ही सोच सोचकर देहमें स्वयं अपनेको फंसा लिया है और जैसे कभी ज्ञान भी हो जाय कि यह परिवार खुदगर्ज है, अपने कषायके साथ है, इतना ज्ञान भी हो जाय तो भी कुछ दिन और फंसे रहते हैं पूर्व वासनाके कारण । पूर्व परिचयके कारण निराकुल नहीं हो पाते हैं । इसी तरह देह और आत्मामें भी भेद हो जाय, फिर भी यह आत्मा देहमें बंधी रही है, पूर्व वासनाके कारण । पर इससे छूटनेका उपाय भेदज्ञान ही है । किसी कुमित्रसे मित्रता हो जाय तो भिन्न भिन्न वस्तु और परस्पर विरुद्ध आशयका ज्ञान कर लेना ही, उस मित्रसे छूटनेका उपाय है । यह मुझे ठगना चाहता, धोखा देना चाहता है, यह हमारे साथ कपट करता है, यह हमसे झूठ बोलता है यदि इतना भी जान लेनेका ज्ञान नहीं है तो फिर इसके आगे और क्या हो सकता है ।

देहमें मैं ठहरा हूं तो भी देहसे छुवा हुआ मैं नहीं हूं । देखो—इस देहके कारण, इस कर्म उपाधिके कारण मेरे नाना रूप बन रहे हैं । नाना शरीर बन रहे हैं । कहीं कीड़े मकोड़े बन गए । कहीं पक्षी बन गए । कहीं और किन्हीं रूपोंमें बन गए । इस प्रकारसे नाना रूप विस्तार अपने आत्मप्रदेशमें भी हो जाते है, किन्तु जो आकारो पर दृष्टि रखते हैं वे अपने को भूल गए है ।

भैया ! मैं तो ज्ञानस्वरूप हूं । अपने अपने स्वरूपको देखो कि मैं ज्ञानस्वरूप हूं । यह मैं ज्ञानमय आत्मा द्रव्य हूं । इसका आकार है, इसका क्षेत्र है । परन्तु इस क्षेत्रदृष्टिसे आत्माका परिचय नहीं हो सकता है । आत्माका परिचय तो आत्माके अन्तर्गत लक्षणकी दृष्टिसे हो सकता है । आत्मा कहते किसे है ? जो जाननहार है उसे आत्मा कहते हैं । मैं सबको जान रहा हूं मगर मैं सब रूपोंमें नहीं हूं । अभी मैं इतनी चीजें जान रहा हूं तो क्या इनको जाननेसे मैं इन रूपोंमें हो गया हूं । नहीं सिनेमाके परदेपर कितने ही चित्र उठ जाते

हैं तो क्या पर्दा उतने रूप है ? नहीं, वह परदा तो स्वच्छ है । इसी तरह इस आत्मामें सब रूपोंकी झलक आ जानेसे यह आत्मा सब रूप हो गया है क्या ? नहीं मैं तो मैं ही हूं । ये सब ये ही हैं । अन्य सब मैं नहीं हूं । मैं सबको जानता हूं फिर भी मैं इन सब रूप नहीं हूं । मैं तो सबसे निराला, ज्ञानमात्र अपनेको निरखता हूं । यही ज्ञान इसने केवलके ज्ञानके बिना ही कल्पिकरूप बनकर बाहर बाहर घूमती है, सो बाहरमें ही बुद्धि फंस जाती है । बाहर में बुद्धि फंस जानेसे आकुलताएं हो जाती है । मैं सबसे निवृत्त होकर केवल अपने आपके स्वरूपको देखूं तो वहां कोई क्लेश नहीं हैं । सब हैं तो सब रहें । मैं तो मैं ही हूं । यह दुनिया तो मोहका स्वप्न है । स्वप्नमें देखी हुई चीजें जैसे झूठ नहीं मालूम होती हैं उसी प्रकार मोहमें प्रतीत हुई चीजें झूठ नहीं मालूम होती हैं, पर जैसे स्वप्नके बाद जग जाता है तो सब चीजें झूठ मालूम होती हैं । उसी प्रकार मोहके दूर होने पर सम्यक्त्व हो जाता है और इस सम्यक्त्वके हो जानेसे पर पदार्थोंके प्रति ठीक ठीक ज्ञान हो जाता है, सत्य और असत्यका निर्णय हो जाता है तब ये पर पदार्थ झूठ मालूम होते हैं ।

देखो भैया ! विचित्रताकी बात कि यह सबको तो जानता है पर इसे अपनी जानकारी नहीं है । यह जो जानने वाला पदार्थ है यह स्वयं क्या है, इसको यह नहीं जान रहा है । तो मोक्षका मार्ग मिल जायगा क्या ? सब ग्रन्थोंमें आत्माके ज्ञानकी महिमा गाई गई है । मैं अपनी आत्माको सर्वस्व मानकर इसमें ही रम जाऊं तो पूर्णतया ज्ञान व आनन्द होगा । जैसे लोग कहते हैं कि हे भगवान, हे अल्लाह, हे खुदा तो यहां पर अल्य: संस्कृतका शब्द है । अर्हं पूजायां धातुसे अरहंत और अल् पूजायां धातुसे अल्यः बना है । अल्लाहके मायने भगवानसे है । अर्हन्तका अर्थ है पूज्य और अल्यका अर्थ भी पूज्य है । खुदाके मायने खुद अपने आपमें बसा हुआ ।

खुद तो यह है ही खुद मायने स्वयं (सभामें किसी ने पूछा कि) बिसमिल्ला क्या है तो (महाराज जी ने जवाब दिया कि) मैं बिसमिल्लाके मायने तो नहीं जानता । आप बतावें कि बिसमिल्लाका क्या अर्थ होता है । क्या मैं ही सब बताऊं ।

देखो, एक सेठानी बुढ़िया थी । उसका पति गुजर गया । लोगोंने पूछा क्यों रोती हो । उसने कहा कि १०, २० दुकानें हैं उनका किराया अब कौन लेगा । पंचायतके सरदार ने कहा कि सब्र करो, रोती क्यों हो, हम सब संभाल लेंगे । बुढ़ियाने कहा कि ५००, ६०० भैंस हैं, उनका प्रबन्ध कौन करेगा ? सरदारने कहा कि मैं सब कुछ संभाल लूंगा । सेठानीने फिर कहा कि अभी ५ लाखका कर्जा भी देना है, उसे कौन संभालेगा ? तो पंचायतके सर-दारने कहा कि अब क्या हमीं सबकी हां करें और लोग भी बोलें । तो भाई ऐसा है कि

क्या हमीं सब बतावें आप लोग भी बतावें। मैं तो बिस्मिल्लाका मतलब नहीं जानता हूं। परन्तु जहाँ तक बिसमिल्लाका मतलब गुरुसे निकलता होगा। जो विषयोंको कील देवे, नष्ट कर देवें।

तो भाई यह आत्मा सबको जानता तो है मगर उन सब रूपोंमें नहीं है। ऐसा मैं शुद्ध चैतन्यमात्र अपने आपको निरखूं और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

विभक्तैकत्वबोधस्य न स्पर्शः पुण्यपापयोः।
सैव वस्तुस्थितिर्मेऽस्तु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६॥

इस आत्माको कहते हैं विभक्त एकत्व। एकत्वका अभिप्राय यह है कि यह आत्मा अपने आपके गुणपर्यायोंमें तन्मय है। अपने ही स्वरूपमें तन्मय है, स्वयं सर्वस्व है और विभक्तका अर्थ है कि जगतके अन्य सब पदार्थोंसे अत्यंत जुदा है। जगतमें पदार्थ अन्य हैं कितने? अनंत तो पुद्गल, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य और असंख्यात कालद्रव्य, इन सबसे यह आत्मा जुदा है और अपनी आत्माको छोड़कर जगतमें जितनी भी आत्माएं हैं उन सबसे जुदा है। केवल अपने आपमें तन्मय है। इसे कहते हैं एकत्व विभक्त। इस शुद्ध आत्मामें पुण्य और पापका स्पर्श भी नहीं है। जब मैं अपने सहज स्वरूपको देखता हूं सो पहले मेरी सहजसत्ता किस प्रकार है, यह अपने इस प्रकारके मर्मको देखता हूं तो उस एकत्वविभक्त निज आत्म-पदार्थमें पुण्य पाप कोई नहीं हैं। कोई प्रकारका विकार नहीं है। स्वभावमें कोई विकार नहीं हुआ करता है।

भैया! जैसे गंदा जल है ना। वह कचड़ा मिला हुआ है। मगर जलके स्वभावको देखो अर्थात् जलका स्वरूप अपनी सत्ताके कारण कैसा है इस बातको देखो तो क्या गंदा नजर आवेगा? नहीं, गंदा नहीं नजर आवेगा। वह तो निर्मल है, अर्थात् जलका स्वभाव तो बिल्कुल स्वच्छ है। इसी तरह इस गंदी आत्मामें रहने वाली आत्माको १४ प्रकारके जीवसमासोंमें रहने वाले इस जीवको स्वभावदृष्टिसे देखें तो क्या कोई विकार नजर आयेगा? नहीं। वह तो शुद्ध ज्ञायकमात्र नजर आयेगा अथवा और भी जितनी विभाव पर्यायें हैं गति चार, इन्द्रिय पांच, योग पन्द्रह और पच्चीस कषाय, काय ६ और सात ज्ञान इत्यादि सभी पर्यायोंमे भी स्वभावसे ज्ञायक ही है। स्वभाव दृष्टिमें तो केवलज्ञान भी नजर नहीं आता है। वहाँ तो केवलज्ञानस्वभाव ही है। परन्तु केवलज्ञान स्वभाव पर्याय है। इस कारण स्वभावविकास गुणके सदृश देखा जाता है। इसी प्रकार अन्य अन्य स्थानोंमें देखो तो यह कोई विकार नजर नहीं आता है। ऐसा एकत्वभाव मैं हूं।

मैं लड़कों वाला हूं, घर वाला हूं, जानने वाला हूं, ये सब बातें व्यर्थकी हैं। मैं सुखी

हूं, मैं दुःखी हूं, मैं धनी हूं, मैं गरीब हूं, मैं राजा हूं, मेरे पास बल है, मेरा बड़ा प्रभुत्व है, मेरे पुत्र हैं, मेरे स्त्री है, मैं बलवान हूं, सुडोल बेडोल हूं, परे ये सब कुछ नहीं हैं। स्वभाव को तो देखो मेरेमें तो विकारोंका स्पर्श भी नहीं है। यह परम शुद्धनिश्चयकी बात चल रही है। इसकी ही बात मान लेवे और कोई पर्यायका निषेध करे तो ब्रह्माद्वैत आदि अभिप्राय खड़े हो जाते हैं। मैं आत्मस्वरूप कैसा हूं यह स्वभावदृष्टिमें ही दीखता है। जिस मां का लड़का बहुत अच्छा चल रहा है; साल छः माह बादमें वह जुआरी लड़केके संगमें आ जाता है। जुआरीके संगमें आनेसे उसके जुआरीपनका प्रसंग लग गया। तब एक बुढ़िया स्त्री कहने लगी कि देखो तुम्हारा लड़का जुवा खेलता है। उस लड़केकी मां ने कहा कि नहीं मेरा लड़का जुवा नहीं खेलता है। यह जुवा खेलनेका व्यसन तो उस दूसरे लड़केको लगा है। मेरे लड़केका नही है। मतलब यह है कि अपने लड़केको वैसा ही गुणशील समझती है जैसा कि प्रारम्भमें था। वह स्त्री अपने लड़केके प्रति कहती है कि मेरे लड़केको सोहबतमें रखकर इस दूसरे लड़के ने जुवा सिखला दिया है। यह जुवा खेलनेकी आदत तो उस दूसरे लड़के की ही है, मेरे लड़केकी नही है।

इसी तरहसे विवेकी जीव इस चैतन्य आत्माको सहज स्वरूप, ज्ञानमय, ज्ञानस्वरूप मानता है। इस आत्मामें कोई विकार नही है। इसमें पुण्य पाप नहीं, राग द्वेष नहीं। कोई कहे कि वाह। वर्तमानमें तो ये सब है, अरे यह कर्मोंकी प्रकृति है, मेरी प्रकृति नहीं। राग की आदत तो कर्मोंसे है, द्वेषकी प्रकृति कर्मोंसे है। चूंकि कर्मविपाकके साथ विभावका अन्वयव्यतिरेक है सो ऐसे निमित्तपर आरोप किया गया है अपनी खराबियोंका। जो अपने को शुद्ध, स्वच्छ देखता है उसमें कषायभाव और पुण्य पापका स्पर्श नहीं है। सो ऐसी वस्तु स्थिति मेरी होव अर्थात अविकारता होवे। कहीं परपदार्थमें, कहीं नैमित्तिक भावमें यह मैं हूं, यह मेरा है, इससे ही मेरा भला है, इस ही में रमना चाहिए, इस प्रकारके भाव उत्पन्न न हों।

मैं ज्ञानमात्रका अनुभव करूं, ज्ञानदृष्टिमें रहूं, इस प्रकारके भाव उत्पन्न होना चाहिए। परमें उपयोगका जाना ही फँसना है। कहते है ना कि जो बोले सो फँसे। समाजमें कोई काम करते हो तो यदि कोई पूछे कि अमुक काम करते हो तो बोले कि हां हां मैं करता हूं, तो सोई फँसेगा। घरमें, समाजमें, देशमें जो बोलेगा वही फँसेगा। किसीसे पूछा—भैया! स्वरूपनगरका रास्ता कौन है, बता दो। वह बोलेगा कि इस रास्तेसे चले जावो। नहीं, नहीं, जरा आगे चलकर थोड़ासा बता दो। इस तरहसे वह फँस जायगा, और यदि रास्ता न बताता तो न फँसता। हंसो न भैया, हमारा मतलब यह नहीं है कि रास्ता न बताओ। हम

को "जैसे बचावे सो काले होवे" इस कहावतका अर्थ कर रहे हैं। ऐसे ही जो परद्रव्योंमें राग करता है सोई फँसता है।

भैया ! एक साधु थे। राजा वन्दना करके उसके पास बैठ गया। साधुने पूछा कि बोलो क्या चाहते हो ? राजा बोला—महाराज ! मेरे कोई बच्चा नहीं है। एक बच्चा हो जाय, यह मैं चाहता हूं। साधुने कहा कि अच्छा जाओ, एक बच्चा हो जायगा। इस प्रकारसे आशीर्वाद मिल गया। राजा घर आया, घरमें आनन्दसे रहने लगा। साधुने १५-२० दिन बादमें देखा कि रानीके अभी गर्भका समय है, कोई मरता हो तो उसे गर्भमें भेज दें। उस समय कोई मर नहीं रहा कि अच्छा चलो, खुद ही मरकर रानीके पेटमें पहुंचें। खुद साधु मर गया और रानीके पेटमें पहुंच गया। अब साधु गर्भमें पड़ा हुआ सोचता है कि मैं बोल गया सो फँस गया, अब गर्भसे बाहर कैसे निकलूं ? साधु परेशान था। वह मनमें विचार करता है कि यदि मैं वचन न देता तो ठीक था। साधु गर्भमें बच्चेके रूपमें पड़ा हुआ है। वह सोचता है बार बार कि यदि मैंने वचन न दे दिया होता तो आजको यह परेशानी सामने नहीं आती। अच्छा, अब मैं जब बाहर निकलूंगा तो बोलूंगा नहीं। ऐसा साधुने मनमें विचार बना लिया।

बच्चेके रूपमें साधु बाहर निकल आया। सात-आठ वर्षका हो गया, बच्चा बोलता ही नहीं। राजा परेशान हो गया। बोला—लड़का तो हुआ, पर गूंगा हुआ। इसे जो ठीक कर देगा उसे मैं बहुत सा धन दूंगा। एक दिन बच्चा बगीचेमें घूमता हुआ पहुंच गया। वहां पर देखा कि एक चिड़ीमार जाल बिछाए हुए बैठा था। और अब जालकी तह करके जानेकी तैयारी कर रहा था। इतनेमें एक चिड़िया जो पेड़के ऊपर बैठी हुई थी बोल उठी। अब चिड़िया पकड़ने वालेने जाल फैलाया और उस चिड़ियाको जालमें फँसा लिया। तब राजकुमार एकदमसे बोल उठा—"जो बोले सो फँसे।" अब क्या था, राजकुमारको चिड़ीमारने समझ लिया कि ये बोलने लगे हैं, सो वह राजाके पास गया। राजाको खबर दी कि राजकुमार बोलते हैं। इतना सुनते ही राजाने १० गाँव इनाममें उसे दे दिये। अब राजकुमार घर आया। राजाने देखा कि बच्चा तो बोलता ही नहीं है। राजा बोला कि अरे पक्षी मारने वाले लोग भी मुझसे दिल्लगी करते हैं। राजाने क्रोध करके चिड़ीमारको फांसी की सजा सुना दी।

अब चिड़ीमारसे राजा पूछता है कि तुझे जो चीज चाहिए सो बोल। चिड़ीमार बोला—महाराज हमें कुछ नहीं चाहिए, केवल ५ मिनटके लिए आप अपने बच्चेसे मिला दीजिए। राजाने बच्चेसे मिला दिया। चिड़ीमार बच्चेसे बोला कि हे राजकुमार ! मैंने

जिन्दगीमें झूठ नहीं बोला, पर आज मैं झूठा बन रहा हूं। और, अब तो मेरा जीवन समाप्त ही हो रहा है परन्तु तुमसे विनय यह है कि जो शब्द बगीचेमें कहे थे वही कह दीजिये। बच्चेने वही शब्द बोल दिया और १० मिनट तक बच्चेने छोटासा भाषण भी दिया। बच्चेने बताया कि देखो पहले मैं साधु था। राजाने दर्शन करके मुझसे एक बच्चा पानेकी इच्छा प्रकट की। हमने राजाको वरदान दिया। राजासे मैंने बोल दिया था इसलिए मैं फंस गया। इसी कारण मैंने बोलना बन्द कर दिया था। इस तरहसे सारी कहानी बच्चेने सुना दी। देखिए राजासे साधुने बोल दिया तो साधु फंस गया, पक्षीने बगीचेमें बोल दिया तो पक्षी फंस गया और चिड़ीमारने राजासे कुछ बोल दिया तो चिड़ीमार फंस गया। इसलिये इस जगतमें जो बोलता है वही फंसता है। यदि ज्यादा बोलचाल जगतमें रखते हो तो राग बढ़ेंगे, द्वेष बढ़ेंगे। कितने ही लोग ऐसे होते हैं जो कई वर्षों तक बच्चोंसे नहीं बोलते हैं। बच्चे पढ़ने–लिखने, खेलने–कूदने सभी जगह जाते आते हैं पर उनसे सहज ही नहीं बोलते है। उनसे वह अनासक्ति करता है तो पराधीन नहीं होता है और यदि आसक्ति करता है तो विशेष पराधीन हो जाता है।

भैया! बताओ तो जरा कि गोष्ठीमें परिवारमें जितने लोग हैं उनसे इस आत्माका क्या सम्बन्ध है? यदि कोई सम्बन्ध हो तो बतलाओ। बापकी आत्माका पुत्रको आत्मासे क्या सम्बंध है? यदि कोई संबंध हो तो बतलाओ। देखो सपूत है, पिताका आज्ञाकारी है तो पिताको दुःख है या सुख। दुःख ज्यादा है। पुत्र अगर कुपूत है, अन्यायी है तो पिताको दुःख है या नहीं। नहीं की बात विशेष है, क्योंकि कुपूतसे दुःख मिट जायगा। वह धन बरबाद करने वाला होता है तो अदालतमें लिख दें कि बच्चेका हमसे कोई संबंध नहीं है, मैं इसका जिम्मेदार नहीं हूं। बस, दुःख मिट गया। और यदि लड़का सपूत है, आज्ञाकारी है, विनयशील है तो उसके प्रति राग करके बाप श्रम ही श्रम उठायगा, आराम कहां पायगा? अच्छा यह बताओ कि यदि पुत्र सपूत होगा, आज्ञाकारी होगा तो बाप दुःखी होगा या नहीं? दुःखी होगा, कैसे? अच्छा देखो—यदि पुत्र सपूत होगा, आज्ञाकारी व विनयशील होगा तो उसे सुखी करनेके लिए बाप अथक परिश्रम करेगा व क्लेशमें पड़ा रहेगा। यदि पुत्र कुपूत है तो उसके बाबतमें यह प्रसिद्ध करके कि यह मेरा नहीं है, इससे मेरा कोई संबंध नहीं है, ऐसा कहकर छुट्टी पा लेगा। देखो—दुःख सुपूतमें अधिक है कि कुपूतमें। यदि पुत्र सपूत होगा तो मोह होगा और मोहमें क्लेश अवश्य होंगे। और यदि पुत्र कुपूत है तो न मोह ही बढ़ेगा और न क्लेश ही होंगे।

और भी देखो संगीत बजाने वाले चार जने हैं। कोई तबला, कोई सारंगी, कोई

मजीरा और कोई हारमोनियम बजाता है। और सब अलग-अलग गांवके हैं। परिचय भी नहीं है तो भी संगीत विषयके कारण वे एक दूसरेकी तारीफ करेंगे। इस तरहसे ४-५ मिनट में ही उनमें परस्पर संबंध हो जायगा, उनमें परस्पर दोस्ती हो जायगी। सबमें आपसमें बोल चाल हो जायेगी। अब देखो—संगीतके विषयसे ही उनमें बोलचाल हुई ना। सो क्या हुआ वे आपसमें फंस गये। वे एक दूसरेको भोजनादिके लिये निमंत्रित करेंगे, चिंता करेंगे। इस प्रकारसे उन सबमें घनिष्ट सम्बन्ध हो जायगा। अरे यह सम्बन्ध क्या है, यह सब कल्पना है, ऐसा करनेसे तू मोहमें फंसा रहेगा, तुझे आजीवन क्लेश रहेंगे। भैया, तू तो परमार्थसे शुद्ध, स्वच्छ, ज्ञानस्वरूप है। तेरेमें तो क्लेशका नाम नहीं, फिर क्यों जगजालमें फंसकर क्लेश प्राप्त कर रहा है। करने योग्य काम तो तत्त्वदृष्टि है। सो उसकी हो रुचि करके अपने में स्वयं सुखी होओ।

नाना मतानि तत्त्वेषु विवादे न प्रयोजनम्।
मुक्त्वान्यत्स्वं तु पश्येयं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१०॥

तत्त्वमें अन्य-अन्य नाना मत हैं। कहते हैं कि मुस्लिम तत्त्व यह है, जैन तत्त्व यह है, बौद्ध तत्त्व यह है। अरे यह क्या है। व्यर्थमें नाना प्रकारके विवाद बढ़ाते हैं। कोई किसी प्रकारके विचार मानता है कोई किसी प्रकारके। कोई कोई हनुमानजी को बन्दरके मुख वाला व पूँछ वाला कहते हैं। जैन लोग कहते हैं कि हनुमानजी इतने सुन्दर थे कि उनके समान सुन्दर उस समय कोई नहीं था। जैन सिद्धांतमें बताया गया है कि वह तो एक कामदेव पदधारी अतिसुन्दर राजा थे। खैर, विवादोंसे क्या मतलब। आप अपनेको तो देखें कि अपना स्वरूप कैसा है? मैं अपने आपको देखूँ कि मैं कैसा हूं? जो मैं हूं वही समझूँ, बस इस ही में कल्याण है। अरे अन्यको देखनेसे कोई प्रयोजन नहीं है। मेरा प्रयोजन तो अपने आपको देखनेका है सो मैं अपने आपको देखूं और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊँ।

कहीं चले जावो सुख कहीं नहीं मिलेगा। जैसे यहां वहां रात दिन भटकते फिरते हैं, फिर ९, १० बजेके लगभग आराम करने घर आ जाते हैं, सोते हैं। इसी तरह बाह्य पदार्थोंमें कितना ही भटक लें, फिर अन्तमें अपने घरमें, अपने आपके स्वरूपमें ही आना होगा तब शान्ति मिलेगी। किन्तु खेद है अज्ञानमें जीव बाह्यकी तो व्यवस्था करते हैं पर अपनी व्यवस्था नहीं कर पाते हैं।

देहातोंमें भैया! हफ्तेमें एक दिन हाट लगती है ना। सो कहीं देहातमें कोई अध-बूढ़े आदमी थे। एक दिन हाटमें साग भाजी खरीदने जाने लगे। पड़ौसकी बहुओंने भी साग

खरीदनेके लिए दो दो पैसे दे दिए। बुड्ढा उनके पैसोंकी सब्जी खरीदता जाता था। पहले पड़ोसकी बहुओंके लिए खरीदी, बुड्ढेने अन्तमें अपने लिए भी दो पैसेकी सब्जी मोल ली। आखिरमें खरीदके लिए सब्जी जो बची वह खराब थी, सड़ी हुई थी, वह सब्जी लेकर झोली में डालकर घर गया। जब घरकी बहूने देखा तो कहा कि अरे यह खराब सब्जी है, क्यों लाए ? बुड्ढा बोला कि पडोसकी बहुओंके लिए पहले अच्छी अच्छी खरीद ली फिर बाद में जो बची वह मैंने खरीद ली। बहूसे कहा कि देखो मैं परोपकार करता हूं। बहूने कहा कि अरे पहले अपने लिए खरीद लेते बादमें फिर दूसरोंके लिए लेते। सो ऐसे ही भैया! अपनी रक्षा अपने आत्मस्वभावकी उपासना करना है, उसकी दृष्टि रहते हुए परोपकार किया जावे तो वह महत्त्वकी बात है।

हे भाई! अपने स्वरूपकी तो खबर नहीं है और दूसरेकी ओर आसक्तिसे देख रहे हो। आत्मन्, पहले अपने स्वरूपको देखो बादमें फिर अन्यको देखो। अपनेको भूलकर द्वन्द्व को देखो, इसे आचार्योंने विवेक नहीं बतलाया है। बाहरमें क्रियाकलापमें भी रहो, पर उनमें कोई अपना स्वरूप मत समझो। यदि कोई समस्त मतोंके विकल्पोंको छोड़कर अपने सत्यका आग्रह कर ले कि मुझे जो अपने आप बिना किसी अन्य जल्पके आश्रयके, अनुभूत होगा वह होवो। मैं स्वयं ज्ञानमय पदार्थ हूं अतः ज्ञानकी बात स्वयं ही प्रकट हो जावेगी। ऐसे सत्यका आग्रह निष्पक्ष होकर कर ले तो उसे स्वयंका दर्शन होगा। जिस सत्यका दर्शन हो फिर उसीका लक्ष्य रखना सो ही शांतिका, सुखका मार्ग है। मूल तत्त्व तो आत्मा है, उस आत्माके बारेमें ठीक-ठीक निर्णय जब नहीं हो पाता तब उस आत्माके बाबत व अन्य बातोंमें नाना मत बन गए। तत्त्वोंमें जो मत मजहब बन गए उनका मूल कारण यह है कि उन जिज्ञासुओंने अपने आपको आत्माका यथार्थ ज्ञान नहीं कर पाया। आत्माका यथार्थ ज्ञान न हो पानेसे ही अनेक मत बन जाते हैं। यह दर्शनका एक गहरा विषय है। वस्तुको जानने का उपाय स्याद्वाद है। किसी वस्तुका सर्वांग निर्णय करना चाहो तो स्याद्वादसे ही कर सकते हो।

जैसे किसी मनुष्यके सम्बन्धमें जानकारी करते हो तो कितना कितना जानते हो। यह पिता है, यह पुत्र है, यह गरीब है, यह धनी है, यह पंडित है, अनेक प्रकारकी बातोंको जानकारी करते हो, जानते हो, अपेक्षा लगाकर कि यह अमुकका पिता है, यह अमुकका लड़का है इन सारी बातोंको अपेक्षा लगाकर जानते हो। यदि अनेक बातें जानते हो तब सारी बातोंकी जानकारी कर पाते हो। इसी तरह आत्माके विषयमें जब सर्व प्रकारसे दृष्टि दोगे तभी आत्माका पूरा रहस्य समझमें आयगा। जब जीवके पर्यायमें तथा आत्माके स्वभाव

में दृष्टि दोगे तभी दोनोंमें अन्तर समझमें आयगा। जब जीवके मात्र लक्षणमें दृष्टि दोगे तो तुम्हें पता चलेगा कि जीवका लक्षण है चैतन्य, और इस चैतन्यस्वभावमें दृष्टि दो तो इसमें नाना रूप नहीं नजर आयेंगे। प्रत्युत अनादि अनन्त अहेतुक चैतन्यमात्र अद्वैत समझमें आवेगा, व्यक्तित्व नजर नहीं आयगा। अरे यह चैतन्यस्वभावतः अद्वैत है। इसमें किसी दूसरेका प्रवेश नहीं है तब फिर इसका नाना रूपोंमें अनुभव क्यों किया जाता है?

भैया! प्रत्येक जीवका अपना स्वरूप न्यारा न्यारा है। यह बात तो तुम्हें तब समझ में आवेगी जब कि अपने आनन्दस्वरूपमें दृष्टि दो। इस तरहसे जीवके बारेमें नाना बातें स्याद्वादसे विदित होती हैं। पर उनमें से किसी एकको पकड लो या किसी अपेक्षामें किसी अन्य अपेक्षाका मिलान कर दो तो देखो कि नाना मत बन गए हैं उन नाना मतोंके विवादमें पड़नेसे केवल कलह ही मत्थे पड़ेगा। उनसे आत्माको शांति नहीं मिलेगी। आत्माको शांति तो अपने आत्मस्वरूपके दर्शनमें होती है। और यदि शांति नहीं मिलती है तो समझो कि कोई उसका निमित्त अन्य है। क्योंकि आत्मा तो स्वयंके लिए अनाकुलस्वरूप है। यदि आनेमें कल्याणकी भावना है तो अपने अन्तरङ्गमें स्थित अपने आपको ज्ञानके द्वारा प्राप्त करके कल्याण कर सकते हो।

एक बात प्रसिद्ध है कि शिवभूति नामके एक मुनि थे। उनको पहिले गुरु महाराज ने यह सिखाया कि मा तुष मा रुष। इसका अर्थ यह है कि राग द्वेष मत करो। कुछ समय तक शिवभूति मुनि मा तुष मा रुष रटते रहे। उनके और सब शब्द तो भूल गए, पर माष तुष शब्द ही केवल याद रह गया। माष शब्दमें मूर्धन्य ष है। मा तुष, मा रुष, मा तुष, मा रुष बोलनेमें कुछ स्खलन हो गया सो माष तुष बोलने लगे। एक दिन चले जा रहे थे। मार्गमें एक महिला मिली। वह महिला उरदकी दाल धो रही थी। तो उरदकी दाल तो जानते होंगे जो महीन पीसी जाती है, जिस दालकी पिट्ठी करते हैं तो पिट्ठी बनानेके लिए जो उरद धो रही थी उस सफेद सफेद दालको अलग व उरदके छिलकोंको अलग देखा तो ज्ञान हो गया। उन्होंने देखा कि ये छिलके तो सब प्रकटमें अलग-अलग है, दालमें भी लगे थे तब भी वे अलग ही थे। उसी तरह यह देह तो छिलके के मानिन्द है और आत्मा उड़दके मानिन्द है। देहमें रहता हुआ यह आत्मा देहसे अलग है। शरीर, राग, द्वेषोंके बीचमें फंसा हुआ यह आत्मा है फिर भी आत्मा तो दालके माफिक है, और यह सब उपाधि उरदका छिलका है। इन समस्त झंझटोंके बीचमें यह आत्मा फँसा होनेपर भी उन सबसे न्यारा है। ऐसा जिन्होंने न्यारा अपने आपको नहीं समझ पाया है उनकी बड़ी दुर्गति होती है।

यह मैं आत्मा कैसा हूं और क्या हूं, इसका पता जिन्हें रहता है उन जीवोंके विषय

कषाय समाप्त हो जाते हैं। इस जगतमें जो अपने आत्मतत्त्वको भूल गया है उसकी दुःखकी लम्बी कहानी है। सो यदि कोई ज्ञानके साहित्यिक विकासमें भी नहीं पड़ा और यदि अपने आत्मतत्त्वको समझ गया है, तो उसे जीवनमें क्लेश नहीं होंगे, उसकी जीवनमें दुःखकी कहानी नहीं बनेगी, वह सदैव प्रसन्न और सानन्द ही रहेगा। हे भाई! ऐसा आग्रह करनेके लिए निष्पक्ष भावकी जरूरत है। अंतरमें शुद्ध आत्मकल्याणकी भावना हो तो उस आत्मा के दर्शन अपने आप हो जाते हैं। मुझे करना क्या है? मैं स्वतः सिद्ध परिपूर्ण पदार्थ हूं, ऋद्ध, समृद्ध कृतार्थ हूं। अतः अब यह मैं आत्मा अपने आपके आत्मस्वरूपकी दृष्टि करके अपने आपमें रमूं और सत्य स्वरूप बनकर आनन्दमग्न होऊं।

हर्षादिवासनाजन्यमौपाधिकविनश्वरम्।
तद्भिन्नं स्वं प्रपश्येयं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥११॥

कहते हैं कि यह अंतर्जगत्, इस जगतकी बात नहीं कह रहे हैं जो मुझसे न्यारा अपनी पृथक् सत्ता लिए हुए है, किन्तु अपने आपमें उठने वाले जो कल्लोल हैं, रागद्वेष आदि जो परिणाम हैं उनको कह रहे हैं कि यह जो जगत् है, यह जो मेरी दुनिया है, वह हर्षादिक वासनासे उत्पन्न होता है। यह अंतर्जगत् राग द्वेष, विषय कषायरूप है। मोही लोग कहते हैं ना जब किसी का इष्ट गुजर जाय तो, कि मेरी दुनिया मिट गयी। देखो लोग किसी पुरुष के बारेमें, व्यक्तिके बारेमें कल्पनाएं बनाकर दुःखी होते हैं। और कहते हैं कि मेरी दुनिया मिट गई। बाहरमें इसका कुछ है ही नहीं, मिटेगा क्या? हां, जैसी कल्पनाएं करता था पहिले, वे नहीं हो पातीं, यही उसकी दुनियाका मिटना कहलाता है। जो पहिले कल्पनाएं की वे तो अब नहीं रहीं। अब तो केवल उस इष्टको ही अपना सर्वस्व मानकर दुःखी होना रहा है, इससे वह अपने इष्टके मिट जानेसे ही यह समझता है कि मेरी दुनिया मिट गई। क्या मिट गया उसका, विचारो तो।

कोई किसीके शरीरसे प्रेम करता है क्या? अरे उस मर जाने वालेका घरमें कुछ रक्खा रहेगा क्या? चाहे वह खूब कमाता था, खूब अच्छी तरहसे परिवारका पालन-पोषण करता था। खूब धन दौलत एकत्रित कर ली थी पर हे भाई! वह इष्ट यदि मर गया है तो उसके शरीरसे भी कोई प्रेम नहीं करता। अरे देखो यदि कोई मर जाता है तो मुर्दाको उठानेके लिए कभी कोई पंच लोग जाते हैं तो घरके बच्चे स्त्री इत्यादि सब रोते हैं। रोते हुये कहते हैं कि अरे मेरेको कहां लिये जा रहे हो। यदि वे लोग कहें कि अच्छा, नहीं लिए जाते, तो फिर वे घरके ही सब हाथ जोड़कर कहेंगे कि कृपाकर अब ले जाइएगा। देखो भैया! न तो किसीका देहसे प्रेम है और न आत्मासे प्रेम है। इस मिट जाने वाले शरीरसे

कौन प्रेम करता है ? मुझे इस शरीरसे प्रेम करनेसे कोई लाभ नहीं। मुझे तो आत्मासे प्रेम करना चाहिए। तो आत्मासे भी प्रेम कौन करता है ? यह आत्मा तो चैतन्यस्वरूप पदार्थ है, सबसे निराला है। जैसा यह है तैसे ही अन्य चेतन पदार्थ हैं। उस चेतनसे भी कौन प्रेम करता है। इस जीवकी दुनिया तो अपना अपना अन्तर्विकल्प है। हे आत्मन् ! तुम्हारी आत्म दुनिया कहीं बाहर नहीं है। अपनी कल्पनाओंसे ही यह बात उठती है कि दुनिया अन्य है। कल्पनाओंके उठनेसे ही, पहिले उठने वाली कल्पनाओंके न होनेपर कहते हैं कि हाय दुनिया लुट गई।

एक मनुष्य लखपति है। उसको यदि एक हजारका नुक्सान उठाना पड़ गया तो उसकी शक्ल सूरत देखो तो वह उदास, दुःखी लुटा हुआ नजर आयगा। और जिस मनुष्य का गाँठमें केवल एक हजार ही रुपया है अधिक नहीं है, और अगर एक हजारका लाभ हो जाये तो वह प्रसन्न होता है, खुशियाँ मनाता हुआ रहता है।

भैया ! कल्पनाएं जहाँ जैसी जगीं वहाँ उसकी वही दुनिया है। अरे भाई, व्यर्थकी कल्पनाएं न करो। देखो २४ घन्टे व्यर्थकी कल्पनाओंमें ही पड़े रहते हो और दुःखी हुआ करते हो। भाई इन २४ घन्टोंमें १० मिनटका समय तो परमार्थमें दो तो जीवन सफल हो जायगा। २४ घन्टे आर्तध्यानमें ही लगा रहे तो उसका क्या जीवन है। इस स्थितिमें रहो कि २४ घन्टेमें कुछ मिनट भी आत्मचिंतनमें लगा सको। सत्य और असत्यका निर्णय कर लो और अपनेको सत्यमें सुरक्षित कर लो। शुद्ध चैतन्यमात्र एकवस्तु अपनेको सबसे निराला समझो। और यह समझो कि मेरा किसीसे कोई सम्बन्ध नहीं है। सचमुच मैं अन्य कुछ नहीं हूं, केवल चैतन्यस्वरूप, ज्ञानमात्र, ज्ञानानन्दघन एक वस्तु हूं। ऐसा अपने आपको निरखो तो जीवन सफल हो जाय।

सुनो भाई, जिन पदार्थोंसे राग कर रहे हो, मोह बना रहे हो वे तेरे कुछ नहीं हैं। जैसे तुम स्वतन्त्र हो वैसे ही वे सब हैं। अपने आपमें कुछ मिनट तक ऐसा अपने आत्म-स्वरूपका चिंतन करो कि बाह्य वस्तुओंका ध्यान न रहे। केवल अपने आत्मस्वरूपको ही अपने सामने रखो तो जितने भी विकल्प हैं, दुःख हैं, समाप्त हो जावेंगे। जैसे पहले बताया था कि जीवके बारेमें ज्ञातव्य तीन चीजें हुआ करती हैं—१. शब्द जीव, २. अर्थ जीव, ३. ज्ञान जीव। इसी तरह पुत्र तीन होते हैं—१. शब्द पुत्र, २. अर्थ पुत्र, ३. ज्ञान पुत्र। बताओ कौनसा पुत्र इन तीनोंमें तुमने अपना माना है। तुम्हारा शब्द पुत्र है क्या ? नहीं। यह पुत्र तो केवल शब्दोंमें ही लिखा हुआ है, वह पुत्र नहीं है। तो तुम्हारा अर्थ पुत्र है क्या, जो दो हाथ और दो पैर वाला है ? भैया, यह पुत्र तो अपने खुदके कषायमें रहने

वाला है, स्वार्थी है। इसलिए वह भी तुम्हारा नहीं हो सकता है। जो उस पुत्र के बारे में, जो ज्ञान बनता है वह ज्ञान पुत्र ही तुम्हारा पुत्र है। यह ज्ञान पुत्र जिस वक्त है उस वक्त ही तुम्हारा है अन्यथा वह भी तुम्हारा नहीं है। क्योंकि वह तो नश्वर है, मिट जाने वाला है और परमार्थसे देखो तो जब ज्ञान पुत्र है तब भी वह तुम्हारा नहीं है। तुम तो ध्रुव हो ज्ञान पुत्र अध्रुव है। ये आकुलताएं क्यों उत्पन्न हो जाती हैं, ये राग द्वेष भाव कैसे उत्पन्न हो जाते हैं। केवल कल्पनासे, उनके मिटनेका उपाय ज्ञानोपयोग है।

भैया देखो जब मंदिरमें पूजनके लिए जाते हो तो वहां पर इसीलिए तो जाते हो कि पूजन करें, स्वाध्याय करें, धर्म करें, सत्संग करें और राग द्वेषका उपयोग बदलें, ज्ञानका उपयोग हो। यदि राग द्वेषादिकी बातें वहां करते हैं तो उन बातोंसे आकुलतायें उत्पन्न होती हैं और वह आगे किस जगह आकुलताएं दूर करने करनेका उपाय बनायगा। मंदिरमें पूजन करने जाते हैं तो सत्संगसे, धर्मपालनसे, धर्म व्यवहारसे उनके राग द्वेषादिक विकारोंमें अंतर तो कुछ पड़ ही जाता है। इन राग द्वेषोंसे छुटकारा प्राप्त करनेके लिए ही व्यवहार धर्मका पालन किया जाता है।

प्रभु भक्ति करनेसे ईर्ष्या, द्वेष, मोह तथा अहंकार इत्यादिकी भावनाएं समाप्त हो जाती हैं, लोग ऐसा समझते हैं कि धर्मका पालन करनेसे हम और हमारी संतानें धर्ममें रह कर अपना कल्याण कर सकेंगे, यही सोचकर वे धर्मका पालन करते हैं, धर्ममें रहते हैं, यह तो व्यवहार परम्पराकी बात ठीक है किन्तु उसमें भी परमार्थ कार्य बने तो वह परमार्थतः धर्म है, वास्तवमें भक्तका यह प्रयोजन है कि वह रागद्वेषसे बच जावे और आत्माका अहित करने वाले जो विषय कषाय हैं उनको दूर कर देवे बस पूजा आदिका यही प्रयोजन है। भक्तिमें जो आनन्द समाया हुआ होता है उसका अनर्थ करने वाले ये विषय कषाय ही होते हैं, उन विषय कषायोंसे दूर होनेके लिए हमें धर्म व्यवहार करना है। देखो जो मनुष्य धर्मका पालन करनेके लिए, भगवान्का दर्शन करनेके लिए मंदिर आते हैं वे मन्दिर आनेकी तैयारीमें घर पर हैं तो भी तबसे धर्मका पालन करते हैं, क्योंकि स्नान करते हैं और स्नान करने के बाद यह भावना बनती है कि हम भगवान्के दर्शन करेंगे, यह प्रयोजन जो मनमें बसा होता है तो यही धर्मका पालन वहां है।

देखो दर्शन करने मंदिरमें हम पहुंचते हैं तो दरवाजे पर पहुंचते ही निःसही, निःसही का उच्चारण करते हैं। निःसही का क्या अर्थ है? निकलो, निकलो, निकलो, हटो, हटो हटो रास्ता खाली करो, रास्ता खाली करो—यही निःसही शब्दका अर्थ है। इसका व्यवहार से यह मतलब है कि जो भगवान्के दर्शन करनेके लिए भगवान्के सामने खड़े हों वे देवता

हों या मनुष्य, एक तरफ हो जानेकी कृपा करें। दर्शन करने वाले उन लोगोंको चाहिए कि जो भगवान्‌के सामने खड़े हैं वे हट जावें। यह उनकी अपने देवके प्रति विनय होगी। वे अपने एक तरफ हो जावें और आगतको दर्शन कर लेने दें। निःसही का अर्थ है कि रास्ता दो, हम दर्शन करना चाहते हैं।

परमार्थसे निःसही का क्या अर्थ है कि घरमें रहकर, दुकानमें रहकर, मेरे ही संगमें रहकर, जिन राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, लोभ इत्यादिकी आगमे तप्त हुए थे उनकी ओरसे कहा जा रहा है कि अब मै वीतराग प्रभुके दर्शन करनेके लिए मंदिरके भीतर जा रहा हूं सो राग द्वेष विषय कषायोंको कहा जा रहा है कि अब तुम दूर हट जावो। निःसही अर्थात् निकलो, निकलो, निकलो, हटो हटो हमें शांतिका सत्यका रास्ता दो। हम प्रभुके दर्शन करनेके लिए आ रहे हैं। हमारे आगे न रहो, सामनेसे हट जावो, हम मंदिरके भीतर घुस रहे हैं। कृपा कर दर्शनका मोका दो, इतना पवित्र होकर हम वीतराग प्रभुके दर्शन करना चाहते हैं। कहां तो इतना करनेका संकल्प होना चाहिए और कहां मंदिरके अन्दर गए तो क्या बातें हो रही हैं कि आज तुम्हारे घरमें क्या खाना बना था, आज क्या हो रहा है, शामको क्या खाना बनेगा, मुकदमे में क्या हुआ इत्यादि अनेक प्रकारकी व्यर्थकी बातें एक दूसरेसे करते हैं।

देखो भाई हम लोग कितने अविशुद्ध बन गए। कहां तो वीतरागके दर्शन करने, अपने संकल्प विकल्प दूर करने और अपने को स्वच्छ करने के लिए मंदिर गए थे, और कहां राग द्वेषकी बातें करने लगे। अरे प्रभु पर अपने न्योंछावर हो जावोगे तो दर्शन मिलेगा और यदि राग द्वेषों पर ही पड़े रहे तो प्रभुका दर्शन नही हो पायगा। राग द्वेषोमें पड़े रहना ही विकल्प है। मेरी जो चीज है, मेरा जो परिणमन है वह मेरे स्वरूपके अनुकूल ही होता है। मेरी चीज मुझे ही दुखित कर दे, यह तो बड़े गजबकी बात है। फिर मेरी चीज कहां रहेगी ? मेरी चाज मुझे ही दुखित करदे तो मेरी कैसे ? ये राग, द्वेष, मान, माया, मोह, विषय कषाय ही मुझे दुखित करते हैं तो ये सब मेरे नहीं हैं। मेरा तो केवल मैं हूं। मेरा वह नही है जो मुझे दुखित करे। यदि वह मुझे दुखित करता है तो वह मेरा कैसे है ? तो मेरा है क्या ? मेरा है स्वभाव। मैं तो केवल ज्ञानस्वरूप हूं और बाकी सब मैं नहीं हूं। जो मैं हूं वह अनादि हूं, अनन्त हूं, अचल हूं, अपने आपके द्वारा अनुभवमें आने योग्य हूं। ऐसा मैं तत्त्व स्वभावमात्र हूं। मैं यही स्वरूप सर्वस्व लिए रहता हूं। इसके आगे मेरा कुछ नहीं है।

भैया ! आत्मस्वरूपके दर्शन करने से सब संकल्प विकल्प क्षीण हो जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं। हम प्रभुके दर्शन करते हैं, वहाँसे हमको दर्शन भावसे यह संदेश मिलता है कि हे प्रभो ! आप चक्रवर्ती थे, आपके पास बड़ा धन साम्राज्य था, आपके ज्ञान हुआ, तो आपने वैभव विभूतिको नहीं चाहा उस वैभव विभूतिमें आप नहीं फंसे, अलग ही रहे और अपने आपको ही अपने उपयोगमें लगाया। आज आप जगतमें पूज्य बन गए। हे प्रभो ! मैं आत्मा भी आपके सदृश हूं ? जैसे आप हैं वैसा ही मैं हूं। इस जगत्के जीवका स्वरूप ही ऐसा है। हे आत्मन् ! तू भगवान समान अपने को निरख। तू अपने को यह समझ कि मैं भगवान् सदृश हूं। इस औपाधिक नश्वर अन्तर्जगतको त्याग करके अपने निर्वाणस्वरूप आत्मस्वभाव को निरखूं तो मेरा कल्याण है और बाह्य बातोंमें फंसने से मेरा कल्याण नहीं है।

वासनान्ते न संसार: संसारत्याग एष हि।
स्वदृष्टया वसानातीत: स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१२॥

आचार्योंका उपदेश है कि संसारका त्याग करो, संसारको छोड़ दो, संसारका छोड़ना कहलाता क्या है ? और संसार कहलाता क्या है ? क्या संसार इस दुनियाकी जगहका नाम है ? क्या इस लोकका नाम संसार है ? अगर इस दुनियाकी जगहका नाम संसार है और इस लोकका नाम संसार है तो इसको छोड़कर कहाँ जावोगे ? क्या कोई अलोकमें पहुंच जाओगे ? जगतके क्षेत्रका नाम संसार नहीं है, किन्तु राग द्वेषकी जो वासना बनी बस उसी का नाम संसार है। इस संसारका त्याग कर दो। इसका अर्थ यह है कि राग द्वेषकी वासनाओंका त्याग कर दो। प्रत्येक जीव भिन्न-भिन्न है, अपने स्वरूपमें ही है। वे अपने आपमें परिणमते रहते हैं। एकका दूसरेसे सम्बन्ध कुछ है ही नहीं, फिर किन्हीं परवस्तुओंमें राग द्वेष विकल्प करना क्या यह अज्ञान नहीं है। ज्ञान और अज्ञानका तो यह प्रमाण है कि जहाँ पर मूढ़ता है वहाँ पर अज्ञानता दीखती है और जहाँ पर मूढ़ता नहीं है वहाँपर ज्ञान प्रसन्न हुआ दीखता है। जहाँ पर मूढ़ता हो वहाँ पर सम्यक्त्व नहीं हो पाता है। और जहाँ पर मूढ़ता है वहाँ पर मिथ्यात्व ही है। तो यह मिथ्यात्व ही संसार है। जब तक यही संसार है तब तक जीव को क्लेश हैं। यदि संसारका त्याग कर दो अर्थात् इन राग द्वेष विकारादि वासनाओंको त्याग दो तो सारे क्लेश समाप्त हो सकते हैं।

सो भैया ! राग द्वेषकी वासनाओंका नाम ही संसार है। कोई यहाँ कहे कि राग द्वेषकी वासनाओंको तो संसार कहा। राग द्वेषको ही संसार क्यों न कह दिया ? उत्तर इसका यह है कि द्रव्यमें प्रति समय एक एक परिणाममें पर्याय हो रही हैं। तो जीवमें भी प्रति समय एक एक पर्याय होता चला जाता है। एक समयमें दो समयके पर्याय नहीं होते,

को समयमें एक पर्याय नहीं, तब रागके पर्याय भी प्रति समय एक एक चलते आ रहे हैं, यह सूक्ष्मदृष्टिका विचार किया जा रहा है। लेकिन एक समयका राग पर्याय अनुभवमें नहीं आता है और एक समयके राग पर्यायसे ही जीव क्या राग महसूस कर लेगा, ऐसा नहीं होता है किन्तु उपयोग बहुत समय की राग पर्यायोंका ग्रहण करता है। इस कारण सूक्ष्मदृष्टिसे विचार करो तो रागकी संतानका अनुभव होता है। दूसरी बात यह है कि राग द्वेषमें जो आसक्ति हो जाती है उसको संसार कहा गया है। इसी कारण सम्यग्ज्ञान होने पर कदाचित् राग द्वेष रहता भी है तो भी उनकी गिनती नहीं की गयी। वे मिट जावेंगे इसलिए वासनाको संसार कहते है। इस वासनाके विनष्ट होनेको ही संसारका त्याग कहते हैं। संसार के ये प्रत्येक जीव ज्ञायकस्वरूप हैं, परमात्मतत्त्व स्वरूप हैं, उनका कोई भी अन्य जीव न तो मित्र है और न शत्रु ही है। वह जीव है, ज्ञानस्वरूप है, अपने ज्ञानमें परिणमते रहते हैं, उपाधिकी विशेषताके अनुसार उनमें विकार भी होते रहते हैं, उनमें विकार उनकी ही परिणतिसे होते है, किसी अन्यकी परिणतिसे नहीं होते हैं। ऐसा स्वयं विज्ञानघन जगत्के सब जीव हैं। उनको कैसे माना जाय कि वे शत्रु हैं? कोई भी मेरा शत्रु नही है, कोई ज्यादा बिगड़ता है तो जो उसे विकार बनाना होगा, वह बनावेगा, वह अपने आपको ही बनावेगा, मेरा वह कुछ नहीं बनावेगा, तब फिर मेरा दुश्मन कौन? कोई नही।

भैया! ज्ञानदृष्टिसे देखो तो इस जगत्में मेरा शत्रु कोई नहीं है। जिस आत्माका मन ऐसा रहता है कि यह मेरा दुश्मन है तो वह विकल्प उसका दुश्मन बना रहता है, उसका शत्रु बना रहता है, पर परमार्थसे देखो तो इस जगत्में कोई किसीका शत्रु नही। जो दूसरेको शत्रु समझता है, वह विकार कर रहा है। वह विकार अपनेको करता है, अपने लिए करता है और अपने द्वारा करता है। मेरा प्रभु तो मैं हूं, मेरेसे बाहर मेरा कुछ नहो है तो फिर मेरेसे बाहर मेरा दुश्मन कोई कैसे हैं? इसी प्रकार जिसको मित्र मान रहे हो, परिवारको इष्ट मान रहे हो वह भी तुम्हारा नहीं है। तुम्हारा स्वरूप ही तुम्हारा सब कुछ हो सकता है। अपना स्वयं 'मैं हूं, अपने स्वरूपमें बर्तता हूं, उपाधिकी विशेषताके अनुसार विकार भी करता हूं, मोह भाव भी करता हूं, राग भी करता हूं, किन्तु अपने आपमें करता हूं।

भैया! गुरु जी एक घटना बताते थे कि एक गाँव खुरई सागरके पास है। श्रीमंत सेठ वहाँ पर एक बहुत बड़े आदमी थे, उनके लड़के भी आज हैं, वे भी सेठ हैं। वह सेठ बड़े गर्म दिमागके थे। उनकी स्त्री गुजर गयी थी, उनकी दूसरी शादी भी हो गयी थी। जब सेठानी शादीके बाद सेठके घर आयी तो सेठानीकी सखियोंने मित्राणियोंने समझाया कि

देखो सेठ बड़े गर्म दिमागके हैं। अगर कहीं पैंठ बिगड़ जाते हैं तो मुश्किल पड़ जाती है, सेठानी भी चतुर थी। उसने सेठके बारेमें तो सुन ही लिया। एक दिन सेठके सिरमें दर्द था। स्त्रीको खबर भिजवाई तुरंत दवा लाम्रो। सेठानीके मनमें ऐसा विचार आया कि अगर कहीं मैं अभीसे दब गयी तो जिन्दगी भर दबना पड़ेगा। इसलिए आज सेठको कोई कला दिखाऊं तब तो छूट पाऊंगी। बस, सेठानीने अपने सिरमें दर्द बना लिया। बोली अरे मेरा तो भारी सिर दर्द कर रहा है। मैं क्या करूं? सेठ जी की नयी नयी शादी हुई थी, उन को अपनी स्त्रीकी खातिर तो करनी ही थी। इसलिए वह अपने सिरके दर्दको भूल गए और अत्यन्त व्याकुल हो गए। अब सेठ जी अपनी बात तो भूल गए और मोहमें सेठानी जी की सेवा करने लगे। मान लिया कि सेठानीके सिरमें दर्द भी हुआ हो तो क्या सेठकी वेदनाने उसकी वेदना ने उसकी वेदनाको बनाया? नहीं, उसने तो केवल सेठके प्रति राग बना लिया था। उस रागने ही सेठानीकी वेदनाको बनाया।

कोई जीव कहते हैं कि हम तुमसे राग करते हैं, हमारा तुमसे बड़ा राग है। ऐसा करनेसे वह राग करे तो क्या हमारे रागसे राग कर रहा है? नहीं, वह स्वयं ही कल्पनाएं बनाकर एक नया राग और खड़ा कर लेता है। किसी जीवकी परिणतिसे किसी जीवको कुछ हो जाय तो यह नहीं हो सकता है। कितने ही आदमी ऐसे रागी होते हैं कि वे दूसरेके प्रति रागी हैं, तो क्या एकका दूसरेमें राग पहुंच गया? नहीं, एक दूसरेसे सम्बन्ध ही क्या? तो जब प्रत्येक जीव जुदे जुदे हैं, किसीसे किसीका सम्बन्ध नहीं है तो ऐसी स्थितिमें अन्य पदार्थोंको अन्य जीवोंको उपयोगमें लेकर ख्याल और राग बनाये रहे, इसको तो मूढ़ता ही कहेंगे। मूढ़ता कहा जाय या मोह कहा जाय। दोनोंका शाब्दिक अर्थ एक है। अगर मूढ़ कहें तो संसारके लोग कुछ बुरा मान जावेंगे, और यदि मोही कहेंगे तो लोग शायद बुरा न मानें। बात तो एक ही है, और है भी क्या? समझका फेर, तो बस इतना ही तो जाल है, जाल क्या कहीं अपनी भूमिकासे बाहर है, नहीं। जितना भी जाल है, दन्द है, फन्द है वह सब इस इन्द्र आत्मामें है। यह तो इन्द्रजाल है। यदि इससे जुदाइगी हो जाय अर्थात् अन्य जीवको अपना उपयोगमें इष्ट अनिष्ट न करें, बाह्य वस्तुवोंका ख्याल न करे, राग द्वेष न बनावें तो जाल नहीं है। वह मूढ़ और मोही नहीं कहा जावेगा।

अरे यह कितना जाल है? बहुत छोटा सा जाल है। केवल समझना भर है। मैं हूं और अपने स्वरूपमें हूं। ऐसा न देखकर यह इसका कुछ है, यह इसका कुछ कर देता है इस प्रकारकी जो समझ बन गयी है बस यह समझ ही जमजाल है, जब गृहस्थीका फंदफंद सिर पर आ जाता है, लड़का बीमार है, अमुक बीमार है, अमुक बीमारी है, यह करना है,

अभी मुकदमा बाकी है, मुकदमे कई हैं इस प्रकारसे कहते हैं कि बड़े जगजालमें फँसे हुए हैं। अरे बाहर कोई जाल नहीं है, न जाल दुकानमें है, न लड़के बच्चों वगैरामें है, न आत्मतत्त्वमें है। केवल अपने आपके आत्मस्वरूपको शुद्ध, सबसे निराला उपयोगमें नहीं देखता है और बाहरमें ही मुख कर लिया है तो यही तेरा जगजाल बन गया है। भैया! अपनी बाह्य दृष्टिको हटा दे अपनी राग द्वेषकी भावनाको मिटा दे तो यह तेरा जगजाल मिट जायगा। देखो कितने तो जगजाल हैं और कितने से उपायमें ही मिट जाते हैं, परन्तु कितना कठिन लग रहा है? कुछ विचार तो करो, उन सब कठिनाइयोंका कारण राग द्वेषकी वासना है। यह वासना अगर मिट जाय तो क्लेश मिट जाएँ और अगर यह वासना नहीं मिटती है तो क्लेश नहीं मिटेंगे। यह कर्मबन्ध वासनासे ही होता है। जिन कषायोंका उदय है उन कषायोंसे होने वाली कर्मप्रकृतियोंमें ज्यादा अनुभाग पड़ जायगा, पर बंध सबको पड़ जायगा।

हे आत्मन्! क्रोध क्यों कर रहे हो? मान, माया, लोभ इत्यादि विकारकी वासनायें क्यों कर रहे हो? यदि तू इन वासनाओंसे दूर है तो क्लेश दूर है और यदि इन वासनाओंको अपनेमें बनाए हो तो आजीवन क्लेश रहेंगे। इसलिए इन वासनाओंको मिटानेका उपाय करना चाहिए। गृहस्थोके चरित्रको आचार्य गुणभद्र स्वामीने बताया है कि वह तो हाथीका स्नान है। हाथीने स्नान किया और बाहर गया कि धूलको सूँडमें भरकर अपने ऊपर डाल लिया। इस तरहसे वह फिर गन्दा हो गया। गृहस्थी भी सीमा बना करके त्याग करते हैं, दस लक्षणके दिन आ गए तो कहते हैं कि अब हम काम नहीं करेंगे, दुकानमें नहीं बैठेंगे, धर्मके काम ज्यादा करेंगे, अब हम पाक बनेंगे पर यह वासना बनी हुई है कि दसलक्षणके दिन निकाल तो दो, फिर जल्दीसे जाकर दुकानमें बैठेंगे, यह खायेंगे, वह करेंगे। इस प्रकारकी वासना मनमें भर लेते हैं। अरे यह तो वास्तविक त्याग नहीं हुआ। सीमा बना करके त्याग करना ठीक नहीं होता है। सप्तमीको नियम कर लिया कि नवमी तक उपवाससे रहेंग पर यह वासना बनी हुई है कि नवमीके आठ बजने तो दो जल्दीसे खाना बनावेंगे, खाना खा लेंगे। यह कर लेंगे, ऐसी वासना बनी होती है। साधुवोंके चरित्रमें देखो तो ऐसी वासना नहीं बनी होती है। उनको यह पता ही नहीं रहता है भोजन करने जायेंगे कि क्या करेंगे? उनको यदि भूख लगेगी तो उठेंगे नहीं तो न उठेंगे। इसी तरह अनंतचौदसका व्रत है, तो गृहस्थी लोग यह वासना बनाए रहते हैं कि अनन्तचौदसके बाद पूर्णिमाके ७ बजने तो दो। पर यह ख्याल साधुवोंके नहीं होता है। वह साधु तो बच्चोंकी तरह ही हैं। यदि भूख लगी तो उठके हो जावेंगे, नहीं तो नहीं खड़े होंगे, पर गृहस्थी ऐसा नहीं कर पाता है। यही तो गृहस्थ और साधुमें फर्क पड़ गया है। साधुके वासना नहीं होती है और गृहस्थी वासना

बनाए रहता है । क्या कारण है ? गृहस्थके आरम्भ व परिग्रहका सम्बंध है । तो इस वासना का विनाश कैसे होगा ? अपने सहजस्वरूपकी दृष्टिसे कि यह मैं आत्मा सहज ज्ञानस्वरूप हूँ, जाननहार हूं, यह ही मेरा स्वरूप है, यह ही मेरा धर्म है, वामन यह अमूर्त है, अनन्तानन्द भावोंको लिए हुए है, ऐसे ज्ञानानन्द भावोंमय यह मैं आत्मा हूँ, इसमे किसी दूसरेसे सम्बन्ध नहीं है, इसके स्वभावमें विकार नहीं हैं। रागद्वेषकी वासनाएं बनाना इसका काम नहीं है। रागद्वेषकी तरंग यह गड़बड़ बात तो उपाधिके सान्निध्यमें उठ जाती है।

सिनेमाका परदा स्वयं चित्रित नहीं होता है। तो कैसे चित्रित हो जाता है ? यह देखो सामने फिल्म आ गया, फिल्म उपस्थित हुआ और फिर वह चला गया। वो परदा अपने आपमे उठकर चित्रित नहीं हो गया। परदका चित्रित हो जानेका काम ही नहीं है, चित्रित तो फिल्मके निमित्तसे हो गया है। इसी प्रकार यह आत्मा स्वयं राग द्वेष नहीं बनाता। आत्माका स्वभाव ही राग द्वेष बनाना नहीं है। कर्म उपाधिका निमित्त पाकर यह चित्रित होता है। इन राग द्वेषोंके जो संस्कार बनते हैं वे इन वासनाओंके कारण ही क्लेश होते है, ये सब क्लेश इस आत्मदृष्टिके द्वारा ही नष्ट हो जाते हैं। मैं एक ज्ञानस्वभाव-हूँ, एकरम हूँ। ज्ञानस्वभावमात्र, सबसे निराला, ज्ञानमय, शुद्ध, दर्शन, ज्ञान तथा सम्यक्त्व-मय हूँ, इसस अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं हूँ। परमाणुमात्र भी मेरा कुछ और नहीं, ऐसा उपयोग बनाने से ही इन रागादिक वासनाओंका विनाश होता है और जब वासनाओंका विनाश होता है तो क्लेश मिट जाते हैं।

जब कोई राग होता है तो देखनेमें आता है कि जल्दी-जल्दी प्रवृत्ति होती है और जब उसकी वासना होती है तो जल्दीकी प्रवृत्ति होती है। जब वासना नहीं होती है तो बाह्य दृष्टि भी समाप्त हो जाती है। जिसके फोड़ा नहीं है वह मलहम पट्टी क्यों लगावे ? जिसके बुखार नहीं है वह पसीना क्यों निकाले ? जिसके वासनाएं नहीं है वह आकुलताएं व्याकु-लताएं क्यों करेगा ? जब वासनाका रोग होता है तो इलाज करना पड़ता है। जिसकी वासनाएं समाप्त हो जाती है फिर इलाज नहीं करना पड़ता है। इन वासनाओंका त्याग तो अपने आपकी दृष्टिसे ही होगा। मैं हूं, अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें हूं। परके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमे मैं नहीं हूं। मैं हूं, और स्वयं परिणमनशील हूँ, इस कारण निरन्तर परिणमता रहता हूँ, परिणमता ही चला जाता हूँ, इसकी दूसरेसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। यह ज्ञानरूपकी परिणति तो अपनी परिणति है। स्वभावके कारण अपने ज्ञानकी परिणति चलती आ रही है। इसका बाह्य पदार्थोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

जैसे चौकी, कमंडल, आदि पदार्थोंका ज्ञान हुआ तो इसका चौकी, कमंडल किसी चीजसे सम्बन्ध नहीं है। मेरेमें जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसमें इस चौकी और कमंडलने कोई मेरी मदद कर दी है क्या? अरे ये कोई भी मददगार नहीं है। खुद ज्ञानकी परिणति होती रहती है और ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। हम लोग तो आवरण लिए हैं इस कारण ज्ञानकी कुछ कमी है और यह आवरण मिट जाय तो ज्ञान सर्वविश्वका उत्पन्न हो जाय। फिर तो सारा विश्व अपने आपमें जाननेमें आयगा। तो इस सारे विश्वकी मेरे जाननेमें क्या , क्या? सभी द्रव्योंके प्रति ऐसी निगाह रहे तो सम्यग्ज्ञान प्राप्त होनेका यह अच्छा उपाय है। तब संसारके क्लेश दूर करनेके लिए हमें अपने आत्मस्वरूपकी आराधना करना चाहिए और आत्मस्वरूपकी आराधना, देवकी आराधना, गुरुकी आराधना, स्वाध्याय, संयम, तप आदि करना चाहिए। मुफ्तका कूड़ा कचड़ा अपने घरमें आ गया है उसका दान किया जाय, त्याग किया जाय। ये ६ कर्तव्य गृहस्थके बताए गए हैं।

देखो भाई! कूड़ा कचड़ा क्या? धन वैभव ही कूड़ा कचडा है। उसके प्राप्त करनेमें आपकी कोई करतूत है क्या? आपका स्पर्श है क्या? अरे वे तो भिन्न-भिन्न सत्ता वाले हैं। अगर एक जगह आ गए तो मुफ्त ही तो हैं, आत्माका तो आकार अपने ज्ञानपर्यायमें है। इस वैभवमें तुम्हारा क्या गया? कुछ गया तो नहीं। इसलिए यह वैभवविभूति मुफ्त ही तो है। इसलिए यह कूड़ा कचड़ा कहलाया, धन तो जड़ है। जीवका स्वरूप चैतन्य है, मेरा इसमें कुछ नहीं है। यदि यह कूड़ा कचड़ा नहीं है तो तीर्थंकर चक्रवर्तीने इसे कैसे त्याग दिया? विभूतिका त्याग देना क्या उनका बेवकूफी समझना चाहिए? इस आत्मस्वरूपको देखने और धर्म करनेके प्रसंगमें निश्चयकी ही बात सामने रखी जाती है और उसमें उलझनेकी बात सामने नहीं रखी जाती है।

देखो भाई २४ घंटे हैं। २३ घंटेका समय तो विकल्पोंमें लग गया, पर एक घन्टेका जो समय बचता है उसमें २-४, १०-१५ मिनटका समय तो आत्मस्वरूपके चिंतनमें लगाओ। अपनेको सबसे निराला ज्ञानमात्र विकल्प भावोंसे परे अनुभव करो। यदि इस प्रकारका अपने आपको अनुभव करो तो शान्ति प्राप्त हो सकती है और यदि अपने को लुटेरों भटेरोंसे मिला हुआ अनुभव करोगे तो शांति नहीं प्राप्त हो सकती है। अपनेको ज्ञानस्वरूप, सबसे निराला विलक्षण चैतन्यमय अपने आपको अनुभव करो और २४ घटेमें २, ४ मिनट तो अपने आत्मस्वरूपमें रमो तो जो आकुलतायें व्याकुलतायें नष्ट हो जावेंगी।

हम मूर्तिकी मुद्राका दर्शन करते हैं तो हमें शिक्षा मिलती है कि मूर्तिकी तरह ही

शांत अपने आपको निरखूं अपने आपको उस मूर्तिकी तरह शांत निरखे बिना शांति नहीं मिलेगी। इस प्रकारसे मानो कि वीतराग मुद्रासे अपनेको शिक्षा मिलती है।

जहां पर वासनाएं है वहां दुःख है, वहां व्यसन हैं। तो भाई ये व्यसन तो ज्ञानके द्वारा ही नष्ट हो सकते हैं। मैं तो ज्ञानमात्र हूं, कृतकृत्य हूं, परिपूर्ण हूं, अधूरा नहीं हूं, ज्ञायकस्वरूप हूं, ऐसा ही तुम्हें अपने आपको निरखना है। यही तो इस आत्माका काम है। इस आत्माका इसके आगे और कोई काम नहीं है। इसलिए अपने स्वभावमें दृष्टि हो तो वहां वासनाएं समाप्त हो जावेंगी, और वासनाओंके समाप्त हो जानेसे सारे क्लेश समाप्त हो जावेंगे।

कामे बोधपरिपाद्यर्थेऽनर्थे तन्मूलधर्मके।
त्यक्त्वादरं स्वमर्चेयं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१३॥

पुरुषार्थ चार होते हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्मके मायने पुण्य करना, परोपकार करना, दूसरोंकी सेवा सत्कार करना। व्यवहारसे धर्मके मार्ग तो कितने ही हैं—दान करके, परोपकार करके, किसी भी प्रकारके गरीब पुरुषोंको खिला-पिला करके इत्यादि अनेक प्रकारसे धर्म किया जा सकता है। अब दूसरी बात है—अर्थ। अर्थके मायने हैं धन कमाना। धन कमानेका पुरुषार्थ करना, इसीके मायने हैं अर्थ पुरुषार्थ। काम पुरुषार्थके मायने है घरका पालन पोषण करना, समाज तथा देशके बारेमें कुछ सेवाभाव उत्पन्न करना विषय-भोग सेवना इत्यादिके मायने हैं काम पुरुषार्थके और मोक्ष पुरुषार्थ तो मोक्ष है ही। यह मोक्ष पुरुषार्थ अन्य तीनों पुरुषार्थोंसे अच्छा है। धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ भी गृहस्थावस्था मे किसीकी अपेक्षा कुछ अच्छे हैं, मगर सर्वथा अच्छे नहीं कहेंगे।

अब जरा क्रमसे एक एककी खबर लो। पहले कामको लो। काम निन्दनीय होता है, कामका अर्थ पालन-पोषण और काम वासना दोनों ही हैं। काम ज्ञानका बैरी है। जैसे विषयोंमें आसक्ति है, प्रीति है तो वहां ज्ञानका काम तो नहीं चलता है। कामका पुरुषार्थ है ज्ञानका दुश्मन। अब अर्थ पुरुषार्थको लो। धन तो अनर्थका मूल है अर्थात् धनसे अनर्थ होता है। धनका काम तो केवल अनर्थ है। धनके होनेपर यदि विवेक है तब तो धन बनेगा और यदि विवेक नहीं है, मोह है तो मोहके होनेसे प्रकृति ऐसी हो जाती है कि पाप करते हैं, दूसरोंको सताते हैं, क्रोध करते है, छल दम्भ धोखा इत्यादि करते हैं, धर्म पुरुषार्थ, अर्थ पुरुषार्थ व काम पुरुषार्थ दोनोका कारण है। पुण्यका और क्या काम है? खूब कमाई आ रही है, खूब सम्पत्ति भोगकी सामग्री मिल रही है सो पुण्य पुरुषार्थकी यह प्रकृति है कि काम

पुरुषार्थमें और धर्म पुरुषार्थमें सहयोग दे। पुण्य पुरुषार्थका और क्या काम है ? यहाँ आत्म-धर्मकी बात नहीं कह रहे। उसमें यदि रम गए तो इससे अच्छा और क्या काम है ? तब तो फिर सारे काम बन गए। यहाँ तो पुण्यकी बात लेनी है। इस पुरुषार्थसे क्या काम बना कि धन सम्पत्ति मिल गयी, मांगी हुई सामग्री मिल गयी। यही हुई धर्म पुरुषार्थकी बात और दूसरे पुरुषार्थकी पोलको तो सुन ही लिया। काम ज्ञानका दुश्मन है, अर्थ अनर्थका मूल है और दोनों ही दुश्मनको बढ़ावा देने वाला है यह धर्म (पुण्य) पुरुषार्थ।

इन तीनों पुरुषार्थोंका सम्यग्ज्ञानी पुरुष आदर नहीं करता है। यदि पुरुषार्थ करना ही है तो ज्ञानका पुरुषार्थ करो। परम पुरुषार्थका रास्ता ज्ञान है। यदि ज्ञान है तब तो परम पुरुषार्थ हो सकता है। नहीं तो मोक्ष पुरुषार्थ नहीं हो सकता है। अभी देखो शान्ति, संतोष, सुख और आनन्द इत्यादि उसी अवस्थामें आते हैं जब कि अपने अंतःकरणमें विषय-कषायोंका अनुभव न हो। यदि विषयोंको लगाव है, धन-वैभवका लगाव है तो शान्ति, सुख, आनन्द इत्यादि कैसे प्राप्त हो सकते हैं ? जिनका लगाव इन सबमें होगा, उन्हें दुर्गतिका पात्र बनना पड़ेगा। मनुष्यको संकटोंसे बचाने वाला केवल ज्ञान ही है और इसका कोई शरण नहीं है। घरमें स्त्रीके, पुत्रके हजार गुण हों, पर समझो कि कोई देवता हमे नहीं मिल गए हैं। अपने मार्गमें ही केवल विचार बना लेते हैं कि मेरा अच्छा समागम हुआ, हम लोग सुख से हैं। देखो भाई इस तरहसे अपने परिवारको देखकर और अपने धनको देखकर सुखी हो रहे हैं।

अज्ञानी जन अपने ज्ञानको इन बाहरी चीजोंमें ही फसाए हुए हैं। बाह्यमें ज्ञानका फंसाना ही आस्रवका कारण होता है। जो कहते हैं कि धर्म, अर्थ, काम ये तीनों पुरुषार्थ वास्तविक पुरुषार्थ नहीं हैं। मोक्षका पुरुषार्थ ऐसा है कि जिससे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। और यदि अपना उपयोग मोक्ष की प्राप्तिका ही बने तो बात उत्तम है। भैया ! जो तुम्हें चार पांच आदमी मिल गए है, जिनको तू अपना सर्वस्व समझ रहा है उनसे ही क्या तेरी गुजर हो जायेगी। उस पारिवारिक बंधनमें पड़ा हुआ यदि तू मौज करता रहा तो क्या तेरा पूरा पड़ जायगा। तेरा पूरा तो नही पड़ सकता। शांति नहीं मिलेगी। यह जीव जहां जाता है, पहुंचता है वहीं पर रम जाता है। तो और आगे नही पहुंचता है।

एक स्थानकमें कहते हैं कि एक राजा थे। मुनिके दर्शन करनेके लिए गए। राजाने अपने बारेमें मुनिसे पूछा कि महाराज मेरा परभव कैसा गुजरेगा, अब मैं मरकर क्या बनूंगा मुनिने अवधिज्ञानसे सोचा और कहा कि अमुक दिन, अमुक समयमें, अमुक स्थानपर तुम मर कर विष्टाके कीड़ा बनोगे। अब राजा अपने घर आया। बड़ा उदास था। अपने लड़के

ने कह दिया कि बेटा मैं अमुक दिन, अमुक समय पर, अमुक स्थान पर मरकर विष्टामें कीड़ा बनूंगा। तुम हमें एक लकडीसे मार डालना। मैं तो राजा हूं और कीड़ा मकोड़ा बनूंगा क्यों। मैं तो इस जगतमें कीड़ा मकोड़ा बनकर न रहूंगा। राजा मर गया और कीड़ा बन गया। लड़का एक लकड़ी लेकर पहुंचा। जिस विष्टामें राजा कीड़के रूपमें बैठा हुआ था उसीमें लकड़ीसे लड़के ने मारना चाहा, पर वह कीड़ा उसी विष्टामें घुस गया। देखो भाई वह कीड़ा मरना नहीं चाहता था। इस जगतमें यह जीव जिस गतिमें जन्म लेता है वह वहांसे अन्य गतिमें नहीं जाना चाहता है।

देखो नाम प्रकृतिमें गतियां चार मानी गई है। नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव। इसमें दो गति नरक व तिर्यंच पाप हैं। और मनुष्य व देव ये दो गतियां पुण्य हैं तथा आयु की चार प्रकृति हैं—नरकायु, मनुष्यायु, तिर्यंचायु व देवायु। जिसमें आयुकी तीन तिर्यञ्च, मनुष्य और देव तो पुण्य प्रकृतिमें हैं। केवल नरकायु पाप है। यह फर्क इनमें कैसे आया? कोई तिर्यंच या मनुष्य देव जीव यह नहीं चाहता कि मैं मर जाऊं। तिर्यंच नहीं चाहता कि मैं मर जाऊं। तिर्यंचकी जो आयु प्रिय हो गयी, किन्तु तिर्यंचको जो अवस्था गुजर रही है उसे वह नहीं चाहता और मरना भी नहीं चाहता। यह जहां जाता है वहीं मस्त हो जाता है। केवल नारकी जीव ही चाहते हैं कि मैं मर जाऊं, अन्य कोई भी मरना नहीं चाहते हैं। इस कारण नरकायु पाप प्रकृति है बाकी ३ आयु पुण्य प्रकृति है।

हे आत्मन्! विवेककी पूजा है।' जिनको हम भगवान समझकर पूजा करते हैं तथा ध्यान लगाते हैं, भक्ति करते हैं उनके कुछ ज्ञानको जरा ही नहीं आती है। कितना ही हम माथा रगड़ते हैं, पर वह हमारी तरफ देखते भी नहीं। देखो भैया! बहुत दिन भक्ति करते हो गये, उनकी आराधना करते हो गए फिर भी वे हमारी तरफ देखते भी नहीं माने कुछ भी राग नही करते और फिर भी हम पूजन करते, पाठ भी करते चले आ रहे हैं। देखो भाई, इतने दिन भगवानका पूजन करते हो गए उन्होंने कभी यह भी नहीं कहा कि चलो यह ले लो। हम कितनी ही भक्ति करें वे तो सकल ज्ञेय ज्ञायक निजानन्दरसलीन हैं। देखो—प्रभु हमसे बोलते भी नहीं, बहुत दिन बीत गए, वर्ष बीत गए, बीस वर्ष बीत गए, युग बीत गए, हमारे लिए प्रभुने कुछ नहीं किया। अरे थोड़ासा हमसे बोल दें तो हमारा दिल तो ठंडा हो जाय, मगर कुछ नहीं किया। फिर भी हम उनका पूजते जा रहे हैं। उनके लिए हम न्योछावर होते चले जा रहे हैं। कुछ तो बात भगवानमें बड़ी है तभी तो हम उनको पूजते हैं। उन भगवानने जो कुछ अपने लिए किया है वह ठीक ही किया है। जगसे मोह छोड़कर, ममत्व छोड़कर अपने आपमें स्वयं बस गए, अपनेको अपने आपमें ही जान लिया,

वैभव विभूतिको कुछ नहीं समझा। आज प्रभु निष्कम्प निष्काम सर्वज्ञ सर्वदर्शी अनन्तानन्दमय हैं, सर्वोत्कृष्ट हैं।

हे आत्मन्! ये बाहरके पदार्थ भोग साधन हैं क्या, बतलाओ। एक तराजूमें सेर भर मेढक तौलो तो क्या तौल सकोगे? अरे वे उछल जावेंगे। कहीं इधरसे उछल गया तो कहीं उधरसे उछल गया। इसी तरह बाहरी पदार्थोंकी व्यवस्था बनाकर कोई चाहे कि हम आराम करलें तो कर सकते हैं क्या? नहीं कर सकते हैं। बाह्य पदार्थोंकी हालत भी ऐसी ही है कि यह आया, वह गया और वह आया, यह गया। इस तरह बाह्य पदार्थोंको अपना उपयोग बनाकर हम आराममें नहीं रह सकते हैं। और अपनी व्यवस्था बना कर हम आराम कर लें यह सुगमतया हो जाता है। ज्ञानदृष्टि बना लें फिर आरामसे रहें। ये धर्म, अर्थ और कामपुरुषार्थ हमारी विपत्तिका कारण बनते हैं, हमारी अशांतिका कारण बनते हैं।

गृहस्थोंको यह बतलाया गया है कि धर्मपुरुषार्थ, अर्थपुरुषार्थ और कामपुरुषार्थ तीनोंके बिना काम नहीं चलता है। अर्थात् बिना धर्म किए, धन कमाए, काम किए और मौज उड़ाए काम नहीं चलता है, सो भाई वे तीनों पुरुषार्थ गृहस्थको करने पड़ते पर उनको बताया है कि तीनोंमें बराबर यत्न करना चाहिए। और अगर कोई नहीं करता है बराबर केवल धर्म (व्यावहारिक पुण्य) करता है या केवल धन कमानेमें ही लगा रहता है या केवल काममें ही लगा रहता है तो उस गृहस्थीका गुजारा चलनेका नहीं है। अगर केवल धर्म ही धर्म करते हो तो मुनि बन जावोगे या परिग्रहत्यागी श्रावक बन जावोगे और मुनि बन गए तो तुम्हारा गुजारा चल जायेगा। पर एक गृहस्थीका गुजारा त्रिवर्ग बिना नहीं चलेगा। उसकी गृहस्थीका काम हो नहीं चल सकता है। केवल धर्मको ही सोचकर रह जावे तो गृहस्थका गुजारा नहीं चलेगा। जैसे साधुवोंकी बात है कि खाना मिल गया तो खा लिया और न मिला तो कोई बात नहीं है सो इस तरहसे उनका तो गुजारा चल जायगा पर एक गृहस्थीका गुजारा नहीं चलेगा। यदि कोई गृहस्थीमें हो फंसा रहे, धन ही धन कमानेमें पड़ा रहे, अपने परिवारका पालन पोषण ही करनेमें पड़ा रहे तो क्या उसका गुजारा चल जायगा? नहीं? उसका गुजारा नहीं चलेगा। और कोई ऐसा हो कि काम ही काममें रहे, विषयोंमें ही मस्त रहे, खाने पीनेमें ही आसक्त रहे, जिनमें मोह है उनकी सेवा खुशामद, पालन पोषणमें ही रहे और धर्म, पुरुषार्थ न करे तो भी उसका काम नहीं चलेगा। इसलिए गृहस्थको धर्मपुरुषार्थ, अर्थपुरुषार्थ और कामपुरुषार्थ तीनोंमें ही समान समय देना पड़ता है। धर्मके समयमें धर्म करें और मौज उड़ानेके समयमें मौज उड़ावें व पालन पोषण करें और धन कमानेके समयमें धन कमावें।

देखो ये चार पुरुषार्थ बताए गए हैं:—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मोक्ष पुरुषार्थ तो आजकल चलता ही नहीं। केवल तीन पुरुषार्थ रह गए हैं, और चौथे पुरुषार्थके एवज में पुरुषार्थ जो अब चलता है उसको बतावें तो शायद आप सबको बहुत सुहा जायेगा। बताएँ? आजकल चौथा पुरुषार्थ चलता है नींद लेना, सोना; मोक्षकी एवज पर अब सोना ही चलता है। अब देखो काम चार हैं:—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। और घंटे हैं चौबीस, प्रत्येक कामका २४ घंटेमे भाग दिया तो ६, ६ घंटा प्रत्येक कामका हुआ। ६ घंटे धर्म करना, ६ घंटे धन कमाना ६ घंटे काम करना, पालन पोषण करना और मौज उड़ाना और ६ घंटे का काम है नींद लेना आराम करना। इसमें भी भैया चार बजे बादसे क्रमशः चलावें। चाहे थोडासा अन्तर पड़ जावे पर इस तरह सब काम चलेगा। धर्म सुबह करना, उसके बाद अर्थका काम, उसके बाद पालन पोषण करना और मौजके काम, और उसके बाद नींद लने और आराम करनेका काम। जैसे धर्मका काम सुबह ४ बजेसे १० बजे तक, याने ६ घंटा। और अर्थका काम अर्थात् धन कमानेका काम १० बजेसे शामके ४ बजे तक और ४ बजेसे १० बजे रात तक पालन पोषण तथा अन्य काम और १० बजे रातसे सुबह ४ बजे तक नींद लेना और आराम करनेका काम। भले ही थोडासा परिवर्तन कर लो, मगर वे काम बराबर बराबर चलें। ४ बजेसे १० बजे तक नहीं तो एक घंटा कम ही सही। ९ बजे तक हो सही। इसी टाइममे धर्म पुरुषार्थ कर लो और यह एक घंटा शामके बाद धर्ममे लगा लो। प्रातः उठते ही कायोत्सर्ग रूपमें णमोकार मंत्रका जाप कर लो। उसके बाद हाथ पैर धोकर स्वाध्याय कर लो फिर सामायिक कर लो। सामायिक करनेके बादमे नहा लो, धो लो।

देखो इस अवसरमे नहाना, धोना भी धर्ममे ही शामिल है, जब कि यह भाव है कि देवदर्शनादि करना है, फिर धर्म करो, सत्संग करो इत्यादि। अब भी देखो धर्म ही चल रहा है। घरमें जो रसोई तैयार करेगा उसमे भी धर्मका काम है क्योंकि वह कीड़े मकोड़ोंको बचाकर खाना तैयार करेगा और फिर वह किसी मुनि अतिथि व्रतीको खिलाएगा, ऐसी भावनाए होनेपर धर्म होता है। मगर देखो रसोईका काम घंटा डेढ़ घंटामे हो जाना ठीक है। यदि रसोईमे चटोरी चीज बनाना हो तो ज्यादा टाइम लगेगा। अब रसोई तैयार करनेमें देखो धर्म ही चलता है। सोच लो मनसे तो सदा धर्म ही धर्म चल सकता है। धर्मका तो असलमें २४ घंटा ही टाइम है, किन्तु मुख्यताकी अपेक्षा बात चल रही है। अब देखो, ४ बजे सुबहसे ९ बजे तक या १० बजे तक धर्म ही धर्म किया। अब १० बजेसे ४ बजे शाम तक धन कमानेका समय आ गया। धनको यदि ईमानदारीसे व परसेवाके भावसे कमाओ तो

नहीं भी धर्म है। सम्यक्त्वमें तो २४ घंटा धर्म ही धर्म है। तो १० बजेसे ४ बजे तक धन कमाया जावे। फिर ४ बजेसे १० बजे रात तक लड़कों बच्चोंका पालन-पोषण करना, मिलना-जुलना, सत्संग करना, सभा मीटिंगमें जाना मौज इत्यादि और फिर १० बजे रातसे सुबह ४ बजे तक नींद लेना और आराम करना। इस तरहसे बंटवारा करना ठीक है। अब क्या बाकी रह गया, कुछ नहीं।

ज्ञानीके, योगीके तो धर्म, अर्थ और काम—ये तीनों पुरुषार्थ आदरके योग्य नहीं होते हैं, विषयके काम करना तो सीधे खराब है, अर्थ पुरुषार्थ करना भी अनर्थ है, प्रायः अर्थ अनर्थसे मिलता है। अब रहा धर्म, जो यहाँ धर्मके मायने पुण्य है। पुण्यके विपाकमें भोगका साधन ही तो जुटता है। उस भोगसेवनसे दुर्गति होती है। इस कारण पुण्य ज्ञानके रिपुका (कामका) व अनर्थका (अर्थ प्राप्तिका) कारण है। अतः पुण्य भी आहृत्य नहीं है। यदि विवेक से ही तीनों पुरुषार्थोंका उपयोग हो तो गृहस्थावस्थामें कुछ ठीक है, नहीं तो यह स्पष्ट बात है ही कि ये तीनों पुरुषार्थ संसारकी बात है। आदरके योग्य तो केवल आत्मधर्म है। कषायकी मंदताको धर्म कहते हैं, किन्तु कदाचित् मंदकषाय होनेपर धर्म हो या न हो, लेकिन अपने सहजस्वरूपकी दृष्टिमें धर्म ही है। इसी धर्मके द्वारा कषाय मंद हो जायगा और मोक्षमार्ग भी चलेगा। उस धर्मसे सत्य आदर प्राप्त होगा। अपने स्वरूपमें दृष्टि अधिकसे अधिक लगे तो यही धर्मका धारण है। धनकी चीज तो यों ही हो जायगी अथवा धन तो य ह [illegible] है। उसमें कुछ करना नहीं पड़ता है। अभी कोई समय ऐसा सुयोगका बन जावे तो यों ही कमाई न हो जावे, अभी अभी २, ४ मिनटमें भी कमाई हो जावेगी। यदि पुण्योदय नहीं, तो कितना ही खेद करो, उससे कुछ भी न होगा। भैया! हमें त [illegible] सोचना होगा, श्रद्धा करनी होगी, आचरण करना होगा, अपनेमें अपनेको लगाना होगा, तभी अपना ठीक होगा। धर्म तो करनेसे ही होगा। बाकी धन वैभव तो यों ही हो जायगा। सो अब मैं समागत पदार्थके व अपने पर्यायके आदरको त्याग करके, अपने सत्य स्वरूपको देख करके अपनेको ही अवलोक कर अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

सुखारिदुर्गतिर्भ्यं पापं तद्धेतुकं ततः।
दूरं वसानि पापेभ्यः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१४॥

जगत्के सभी जीव चाहते है और जितने भी ये यत्न करते हैं सुख पानेके लिए ही यत्न करते है। धन कमाना, देश सेवा करना, विषय साधना करना, भोग करना, आत्महत्या कर डालना इत्यादि सारेके सारे यत्न सुखके लिए जीव करते हैं। उन यत्नोंमें सुख मिल ही जाय ऐसा तो नहीं है। यदि वे योग्य काम हैं तो सुख मिलेगा और यदि अयोग्य काम हैं

तो सुख नहीं मिलेगा। परंतु सभी प्रयत्न सुखके लिए करते हैं। सुख होता क्यों नहीं है ? देखो दुःखके जितने कारण हैं, जो कुछ हैं उनमें विचार करो तो अंतमें एक ही बात मिलेगी। दीनता सुखका दुश्मन है दीनताका भाव, दीनताका परिणाम। दीनता सुखका दुश्मन है ? पचेन्द्रियके विषयमें जब इच्छा होती है तब दीनता ही रहती है। अपनेमें विषयोंकी चाह है सो दीनता होती। परका भाव आ गया, स्त्रीके आधीन हो गए या जो जो साधन हैं उनके आधीन हो गए। यही तो दीनता है। परिणाम गरीब हो गए। अपने बलका कोई वह मूल्य नहीं करता, यह सब दीनता ही तो है।

यह दीनता सुखका दुश्मन है। दसों तरहके भोजन करनेके परिणाम हो गए। अब यह चीज चाहिए, अब वह चीज चाहिए इत्यादिसे वे पराधीन होते हैं। कोई मना करे फिर भी दसों प्रकारके व्यञ्जन परोसे आ रहे हैं, यदि खाने वालेके मनमें आ जाय कि यह चीज अच्छी है, बस इतनेमें ही जीवके दीनता आ जायगी, उसका गौरव बुझ जायगा। चाहे ऊपर से न मांगें, पर आशाके परिणाम आ गए तो दीनता है और इस दीनताकी बुद्धिमें फिर वह मुखसे मांगने लगता है···यह दीनताका परिणाम ही मूलमें ऐसा है जो सुखका दुश्मन है। इसी तरह मन, चक्षु, श्रोत्र आदिके वशीभूत हुए तो दीनता आ जायगी, और यदि किसी चीजके वशीभूत नही हुए तो दीनता नहीं आती है। जगत्के किसी पदार्थकी चाह नही है तो दीनता कैसे आवेगी ? एककी बात न देखो। कितनोंके सामने ये जगत्के जीव दीन बने रहते हैं। स्त्रीके दीन, धनके दीन इत्यादि जिन-जिन बातोंमें चाह है, जिन-जिन वस्तुओंसे प्रीति है उन सब पदार्थोंके दीन बन रहे है। सुखका अभाव किसने किया, दीनताने। धनहीन होनेको दीन नही कहते, क्योंकि परवस्तुओंकी चाह करे, भीतरमें लग जाय उसे दीनता कहते हैं। यह दीनताका परिणाम है सो सुखका दुश्मन है।

एक बार एक राजा जंगलसे निकला तो वहाँ एक संन्यासी बैठा था। वह राजा संन्यासीके आगेसे निकल गया, नमस्कार भी नहीं किया, बोला भी नही, अब वह वहाँसे वापिस आया। कुछ थका मांदा था सो वह साधुके पास आराम करनेके लिए बैठ गया। राजाने विनय नही की और न कोई शुश्रूषा की बात की। राजा गर्वसे भरा हुआ बैठा था। साधुने एक श्लोकके द्वारा कहा कि 'वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं दुकूलैः, सम इव परितोषो निर्विशेषो विशेषः। स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा, विशाला, मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः॥' अर्थात् यदि तुम रेशमके वस्त्र पहिनकर खुश हो तो हम वृक्षकी छाल और वल्कल पहिनकर खुश हैं। तुम यदि अर्थसे अर्थात् धनसे खुश रहा करते हो तो हम आकाशों के ऊँचे ऊँचे पर्वतोंके अर्थ लगाकर खुश रहा करते हैं। यदि तुम बड़े अच्छे-अच्छे पलंग

राजन, [illegible] खुश रहा करते हो तो मैं पारमार्थिक तत्त्वोंको विचारनेमें खुश रहा करता हूं। तुममें और हममें अन्तर क्या है? कुछ नहीं। पर राजन् दरिद्र वह है जिसके हृदयमें तृष्णा लगी रहती है। उसका मतलब यह था कि हम संन्यासीको दरिद्र देखकर राजा गर्वमें आ गया है, तो उत्तर दिया कि दरिद्र वह है जिसके अन्दर तृष्णा लगी है उसे ही दीन कहते हैं। धनकी कमीसे कोई दीन नहीं कहलाता।

सुखका दुश्मन दीनता है। जब जीवोंको क्रोध आता है, उसके मनमें दीनता आती है, घमंड आता है, मायाचार होता है, दूसरोंसे सम्मान चाहा जाता है तब दीन होता है। सुखका दुश्मन दीनताका परिणाम है। सो भैया! देखो मोहीकी निर्लज्जता कि इसके दीनता आती है कि दीनता भी आती जावे और सुख भी मिले। यह दीनता होती कैसे है, मिथ्यात्व के पापसे, भ्रमके पापसे। पाप पांच होते हैं मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया और लोभ. ये पांच ही पाप हैं। हिंसा, झूठ, चोरी आदि ये तो लोक दृष्टिसे पाप हैं। जो दूसरोंको समझ आते, जिनका त्याग लोकव्यवस्थाके हेतुभूत हैं, इनमें भी वास्तवमें अन्तर्वर्ती दुर्भाव ही पाप है। मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया और लोभ, इन पापोंमें कौनसा पाप छूट गया? हिंसा, झूठ चोरी वगैरा किए जाते तो इन्हीं पांचोंकी वजहसे किए जाते हैं। सो पाप तो वास्तवमें मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ है। उनमें प्रबल है मोह।

आप लाख दर्जे मेरा हित चाहते हैं, किन्तु मुझे भ्रम हो जाय तो आपकी शक्ल देखकर मेरे दुर्भावके कारण मुझे पाप लग रहे हैं। मुझे भ्रम हो गया तो मैं मरा जाता हूं जला जाता हूं, भ्रम तो पाप है और धोखा कैसा है? धोखा भी एक पाप है। किसी ने किसीको धोखा दिया तो धोखा देने वालेको टोटा है कि जिसे धोखा दिया गया उसे टोटा है? टोटा तो उसे है जिसने धोखा दिया, जिसको धोखा दिया गया है वह यदि ज्ञानमें है तो टोटा नहीं है और यदि ज्ञानमें नहीं है तो संक्लेशभाव होनेसे टोटा है। जिसने धोखा दिया उसका ऐसा रुद्र परिणाम है कि वह कठोर बन गया। उसको तो विशिष्ट पाप है उसका कैसे छुटकारा होगा, वह कैसे पार होगा? जिसने धोखा दिया उसे महा पाप है जिसको धोखा दिया गया उसकी आत्माको कितना क्लेश होता है, इसका तो वही अनुभव कर सकता है जिसे क्लेश होता है। जिसको धोखा दिया है उसके मनमें ऐसा तक आता है कि अगर साधन हों तो धोखा देने वालेकी जान भी ले ले और यह मिथ्या मोह भी क्या है? धोखा है।

प्रश्न:— जिसको धोखा दिया वह इतना संक्लेश करता और हिंसाका विचार करता है तो वह भी तो बड़ा पाप करता है। उत्तर—पाप वह भी करता है परंतु वह अपने अन्दर

कुयोनियोंमें भ्रमण कराने वाला करता है। यह मोह भी क्या है? यह विश्वासघात है, मिथ्या है। जैसी बात है, जैसा पदार्थका स्वरूप है वैसा विश्वास नहीं बना। और उसका उल्टा बना बैठा तो यह धोखा है और अपने आपको धोखा दे रहा है तो यह कितना कुयोनियोंमें भ्रमण कराने वाला धोखा है? धोखा अपने को देने वाला मैं खुद हूं, कोई दूसरा नहीं है। अपनी ही कल्पनाओं मे मस्त रहें और यह सोचें कि हम काम ठीक कर रहे हैं हमारा यों काम चल रहा है, हम मजेमें हैं इत्यादि। पर वृद्धावस्थामें खबर कुछ और ही होगी कि हाय! हाय! ६०, ७०, ८० वर्ष धोखेमे ही चले गए। अब क्या होगा, करने योग्य समयमें तो कुछ नहीं किया प्राय: जिसके जवानी है, बचपन है उसके ज्ञान विकसित नहीं हो रहा है, पर ओरमें उसको धोखा है। जब लोगोंको कष्ट होने लगता व अधिक कष्ट सहे नहीं जाते तभी ज्ञान होता है। किसी किसीके जवानी या बचपनमे ही विवेक हो जाता है। ये जगत्के प्राणी अपनेको धोखा देते जा रहे है। अच्छा खाने पीनेका ही काम है, संतुष्ट होकर खाते हैं। अरे वे इस सुखमें ही मस्त होकर अपने आपको धोखा देते है। ये सब तो नष्ट होने वाले हैं, उनकी चीजें नहीं है। सुखमे मस्त होना अपने आपको धोखा देना है। भैया! जो सुख आते है उनके भी तुम जाननहार रहो, फिर और यह जो दु:ख होते हैं उनके भी तुम जाननहार रहो। यों सुखमे मस्त हुए जाते हो और दु:खमे घबडाए जाते हो। यही तो इस संसारमें विकार है। अरे परपदार्थोंमे, परजीवोमे मस्त न होओ। उनमे मस्त होनेसे सुख नही होता। जिसके लालच है उसके ही दीनता है, और जहां पर दीनता है वहां पर क्लेश है। जैसे कोई किसी वस्तुमे लालच करे परवस्तुवोंमे दृष्टि दे तो वही दीनता है। तो सुखका दुश्मन दीनता है, दीनताका परिणाम है और वह एक बडी दुर्गति है, उसका कारण पाप है। पाप करें तो दीनता उत्पन्न होती है। इसलिए पापसे दूर रहना चाहिए, यही मनुष्यकी सर्वोत्कृष्ट विभूति है। जो पुराणोंमें लिखे गए महापुरुष है उनमे यह विशेषता थी कि वे पापसे दूर रहे, उनकी धर्ममे प्रीति रही। इसीसे उनके पुराण बन गए। भक्त लोग उनके चरित्रके पन्ना उलटते है और उनके चरित्र पढते हैं। उनमें यही विशेषता थी कि वे पापसे दूर रहे तो हमें भी चाहिए कि पापको छोड दें।

एक जगह शास्त्र सभा हो रही थी। अनेक लोग शास्त्रमे बैठे हुए थे। एक लकड़हारा भी उस दिन शास्त्रमें बैठा था। शास्त्रमे चर्चा चली कि हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील व परिग्रह ये पांच पाप ही दु:ख देने वाले है, उनको त्यागना चाहिए। यह सुनकर उसने सोचा कि हिंसामें कुछ और पाप तो करता नही हूं केवल जंगलमे हरी लकड़ी काटता हूं। अच्छा उसे अब मैं नहीं काटूंगा, मैं केवल सूखी लकड़ियां बीन लाया करूंगा, या किसी सूखे पेड़से

ी आठ आना कमाऊंगा। झूठका पाप तो और कुछ नहीं करता, मैं किसीसे झूठ नहीं बोलता
केवल ग्राहकसे लकड़ीके ठहरानेमें झूठ बोलता हूं सो वह भी न बोलूंगा। आठ आना की
लकड़ी लाऊंगा और आठ आना कहूंगा। चोरी मैं नहीं करता कि सिर्फ दो पैसेकी पूंजी बचा
लेता हूं ... मैं चोरी भी नहीं करूंगा। मैंने किसी दूसरेकी स्त्री पर दृष्टि भी नहीं डाली।
... मैं पूर्ण ब्रह्मचर्य कर लूं। स्वस्त्रीसे भी ब्रह्मचर्य रहेगा। परिग्रहका भी क्या करना
? आठ आनेकी लकड़ी बेचता हूं। दो आने धर्ममें खर्च करूं, चार आनेमें गुजर बसर करूं
और दो आने जो बचते हैं उन्हें विपत्तियोंसे बचनेके लिए, संकटोंसे छूटनेके लिए, विवाह
आदि कार्योंमें लगानेके लिए जोड़ता रहूं। अपनी कमाईके चार भाग कर लिए। उसके
रिग्रहका काम ठीक हो गया। इस तरहसे वह अपनी गुजर करता गया। एक दिन लकड़-
ारा जंगलसे लकड़ी काटकर एक सेठकी हवेलीके नीचेसे निकला। उसी समय सेठके रसो-
ाको लकड़ीकी जरूरत थी तो उस सेठका नौकर रसोइया भी निकला, बोला— लकड़ी
ोगे ? हां हां बेचूंगा। कितनेमें बेचोगे ? ८ आनेमें। ४ आने लोगे ? ६ आने लोगे ?
हीं। ७ आने लोगे ? नहीं। लकड़हारा चल पड़ा। रसोइया थोड़ी देर बाद बोला अच्छा
ौट आवो लकड़हारा लौट आया, लकड़हारेसे रसोइयाने फिर कहा—साढ़े सात आना देंगे।
ोला— तू किस बेईमानका नौकर है ? ऊपरसे सेठ सुन रहा था, सेठने बुलाया, बैठाया
ौर बोला कि हमें बेईमान क्यों बना रहे हो ? कहा—महाराज नौकर भी जैसे संगमें रहता
ै वैसा ही सीख लेता है। नौकर पहले तो बुलाकर कहता है कि मजूर है, फिर बादमें
हता है कि साढ़े सात आने लोगे। सेठ जी तुम तो रोज शास्त्रमें बैठते हो, हम तुम्हें देखते
ैं। हम तो केवल एक ही दिन शास्त्रमें बैठे, तबसे ही मैंने पांचों पापोंका त्याग कर दिया
ब मैं हरा लकड़ी नहीं काटता, दूसरोंके पैसे नहीं चुराता, झूठ नहीं बोलता, हम ब्रह्मचर्य
ा पालन भी करते हैं। अपनी कमाईका चौथाई धर्मके कामोंमें, दो चौथाई गुजारेमें लगाता
ूं और एक चौथाई विपत्तियोंके लिए, संकटोंके लिए और ब्याहके काम काजोंके लिए
चाता हूं। सेठ बोला कि अरे लकड़हारे पुण्यवान तो तू ही है। सेठने उसका आदर
त्कार किया।

प्रयोजन यह है कि दुर्गति तो पापोंसे बना करती है। जो पापोंको बनाता है वह
स्वर्ग नहीं बन पाता है। और जो पापोंसे दूर रहता है वह आदर सत्कार प्राप्त करता है,
खी रहता है। सुखी होनेका उपाय है पापोंको दूर करना। जो पाप ५ हैं—मिथ्यात्व,
क्रोध, मान, माया और लोभ। इन पापोंके जो वशीभूत है वह शांति नहीं प्राप्त कर सकता
है। तो यह दीनता कैसे नष्ट हो ? जब अपना महत्त्व स्पष्ट हो कि मैं ऐसा प्रभु हूं तो दीनता

नहं है। दीनता तब आती है जब अपनेको तू तुच्छ समझता है। दूसरोंसे ही मेरी जिन्दगी है, दूसरोंसे ही मुझे सुख है, इस तरहके मिथ्या परिणाम रहते हैं तभी दीनता रहती है और यदि ऐसे परिणाम हों कि मैं आत्मा शुद्ध, चैतन्यस्वरूप हूं, ज्ञानानन्दभाव मात्र हूं, विलक्षण हूं, सर्वोत्कृष्ट हूं, ऐसा मैं अपनी आत्माको देखूं तो मैं सुखी हूं, परिपूर्ण हूं, मेरेमें हीनता नहीं है।

हीनताका कुछ मेरेमें काम ही नहीं है। यह तो ज्ञानमात्र भाव है। इसके तुच्छता कहाँ बसी है? ऐसे परिणाम वाला आनन्द पाता है और जो इस प्रकारसे अपनेको नहीं देखता है और बाहरमे ही मोह लगाए रहता है उसके दीनता आ जाती है। इस दीनताके मिटानेका उपाय है अपने आपमें दृष्टि करना। जितना भी मुझे सुख मिलता है वह मेरे ज्ञान के विकाससे मिलता है। एक मनुष्य भोजन करके अपने आपमें सुखका अनुभव करता है तो एक योगी उपवास करके, निराहार रहकर अपने प्रभुके दर्शन करके सुख प्राप्त करता है। अब कैसे कहा जाय कि सुखका कारण भोजन ही है। जो भोजन करके सुखी होता है वह अपने ही ज्ञानसे सुखी होता है। यदि कोई बहुत बढ़िया बढ़िया भोजन कराते हैं और दो-चार चोंचले भी कहते जाते हैं याने बढ़िया भोजन खूब प्रेमसे कराते है और खुद भी भोजन करते जाते हैं और कहते हैं कि खा लो, ऐसा अच्छा भोजन कभी नही किया होगा। तुम्हारे बापने भी कभी ऐसा भोजन नही खाया होगा। तो इसके बाद वह भोजन विषसा लगता है। खाने वाला कितना दुःख महसूस करेगा? अरे बाह्य वस्तुसे तुमने सुख माना है तो सुख ही उससे निकलना चाहिए। तो मतलब यह है कि जो भोजन किया जा रहा हो उस भोजनसे सुख नहीं मिलता है, केवल कल्पनायें बना लेनेसे ही तदनुकूल काल्पनिक सुख मिलता है। सर्वत्र ही जीवको ज्ञानसे सुख मिलता है। सुख और दुःख ज्ञानके ऊपर ही निर्भर हैं। यदि अपनेमें ज्ञान है तो वहाँ दुःखोंका नाम नहीं है और यदि ज्ञान नहीं है तो आजीवन क्लेश हैं। कल्पनायें बना लेनेसे दुःख सुख हो जाते हैं। अभी कोई क्लेश हैं तो अगर सही ज्ञान बना लें कि मैं तो ज्ञानानन्दघन हूं, मैं तो सुखी हूं तो क्लेश दूर हो जावेंगे।

एक मनुष्यको कोई अच्छा कांच मिल जाय, उसे यदि कल्पना हो जाय कि यह तो हीरा है, अरे यह तो २०-२५ हजारका कमसे कम होगा। बस समझो उसको ठसक आ जाती है। कहीं अंगूठीके भीतर कोई कांच लगा हो और यह भ्रम हो जाय कि यह तो हीरा है, कमसे कम १० हजारका होगा। इतनेसे ही वह प्रसन्न हो जायगा, सुखी हो जायगा। और यदि हीरा भी हो और जरा देरमें यह समझमें आ जावे कि यह तो कांच है तो उसका चित्त बुझा रहता है। बाह्यपदार्थोंसे कोई सुख नही है। पर भ्रम ऐसा बन गया है कि बाह्य

पदार्थोंमें ही सुख है, यही समझ कर वह परिश्रम करता है और उनका संग्रह करता है। जैसे कुत्तेको सूखी हड्डी मिल जाय तो उसको मुंहमें रखकर अकेले मे चबाता है। उसके चबानेसे दाँत मसूड़े फट जाते हैं, खून भी आ जाता है, अपने खूनका आनन्द आता है पर भ्रम हो गया कि उसको हड्डी चबानेसे आनन्द आता है। यदि कोई दूसरा कुत्ता उसको छीनने के लिए दौड़ता है तो वह गुर्राता है। भ्रम हो गया ना उसे कि यह हड्डीका खून है। उसे इस विकृत ज्ञानसे विकृत आनन्द मिला, यह दृष्टान्त है।

इसी तरह जगतके जीव अपने स्वयं ज्ञानसे, अपने ही आनन्दके विकारसे सुखी होते हैं। किन्तु उस समय जिन बाह्य पदार्थोंको उपयोगमें लिए हुए हैं उनसे सुखका भ्रम हो गया। सो कोई परवस्तुवोंको पकड़ता है और संग्रह करता है और उनके ही पीछे झंझट चलता है। सही पता हो जाय कि मैं स्वयं ज्ञानानन्दपुञ्ज, अविनाशी तत्त्व हूं। यदि यह पता पड़े तो इसके दीनता न रहे। यह दीन हो जाता है पंचेन्द्रियके विषयोंको देख कर। ऐसा दीन हो जाना ही उसके दुःखका कारण है।

हे आत्मन् ! अपने आपको निरखो कि मैं भगवान् सदृश ज्ञानमात्र हूं, इसमें दुःखोंका काम ही नहीं है, इसके सारे प्रदेशोंमें आनन्द भरा हुआ है। आनन्दकी मेरेमे कमी नहीं है। मेरा ज्ञान मेरेसे बाहर नहीं है और न आनन्द ही मेरेसे बाहर है। मैं स्वयं ज्ञानानन्दघन हूं, यह लक्ष्य हो जाय, ऐसा भीतरसे परिचय मिल जाय, दृढ़ प्रतीति हो जाय, ऐसा यह उपयोग बनाने के लिए तैयार हो जाय तो उसको क्लेश नहीं मिल सकते हैं। पर भैया ! सम्बन्धमें हानि ही हानि है। अकेला है तो बड़ा सुख है और यदि दुकेला हो गया, विवाह हो गया तो क्या मिला कि चौपाया हो गया। दो पैर खुदके, दो स्त्रीके हैं। चौपाया जानवर कहलाते है। दो हाथ पैर वाला मनुष्य था, अब चौपाया हो गया। बच्चा हो गया तो छैपाया हो गया, भँवरा हो गया। अब भवरकी तरह आवश्यकताकी पूर्तिके लिए डोलता फिरता है। बच्चेका विवाह भी हो गया तो अष्ट पाया हो गया अर्थात् मकड़ी बन गया। मकड़ीका जाल होता है। उसने अपनेमें जाल बनाया और फंस गया। ५०, ६०, ७०, ८० वर्ष तक उनकी ही धुनमें लगा रहता है। कितने ही सकट आवें, घरमें बसने वाले लोगोंको मान लिया कि ये मेरे हैं और ये दुनियाके लोग क्या हैं ? ये गैर हैं। ये सब भाव अपने लिए मोहकी विपदाएं हैं।

भय्या ! ऐसा भाव अपने मनमें बने कि मैं भगवान् तुल्य, ज्ञानघन, पवित्र आत्मा, सबसे न्यारा हूं, तो आत्मकुशलता है परन्तु ज्ञान तो यह आता है कि यह मेरा लड़का है, यह मेरा घर है, और बाकी तो सब गैर है। वे चाहे मर जावें, चाहे जो कुछ हो जावें उन

से मेरा कुछ मतलब नहीं, पर अपने घरके जो २, ४ मनुष्य हैं उनको पकड़े हुए हैं। इन दो चार मनुष्योंका मोह छोड़ो, ये भी सब तेरे कुछ नहीं हैं। इनके मोहसे ही रुलना पड़ेगा। मगर उन्हींके बारेमें भक्ति है, भावना है व ज्ञान है। दस लक्षणमें दान करेंगे, व्रत करेंगे, पर मोह न करें ऐसे भाव तकका उत्साह भी नहीं होता। भैया! सबसे बड़ी विपदा यही है कि यह विकल्प हो कि घरमें बसे दो चार को मान लिया कि ये मेरे हैं बाकी सब गैर हैं। अरे कौन किस गतिसे आया, यहां कब तक रहेगा, कुछ भी तो सम्बन्ध नहीं, फिर भी विपरीत बात मनमें आना और जिस कल्पनासे आजीवन क्षोभ रहता है उस कल्पनामें ही रमना, यह कितनी बड़ी भारी विपत्ति है? भगवान्‌की बात और तो सब मान ली जायेंगी किन्तु मोह त्यागने की बात नहीं मानी जाती तो माना ही क्या? भगवान्‌का तो मूल उपदेश मोह और मिथ्यात्वके त्याग करनेका है। जैसे कोई पतनाला निकालने की घटना थी। पटेल दूसरे घरके पासमें पतनाला निकालना चाहता था, तब पंचोंने फैसला उसकी इच्छाके कुछ विपरीत दिया तो पटेल कहता है कि पंचोंका कहना सिर माथे पर, पर पतनाला यही पर निकलेगा। सो भगवानकी पूजा मंजूर है, दान उपवास आदि मंजूर हैं पर मोह छोड़नेकी बात नहीं कर सकते। यही सबसे बड़ी विपदा है। मोह ही सब पापोंका मूल है। जगतके समस्त क्लेश पापोसे आते हैं। तो मैं इन पापोको अपनेसे दूर करके अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

कार्यहेतुर्न चान्यन्मे भाति विश्वं स्वसत्तया।
ज्ञानं सुखं परस्मान्न स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१५॥

प्रत्येक जीव सुख चाहते है। सुख प्राप्त होनेका केवल एक ही उपाय है दूसरा नही है। वह यह है कि मैं एक स्वतंत्र सत् हूं, मैं सबसे निराला एक जुदा पदार्थ हूं, ऐसा अपने आपमें विश्वास आ जाना यह ही सुखका उपाय है। मैं कैसा स्वतंत्र पदार्थ हूं, किसीको धोखा देने के लिए नहीं हूं, मैं स्वयं एक स्वतंत्र पदार्थ हूं और जगतके सब जीव भी स्वतंत्र स्वतन्त्र पदार्थ हैं। किसी पदार्थका दूसरा पदार्थ न कार्य है और न कारण है। इसी प्रकार स्वतन्त्र जानते रहनेका उपयोग ही सुखका कारण है, मेरा कोई कारण नहीं है अर्थात् मैं किसी दूसरेसे पैदा हुआ नहीं हूं। ऐसा निरखना ही ज्ञान है और ऐसा निरखनेसे ही सुख है। यह मैं किसी दूसरे पदार्थसे पैदा हूं ऐसी बात नही है। प्रत्येक पदार्थ अपने आपमें है और अपने आपमें ही परिणमते रहते हैं। मैं ऐसा ही ज्ञानमय हूं, सुखमय हूं जो स्वतन्त्र हूं और अपने आपमें अपने द्वारा अपनी शक्तिको व्यक्तिमें परिणमाता रहता हूं। मेरा जो परिणाम होगा वह ज्ञान और सुखका होगा। जैसे आत्माका स्वरूप है वैसा ही परिणमन होगा।

जैसे ग्राममें रूप गुण है तो ग्राममें क्या काम होगा ? नीला, पीला हो जाय, लाल हो जाय, [illegible] रहेगा । यही तो ग्रामका काम है । ग्राममें रस है तो रस बदलता रहता है । खट्टा हो जाय, मीठा हो जाय, कैसा भी हो जाय, यही तो ग्रामका काम है । इसी प्रकार मेरा गुण, ज्ञान व आनंद है तो मेरा क्या काम होगा, कभी अपूर्ण विकासी रहे, कभी पूर्ण विकासी रहे, कभी अल्पज्ञाता रहे, कभी पूर्ण ज्ञान हो, कभी विकृतानंदी हो, कभी आत्मानंदी हो, यही तो मेरा काम है । यहांपर कोई दूसरा काम नहा है । मेरे गुणसे ही ज्ञान और आनन्द बर्तता है । यह मैं आत्मा अपनेको सोचूं कि मैं आनन्दस्वरूप हूं, स्वतंत्र अस्तित्वको लिए हुए हूं, अपने आपमें हूं, अपने आपसे ही ज्ञान व आनन्द मिलता है, किसी दूसरे पदार्थसे अपनेको ज्ञान व आनन्द नहीं मिलता है । यह आत्मा ज्ञान और आनन्दसे परिपूर्ण है । मेरेमें ज्ञान व आनन्द किसी दूसरे पदार्थसे नहीं आता है । मेरेमें जो ज्ञान आनन्द भरा हुआ है वह दूसरे पदार्थोंके कारण नहीं है । दूसरे पदार्थ तो मेरे ज्ञान और आनन्दके बाधक बन सकते है, हमारे ज्ञान और आनन्दके साधक नहीं बन सकते हैं । परमार्थसे बाह्य पदार्थ मेरे ज्ञान और आनन्दके बाधक भी नहीं बनते, क्योंकि हम स्वयं ही कल्पनाएँ बनाकर विह्वल हो जाते है । मेरेमें तो आनन्द और ज्ञान है, मैं आत्मा अपने [illegible] । यदि किसी बाह्यमें दृष्टि न हो, मोह न हो, विकल्प न हो तो हमारा ज्ञान जितना भगवानका है उतना हो जायगा । मैं तो सबसे जुदा फिर भी स्वयं ज्ञान और आनन्दसे परिपूर्ण हूं ।

मेरी और भगवानकी जाति तो एक है पर अन्तर इतना है कि उनके ज्ञान और आनन्द परिपूर्ण अनन्त है और हमारे ज्ञान और आनन्द अल्प है । ऐसा क्यो हुआ ? हममें गल्ती यह है कि हम अपने स्वरूपको न जानकर दीन बने हुए हैं । यही गल्ती है और यही कारण है । इसी गल्तीके ही कारण दुःख हो रहे हैं । जानकारी किसी भी चीजकी कर लें तो जानकारी करनेमें दीनता नहीं आती है । दीनता तो अपनेमें आशामयी कल्पनायें बना लेनेसे आती हैं । दीनतासे क्लेश आ जाते हैं । यदि आशायें मिट जावें तो दीनता मिट जायगी । यदि हमें दीनता मिटाना है तो परकी दृष्टि छोड़ दें । परकी दृष्टिसे ही क्लेश होते हैं । अतः यदि परकी दृष्टि छोड़ दें और अपने आपके महत्वको समझ लें तो दीनता मिट जाती है । यदि अपनेमें दीनताका भाव न रहे तो आनन्द ही आनन्द है और अन्य इसका [illegible] नहीं है । कितने उपाय कर डालें, पर अधूरे ही रहेंगे । दुःख न हों, अशांति न हो [illegible] न हो, ऐसा चाहते हो तो अपने आपको कृतार्थ समझकर अपने आपपर विश्वास [illegible] चाहिए ।

विश्वास यह होना चाहिए कि मैं एक सत् पदार्थ हूं, अपनेमें हूं, मेरेमें [illegible] अपूर्व नहीं ज्ञान और सुखसे लबालब भरा हुआ है । हालांकि इस समय एक समस्या सामने है

कि भूख तो लगती ही है, इसे भोजनमें तो दृष्टि देना ही होता है, यह नहीं कि दृष्टि भोजन ही भोजनमें रहे, उपाय ऐसा बने कि भोजनकी इच्छा ही न रहे और ज्ञान व आनंद ही रहे। भोजन तो करते ही जाते और पूरा कुछ पड़ता नहीं, तब इतना तो करो कि भोजनमें आसक्ति न रखो। अपने पेटकी केवल पूर्ति कर लो और अपने आप निराहार ज्ञायकस्वरूप भावकी प्रतीतिरूप कर लो तो अमर रह सकते हो। यदि भोजनकी इच्छा दूर होगी और निराहार ज्ञायकस्वभावमय आत्मतत्त्वकी दृष्टि होगी तो उसका यह परिणाम होगा कि आहार संज्ञा खत्म हो जायगी और ऐसी स्थिति आवेगी कि यह शरीर छूट जायगा व इस संसारके सारे झगड़े छूट जायेंगे और केवल आत्मा ही आत्मा रह जावेगा। यह स्थिति ही सर्वोत्कृष्ट है। यदि मनमें कुछ लालसा, लालच इत्यादि करनेकी भावनाएं बनें तो फिर ऐसी स्थिति कैसे आ सकती है? लालसा करो तो करो यथार्थदृष्टि की, अपने आपमें लानेकी, अपने आपमें झुकनेकी, विकल्पोंसे छूटनेकी और अपने आपकी आत्माकी सेवा करनेकी, किन्तु ऐसी लालसा करना कि २ लड़के हो जावें, ४ लड़के हो जावें, मेरी ऐसी स्थिति बन जाय, बन ही जाय इत्यादि, ऐसी लालसा करने से तो ठीक नहीं होगा। अरे इससे पूरा नहीं पड़ेगा। ऐसा करने से कोई न कोई काम, विपदा, संकट खड़े ही रहेंगे। अब यह है, अब वह है, अब यह चाहिए और अब वह मिले, इस तरह से अनेक विकल्प खड़े ही रहेंगे। यों तो विकल्पोंसे आकुलता ही आकुलता आयगी।

हे प्रभु, हे निजनाथ! मेरेमें ऐसा बल भरो कि केवल अपने आपको शक्ति पावे, किसी भी बाह्य पदार्थके विकल्प न बनें। बाह्यपदार्थोंको मुझे सोचना ही न पड़े। बाह्यमें सोचनेसे कुछ लाभ भी नहीं है; सोचते होंगे कि हम लड़केको पढ़ाते हैं तो पढ़ता है। अरे लड़केका भाग्य है। अपने भाग्यसे ही वह पढ़ता है। लड़केकी सेवा करते हैं, खुशामद करते हैं तो यह बतलाओ कि आपका भाग्य बड़ा है या उस लड़केका भाग्य बड़ा है, जिसकी सेवा करते हो, पढ़ाते-लिखाते हो, खिलाते-पिलाते हो, भारी सेवायें करते हो, बताओ उस लड़के का भाग्य अच्छा है कि आपका अच्छा है? अरे जिसका भाग्य अच्छा है उसकी चिंता करते हो और अपने भवितव्यके प्रति चिंता नहीं करते हो। ये सब काम होते हैं और अपने आप होते रहेंगे। सबके भाग्य व काम जुदा-जुदा हैं। क्यों चिंता करते हो? चिंतासे पूरा भी नहीं पड़ेगा। ऐसी बाह्य चिन्ताओंसे फायदा नहीं है। अपने आपका चिंतन करो कि मैं शुद्ध, ज्ञानभाव, ज्ञानस्वरूप आत्मा हूं। केवल आत्मदृष्टिका ज्ञान होनेका ही स्वाद लेकर यह अनुभव करो कि मैं आनन्दमय हूं। यदि बाह्य वस्तुओंकी, विषयोंकी स्थितिमें रहे तो आनन्द नहीं है। आनन्द है तो केवल अपने आपके ज्ञानस्वरूपकी दृष्टिमें है।

भैया ! जिनकी हम पूजा करते हैं, जिनका आदर करते हैं, जिनका चरित्र पढ़ते हैं उन्होंने अपने आपे पर विश्वास किया, बाह्यदृष्टि खतम की और अपने ही ज्ञानरसका स्वाद लेकर रहे तथा इसके परिणामस्वरूप चरमविकास प्राप्त किया, इसलिए उनका हम आदर करते हैं, उन्हें पूजते हैं। जीवनमें एक महान् उद्देश्य यह बनाना चाहिए कि मेरी वह स्थिति आवे जिसमें केवल अपने ज्ञानस्वभावका ही अनुभव करता रहूँ और ज्ञानस्वरूपका ही स्वाद लेता रहूँ। अपने आपमे यह विश्वास हो कि मैं सबसे निराला स्वतंत्र पदार्थ हूँ। मेरमें दूसरा कुछ फेर नहीं कर सकता हैं। मैं दूसरे लोगोका कुछ फेर नहीं कर सकता हूँ। सब सत् हैं और अपने ही सत्‌के कारण वे परिणमते रहते है। मै किसीका कारण नहीं जो किमोका कुछ कर देता हूं। मैं किसीका कार्य नहीं कि दूसरे लोग मुझे कुछ कर देते है। सब अपने अपने सत्‌के मालिक हैं। ऐसी दृष्टि यदि अपनेमें हो तो निश्चित मुक्तिका मार्ग है। समस्त जगत्‌के जितने पदार्थ है वे सब अपने-अपने सत्‌मे रहते है और कोई भी अपने अपने स्वरूपसे आगे नहीं आते हैं।

हे आत्मन् ! ऐसा अपने आपमे विश्वास तो कर कि जो मैं कर सकता हूँ व अपने को ही कर सकता हूँ, दूसरेको कुछ नहीं कर सकता हूं, व भोग सकता हू तो अपने ही स्वरूप को भोग सकता हूँ। हाय, विषयकषायोके परिणाममें पड़कर जगत्‌के सब जीव बरबाद हो गए है। मेरा भगवान् तो अनन्त आनन्दमय है। इन सर्व परपदार्थोंसे कुछ सम्बन्ध नहीं, कुछ लेना देना नहीं, सब अपने अपने सत्‌में हैं, सब कुछ न्यारे न्यारे है फिर भी बाह्य पदार्थोंके बारेमे यह कल्पनायें उठ जाती हैं कि यह मेरी है, यह उसकी है, यह बहुत बड़ा विपत्ति छायी है। इन बाह्यपदार्थोंमें मेरा कुछ नहीं है। यदि बाह्यपदार्थोंमें दृष्टि होगी, बाह्यकी आशा होगी तो अनन्त दुःख होंगे। सुखका उपाय अपनी स्वतन्त्रताका विश्वास है। जगत्‌के सभी पदार्थोंकी अपनी स्वतन्त्रताका विश्वास हो तो क्लेश नहीं है और यदि अपने स्वरूपसे हट गए तो क्लेश ही रहेंगे, दूसरे पदार्थोंमे ही लगे रहे तो आकुलताए आयेंगी। सो यह सुख और दुःख किसका फल है ? यह दुःख सुख तो मोहका ही फल है। जगत्‌के जीवोंको देखो मोह करके दुःखी और सुखी होते हैं। ये उनके मोह और मिथ्यात्वके ही परिणाम है। मैं अपने आपको यह अनुभव करूं कि मेरा तो मात्र मैं ही हू, मेरेमें ममताका परिणाम नहीं है। यदि अपने आपमें ऐसी भावना बने तो वही कल्याणका मार्ग है।

भैया ! कोई एक शराबी था। वह एक शराबकी दुकान पर गया, बोला कि हमे अच्छी शराब दो। उसने बतलाया कि यह बहुत बढ़िया है इसे ले लो। कहा नहीं, नहीं

हमें बहुत बढ़िया चाहिए, तब दुकानदारने कहा देखो हमारी दुकानपर जो पाँच आदमी पड़े हुए हैं उनसे तुम अन्दाज लगा सकते हो कि शराब बढ़िया है या नहीं। ऐसे ही भैया! अपनी बात सोचो मोहमें क्या हुआ करता है? मोहमें आकुलताएं होती हैं, मगर देखते हैं कि ये जगत्के सब जीव बाह्यपदार्थोंमें ही चिंताएं किया करते हैं, दुःखी होते जाते हैं मोह किया करते हैं, यही तो सब मोह मदिराका परिणाम है। फिर भी मोहके नशाके दुष्परिणामका विश्राम यह मोही नहीं करता।

भैया! अपने मोहकी बेवकूफी देखना कठिन है तो दूसरे लोगोंकी मोहकी बेवकूफी देखकर बेवकूफीका स्वरूप जान लो। व्यर्थ ही लोग विकल्प करके परेशान होते हैं और व्यर्थ ही तुम विकल्प करके परेशान होते हो। जिसे तुम अपना लडका बताओ उससे तुम्हारा क्या सम्बन्ध है? वे तो सब जुदा-जुदा है। उनसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि तुम्हारे घरमें दूसरा कोई पैदा होता तो उससे तुम मोह करने लगते। अरे जो पैदा हुआ उसका तुम कुछ कर लेते हो क्या? यह मेरा है, यह आशय आना ही दुःखका कारण है, दूसरा कुछ दुःखका कारण नहीं है। अपने बारेमें यह विश्वास करो कि मैं अपने आपमें हूं, स्वतंत्र हूं, मैं ही अपना कारण हूं, मैं ही अपना कार्य हूं, मैं जो कुछ कर सकता हूं अपनेको ही कर सकता हूं, मैं अपनेको ही भोग सकता हूं, अपने स्वरूपसे बाहर दूसरेको कुछ न कर सकता हूं और न भोग सकता हूं और दूसरे लोग भी मेरा कुछ नहीं कर सकते हैं। सब वस्तु अपने अपने स्वरूपमें है। ऐसा यदि अपने आपका विश्वास हो तो वह अमृतभावका पान कर सकता है। जिसने इस अमृतभावका अमृत पान किया, उसको आनन्द है, उसका ज्ञान दूसरे पदार्थोंसे नहीं आता। शिष्यको गुरु ज्ञान देता है तो गुरु केवल शिष्यका निमित्त होता है। ज्ञान तो उस शिष्यकी आत्मासे ही प्रकट होता है, गुरुसे ज्ञान नहीं प्रकट होता है अगर गुरु दूसरोंको ज्ञान देने लगे तो बीस, पच्चीस शिष्योंको ज्ञान देनेके बादमें गुरु खुद कोरा रह जावेगा। यदि गुरु दूसरोंको ज्ञान दे दे तो गुरु मूर्ख बन जावेगा। शिष्यमें खुद ही ज्ञान भरा हुआ है। सो गुरुका निमित्त पाकर वह ज्ञाता बन गया। देखो कोई बालक बुद्धिमान् होता, किसीको एक बारमें ही याद हो जाता तो किसीको मुश्किलसे याद होता है। क्या कारण है? यह कारण है कि वह स्वयं ज्ञानमय ही तो है। पूर्वजन्मको तपस्याके तारतम्यके अनुसार उसके ज्ञान प्रकट होता है। इसी तरह मेरा स्वरूप आनन्दमय है, मेरेमें ज्ञानका ही विकास हो रहा है और मेरेमें स्वयं आनन्द बर्त रहा है। दूसरे पदार्थोंसे मुझे आनन्द नहीं प्रकट हो रहा है। यदि बाह्यपदार्थोंसे आनन्द प्रकट होता हो तो बतलाओ। इन बाह्य अजीव पदार्थोंमें ज्ञान और आनन्द तो है ही नहीं तो फिर वहांसे ज्ञान और आनन्द कैसे आयगा?

किसी दूसरे चेतन पदार्थसे आनन्द कैसे आ सकता है ? उनका ज्ञान और आनन्द उनमें ही परिसमाप्त है, मैं स्वयं आनन्दमय हूं, मेरा आनन्द मेरेसे ही होता है। दूसरोंसे मुझे आनन्द नहीं होता है।

हे प्रियतम, बाह्यपदार्थोंके विकल्प छोड़ दो और अपने ज्ञानरसका स्वाद लो। यदि अपनी सहज इस स्वतंत्रताका विश्वास हो जाय तो यही अनुपम काम है। बाहरी पदार्थोंके विकल्पसे दुःख होते हैं, बाहरी पदार्थोंसे नहीं। कोई लड़का २० हाथकी दूरी पर खड़ा हो। यदि एक लड़का दूसरे को अंगुली दिखाकर चिढ़ाए, तो जिस लड़केको चिढ़ाया जा रहा है वह यदि विकल्प बना ले कि अरे यह तो हमें चिढ़ा रहा है, तो ऐसी कल्पना बनानेसे, ऐसा ख्याल करनेसे उसे दुःख होता है, दूसरे लड़केकी अंगुलीसे दुःख नहीं होता है। बड़े बड़े लोगोंका किसी कारणसे क्लेश हो रहे हैं, तो विरोधीके कारणसे क्लेश हो रहे हैं ? अरे उन्होंने स्वयं कल्पना बना ली है कि यह मेरा विरोधी है, यह मेरे खिलाफ है, यदि यह कल्पना बनाली है तो क्लेश होते है, दुःख होते हैं। देखो इन दुश्मनोंसे दुःख नही होते है, केवल कल्पनाएं बना लेनेसे दुःख हो जाते हैं।

एक राजा था, वह किसी राजापर चढ़ाई करनेके लिए जा रहा था। सो वह सेना सहित जा रहा था। रास्तेमें जंगलसे निकला। उसी जंगलमें एक साधु विराजमान थे, उस साधुके पास राजा बैठ गये। साधुने उसको कुछ उपदेश दिया, कुछ ही देर बाद राजाके कानमें शत्रुवोंके शब्द सुनाई पड़े। राजाने समझ लिया कि शत्रु आ रहे है। कहाँ तो वह उपदेश सुननेके लिए विनयासनसे बैठा हुआ था और कहाँ वह वीरासनी होकर बैठ गया। अब राजाने शत्रुवोंको देख लिया तो उठ खड़ा हुआ और अपनी तलवार निकाल ली। साधु बोला—राजन्, यह क्या कर रहे हो ? राजा बोला—महाराज, ज्यों ज्यों दुश्मन निकट आ रहे हैं त्यों-त्यों मेरा दिल धड़क रहा है। मैं शत्रुवोंको गर्द कर दूंगा। साधु बोला—राजन्, तुम ठीक कर रहे हो कि अपने दुश्मनोंको गर्द करने जा रहे हो, परन्तु एक शत्रु तो तुम्हारे अन्दर ही पड़ा हुआ है उसका भी तो दलन करो। राजा बोला—अरे, मेरे अन्दर भी कोई दुश्मन है ? बताओ तो वह कौनसा दुश्मन है ? साधु बोले—राजन् तुम्हारा दुश्मन मानने का जो विकल्प है वही तुम्हारा शत्रु है। तुम्हारा शत्रु तुम्हारा मोह है, यह विकल्प ही तुम्हें चैन नहीं लेने देता है। दूसरे शत्रु हैं, ऐसा ख्याल छोड़ दो। दूसरा कोई तुम्हारा शत्रु नहीं है। ऐसा ख्याल छोड़ दो कि फलां मेरा दुश्मन है। साधुकी बात समझमें आ गयी। अब राजा शान्त होकर, मुनि दीक्षा लेकर मूर्तिकी भाँति बैठ जाता है। शत्रु जन जब आये तो सब उसको प्रणाम करते हैं। दुश्मन राजाको शान्त मुद्रामें देखकर प्रणाम करके चले जाते

है।

बतलावो कि यदि वे राज्य हड़प लेते तो विजयी थे या यों ही शान्त मुद्रामें रहकर विजयी बने। अरे राज्य हड़प लेनेसे मोह ही जागता और उन्हें दुःख होता। आकुलताएँ व्याकुलताएँ सदा बनी रहतीं।

इस कारण अपने आपको विश्वास करो कि मैं आत्मा ज्ञानमय हूं, आनन्दमय हूं, सबसे निराला हूं, बाह्य पदार्थ मेरे हों, ऐसी कोई गुंजाइश नहीं है। मैं मैं हूं, जो हैं वे अपने आपमें हैं। किसीका दूसरेसे सम्बन्ध नहीं है। ऐसे स्वातन्त्र्यकी दृष्टि हो जाय तो सुख और शान्तिका मार्ग मिल सकता है और कितना ही धनसंचय हो जाय, कितनी ही इज्जत मिल जाय, पर अन्यकी दृष्टिसे शान्ति नहीं मिल सकती है।

जीवो दृश्यो न मे दृश्यो जीवो वा कोऽपि मे न हि।
कस्मै शोचामि मन्यामि स्यां स्वस्मिन् स्वे सुखी स्वयम् ॥१६॥

हम रात-दिन दूसरोंका ख्याल रखकर, दूसरोंका विकल्प बनाकर परेशान रहा करते हैं। हम सबमें से केवल एक यही बात नहीं आ रही है कि किसी भी परपदार्थका ख्याल करना, अटपट कल्पनाएँ करना और परेशान होना। इतना ही काम प्राणियोंका अब तक चला आ रहा है। कोई किसीका ख्याल करता, कोई किसीका ख्याल करता, मगर दुःखी होनेकी एक यह ही पद्धति सबके अन्दर पायी जाती है कि वे दूसरोंका ख्याल करते, इष्ट अनिष्टका ख्याल करते और परेशान होते हैं। योगियोंमें और भोगी प्राणियोंमें इन ही बातों का अन्तर है। योगी सम्यग्ज्ञानकी ही पद्धतिसे चीजोंको जानते हैं इष्ट अनिष्टोंको नहीं जानते हैं और अपने ही स्वरूपमें मग्न रहते हैं। इस तरहसे वे योगी सदा प्रसन्न रहते हैं और हम जगत्के बीच परवस्तुओंके विकल्पोंको लिए हुए रात दिन परेशान रहते हैं।

वस्तुओंका स्वरूप देखो, प्रत्येक पदार्थ केवल अपने स्वरूपमें उत्पाद और व्यय करता है। अंगुली चाहे अपने आप टेढ़ी हो, चाहे दूसरे मनुष्य अंगुलीको दाब दें, पर अंगुलीमें टेढ़ापन बना है वह अंगुलीकी ही परिणतिसे बना है। वह इन ही स्कन्धोंकी परिणतिसे बना है। उस अवस्थाका करने वाला कोई दूसरा नहीं है। परपदार्थोंमें जो कुछ भी हो जाता है वह उनके स्वयं अपने आपमें होता है, कोई दूसरा उसको नहीं करता है। एक निमित्तकी बातको देखकर यह प्राणी गर्व करता है कि मैंने यह काम किया। जैसे अभी हारमोनियम बज रहा था तो वह कैसे बज रहा था? इन भाईकी आत्माकी बात देखी तो यह आत्मा तो इच्छा, ज्ञान कर रहा था जिसके निमित्तसे योग भी हो रहा था। इससे आगे इस आत्माका काम नहीं। हारमोनियममें पीतलके तार हैं, उसमें हवा दी जाती है तब वह स्वर देता है। इतने

पर भी वह स्वर शब्द तारसे नहीं प्रकट हुआ, भाषावर्गणाके स्कन्धोंसे प्रकट हुआ है।

इस जगत्के प्राणियोंको देखो, इच्छा और योग अपने आपमें कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कर रहे हैं। इच्छा हो रही है, ज्ञान हो रहा है, अभिलाषा हो रही है। उनका निमित्त पाकर उनकी आत्माके प्रदेशमें कम्पन हो जाता है। इच्छा जिसके होती है उसकी आत्मामें कम्पन हो जाता है। जैसी अनुकूल इच्छा इस आत्मामें है उसीके अनुकूल हलन इस शरीरमें है। योगका निमित्त पाकर शरीरमें जो वायु है, सो वायु चली, वायुमें कम्पन हुआ, फिर वातका निमित्त पाकर इस शरीरके अंग चले, अंगुलियाँ चलीं। ऐसा स्वयं हो गया। इस ही तरह शरीरमें वायु चली और फिर अंग भी चल पड़े। उसके निमित्तसे दबाव हुआ सो हवा निकलनेका अवकाश मिला। देखो ये काम सबके अपने आपमें हो रहे हैं। जहाँ हवाका पास होना हुआ और वहाँ आवाजका निकलना हुआ। इसपर भी पीतलसे शब्द प्रकट नहीं हुआ, किन्तु भाषावर्गणासे शब्द प्रकट हुआ। कोई किसी अन्यको कुछ नहीं करता। सब पदार्थोंके जुदा-जुदा काम हो रहे हैं, पर निमित्त उनका एक दूसरेमे है। जिससे यह भ्रम हो जाता है कि अमुकने यह काम किया।

वस्तुओंके स्वरूपको देखो तो परवस्तुओंमें स्वतंत्रतासे उनका अपने आपके परिणमनमे खुद काम हो रहा है। ऐसी स्वतंत्रताकी दृष्टि आती है तब ज्ञानी जीव जगतके पदार्थोंके परिणमनको देखकर न हर्ष करते है और न विषाद करते हैं। अब यह देखिए कि हम परेशान हो रहे हैं तो किसलिए परेशान हो रहे हैं? उनमें परेशान होनेसे क्या कुछ लाभ बना होगे? प्रथम तो ऐसा ही सोचें व यत्न करें कि मेरी दृष्टि बाह्यसे हट जानी चाहिए। इसमे असफलता हो तो फिर आगे सोचें कि मैं किसके पीछे बरबाद हो रहा हूँ, दुःखी हो रहा हूँ।

देखो पदार्थ दो तरहके हैं—(१) जीव और (२) अजीव। जीव वे कहलाते है जिनमे देखन हो, जानन हो, और अजीव वे कहलाते है जिनमे जानन तत्त्व न हो। दो ही प्रकारके तो पदार्थ हैं। इनमें से जीव तो दिखता ही नहीं, जो दिखा करते है वे दिखने वाले पुद्गल है अथवा ये जो दिखते है, भौतिक हैं। पदार्थोंमें एक तो भौतिक है और दूसरे चेतन पदार्थ जाने देखने जानने वाले पदार्थ हैं। इन दोनों प्रकारके पदार्थोंके पीछे परेशान हो रहे हो। विचार करो कि जिन जीवोंके पीछे परेशान होते हो वे दिखते हो नहीं हैं और जीवोंके स्वरूप मे दृष्टि दो तो उनमें देखन है, जानन है, ज्ञानानन्दमय भाव है वे तो जैसे है तैसे ही है। और वैसे ही सब हैं, किसीसे कोई विलक्षण नहीं है तो उनसे मेरे तेरेका भेद ही नहीं हो सकता। यदि विलक्षण हो तो मेरे तेरेका भेद है। परन्तु जीवोंके स्वरूपको देखो परस्पर कोई विलक्षणता नहीं है। सब स्वयं ज्ञानमय हैं, ज्ञायकस्वरूप है, कोई विलक्षणता नहीं है।

भारतके, विदेशके, गाँवके ये सभी जीव शुद्ध ज्ञानमात्र हैं। आत्माके मर्ममें दृष्टि डालकर देखो तो शुद्ध ज्ञानमात्र है, एक स्वरूपमें है। तो यह मेरा तेरापन कैसे मिल गया ? यह व्यामोह कैसे हो गया कि यह मेरा है, यह उसका है, यह दूसरेका है अथवा यह इष्ट है, यह अनिष्ट है। स्वरूपमें दृष्टि दो तो वहाँ कुछ नहीं मिलेगा।

भैया ! प्रथम तो इस जीवको पहिचानने वाले भी कोई नहीं हैं। और कोई पहिचाननहार मिल जाय तो इसका ज्ञाता द्रष्टा हो जायगा। तो उसकी दृष्टि भली बुरी नहीं होती है। सब प्रभु नजर आते हैं, सब एक चेतन पदार्थ नजर आते हैं, फिर कैसे मेरा तेरा माना जाय ? अपनी बरबादी दूसरोंके कारण नहीं होती है, अपनी बरबादी अपने ही कारण होती है। जो जीव हैं वे दिखनेमें नहीं आते हैं। जीवके पीछे तो हम बरबाद नहीं हो रहे हैं, परेशान नहीं हो रहे हैं, क्योंकि जीव तो दिखते ही नहीं। और वह दिखेगा तो ज्ञानीको ही दिखेगा। सो ज्ञानीकी वृत्ति ही अलौकिक है वह परेशान होता नहीं। परमार्थकी बात यह है कि जो कुछ भी दिखेगा वह अपने स्वरूपमें दिखेगा। सब जीव हैं, एक रस हैं, इस दृष्टिमें व्यक्तिपन ही खत्म हो जाता है। जीवके देखने वाले ज्ञानी योगी पुरुष व्यक्तिको नहीं देखते हैं। वहाँ उन्हें केवल एक चित् प्रतिभास ही नजर आता है। तो वहाँ परेशानी कैसी ? जहाँ व्यक्ति नजर नहीं आते हैं वहाँ तेरी नजर कैसे बने ? वहाँ परेशानी कैसे हो ?

सो भैया ! जीवके विषयमें यह बात है कि प्रथम तो जीव दिखते ही नहीं है। जो समझमें आते ही नहीं हैं उनमें परेशानी कैसे हो सकती है ? यदि उनका स्वरूप नजर आ जाय तो यह जीव एकरस है, चैतन्यस्वरूप है, सो जीवके स्वरूपके समझनेपर व्यक्तियाँ नजर नहीं आतीं हैं, व्यक्तियाँ हैं, भिन्न-भिन्न हैं, परिपूर्ण हैं, आनन्दमय हैं। आनन्दके अनुभव सबके जुदा-जुदा हैं, स्वरूपचतुष्टय सबका भिन्न-भिन्न है। ये सबके जीव सुखी दुःखी होते हैं। सब सत् है परन्तु जीवके स्वरूपको देखने वाले लोग व्यक्तियोंको अपने मनमें नहीं रख सकते हैं तो उन्हें एकचित्स्वरूप ही नजर आता है। जीवोंके पीछे लोग परेशान नहीं हो रहे हैं। अब इन पुद्गलोंकी बात देखो, ये दृश्य तो हैं, मगर ये जड़ बुद्धिहीन, कुछ कार्य न कर सकने वाले, कुछ ज्ञानकी कलाको न समझने वाले ऐसे तो ये जड़ पुद्गल हैं। इनसे तुझे कुछ मिलता भी नहीं है। इनसे न तो कुछ सुख है और न ज्ञान ही आता है। उनके पीछे हम क्यों बरबाद होते हैं।

मानो वे ज्ञानी मनुष्य इस कमरेमें न बैठे होते, केवल दस बीस चौकी और डाचर टेबुल इत्यादि अजीव पदार्थ रखे होते तो वहाँ कौन बोलेगा, कौन व्याख्यान देगा और कौन सुनेगा ? अरे उन अजीवोंसे लेना देना कुछ नहीं है। वे जड़ हैं, वे अपने आप हैं। उनसे

भी बरबादी नहीं है। इससे भी क्या होगा ? हाँ, इनके विषयमें विकल्पजालमें पड़नेसे बरबादी होती रहती है। मैं बरबाद होता रहता हूं तो अपने आप बरबाद होता रहता हूं। दूसरोंके द्वारा मैं बरबाद नहीं होता हूं। दूसरोंके पीछे विकल्पमें पड़नेसे परेशानी होती है और अपना ज्ञान बनानेमें सुख होता है। जैसे पताका अथवा झंडा वायुसे भर जाता है तो फड़फड़ाने लगता है उलझ जाता है तथा सुयोगसे यदि हवा बन्द हो जाय या अनुकूल वायु हो तो सुधर जाता है अथवा फड़फड़ाना बन्द हो जाता है। इसी प्रकार ज्ञान और अज्ञानका निमित्त पाकर अपने अज्ञानका निमित्त पाकर स्वयंमें उलझ जाता है और ज्ञानके सुयोगको निमित्त बना लिया तो ज्ञान सुलझ जाता है। आपको परेशान करने वाला इस दुनियामें है कौन ? ये खुद बाह्य पदार्थोंका निमित्त पाकर परेशान होते हैं। यह परेशान शब्द उर्दूका शब्द है। इसे संस्कृतके शब्दोंसे लो तो इसमें २ शब्द हैं—(१) पर और (२) ईशान। पर जिसका ईशान बन जाय, ईशान कहते हैं स्वामीको, अथवा दूसरा मालिक बन जाय। उसे कहते हैं परेशान। यदि दूसरेको हम अपना मालिक समझ बैठें तो यही परेशान शब्दका अर्थ है और इसे परेशानी कुछ नहीं है। दूसरेको अपना मालिक समझ लेना, खुदको परका मालिक समझ लेना, बस यही परेशानीकी जड़ है। परेशानके भावको परेशानी कहते हैं।

धन्य है वह परिस्थिति, धन्य है वह अनुभूति जिसको केवल सहज ज्ञान रसका अनुभव आ रहा है। परमें विकल्प न हों तो परिस्थिति धन्य है। उसकी अनुभूतिका नाम दुर्गा है। 'दुःखेन गम्यते प्राप्यते या सा दुर्गा।' जो बड़ी कठिनाइयोंसे पूर्ण होना है उसे दुर्गा कहते हैं। यह स्वानुभव बड़ी कठिनाइयोंसे प्राप्त होता है।

भैया ! अपने आपमे ऐसा उपयोग बन जाय कि कोई बाह्य पदार्थ उपयोगमें न हो, केवल शुद्ध ज्ञानरसका अनुभव होता रहे, ज्ञानदृष्टि होती रहे, तब तो जीवन सफल है अन्यथा क्या दुष्परिणाम है ? प्रमाण यह है कि जो अभी तक हम संसारमे डोला जा रहा है उसे यदि शुद्ध स्वरूपका अनुभव हो जाय तो यह शुद्ध आत्मतत्त्व इस शरीरके बंधनसे छूट जाय। यह शरीर जड़ है, हड्डी और मांससे बना है। इसमें कोई सार नहीं नजर आता है। इस शरीरमे फोड़ा फुंसी हो जावें, अनेक परेशानियाँ आवें, इसमे कोई सार नहीं नजर आता है। जो सुन्दर रूपके आपके बैठा है उसको छेद करके देख लो, इसमे कोई सार नहीं नजर आता है। इस शरीरको असार झोंपड़ी समझ लो और अपने आपको समझो कि मुझमें शुद्ध ज्ञानस्वरूप चैतन्यमात्र आत्मतत्त्व मौजूद है। जैसे किसी गाड़ीमें गधा और ऊँट जोत दो या हाथी और गधा जोत दो तो जैसी स्थिति होगी ऐसी ही स्थिति मेरी भी बनाई जा रही है। कहाँ तो ऐसा शुद्ध परमात्मतत्त्व मैं हूं और कहाँ इस असार शरीरका बन्धन बँधा है। फिर भी मैं

अलग रहता हूँ । इनका अनुभव करते हो तो जितने उत्कृष्ट भाव बनते हैं । मैं तो पवित्र, ज्ञानमात्र, शुद्ध चैतन्यस्वभावी केवलज्ञानमय, केवल ज्ञानानन्दमय हूँ और ये पुद्गल असार हैं, अहित हैं, इनसे सम्बन्ध हो रहा है, फिर भी सम्बन्ध ही नहीं यह भीतरके अपने आपके स्वरूपको जानता नहीं और बाहरमें असारको लखकर सर्वस्व मान रहा है । ऐसी दृष्टि हो रही है ।

हे नाथ ! अन्य बहु जगा है अब सबको छोड़कर अपने आप पर शुद्ध नजर करेंगे । यदि बाह्य ही में फँसे रहे तो बरबादी होगी । इन जीवोंमें जिनके पीछे पड़ रहे हो वे अग जीव स्वार्थी हैं । वे अपने आपके स्वार्थके लिए अपनी चेष्टा कर रहे हैं । इस मायामय जग के पीछे मोहमें पड़कर मोही स्वयं बरबाद हो रहे हैं अर्थात् अपना ख्याल बनाकर, अप कल्पनायें बनाकर ही दुःखी हो रहे हैं । जो जगतका स्वरूप जब जान लिया तो फिर का ही क्या है ? जो जैसा है वैसा जानते जावें तो स्वरूपरमण होना सुगम ही है । तो अब मेरे ऐसी ही भावना हो कि अब मैं तो अपने ही स्वरूपकी रुचि करके अपने लिए अपने आपको पाकर विश्राम पाऊँ और सुखी होऊँ ।

मेरा मात्र मैं ही हू । मेरा अन्य कोई कुछ नहीं है । किसीके पीछे दुःखी होना व है, हठ ही रहा है । जगतके कौनसे ऐसे विषय हैं जो मेरी
ससारके लुटेरे घसीटोंमें चिंताएँ करना, हठ करना, यह मेरी है, यह उसकी है, यह सब व है, पुण्यके उदयका ऊधम है । बड़ा सोच करते हैं कि यदि हठ नहीं करें तो संसारके लोग क्या कहेंगे ? भैया ! मायाके हठसे इज्जत नहीं बढ़ती । हिंसा करे, मान करे, अन्याय क द्वेष करे, परिग्रह करे तो क्या जीव महान् हो गया ? क्या जीवकी इज्जत हो गयी ? अरे पाप किया और मर गए, मरकर कीड़े मकोड़े हो गए तो फिर क्या इज्जत रह गयी ? अपने धर्मसे न चिगना यह सबसे बड़ी कमाई है । जिससे परिपूर्ण आनन्द मिले उससे बढ़कर और क्या हो सकता है ? इससे इस लोकमें सुख है और परलोकमें भी सुख रहेगा अन्यथा बाह्य दृष्टि हो तो तुच्छ तुच्छ बातोंमें भी यह प्रभु फंस जाता है ।

एक सुना हुआ कथानक है कि एक मास्टर और एक मास्टरनी थे । दोनों ही भिन्न भिन्न स्कूलोंमें पढ़ाने जाते थे । समझ लो इतवारका दिन है । मास्टरजी ने मंगोड़ी बनवानेका प्रोग्राम बनाया । बहुत अच्छा सामान बाजारसे खरीदकर मास्टरजी ने घरमें रख दिया । अब मास्टरनी मंगोड़ी बनाने लगी । बनाते-बनाते २१ मंगोड़ियाँ बन गयीं । २० और १ = २१ । अब मास्टर भोजन करने बैठे । १० मंगौड़ियां मास्टरको परोस दी और ११ मंगो-

स्त्रियाँ पकौड़ियाँ बना रही थीं। कभी मजाक भी हो जाती है, जरा-जरासी बातोंमें जिद्द भी हो जाता है। मास्टरने कहा—हमें १० मंगोड़ियाँ परोसो और अपने लिए ११ रख लो। मास्टरनी बोली—मैंने तो परिश्रम किया है, इसलिए मैं ११ खाऊँगी और आप १० खायेंगे। मास्टर बोला कि हम ११ खायेंगे, तुम १० खाना। अन्तमें दोनोंका निर्णय हो गया कि दोनों चुप हो जावें। जो पहले बोल देगा उसे १० मिलेंगी और जो बादमें बोलेगा उसे ११ मिलेंगी। दोनों चुप हो गए। १ दिन हो गया, २ दिन हो गये, भूखों मरे जा रहे हैं, तीन दिन हो गए, चारको हो गए, मगर जिद्द नहीं छोड़ी। स्कूलके बालकोंने देखा कि मास्टरजी ४ दिनसे स्कूल नहीं आते हैं, वे मास्टरजीके घर आए। देखा दोनों मरे पड़े हैं। मरे नहीं, वे मरेसे हो गए थे। सब लोग जुड़ गए, सबने देखा कि दोनों एक साथ मर गए। चलो इनकी अर्थी बना लें और ले चलें। यद्यपि अभी मरे नहीं थे, पर वे मरेसे हो चुके थे। वे चुप रहनेकी जिद्दमें मरेसे हो गए थे। लोगोंने अर्थी बना ली और दोनोंको लिटा लिया, अर्थी ले गए। आग लगाने ही वाले थे कि स्त्रीने देखा कि अब हम दोनों नहीं बचेंगे। तो भाग्यकी बात देखो कि अर्थी ले जाने वाले २१ लोग थे। स्त्री झट बोली कि आप ११ खा लेना, हम १० खा लेंगी। लोगोंने समझा कि ये मरकर भूत हो गए हैं। जब उन्होंने स्त्रीके शब्दोंको सुना तो डर गए। बोले कि अरे ये हम सबको खा जायेंगे। हम इक्कीसों ही खत्म हो जायेंगे, इसलिए सब छोड़कर भाग गए। दोनों ही घर चले गए। बोले कि जो पहले बोला वह १० खाए और हम ११ खायेंगे।

ऐसी कोई घटना अपनी जिन्दगीमें ही घटित हो जाती है। बहुत सी बातें ऐसी हो जाती हैं जिनमें कुछ सार नहीं होता है और बवाल खड़ा हो जाता है। ज्ञानकी शरण लो भैया, यदि ऐसा होगा तो क्या, न होगा तो क्या, यों परिणमन हो गया तो क्या ?

आपने देखा होगा कि उनमें क्षमा कर देनेका माद्दा, दूसरोंको माफ कर देनेकी बात बहुत अधिक होती है, जो बड़े घरानेके लोग होते हैं। वहाँ उपद्रव और ऊधम इत्यादि ज्यादा होते हैं तो भी वे धीर रहते हैं। यह ज्ञानकी ही बात तो है। खराब प्रकृतिके जो लोग होते हैं वे छोटी-छोटी बातोंमें अड़ जाया करते हैं। जैसे कहते हैं ना—घरमें सूत न कपास कोली से लट्ठमलट्ठा।

दो आदमी चले जा रहे थे। एक किसान था और एक जुलाहा। एक मैदान मार्गमें मिला। किसान बोला—अगर यह मैदान मिल जावे तो कपास बोवेंगे, कपासके कपड़े बनवायेंगे, व्यापार करेंगे, बेचेंगे। जुलाहा बोला—अगर यह मैदान मुझे मिल जाय तो मैं भैंसें चराऊँगा। किसान बोला कि अरे तू भैंसें कैसे चरावेगा, मैं कपास बोऊँगा। जुलाहा बोला—

अच्छा देखो मेरी भैंसें चरती हैं या नहीं। रास्तेमें चले आ रहे थे। हाथ चलाकर किसान बोला—भाई मैंने जीवन हलमें जोत लिया, बीज बो दिये, कपास पैदा हो गयी। जुलाहा २० ककड़ उठा लेता है और कहता है कि भो हमारी एक भैंस आ गयी, दो भैंसें आ गयीं और तीन भैंसें आ गयीं। दोनोंमें तेज लड़ाई हो गयी।

तो ये जगतके प्राणी व्यर्थकी बातोंमें विवाद खड़ा कर देते हैं। घरकी बात देख लो। घरमें तो गुजारा करना ही पड़ता है। कई बातोंके लिए लड़ाई लड़नी ही पड़ती है। फिर भी एक लक्ष्य हो जानेसे शांति हो जाती है। धर्मसे ही काम हो तो धर्मके प्रसंगमें भी विवाद खत्म हों। धर्मके कामोंमें लड़ें और विवाद हो यह तो आश्चर्यकी बात है। अरे ये सब क्या हैं? अपने धर्मको छोड़कर कहाँ दृष्टि डाल रहे हो? धर्म अपने आपकी आत्मामें है। अपने आपके स्वरूपमें दृष्टि हो तो धर्म है। धर्म बाह्यदृष्टिसे, बाह्यमें मोह करनेसे नहीं मिलेगा। शुद्ध परिणामसे ताल्लुक रखो तो धर्म होगा। अगर क्रोध आदि कषायका बन्धन होगा तो धर्म नहीं होगा। अरे मैं चेतन पदार्थ किन पदार्थोंके पीछे बरबाद हो गया, जिसमें कोई सार नहीं है। इस जगमें जो जीव हैं वे दिखते नहीं हैं और जो अजीव हैं वे दिखते हैं, किन्तु जड़ है और जो जानने वाले, समझने वाले हैं वे दिखते नहीं और जो समझते नहीं, वे दिखते हैं। भाई जो रफ्तार चल रही है उसमें फर्क करना चाहिए। अपनेको अपने आपमें झुका लेना, बस इसीसे शान्तिका मार्ग मिलेगा, अन्यथा संसारमें रुलना ही पड़ेगा। जब तक हम अपने आपसे मुड़कर विमुख रहेंगे तब तक शान्ति नहीं आयेगी, अपनेको शान्त रखनेके लिये समर्थ ज्ञान है, स्वाध्याय है, आत्मचिंतन है। यदि अपने ज्ञानमें ही सही ध्यान बने तो अपने आप शान्ति प्राप्त होगी और अपने आपमें सही ज्ञान न बना तो अशांति ही रहेगी। अतः ज्ञानबलसे अपने आपको मेटकर, मैं अपने आपको देखकर अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊं। सुखी होनेका उपाय अन्य नहीं है। आत्मदर्शन ही सुखका उपाय है।

ॐ शान्तिः, ॐ शान्तिः, ॐ शान्तिः

परः कोपि हितो मे नो यो हितोऽहं न भूतिकः।

चित्स्वे कस्य नयामि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१७॥

अब तक भी जिन जीवोंसे सम्बन्ध हुआ उन प्रसंगको याद कर लो। क्या उनसे कुछ लाभ हुआ, उनसे कोई हित है? अबसे १० वर्ष पहले २० वर्ष पहले जो संग था, परिचय था उस प्रसंगसे कितना लाभ पाया था? इस बातका भी ध्यान कर लो। जो भी सम्बंध हुआ उनमें यह जीव पछतावा ही रहा है व पछतावा करता है. लाभ कुछ नहीं मिलना है। परिस्थितियाँ सब अलग-अलग हैं; लेकिन सभीका एक ही सबका है सम्बन्ध हुआ, राग किया,

देख लिया, [illegible] बनाओ, कार्य किए । जिन जिनसे परिचय हुआ उनसे क्लेश ही मिला, पछतावा ही मिला, अशान्ति ही मिली और यहाँ भी देखो तो जो जीव मोही हैं, वह तो कूद कूदकर पछताता है, रागमें पड़कर तड़पकर व्याकुल होता और परेशान होता । मगर जो ज्ञानी लोग हैं वे रागमें नहीं पड़ते, समयके अनुकूल ही अपनी अवस्था गुजार देते हैं, उन्हें कोई परेशानी नहीं होती । अज्ञानी लोग अपने आत्मतत्त्वको नहीं समझ पाता है, वह अपना जीवन यों ही गुजार देता है । अज्ञानी दूसरोंसे अपना सम्बन्ध स्थापित करता है । इस संबंध का फल पछतावा होता है, इसका कोई निर्णय नहीं करता । जिनका संबंध अन्य जीवोंसे है वे भले ही माने कि हम सुखी हैं, मौजमें हैं । परन्तु अन्तमें इसका फल अत्यन्त पछतावा ही होता है । इस कारण कोई भी परपदार्थ मेरा हितरूप नहीं है ।

मैं मैं ही हूं अर्थात् मैं अपनेमें यथार्थ हूं, मैं स्वतंत्र हूं, सत् हूं, चित् प्रतिभासमात्र चैतन्यस्वरूपमात्र आप, जिसका काम केवल देखना और जानना है, ऐसा मैं ही हूं । अपने आपमें हूं, वह मैं आत्मा हितरूप हूं । यदि इसी तरह मैं अपनी आत्मामें देखूं तो मैं हितरूप हूं, जो ऐसा हितरूप मूर्तिक पदार्थ मैं नहीं हूं । जो आंखोंसे देखा जाय, पकड़नेसे जो पकड़ा जाय, नाकसे सूंघा जाय, ऐसा मैं मूर्त पदार्थ नहीं हूं । जो हितरूप हैं वे किसीको दिखते नहीं हैं और जो दिखते हैं वे हितरूप नहीं । फिर मैं किसके चिन्तनमें, किसके विचारमें अपनेको नष्ट कर रहा हूं, वे सारे विकल्प अनर्थ हैं । ये मेरे प्रयोजनको सिद्ध न करेंगे, प्रथम तो जितने विकल्प उठते हैं वे सब अनर्थ हैं । मेरे बाहरके लोगोंसे बाहरसे कुछ आता नहीं नहीं है । जितने भी लोग काम करते हैं, दुकानका, दफ्तरका, घरका, समाजका वे सब अपने आप होते रहते हैं, इच्छा करलें और अमलकारी कर लें, इसके अलावा और कोई काम नहीं करते ; और जो कुछ होते हैं वे अपने आप होते हैं ।

भैया ! यदि मैं कुछ करता होता तो जो मैं करूं सो होवे । पर ५ प्रतिशत तो इच्छा माफिक होते नजर आते हैं और ९५ प्रतिशत न होते या प्रतिकूल नजर आते हैं । जरा सोचो तो ५ प्रतिशत भी मेरे इच्छासे नहीं होते हैं और न करनेसे होते हैं । वहाँ पर केवल विकल्प ही होता है जो अनर्थ है, कार्यकारी नहीं है, ऐसा संयोग सुयोग जिसका होगा वह होगा, मेरे करनेसे कुछ नहीं हुआ करता है । मेरा करनेसे मैं ही होता हूं । दुःख होते, सुख होते, व्याकुल होते, अशान्ति होती, जो कुछ भी होते हैं वे मेरेमें मेरे लिए ही होते हैं । मेरेसे बाहर मेरे कुछ नहीं होते हैं । परपदार्थ भी मेरे नहीं हैं और न हो सकेंगे । कितनी ही बातें ऐसी हो जाती हैं जिनको आप बहुत दिनोंसे सोचते आते हैं, पर पूरी नहीं होती हैं । जैसे हो परपदार्थ पर आपका अधिकार नहीं जाता होगा । किसी कामको १० वर्षसे

करते आये पर काम नहीं हुआ, ये सब पुण्य पापोंके निमित्तकी बातें हैं। जैसा पुण्य पापका निमित्त है तैसा बाहरमें संयोग होता है।

ये जगत्के जीव अपने आप कर्मोदयवश सर्वत्र विचरते रहते हैं। इनके जन्म मरण होते रहते हैं। जन्म होगा, फिर मरण होगा, फिर जन्म होगा, फिर मरण होगा। एक पंचेन्द्रियका शरीर भी प्राप्त हो गया। आंखें देखनेके लिए प्राप्त हो गयीं, कान सुननेके लिए प्राप्त हो गए। वह कुछ देखने लगा; यह शहर है, यह मुहल्ला है, यह फलां है इत्यादि, वहां कुछ समागम हो गया, तो उस समागममें इतना लीन हो गए कि अपने स्वरूपको भी खो बैठे। यदि अपने स्वरूपकी चर्चा करें, अपने ही स्वरूपके निकट पहुंचें तो वहां आकुलताओंका नाम नहीं रहता है। अपना स्वरूप है केवलज्ञान। आत्मा सर्व पदार्थोंसे विलक्षण एक सत् है, यह ज्ञानी ज्ञाता ही बना रहता है। इसका और कोई काम ही नहीं है। सब अपनी-अपनी धुनमें है। सब पदार्थ अपने-अपने स्वरूपमें परिणमते हैं। जैसे घड़ीमें चाबी भर देनेसे चला करती है तुम चाहे जो काम कर रहे हो, घड़ी अपना काम कर रही है, वह खुद अपना काम कर रही है। दूसरा कोई उसके लिए नहीं है। जब काम कर चुके तो देखा अरे २ बज गए, १ बज गया। अरे ३ घंटे हो गये। घड़ी अपने काममें व्यस्त है, हम चाहे कुछ भी करें। इस छोटे दृष्टान्तके आधार पर देखो—जगत्के प्राणी अपने-अपने कामोंमें व्यस्त है, अपना-अपना काम करते हैं। ये प्राणी यदि दूसरे पदार्थोंके बारेमें चिन्ता करते हैं तो मानो वे पागलपनकी बातें सोचते हैं।

एक आदमी सड़कके पास एक कुएंकी जगत पर बैठ गया। सामनेसे एक मोटर आयी, कुछ लोग मोटरसे उतरकर कुएंमें पानी पीने गए। पानी पीकर मोटरमें बैठकर लोग चले गए। अब वह व्यक्ति जो कुएंकी जगत पर बैठा था, मोटर चली जानेसे दुःखी हो गया, हाय मेरी मोटर चली गयी। इसी तरह इस जगत् के जीव इस सड़कके बीच कैसे पड़े हुए हैं? चारों तरफसे इस जगत्में जीव आ रहे हैं, कोई कहींसे कोई कहींसे आ रहा है। यह पागल प्राणी मान लेता है कि यह मेरा है, यह उसका है इत्यादि। तो ऐसा सोचनेसे उसका क्या हो गया? अरे जो आए हैं, मिट जावेंगे। उनका अस्तित्व भिन्न-भिन्न हैं पर इस मोही जीवने मान लिया कि ये मेरे हैं। सो वे अपने परिणमनसे आए हैं और अपने परिणमनसे जावेंगे। जब जानेका टाइम होगा तब चले जावेंगे और अपने परिणमनसे जावेंगे। जब जानेका टाइम होगा तब चले जावेंगे और यह व्यर्थ जानकर दुःखी बनेगा। यह मोही प्राणी उनके ही पीछे पागल हो रहा है, दुःखी हो रहा है। यह मेरा था और चला गया। इस तरहके व्यर्थ विकल्पसे हो मोही दुःखी होते हैं। जरा अन्तर्दृष्टि तो दो हमारा इस जगत्में है,

क्या ?

अरे प्रियतम ! यह मैं तो केवल ज्ञानमात्र हूं, सबसे निराला हूं, सबसे जुदा हूं, ऐसी दृष्टि बने तो आत्मज्ञान मैं पा सकता हूं, नहीं तो आत्माका ज्ञान पा सकना बहुत मुश्किल है। इस आत्माको स्वलक्षणकी दृष्टिसे देखो तो कि मैं आत्मा ज्ञानमात्र हूं, ज्ञानमय हूं, यह आत्मा ही मेरा धन है, यही मेरा निजी घर है, यह आत्मा ही मेरा निजी परिवार है। इस मेरी निजी आत्मामें जाननकी ही व्यवस्था है, जाननके अतिरिक्त मेरा कहीं कुछ नहीं है, ऐसा मात्र जाननस्वरूप अपनेको निरखो तो वहां न तो भोगका पता रहता है और न जगत् का पता रहता है, किन्तु ज्ञानमात्रका अनुभव करना व भोगना रहता है। यही सिद्ध योगियों की स्थिति रहती है, जिसके विवेक है, ज्ञान है, समझदारी है तो वे संसारके दुःखोंसे दूर रहते हैं, और जिसके भ्रान्ति है, अज्ञानता है वे ही इस संसारमें पड़े रहते हैं, दुःख उठाया करते हैं, उनकी उन्नति नहीं हो सकती है। हे आत्मन् ! इन बाह्योंमें कौनसा सार है, उनमें पड़ने से तुम्हें क्या लाभ मिलता है ? अरे इन बाह्योंसे कुछ नहीं मिलेगा। यदि अपनेमे ऐसा ज्ञान बनाओ, ऐसी हिम्मत बनाओ जिससे तुम स्वयं स्थिर हो सको तो मुक्तिका मार्ग मिल जायगा नहीं तो नहीं मिलेगा।

प्रभो ! मुझे मुक्ति मिले या न मिले, किन्तु इतना बल तो होवे कि रागमें पड़कर अंधा न बनूं, द्वेषकी ज्वालामें न जलूं। राग द्वेष करना ठीक नहीं, किन्तु इतनी बात हो जावे तो मुक्तिका मार्ग तो मिलेगा ही। राग द्वेषमें पड़नेसे कुछ लाभ नहीं हो सकेगा। राग जिनसे करते हो उनको सामने लेकर प्राइवेट बात कर लो। उनके पीछे पड़कर क्यों रात-दिन चिंतन किया करते हो ? इतना ही ध्यान रखो कि वे मेरे किसी हितमें काम आ सकते हैं ? मेरे कल्याणमें कैसे साधक हो सकते हैं ? जब तक हम जानते हैं कि उनसे हमारा कल्याण होता है तब तक हम भूले हुए हैं। अरे उनसे हमारा भला नहीं होगा। उनके सम्पर्कमें तो हम जहांके तहां ही हैं और वहांसे भी कुछ नीचे हैं। कौनसे पदार्थ हितरूप हैं निर्णय करो। और निर्णय आ जाय तो परपदार्थोंसे उपेक्षा भाव कर लो। कोई मेरा हित-रूप नहीं, इसलिए किसकी चिंता करके, किसका विचार करके अपने आपको बरबाद करें ? सबसे छूटकर केवल ज्ञानमात्र, ज्ञानमात्र मैं हूं, ऐसा दृढ़ सत्यका आग्रह करके मैं अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ।

भैया ! सुखी होनेका दूसरा उपाय अन्य नहीं है। मैं हो मान जाऊं कि मैं सब कुछ हूं, परिपूर्ण हूं, अधूरापन मेरेमें नहीं है, मेरा बाहरमें करनेका कोई काम नहीं है, मैं हूं, ज्ञानमय हूं, ज्ञानमें ही बर्तता रहता हूं, इसके आगे मेरा काम नहीं है। अन्यको मान लूं कि

यह मेरा काम है तो इसमें गल्ती है, दुःख होना प्राकृतिक बात है। हम तो भगवानस्वरूप है। जैसा जानन भगवानका है तैसा ही मेरा है। मगर हम तो बहुत सी बातें बनाकर जानते हैं, जैसा है वैसा नहीं जानते हैं। सो देखो उनसे भी बढ़कर बन गए हैं। कोई छोटा आदमी किसी बड़े आदमीसे स्पर्धा करें, हिम्मत करें कि मैं इससे बढ़कर बन जाऊँ तो इसका फल पतन है। हम भगवानसे बढ़कर बनना चाहते हैं। भगवान नहीं जानता है कि यह मेरा घर है, यह फलाने लालका घर है, यह मेरी चीज है और यह फलानेकी चीज है। मगर हम कहते हैं कि यह मेरा घर है, यह फलाने लालका घर है, यह मेरी चीज है, यह फलानेकी चीज है। वह भगवान तो शुद्ध है, सीधा सादा सही जानता है, अक्लमंद नहीं बन रहा है। जैसे वह इस मकानको ऐसा जान रहा है जैसा कि यह परिणमता है, रूप रस गंध, स्पर्श वाला है, पुद्गलोका स्कन्ध है। जैसा है तैसा इसे जानता है, प्रभु वही जानन है। और यह मै जो नही है उसे भी जाननेका विकल्प करता हू। मोही यह जानता है कि यह अमुक लालका घर है, अमुक लालकी चीज है, परन्तु प्रभु तो जो है उसे ही जानता है और जो नहीं है उसे नही जानता है। हे आत्मन्! २४ घटेके समयमें कुछ ही समयमें यथार्थ जानकारी कर लो, सम्यग्ज्ञान कर लो। अपनेसे अलग चीजमे लगनेसे कोई फायदा नही है। अगर स्वच्छ उपयोगको जान जावो तो रोज रोज लाभ ही मिलता रहेगा और जो मोहमे ही रहेगा तो उसे अन्तमे मिलेगा कुछ नहीं। जाना पडेगा अन्तमे अकेला ही। मुट्ठी बांधे आया है और हाथ पसारे जावेगा, जब बच्चा पैदा होता है तो मुट्ठी बांधे ही रहता। कवियोकी ऐसी कल्पना है कि जो पूर्वजन्ममे पुण्य किया है उस पुण्यको ही वह मुट्ठीमे लिए हुए है। जन्मते समय उस बच्चेके पास सब पुण्य होता है परन्तु ज्यों ज्यों आयु बढ़ती है विषय कषायोके भाव बढ़ते है, पुण्य खुलता है, त्यों त्यों हाथ खुलते जाते हैं। वह मरते समय तक सब पुण्य खत्म कर चुकेगा विषय कषायोंमे रत होकर।

भैया! जिन्होंने बचपनमे ज्ञान नहीं किया, जवानीमे विषयोसे उपेक्षा नही की और चाहे जो कुछ जीवनमें धर्म किया हो, व्यवहार किया हो वह कुछ नहीं रहता है। केवल विषय कषायोंकी आकुलताएं ही रहती हैं। जन्मते समय बच्चा केहां कहां बोलता है? कवियोंकी कल्पना है कि बच्चा सोचता है कि मैं कहां था और कहां आ गया। कैसा सुख से था और अब कहां दुःखमे आ गया। बचपनमे मां बापने खूब लाड प्यार किया खूब मौज किया, विवाह हो गया, स्त्री प्रसग किया और अनेक कल्पनाओंमें लगा रहा एक क्षण को भी अपने आत्मस्वरूपपर ध्यान न दिया, तब जब वृद्धावस्था आयी, दुःखोंमे घिरे तब पछतावा करते है। विषय कषायो की भावनाएं रखनेका ही कुफल इस वृद्धावस्थामें मिलता

रहता है। अगर बचपनसे ही अपने आपके स्वरूपके अध्ययन पर ध्यान लगाता, धर्मके काम करता तो ऐसी परेशानी वृद्धावस्थामें नहीं आती।

वे जगत्के प्राणी जन्मते समयसे ही विषयकषायोंमें ही रहे, मोहमें रहे, आराम परिग्रहमें रहे और धर्मके कार्योंमें न लगे। निजके स्वरूपको न देख सके तो अन्तिम अवस्थायें बरबाद होते रहते हैं, दुःखी होते रहते हैं। मरनेके समय उनकी वैसी गति हो जाती है जैसी कि मति रहती है। वे जन्म मरणके चक्रमें ही पड़े रहते हैं। अनेक प्रकारके शरीरोंमें जन्म ले करके इसके इस मनुष्य शरीरके जन्ममें आते हैं और अपनी जिम्मेदारी नहीं रखते हैं, अपनी जिम्मेदारी न रखनेसे वे खराब होते रहते हैं और अपने भविष्यको खराब किया करते हैं। जिन्होंने अपनेको उत्तम सत्य यथार्थरूपमें जानकर अपने भविष्यको बनाया, अपनेको अपने आपके उपयोगमें लगाया उनकी सद्गति होती है और भविष्य उज्ज्वल होता है। अगर अपने भविष्यको खराब किया, अपने आत्मतत्त्वको न समझ पाया तो उनका पतन होता है। हमें अपनी जिम्मेदारी अनुभवमें लानी चाहिए और वह जिम्मेदारी यह है कि भाई हजार पांच सौ कम आते हैं तो कम आने दो, नष्ट होते हैं तो नष्ट होने दो। उनसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है, मेरा सम्बन्ध तो मेरे परिणामसे है। यदि मेरा परिणाम मेरे स्वभावमें है तो उत्तम है और यदि प्रतिकूल है तो दुःख होंगे।

भाई! अपने पर्यायके गर्वमें आकर अपनेको महान् समझना और दूसरोंको तुच्छ समझना, इससे तो कोई लाभ नहीं है। यदि ऐसे ही विचार बने रहेंगे तो अपने सही स्वरूप का पता नहीं हो पायगा। और यदि यथार्थ विचार बनेंगे तो उपद्रव नहीं होगा और न दुःख ही होंगे। सब ज्ञानी हैं ऐसी दृष्टि रहे और जिस दृष्टिके प्रतापसे बड़ा न्यायपूर्ण व्यवहार बनता है वह व्यवहार भी रहे तो लाभ रहे और न रहे तो मोहका स्वप्न है। जो चाहो विकल्प कर लो, मगर फल खराब ही रहेगा। यह उपयोग सिंहासन ऐसे स्वच्छ भावका है कि जिसपर ज्ञानमय प्रभु विराजमान रहते ही हैं। चाहे प्रभुका ज्ञान हो, चाहे अलौकिक ज्ञान हो, ऐसे आसनपर मोही जीव मोही जीवोंको बैठाकर जगतमें रुलने वाले अज्ञानी जीवोंको बैठाकर गंदा कर रहा है ना। मैं अपने आपको गंदा न करूं तो स्वच्छ बना रहूं। अपने आपको शुद्ध एवं स्वच्छ बनाओ। यही तेरा सर्वस्व है, और यही तेरा सिंहासन है। अपने आपको यह समझो कि मैं सबसे निराला ज्ञानानन्दघन, भावात्मक चैतन्यस्वरूप पदार्थ हूं, इस प्रकारकी दृष्टि अपने निज प्रभुपर रहे तो यही यथार्थ ज्ञान है। राग, द्वेष, विकार इत्यादिकी तरंगें तेरेमें न हों, ऐसा यह तेरा प्रभु ही याने तेरा स्वरूप ही उत्कृष्ट है। ऐसा यदि उपयोग अपने प्रभुके

मुक्ति बनाए रहे तो हमारा उपयोग स्वच्छ रहता है। और अशुभ उपयोग पाप, अज्ञान और मोह इत्यादिसे संसारमें रुलना ही बना रहता है। अगर इस संसारमें ही भटकते रहे तो सदैव अपवित्र ही बने रहेंगे। इस जगतके प्राणीको अपवित्र रहना ही सुहावना लग रहा है। इसमें ही विपत्तियां हैं, दुःख हैं। यदि यह प्राणी अपने उपयोगसे परलगावको टाल दे तो प्रकाश मिलेगा, ज्योति मिलेगी और मुक्तिका मार्ग मिल जायगा।

भैया! अपनेको बरबाद क्यों किए जा रहे हो? अपने आपके अंतरंगमें दृष्टि नहीं लगाते हैं, यह एक बड़ा भारी संकट है। अरे इनको क्या संकट मानें कि १० हजारका नुकसान हो गया, अमुक गुजर गया, इनमें तू संकट मानता है। मेरी आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानको ही लिए हुए हैं, स्वच्छ है। जिनका संयोग होगा, उनका रोकने वाला कोई नहीं है। अपने स्वरूपको देख, तू सर्वदा पूर्ण है। ज्ञानी होगा तो वह सदैव ही आनन्दमय होगा और प्रसन्नचित्त रहेगा, परन्तु यदि अज्ञानी है तो निरंतर दुःख ही रहेंगे। इस तरह अगर बाह्यपदार्थोंमें ज्ञान आता है कि यह मेरा है। यह उसका है तो यह एक बड़ा भारी संकट है। इन संकटोंका करने वाला मैं ही हूं। मेरेमें संकट इन बाह्यपदार्थोंके उपयोगसे ही आते हैं। जो साधुजन हैं, योगीजन हैं, प्रभुके भक्त हैं वे बाह्यमें अपनेको नहीं फंसाते हैं। यही कारण है कि उनके पास संकट नहीं आते हैं। जिन बाह्यको अपने उपयोगमें लाकर संकट सहते हो, मौज माने जाते हो वे संकटोंको बढ़ाने वाले हैं, संकटोंको हटाने वाले नहीं हैं। अरे संकटोंको बढ़ाने वालोंसे इतना मोह और हटाने वालोंसे इतनी विमुखता। जो संकट देते हैं उनसे इतनी प्रीति है। ये चेतन अचेतन वैभव जो मिलते हैं उनसे मोह अंधकार मिलता है, राग मिलता है, जिसका फल क्लेश ही है सो क्लेश सहते जाते और उसीमें मौज मानते जाते।

जैसे मिर्च खानेकी आदत हो जाती है, खाते हैं, सी सी करते हैं, आंखोंसे आंसू गिरते जाते हैं, दुःखी होते रहते हैं, फिर भी खाना नहीं छोड़ते हैं। ये सब बाहरी पदार्थ हैं, इनमें तू निज बुद्धि करेगा तो उपद्रव प्राप्त होगा, दुःख होंगे, संकट होंगे। संकट सहते जाते हैं और प्रीति करते जाते हैं। बच्चोंसे, स्त्रीसे, घरके लोगोंसे रागके झगड़े चलते रहते हैं, रिसा जाते हैं, रूठ जाते हैं, और लो फिर शामको अपना लिया। इस तरहसे इन मोहियोंका काम चलता रहता है, गृहस्थीमें रहे और परिवारके लोगोंको छोड़कर रहे यह तो नहीं हो सकता है, रहो, पर भीतरसे ज्ञान साफ होना चाहिए।

मेरा मात्र मैं ही हूं, मेरा सर्वस्व हितकर मैं ही हूं, इसलिए अपने आपमें साफ बना रहता हूं, अगर मैं अपने आपमें मौजूद हूं तो किसीकी ताकत नहीं कि दुःखी कर दे। ऐसी

ताकत अपने आपमें बना लेनेसे दुःख नहीं बन सकते हैं। ये जगत्के पदार्थ परमाणुमात्र भी मेरे नहीं हैं। ऐसे भिन्न अगर बन जावें तो दुःखी नहीं हो सकते हैं। महिमा तो ज्ञानकी है और तो फिजूल है। महिमा तो एक ज्ञानमें ही है। शुद्ध ज्ञान है तो विजय है और नहीं तो मलीन है और मलीन होनेसे सर्वत्र संकट ही संकट हैं। ये संकट कोई दूसरा नहीं लाता है। खुद अज्ञानी है तो संकटमें फंसे। अपनेको संकटोंसे बचाना है तो उपाय सही बने और आत्म-स्वरूप ही ज्ञानमात्र है, आनन्दघन है, अपने आपमें परिणमता रहता है, इसके बाहर मैं कुछ नहीं हूं ऐसा उपयोग बने।

अरे सेवा करता कौन है ? भीतरसे कषायकी प्रवृत्ति हो जाती है, उससे प्रेरित होकर सेवा करते हैं। अपने भीतरसे ऐसा ज्ञान जगे कि मैं ज्ञानमात्र हूं, ज्ञानानन्दघन हूं, मैं अपने परिणमनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं करता हूं, यदि ऐसा ज्ञान जगे तो वह सुखी रहेगा।

एक आदमी था। वह अच्छे घरानेका था। किसी कारणसे उसको कैद हो गयी। कैदमें चक्की पिसवाई जाती थी। चक्की पीसता रहता था। कभी कभी यह ख्याल आ जाता कि अरे मैं तो अच्छे घरानेका हूं और चक्की पीसना पड़ता है। वह यह नहीं सोचता कि यह जेलखाना है, चक्की पीसनी ही पड़ेगी। वह यह सोचकर कि मैं अच्छे घरानेका हूं, चक्की पीसनी पड़ रही है, दुःखी हो जाता है और कषाय भी आ जाती है। यह सोच-सोचकर दुःख बढ़ते ही जाते हैं। उसे यदि यह मालूम हो जाय कि यह जेलखाना है, चक्की पीसनी ही पड़ती है तो उसका दुःख चौथाई रह जायगा और यदि रईसीके ख्यालके परिणाममें रहे तो दुःख चौगुने आ जाते हैं।

अगर यह परिणाम बने कि मैं ज्ञानमात्र हूं तो ऐसा ज्ञान करने पर प्रसन्नता ही रहेगी। आकुलताओंका नाम नहीं रहेगा। मैं अपने ज्ञानसे ही यथार्थज्ञानको समझूं और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं। जैसा मैं हूं वैसा न सोचकर औपाधिक नाना मायारूप सोचता हूं तो दुःख व संकटोंके पहाड़ टूट पड़ते हैं। ये दुःख संकटके पहाड़ भी मायारूप हैं, केवल काल्पनिक हैं।

यावत्प्रवर्तनं लोके तत्सर्वमज्ञताफलम्।
निवृत्तिर्ज्ञानसाम्राज्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१८॥

लोकमें जितनी भी प्रवृत्ति है वह सब अज्ञानका फल है अर्थात् जितने भी काम किए जाते हैं, जितनी चेष्टाएं की जाती हैं, जितने व्यवहार किए जाते हैं, सब अज्ञानसे होते हैं। ज्ञानका फल नहीं है। बोल, सम्बन्ध, रिश्ता मानना, देशका काम, जातिका काम, धर्मका काम, व्यवहारका काम, चलना, उठना, बोलना, चर्चा करना, गृहस्थधर्म पालन, साधुधर्म

चलन, यावन्मात्र जितनी भी प्रवृत्ति हैं सब अज्ञानका फल है। ज्ञानका फल तो निवृत्ति है। प्रवृत्ति अज्ञानका फल है। यहाँ शंका हो सकती है तो धार्मिक प्रवृत्तिमें भी क्या मूल अज्ञान हो सकता है ? हम मित्रोंको जानते हैं तो यह ज्ञानका फल है या अज्ञानका फल है। तत्त्वदृष्टि करके देखो तो अज्ञानका फल है। कैसे ? सोचो कि हम ज्ञानका फल उत्पन्न करते हैं कि अज्ञानका ? यदि मात्र जानना हो तो ज्ञानका फल है, किन्तु इष्टपनेका भाव होता तो अज्ञान है।

भैया ! बहुत भीतरकी सूक्ष्मकी बातें कही जा रही हैं। हमारेमें भावमें हिंसा न छूटे तो ज्ञानका फल है कि अज्ञानका फल है। अच्छे धर्मके कितने काम बताए जाते हैं, कितने व्यवहार धर्मके करते हैं, आसन लगाते हैं, पंच परमेष्ठीकी उपासना करते हैं, मालाएं जपते हैं, यह सब लोकदृष्टिमें भले ही ज्ञान है पर है अज्ञानका फल। ज्ञान कहते किसे हैं ? ज्ञानका उगना क्या है ? ज्ञान एक प्रतिभास सही जाननहार है। उसके होनेसे आत्मामें कुछ भी तरंग कहाँ रहेगी ? यह तो है ज्ञानका फल और किसी भी कामको करना चाहिए, स्वाध्याय होना चाहिए, जानन होना चाहिए, साधुसेवा होना चाहिए, देशसेवा, समाजसेवाके अन्य कार्य होने चाहियें आदि कुछ भी जिनका लगाव है वह है अज्ञानका फल और सर्व परभावसे जो निवृत्ति है वह ज्ञानका फल है।

एक उदाहरण लो। एक रस्सी सामने पड़ी हुई है, कुछ उजेला अंधेरा है। यह भ्रम रस्सीको देखकर हो जाय कि यह तो सांप है। इस भ्रमके होनेका फल क्लेश प्रवर्तन है। वह भ्रममें पड़कर घबड़ा जाता है, डर जाता है और अगर सोचे कि आखिर चलकर देखे तो कि कोनसा सांप है ? वहाँ गया तो गौरसे देखा, गौरसे देखनेपर पता चला कि यह तो कोरी रस्सी है इतना ही जाननेसे उसकी घबड़ाहट छूटी, कुछ चैन मिली। यह चैन माना, वह भी उसके अज्ञानका फल है। तो ज्ञानका फल क्या है ? अन्य रूप जानना मिट गया, भ्रम व घबड़ाहट मिट गयी, यह तो ज्ञानका फल है और जितना फल है उसका लगाव अज्ञान है। अज्ञानको छोड़ो तो वस्तुका स्वरूप समझमें आयगा। हम सत्संगमें बैठे हैं तो रागमें बैठे हैं, अज्ञानमें बैठे हैं। ज्ञानसे नहीं बैठे हैं, क्योंकि ज्ञानका फल तो ज्ञान है। ज्ञानका फल कहीं बाहरसे नहीं आता है।

हे आत्मन् ! ज्ञान अपने आत्मस्वरूपसे ही आता है। भगवानकी पूजा करूं, साधुवों की सेवा करूं तो ये सब राग हैं। राग ज्ञानस्वरूप नहीं होता सो वह अज्ञानका फल है, अज्ञानसे पैदा होता है। ज्ञान कितने मर्मकी चीज है ? हम इस ज्ञानको जानते हैं, इस

ऊपरी संतोषसे काम नहीं चलेगा, इसकी परख कर लो। केवल बाहरी दैहिक प्रवृत्तिमें संतुष्ट हो जाना, कुछ ज्ञान हो चुकनेके बाद संतोष कर लेना लाभकर नहीं है। ज्ञान तो और इससे बढ़कर अन्तरमें रहता है। ज्ञानदृष्टिका फल निवृत्त होना चाहिए। यह शुद्ध केवल ज्ञानकी चर्चा है। यदि ऐसा ज्ञान आ गया तो इसके कारण हम पर क्या गुजरेगा? केवलज्ञान। जाननमात्र ही ज्ञानका फल है। ज्ञानके उपासक प्रभुके इस स्वरूपमें झुकेंगे, तो ज्ञानका फल है कि रागका? ज्ञानकी मूलमें प्रेरणा है, फल रागका है। इसका यह ज्ञानस्वरूप हम और आपके भीतर जो है उसको यह मोही जीव नहीं देखता है। परपदार्थोंमें ही पड़कर मुसीबतें सह रहा है। यह भी अज्ञानका फल है। इसी तरह उन सबकी प्रवृत्तिमें व्यवहारमें भी अज्ञानता ही है।

भैया! गति, इन्द्रिय, कषाय, योग, विषय इत्यादिको उपेक्षित करके मात्र ज्ञान किया जाय तो वह प्रकाश है। वह प्रकाश यदि नहीं है तो कर्म संचित हो जाते हैं, उस ज्ञानके होनेसे ही ये कर्म भस्मीभूत हो जाते हैं। तब तो बतलाओ, कोई पुरुष साधु होकर भी, मुनि होकर भी यह ख्याल करता रहे कि मैं मुनि हूँ, मैं साधु हूं, मैं ऐसा हूं, मैं कैसा हूं, यह तो मिथ्यात्व होगा ना। कोई गृहस्थ यह विश्वास करे कि मै गृहस्थ हूँ, मै बाल-बच्चों वाला हूं, मैं दुकानदार हूं इत्यादि, ये सब मिथ्यात्व हैं, अज्ञानता है। लो उस साधुने भी अपने आप यह सोच लिया कि मैं साधु हूं, जैसे कि गृहस्थने अपने आपमें यह सोच लिया कि मै गृहस्थ हूं, पर्यायकी पकड़ दोनोंमें है सो दोनों आशय परसमयके हैं। पर यह आत्मा न तो साधु है और न गृहस्थ है। वह तो ज्ञानानन्दघन, चैतन्यस्वरूप, एक पदार्थ है। वे सब अपने आपमें हैं। अपने आप ही परिणमते रहते हैं, यह कैसे मान लिया जाय कि मैं अफसर हूं, मैं दुकान-दार हूं। मैं फलां हूं, अरे ये सब कुछ तू नही है, तू तो ज्ञानानन्दघन चैतन्यस्वरूप एक स्वरूप एक पदार्थ है।

देखो भाई! प्रतीतिकी बात चल रही। विश्वासकी बात बोल रहा हूं कि तुमको यह विश्वास है कि मैं गृहस्थ हूं, इसमें तो मोह होगा। गृहस्थका यह विश्वास है कि मैं गृहस्थ हूं, साधुका यह विश्वास कि मैं साधु हूं तो मोहमें दोनों दब गए। अरे मैं तो एक चेतन पदार्थ हूं, अगर गृहस्थ बन गया, साधु बन गया तो यह आफत है। अरे अज्ञान और मोहसे कुछ फायदा नहीं हो सकेगा। जो कुछ कह रहे हैं वे सब उल्टी उल्टी बातें मालूम होती होंगी। मगर ये सब विश्वासकी बातें हैं। इस लोकमें बहुत सी कलाएं लोगोंने सीख ली हैं:—कोई संगीतकी कला, कोई नृत्यकी कला, कोई बोलनेकी कला, कोई भाषण देनेकी कला इत्यादि सीख लेते हैं। ऐसी कलाको जानने वाले लोग अपने मनमें संतोष रखते हैं कि

मैं बहुत बुद्धिमानी का काम कर रहा हूं। मैं देशकी सेवा, समाजकी सेवा करता हूं। भाषण देने वाले जानते हैं कि मैं ढंगसे बोल रहा हूं, समाजको, देशको रास्तेमें लगा रहा हूं। तो इतनेसे क्या किसी ने शान्ति पाई? ऐसी दृष्टि द्रव्यलिंगी साधु पुरुषकी भी हो रही है। देखो उन साधुवोंमें मोह कितना अन्तरमें होता है? जैसे कहते हैं कि वे मुनि शत्रुवोंसे भी विरोध नहीं करते हैं, आराधना करते हैं और मोक्षमार्गमें लगूं ऐसी चाह लिए हुए होते हैं याने कुछ द्रव्यलिंगी साधु ऐसे भी होते हैं जो यह समझते हैं कि मैं तो साधु हूं, मेरा यही, काम है। सो भैया! पर्यायमें आपा बुद्धि होनेसे यह मिथ्यात्व है, मेरेमें यह ज्ञान आना चाहिए कि मैं ज्ञानमय एक तत्त्व हूं, मेरा तो ज्ञानदृष्टिमें रहनेका काम है। जैसे गृहस्थका गृहस्थी धर्मका कार्य आफत है वैसे ही मेरेको सर्वप्रवर्तन आफत है। ज्ञानीको यह विश्वास होना चाहिए कि मैं गृहस्थ नहीं हूं, मैं तो ज्ञानानन्दमय एक तत्त्व हूं, चैतन्यस्वरूप हूं, इसके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं हूं। यदि ऐसा विश्वास हो जाय तो वही ज्ञानका मार्ग है, जितनी लोकमें प्रवृत्ति है, झुकाव है वह सब अज्ञानका फल है। अगर हममें यह बुद्धि आ जाय कि हमने यह कर लिया तो यह अज्ञान है। हमारा यह विश्वास होना चाहिए कि मैं चैतन्यमात्र हूं, केवल जानन ही जानन हूं।

जैसे कोई आदमी अपराधमें पकड़ा गया या व्यापारके किसी अनियममें पकड़ा गया। उसपर १००० रु० का जुर्माना कर दिया गया। अब उसने गिड़गिड़ाना शुरू किया। कोशिश करनेपर ५० रु० जुर्मानाके रह गए और ९५० रु० छोड़ दिए गए, ५० रु० वह इसी खुशी से दे रहा है, १००० रु० देने थे और ५० रु० ही रह गए। हाथोंसे दे रहा है, मगर संकल्प में यह लग रहा है कि ये भी न देने पड़ते तो ठीक था, ५० रु० खुश हो करके दे रहा है। मगर भीतरमें यह बात बनी है कि ये भी न देने पड़ते तो अच्छा था। इसी तरह ये सब जुर्माना है, यह प्रवृत्तियां मानो १००० रु० का जुर्माना है, गृहस्थधर्ममें केवल ५०० रु० का जुर्माना है। साधुधर्ममें केवल ५० रु० का जुर्माना है, तो वह गृहस्थ यह सोचेगा कि यह जुर्माना रागप्रवृत्तिसे हुआ। अगर ज्ञाता द्रष्टा मैं रहता तो ठीक था। यह तो अज्ञानका फल है, ज्ञानका फल है निवृत्ति। यावन्मात्र जो प्रवृत्ति है वह रागका फल है। साधु पुरुष भी आहार, चर्या इत्यादि करने जाते तो उसमें राग है या नहीं। जो रागके काम हैं वे रागसे होते हैं। ज्ञानसे आनन्द और रागसे प्रवृत्ति आती है। गृहस्थ अपनेको गृहस्थ अनुभव करता है और साधु अपनेको साधु पर्यायरूप अनुभव करता है तो मोह दोनोंमें हुआ। इस ज्ञानमात्र मुझ आत्मतत्त्वका जो जाननका काम है वह मोक्षमार्ग है। मोक्षमार्ग इस आत्मस्वरूपके भीतर भरा हुआ है। पुरुषके हाथ और पैरोंमें मोक्षमार्ग नहीं भरा हुआ है।

और देखो एक दृष्टान्त है कि एक सेठ था। वह चावल बेचनेका काम करता था। वह ठेलों धान खरीदता था और उन धानोंसे चावल निकालकर दो चार ठेला चावल बेचता था। एक आदमी उसके पीछे लग गया। सोचा कि जैसा सेठ करता है, जिससे कि वह धनी हो गया है, वैसा मैं भी करूँगा। वैसा करनेसे मैं भी सेठ जैसा धनी बन जाऊंगा। देखा कि सेठने कुछ सामान खरीदा। चावलके ऊपरके छिलके तो मटमैले ही थे सो पिछलगे व्यक्तिने देखा और उसने भी मटमैली चीज २, ४ मोटर भर ली। वह लेकर बेचने गया। ठीक जैसे सेठ करता था वैसे ही वह व्यक्ति भी करता था। मगर सेठको तो नफा हुआ, और उस व्यक्तिको टोटा आ गया। अरे धानोंके अन्दर जो चावल होता है उसकी महिमा होती है धानके छिलकेकी महिमा नहीं होती है। इस बातका उस पिछलगे व्यक्तिको पता ही न था।

इस ही प्रकार शुद्ध धर्मकी जाननपरिणतिरूप इस धर्मके संगसे धर्म क्रियावोंकी महत्ता है, उसकी महिमा ज्ञानदृष्टिके कारण है, और इस ज्ञान दृष्टिकी ऐसी प्रवृत्ति न हो तो बाह्यक्रियाओंकी महिमा कुछ नहीं रहा करती। ज्ञान दृष्टिके कारण ही धर्मप्रवृत्तिकी महिमा हो जाती है। वह ज्ञानमात्र है, उसका फल निवृत्ति है। ज्ञानका साम्राज्य निवृत्ति है। वह सब ज्ञानका फल है। अब हम इतने बड़े महिमानिधान ज्ञानके बीचमें रहते हैं। बाहरसे देखो तो नाना प्रकारकी विषयोंकी बातें चारों तरफ घूम रही हैं। जब ज्ञान जगता है और बाहरी फैली हुई दृष्टिका संकोच होता है तो स्थूल पापोंका त्याग होता है। जिस प्रवृत्तिके बीच इतना गृहस्थ धर्म बन गया है सो उसमें जो रागका अंश रहा करता है तो वह पाप ही कहलाएगा। इसका जितना निवृत्तिका अंश है वह धर्म है, जितना वहाँ प्रवृत्तिका अंश है वह अधर्म है, वही अज्ञान कहलाया। जैसे विवाह कर लिया। एक स्त्रीसे संतोष हुआ तो हजार स्त्रीसे छूटे। क्या आपका धर्म है लौकिक कि एक स्त्रीमें लगे रहें? नहीं, अनेक स्त्रियोंके विकल्पसे छूटनेके लिए वह उपक्रम है। जितना हटाव है वह ज्ञान है। उस एककी ओर झुकाव और लगाव तो अधर्मका काम है। व्यवहार धर्मका काम, अधर्मका काम, राग का काम, कहीं जुटानेका काम जितने भी हैं, जितनी भी प्रवृत्तियाँ हैं, वे सब अज्ञानसे हैं।

अच्छा अब गृहस्थ धर्म भी छोड़ा, आरम्भ छोड़े, परिग्रह छोड़े, शुद्ध मार्गकी दीक्षा ले ली, शुद्ध चर्यामें रहने लगे। इस साधु प्रवृत्तिमें भी गृहस्थका परिग्रह हट गया, तो धर्म का काम है। शुद्ध चलने लगे, शुद्ध उठने लगे, शुद्ध खाने लगे तो ये सब रागके काम हैं। जितना निवृत्तिका अंश है वह ज्ञान है और भी देखिए भैया! जैसे गृहस्थके योग्य शुद्ध व्यवहार, शुद्ध चर्यामें रहते हुए भी वह गृहस्थ उस व्यवहारसे विरक्त रहा करता है, इसी

तरह साधु भी कुछ सम्यग्ज्ञानके अनुकूल व्यवहार करते हुए भी व्यवहारसे विरक्त रहा करता है। एक ज्ञानी गृहस्थ अपने कुटुम्ब परिवारमें रहते हुए भी अपनेको भिन्न समझता है, न्यारा समझता है, अहितरूप है ऐसा जानकर परिवारसे विरक्त है। तब साधु भी अपने शुद्ध काम करते हुए साधु रहते हुए भी उस प्रसंगसे विरक्त है।

शुद्ध ज्ञानके काम की यह बात चल गयी और लंबी खिच गयी। प्रयोजन यह है कि जितना हटे उतना धर्म है और जितना लगे उतना अधर्म है। ज्ञानका काम मात्र निवृत्ति है— इतना ही ध्यानमें लाना है। यह निवृत्ति ज्ञानका साम्राज्य है। यदि मैं अपने साम्राज्य की ओर अर्थात् निवृत्तिका उपयोग कर मैं प्रवृत्तिसे हट जाऊं तो मैं सुखी होऊं। देखो जितने भी सुख मिलते हैं, वे हटने से मिलते हैं, लगनेसे नहीं मिलते हैं। गृहस्थीमें रहते हुए भी उससे हटकर रहनेमें जो आनन्द मिलता है वह आनन्द उसमें से नहीं मिलता है। गृहस्थीमें लगनेसे रंचमात्र भी आनन्द नहीं मिलता है। आनन्द इच्छाके अभावसे मिलता है। इच्छाकी पूर्ति व इच्छाका अभाव कहो एक ही है बात। हटना ज्ञानका काम है और लगना अज्ञानका काम है। आनन्द भी जितना होता है वह हटनेसे होता है, लगनेसे नहीं होता है।

जैसे एक मित्रका पत्र आए कि १० बजेकी गाड़ीसे हम आ रहे हैं। बस पत्रके पाते ही सब तैयारीमें लग गए, वह इसलिए कि मेरा मित्र आ रहा है, मैं अपने मित्रसे मिलूंगा। वह मिलनेके प्रयोजनसे ही जल्दी जल्दी काम करता है और भी जितने काम हैं जल्दी-जल्दी कर लिये। देखो यह सब व्याकुलताएँ क्यों की जा रही हैं? इसलिए कि मित्रसे मिलनके काममें अपना लगाव रखा, १० बजे स्टेशन पहुंचे, पूछते हैं कि गाड़ी लेट तो नहीं है। यदि कोई कह दे कि अभी १० मिनट लेट है तो बस दुःखी हो गया। गाड़ी आते ही झट इस डिब्बेमें देखा, उस डिब्बेमें देखा, मित्र मिल जाता है तो आनन्दमय हो जाता है। अच्छा, अब यह बताओ कि उसे आनन्द मिलनेसे आया है कि मित्रके मिलनेका आनन्द है तो मित्रसे डिब्बेके अन्दर मिलता ही रहे। इधर-उधर डिब्बेके बाहर न झांके। गाड़ी चलने वाली है तो वह बाहरको झांकता है और बाहर क्यों झांके? यदि मिलना है तो मिलता ही रहे। मित्रसे मिलनेका काम समाप्त हो गया, इससे तो आनन्द आया, किन्तु अब उसे घर जानेका लगाव हो गया तो दुःखी हो गया। उसे लगावसे दुःख है, उसका जितना भी दुःख है, लगाव का है। मित्र मिलनेकी इच्छा हो गयी। इस दुःखसे दूर होनेके लिए ही वह मित्रसे मिलने गया, क्योंकि उसको विकल्प सता रहा था। क्यों जी! यदि वह विकल्प स्वयं ही पहलेसे न रहे तो क्या आनन्द न आवे? आनन्द अवश्य आयगा। यदि ऐसी भावना हो कि विकल्प

रहता रहा था इसी कारणसे ही अपने दुःखोंको दूर करनेके लिए अपने मित्रसे मिलने गया, तो प्रकाशमें भीतर उसे शान्ति रहती।

भाई विकल्प न करो वहाँ क्या रखा है ? उनसे इच्छा न करो। इस तरह मिलन की इच्छा ही न हो तो वह वहाँ भी अनाकुलता है। जो इच्छाएं हों उन्हें समाप्त कर लो। इन्द्रियोंके विषयोंमें बरबादी है। यह एक अन्तरके मर्मको देखकर कह रहा हूँ। अरे विषयोंमें अगर लग गए तो समझो विषयोंमें ही जल गए और मिट गए, तो इच्छाओंका अभाव कैसे हो सकेगा ? विषय बुद्धिके होनेसे इच्छाओंका अभाव नहीं हो सकता है। विषयप्रवृत्ति अधर्म है। अगर विषयप्रवृत्ति न हटेगी तो लगाव भी नहीं हटेगा और आनन्द भी नहीं आयेगा। अपने ज्ञानको अन्यके लगावमें लगाना ही अज्ञानका फल है। निवृत्ति तो फल ज्ञानका है और प्रवृत्ति फल अज्ञानका है।

मेरा काम क्या है ? देखना ? नहीं, बोलना चालना ? नहीं, हाथ जोड़ना ? नहीं, और और करके अपनी बातोंमें लपेट लेना ? नहीं। जितने काम लगावके हैं, व्यवहारके हैं वे सब जानन, जानन, जानन, केवल जानन, ज्ञानका काम है, ऐसा साम्राज्य हो और स्वयं की पहिचान हो तो उसे मोक्षका मार्ग प्राप्त होगा, नहीं तो उसे शिवपथ नहीं प्राप्त हो सकेगा।

कर्त्रंकर्त्रादिकल्पाः स्युर्देहादिष्वनुबन्धिनः।
पूर्यंते तै नं कश्चिन्मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१९॥

मैं आत्मा जो हूं वह हूं जैसा स्वरूप है, उस ही स्वरूपमें हूं। मैं अन्य सब पदार्थोंसे विलक्षण, जानने, देखनेकी स्वभावकलामें तन्मय हूं। यह एक भावात्मक पदार्थ है। जिसमें रूप नहीं, रस नहीं, गंध नहीं, स्पर्श नहीं केवल चिदानन्दघन, चैतन्य स्वरूप मात्र एक विलक्षण सत् है। इस ही को ब्रह्म कहते हैं क्योंकि ब्रह्म नाम उसका है जो ज्ञानसे बढ़ता हुआ रहे। अपने ज्ञानको बढ़ानेकी कला इस आत्मामें है। पुद्गल तो बाह्य हैं। पुद्गलके गुणका ऊंचेसे ऊंचा विकास हो तो क्या होगा ? रूपका क्या होगा ? परन्तु आत्माके ज्ञान गुणका विकास ऊंचा क्या होता, वह कहा जा सकता है। आत्माके ज्ञानका विकास हो तो सभी कुछ ज्ञानमें आयगा। उसका स्वभाव बढ़नेका है। जैसे कोई स्प्रिंग होती है उसे दबायें तो दब जायगी और छोड़ दें तो स्वतः उठी रहेगी। इसी प्रकार यदि ज्ञानको विषयकषाय परिणामोंके द्वारा दबावें तो दब जायगा और यदि दबायें नहीं तो ज्ञान फैलता ही जायगा। ज्ञानके फैलनेका तो स्वभाव ही है। ये विषय कषायोंके परिणाम रागद्वेषादिक भाव इस ज्ञानको दबानेके कारण हैं। जब तक ये विकार रहेंगे तब तक ज्ञान दबता ही रहता है।

विरोधीपन हटे, आत्मतत्त्वका विकार मिटे तो यह विकसित हो जाता है। क्योंकि आत्माका स्वभाव ही ऐसा है कि अपने ज्ञानसे वह वर्धनशील रहे, बढ़ता हुआ ही रहे। इसलिए आत्मा का नाम ब्रह्म है।

इस ज्ञानस्वरूप आत्माको कहा जा रहा है। यह आत्मा विष्णु कहलाता है क्योंकि विष्णु उसे कहते हैं जो व्यापक हो। जिसका स्वभाव ही ऐसा हो कि सर्वत्र व्यापक ही होता रहे वही विष्णु है। ज्ञानघन कहलाता है वह जिसमें बीचका कोई हिस्सा न छूटे। जैसे किसी टंकीमें पानी भर दिया जाय तो पानी लबालब भरा हुआ है। उस पानीमें ऐसा नहीं है कि कहीं एक इंच पानी न रहे। जो पानी भरा हुआ है वह पूर्ण रूपसे भरा हुआ है। इसका कोई भी स्थान खाली नही रह सकता है। इसी तरह इस ज्ञानका फैलाव है कि यह ज्ञान सर्वत्र फैल जाता है। किसी जगह खाली नही रह जाता है कि लो मैं अमुकको नहीं जानता। जैसे टंकीके बीच कोई चीज आ जाय या कोई चीज पानीमें ऐसी पड़ जाय जिसमें कुछ टीला सा हो तो वहाँ पानी नही पहुंच सकेगा। पर पानी अपने स्वभावके कारण न पहुंच सका ऐसी बात नहीं है, किन्तु वहाँ कोई चीज ऐसी आ गई है जिससे रुकावट आ गयी है। इसी प्रकारसे ज्ञानमें विषयकषायोंकी आड़ आ जाती है जिससे ज्ञानके विकसित होनेमें रुकावट पैदा हो जाती है। यदि कहीं ज्ञान न पहुंचा तो वहांपर ज्ञानके स्वभावके कारण नहीं पहुंच सका ऐसी बात नहीं है। ज्ञानके विकसित होनेमें रागादि भाव रुकावट पैदा करते हैं, उसीसे ज्ञान वहाँ नही पहुंच पाता है। ज्ञानका स्वभाव सर्वत्र फैल जानेका है, सब जगह व्याप जाने का है। ऐसे ज्ञानका स्वभाव व्याप्त होता रहना ही है, इसलिए ज्ञान ही विष्णु है।

यह ज्ञान जिन है अथवा जितेन्द्रिय है। जिन कहते उसे हैं जो समस्त बाह्यपदार्थोंको जीत ले, खत्म कर दे और स्वयं शुद्ध, स्वच्छ बना रहे। जिन ज्ञान ही है सो यह भावात्मक तत्त्व है, ज्ञान ज्ञान ही है, जानन जानन ही है, जानन ही काम है, यह मेरा ज्ञान स्वच्छ है, इसमें दूसरेका प्रवेश नही है, यह अपने ऐसे ही स्वच्छ ज्ञानकी बात कर रहा हूं। जिस ज्ञान का काम सुन्दर, शुद्ध, प्रतिभासको बार-बार पैदा करते जाना है। कब तक? अनन्त काल तक। जो इस ज्ञानको स्वच्छ, शुद्ध, सुन्दर एक दृष्टि करता रहे वह ज्ञानी है। जो ज्ञान अपनी सृष्टि करता हो, चाहे वह बिगड़ जाय, रूठ जाय, गुस्सा हो जाय, मलीन हो जाय, आपेसे बाहर हो जाय तो भी यह पूर्ण ही रहता है, पूर्ण ही परिणमता है। यह जगत जितना दिखता है उस रूपमें रचना हो जाय, यह भी ज्ञानमय आत्मदेवकी सृष्टि है। ऐसा यह ज्ञान-तत्त्व भीतरका है। यह ज्ञानतत्त्व मलीन हो जाय, काबूमें न रहे तो बिगड़ा हुआ प्रभु ऐसी सृष्टियोंको कर डाले, ऐसी ज्ञानकी महिमा है। यही ज्ञान पदार्थ, वृक्ष आदि रूपमें आ जाता

है। मनुष्य, पशु, पक्षी, जीव-जन्तु भी हैं उन सबके रूपमें यह ज्ञान आता है।

यह ज्ञान ही ब्रह्म है। इसका ऐश्वर्य विलक्षण है। शुद्ध सृष्टि करे, अशुद्ध सृष्टि करे सब ज्ञानकी महिमा है। उसके ऐश्वर्यका पता लगा लेना बिरले ही सूक्ष्मदृष्टि, ज्ञानी, योगीका काम है। कैसा है? वह कुछ नहीं है और सब कुछ है। ज्ञानतत्त्व है, जिसके अन्तरंगमें कुछ नहीं है और सब है। कुछ बचा नहीं है और है। कुछ पिंड ऐसा नहीं है। ऐसा जाननहार यह आत्मतत्त्व विलक्षण ऐश्वर्य वाला है। इसका काम जानन है सो अपनी ही कलासे, अपनी ही लीलासे अपना काम कर रहा है। इसका काम केवल जानन है—जान लेना। इस ज्ञान में सुख दुःख नहीं। जाननका काम केवल जानन ही है। जान लो फिर उसके बाद महान् आनन्द आता रहता है। जैसे प्रयोजन अशुद्ध हैं तो वहां संकट हैं और जहां प्रयोजन अशुद्ध नहीं हैं वहां संकटोंका नाम नहीं है। जाननका प्रयोजन शुद्ध होना चाहिए, क्या? कि जान लिया। किसलिए जान लिया? जाननके लिए जान लिया।

मिला हुआ दूध और पानी एक पात्रमें है, पर दूध अलग है और पानी अलग है। दूधके कण दूधमें हैं और पानीके कण पानीमें हैं। दूधमें पानी मिला होनेपर भी दूधमें दूध है और पानीमें पानी है। यह सारा विश्व ज्ञानमें जावे। फिर भी विश्व और ज्ञान अलग-अलग हैं। हम और आप लोगोंको तो इतनी चीज जाननेमें आ ही रही है, फिर भी जो यह है वह मैं नहीं हूं। जाननमें जानन है, पदार्थोंमें जानन नहीं। जाननकी ओर ही जानन है और जाननमें ही जानन बना रहता है। बाह्य पदार्थोंमें जानन नहीं बना रहता है। जाननमें ही जानन बना रहता है। ऐसी विचित्रताओं और ऐसे ऐश्वर्यका पता योगी और ज्ञानी पुरुषोंको ही हुआ करता है। विलक्षण ऐश्वर्यको जानकर ही उन योगियों और ज्ञानियोंका मन प्रसन्न-चित्त रहता है।

भैया! जंगलमें योगी जन एकान्तचित्त रहते हैं। गृहस्थीको ऐसा लगता है कि जंगल में रहने वाले लोग कैसे रहते हैं? उनसे कोई पूछने वाला नहीं है, नौकर नहीं हैं, साधन नहीं हैं, खाने पीनेका काम चलता होगा? परन्तु उनका काम अद्‌भुत रूपसे चलता रहता है। वे अपने ज्ञानरसका स्वाद लेकर ही आनन्दमग्न हो आया करते हैं। यही उनका ऐश्वर्य है। वे अपने अमृतमें ही छके हुए रहते हैं, इसलिए वे सदा प्रसन्न रहते हैं। अतः इस ज्ञान का नाम ही ईश्वर है। आनन्दमय, कल्याणमय, सर्वोत्कृष्ट सारकी चीज दुनियाके अन्दर क्या है? मोही जीव अपने सारसे अलग होकर बाहरको निरखा करते हैं। सारभूत चीज क्या है? मकान हो गया, बाल बच्चे हो गए, मित्र लोग हो गए, ऐसी कल्पनाओंमें ही वे मोही बाहर बाहर ही घूमा करते हैं। सारको ढूंढनेके लिए वे जगह जगह मारे मारे फिरा करते हैं।

योगियोंको अपने ज्ञानका पता है कि दुनियामें सारकी चीज कोई मिलती नहीं है। सार वह खुद ही है। इसका जो सहजस्वरूप है, अपना अस्तित्व है, वह ज्ञानमय है, प्रकाशमय है, कल्याणमय है। सारको, कल्याणको, उत्कृष्टको शिव कहा करते हैं। यह ज्ञानमय ही शिव है।

राम किसे कहते हैं? राम उसे कहते हैं जिनमें योगी पुरुष रमण किया करते हैं। जिसमें योगीजन, ज्ञानीजन रमण किया करते हैं। उसे राम कहते हैं। वह राम मेरा कौन है? मैं अनादिसे अनन्त तक सदा अपने आपमें रमण किया करता हूं। यह तो लोगोंको भ्रम है कि मैं घरमें रमता हूं, दुनियावी कार्योंमें रमता हूं, खुद ज्ञानमय हूं, चारित्रमय हूं, स्वयं ही स्वयंके स्वरूपमें रमा करता हूं, खुदमें ही रमा करता हूं। कोई अपनी दुकानमें ही रमा करता है, कोई विकल्पोंमें रमा करता है, कोई जानकार विद्वान् विकल्प करता है वह उनमें रमता है और ज्ञानी योगी पुरुष अपने ज्ञानस्वरूपमें रमते हैं और प्रसन्न होते हैं। मैं अपने ज्ञानमें रमा करता हूं, तात्पर्य यह है कि कोई कैसे रमता है, कोई कैसे? मगर सभी अपने आपमें रमते हैं। बाह्यपदार्थोंमें कोई रम नहीं सकता है, कोई बाह्यमें लग नहीं सकता है, परन्तु कोई मान ले कि मैं बाह्यमें रमता हूं तो वह परेशान हो जायगा। पर न कोई बाह्यमें रम सकता है और न बाह्यमें लग सकता है। तो मैं रमता हूं और अपने आपमें ही रमता हूं। तो ज्ञानस्वरूप यह आत्मा ही राम है।

यह प्राणी अपनी शरण बाह्यमें ढूंढ़ता है, बाह्यमें ही हित और अहित ढूंढ़नेका प्रयास कर रहा है। परन्तु कहीं बाहर शरण नहीं है। यह प्राणी इधर उधर भटकता है, परन्तु यह शरीर देवता इसकी रक्षा नहीं करता है। यह ज्ञानस्वरूप ही हमारा सच्चा देव है, रक्षक है, अपने आपके लिए स्वयं सर्वस्व है। जिस प्रकार हम सर्वस्व हैं उस ही प्रकारकी बातें करें तब तो ठीक है। परन्तु हे आत्मन्! यह प्राणी शुद्ध प्रगति नहीं करता है। यह तो उल्टी अटपटी बातें करता है। यह जैसा शुद्ध है, स्वच्छ है, चैतन्यस्वरूप है वैसी बातें नहीं करता है।

हे आत्मन्, अपने आपपर दृष्टि दो तो अपना प्रभु अपनेको ही मिल जायगा। यह प्रभु ही तेरे पापोंको हर सकता है। पाप क्या हैं? विकल्प और कल्पनाएँ ही पाप हैं। ये बाहरके जो पाप हैं, झूठ बोल दिया, जान ले ली, परिग्रह किया, यही बाहरी बातें पाप हैं। ये पाप होते भी कैसे हैं? यों ही कल्पनाएं उठती हैं तब इन पापोंको करता है। इन पापोंके कारण ही उसे दुःख मिला करते हैं। तो इन पापोंको हरेगा कौन? इन पापोंको मेरा प्रभु ही हरेगा। इन पापोंसे उत्पन्न दुःखोंको मेरा प्रभु ही मिटायेगा। जो पापोंको हरे वही हरि

कहलाता है। हम अपना प्रभु कैसे ढूंढें ? हमारी शरण, हमारा रक्षक, हमारा हितू यह प्रभु ही है। इस एक अपने स्वरूपपर ही ध्यान हो तो सर्व सफलता है। मैं तो यथार्थ हूं, कृतकृत्य हूं, स्वभावमात्र हूं। यह लोकका धन कुछ महत्त्व नहीं रखता है। यह धन पिंड रूप है। धन पुद्गल है, इन पुद्गलोंमें कोई सार नहीं दिखता है। ऊँचे-ऊँचे महल, बड़े-बड़े धन-वैभव आदि इनमें कोई महत्त्वकी चीज नहीं दिखती हैं। यह ज्ञानी जब ज्ञानदृष्टिसे देखता है कि मैं सबसे निराला हूं, ज्ञानमय वस्तु हूं तो अनुभवरसका स्वाद मिलता अन्यथा जिसके बारेमें जैसा विचार किया वैसा ही उसको समझ लिया और वैसा ही उसका वर्णन कर दिया। सो इसी के प्रदर्शनके फलमें मैं बौद्ध हूं, भट्ट हूं, नैयायिक हूं। मीमांसक सांख्य इत्यादि नाना प्रकारके दर्शन बन गए पर जिसपर समस्यायें खड़ी हुई हैं वह दर्शनका मूल आधार यह स्वयं ज्ञानतत्त्व है, ऐसा यह मैं ज्ञानतत्त्व हूं।

मेरा काम केवल जानन ही जानन है। बाह्य पदार्थोंको करनेका इस ज्ञानमात्र भावात्मक आत्मपदार्थका काम नहीं है, किन्तु अज्ञानी मानता है कि हम करने वाले हैं, मैं अमुक का करने वाला हूं, मैं दुकान करने वाला हूं इत्यादि ये मिथ्यात्व हैं। ये विचार धर्ममें ले जाने वाले नहीं हैं। ये सब मिथ्यात्व हैं। तू है और परिणमता रहता है। इतना ही तेरा काम है। तू पूराका पूरा है। पाप बनें चाहे न बनें, तू पूराका पूरा है। जैसे जैसे लोग कहते हैं। कि तू तो अधूरा है, तेरी आत्मा अधूरी है। अरे तेरी आत्मा अधूरी नहीं है। तू तो एक सत् है, सत् अधूरा नहीं होता है। अधूरापन तो दुनियामें होता ही नहीं है। यह ऐसी मानी हुई चीज है कि जैसे अनेक चीजें मिली होती हैं, कुछ यहाँ हटा दिया, कुछ वहाँ हटा दिया तो लोग कहते हैं कि आधा कर दिया। अरे आधा आधा नहो कर दिया। जो चीज है वह पूरीकी पूरी है।

ये स्कन्ध हैं, ये दिखते हैं। ये सब चौकी, पुस्तक, कमंडल इत्यादि। एक एक चीजें नहीं हैं। ये अनेक पुद्गल परमाणुवोंसे मिलकर बने हैं इसमें आधी आधी चीजें कुछ नहीं हैं। उनमें जो एक-एक चीज है। वे सब पूरेके पूरे हैं। इसी तरह जगत्के जितने जीव हैं वे सब पूरेके पूरे हैं। अगर बिगड़ गए तो पूरेके पूरे बिगड़ गए और अगर बन गए तो पूरेके पूरे बन गए। आधा न तो बिगड़ेगा और न बनेगा। प्रत्येक जीव परिणमता है। अगर कोई परिणमता है तो अपने ही परिणमनसे परिणमता है दूसरेके परिणमनसे नहीं। अगर मैं विकल्प कर रहा हूं तो अपना ही विकल्प कर रहा हूं, दूसरोंका विकल्प मैं नहीं कर रहा हूं। मैं परिणमता हूं अपने आपमें ही परिणमता हूं, ऐसा अगर ज्ञान हो तो अमृतका पान है। जिसने अपने स्वरूपको लक्ष्यमें लिया, अपनेको ही कर्ता धर्ता माना तो समझो कि वह दूसरो

दुनियामें चला गया, अपने स्वरूपसे हट गया। यदि वह अपनेसे हट गया तो समझो कि उसके ऊपर दुःखोंकी परम्परा आ गयी, क्योंकि अपनेको भूलकर कहीं भी लगें, सर्वत्र क्लेश ही क्लेश हैं।

हे आत्मन् ! अपने स्वरूपसे विमुख होना विकल्पोंकी परम्परा बढ़ाना है। मैं इसको करता हूं—ऐसा सोचना रागोंको बढ़ाना है और यह अज्ञानका काम है। मैं इसको नहीं करता हूं, मेरा यह करनेका काम नहीं है ऐसा विचारना ज्ञानका काम है। इसका न तो करनेका स्वभाव है और न मना करनेका स्वभाव है। मना करनेमें क्लेश है और करनेमें क्लेश है। क्लेश दोनोंमें है। अहंकारको देख लो उससे भी दुःख आते हैं। अहंकार करना या न करना बल्कि उसके प्रति विकल्प करना ही दुःख है। इससे अपना पूरा नहीं पड़ेगा। मैं तो केवल अपने ज्ञानस्वरूपको देखूं जिसका काम केवल जानन है, ज्ञानमात्र है, जान लो तो भाई फायदा उठाओ। अरे इतना ही फायदा है, इसके आगे किया तो नुकसान है। भगवान् सारे विश्वको जान गया। पर अब फायदा तो उठाओ। सट्टेका सार तो जान गए पर अब फायदा तो देखो। अरे जानन ही बना रहे तब तो भगवान् फायदेमें हैं। अगर जाननसे आगे आ जाय तो साधारण जीवोंकी तरह दुःख होंगे। भगवान् अपने स्वरूपको भूलकर अन्य कुछ नहीं करते। यदि कोई इस जाननके आगे, कुछ फायदा सोचता है तो उसी से संसारमें रुलना पड़ता है। केवल जाननमात्रका फायदा रह जाय और कर्म चेतना व कर्मफल चेतनासे जुदा रहे, ऐसी दृष्टिसे आनन्द होता है। वह सब सहज परमार्थिक आनन्द है।

सो हे आत्मन्, तुम बाह्यमें कुछ न करो। तुम हो और परिणमते रहते हो। इतना ही तेरा काम है। इसके आगे तेरा कोई काम नहीं है। अपने आपको देखो तो तेरेसे दुःख दूर ही हटेंगे और फिर समाधिका अनुभव करेंगे। यह आत्मा आनन्द व ज्ञान विकासमें जब बढ़ता जायगा, बढ़ चुकेगा तो प्रभु हो जायगा। अपने स्वभावसे हटकर बाह्यको कुछ निरख कर बाह्यसे लाभ देखकर बाह्यमें जा पड़ते हैं तो उनको टोटा पड़ता है, नुकसान होता है। ये भोग पुण्योदयसे प्राप्त हैं, निकट हैं, जरा मुड़े और भोग लिए ऐसे सुगम हैं सो ये भोग बड़े सस्ते लग रहे हैं, किन्तु ये बड़े महंगे पड़ेंगे। जैसे खेतोंमें कोई चला जा रहा है, खेतमें एक बेरका पेड़ मिले। किसी तरहसे बेरोंको तोड़ लिया। इतना काम तो बड़ा सस्ता लगा पर यदि उस खेतका मालिक आ जावे और उसे मारे तब कितना महंगा पड़ेगा ? इसी तरह से ये मोह रागादिभाव सस्ते लगते हैं पर यह नहीं जानते हैं कि कितने मंहगे पड़ते हैं ? जरा सी देरमें जो कुछ करलो, सस्ते हैं, मगर स्वभावदृष्टिसे हटा हुआ रहता है ना। कर्मोंके तीक्ष्ण बन्धन होते रहते हैं जिनके उदयमें महान् क्लेश हो जाते हैं। यह ज्ञानकी बात,

भावना की बात, स्वरूप निरखनेकी बात इत्यादि महंगी पड़ रही है।

अरे जरा सा दिमाग लगाना पड़ेगा फिर वह सस्ता है अर्थात् सस्ता ही पड़ेगा। अब चाहे अपने स्वरूपको देखो। ऐसा ज्ञानस्वरूप देखो तो सुखी रहोगे, मेरी शरण यह मैं स्वयं ही हूं। जैसा मैं हूं उसी रूपमें अपनेको देखूं तो मेरा कल्याण हो जायगा। यह आत्मा तो जिन शिव, ईश्वर, ब्रह्मा, राम, विष्णु आदि रूप हैं। सब ज्ञान इसीके अन्दर है। ऐसा महानिधान, आनन्द निधान यह मैं स्वयं हूं। अपने आपको समझता हूं और जानन स्वभाव लिए हुए हूं। मेरेमें विपदाएं नहीं हैं। विपदाएं तो मात्र भ्रममें, विकल्पमें हैं।

इच्छा बन्धो न मे हानिर्ज्ञानमात्रस्य दर्शिनः।
पूर्यते ज्ञानमात्रेण स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२०॥

हम और आप सभी आत्मा परिपूर्ण हैं, सब प्रकार ज्ञान और आनन्दमय हैं। सब बातें इस आत्मामें ठीक हैं। केवल एक गड़बड़ी इस आत्माके अन्दर है जिससे सारा बिगाड़ हो गया। वह गड़बड़ी क्या है? वह बड़बड़ो यह है कि इस आत्मामें इच्छाएं भरी हुई हैं। चाहे सारी बातें रहो, हम किसीको मना नहीं करते। मगर एक इच्छाओंको ही निकाल दो तो सारे संकट समाप्त हो जावेंगे इच्छाको समाप्त होने पर कषाय भी किस पर नखरे करेंगे? इच्छाएं ही एक बन्धन है जो जीवोंको बांधे हुए है। इन पुरुषोंको कौन बांधे हुए है? इनमें कैसे गांठ लगी हुई है। अरे ये सब न्यारे न्यारे हैं, मगर अपनी अपनी इच्छाएं बनाकर बन्धनमें पड़े हुए है। कोई किसीसे बंधा हुआ नहीं पड़ा है। इच्छाओंने ही बांध रक्खा है।

सुकोशल कुमार विरक्त हुए। लोगोंने बहुत समझाया, अरे राजकुमार अभी तुम्हारी कुमार अवस्था है। अभी कुछ वर्ष हुए शादी हुई हैं, स्त्रीके गर्भ है, उत्पन्न होने वाले पुत्रके लिए राजतिलक कर जावो, फिर बादमें चाहे चले जाना। कोशल कहते हैं पिंड बचानेके लिए कि अच्छा जो गर्भमें है उसे मैं राज्यतिलक दिए देता हूं। कोशलको बंधनमें बंधनेकी इच्छा न थी तो उनके कोई बन्धन न था। इच्छाएं हैं तो बन्धन हैं। गृहस्थीमें क्या बन्धन हैं। अरे नहीं, गृहस्थीमें बन्धन कहां हैं? केवल इच्छाओंके कारण ही वे फंसे हुए हैं। हमें तो बाल बच्चोंकी फिक्र है, घर द्वार कुटुम्ब परिवारकी फिक्र है, इसीसे हम फंसे हुए हैं।

भैया! अपन तो स्वतंत्र हैं परन्तु बालबच्चोंमें मोह होनेसे ही अपने मोहसे फंस गए हैं। यदि हम उनमें ही फंसे रहें तो क्या उम्मीद है कि हम इन बंधनोंसे निकल पायेंगे? जो जो व्यवस्था हम सोचे हुए हैं क्या इनको पूरा करके विश्राम पा लेंगे? देखो मेंढक इधर उधर उछलेगा, कोई उधर उछलेगा। वे तोले नहीं जा सकते हैं। इसी तरह क्या अपने

परिग्रहमें रह कर अपनी व्यवस्था बना सकते हो ? कितनी ही व्यवस्था बन जायगी तो फिर सामने कोई नई बात खड़ी हो जायगी। क्योंकि बात बाहर खड़ी नहीं होती, अन्दरमें ही खड़ी होती है। सो वर्तमान अन्तर उपादान अयोग्य है ही। जब तक इच्छाएं समाप्त नहीं होती तब तक बंधन रहेंगे।

भैया! एक घटना सोचो कि बगीचेमें एक चिड़ीमार जाल फैलाए हुए है। जालके नीचे थोड़ेसे चावल या गेहूंके दाने डाल दिए हैं। अब चिड़िया आती हैं, उस जालमें फंस जाती हैं। देखने वाले दो चार लोग आपसमें चर्चा करते हैं कि देखो चिड़ीमार ने चिड़ियोंको फांस लिया। दूसरा बोला—नहीं, नहीं चिड़ियोंको स्वयं जालने फांस लिया है। तीसरा बोला नहीं, नहीं, जालने चिड़ियोंको नहीं फांसा है, चावल और गेहूंके दानोंने चिड़ियोंको फांस लिया है। चौथा बोला नहीं, नहीं, चिड़ियोंने स्वयं दाने चुगनेकी इच्छा की, इसलिए स्वयं ही वह बंधनमें फंस गयी है।

प्रभुमें और आत्मामें भेद कहां ? सब लोग चिल्लाते हैं कि प्रभु और आत्मामें भेद नहीं है। कहते ना कि आत्मा सो परमात्मा। भेद कुछ नहीं है आत्मा हैं हम और परमात्मा है कोई निर्दोष, सर्वज्ञ, शुद्ध, ज्ञानी आत्मा। उसके स्वरूपमें और इसके स्वरूपमें कोई भेद नहीं है। इतना समझकर आगे इतना और समझ लो कि मेरे आत्मामें अनादि अनंत अहेतुक नित्य प्रकाशमान सहज चैतन्यस्वरूप है, वह परमात्मतत्त्व है ऐसा मैं सहजपरमात्मतत्त्वरूप हूं। सारा मामला तैयार है, केवल इच्छाओंको निकाल दो, जिनसे कि बाह्यपदार्थोंसे कोई मतलब नहीं है। जो जैसा है तैसा ही है, किसीके करनेसे कुछ होता नहीं है। मेरे सोचनेसे बाहर कुछ नहीं होता है। सब अपने अपने स्वरूपके धनी हैं, अपने अपने सत्के स्वामी हैं। केवल ये व्यर्थकी इच्छाएं उत्पन्न करते हैं और दुःखी होते हैं। रात दिनके कार्योंके अन्दर अपनेको देखते जावो कि मेरे लिए लोग बन्धन हैं या काम बन्धन है या इच्छाएं बन्धन हैं। इच्छाएं न करो तो सुख है। अच्छा देखो सुखी किसे कहते हैं। सुखी उसे कहते हैं जो इच्छाओंका संयम लिए है अथवा इच्छाएं रंचमात्र भी नहीं हैं। इच्छाओंके होने न होने पर ही सुख दुःख निर्भर हैं। अन्य पदार्थोंके संयोगमें सुख नहीं हैं, दुःख ही हैं। संसारमें दृष्टि पसार कर देखो तो सब दुःखी ही नजर आ रहे हैं, सबको कष्ट हैं और किसीको यहां कितना भी आराम मिले फिर भी यहां कष्ट ही हैं। जितने दीनको कष्ट हैं उतने ही धनीको भी कष्ट हैं। यद्यपि जितनी असुविधाएं दीनको है धनीको नहीं है, फिर भी धनीको भी उतने ही कष्ट होते हैं, कहीं कहीं उससे भी अधिक।

अरे सुविधाओंसे सुख नहीं होते हैं और न सम्पदाओंसे ही सुख होते हैं। इच्छतसे

भी सुख नहीं होता। इच्छाएं यदि न रहे तो सुख होता है। तो कैसी भी परिस्थिति या जाय, इच्छाएं कर लिया तो दुःख हो गया। इच्छाएं ही एक बन्धन है। इन शिशु बालकों को देखो कैसे आजादीसे फिरते हैं, कोई फिक्र नहीं है। कैसे सुखी रहते हैं ? पर भाई जैसे जैसे अवस्था बढ़ती जाती है वैसे वैसे इच्छाएं भी बढ़ती जाती है और इच्छाओंके बढ़नेसे दुःख भी बढ़ते जाते हैं। तो भाई दुःखोंका कारण इच्छाएं हैं। पर बड़ा कठिन प्रश्न है कि इच्छाओंको कैसे दूर किया जाय ?

भैया ! गृहस्थोंके द्वारा भी इस बारेमें दो काम तो किए जा सकते हैं। एक तो यह कि मैं आत्मा इच्छारहित हूं, ज्ञानस्वभाव वाला हूं, मेरा स्वभाव इच्छारहित रहनेका है, मैं आत्मा ज्ञानमय हूं, आनन्दको लिए हुए हूं, मैं इच्छाएं नहीं करता, इच्छाएं न रखनेसे मेरा कुछ मिट नहीं जायगा, मेरा तो ज्ञान स्वभाव है, जानन ही मेरा काम है, मेरा जाननहार मैं ही हूं, एक तो यह काम गृहस्थीमें भी किया जा सकता है। पर इसे ज्ञानी गृहस्थ ही कर सकते हैं। यह केवल कहनेकी बात नहीं है। सत्य बात कही जा रही है, पर ऐसा किया जानेमें कुछ अभ्यास होना चाहिए, ज्ञान दृष्टि होना, चाहिए, संसारसे मुक्तिकी भावना होनी चाहिए। यदि ये बातें हो सकती हैं तो गृहस्थ एक तो यह काम कर सकता है। भैया ! बात भी यही सही है—मेरा इच्छारहित स्वभाव है, जानन ही मेरा स्वभाव है। जानन अगर मिट गया तो मैं मिट जाऊंगा, इच्छाएं अगर हो गयी तो मैं बरबाद जाऊंगा। इच्छा-ओंके मिट जानेसे मैं मिट जाऊंगा, ऐसी बात नहीं है। इच्छाओंके मिटनेसे मैं नहीं मिटता बल्कि इच्छाओंके मिट जानेसे मुझे आनन्द है। ये इच्छाएं मेरा स्वभाव नहीं, मैं तो स्वभाव मात्र हूँ, भीतरमें एक ऐसा विश्वास बना लेवो। एक तो गृहस्थ यह कर सकता है, दूसरे यह कर सकता है कि इच्छा माफिक यदि काम नहीं है तो इससे नष्ट हो जाऊंगा यह शंका रंच भी न करे। अरे मैं तो वही सत्का सत् हूं। यदि ऐसा होगा तो क्या, न होगा तो क्या यह दूसरी बात भी गृहस्थ कर सकता है। बाह्यकी यदि इच्छा बन गयी तो क्लेश ही क्लेश है ? ये इच्छाएं ही बन्धन हैं। यदि मैं इच्छाएं न रक्खूं, ज्ञाता दृष्टा रहूं, ज्ञानमात्र रहूं तो मेरी हानि नहीं है। इच्छाओंसे ही हानि है। मेरा पूरा इच्छाओसे नहीं पड़ेगा, इच्छाओंसे तो मुझे दुःख ही मिलेंगे। मेरा पूरा तो ज्ञानमात्र भावोंसे ही होगा। मैं जितना हूं स्वयं हूं। इससे ही मेरी ठीक व्यवस्था बनेगी। इसलिये इच्छावोंको दूर करके ज्ञानमात्र रहकर मैं अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊं।

देखो हाथी, मछली, भंवरा प्रत्येक जीव बन्धनमें पड़ जाते हैं, जालमें बंध जाते हैं, शिकारियोंके चंगुलमें फंस जाते हैं। उनकी इच्छा नहीं होती तो वे बन्धनमें नहीं पड़ते।

मनुष्य भी रंग ढंगसे चलते हैं, दूसरोंमें मनमानी अन्यायकी प्रवृत्ति नहीं कर पाते तो इस संसारी व्यवस्थाका निदान भी इच्छा है। इससे एक मनुष्य दूसरे मनुष्यके बन्धनमें पड़ जाता है। पुत्रकी इच्छा है कि मैं ठीक रहूं, मेरा बढ़िया गुजारा बने, मेरी उन्नति बने, ऐसी इच्छाओंके कारण ही वह पिताके साथमें रहना स्वीकार कर लेता है। यह मेरा बच्चा बुढ़ापेमें काम आयगा, मेरी सहायता करेगा; इच्छाओंके कारण ही वह पुत्रसे मिला हुआ हुआ चलता है। इसी प्रकार स्त्रीकी इच्छाएं अपने पतिके प्रति, पतिकी इच्छाएं अपनी स्त्री प्रति होती हैं, इस तरहसे वे सब एक दूसरेके बन्धन बन जाते हैं। नौकर अपने मालिक के प्रति तथा मालिक नौकरके प्रति बंधनमें है। इसी प्रकार बड़ा छोटेके बन्धनमें है तथा छोटा बड़ेके बन्धनमें है। इसलिये इच्छाएं ही बन्धन हैं।

सीता जी अग्नि परीक्षामें सफल हो गयीं तो रामचंद्र जी विनयसहित खड़े हुए बोले देवी माफ करो, आपको बहुत कष्ट पहुंचा, चलो अब महल चलो। लक्ष्मणने भी हाथ जोड़े, और सब लोगोंने भी हाथ जोडे भला सोचो कि सीता जी ने मृत्युसे भेंट कराने वाली अग्नि-परीक्षाके बाद क्या अपने मनमें इच्छाके भाव बनाए होंगे ? क्या सीता जी के मोहकी प्रवृत्ति हो सकेगी ? नहीं। इसीसे तो सीताजीके वैराग्य उमड़ा, ज्ञानका विकास हुआ तो सीताजी के लिये कुछ भी अन्य बन्धन नहीं हुआ। विरक्त हो गयी, तपस्यामें लग गयीं। जब तक इच्छाएं थीं तब तक बन्धन था। इच्छाएं खत्म हो गयीं तब उनका बन्धन भी खत्म हो गया।

अब घरमें ही देखो लोगोंकी इच्छा नहीं रहती हैं इसलिये वे व्यावहारिक सम्बन्धी भी होकर जुदा हो जाते हैं, अलग हो जाते हैं, तलाक दे देते हैं। परमार्थसे जो जब इच्छाएं नहीं हैं तब मोहके बन्धन भी हट जाते हैं हमको बांधने वाले कोई पदार्थ नहीं हैं। हम बाह्यपदार्थोंको अच्छा या खराब करनेकी इच्छा करते हैं तो अपने आपको ही बेड़ियोंमें जक-ड़ते हैं, दुःखी होते हैं।

बड़े बड़े रईस लोग आजकल भी अपने बच्चे स्त्री धन वैभव इत्यादिको छोड़कर अलग हो जाते हैं, विरक्त हो जाते हैं। यह क्यों ? यों कि इच्छाका बन्धन उनके नहीं रहा इच्छा तक साम्राज्योंसे लगाव था। इच्छाओंके समाप्त होते ही वे बड़े बड़े साम्राज्य छोड़ देते हैं। कहते हैं कि फलाना आदमी मोहप्रवृत्तिसे अलग हो गया। अरे अलग हो गया तो अपने को बंधनमें बांधनेकी इच्छा नहीं थी इसलिए अलग हो गया। बन्धन तो इच्छासे हो जाते है। किसीको अपना मानना कि यह मेरा है, यह अमुकका है, यह फलानेका है इत्यादि ही तो विपदाएं हैं। दूसरोंसे लातें घूंसे मिला करते हैं पर कहते हैं कि मेरा है। परको

अंगीकार करनेसे ही सुख दुःख हो जाते हैं।

यह जीव किसी किसी बातसे मौज मानता है और किसी बातसे दुःखी होता है। जिन चीजोंसे मौज मानता है उन चीजोंके साथ साथ दुःख ज्यादा आते हैं। रात दिनके २४ घंटेके अन्दर यह बताओ कि बहुत बढ़िया मौज कितने मिनट तक रहती है? रात दिन में २, ३ मिनटके लिए मौज आ जाती होगी बाकी समयमें कष्ट ही रहते हैं। कभी कोई बच्चा हो गया उसकी प्रवृत्तिको देखकर दो एक मिनटके लिए मौज हो गयी, बाकी समयमें दुःख ही रहते हैं। दुकान पर बैठे हैं कोई ग्राहक आ गया तो सौदा पटने पर दो एक मिनट के लिए मौज आ गयी। सौदा न पटा, ग्राहक चला गया तो फिर दुःखी हो गए और ग्राहक की अपेक्षामें तो पहलेसे भी दुःखी बैठे थे। मौज और दुःखमें अन्तर देखो कि मोज तो राई के समान और दुःख पहाड़के बराबर है। और दुःखोंको फिर देख लो दुःख तो सारे सांचे हैं मगर मौज जो २ मिनटका है झूठा है। मौज झूठा हो गया और दुःख सांचे हो गए। इन सबका क्या कारण है? देखो भाई क्षणिक मौज माननेसे ही दुःखोंसे दब जाते हैं। इस मोज माननेका कारण इच्छाएं ही हैं। इन इच्छाओंसे ही दुःख हो जाते हैं। जैसे कोई कहे कि साहब अपनी दुःखोंकी कहानी सुनाओ। अच्छा सुनो, ५ मिनट तक सुनाया तो उसमें यही पाओगे कि इसकी इन विषयोंमे इच्छा है। इसका निर्णय करो कि इसमें अमुककी इच्छा है। इन सब इच्छाओंसे दुःख होते हैं, क्लेश होते हैं।

सारी बातें ठीक हैं ना, सारी बातें समझमें आयी हैं ना। सारी बात समझमें क्या सिर पर ही तो आ रही हैं। भैया! अब समझते हैं यह कि ऐसा कोई उपाय बन जाय कि सारी समस्याएं समाप्त हो जावें। हम कहते हैं कि जिनमें मोह हैं, जिनमें इच्छाएं हैं उन को सभी सुख नहीं हैं, न सफलता है इतना निश्चय तो कर ही लो। एक इच्छा न हो तो आनन्द हो आनन्द है। इच्छा मिटी फिर क्या पड़ा है। तो ये इच्छाएं मिटें कैसे? अरे इन इच्छाओंके मिटनेकी तरकीब हैं—जो शास्त्र पूजे जा रहे हैं, उनमें इच्छाएं मिटानेकी तरकीबें लिखी होती हैं, इसीसे हम शास्त्रके पन्ने आदरसे पलटते है, पूजते हैं, उनका मनन करते हैं और यह भगवान्‌की मूर्ति मंदिरमें विराजमान है, परमात्मा अरहंत जिनेन्द्रकी मूर्ति विराजमान है, उसकी उपासना उन्हे आदर्श मानकर ही तो करते हैं। इच्छा प्रभुके समाप्त है। उस निरीहको पूज करके हम अपनी इच्छाओंको नष्ट करें। हम गुरुवोंके सत्संग करते हैं, गुरुवोंकी उपासना करते हैं, उपासना करें क्योंकि इच्छावोंके मिटानेकी तरकीब उनके सत्संगसे मिलती है। जैसी इनकी वृत्ति है ऐसा बनाकर मैं प्रसन्न होऊंगा।

जिसके इच्छाएं होती हैं और बाहरसे ही मौज किया करते हैं उन्हें क्लेश ही रहते

हैं। देखो भाई जिसके पास आनन्द है उसके पास हम नहीं जाते हैं और जिसके पास आनंद नहीं है उसके पास हम जाते हैं। जिनके पास जानेसे अपनेको क्लेश हैं उनके पास हम जाते हैं। जिसके पास जो हैं उसके पास जाकर उसे पाना चाहिए। दरिद्रतामें दुःख है यह सोच कर जिनके दरिद्रता नहीं, ऐसे धनीके पास जाते हैं लोग, जिनसे उन्हें कुछ चीज मिलता है उनके पास जाते हैं। इसी तरह इच्छाओंसे दुःख हैं। जिनके ये दुःख न हों उनके पास जाते हैं। इसी तरह इच्छाओंसे दुःख है। परन्तु मोही दुनियामें चिपटते हैं और जिनके पास दुःख नहीं हैं उनके पास ये मोही नहीं जाते है। देखो जैसे मिल चल रहे हैं खटपट खटपट। न पेंच पुरजोंको चैन, न चलाने वालोंको चैन। वैसी ही चीज यहाँ बन रही है। देखो इस हृदय मिलके अन्दर कैसी खटपट खटपट हो रही है। एक इच्छा यह हुई उसके बाद दूसरी इच्छा। कभी किसीकी वासना, कभी किसीका ख्याल, कभी किसीका उपयोग तो कभी कोई व्याकुलता। इस तरहसे ही इच्छाओंके खटपटीसे भरी यह वासनामशीन कैसी चला करती है? जितने दुःख होते है वे सब इन इच्छाओंके द्वारा ही होते हैं और इन अटपट इच्छाओंमें पड़नेसे क्लेश ही क्लेश रहेंगे।

भैया! इन इच्छाओंको हटा दो। इनसे कोई मतलब नहीं निकलता। कुछ भी इच्छा करो उससे लाभ नहीं मिलनेका है। इच्छाओंका पता भी नहीं अब क्या इच्छा उत्पन्न हो जाय। जैसे ऊटका पता ही नहीं रहता कि वह किस करवट बैठे? बैठते भी यह पता नहीं रहता कि वह किस तरफको बैठ रहा है। पहले तो वह जरासा झुकेगा फिर पैर लगाकर बैठ जाता है। जब वह बैठ जाता है किसी तरहसे तो फिर पता लगता है कि ऊँट किस करवटसे बैठा? पुद्गलोंका ऐसा अन्जान मामला नहीं है। पुद्गलोंके चाहे लट्ठ चलो चाहे तलवार, अटपट वहाँ कुछ नहीं होगा और इस मनुष्यकी तरफ जरा देखो। इस मनुष्यका पता ही नहीं कि इसका एक मिनटमें ही क्या दिमाग बदल जाय या कुछ समय बाद क्या बदले? उसका कुछ पता नहीं रहता है। वह अपनी भूलके कारण ही गल्तियाँ कर डालता है। इन गल्तियोंके कारण ही इच्छायें हो जाती हैं। इन इच्छाओंकी गल्तियोंको अगर अपनेसे निकाल दें तो दुःखके बन्धन छूट जायेंगे। दुःख तो इच्छाओंसे ही होते हैं। इच्छायें न हों केवल ज्ञाताद्रष्टा मात्र मैं होऊँ तो उस ज्ञानसे ही मेरा पूरा पड़ेगा। इच्छाओंसे मेरा पूरा नहीं पड़ेगा। देख लो सब ठीक है, परन्तु कोई इच्छा हो गयी तो बैठे ही बैठे विपदाओंसे दब गए।

जब बच्चे थे तब भी इच्छा इज्जत की थी। नीचे नहीं बैठते थे, गोदमें ही बैठते थे। जब थोड़ा बड़े हुए तो यह लें, वह खा लें, यह खेलें आदि इच्छाएं भी हुई और तनिक

बड़े हुए तो अन्य अनेक इच्छाएं आ गयीं। पढ़ेंगे, परीक्षा देंगे, यह करेंगे, वह करेंगे आदि। तनिक और बड़े हुए तो शादी की, विवाह किया, पुत्र हुए। देखो अन्य अन्य ढंगकी बातें हो रही हैं। इन इच्छावोंने आराम नहीं लिया। इच्छायें मेरे मनमें बहुत सवार हुईं इन इच्छाओं ने ही हमें बहुत सताया, फिर भी हम इनका आदर करते जा रहे हैं। अरे ये इच्छायें बेकार की हैं, व्यर्थकी हैं, इनसे कोई मतलब नहीं, कुछ प्रयोजन नहीं। भला सोचो तो सही इस शरीरका तो मरण होगा ही, इस शरीरकी क्या दशा होगी ? खाक कर दिया जायगा, भस्म कर दिया जायगा। ३४३ घन राजू प्रमाण लोकमें पता नहीं कि वह किस जगह जायगा ? फिर उसके लिए कानपुर नहीं होगा। उसका हिन्दुस्तान नहीं होगा, उसका घर द्वार इत्यादि भी नहीं होगा। वह तो ज्ञानमात्र अपने आपके स्वरूपमें अगर विश्वास कर ले तो सुखी हो जावे। तो ऐसा ही अब जान लो कि मेरा कहीं कुछ नहीं है। जो कुछ भी हो धर्म कर लो तो उसका फल है। शरण कोई नहीं होगा। इसलिए मैं इस अपने ज्ञानमय आत्माको देखूं और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

ॐ शान्ति, ॐ शान्ति, ॐ शान्तिः

नाना चेष्टैः न मे लाभश्चेन्न चेष्टैः न मे क्षतिः।
ज्ञानमात्रैव चेष्टा मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२१॥

कुछ भी चेष्टायें करनेपर भी जैसेके तैसे हो खाली हाथ रहते हो। किसी भी प्रकारकी चेष्टायें करो—दुकानकी, घरकी, सत्संगकी, रहनेकी, पढ़नेकी, सोसायटीकी, समाजकी सेवाकी, रहोगे वैसेके वैसे खाली हाथ। इस आत्मामें कुछ भर जाता है, बन जाता है, बड़ा हो जाता है, क्या ? कुछ नहीं होता बल्कि उन चेष्टाओंसे कुछ खाली हो जाता है। नाना प्रकारकी चेष्टायें करो, मगर कुछ लाभ नहीं मिलेगा।

अगर मैं कुछ चेष्टायें न करूं तो स्वच्छ बना रहूं। चेष्टायें न करनेसे कोई हानि नहीं है। मेरी तो वास्तविक चेष्टा ज्ञानमात्र ही है। भीतरके स्वरूपको देखो तो यह केवल जाननहार एक आत्मा है। अपने आपके स्वरूपमें घुला मिला है। मुझ आत्माका काम केवल ज्ञानस्वरूप है, केवल जाननका काम है। इसके आगे और कोई काम नहीं है। इसके आगे अगर और कुछ करनेका स्वरूप माना है तो धोखा है। यह तो जाननहार है, जानन ही इसका काम है। ऐसा मात्र ज्ञान मैं अपनेको देखूं। भीतरमें यह प्रवृत्ति बन जाय कि मैं तो सबसे निराला, भिन्न तत्त्व हूं। इसका किसीसे सम्बन्ध नहीं है। किसीके कुछ करनेसे हो जाय या किसीको मैं कुछ कर दूं ऐसी बात नहीं है। सब पूरेके पूरे हैं, परिणमनशील हैं। अपने आपमें परिणमते रहते हैं। परिणमना ही तो इसका काम है। इसको कहते हैं कि

'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ।' जो बन जाय, बिगड़ जाय और बना रहे वही तो सत् है। यह प्रत्येक पदार्थका स्वभाव है। मैं किसीको बना दूं सो बात नहीं है। मैं किसीसे बन जाऊं यह भी बात नहीं है। मेरा स्वभाव ही नहीं है परका बिगड़ना और बनना। यह उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी कला स्वयं प्रत्येक पदार्थमें है। दुनियाके लोग नहीं समझते हैं, सो उनकी यह बुद्धि बन जाती है कि ये चीजें बन जाती हैं तो कोई बनाने वाला अवश्य है उस बनाने वालेका नाम ब्रह्मा है। देखो कोई चीज बिगड़ी, खत्म हो गयी तो ऐसा करने वाले महेश हैं। ऐसा उत्पाद व्यय हो जानेपर भी कुछ रहा करता है उसका नाम विष्णु है।

भैया! प्रत्येक पदार्थ त्रिगुणात्मक है। मोही जीव पदार्थोंके स्वभावको तो देखना नहीं, अपने स्वरूपको तो समझता नहीं, केवल बाहरमें ही देखकर कल्पनायें बनाकर कहता है कि मैं अमुकको बना दूं, अमुकको बिगाड़ दूं, अमुकको कुछ कर दूं अथवा मुझे कोई दूसरा ही बिगाड़ दे। इन शंकाओंसे सदैव दुःखी रहता है। अरे मैं तो स्वच्छ हूं. मेरा कोई कुछ नहीं कर सकता। उत्पादव्ययध्रौव्यमें पड़ा हुआ मैं स्वयं अपने स्वरूपको जानता, देखता हूं। मेरी जानन मात्र ही चेष्टा है, बाकी काम नहीं है। सो मैं अपने ज्ञानस्वरूप आत्मामें रहकर अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

तत्वज्ञो जायते मूको लुब्धैस्त्यक्तमिदं छलात्।
शांतिस्तु तत्वतस्तत्वे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२२॥

यह अन्तरकी बात, तत्त्वकी बात इसको जो जानता है वह मूक हो जाता है। बोल नहीं सकता मौन हो जाता है। जैसे कोई किसीको कोई चीज समझावे और वह समझता है, पर ऐसा नहीं समझता है तो समझाने वाला बराबर समझता है, पर समझने वालेको समझमें नहीं आता है। जब समझने वाला यद्यपि जानता है सब, पर एक्सप्लेन नहीं कर पाता है या सुनने वाला समझ नहीं पाता है तो बोलने वाला टेबुलमें हाथ मारकर यों ही रह जाता है, क्या समझाया जाय, बताया नहीं जा सकता है। अच्छा मिश्री तो सबने खायी होगी। कोई भाई खड़े होकर मिश्रीके स्वादका एक्सप्लेन कर दें। अरे भाई आप जान रहे हैं मिश्रीके स्वभावको, पर बताते कोई नहीं हैं। जानते सब हैं, पर बता कोई नहीं सकता। अगर कोई कहे कि उसका स्वाद मीठा होता है तो उत्तरमें यह आता है कि क्या रसगुल्ले, पेड़े, बर्फी इत्यादिका स्वाद जैसा होता है। जानते सब हैं पर वर्णन कोई नहीं कर सकता है। ज्ञानस्वरूप कैसा है कोई बतावेगा?

जो तत्त्वका जानने वाला है वह मूक हो जाता है ठीक है। जो तत्त्वज्ञ है वह वचन-व्यवहारमें क्यों पड़ेगा? परन्तु मोही जीवोंने मानो एक छल पकड़ लिया कि जिस तत्त्वके

जाननेमें भूंखा हो जाता है उस तत्त्वकी हमें क्या प्रयोजन ? २०-२१ वर्ष पहले धर्म पढ़नेका रिवाज था। लड़के विद्यालयमें संस्कृत पढ़नेके लिए जाते थे। घरमें माँ बाप कहते कि अरे देखो संस्कृत पढ़नेसे कोई पंडित हो गया, कोई घर छोड़कर चल दिया, तो ऐसा पढ़ानेसे क्या लाभ ? लड़केको न पढ़ावें, नहीं तो हाथसे ही चला जायगा। संस्कृत पढ़ानेसे कोई फायदा नहीं है, ऐसा माँ बाप लड़कोंके प्रति सोचते थे। अरे धर्मके तत्त्वको जिसने समझ लिया वह घर घरसे चला जाय तो उसे उत्सव मनाकर भेजो। जो ज्ञानी ध्यानी निर्णय कर रहा है वह तो अपने आपका कल्याण करता है और दूसरोंका भी कल्याण करता है, तो उसका गौरव होना चाहिए। मान लिया कि आपने दुकान कर ली, बहुतसा साम्राज्य कर लिया तो उससे क्या होगा, बतलाओ। अरे ये तो विकल्प सर्व साधारणके हैं ही। मगर जीवका उद्धार हो जाय तो खुशी होना चाहिए।

भैया ! देखो—यह मूल पुरुष छल करता है कि मेरेको उस तत्त्वसे क्या लाभ होगा ? अरे भाई ऐसे तत्त्वमें, उपयोगमें ही शान्ति है, बाहरमें शान्ति नहीं है। बाहरी कामोंमें तो अशान्ति ही अशान्ति है। अपने उपयोगमें लगनेसे शान्ति ही रहेगी। अशान्तिका कोई काम नहीं है। क्या आप बतला सकते है कि किसमें शान्ति है ? शान्ति क्या सर्विसमें है ? क्या दुकानमें है, क्या दुनियाके और कामोंमें है ? अरे शान्ति कहीं नही है। केवल अपने आत्मके स्वरूपको देखो तो वहीं पर शांति ही शांति मिलेगी। वहां अशान्तिका नाम नही है। अशान्ति कितने प्रकारकी होती है ? एक एक आदमीमें कमसे कम एक एक हजार अशान्ति होंगी। एक आदमीमें इतने प्रकारकी अशान्तियां हैं तो दूसरोंमें भी ऐसी नाना अशांति है। ये अशान्तियां भी एक दूसरेसे मिलती नही। इनको और तरहकी अशान्ति, इनको और तरहकी अशान्ति। कितनी तरहकी अशांतियां हैं, कोई हद नही है। मगर शान्तिका जो रूप होता है वह केवल एक है और अशान्तिके रूप करोड़ों हैं। शान्ति अगर मिले तो उसका केवल एक ढंग है। अगर मान लिया इन लौकिक मौजोंमें कि हमें शान्ति मिली तो वह शान्ति नहीं हुई। शान्ति तो केवल एक प्रकारकी है। तो यह तत्व जो अपने आपमें विराजमान है उस ओर दृष्टि हो तो शान्ति है। तो ऐसे तत्त्वको जानकर मैं अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

तत्त्वज्ञ आलसो भूतो लुब्धैस्त्यक्तमिदं छलात्।
नैष्कर्म्य एव शांतिस्तु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२३॥

ओह, एक मनुष्य बोल रहा है कि उस तत्वके जानने से क्या फायदा ? जिस तत्वके जाननेसे ज्ञानी आलसी हो जाता है, तत्त्वको जानने वाला आलसी होता है, ऐसा आलसी

होता है कि पलक गिरानेमें भी आलस्य आता है। आँखोंके पलक अगर गिरे तो उठानेको आलस्य आता है। और की बात तो दूर रहो, जिसको योगी कहते हैं उनकी भी अगर पलक गिर जाती है तो उठानेमें आलस्य होता है। और अगर नजर उठी तो पलके बन्द करनेमें आलस्य है याने बाह्यमें दृष्टि नहीं करता। ऐसे तत्वको जाननेका हमें क्या प्रयोजन है ? और ज्यादा बढ़ें तो ऐसे प्रश्न हो जाते हैं कि हम भी मुक्त हो गए तो दुनिया कैसे चलेगी ? दुनियाके क्या हाल होंगे ? अरे ऐसे सब कहाँ बन जायेंगे ? सब तो नहीं बनेंगे मगर अनन्ते बन जावेंगे। अनन्ते बननेपर भी अनन्तानन्त ही रहेंगे। अगर बाह्यमें ही दृष्टि गयी तो वहाँ शान्ति नहीं मिलेगी।

भैया ! शान्ति तो वहाँ है जहाँ बाहरमें दृष्टि न हो। कुछ मत सोचो, कुछ म बोलो, कुछ मत करो। देखिए कल्पना, जल्पना, चलपना क्या हैं ? कल्पनाओंके स बन्ध मनसे होते हैं, जल्पनाका सम्बन्ध वचनोंसे होता है जिससे जल्प व गल्प बने और चल उठकर चल दे यह चलपना हुई। न कोई चलपना हो, न कोई जल्पना हो, न कोई कल्पना हो, केवल स्वरूपका ही परिग्रह हो, तत्वज्ञानकी प्रवृत्ति बढ़े, शान्ति तो वहाँ है। लोग कहते है कि उस तत्वके जाननेसे क्या फायदा जिसको जानकर आलसी हो जाते हैं। भैया ! शान्ति तो उस निर्विकल्पतत्वमें ही है। मैं अपने ही तत्वको निरखकर उसमें ही उपयोग देकर अपने मे अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

मनो मे न स्वभावोऽहं मनः कार्यं न तत्फलम्।
औपाधिकमसत्स्वेऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२४॥

मन मेरा स्वभाव नहीं, मन मेरी वस्तु नहीं, मैं तो मैं ही हूं। मेरे स्वरूपका मु पना न हो, यह कैसी अनहोनी बात है ?

एक राजा था। घोड़ेपर चढ़ा जा रहा था। दीवानके घर परसे निकला। द वान बुद्धिमान था। राजा बोला—दीवान ! मुझे यह समझा दो कि आत्मा क्या चीज है म र परमात्मा क्या चीज है ? जो प्रसन्न होता है वह बड़ी बातें करता है। राजा भी प्रसन्न , घोड़े पर बैठे हुए दीवानसे बातें कर रहे थे। बड़े आदमी प्राय: जब प्रसन्न होते हैं तो त बोलते हैं। राजा बोला—जल्दी समझा दो कि आत्मा क्या चीज है और परमात्मा क्या है ? दीवान बोला—अच्छा, समझा दूंगा। राजा बोला—नहीं, ५ मिनटमें ही समझा दो। दीवान बोला—राजन्, माफ करो तो मैं ५ मिनटमें नहीं आधा मिनटमें ही समझा दूंगा कि आत्मा क्या है और परमात्मा क्या है ? सो राजाका कोड़ा उठाया और ४-६ कोड़े राजाके जमा

हैं। राजा बोले—अरे भगवान, अरे भगवान्, दीवान बोला—जिसको तुम अरे अरे कहते हो वह है आत्मा और जिसको भगवान् कहते हो वह है परमात्मा।

हे आत्मन्, अपनेसे बाहर न जाओ, अपनेसे बाहर दुःख हैं। खुदके जाननेसे ही सुख है। सबको मानो कि भगवान सबमें है। अत्यन्त यथार्थ रूपमें आत्मा है। यदि उस अपने यथार्थ रूपको देखो तो तुम्हारा परमात्मा तुम्हारे सामने है।

यत्रैव भाति रागादि सोहं रागादि नैव हि।

रागादौ निर्ममस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२५॥

जहाँ यह रागादिक प्रतिभासित हों वह तो मैं हूं, किन्तु रागादिक मैं नहीं हूं। मैं तो एक ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व हूं। इस ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वका जब नयोंसे हल न हो सका तो एक एक एकान्त दर्शन बन गया। सब प्रकारसे देखने पर आत्मतत्त्वका सही ज्ञान हो सकता है कि मैं आत्मतत्त्व यह हूं मै आत्ममुखी हूं, निज उपादान वाला हूं, किन्तु माने यह कि मैं अमुकके कारण सुखी हूं तो इसीको कहते हैं निमित्तदृष्टि और जो दृष्टि अपने आपके लिए अपनी जुम्मेदारी लिए हुए होती है इसीको कहते हैं उपादानकी दृष्टि।

एक पुस्तक है, उसमें एक गधेको कहानी लिखी है। मैंने बचपनमें ही उसे पढ़ा था। अब चाहे दूसरा एडीसन तैयार हुआ हो या नहीं, उस कहानी की पुस्तकमें बहुत सी शिक्षाएं थीं। एक उपकहानी यह है कि एक धोबीके पास एक गधा था और एक कुतिया थी। कुतियाके बच्चे २०, २५ दिनके हो गए। धोबी कुतियाके बच्चोंको उठा भी लेता था, प्यार भी करता था। वे पिल्ले अपने पंजे मारकर धोबीको प्रसन्न करते थे। कभी मुँहमें धोबोके हाथ पैरोंको भर लेते थे। वह धोबी उन कुतियाके बच्चोसे बहुत प्यार करता था। गधेने यह देखा कि धोबी कुतियाके बच्चोंसे तो प्यार करता है जो बिल्कुल काम नहीं करते हैं और हम तो बहुत काम करते हैं फिर भी हमसे प्यार नहीं करता है। उसने इस बातको सोचा कि आखिर हमसे प्यार क्यों नहीं करता है? सोचा तो गधे ने समझ लिया कि पिल्ले धोबी को लातें मारते हैं और दाँतोंसे काटते हैं इस वजहसे वह उनसे प्यार करता है। चलो ऐसा हम भी करें तो हमसे भी मालिक प्यार करेगा। गधा अपने स्थानसे चला और धोबीके पास पहुंच गया। सोचा कि लातें मारें तो शायद मालिक खुश होगा सो यह सोचकर खूब लातें मारने लगा, खूब दाँतोंसे चबाने लगा। अब धोबीने डंडा उठाया और पीटना शुरू किया। उस गधे ने सोचा कि अरे पिल्ले तो जब लातें मारते हैं तब प्यार करता है और हम जब लातें मारते हैं तब हमें पीटता है।

तो भाई सबकी बातें न्यारी न्यारी हैं, उपादान न्यारे न्यारे हैं। कोई जीव किसी

तरहकी पीड़ाओंमें रहकर शांत हो सकता है तो कोई अशान्त हो सकता है। इसकी परख बाहरी बातोंमें नहीं होती, भीतर तत्त्वमें होती है। ऐसा उपादान तत्त्व अगर समझमें आ गया तो सब कुछ ठीक है और जिसकी समझमें न आया तो मोह होगा। जैसे कोई नावसे नदीमें जावे, कभी इस दिशामें कभी उस दिशामें तो लक्ष्य बिना भटकता ही रहता है। उसी तरह इस जगतके जीव, जिनका कोई शुद्ध लक्ष्य नहीं है वे भटकते ही रहेंगे। इतना धन चाहिए, इतनी इज्जत चाहिए, बाल-बच्चे चाहियें। अरे ये सब क्या हैं? वे भी बूढ़े होंगे और मरेंगे। क्या ज्ञानस्वरूप यह आत्मा यहांसे निकलकर नही जायगा? यहां कौनसी चीज सार-भूत है, जिसमें हम गड़े हुए है। सारी चीजें छोड़कर जाना पड़ेगा, यहां कुछ रहता नहीं है।

एक सेठ था, उसके चार लड़के थे। अपनी चाबी किसीको वह सेठ देता नहीं था। अपने पेटमें चाबीको बांधकर वह सेठ रखता था। किसी बच्चे पर वह विश्वास नहीं करता था। सेठ जब खतम होने लगा, गुजरने लगा तो बच्चोंसे बोला बच्चों! लो चाबी ले लो? बच्चे कहते है कि नही पिता जी, चाबी हमें नही चाहिए, आप अपने साथमें लेते जाइए।

शांतिका मार्ग प्राप्त कर लें, ऐसी कोई चीज दुनियामें है क्या? बाहरी बात कुछ भी हो उसमे तो असंतोष न करो। अरे भोजन करते हैं तो पूछते हैं कि क्या बना दें? तब पुरुष उत्तर देता है कि कुछ भी बना दो। उड़दकी दाल बनाओ, चाहे मूंगकी बनाओ, चाहे मसूर की बनाओ, चाहे चनेकी बनाओ, चाहे अरहरकी बनाओ, जो होगा सो खा लेंगे।

भाई! जैसे खानेमें संतोष है उसी तरह यदि बाहरी व्यवस्थाओंसे संतोष हो तो ठीक है। संतोष तो अंतमें करते ही हैं। कोई गुजर जाता है तो कहते हैं कि इतनी ही अवस्था थी। यदि भेदज्ञानसे संतोष करें तो लाभ है। ४-६ हजारका टोटा पड़ जाय तो वहां यों संतोष करते है कि उसने तो किसीसे कर्जा लिया था सो चुक गया। अरे धन आए तो क्या न आए तो क्या? वह सब तो सर्वथा भिन्न है। हम भेदज्ञानसे ही संतोष करें तो ठीक है। उसमें भेद तो रहता है, जबरदस्तीमें क्या है? भैया! बात तो भेदविज्ञानकी ही एक पक्की है और वही रोज-रोज चल रही है। अब कुछ भाइयोंकी मर्जी है कि भक्तामर स्तोत्र का अर्थ एक हफ्ता चले। ठीक है, चलेगा, किन्तु भैया, बात पक्की भेदज्ञानकी ही है। एक कथा याद आ गयी।

एक रंगरेज था। बहुत बढ़िया पगड़ी रंगता था। आसमानी, लाल रंगकी पगड़ी रंगना बहुत बढ़िया जानता था। कोई उससे आकर बोलता कि हमारी पगड़ी हरी रंग दो, कोई बोलता कि लाल रंग दो, कोई बोलता कि सुनहरी रंग दो इत्यादि। रंगरेज सब पगड़ी रखा लेता है और कहता है कि अच्छा रंग तो देंगे, किन्तु रंग आसमानी ही ठीक खिलेगा।

जो भाई कुछ पढ़ा सो आनन्द तो भेदविज्ञानसे ही मिलेगा । चमत्कार जो सभी बनेगा वह ज्ञानस्वभावके विकास की पूंजी हो । सो मैं अपने आपमें स्वयं निर्विकल्प हूं, ज्ञानानन्दघन हूं अथवा शरण हूं । अगर यह समझमें आ जाए तो मेरा भविष्य सफल है ।

अन्यथानुपपत्तेः स्याद्रागादेः कर्म कर्तृ हि ।
तत्कर्मव्याहृतिर्ज्ञानी स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२६॥

ऐसी दृष्टि बनाकर कि कोई समय आयगा जब कि यह मैं आत्मा इस शरीरसे न्यारा होकर चला जाऊंगा । उस शरीरकी क्या स्थिति होगी ? मिल जुलकर यह मित्रमंडल इसे खाक कर देगा । इस शरीरसे जीव निकला उस समय क्या स्थिति होगी ? ज्ञानज्योतिमात्र वह आत्मा इस स्थूल शरीरसे रहित होगो । उस समय तो यह शरीर छूट गया, दूसरा शरीर मिला नहीं तो जो बीचके क्षण हैं वे क्षण किस प्रकारके होवेंगे ? एक ज्ञानानन्दघनका पिंड जैसा उस समयमें परिणमता हूं वैसा ही परिणमता हुआ होऊंगा । एक भावस्वरूप पदार्थ होऊंगा । ऐसा भाव पदार्थ रूप मैं शरीरमें हूं, अब भी हूं । दूसरे शरीरमें जब जाऊंगा तब भी मैं भावस्वरूप पदार्थ ही रहूंगा । शरीरमें रहकर भी मैं शरीरसे न्यारा हूं । मुझमें जो परिणमन तत्व है वह भी चित्स्वभाव मात्र मुझसे न्यारा हो स्वरूपरूप रहेगा । उन परिणम तत्वोंकी याने राग द्वेषकी छाया न हो, शुद्ध ज्ञानमात्र सबसे न्यारा मैं होऊं ।

ये रागादिक ऐसे कैसे हो गए हैं ? मुझमें स्वभावसे हो ये रागादिक नहीं हैं । मेरा स्वभाव तो रागादिक करनेका नहीं, केवल जाननका है । जैसे पानीका स्वभाव बहनेका है याने द्रवताका है, पर ठंडा होने व गर्म होनेका नहीं है । ठंडा करनेसे पानी ठंडा हो जाता है और गर्म करनेसे पानी गर्म हो जाता है । पर पानी सर्वत्र द्रव ही है, बहने वाला है । पानी अपने स्वभावसे न तो गर्म ही होगा और न ठंडा ही होगा । पानी तो कूलर या ठंडा करने वाली मशीनसे ठंडा होगा और अग्निके द्वारा गर्म होगा । ऐसी स्थितिमें भी पानी द्रव है, बहने वाला है । इसी तरह यह आत्मा चाहे क्रोधपरिणमन रहे, चाहे लोभपरिणमन रहे, चाहे विषयकषाय परिणमन रहे, पर अपने ज्ञानस्वभावको नहीं छोड़ता । केवल जाननेके स्वभावमें रहता है । इसी कारण विषयकषाय यद्यपि आ जाते हैं तो भी जानन रहता है । जो जानने वाला नहीं है उसमें विषयकषायके परिणमन नहो आते । ये विषयकषाय मेरे स्वभाव से नहीं आ रहे हैं बल्कि उपाधि पाकर आ रहे हैं । क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि हो जाते हैं तो उनका भी करने वाला मैं नहीं हूं ।

जैसे एक दर्पण सामने है । दर्पणका स्वभाव तो केवल स्वच्छता है, केवल झलक है, झिलमिलाते रहनेका स्वभाव है । अपनी चमक बनी रहे यही उसका काम है । जो चीज

सामने लाकर रखो तो उसकी छाया दर्पणमें वही नही पड़ती है। दर्पणमें ही प्रतिबिम्ब पड़ जाता है। अगर मुक्का बनाओ तो मुक्का ही दर्पणमें दिखाई देगा। इसी तरह होंठ बनाओ तो होंठोंका प्रतिबिम्ब भी सामने आ जायगा। आँखें तिरछी बनाओ तो आँखोंका प्रतिबिम्ब सामने आयगा। दर्पण क्या करे ?

इसी तरह क्या तेरी आधीनताकी बात है कि क्रोध करले, मद करले। मैं अपनी आधीनतासे यह कुछ नहीं कर पाता हूं किन्तु जैसी उपाधि सामने आती है वैसा कर डालते हैं। इसी तरह दर्पणका परिणमन केवल शुद्ध स्वच्छ है। आत्माके परिणमनमें राग द्वेष नही, विषयकषाय नही केवल शुद्ध, स्वच्छ एवं ज्ञानस्वरूप है। हे आत्मन् ! मलीन बननेका तेरा काम है क्या ? आत्माका उत्तर है कि मेरा काम नहीं। मेरा काम तो प्रभुकी तरह शुद्ध ज्ञानमें परिणमते रहनेका है, पर क्या करूं ? जब यह उपाधिका उदय होता है तब खुदकी अशुद्ध योग्यतामें यह परिणमन जाता है। अशुद्ध विकारमय, रागादिक, क्रोधादिक तो मैं इनको करता नहीं हूं, इनके करने वाले तो कोई दूसरे ही हैं। इस बुद्धिसे अपनेको ज्ञान-स्वरूपकी ओर ले जाया जाता है, इसका कर्ता तो कर्म है, मैं तो शुद्ध ज्ञानस्वरूप ही हूं मैं तो जाननस्वरूप हूं। मेरेमें रागादिक भाव नहीं। विपरीत परिणमनमें बड़ी विचित्रताएं हैं। उनका कर्ता कर्म है। प्रकृति कहो या कर्म कहो। जैन सिद्धान्तमें प्रकृति भी कहते हैं और कर्म भी कहते हैं। अपनेको शुद्ध स्वभावकी ओर ले जाने वाली इस दृष्टिमें कितना आराम मिलता है ? विषय कषाय होते हैं वे कर्मके उदयसे होते हैं। यह मेरा काम नहीं है। मेरा काम तो ज्ञानस्वरूप। मात्र होनेका है, जाननका है। जिनमें मेरा अधिकार नहीं उन्हें मैं अंगीकार नही करता। ये रागादिक होते हैं होने दो, इन्हें होकर मिटने दो। इनसे मेरा कोई संबंध नहीं। उन बाहरी विषयोंका, वस्तुवोंका, ज्ञान तो हो जाना मेरा काम है पर विकल्प मेरा काम नहीं। जब अपनेको ज्ञानमात्रका अनुभव होगा तो ये रागादिक कर्म नष्ट हो जावेंगे। सो मैं ज्ञानमात्र अपने स्वरूपको देखूं और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

जागृतिः शयनं पानमस्तिर्वाग्दर्शनं श्रुतिः।
ज्ञप्तिक्रियस्य किं कृत्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२७॥

कहते हैं कि मेरा काम तो जानन है, मैं कितना क्या हूं, अपनेको देखनेसे ही पता पड़ेगा, मैं तो जानन मात्र हूं। ये विकल्पकी तरंगें उपाधिके कारण आती हैं। मेरा काम विकल्प करना नही है। जगतके जीव तो विकल्पोंके कारण उनसे मेरा क्या ताल्लुक है। मैं तो ज्ञानमात्र हूं जाननमात्र रहना ही मेरा काम है। बिगड़ रहे हैं। ये रागादिक उठते हैं तो उठें। उनसे मेरा काम है, जानन ही मेरा काम है। मुक्त आत्मामें न जागरण है। न सोना

है, न वचन बोलना है, न खाना है, न पीना है। मेरा काम तो यह है कि मैं ज्ञानमात्र हूं, ज्ञाताद्रष्टा हूं। कर्ता भोक्तापनकी ख्याति तो दंडके लिए है। उसका भाव करना तो विपत्ति है।

जैसे कभी स्कूलमें बच्चेसे कोई काम बिगड़ जाय तो उस बिगाड़ने वाले बच्चेका पता लगानेके लिए मास्टर उस कामकी प्रशंसा करता है। मास्टर यह कहता है कि वाह यह तो बड़ा अच्छा काम किया है, बड़ी बुद्धिमानीका काम किया है। इतना सुनते ही जिस बच्चेने काम बिगाड़ दिया है वह झट कह देगा कि मास्टर साहब मैंने यह काम किया है। मास्टर तो केवल यह जानना चाहता था कि किस लड़के ने काम बिगाड़ा, इसलिए प्रशंसा करता था पर बच्चेने समझ लिया कि मेरी तारीफ मास्टर कर रहा है, सो भ्रममें आकर बच्चा अपराधी हो जाता है।

इसी तरह ये जगत्के जीव मास्टर बने रहते हैं, प्रशंसा दूसरोंकी किया करते हैं। जैसे वाह, यह तो बड़ी बुद्धिमानीका काम है, यह तो बड़ा ही सुन्दर काम है, यह भी बड़ा ही सुन्दर काम है आदि। यह पता नहीं है कि प्रशंसाके फलमें मेरेको विपदा ही आवेगी। बाल बच्चोंको पढ़ा लिखा दिया। अरे उन बच्चोके जीवन भर दास बने रहे, उनकी सेवा की, उनको खिलाया पिलाया, उनका क्या किया ? अरे वे तो स्वयं ज्ञानमात्र आत्मतत्व है। केवल जानन ही उनका काम है। जगतके दस बीस हजार आदमियोंके बीचमे जरा अच्छा सुन लिया तो क्या इज्जत बढ़ गयी ? यदि यहाँ न रहते, अन्यत्र कहीं रहते तो यह समागम मेरे को क्या था ? अगर कहीं कीड़े मकोड़े होते, पेड़ वनस्पति होते या अन्य किसी पर्यायमे होते तो इस ढंगका क्या ख्याल भी आता ? अरे मनुष्य हो गये हो तो अपनेको समझो कि अपने कार्यके लिए पैदा हुये हैं। हम दूसरोंकी दिखावटके लिए बनावटके लिए तथा सजावटके लिए नहीं पैदा हैं। हम कही अन्यत्र पैदा हो गए हों तो ऐसा तो नही है। यह मैं किसी भी क्षण अपने विकल्पों को छोड़कर अगर काम करूं तो अपने आपमें आनन्दमग्न हो सकता हूं। यदि मैं विकल्परहित होकर कार्य करता हूं तो ठीक है, नहीं तो सब दुर्दशा हो जायगी। इस जगत्में कोई किसीका मोह करता, कोई किसीका मोह करता पर मोही प्राय: सभी हैं। इसी कारण दु:खी भी सभी हैं। देखो थोड़ा ही ज्ञान हो; पर सही ज्ञान हो तो ठीक है। पर हो तो बहुत ज्ञान किन्तु आत्मामें विवेक न हो तो ठीक नही है। उल्टा ज्ञान हो तो विकार है। थोड़ा ज्ञान हो, पर सही ज्ञान हो तो सबसे न्यारा, ज्ञानमात्र अपने आपमे समझ रहती है। बहुतसे शास्त्रोंका ज्ञान हो, तीन लोककी रचनाओंका ज्ञान हो, बहुत ज्ञान हो पर विचार उल्टा हो, विवेक साथ न हो तो सही ज्ञान नही है।

एक बुढ़ियाके दो लड़के थे। दुर्भाग्यसे उन दोनों लड़कोंकी आंखोंमें रोग था। एक को कुछ कम दीखता था और एकको ज्यादह दीखता था पर पीला दीखता था। दोनों बच्चों को बुढ़िया वैद्यके पास ले गयी। वैद्यने दोनोंकी एक ही दवा की। कोई सफेद सफेद भस्मसी थी। कहा कि चांदीके गिलासमें गायके दूधमें इस पुड़ियाको इतनी इतनी खुराक दवा मिला कर देना। दोनों ही ठीक हो जावेंगे। बुढ़िया दवा लेकर गयी, दोनोंको चांदीके गिलासमें गायके दूधमें भस्मको डालकर देने लगी। पहले उस लड़केको दिया जिसको पीला दिखता था। लड़के ने कहा—मां, 'क्या हमीं तुम्हारे दुश्मन हैं? इस पीतलके गिलासमें मूत लाकर जाहरहाल डालकर हमें दे रही हो। हम तो नहीं पीवेंगे। अब उस लड़केको दिया जिसे कम दीखता था। उसने देखा कि चांदीका गिलास है, दूध है, भस्म पड़ी हुई है। उसने उस दवाको पी लिया। उस दवाके पी लेनेसे ही आंखोंका रोग दूर हो गया। जो ज्यादह देखता था, ५० हाथ, १०० हाथ दूर तक देखता था, उसकी उल्टो दृष्टि थी इसलिए दवा नहीं पी और उसे भला नहीं हुआ।

जिसका ज्ञान ज्यादह है मगर प्रयोग व उपयोग उल्टा है तो भला नहीं होगा। मेरा भला तो निजी आत्माके अनुभवसे होता है। जो सही ज्ञान है, जो ज्ञान ज्यादह है पर सही नहीं है तो उससे भला नहीं हो सकेगा। जिसकी अपनी दृष्टि होती है, अपने चरित्ररूप परिणमन की दृष्टि होती है वह ही दृष्टि सही मानी जाती है। ज्ञानी पुरुष यह सोचता है कि जानन ही मेरा काम है। सोने, उठने, बोलने इत्यादिका मेरा काम नहीं है। ये मेरा काम सर्वत्र जानन ही जानन है। केवल जानन ही इस मुझ आत्माका काम है। मैं करूंगा क्या? अरे इस आत्मस्वरूपको उपयोगसे खोल लो। इसको देख लो। देखोगे कि यह आत्मा तो केवल जाननका ही काम कर रहा है। जानन सबमें रहता है। केवल जानन ही मेरा काम करना रहता है। मैं सब ओरसे जानता हूं। सर्वत्र ऐसी ही पद्धति जानन-स्वरूप की है।

ससुराल जाने वाली बहुत सी लड़कियां हंसी खुशीसे जाती हैं। मगर रोना पड़ता है। भीतरसे तो यह होता है कि घर ठीक करना है श्रृङ्गार करना है, यह करना है, वह करना है, कुछ खुशी होती है। मगर यह जानती है कि रोना चाहिए, यही ठीक है। इसी तरह दुकानदार मुनीम ग्राहकोंसे ये बात करते हैं कि तुम पर मेरा इतना दाम गया है। इस तरह मेरा भी कह रहा है परन्तु श्रद्धा यह है कि मेरा कुछ नहीं है, यह सब सेठका है। अरे मेरा यह काम नहीं। मेरी यह ड्यूटी नहीं। यह तो सेठका काम है। और भी देखो विवाह इत्यादिमें पड़ोसकी स्त्रियां बाजा बजानेके लिए आ जाती हैं। गाने गाती हैं, मेरे बना

... परिवार, राम जैसी कौड़ी आदि सो तो ठीक है। अगर कहीं दूल्हाको घोड़ेसे गिरकर टग टूट जाय तो उनको कोई दर्द नहीं होगा और अगर माँ को पता लग जाय तो वह कितना दुःख करती है ? उसके दुःखका ठिकाना नही रहता है।

सो भैया अगर परपदार्थोंको मान लें कि मेरे हैं तो दुःख होगा और अगर यह समझमें आ जाय कि मेरे नहीं है तो दुःख न होगा। मेरा काम केवल जाननमात्र है। ऐसे जाननमात्र स्वरूप वाले आत्माका काम ही केवल जानन है। हे प्रभो, मैं जाननके काममे ही संतोष पाऊं और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

संकल्पेऽजनि संसारो ज्ञाने नश्यति कल्पितः।
निर्विकल्पे रतो भूत्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२८॥

अहा हा, यह सारी दुनिया, यह मेरा सारा संसार संकल्पमे ही उत्पन्न हो गया व कल्पना मिटते ही नष्ट हो गया। यह मेरा है क्या ? संसार केवल कल्पनाओ रूप ही बना हुआ है। कल्पनाओंसे ही यह उत्पन्न हुआ और यहांसे मरकर अकेले ही चला जायगा। मैं इस शरीरमें हूं, यह मेरा है, यह उसका है, इस संकल्पमें ही मैं संसारी बन गया हू। केवल संकल्प ही हो गए हैं। यह मेरा मकान है, यह मेरा परिवार है आदि। जब ये जुदा हो जावें तो फिर दुनिया भरको पता चल जाय। ज्ञानस्वरूप आत्मा इस देहसे निकल जाता है। यह तो सबसे न्यारा है, पर महसूस करता है कि मेरा है, यही तो संकल्प है। यह सारा संसार संकल्पोंमें हो बैठा हुआ है। अरे सारे संस्कार ज्ञान होनेसे ही नष्ट हो जावेंगे।

एक बुढ़ियाका छोटा बेटा मर गया। उसी छोटे बेटेको वह सबसे अधिक प्यार करती थी। जब छोटा पुत्र मर गया तो वह बुढ़िया उसे जलाने नही देती। उसको अपनी छातीसे लगाए रही। उस बुढ़ियाको एक जगह साधु मिला। साधुसे बुढ़ियाने बताया कि महाराज मेरा पुत्र मर गया है, जिन्दा कर दीजिए। साधु बोला कि अच्छा जिन्दा हो जायगा। मगर एक काम यह करो कि जिस घरमें कोई मरा न हो उस घरसे पाव भर सरसोंके दाने ले आओ। बुढ़िया जल्दीसे जल्दी दूसरे घर गयी। बोली कि हमें एक पाव सरसोंके दाने दे दो। घर वाले बोले, हां हां एक पाव नहीं ५ सेर ले लो। बुढ़िया ने पूछा, मगर यह तो बताओ कि इस घरमें कोई मरा तो नही है। घर वाले बोले कि मां हम घर में तो बहुत लोग मर गए। दादा मर गए, भाई मर गया, बहिन मर गयी आदि। बुढ़िया बोली, तो हमें यह सरसों नहीं चाहिए। अब बुढ़िया तीसरे घर गयी बोली, एक पाव सरसों चाहिए। घर वाले बोले हां हां १० सेर ले जाओ। बुढ़िया बोली, मगर यह तो बताओ कि

कोई इस घरमें मरा तो नहीं है। वे बोले, अरे यहां तो बहुत मर गए हैं। इसी तरहसे बुढ़ियाने १०-१२ घर ढूंढ लिए। सभी जगह वही एक उत्तर मिला।

इतना पूछनेके बाद उसके ज्ञान जगा कि अरे सारी दुनियामें यही हाल है। इतना ज्ञान जब बुढ़ियाके जग गया तो वह प्रसन्न हो गयी। वह बोली, कि अरे ये तो सब न्यारे न्यारे पदार्थ है, न्यारेके वियोग होनेका क्या विवाद करना? बुढ़िया प्रसन्नचित्त होकर साधु के पास गयी और साधुको नमस्कार किया। साधुने पूछा, माँ! तुम प्रसन्न दीखती हो, क्या तुम्हारा बच्चा जिन्दा हो गया? बुढ़िया ने उत्तर दिया कि हाँ हमारा बच्चा जिन्दा हो गया बात क्या हुई, आपको सुनाया था पहले कि सारी बातोंमें तीन प्रकार हुआ करते हैं—(१) शब्द, (२) अर्थ, (३) ज्ञान। जैसे पुत्र तीन हैं— शब्दपुत्र, अर्थपुत्र और ज्ञानपुत्र। अगर शब्दपुत्र कहो तो वह यह है जो केवल पुत्र शब्द लिखा हुआ है। अर्थपुत्र वह है जो दो हाथ पैर वाला है। घरमें बैठा हो या कहीं हो और जो पुत्रके बारेमें ज्ञान होता है वह ज्ञानपुत्र है तो हुआ क्या कि बुढ़ियाका पहले ज्ञानपुत्र मरा था और अब वह जिन्दा हो गया साधुसे बुढ़िया बोली कि मेरा तो ज्ञानपुत्र था, ज्ञानपुत्रकी ही मृत्यु हो गयी। वह अब जिन्दा हो गया है। वह तो मेरे अपने आपमें है, वह जीवित हो गया है। सो भाई इस सारे विश्व में मेरा कुछ नहीं है। यह बात सत्य मानो, नहीं तो धोखा ही धोखा है। जगतकी व्यवस्था यह है कि कोई किसीकी चीज बनकर नहीं रहती और न छुड़ाई जा सकती है। तब सोच लो कि बाहरमे मेरा कही कुछ नहीं है। इतना सोच लेनेसे ही क्या बिगाड़ हो जायगा? जैसे बुढ़ियाको ज्ञान आ गया कि यह मेरा ज्ञानपुत्र है वह सावधान हो गयी। सो बोली महाराज मेरा ज्ञान पुत्र जिन्दा हो गया है। मैं भी ठीक हूं, मेरा ठीक करने वाला जगतमें अन्य नही है। यह ध्यान अपने आपमें रमना चाहिए कि मेरा मात्र मैं ही हूं। ये जगतके सारे पदार्थ हमसे छूट जावेंगे मेरा कोई इस जगतमें नहीं है। यह मैं सदा ज्ञानमात्र स्वतः परिपूर्ण हूं। मै जैसा हूं तैसा ही हूं। इस प्रकार सच्ची दृष्टिके बलसे मैं अपने आपमें अपने आपको ज्ञानमात्र अनुभवूं और सहज सत्य आनन्दसे ओतप्रोत होऊं।

परायत्ता परार्थाः स्वायत्तं ज्ञानस्य वेदनम्।
परार्थमें न धावानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२६।।

अपने आपको छोड़कर बाकी जगतके जितने भी पदार्थ है वे पदार्थ क्या आपके आधीन हैं? वे आपके आधीन नही हैं। वे स्वय सत् हैं, उनके चतुष्टयमें उनका परिणमन होता रहता है। वे तो आपके आधीन हो ही नही सकते है। यदि कुछ आपकी इच्छाके अनुकूल हो गया तो वह काकतालीय न्याय है।

जैसे कोई नारियलका पेड़ है, नारियल लगे हुए हैं। एक कौवा नारियलके पेड़ पर उड़ता है। उसके उड़ते समय ही अगर नारियल नीचे गिर पड़े तो ऐसा लोग सोचते हैं कि कौवेने नारियलको गिराया। अरे वह तो अपने आपसे गिर गया है। कौवेके गिरानेसे नहीं गिरा है। एक दफा अगर ऐसा समय आ गया तो बार बार नहीं आता है। कोई कभी आपके माफिक काम बन गया, आपके मित्रजन आपके अनुकूल हो गए, आपके परिवारके लोग आपके अनुकूल हो गए, ऐसी बात तो शायद ही कभी हो जाय, नहीं तो सर्वथा आपके अनुकूल कुछ नहीं होगा। देखो भाई उस नारियलके गिर जानेमें क्या कौवेकी करतूत थी? नहीं, वह तो स्वयं ही गिरा था। मगर लोग कहते हैं कि कौवेके चले जानेसे गिरा। सो भाई परपदार्थ स्वयं परिणमते हैं। जितने भी परपदार्थ हैं, वे किसी दूसरेके आधीन नहीं हैं, बल्कि स्वयं ही अपने आधीन हैं। बड़ों बड़ोंके भी ऐसा नहीं हो पाता कि जैसे वे चाहें वैसा अन्यत्र परिणमन हो जावे।

राम और सीताका कितना बड़ा स्नेह था, कोई प्रमाण दे सकता है? राम जानते थे कि सीता निर्दोष है। धोबीके द्वारा कही बात फैल गयी थी। जब रामने यह बात सुनी तो सीताजी को जंगलमें छुड़वा दिया। राम यद्यपि जानते थे कि सीता निर्दोष है फिर भी कहते हैं कि लोक धर्मकी मर्यादा रखनी चाहिए। लोग कुछ अनीति न ग्रहण करें, यह सोचकर ही उन्हें जंगल भेज दिया था। तो भाई देखो सीताके आधीन राम भी नहीं हुए। सीताका इतना स्नेह था फिर भी सीताके मन माफिक कुछ न हुआ।

जिन लड़को बच्चोंसे तुम प्रेम करते हो, वे आज्ञाकारी भी हैं, फिर भी वे अपने विषयकषायोंके लिए रहते हैं। वे अपने स्वार्थके लिए ही आज्ञाकारी बने हुए हैं। वे मेरे आधीन नहीं हैं। भाई कोई किसीके आधीन नहीं हैं। वे स्वयं ही परिणमते रहते है। मेरे आधीन मेरा ज्ञानस्वरूप है। मैं अपने ज्ञानस्वरूपको जानूं तो मेरी रुकावट करने वाला कोई नहीं है। हम ही स्वयं विषयकषायोंमे पड़कर अपने ज्ञानमें रुकावट पैदा करते हैं। बाहरी पदार्थोंमें पड़नेसे ज्ञानकी रुकावट होती है। कभी किसी चीजकी इच्छा हो जावे कि अमुक चीज खा लें, अमुक चीज खा लें। न जाने कौन विघ्न आ जाएँ कि वह चीज कहीं न मिले। भाई परपदार्थोंके संयोगमें नाना विघ्न होते हैं। अपने आपके ज्ञानस्वरूपमें विघ्न नहीं होते हैं। अपने आपके शरीरका अनुभव करें तो करें और अगर न करें तो न करें। बाह्य पदार्थों के ख्यालको भुला देवें। विश्रामसे बैठें तो अपने ज्ञानका अनुभव सुगम हो जायगा।

भैया! मेरे काममें दूसरे पदार्थ कोई बाधा नहीं डाल सकते है। हम स्वयं अपने कामोंमें बाधा डाल लेते हैं। जैसे बाय वाला पुरुष खुद ही खटियासे उठकर बाहरको भागता

है। इसी तरह विषयकषायोंकी वेदनासे हटकर बाह्यमें आगते हैं। बाह्य के उपयोगसे ही विषयकषाय बन गए और दूसरी बात नहीं है। अरे तू तो अत्यन्त स्वाधीन है। तू अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव तो कर। लौकिके व्यवहारकी सारी बातें पराधीन हैं। स्वाधीन तो केवल अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव है। लेकिन देखो जो स्वाधीन बात है, सरल बात है, सुगम बात है, निर्विकल्प बात है उसकी ओर तो दृष्टि ही नहीं जाती। जो पराधीन है, दुर्गम है, जिनमें विघ्न ही भरे होते हैं. ऐसे बाह्य पदार्थोंके संयोगके लिए कमर कसे हैं? भैया! अपनेको ज्ञानानन्दमय स्वयं सर्ववैभव सम्पन्न समझकर बाह्यपदार्थोंको अपने उपयोगमें न लाकर अपने आपमें ही विश्राम पाकर अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊँ।

राज्ये क्लेशः क्षणं यत्नं भिक्षावृत्तौ तु तत्वतः।
तत्त्वं हि नोभयत्रास्ति स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३०॥

देखो राज्यमें महान् क्लेश हैं। राज्यका मतलब केवल राज्यसे न लो। राज्यका मतलब दुकानसे, व्यापारसे, आजीविका इत्यादिसे है। ये सब बाहरी बातें हैं। इनमें पड़ने से क्लेश ही क्लेश है। भाई करोड़ों रुपयोंका धन एकत्रित कर लें तो उससे भी क्लेश ही क्लेश हैं। धन कमानेमें, रोजगार करनेमें, राज्य करनेमें, हुकूमत करनेमें देखो कितने क्लेश हैं। अनन्त क्लेश उन्हें हो जाया करते हैं। अब योगी संन्यासियोंकी भिक्षावृत्तिको देखो, कोई पुरुष ज्ञान उत्पन्न करके अन्तरसे विरक्त हो जाय, अपने ध्यानमें लीन हो जाय, वह योगी संन्यासी है। उसे कभी क्षुधा लगे तो उसे क्लेश नहीं होते। क्योंकि जब भूख लगे तब वह बच्चोंकी भाँति एषणाको निकालता है। वह किसी गाँवमें निकल जाय, यदि कोई आदरसे बुलाए, कुछ खानेको मिल जाय तो खाले, नहीं तो संतोष करे, यही भिक्षावृत्ति कहलाती है। भिक्षावृत्तिमें केवल क्षणमात्रका यत्न है। फिर भी तत्त्व इन दोनोंमें भी नहीं हैं।

बड़े बड़े राजा महाराजा २४ घण्टे क्लेश ही उठाया करते हैं पर एक संन्यासी मुश्किलसे पौन घंटेमें ही अपना काम कर लेता है। उसे कोई क्लेश नहीं होते हैं। ऐसा काम तो वे ही कर सकते हैं जिनके पास हिम्मत है। आहार मिले तो ठीक है और न मिले तो ठीक है। दोनोंमें राजी होवे तो काम चलेगा नहीं तो नहीं चलेगा। भाई भिक्षावृत्तिसे तो क्लेश नहीं होंगे पर बड़े बड़े धन वैभवके होनेपर क्लेश ही रहेंगे। परन्तु परमार्थसे शांति न तो भिक्षावृत्तिमें है और न धन वैभवसे है वरन् अपने अपने ज्ञानस्वरूपके दर्शनमें है। भाई जब ज्ञानका अनुभव हो तभी स्वाधीनता है। जब इच्छा हो तब ज्ञानका अनुभव कर लो। ये प्रत्येक पदार्थ अगर तुम्हारे संयोगमें है तो वह पराधीनता है। मैं किसी भी धन-वैभव, परिवार इत्यादिके साथ न रहूंगा, क्योंकि ये सब मिट जावेंगे। आज न तो राम ही दिखते हैं, न तीर्थंकर ही दिखते हैं, और न कृष्ण ही दिखते हैं। जो महान् पुरुष

अभी १००-२०० वर्ष पहिले पैदा हुए थे वे भी नहीं दिखते हैं, ऐसी ही जगतकी स्थिति है।

भैया ! देखो जो इस समागममें रहते हैं, समागममें ही मस्त है, उन्हें यह खबर नहीं रहती कि इससे क्लेश होंगे। इन समागमोंसे अचानक वियोग ही होता है। इन समागमोंसे ही बड़े बड़े क्लेश उत्पन्न कर लेते हैं। ये सब पदार्थ जुदा-जुदा हैं; उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, कुछ भी तो गुंजाइश नहीं कि कोई परपदार्थ मेरा हो जावे, मैं तो जाननस्वरूप हूं। जितनी भी चीज हैं वे सब अपने धर्ममें हैं। मेरा किसी भी पदार्थसे सम्बन्ध नहीं है। यदि मेरा उपयोग बाह्यमें होगा तो मुझे सुख नहीं होगा। देखो भैया ! यदि इन समागमोंके बारे में यह विश्वास हो जाय कि इनका वियोग होगा तो उनके वियोगसे दुःख न होगा। जैसे कोई मित्र ऐसा हो कि जिसके प्रति यह ख्याल आ जाय कि यह तो धोखा देने वाला है। ऐसा ख्याल उसका पहिलेसे ही बन गया है। यदि वह मित्र उसे धोखा दे देवे तो उसे ज्यादा दुःख नहीं होगा क्योंकि पहलेसे ही मालूम था। और जिसके प्रति कोई शंका नहीं वह अचानक ही धोखा दे देवे तो उसे बहुत क्लेश होगा। बाहरी पदार्थोंका जो समागम है वह भिन्न है, अहित है, विनाशीक है ऐसा जानूं तो क्लेश न होगा। वस्तुतः मैं तो केवल अपने आत्मा के अन्दर स्थित तत्त्वको जानता हूं। सो मैं ज्ञानमात्र आत्माका अनुभव करके स्वयं सुखी होऊं।

देखो यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानसे ही इसकी रक्षा होती है। सहजस्वरूप आनंद ही इसमें भरा हुआ है। इसमें कोई अधूरापन नहीं है। ज्ञानका नाम ही आत्मा है। आनन्दमय ही यह आत्मा है। कोई पिंडरूप चीज तो मैं नहीं हूं, जो पकड़कर दिखाया जा सके। भैया ! जो मेरा स्वरूप है वह जानन है। इसीके मायने आत्मा है। ज्ञानमात्र भावको छोड़कर अगर हम बाह्यमें झुकें तो दुःख ही मिलेंगे। हम तो बिल्कुल ठीक हैं, हमारेमें कोई कमी नहीं है। मामला बिल्कुल तैयार है। खाना बिलकुल तैयार है, खाओ चाहे न खाओ, यह तुम्हारे विवेककी बात है। सारा मामला तैयार है, मगर तुम इस अपने आत्मस्वरूपको नहीं देखते हो। अरे ये बाह्यपदार्थ जो मेरे कुछ नहीं है, जिनसे मेरा कोई ताल्लुक नहीं है, अपने स्वरूपको न देखकर उन बाह्यमें दृष्टि लगनेसे बरबादी ही बरबादी है। उन्हींकी ओर झुकना यह अपने प्रभुपर अन्याय है। अगर अपने स्वरूपको देखना चाहो तो देखो और अगर न देखना चाहते हो तो न देखो, यह तुम्हारे विवेककी बात है। अधूरापन तो कुछ है नहीं। मामला तो पूर्ण बनाबिसे है।

परस्थितेः परं स्थानं पराभावो हि स्वस्थितेः।
तत्त्वं तु नोभयमास्ति स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३१॥

जिस पदार्थमें यह जीव अपना उपयोग देता है वही पदार्थ इसको मिल जाता है। कभी बैठे बैठे अनुभव किया होगा कि कोई नींबू बड़ा हो एक आनेका एक वाला, उसकी छोटी-छोटी फांकें करो। ऐसा उपयोगमें सोचो और उसके स्वभावकी कल्पना करो तो नींबू की खटास गलेमें उतरती है। जिसे कहते हैं कि मुंहमें पानी आ जाता है। तो क्या आपने नीबूके रसका स्वाद लिया, इसलिए गलेमें खटास आयी। नहीं, नींबूके प्रति ज्ञान किया, ध्यान किया तो उससे गलेमें खटास आयी। बाहरमें से इस आत्माको कुछ नहीं मिलता। स्वयंमें ही कुछ मिलेगा। क्या मिलेगा ? जो सोचोगे वह मिलेगा। वह अपने ज्ञानकी चीज है। पदार्थोंमें लोग मान लेते हैं, परपदार्थोंके उपयोगसे कुछ नहीं मिलता है। केवल अपना ज्ञान परपदार्थोंके जाननेमें लगता है सो उसके लगानेसे स्वयमें ही कुछ मिलता है। मेरा आत्मामें किसी चीजका प्रवेश नहीं है। परपदार्थोंके उपयोगसे तो परस्थान ही प्राप्त होता है और निजके उपयोगसे परका अभाव होता है। इसने तो बाहरी पदार्थोंको सोच लिया तो खुदका उपयोग नहीं रहेगा। अपने आपको यदि सोचो तो परिणाम अच्छा रहेगा। अब यह विवेक कर लो कि कहाँ उपयोग लगाना चाहिए ? अगर इज्जत चाहोगे तो मोहमें फंसे रहोगे। मोहमें फंसनेसे पराधीन रहना पड़ेगा। परमें लगनेसे देख लो लाभ है क्या ?

भय्या ! परपदार्थोंसे कोई लाभ नहीं है। अरे समागममें फंसा रहा तो पराधीन होना पड़ेगा। सब अपनी-अपनी भावनाओंसे परको आधीनता का विकल्प करके रहते। ये सब एक ही जगह पर न जानें किस किस गतिसे आकर एक ही जगह पर इकट्ठा हो गए है। किसी दिन ये सब यहांसे चले जावेंगे। इस भवमें जिससे जन्म लिया है, क्या यहाँ कोई रह जावेगा ? नहीं, इस जगतके प्राणी अपने अपने सत्से हैं, अपने आपमें ही परिणमते रहते हैं। उनसे किसी भी पदार्थका रंचमात्र भी सम्बन्ध नहीं है। वे सब इस जगत्में स्वयं ही आये हैं और स्वयं ही विमुक्त हो जावेंगे। देखो यह पर्याय ही मिटेगी। सत् तो शाश्वत् ही रहता, मगर उसे जानता बिरला ही कोई है। इस जगतमें कोई किस गतिसे आया है, कोई किस गतिसे आया है। कितना समय इन प्राणियोंका यहाँ गुजर गया। इस संसारमें प्राणियोने अपने विवेकको भुला दिया है। इस संसारके समागमोंको अपना लिया है। अपने को समागममें ले जानेमें कोई विवेक नहीं है। इन सब समागमोंसे हटकर मैं अपने उपयोग को अपने ज्ञानमात्र, ज्ञायक स्वरूपमें लगाऊँ, यही विवेक है। मैं निज जाननमें ही रमूं, यही प्रभुका दर्शन है। अपने सत्यका आग्रह हो तो सत्यका दर्शन होगा ही।

एक कथानक है कि एक पंडित जी थे। उनके पास कुछ गायें भैंसे थीं। पंडित जी ने उन गायो भैंसोंको चरानेके लिए एक ग्वाला रख लिया। ग्वाला भगवान्का भक्त था।

एक दिन उसने एकादशीका व्रत किया। भगवान्का भोग लगानेके लिए अपने मालिकसे कुछ आटा माँगा। पंडित जी ने उसे आधा सेर आटा दे दिया। ग्वाला सोचता है कि इतनेमें हम खावेंगे और भगवान् खावेंगे तो दोनों ही भूखे रह जावेंगे। उसने सोचा कि क्या करें पंडित जी ने इतना ही दिया। आधा मैं खा लूंगा और आधा भगवानको खिला दूंगा। अब उसने उस आधा सेर आटेकी चार बाटियाँ बना लीं। अब भगवानको वह देखता है कि आते ही नहीं। देखो भाई उसने सोच लिया था कि पहले भगवान्को खिलाऊंगा, बादमें मैं खाऊंगा। बोला—भगवान जल्दी आवो हमें तो भूख लगी है। सो भैया! कोई व्यन्तर देव कौतूहल करते फिरा ही करते हैं सो कोई व्यन्तर भेषमें आ गया। ग्वाला बोला—भगवन्, यह लो खाना इतना ही है। आधा ही तुम्हें मैं खाना दूंगा! अपना आधा हिस्सा मैं ले लूंगा। भगवानवेषी बोले कि अब हम तो दो जने आवेंगे। अब दूसरी एकादशीको भी पंडितजी ने वही आधा सेर आटा दिया। उसने तीन बाटियाँ बनायीं। वे दोनों एकादशीके दिन आ गए। ग्वालेने कहा कि आज तो इतना ही है सो जो हिस्सा बैठे सो खा लो। मैं अपना तिहाई हिस्सा ले लूंगा और दो तिहाई तुम दोनोंके लिए रहेगा। दोनोंने भोजन किया। जाते समय भगवानवेषी कह गए कि अबकी बार बीस जने आवेंगे। ग्वाला बोला—कितने ही आवो, जो हिस्सा बैठे सो ही मिलेगा। तीसरी एकादशीको ग्वाला पंडितजी से बोला कि अब २० जने आवेंगे सो काफी भोजन रख दो। पंडित जी ने कहा कि हम तो रोज भोग लगाते कोई नहीं आता, देखें इसके पास कैसे आते हैं। पंडित जी ने २५ सेर मिठाई दे दी। ग्वाला जंगलमें आग्रह करके बैठ गया। लगभग २० सेरका सामान ग्वालेने तैयार कराया था सो बोला—भगवान जल्दी आवो, खावो खूब चकाचक काम है। वहाँ तो २० आदमी आ गये। ग्वालेने कह दिया कि आज तो भर पेट खावो। पंडितजी छुपकर देखते रहे।

देखो भाई ग्वाला सत्यका आग्रह लेकर बैठा था कि पहले मैं भगवानको खिला दूंगा, फिर बादमें मैं खाऊंगा। इसलिए भगवान न सही तो किसीने भी प्रत्यक्ष तो दर्शन दिए।

मैं अगर सत्य का आग्रह करके रहूं कि मेरा ज्ञानस्वरूप एक सत् पदार्थ है, मैं ज्ञानमय हूं, मेरा प्रभु मैं ही हूं, मेरा अन्यसे कोई वास्ता नहीं है। मैं यथार्थ रूप हूं, नाना रूपोंमें नहीं हूं। मेरा काम तो केवल जाननका है, मैं अपने ज्ञानतत्त्वमें रहता हूं। ऐसा यदि सत्यका आग्रह होगा तो यहीं बैठे ही अपने प्रभुका दर्शन होगा। अन्यथा अपने प्रभुके दर्शन होना असम्भव है। मैं अपनेको यह विश्वास न करूँ कि मैं बाल-बच्चों वाला हूं, परिवार वाला हूं, नष्ट हो जाने वाला हूं, पराधीन हूं। ऐसे विचार यदि होंगे तो ये तो खोटे विचार हैं, खोटे परिणाम हैं, मोह है, मिथ्यात्व है। इस प्रकारका असत्यका आग्रह करनेसे अपने निज प्रभुका

दर्शन नहीं हो पायगा। आजीवन क्लेश ही नजर आवेंगे। इस प्रकारके यदि विचार रहे तो संसारमें रुलना ही पड़ेगा।

भाई! अपना शुद्ध आग्रह करो तो भला होगा नहीं तो भला नहीं होगा। परपदार्थों का आग्रह करनेपर अशांति प्राप्त होगी, अपने आत्मस्वरूपका अनुभव नहीं हो पायगा। अपने उपयोगमें लगनेसे ही भलाई है। मैं अपने आपके स्वरूपमें ही अपना उपयोग ठहरानेकी को-शिश करूं तो मेरा कल्याण होगा अन्यथा नहीं होगा। जैसे कहते हैं ना कि वहां न जाओ, वहांपर क्लेश ही क्लेश है। ऐसे ही परपदार्थोंमें न जाओ वहां विपदा ही विपदा है। तो मैं आत्मा अपने आपके सत्यके आग्रहको ठहरानेकी कोशिश करूं और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

मैं संकल्प विकल्पोंको दूर करूं तो मेरा कल्याण होगा अन्यथा नहीं। जैसे कहते हैं ना कि कौवेके कोसनेसे ढोर नहीं मरते। जैसे कौवा मांस खाना चाहता है तो कौवेके कोसने से क्या गाय मर जायगी? इसी प्रकार मेरे सोचनेसे क्या परका वैसा परिणमन होगा? नहीं। सो मैं अपनेको अपने उपयोगमें लगानेकी कोशिश करूं तो शांति प्राप्त हो सकती है। इस आत्मामें किसी बाह्य चीजका प्रवेश नहीं। मेरा आत्मस्वरूप ही मेरी दृष्टिमें रहे जिससे मैं अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

जनौघे वाङ्मन: कर्म एकाग्र्यावसरो बने।
तत्त्वं तु नोभयत्रास्ति स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३२॥

मैं कहां रहूं तो सुख हो सकता है। इस प्रश्नके कितने ही उत्तर हो सकते हैं। बहुतसे मनुष्योंके बीचमें रहे, मित्रमंडलीके मध्यमें रहें; सब लोगोंके अनुकूल अपने आपको बनाए रहें; उन सबसे मिल जुल कर रहें, सबकी वाणी सुनें तो सुख मिलेगा, यह भी एक उत्तर हो सकता है। परन्तु यह उत्तर गलत है, सो स्पष्ट ही है। मनुष्योंके मध्यमें रहने पर मन, वचन कायकी चेष्टा तो करेगा ही। जब बहुतसे मनुष्योंके बीचमें है तो मनुष्योंसे वचनोंसे बोलेगा ही, मनसे सोचेगा ही, शरीरसे चेष्टाएं करेगा ही, अन्यथा मनुष्योंके बीचमें रहनेकी वृत्ति बने ही क्यों? फिर कहां रहा जाय तो सुख हो सकता है। तब तो जंगलमें ही रहा जाय, जहां पर कोई नहीं है, तब मन, वचन, कायकी चेष्टाएं न आवेंगी। ध्यान को एकाग्रचित्तमें रखनेका अपनेको अवसर मिलेगा। उस वनमें भी रहकर क्या लाभ उठा सकेगा कोई? जिसका उपयोग अपने स्वरूपमें नहीं लग सकता। वह बाहरमें बहुतसे विकल्प किया करेगा। यहां अमुक अमुक सुविधाएं नहीं हैं। इसी तरहके कितने ही विकल्प बनाए जा सकते हैं। ये वनके बीचमें बैठे ही मित्रोंका ख्याल कर, घरका ख्याल कर दुःखी

रह सकते हैं।

जैसे एक कथानक आता है कि पुष्पडाल मुनि पूर्वमित्र श्री वारिषेण मुनिको आहार कराकर पहुंचाने गए, बन तक पहुंच गए। वहां मित्र जैसी वृत्ति बनाकर आत्मकल्याणका भाव हो गया। वे मुनि हो गए। साधु होते हुए भी पुष्पडालके यह चिन्ता रही कि मेरी स्त्री (जो कानी थी) अब वह क्या कर रही होगी? बनके अन्दर रहकर भी विकल्प बनाया तो बनमें रहना किस कामका है? तब फिर कहां रहा जाय? मनुष्योंके समुदायमें रहते हैं तो वहां भी दुःख हैं और अगर जंगलमें रहते हैं तो वहां भी दुःख हैं। तब फिर कहां रहा जाय तो सुख हो सकेगा। निज तत्त्वमें। अपने आनन्दकी बात दोनों जगह नहीं मिलती। तब फिर आनन्द कहां मिले। आनन्द तो अपने आपमें मिलता है, अन्यत्र नहीं मिलता है। निर्जन स्थानमें रहना एक सहायक वातावरण है। निर्जन स्थानमें आत्मतत्त्व मिलता ही हो ऐसी बात नहीं है।

आत्मतत्त्व तो अपने ज्ञानस्वरूपमें मिलता है। तब मैं कहां रहूं तो सुख हो सकता है। भाई! अपने ज्ञानस्वरूपको ही उपयोगमें लाऊं तो सुख हो सकता है। वह मेरा स्वरूप क्या है? वह स्वरूप क्या वह है जो कि मैं मिट जाऊं? कोई यह नहीं चाहता है कि मैं मिट जाऊं जो मिट जाने वाला है वह मैं नहीं हूं। मैं कहीं ले जाया जाऊं ऐसा किसीसे बंधा हुआ नहीं हूं। मेरा मिटनेका स्वभाव नहीं है। मैं वह हूं कि कभी नष्ट नहीं हो सकता मैं कभी नष्ट नहीं हो सकता वह मैं क्या हूं? विचार कीजिए—क्या ये पर्याय जो अनेक द्रव्य कहलाते हैं वह मैं हूं। पशु, पक्षी, जीव जन्तु, कीड़े मकोड़े, पेड़ पौधे इत्यादि क्या मैं हूं? अरे ये भी मिट जाने वाले हैं। मैं मिट जाने वाला नहीं हूं। तो अन्दरमें जो सूक्ष्म स्कन्ध भरे हुए हैं, कार्माणशरीर, विस्रसोपचय, मन, वचन, काय इत्यादि क्या मैं वह हूं? वह पर है, भिन्न है, मैं भिन्न हूं, स्वयं हूं। तब क्या मान, माया, मोह, लोभ इत्यादि मैं हूं? अरे ये सब मैं नहीं हूं। ये सब तो नष्ट हो जाने वाली चीजें हैं। चीजोंका जो स्वरूप है वह चीजोंके संकटके लिए नहीं होता। विषयकषाय इत्यादि जो विकार हैं उन रूप क्या मैं हूं? नहीं, उन रूप भी मैं नहीं हूं, ये विषयकषाय इत्यादि तो मेरे दुःखके लिए ही हो रहे हैं। यह परिणाम मेरा नहीं हैं क्योंकि ये सब मिट जाने वाले हैं। दूसरे मेरे संकटके लिए हों ऐसी बात नहीं है। मेरे लिए मैं ही सब कुछ हूं। फिर जो भिन्न चीजोंसे ज्ञान हुआ? फुटकर ज्ञान हुआ तो यह जाननस्वरूप है क्या? ये भिन्न भिन्न चीजें तो मिट जाने वाली होती हैं। यह चौकी है, यह अमुक चीज हैं।

भैया! जो मिट जाने वाला है वह मैं नहीं हूं। जो बाह्यकी जानकारियां हैं वह

भी मैं नहीं हूं। तब फिर मैं क्या हूं? जो निजस्वरूप भगवान्का ज्ञानस्वरूप है वह मैं हूं। पूर्ण विकासरूप केवलज्ञान पर्याय भी मै नहीं हूं। अन्यकी तो बात ही क्या कहें? यद्यपि यह पूर्णविकासमय तत्त्व मेरे स्वरूपमें विकासमय है तथापि सूक्ष्मदृष्टिसे देखो वह विनाशीक है। प्रतिक्षण सदृश परिणमन होता रहता है।

जैसे एक दीपक ८ बजे जलता है, ९ बजे तक दीपक जला। देखने वाले लोग कहते है कि दीपकने वही काम किया जो ८ बजे किया। सवा आठ बज गए, साढ़े आठ बज गए, पौने नौ बज गए; नौ बज गए, वही काम दीपक कर रहा है। अरे वह एक समान परिणमन है पर प्रकाशमय परिणमन तो न्यारा न्यारा है। प्रत्येक तेलकी बूंदोंसे अलग अलग परिणमन होता है। मगर लगातार बूंदोंका परिणमन चल रहा है। परिणमन प्रत्येक बूंदका न्यारा न्यारा है। और काम सब बूंदोंका प्रकाश देना होता है। प्रकाश समान हो रहा है और नया नया हो रहा है। प्रत्येक बूंदका खर्चा हो रहा है और काम हो रहा है।

इसी तरह ज्ञानका काम जानन है। नया नया परिणमन है। अब तो मैं चेतनस्वरूप वाला हूं। मैं वह तत्त्व द्रव्य हूं जिसका परिणमन लगातार चलता रहता है। जानन चित् स्वभावमात्र मैं आत्मतत्त्व हूं—ऐसा विचार यदि मैं बना लूं तो सुखी हो सकता हूं। और अगर अपने स्वरूपसे बाहर दृष्टि रहे तो जगह जगह विपत्तियां हैं। जगह जगह क्लेश हैं सो अपने आपके स्वरूपमें ही मेरा सर्वस्व नजर आए, अपने आपके प्रभु पर ही विश्वास हो तो मुझे आनन्द है। बाह्यपदार्थोंमें विकल्प कर लेना यह ओछी बात है। जिन पदार्थोंसे लेना देना नहीं, जो अपना अस्तित्व जुदा रखते हैं उनसे दृष्टि लगाकर यह प्राणी एक जगह बैठे बैठे हो व्यर्थकी कल्पनाएं कर लिया करता है। अरे बाहरके पदार्थ तो असार होते हैं। उनमें कोई सार नहीं होते हैं। उनमें पड़नेसे कोई लाभ नहीं है। मैं इन बाह्यपदार्थोंसे परमाणुमात्र भी सम्बन्ध नहीं रखता हूं। भाई! यह है सम्यक्त्वकी बात। यदि सम्यक्त्व हो गया, सम्यग्दर्शन हो गया तो अपना भला होगा। भला करने वाले पुत्र मित्र परिवार आदि कोई नहीं होंगे। इनसे सम्बन्ध बना लेने से तो क्लेश ही रहेंगे। वे हमारे तड़फानेका कारण ही बने रहेंगे। ये मेरी शान्तिके कारण नहीं हो सकते हैं। आत्मशांतिका कारण तो अपने आपके स्वरूपका परमात्मतत्त्व है। ऐसी दृष्टि अगर बन जाय तो सम्यग्दर्शन है। ऐसा सम्यग्दर्शन है तो मनुष्यका जीवन सफल रहेगा, अन्यथा जीवन सफल न हो सकेगा।

इस प्राणीका धर्मके कारण ही महत्व है। यदि धर्मशील न हों तो मनुष्योंसे पशु पक्षी ही श्रेष्ठ हैं। धर्मशील होनेके कारण ही मानवकी प्रशंसा है। मनुष्यकी श्रेष्ठता तो केवल धर्मके ही कारण है। मनुष्यकी चाम किसी काममें आती है? बतलाओ। मनुष्यका कोई

भी अंग क्या किसी काममें आयगा ? मनुष्यका शरीर भी किसी काममें नहीं आएगा। इन मनुष्योंको मन, वचन, काय आदि मिल गये हैं, कुछ साहित्यिक ढंग आ गये हैं, कुछ बोलने-चालनेका ज्ञान आ गया है, इसमें छल करनेकी निपुणता हो गयी है। जो कोई ज्ञानकी बात नहीं जानते हैं वे विकास नहीं कर पाते हैं। इस मनुष्यका तो पता ही नहीं कि वह कैसा है ? मरखना बैल तो मालूम हो जाता है, इसलिए १०-२० हाथ दूरसे निकल जाते है, पर इस मनुष्यका पता ही नहीं कि यह कब क्या कर दे ? मनुष्यकी श्रेष्ठता केवल धर्मके कारण है। धर्म कहीं बाहर नहीं होता है। धर्मसे बाहर रहनेपर दुःख ही दुःख हैं, बाहरकी जितनी कल्पनाएँ होती हैं वे सब धर्मके पोषणके लिए हैं। भगवान्‌की पूजा अथवा शास्त्रोंका पढ़ना, उपदेश सुनना, सत्संगको जाना, धर्मके काम करना तथा जीवोंके प्रति दयाका भाव होना ये सब आत्मविकासके बाधकोंको दूर करनेके लिए हैं। धर्म है वीतराग परिणाम। सारी विपदायें इस धर्मसे ही दूर हो जाती हैं। ऐसी योग्यता रहे, ऐसे धर्ममें रहे तो यही धर्म है, हाथ जोड़ना धर्म नहीं। पर हाथ जोड़नेके लायक रहेगा तो धर्म हो सकता है। अपने धर्मकी ओर झुकाव हो तो सुख हो सकता है।

ज्ञानदृष्टौ क्व मोक्षाध्वा, क्वार्थः कामः क्व धर्मकः।
सहजानन्ददृष्टिः सन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३३॥

ऐसी ज्ञानदृष्टि यदि होगी कि मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हूं, इसमें न पिंड हैं, न कोई पकड़नेकी चीज है, यह न चखनेकी चीज है, न सूंघनेकी चीज है, यह तो एक जाननमात्र है, जानन ही इसका स्वरूप है, ऐसा मैं एक सत पदार्थ हूं, ऐसे जाननकी जिसमें शक्ति आ गयी उसको मोक्षका मार्ग प्राप्त हो सकता है। मोक्षके मार्गको खोजनेमें कष्ट कहाँ हैं ? वह तो मोक्षमार्गमें स्थित है और आनन्दमय वर्तता है। ऐसा न सोचो कि मोक्षमार्ग कहाँ है ? कहाँ चलूं ? ज्ञानदृष्टि कीजिए, इससे ही आनंदका अनुभव है। ज्ञानके उदयके साथ आनन्दका अनुभव अविनाभावी है।

एक वेदान्त कथा टीकामें आती है कि सास बहू थीं। बहूके गर्भ था बच्चा होनेको था। अब बहू घबड़ा गयी कि बच्चा होनेमें तो बड़ी तकलीफका काम है। किसी किसीकी तो जान भी चली जाती है, सो बहू बोली—माँ जब बच्चा हो तब जगा देना। सास बोली कि बेटी घबड़ाओ नहीं, जब बच्चा होगा तो वह जगाता हुआ ही होगा। किसी दूसरेको जगाने की जरूरत नहीं है। सो जब सत्य ज्ञान उत्पन्न होता है तो शुद्ध आनन्दको जगाते हुए ही पैदा होता है। ज्ञान मुझे सही हो जाय और फिर आनन्दकी खोजमें रहे ऐसा होता ही नहीं है। यदि ज्ञान कर लें और सुख न मिले तो ऐसा होनेकी शंका ही नहीं है। सही ज्ञान

है तो आनंद अवश्य है । ज्ञान तो वही है जिसमें मोह न हो । जिस ज्ञानमें मोह हो वह ज्ञान नहीं है । चाहे सत्य ज्ञान ले लो, चाहे मोहके थपेड़े सह लो ।

मैं अमुकचंद हूं, मेरा काम ठीक चलता रहे, मोहका काम भी मेरा चलता रहे, घरका काम भी चलता रहे और मोक्षका मार्ग भी मिल जाय सो दोनों काम नहीं हो सकते। इन मोहके थपेड़ोंमें सार नहीं । मोहदृष्टि हटते ही सर्वप्रकाश हो जाता है । मोह दूर होनेपर ही राग दूर हो सकते हैं । मोहका काम अलग है और रागका काम अलग है । मोहका काम यह है कि इससे अपनेमें और दूसरेमें भेद नहीं नजर आता है । यह तो हुआ मोहका काम । रागका काम यह है कि पदार्थ सुहावना लगता है । ये जीव जितने हैं सब भिन्न हैं । फिर भी परिस्थिति ऐसी होती है कि राग करना पड़ता है । इस रागका काम बेवकूफीसे होता है । मोहको दूर करनेपर राग कब तक रहेंगे ? जैसे वृक्षकी जड़ काट देने पर वृक्ष कब तक हरा रहेगा ? वृक्ष हरा नही रह सकता है । रागसे मोहसे पूरा नहीं पड़ेगा इनसे सुख नहीं हो सकता है । अंतमें इन्हें छोड़ना ही पड़ेगा । अगर शुद्ध आनन्द मिलेगा तो राग मोह आदिको छोड़कर ही मिलेगा ।

भैया ! जब घरमें तुम्हारा भाव रहता है तो धन वैभव, ईंटें पत्थर, दो चार लोगों में ही तुम फंसे रहते हो, उन्हें तुम अपना समझते हो । अरे कोई ऐसी व्यवस्था है जिससे कहा जाय कि यह आपका घर है, यह आपकी वस्तु है । आप कहते हैं कि मेरा घर है, कोई कानूनी गुन्जाइश ऐसी निकले कि यह मेरा ही घर है तो बताओ । हम आत्माके कानून की बात कर रहे हैं, नगरमहापालिका की बात नहीं कर रहे हैं । अब कौन सी ऐसी उक्ति है कि आप कह सकें कि यह मेरी पूंजी है, यह मेरा घर है । अरे इस ज्ञानस्वरूप अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके चतुष्टयमें रहने वालेका इस ज्ञानस्वरूपसे बाहर कुछ वास्ता नहीं है, कुछ ताल्लुक नही है । मोहकी नींदमें ही लोग कहते हैं कि मेरा घर है । अरे मोह हट गया तो जीवन सफल है, अन्यथा दुर्गति ही दुर्गति है । फुटबाल की तरह एक लात सहकर दूसरी जगह भग गया, दूसरी जगहपर लात सहने पर फिर दूसरी जगह चला गया । फुटबाल है किस लिये ? वह लातें सहनेके लिए है । इसी तरह हम और आप संसारी प्राणी फुटबाल बने रहते हैं । जिसके पास शरणके लिए पहुंच गए वहां भी शरण नहीं है । वहां पर विपदाएं ही विपदाएं हैं । फिर दूसरेके पास शरणके लिए पहुंच गए, वहां भी शरण न मिली । लातें ही फुटबालकी तरह सहता हुआ यह प्राणी नजर आता है । कहीं किसीके द्वारा कष्ट हुआ, कहीं किसीके द्वारा कष्ट हुआ, शान्ति नहीं मिलती है । शान्ति तो अपनी ही निजदृष्टिमें मिलेगी अन्यत्र कहीं शान्ति नहीं मिलेगी । परमार्थदृष्टि होने पर मोक्षमार्ग

प्राप्त होगा। ज्ञानदृष्टि तो सहज आनन्दको लिए हुए है। वहाँ पर न तो विकल्प है और न क्लेश है। ऐसे सहजआनन्दको प्राप्त कर मैं अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

किं कृत्यं क्व रमै चित्तमस्थिरं चाहितं जगत् ।
ज्ञानमात्रे रतो भूत्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३४॥

मेरा यहाँ करने योग्य क्या काम है? मैं अपना चित्त कहाँ लगाऊं? इन दो बातोंकी खोजमें निकलो। मेरा यहाँ काम क्या है? जिसके करनेसे सदाके लिए संतुष्ट हो जाऊं। फिर कोई बाधा ही न रहे। ऐसा करने योग्य काम क्या हैं, बतलाइए।

यह मकान चार पाँच माहमें बन जायगा तो क्या मकान बन जानेसे आपकी समस्त बाधाएं हट जावेंगी? मकान बन जानेसे क्या आपकी इच्छाओंकी पूर्ति हो गयी? क्या मकान बन जानेके बाद बाधाएं न रहेंगी? कौनसा ऐसा काम है जो करलें और सदाके लिए झंझटोंसे मुक्त हो जाएं। इन पंचेन्द्रियोंके विषयोंमें ऐसी कोई चीज है जिसके भोगसे सदाके लिए दुःख मिट जाएं? नहीं। तो फिर क्यों आशा की जाती है कि अमुक बात मिल जाय, कुछ मिल जाय तो क्या कुछ ऐसा है कि जिसके मिलनेसे, करनेसे झंझट न रहे। ऐसा जगत्के परपदार्थोंमें कुछ भी नहीं है कि जिसके कुछ हो जानेसे सारे झंझट खतम हो जाएं।

भैया! सारभूत बात एक निज है। उस एकको दृष्टि हो जाय तो मौज हो जाय। बचपनमें बच्चेको कितनी चाह है, परीक्षा हो जाये, पास हो जाएं डिग्री मिल जाय, अफसर हो जाएं, सब काम हो जावें, फिर यह करना है, वह करना है आदि। कौनसा काम ऐसा दुनियामें है जिसको एक बार कर लेनेसे सारे झंझट न रहें, कौनसे ऐसे पदार्थ हैं जिनको अपना चित्त दे दें, अपने स्वभावको सौंप दें और फिर सारे झंझट समाप्त हो जायें, कोई भी पदार्थ ऐसे नहीं हैं। यह सारा जगत् अस्थिर है, अहितरूप है, कल्याणरूप नहीं है। इन बाह्यपदार्थोंमें उपयोग होनेसे शुद्ध जाननका काम नहीं होता है। अशुद्ध हटे छूटे और शुद्धज्ञान हो जाये तो जाननका काम कभी खतम नहीं होगा। शुद्ध जाननका ही काम ऐसा है फिर और कुछ नहीं करना पड़ता। ज्ञानदृष्टि रहनेपर झंझट नहीं रहेंगे। राग द्वेष में झंझट ही झंझट हैं।

श्री कुन्दकुन्द भगवानने कहा है कि 'जो जीव राग करेगा वह बन्धेगा और जो राग न करेगा वह कर्मसे छूट जायगा।' अतः किसी कर्ममें राग न करो। जिसमें राग नहीं उसमें क्लेश नही व जिसमें राग हैं उसमें क्लेश हैं। रागके फंदमें कष्ट जरूर हैं। क्योंकि जिस कामको वह रागसे करेगा उस काममें वह घुल जायगा। राग यदि नहीं है तो कुछ भी करते रहें क्लेश नहीं हैं। वे तो उस ही प्रत्येक वस्तुकी परिणति है। मेरे अनुकूल बाह्यमें काम

नहीं होता है, तो काममें मैं बाधा मान लेता हूं। उसमें बाधा मानकर मैं दुःखी होता हूं। दुःख न तो मेरे स्वरूपमें हैं और न मेरे ज्ञानका काम है। केवल सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र करने लायक हैं, बाकी सब दुःख हैं। सो सब पदार्थोंसे हटकर मैं अपने में अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होता हूं।

कर्तृत्वं न स्वभावो मे क्रिया एता उपाधितः।
वातवच्छुष्कपर्णस्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३५॥

पदार्थ तो सब अपनी-अपनी सत्ता लिए हुए अलग-अलग हैं। इसी कारण कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थमें परिणति नहीं करता। जैसे मान लिया कि दोनों हाथोंकी अंगुलियोंने किसी सींकको तोड़ दिया तो लोग कहते हैं कि अंगुलियोंने सींकको तोड़ दिया। पर ऐसा नहीं है। सींक स्वयं इस प्रकारकी चेष्टा करती हुई अंगुलियोंका निमित्त पाकर टूट गयी है। अंगुलियोंने तो मात्र चेष्टाकी अपनी। बीचमें सींक थी सो उस संयोगका निमित्त पाकर सींकने अपनी परिणति कर लिया। इसी तरह प्रत्येक जीवमात्र अपने जाननकी चेष्टाएं करेगा, दूसरोंकी चेष्टाएं जानन कभी नहीं करता है। ऐसा सत्य ज्ञान हो तो सम्यक्त्व है। यहांके परपदार्थोंसे क्या कोई वास्ता दीखता है। सम्यक्त्वमें ही आनन्द है। कर्तापनसे मेरा स्वभाव नहीं है। पर यह जीव मानता है कि मैंने किया। जो ऐसा मिथ्या मानता है वह भी परको नहीं करता है। मिथ्यादृष्टिका कर्तृत्व परपदार्थोंके करनेकी मान्यता की दृष्टिसे है। जिसकी जो परिणति होती है उसकी परिणति उसमें ही रहती है। इस जीव में जो कुछ भी कार्य होते है वे सब अपने आप होते हैं। कोई किसीको कुछ करता नहीं है।

जैसे कोई १० हाथकी दूरी पर है। कोई किसीको अंगुली दिखाकर चिढ़ाए तो वह अंगुली देखकर अपने आप ही यह कल्पनाएं बना लेता है कि यह तो मुझे चिढ़ा रहा है। यह देखकर वह दुःखी हो जाता है। चिढ़ाने वाला तो अपने आप ही अपनी अंगुलियां चलाता है पर चिढ़ने वाला अपने आप ही कल्पनाएं बनाकर चिढ़ता है।

तीन चोर थे। चोरी करने गए। एक नया चोर रास्तेमें मिला। वह चोरी करना नहीं जानता था। पर वे सब चोरी करने चले। अब चार चोर हो गए। चारों चोर एक गांवमें जाकर एक बूढ़े आदमीके घरमें घुसे। कुछ देर बाद घरके अन्दर उस बूढ़े आदमी ने खांस दिया। तीन चोर तो भाग गये। एक जो नया चोर था वह भाग न सका। घरमें ऊपर एक टांड़ीमें जाकर बैठ गया। अब गांवके बहुतसे आदमी इकट्ठे हो गए। कोई पूछता था क्या चला गया, कोई पूछता कैसे क्या हुआ? दसों प्रकारके प्रश्न पूछे गए। उस घरके बूढ़े आदमी ने झुंझला कर कहा कि हम क्या जानें ऊपर वाला जानें। ऊपर वालेका मत-

सब वहाँ पर भगवानसे था। पर चोर ने समझा कि मेरे लिए कह रहा है। बोला कि अरे मैं ही क्या जानूं, वे तीन क्यों न जानें ? अब तो वह चोर पकड़ा गया। मारा पीटा गया, सजा दी गयी।

भाई ! कोई हम आपको दुःखी नहीं करता। केवल कल्पनाएं बनाकर ही हम दुःखी हो जाते हैं। दूसरे जीव जो कुछ करते हैं वे अपने आपका करते हैं। उनका किसी दूसरेसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। वे स्वयं ही कल्पनाएं बनाकर फंस जाते हैं। कोई भी पर-पदार्थ किसीको दुःखी नहीं कर सकता है। कहीं आग नीचे जल रही है। ऊपर बटलोईमें पानी रक्खा हुआ है। ऐसी स्थितिमें पानी गर्म हो जाता है तो पानीको आग गर्म नहीं करती पानी स्वयं आगके निमित्तसे गर्म हो जाता है। पर ऐसे संयोगको देखकर लोग कहते हैं कि आगने पानीको गरम किया। पानी स्वयं आगके निमित्तको पाकर अपने ठंडे पर्यायको छोड़ कर गर्म पर्यायमें आ गया। इसीको कहते हैं कि पानी गर्म हो गया तो आगने गर्म किया। पानीमें गरम होने की योग्यता थी। आगका निमित्त पाकर पानी गर्म हो गया।

यदि हाथकी अंगुलियोंकी छाया कहीं पर पड़े तो क्या वह अंगुलियोंकी छाया है ? नहीं। वह तो अंगुलियोंकी छाया नहीं है। वह तो छाया पृथ्वीकी है। अंगुलियोंका निमित्त पाकर वह छाया हो गयी है। वह छाया अंगुलियोंकी छाया नहीं है। उस छायापर अगर चाकू मारी जाय तो क्या कुछ असर अंगुलीपर पड़ेगा ? उस अंगुली पर असर कुछ न पड़ेगा जिसकी छाया है उस पर ही असर होगा। पृथ्वीकी छाया है तो पृथ्वीपर असर होगा। अगर किसीसे पूछें कि यह छाया किसकी है तो कहेंगे कि हाथकी है। पर है क्या हाथकी छाया ? नहीं, वह तो पृथ्वीकी छाया है। इसी तरह यदि किसी पेड़की छायाको देखते हैं तो लोग कहते हैं कि यह पेड़की छाया है। अरे यह छायारूप परिणति वृक्षकी नहीं है, वह छाया तो पृथ्वी की है। केवल पेड़का निमित्त पाकर यह छाया हो गयी है।

और और भी देख लो। दीपकके प्रकाशका निमित्त पाकर कमरेमें पड़ी हुई वस्तुएं प्रकाशित हो जाती हैं। तो क्या वह पड़ा हुआ प्रकाश दीपकका है ? यह बात बहुत मर्मकी कह रहा हूं। यहां प्रश्न हो सकता है कि दीपक निमित्त है, तभी तो ये पदार्थ चमकते हैं। ठीक है पर यह प्रकाश उन वस्तुओंका है जो प्रकाशित हो रही हैं अन्यथा यह बताओ कि दर्पण अधिक क्यों चमकता है ? अन्य घटपटादिक क्यों कम चमकते हैं ? इनमें योग्यता के अनुकूल प्रकाशमय बननेकी सामर्थ्य है। दीपकका प्रकाश निमित्त है और ये सब वस्तुवें निमित्त पाकर प्रकाशित हो गयीं। देखो दीपक अपने आपमें प्रकाशसे जगमग है, जलता है, पर ये पदार्थ उसके प्रकाशकी सम्मुखता पाकर याने दीपका निमित्त पाकर प्रकाशित हो

जाते हैं।

अब और इसके आगे चलो जिसमें बिल्कुल हैरानी हो जायगी। यह सूर्य है, प्रकाशमान चीज है। देखो दिनमें ये सारी वस्तुयें प्रकाशित हो जाती हैं। लोग कहते हैं कि इन वस्तुओंको सूर्यने प्रकाशित किया। परे सूर्य तो अपने प्रकाशमें है। उस सूर्यका निमित्त पाकर प्रत्येक पदार्थ अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार प्रकाशित हो गए। इसकी बढ़िया एक उक्ति यह है कि अगर सूर्य इन पदार्थोंको प्रकाशित करे तो सारी वस्तुयें एकसी प्रकाशित होवें, पर ऐसा नहीं है। कोई वस्तु किसी प्रकार प्रकाशित है तो कोई किसी प्रकार प्रकाशित है। अगर सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशित होते तो एक ढंगसे प्रकाशित होते? अब देखिये दर्पणको। वह भी तो प्रकाशित है, पर उसका प्रकाश अंधकारमें भी प्रावस पहुँचा सकता है तो भाई यह फर्क किस बातका है? सूर्यका निमित्त पाकर ये स्वयं प्रकाशित होते हैं। दर्पण तो तेज योग्यता वाला है, इसलिए यह अधिक प्रकाशित होता है। घटादिक कम योग्यता वाले हैं सो ये कम प्रकाशित होते है। अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार ये पदार्थ प्रकाशित होंगे।

यह वस्तुस्वतंत्रताकी बात कही जा रही है, जो ज्ञानकी मौलिक बात है। दर्पणको आगे करके मुंह देखा गया तो दर्पणमें जो प्रतिबिम्ब छाया रूप है, क्या वह मुंहकी छाया रूप है, दर्पणकी छायारूप है? अगर मुंहकी छाया होती तो हम बिना मुखके हो जाते। क्योंकि हम तो शीशेके अन्दर चले गए। अब अलग जगह हम क्या रहें? सो भैया! वह प्रतिबिम्ब तो दर्पणका है, मुंहका प्रतिबिम्ब नहीं है। हमारा मुंह निमित्तमात्र है। परिणमन दर्पणका है, मेरा नहीं है। पर किसीसे पूछो तो कोई नहीं कहेगा। यह है स्वातंत्र्यवादका सिद्धान्त। इसको बड़ी सूक्ष्मदृष्टिसे देखकर सोचो तो ये परपदार्थ अपने परमाणुवोंके मालिक हैं। परपदार्थ अपना काम करते है। मगर यह वस्तुस्वरूप आवे तो मोह नहीं रह सकता है। मोहसे अगर भगवान् को हाथ जोड़ें तो क्या कुछ मिलेगा? कुछ नही। परवस्तुवोंसे मोह हटाना हो तो हटाओ और अगर न हटाना हो तो न हटाओ। मोहको हटानेके लिए समर्थ जो निजस्वरूपका ज्ञान है? उस निजस्वरूपके ज्ञानसे ही मोह छूटेगा। जब सिद्धान्तकी यह खूबी है कि वस्तुकी स्वतंत्रताका स्वरूप विशद बता देता है। रस्सीको सांप जान लेनेसे बड़ी घबड़ाहट होती है। पर देखो रस्सीको रस्सी जान लेनेसे ही सारे फंद खतम हो जाते हैं। जब ठीक-समझ लिया तब यथार्थज्ञान हो गया।

अच्छा जीव देखो इस दीवारका रंग बता दो। अगर लोगोंसे पूछा जाय तो यही कहेंगे कि दीवार हरी है। अरे दीवार हरी नहीं है, रंग ही हरा है। केवल दीवारोंका आश्रय पाकर यह रंग फैल गया है। इसी तरह सब समझ लो कि भैया! पानीके भीतर आगकी

गर्मी नहीं, इन वस्तुवोंका प्रकाश सूर्यका प्रकाश नहीं है, पृथ्वीपर होने वाली छाया पेड़ोंकी छाया नहीं है, फिर निमित्तनैमित्तिक भावसे भी परे रहने वाले जिसको आप अपना लड़का कहते हो वह आपका कैसे होगा ? दीवारका रंग हरा नहीं है, दीपकका यह प्रकाश नहीं है, पेड़ोंकी छाया नहीं है, तो फिर तुम्हारे बच्चे कैसे हो गए, तुम्हारा परिवार कैसे हो गया ? ये तो बिल्कुल भिन्न चीजें हैं, ये सब एक आफत हैं। बिल्कुल अपनेको यह समझो कि यदि राग द्वेषका धन्धा चल रहा है तो बैरी बैरी आपसमें मिल-जुल गए हैं। देखो एक तो मोहके मारे मरे और दूसरे यहां भ्रम व विकल्पके मारे मर गए।

कहते हैं कि कर्तापनका मेरा स्वभाव नहीं है। ये जो कुछ हो जाते हैं, परका निमित्त पाकर हो जाते हैं। जो सूखे पत्ते उड़ते हैं तो क्या अपने स्वभावसे उड़ते हैं ? नहीं। वे तो हवाका निमित्त पाकर उड़ने लगते हैं। सूखे पत्तोंकी बात कह रहा हूँ जो प्रायः उड़ते रहते हैं। उनका उड़नेका स्वभाव नहीं है। हवा चली और पत्ते अपने आप बाहरमें उड़ने लगे। इसी तरह जब कर्मके उदयका निमित्त होता है तब माया, मोह, लोभ आदि उठ जाते हैं। उस अवस्थामें मोही प्राणीके कर्तृत्वबुद्धि होती है। ऐसी मिथ्या कर्तृत्वबुद्धिको त्यागकर अपने आपके स्वरूपको देखकर मैं अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊँ।

वृत्तिदृष्टौ तपो व्यर्थं निवृत्तौ न क्षतिः कुतः।
शक्तिरेव निवृत्तिश्च स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३६॥

प्रवृत्तिकी दृष्टि रहे तो सब व्यर्थ है। तपस्या भी करे, प्रवृत्तिकी दृष्टि रहे तो उसे मुक्ति नहीं प्राप्त होगी। निवृत्ति होवे तो वहां लाभ ही लाभ है। हम मंदिरमें दर्शन करनेके लिए जाते हैं। वहां यह दृष्टि करना मात्र कि हमारा नित्यका काम है इसलिए जाते हैं सो वह तो प्रवृत्ति हुई और अगर यह दृष्टि रहे कि घरके राग द्वेषको दूर करनेके लिए हम दर्शन करने जा रहे हैं तो वहां लाभ होगा। निवृत्तिसे कोई क्षति नहीं होगी, पर प्रवृत्तिकी दृष्टिसे सब चीजें व्यर्थकी है।

अपनेसे बाह्यपदार्थोंको भिन्न न समझना, वरन् उनमें ही दृष्टि लगानेकी चेष्टाएँ हों तो व्यर्थ है। उनसे लाभ कुछ नहीं मिलेगा।

एक कथानक है कि एक राजाके यहां दो चित्रकार आए। मान लो एक चीनका चित्रकार आया और दूसरा जापानका। दोनों ही चित्रकार राजाके पास पहुंचे। बोले कि महाराज हम बहुत बढ़िया चित्रकारी जानते हैं। राजा बोला कि अच्छा अगर चित्रकारी जानते हो तो हमारे कमरेमें चित्रकारी करो। दोनों बोले कि अच्छा कमरेमें पार्टीशियन कर दीजिए अथवा बँटवारा कर दीजिए, फिर बादमें हम दोनोंको देखना कि कौन अच्छी चित्र-

कारी करता है ? राजाने चित्रकारीके लिए कमरेमें पार्टीशियन करवा दिया। चीन वाले चित्रकारने २०-२५ प्रकारके रंग लाकर चित्रकारी शुरू की। जापान वालेने कुछ घोटे जाने वाले अच्छे मसाले ले लिए। चीन वाला चित्रकार ६ महीने तक रंगोंसे रंगाई करता रहा और जापान वाला मसालोंसे घुटाई करता रहा। अब जब ६ महीने हो गये, दोनों बोले—महाराज बन गया। राजा बोला—अच्छा कल देखेंगे। दोनोंने कहा कि देखना किसकी चित्र- कारी बढ़िया है। पार्टीशियन निकाल दिया गया। राजाने देखा कि जो रंगोंसे रंगा था वह चमकता नहीं था और जो दूसरेको देखा तो उसमें बड़ी ही चमक थी। अब राजा बोला—जिसमें चमक है वह बढ़िया चित्रकारी है।

सो भैया! अपनी दृष्टिको सोचो, दृष्टिको ठीक करो तो ठीक है। हम भगवानके दर्शन के लिए दर्शन करते हैं तो यह प्रवृत्ति हुई। इससे कुछ लाभ नहीं होगा। और अगर रागद्वेष त्यागनेकी दृष्टि हुई तो यह निवृत्ति हुई। अतः यदि मैं निवृत्तिसे देखूं तो लाभ मिलेगा वरना कुछ नहीं मिलेगा। अब आप लोग भोजन बनाते हैं। यदि वहाँ अतिथि साधु जनोंके आहार दानकी दृष्टि है तो इस शुद्धदृष्टि होनेके कारण आप धर्म ही कर रहे हैं। बाह्य वस्तुवोंमें यह दृष्टि न रहे कि यह मेरी वस्तु है, यह उसकी वस्तु है ऐसा परिणाम होनेसे भला नहीं होगा। यदि प्रवृत्तिकी दृष्टि हो तो तप आदिक भी व्यर्थ है और अगर निवृत्तिकी दृष्टि है तो लाभ है।

रस्सीमें जब तक साँपका भ्रम था तब तक घबड़ाहट थी, पर जब रस्सीको रस्सी जान लिया तब घबड़ाहट दूर हो गयी। यथार्थ जानन हो गया तो इसीके मायने निवृत्ति है। यथार्थ बातको जानना ही हटाव कहलाता है। यथार्थ बातको जानकर मैं अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊँ।

परे दृष्टे न दृष्टः स्वः स्वे दृष्टे न विकल्पना।
अविकल्पे न संतापः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३७॥

परपदार्थोंको ही देखो तो निजपदार्थ समझमें नहीं आ सकता है। और निज पदार्थ को देखो तो विषयकषायोंकी कल्पनाएँ नहीं बन सकती हैं, विकल्प नहीं रह सकते हैं। सो जो देखना चाहो वह निर्णय कर लो। अगर निजपदार्थ देखना चाहते हो तो निजपदार्थ देखो और परपदार्थ देखना चाहते हो तो परपदार्थ देखो। अगर अपने आपके पदार्थको देखो तो संकल्प-विकल्प न रहेंगे और परपदार्थ देखो तो क्लेश ही रहेंगे; संकल्प, विकल्प, मान, माया, लोभ इत्यादि ही रहेंगे। अब जहाँ उपयोग लगाना हो सो निर्णय कर लो।

मैं अपने आपमें हूं। मेरेमें किसी अन्य चीजका प्रवेश नहीं है। मैं तो अपनी आत्मा की इज्जत चाहता हूं। आत्माकी इज्जत यह है कि अपने आपका जैसा स्वरूप है वैसी ही

दृष्टि रहे। यही स्वयंकी इज्जत है। परपदार्थोंको देखनेसे बेइज्जती एव दुःख है। परपद को जहां देखो, कल्पनाएँ उन वस्तुओंके प्रति बनी तहां दुःख आ जाते है। जहांपर निर्विक भाव हों वहांपर सुख हो सकता है।

अरे इतनी अवस्था ४०, ५० वर्षकी विकल्पोंमें ही गुजर गयी। क्या परपद तुम्हारे साथमें आवेंगे ? नही। ज्यों ज्यों विकल्पोंमें आसक्ति है। त्यों त्यो आनन्द दूर परपदार्थोंके अनुरागसे विकल्प ही होते हैं। इसलिए भीतरसे यह इच्छा होनी चाहिए मेरा ज्ञानका उपयोग बने किसी परपदार्थको अपने उपयोगमें न लाऊं। अपने आपमें भ ऐसा होना चाहिए कि मैं ज्ञानमें ही रहूं, ऐसी भीतरमें उत्सुकता रहनी चाहिए। यदि भी ख्याल हो कि मैं इस समय ज्ञानस्वरूपमें नही हूं तो भी यही समझिए कि ज्ञानस्व सामने है। जैसे मान लो कि कल जो रसगुल्ले खाये थे वैसा स्वाद आज रसगुल्ले खा नहीं आया। तो ऐसा ख्याल आपका हो जायगा कि जो स्वाद कलके रसगुल्लोंमें था आजके रसगुल्लोंमें नहीं है। इस ख्यालसे बढ़िया रसगुल्ला उसके दिमागमें सामने है।

जैसे किसीसे कहे कि भाई चौकोपर समयसार पुस्तक रक्खी है सो ले आवो। गया वहां पुस्तक नहीं थी सो वह कहता है कि वहां समयसार नहीं है। देखो पुस्तक वहां है भी नहीं, तब भी फोटो उस पुस्तकका उसके सामने आ गया।

जैसे कहें कि भाई तिजोरीमें गहना रखा है, ले आवो। यद्यपि वहांपर गहना है नहीं, तब भी गहनेका फोटो तो आपके सामने आ गया। भाई परपदार्थोंमें आनन्द नही है परपदार्थोंसे अगर मैं आनन्द प्राप्त करता हूं तो वह वास्तविक आनन्द नहीं है। आनन्द तभी है जब कि अपने आपके स्वरूपकी प्रतीति रहेगी तो चाहे बाहरमें भी रहना पड़े, प्रसन्नता बनी रहेगी।

एक कथानक है कि बादशाह और वजीर बैठे थे। बादशाहने कहा कि वजीर अ मैंने एक स्वप्न देखा कि अपन दोनों घूमने जा रहे थे। मार्गमें दो गड्ढे मिले, एक शक्कर और एक गोबरका। मैं शक्करके गड्ढेमें गिर पड़ा और आप गोबरके गड्ढेमें गिर पड़े वजीर बोले—हजूर, मैंने भी स्वप्न ऐसा ही देखा, पर इसके आगे थोड़ासा और देखा कि आपको चाट रहा था और आप मुझे चाट रहे थे। याने मैं तो शक्कर चाट रहा था अ आप गोबर चाट रहे थे।

इसी तरह गृहस्थ लोग गृहस्थीमें पड़े रहते हैं। वे अपने ज्ञानका स्वाद लें। इस उनका क्या बिगाड़ ? इसके लिए ज्ञान ऊँचा होना चाहिए। घर-द्वार, मित्रजन, परिवार सब मोहके निमित्त अर्थात् आश्रयभूत कारण है। स्वयंके स्वरूपको देखनेमें ही कल्याण है

सो अब मैं स्वयंके स्वरूपको देखकर अपनेमें अपने लिये अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

मयि सौख्यं मया मे यत् ज्ञप्तिभिन्नं न साधनम्।
आगृह्णामि कथं वृत्तौ स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१८॥

मेरा सुख मेरेमें है और मेरे द्वारा होता है। क्योंकि 'जितने भी जगत्में पदार्थ हैं वे सब अनन्तशक्तिसे सम्पन्न हैं एवं अपनी-अपनी शक्तियोंके परिणमन ही करते हैं। इसी प्रकार मैं भी एक वस्तु हूं, कैसी वस्तु हूं अद्भुत वस्तु हूँ। ज्ञानानन्दरस निर्भर एक अमूर्ततत्त्व हूँ, जिसके अन्दर अन्य कोई पदार्थ नहीं, ऐसा मैं ज्ञानभावात्मक तत्त्व हूँ। मैं कोई पिंड नहीं कि जो पकड़ा जा सकूं, कोई रूप, रस इत्यादि नहीं कि जो इन्द्रियके द्वारा जाना जा सकूं, केवल ज्ञानज्योतिरूप केवल आनन्दस्वरूप हूं? दो ही तो इसके मुख्य धर्म हैं—ज्ञान और आनन्द। ज्ञान किसे कहते हैं? जो जाननकार्य करे, जिसका अविनाभावी आनन्द हो ऐसा ज्ञानानन्दघन आत्मतत्त्व हूं, ज्ञानस्वरूप हूं, आनन्दस्वरूप हूं। लोगोंने जाननको ब्रह्मका स्वरूप बताया है, किन्हींने ब्रह्मको आनन्दस्वरूप बताया है।

ऐसा ही मैं आत्मतत्त्व हूं। मैं ज्ञानमात्र हूं, मेरा आनन्द मेरेसे ही प्रकट होता है। उस आनन्दको प्रकट करनेके साधन क्या हैं? क्या रसोई बन जाय तो आनन्द है? क्या रसोईसे आनन्द मिलता है? क्या घर, परिवार, मित्रजन इत्यादिसे आनन्द आता है? नहीं, ऐसा नहीं है। ज्ञानको छोड़कर अन्य कोई साधन नहीं है आनन्दके लिए। मात्र जानन ही आनन्दका साधन है। जिसका उपयोग बाह्यमें है, जिसमें राग द्वेष आदि हैं उसको आनन्द नहीं मिलता है। जहांपर केवल जानन हो, मोह न हो तो 'वहांपर आनन्द मिलता है। जब मात्र जानन ही आनन्दका साधन है तो फिर प्रवृत्तिमें आग्रह क्यों करूं? प्रवृत्ति चलती है तो चले, पर उसमें आग्रह क्यों हो? मोही लोग ऐसा आग्रह करते ही हैं, उन्हें ऐसा किए बिना चैन नहीं आती है। कौन ऐसे पदार्थ हैं जो मेरे लाभकारी हैं, जिनसे मेरा कल्याण हो जाता है। ऐसी जगत्में कोई चीज नहीं है। सो भैया! किसी चीजमें आग्रह नहीं होना चाहिए। प्रवृत्तिका आग्रह न करो। बल्कि उस अपने आनंदस्वरूपको देखो और यह विश्वास रखो कि मैं आनन्दस्वरूप हूँ। मेरा आनन्द तो मेरे द्वारा ही प्रकट होता है। मेरे आनन्दका अन्य कोई साधन नहीं है। मात्र जानन ही आनन्दका साधन है।

जीवमें ज्ञान गुण है जो कि खूब अनुभवमें आ रहा होगा कि आत्मामें एक ऐसी शक्ति है जिसके कारण जाननवृत्ति होती है, वह ही जो आत्मतत्त्व है और दूसरे पदार्थ नहीं जानते हैं, क्योंकि आत्मामें ज्ञानशक्ति मौजूद है और किसी दूसरेमें ज्ञानशक्ति नहीं है। आत्मामें ज्ञान होता रहता है, जानकारियां होती रहती हैं। इसी तरह आत्मामें एक आनन्द

शक्ति है और पदार्थ तो आनन्द नहीं मना सकते। क्या चौकी, टेबुल, घड़ी इत्यादि आनन्द मनावेंगे? आनन्द तो मनाने वाला एक जीव ही है। क्योंकि उसमें आनन्दकी शक्ति है। जैसे ज्ञानशक्ति जीवोंमें है तैसी है आनन्दशक्ति भी जीवोंमें है।

भैया! जैसे ज्ञानशक्तिकी पाँच परिणतियाँ हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान व केवलज्ञान। इसी तरह आनन्दगुणकी तीन परिणतियाँ होती हैं—१. सुख, २. दुःख और ३. आनन्द। इनमें सुख और दुःख विकृत परिणमन हैं और आत्मीय आनन्द शुद्ध परिणमन है। विकृत परिणमन सुख और दुःख क्यों हैं? यों कि सुख तो वह है जो इन्द्रियोंको सुहावना लगता है, और दुःख वह है जो इन्द्रियोंको असुहावना लगता है। यह विकार स्वयं नहीं होता किन्तु कर्मोदयका निमित्त पाकर होता है। केवल आत्मा तो शुद्ध है, शुद्धपरिणमनका आनन्द भगवान्के है। सुख सदा नहीं रहता है और न दुःख ही सदा रहता है। सदाको बात छोड़ दो। २४ घंटेमें शायद आध घंटा मिलजुल कर समय सुखसे व्यतीत होता हो, शान्ति प्राप्त हो जाती हो, बाकी साढ़े तेईस घंटा दुःख ही दुःख रहते हैं। तो आनन्दशक्तिका जो शुद्ध विकास है वह आनन्द है। उस आनन्दके लिए लोगोंको आग्रह करना चाहिए। प्रवृत्तिके लिए आग्रह नहीं करना चाहिए।

किन्हीं किन्हीं जगहोंमें तो देखो लोग धर्मप्रवृत्तिमें कलह करते लोक व्यवहारमें मिले जुले रहते, कहाँ लोकव्यवहारमें तो एक और धर्ममें कलह, विवाहके समय तो लोग मिल जुल कर हंसी खुशीसे रहते, पर धर्मके कामोंमें उनमें आपसमें लड़ाई होती है। उनके नाते रिश्तेदार विवाह आदिके समय तो एक हो जाते हैं पर धर्मके कामोंमे लड़ाई झगड़ा करते हैं। देखो भैया, पार्टीमें तो शामिल होते हैं पर धर्मके कामोंमें आपसमें लड़ाई करते हैं। देखो भैया ये कितना उल्टा करते हैं, अरे धर्मके काममें तो सबको आपसमें मिलकर काम करना चाहिए और विवाह आदिमें चाहें लड़ें, पर देखो कितना उल्टा काम करते हैं? क्यों ऐसा उल्टा होता है? क्योकि वास्तविक धर्मसे रुचि नही है। अरे भाई देख भी लो, धर्ममें कोई भी नही है। धर्म एक है, शास्त्र एक है, गुरुका स्वरूप एक है, पूजा की पद्धति एक है। जितने धर्म व्यवहार हैं उनकी पद्धतियाँ सब एक है। तो फिर झगड़ा किस बातका हो जाता है? प्रवृत्ति चाहे धर्मविषयकी भी हो वहाँ भी मतभेद हैं परन्तु निवृत्तिमें क्या मतभेद? निवृत्ति ही एक ऐसा धर्म है जिसकी कोई बराबरी नहीं। निवृत्तिका मतलब छूट गया, अलग हो गया। निवृत्तिमें क्या दुःख हैं?

कोई साधु एक पुस्तक बाँच रहा है। किसी ने पूछा कि कौनसा ग्रन्थ यह पढ़ रहे है क्या उत्तम है? दूसरेका मनोभाव व उपकार जानकर साधु वह पुस्तक उसे पढ़नेको दे

देखा। यही उसकी निवृत्ति होगी। वह अपने आपको अपने आपमें विश्राम पाता हुआ देख कर आनन्द पा लेगा, अपने आपके ही आनन्दमें मस्त हो जायगा क्योंकि उस साधुको प्रवृत्ति का आग्रह रंचमात्र भी नहीं है। प्रवृत्तिमें आग्रह न रहे तो वही साधु है। गृहस्थीके तो प्रवृत्तिकी बात होती हैं पर साधुओंके नहीं होती है। साधु जानते हैं— मेरा आनन्द मेरेसे ही प्रकट होता है, आनन्दका साधन तो केवल ज्ञान है, और कोई दूसरा अन्य साधन आनन्द का नहीं है। सो मैं स्वयंमें रम कर ही अपने आप सुखी होऊं।

नाहं देहो न जातिर्मे न स्थानं न च रक्षकः।
गुप्तं ज्ञानं प्रपश्यामि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३१॥

मैं शरीर नही हूं, यहाँ भीतरमें देखो, क्या है ? यह कौन सुखी दुःखी हो रहा है ? शरीर या जीव। कल्पनाएं और द्वन्द्व कौन कर रहा है ? जीव कर रहा है या शरीर कर रहा है ? शरीर नहीं कर रहा, जीव कर रहा है। शरीर भी मैं नहीं हूं, फिर जाति मेरी कहाँ हो जायगी ? मैं खंडेलवाल जातिका हूं, मैं अग्रवाल हूं इत्यादि, ये जातियाँ कैसे बन गयीं ? कोई कहता है कि हम ब्राह्मण हैं, कोई कहता कि हम बनिया हैं। ये जुदी जुदी वर्णव्यवस्थाएं शरीरके आधारपर हैं। मैं तो शरीर नहीं हूं और न शरीरमें हूं। तो मेरा स्थान कहां है ? मेरे रहनेकी जगह क्या है ? मेरा स्वरूप ही मेरे रहनेकी जगह है। मेरा रक्षक कौन है ? किसीमें मेरी रक्षा करनेकी ताकत है ही नहीं। कोई भी जीव मेरी रक्षा करनेकी ताकत रखता है, ऐसी आशा करना व्यर्थ है। क्या मेरी रक्षा माता-पिता, दादा-दादी इत्यादि करेंगे ? देखो वे गुजर गए पर उनका मेरी तरफ ध्यान भी नहीं है। अगर वे जिन्दा ही होते तो क्या मेरी रक्षा कर सकते थे ? मेरी रक्षा तो मैं ही कर सकता हूं। इस जगतमें मेरी रक्षा कोई दूसरा नहीं कर सकता है। मैं अपने गुप्तज्ञानको देखकर अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी हो सकूंगा।

मेरा ज्ञान गुप्त है। कोई दूसरा जाननहार, पहिचाननहार नहीं है। अगर कोई पहिचाननहार बन जाय तो वह ज्ञाता द्रष्टा बन जायगा। उसमें रागद्वेष इत्यादि करने का लगाव नहीं रहेगा। मैं ऐसे ज्ञानस्वरूपको देखूं और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

केवलज्ञानमात्रके अनुभवके तरीके को पाकर अन्य सबको छोड़कर मैं यह विचार बनाऊं कि मैं ज्ञानस्वरूप हूं, मेरा स्वरूप ज्योतिमात्र है प्रतिभासमात्र है, आकाशकी तरह अमूर्त हैं, किसीसे पकड़ा जा सकने वाला नहीं है, किसीसे छेदा नहीं जा सकता है, भेदा नहीं जा सकता है, इस पर तलवार नहीं चलाई जा सकती। मैं तो निर्लेप आकाशकी तरह

शुद्ध, स्वच्छ चैतन्यस्वरूप हूं। केवल जानन जानन ही मेरा स्वभाव है। इस पद्धतिको जब मैं देखता हूं तो आत्मानुभवकी पहिचान होती है। मैं अपने इस गुप्त ज्ञानको देखकर अपने में अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

क्वान्योऽहं क्व च चिन्ता क्व क्वैकाग्र्यं क्व शुभाशुभम्।
इमे स्वस्माच्च्युतेस्तर्काः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४०॥

कहां तो अन्य है, कहां मैं हूं ? देखो प्रत्येक पदार्थमें कितना फर्क है। प्रत्येक पदार्थ अपने आपमें झुके हैं। प्रत्येक पदार्थ अपनी-अपनी ओर ही मुड़े हैं। प्रत्येक पदार्थका उसमें ही सत्त्व निहित है। परपदार्थ एक दूसरेसे चिपटे हुए नहीं हैं। इसलिए उनमें अन्तर रहेगा ही। परपदार्थ तो हमसे अत्यन्त जुदा हैं। उनसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। कोई परपदार्थ यदि हमसे १०० कोसकी दूरीपर रहे तो १०० कोसका अन्तर है। ऐसा क्या जो मेरे क्षेत्रावगाहमें पर है उसमें अन्तर नहीं। वे भी हमसे जुदा हैं। जितना जुदा दूरका पदार्थ है उतना ही जुदा समीपका पदार्थ है।

दूध और पानी अलग-अलग गिलासमें दूर दूर पर रखे हैं। दूध और पानीमें अन्तर समझमें आ रहा है। पर दूध और पानी दोनोंको मिला दिया जाय तो क्या दोनों एक हो गए ? नहीं, दूधमें दूध है और पानीमें पानी है। अगर किसीसे पूछा जाय तो यही कहेंगे कि दूध और पानी एकमें मिले हुए हैं। पर ऐसा नहीं है। दूधमें दूध है और पानीमें पानी है। इसके जाननहार परीक्षक हैं। परीक्षक यंत्रोंके द्वारा जान लेते हैं कि दूधमें दूध है और पानी में पानी है। बहुत भीतर सूक्ष्म अंशोंमें परीक्षा करने वाले ही यह अन्तर जान पाते हैं। दूध में पानी नहीं है और पानीमें दूध नहीं है। अगर उसे अग्निपर रखकर गर्म कर लें तो पानी हटकर अलग हो जायगा और दूध अलग हो जायगा। इस प्रकारसे भी लोग परीक्षा कर लेते हैं कि दूधमें इतना पानी पड़ा हुआ है। देखो और भी भेदविज्ञानकी बात। दूधमें दूध है और पानीमें पानी है, वे एक नहीं होंगे। अन्तर पूराका पूरा है। इसी प्रकार इस शरीरमें और इस जीवमें कितना अन्तर है ? अगर कोई यहांका लड़का हो और कोई दूसरा इंग्लैण्डका हो तो क्या भिन्न होनेमें उनमें कोई अन्तर है ? अन्तर कोई नहीं है। पर लोग लड़कोंमें अन्तर मानते हैं। वस्तु तो जैसी है वैसी ही है। सब कुछ तो ज्ञानकी कलापर ही निर्भर है।

गिलासमें पानी और दूध है। वे दोनों ही पृथक्-पृथक् हैं। यहांके लड़के यहां ही हैं और वे वे ही हैं उनमें कोई अन्तर नहीं है। पर लोग अन्तर मान लेते हैं। अरे ऐसी बात नहीं है। यह सोचना कि ये पराये हैं यह मोहकी बात है। चीजें बिल्कुल जुदा-जुदा हैं, उनमें रंच भी सम्बंध नहीं है। किन्हीं दूसरे पदार्थोंसे अपना समन्वय नहीं है। और भी देखो कहां

तो ध्यान और कहाँ चिंता ? कहाँ अच्छे धार्मिक भावोंको चित्तमें लाना और कहाँ परपदार्थों की चिंताएं करना ? इन दोनोंमें कितना फर्क है ? कहाँ तो चित्त लगाना चाहिए धर्मके कामोंमें और लगाते कहाँ हैं बाह्यपदार्थोंकी चिंताओंमें ? अरे बोझाको तुम क्यों फिक्र करते हो ? परमार्थसे देखो तो चाहे शुभ उपयोग हो और चाहे अशुभ उपयोग हो, है तो अशुद्ध ही उपयोग । अंतर भी केवल बाह्यदृष्टि वालोंको लगता है । बाह्यदृष्टि करके वे अपनेसे बाहर उठे हुए हैं, वे अपने स्वरूपको भूल रहे हैं ।

भैया ! स्वरूपस्मरण ही वास्तविक सगुन है । अच्छे कर्मोंका होना सगुन कहलाता है और बुरे कामोंका होना असगुन कहलाता है । बाह्यमें कैसा सगुन और कैसा असगुन ? शुभ मंगलमय होना सगुन कहलाता है और इसके विपरीत होना असगुन कहलाता है । शुभ मंगलमय तो निर्मल विचार ही है । लोग तो भ्रमवश लौकिक असगुन व सगुनके पीछे पड़े हुए हैं । दाहिने हाथ अगर हिरण मिल गया तो सगुन मान लिया, कोई स्त्री जलसे भरा हुआ घड़ा लिए मिल गयी तो सगुन मान लिया, यदि रीता घड़ा लिए हुए कोई स्त्री मिल गयी तो असगुन मान लिया । इस तरहसे लोग प्रायः सगुन और असगुनके पीछे पड़े हुए हैं । अरे ये सभी असगुन हैं, इनसे कुछ नहीं । यदि दृष्टि शुद्ध है तब सब सगुन हैं वरना सब असगुन ही हैं । ये सब मोहकी बातें हैं । सगुन तो कहते हैं पवित्र वीतरागको मोहीजन पति सहित स्त्रीको तो सगुन मानते हैं और पतिरहित स्त्रीको असगुन मानते हैं । अरे देखो भैया लोग कितना उल्टा कर रहे हैं ? जो स्त्री पतिरहित है, तपस्या करती है, आराधना करती है उसको लोग असगुन कहते या मानते हैं और जिसमें राग है उसे सगुन मानते हैं । अरे राग करनेका कड़ा फायदा पावोगे, कोई कठिन अवस्था होगी, मरण सम्मुख रहेगा । इन रागोंसे आत्माको कोई चीज मिलती हो तो बतलाओ । कुछ भी तो नहीं मिलता है ।

महाराज सुनाते थे कि कटनीमें दो भाई थे । एक छोटा था और एक बड़ा । छोटा भाई स्वाध्याय, पूजन इत्यादि करता था, और बड़ा भाई दुकानका काम करता था । छोटा भाई बड़े भाईसे बोला कि न तो तुम पूजन करते, न धर्म करते और न स्वाध्याय करते । तो बड़ा बोला कि तू रहने दे; मैं दुकान करता हूं तो क्या हुआ तुझको मैंने छुट्टी दे रखी है, मेरा यही धर्म हो रहा है, और धर्म तो अन्तरकी चीज है, तू ज्यादा गर्व न कर । तू मुझे सिखाने को रहने दे, मुझे यह मत समझ कि मैं स्वाध्याय नहीं करता तो धर्मकी बुद्धि भी नहीं है । अन्तमें जब छोटा भाई मरने लगा तो बड़े भाईसे बोला कि मेरे लड़के बच्चे तुम्हारे जिम्मे हैं । अब तुम्हीं इन लड़कोंका पालन-पोषण करना । बड़ा भाई बोला कि भाई तू जो स्वाध्याय, पूजन, धर्म इत्यादि करता था । अब तू मरते समय इन बच्चोंसे मोह कर रहा है ।

अरे अब तो मर जायगा इसकी रक्षा क्या तू ही करेगा ? मैं भी कह दूं कि रक्षा करूँगा और न की रक्षा तो ? भैया ! उनका भाग्य उनके साथ है । कहो तो मैं सब जायदाद तुम्हारे बच्चे के नाम रजिस्टर्ड कर दूं । अब उस छोटे भाईको ज्ञान हो गया । छोटा भाई बोला कि हमें कुछ नहीं चाहिए । बड़ा भाई बोला कि जो तुम्हें दान करना हो १०, २० हजार उसका दान कर दो । बड़े भाईसे बोला कि भाई तुम्हीं जो चाहो सो करो । जब मेरा कुछ है ही नहीं, तब मुझे क्या विकल्प ? सो भैया ! अंतरङ्गमें जिसके धर्मकी भावना है वही सच्चा स्वाध्याय, पूजन आदि करता है । छोटा भाई बोला कि धर्म तो आपका सत्य है । आपसे मुझे शिक्षा मिली । मैं परद्रव्यका अधिकारी नहीं । अब तो मुझे केवल चटाई दे दीजिए । जमीनपर ही चटाई बिछाकर रहूंगा । वह छोटा भाई वहीं चटाईपर ही रहकर धर्मकी आराधना पूर्वक उसी चटाई पर ही मर जाता है । बादमें बड़े भाईने छोटे भाईका स्मारक बनवाया । बहुत दान निकाला ।

अरे बाह्यक्रिया तो धर्म करनेके लिए आलम्बन मात्र है । भगवान् अरहंत की मूर्ति को देखकर जिसको उनके स्वरूपकी मुद्राकी खबर न हो, तो वह मूर्तिदर्शन नहीं है । अरे इस मूर्तिको देखकर अगर स्वरूपका ज्ञान आ जाय तो चारों ओर तुम्हें वैसा ही सब दिखाई देगा । शारीरिक वैभव आत्मप्रसाद पर निर्भर है । पूर्ण निर्मल अरहंत प्रभु हैं उनका परमौदारिक शरीर है जिनसे उनके चारों ओर मुख दीखते हैं, हैं नहीं हैं । पूर्ण निर्मल भगवान्के चार मुख हो जावें ऐसा नहीं है । मुंह आगे पीछे ही अगल बगल हो, ऐसा नहीं है । कोई कोई मानते हैं कि ब्रह्माके चार मुख हैं । भैया ! अगर शुद्ध दृष्टि होगी तो शरीर भी शुद्ध हो जायगा । जैसे स्फटिकमें दर्शन करनेसे स्फटिक मूर्तिके दोनों ओर एकसा मुख दीखेगा । एक मुख आगे नजर आयगा, एक पीछे । प्रभुके पवित्र शरीरमें इससे भी अनुपम स्वच्छता है । उनका मुख चारों ओरसे दिखता । आगेसे पीछेसे और दो मुख अगल-बगल नजर आवेंगे । जिनका शरीर पवित्र होगा उनको जहाँसे देखो तहाँसे ही उनके मुख दिखाई देंगे । देखो भैया ! यदि प्रभुका यह अतिशय न होवे तो दर्शकोंमें झगड़ा हो जावे । और यह भावना हो जाय कि हम आगे बैठेंगे तो कलह ही तो होगा । किसी ओर बैठो तो क्या विवाद है क्योंकि दर्शन तो चारों ओर होंगे । तभी तो कहीं भी बैठ जाते हैं किसीको भी दर्शनमें कोई रुकावट नहीं होती है । इन्द्रकी रचना, कुबेरकी रचना अद्भुत है तभी तो झगड़े का नाम नहीं है । यदि भगवान्के स्वरूपकी ठीक-ठीक दृष्टि हो जाय तो यह शुभ काम कहलाता है । अगर ज्ञानी पुरुषको शुद्ध ज्ञानका अनुभव है और कदाचित् अपने स्वरूपसे हटे तो यह अशुभकी बात है । स्वयंके स्वरूपमें न शुभ है न अशुभ, न सगुन न असगुन । स्वरूपमें

तो शुद्ध ज्ञान है जो कि परम आनन्दमय है।

अरे यह प्रभु तो ज्ञानस्वरूप है। अपना ही अनुभव कर रहा है। भगवानके दर्शन करनेका प्रयोजन राग न रहे, ऐसा ध्यान न करो। अगर मिथ्यादृष्टि हटे, सम्बन्धबुद्धि हटे तो शुद्ध विकासके कारण परमात्मस्वरूपका ध्यान हो जायगा। आत्माका स्वरूप तो शुद्ध ज्ञान है। यह स्वरूप स्वयं आनन्दमय है। मैं इस ही आत्मस्वरूपमें रमकर स्वयं आनन्दमय होऊं।

को दूरे कश्च सामीप्ये को बाह्य को मयि स्थितः।
ज्ञानमात्रमहं यस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४१॥

कौन मुझसे दूर है और कौन मेरे नजदीक है? ज्ञानस्वरूप आत्माको लक्ष्यमें लेकर सोचो कि कौन दूर है और कौन नजदीक है? जब इतना ध्यान है कि ये जीव और शरीर जो मिले जुले हैं वे भी अत्यन्त भिन्न हैं तब कौन दूर है और कौन समीप? मुझमें तो मैं ही हूं, देह भिन्न हैं। मेरे अन्दर केवल जाननहार आत्मा है जो कि विलक्षण पदार्थ है। इस आत्मतत्त्वकी जिसे पकड़ होगी उसका जीवन सफल रहेगा। खूब धन वैभव बढ़ा लेनेसे कुछ नहीं मिलेगा। बाह्य समागमके लिए अनेक प्रयत्न करते जावो। फिर क्या होगा फिर क्या होगा, यही प्रश्न चलाते जावोगे। अच्छा बच्चे हैं, ये क्या कर रहे हैं? पढ़ रहे हैं। पढ़ लो, फिर क्या होगा? इन्टर पास होंगे। इन्टर पास हो गये। फिर क्या होगा? इन्जीनियर होंगे। फिर क्या होगा? नौकर होंगे। फिर क्या होगा? १०, २० आदमियोंसे हजूरी करवायेंगे। फिर क्या होगा? बूढ़े हो गए। फिर क्या होगा? रिटायर हो गए। फिर क्या होगा? मृत्यु हो गयी। फिर क्या होगा? फिर कहीं जन्म लेंगे। कहीं कीड़ा मकोड़ा हो गए। फिर क्या होगा? फिर कहीं कुछ होंगे। इसी तरह प्रवृत्तिका आग्रह होता रहता है। जो काम हम सोच रहे हैं उसके बादमें फिर क्या होगा? फिर क्या होगा? यही चलता रहता है। प्रवृत्तिका आग्रह नहीं छूटता।

भैया! कहां क्या प्रवृत्ति करते हो? अपने स्वरूपसे सब अलग हैं। फिर हमसे क्या दूर है? और क्या नजदीक है? क्या हमसे दूर इलाहाबाद है और कानपुर नजदीक है? अरे जिस शरीरके अन्दर हम रहते हैं वह भी अत्यन्त भिन्न है। अच्छा हम पूछते हैं? बतलाओ कि क्या हम कानपुरमें रहते हैं? क्या हम हिन्दुस्तानमें रहते हैं। नहीं, हम अपने आपके प्रदेशमें रहते हैं। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपमें है। कोई पदार्थ किसी जगह नहीं है। हम आकाशमें भी नहीं हैं। आकाशमें हमारा होना तब कहलाता जब हम पहिले तो आकाश से बाहर होते फिर आकाशमें आते। तो भाई हम आकाशमें भी नहीं है।

मैं तो ज्ञानस्वरूप हूं, ऐसी अपने आपमें खबर रहे। अपने ही स्वरूपमें खबर रहे, अपने ही स्वरूपको पकड़ रहे, अपने ही स्वरूपका अनुभव रहे तो मैं अंतमें अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी हो सकता हूं। अपने स्वरूपको देखो भैया! खुदमें खुद ही है। जब सब ही मुझसे बाहर हैं तो सब बिल्कुल बाहर ही हैं, फिर कौन समीपका रहा और कौन दूरका रहा और कौन मुझमें रहने वाला रहा और कौन बाहरमें स्थित रहा? दूर समीप आदिके विकल्प बाह्यदृष्टिमें हैं। परमार्थदृष्टिसे आत्माका स्वरूप देखो और परमानन्दमय परमार्थ परमात्मतत्त्वमें उपयोगी रहकर आनन्दमग्न होओ।

संचितं कर्म चेदस्तु तेन स्पृष्टोऽपि नो ह्यहम्।
अद्वैतोऽहमयं तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४२॥

इस आत्माके साथ बहुतसे कर्मोंका बन्धन हो गया है। कहते हैं कि कर्मोंका बन्धन है तो बना रहे पर हम उन कर्मोंसे छुवे हुए ही नहीं हैं, उनसे जुदा ही हैं। अच्छा बताओ, आकाश भींतसे छुवा है क्या? कैसे छुवा जा सकता है। यह भीत तो मूर्त है और आकाश अमूर्त है। एक मूर्तवस्तु अमूर्तवस्तुसे छुयी हुई नहीं हो सकती। मूर्त अमूर्तकी बात तो दूर रही मूर्त मूर्तसे भी छुवा हुआ नहीं होता। यह पुस्तक क्या चोकीसे छुई हुई है? अरे यह पुस्तक अपने स्वरूपमें है और चोकी अपने स्वरूपमें है। इसी तरह परमार्थदृष्टिसे देखो विशिष्टाद्वैत कर्मोंका संचय आत्मामें है तो रहे, मैं कर्मोंसे छुवा हुआ नहीं हूं। मैं तो अद्वैतस्वरूप हूं। किसी भी पदार्थके बारेमें विकल्प किया कि अच्छा है, लो हम फंस गए। अपने उपयोगसे आप ही हम फंस गए। मैं तो कर्मोंसे छुवा हुआ नहीं हूं। सो मैं इस अद्वैतस्वरूपको देखकर अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊँ।

ये कर्म क्या चीज हैं? कार्माणवर्गणाएँ सूक्ष्म भरी हुई हैं। जब कर्मबन्धन होता है तो वे कार्माणवर्गणाएँ कर्मरूप हो जाती हैं। मैं उन कर्मोंसे छुवा हुआ नहीं हूं। मैं अद्वैतरूप हूं, सो मैं इस अद्वैतरूपको देखकर अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊँ।

ग्रामे वने निवासो मे विकल्पोऽनात्मदर्शिनः।
स्वे ज्ञाने ज्ञस्य वासोऽतः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४३॥

मेरा ग्राममें निवास है अथवा मेरा वनमें निवास है, ऐसा विकल्प कौन करेगा? जिसकी अनात्मदृष्टि है। जिसकी आत्मस्वरूपमें दृष्टि नहीं है वह सोचेगा कि मेरा जंगलमें निवास हो कि ग्राममें निवास हो? पर ज्ञानी देखता है कि मेरा तो ग्राममें निवास नहीं, जंगलमें निवास नहीं बरन् ज्ञानमें निवास है। मेरा निवास कानपुरमें नहीं, शरीरमें नहीं, हिन्दुस्तानमें नहीं तथा लोकमें नहीं। मेरा तो ज्ञानमात्रमें ही निवास है। लोक भी अनादि

से है और हम भी अनादिसे हैं। मैं कैसे लोकमें हूं। अरे मैं तो अपने ज्ञानस्वरूपमें हूं। ये दुनिया भरके जितने समागम मिलते हैं, अंतमें कुछ रहनेका नहीं है।

भैया! अब इन समागमोंको त्यागोगे तभी मुनाफा मिल पायगा अन्यथा इस संसार में ही भटकना बना रहेगा। तुम अपने स्वरूपको देखकर बतलाओ कि तुम कहां रहते हो? कानपुरमें रहते हो क्या घरमें रहते हो या शरीरमें रहते हो क्या? अरे यह कहीं नहीं रहता। यह अपने ज्ञानस्वरूपमें ही रहता है। इस ज्ञानके स्वरूपमें जिसकी नजर रहती है उसके परपदार्थोंसे मोह नहीं रहता है। तब ग्राममें निवास हो कि बनमें निवास हो? ऐसा विकल्प अनात्मीय जीवके होता है। ज्ञानी तो अपने ज्ञानस्वरूपको देखकर अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होता है। तब मैं अन्यत्र हूं ही नहीं, केवल ज्ञानमें ही रहता हूं। ऐसा मानकर सारे विचार खत्म करो और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होओ।

यातायाताणुपुन्जोऽयं देहोऽहं तु स्थिरः परः।
मे प्रवेशो न कस्मिंश्चित्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४४॥

यह शरीर जो है, वह आने जाने वाले परमाणुओंका समूह है बहुतसे परमाणु आए और बहुतसे गए—ऐसे यातायात, अणुओंका समूह शरीर है। मैं तो एक स्थिर चीज हूं। आज मिलाप हो गया, कल बिछुड़ गया, ऐसी यह तो चीज है। मैं तो शाश्वत अद्वैत सारभूत चीज हूं और देहादिकसे जुदा हूं। मेरा किसी अन्यमें प्रवेश नहीं है। किसी अन्य द्रव्यका मुझमें प्रवेश नहीं है। अतः मैं अपने ही स्वरूपको देखकर अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है। यही कारण है कि कोई किसीके विरुद्ध या अविरुद्ध कुछ भी परिणति नहीं कर सकता है। क्योंकि सब अपनी अपनी परिणतिसे ही परिणमते हैं। हैरानी व्यर्थको कर लेते हैं कि यह मेरा बच्चा है। है नहीं यद्यपि उनका बच्चा पर मोही-जन व्यर्थमें ही सोच लेते हैं कि मेरा बच्चा है। अरे तुम अपना काम करते हो, वह अपना काम करता है। बच्चा अपने अस्तित्वमें परिणमता, तुम अपने कषायमें मस्त हो रहे हो।

यहां बच्चे लोग गेंद खेलते हैं, नालीके पास गेंद जा रही है। १०, २० हाथ पर गेंद है पर बच्चे उसे अपना हाथ हिला हिलाकर रोकना चाहते हैं। गेंद अपने आप आगे बढ़ता जा रहा है पर बच्चे हाथ हिलाहिला कर उसे रोकना चाहते हैं। गेंद इस तरह से तो नहीं रुकेगा। कोई खाता हो और खातेमें गलेमें ठसका लगने से क्या उसके गलेका ठसका ठीक हो जायगा। नहीं, फिर भी कर्तृत्वबुद्धिके ये नाच होते हैं। अरे ये तो भिन्न

भिन्न पदार्थ हैं। किसीके कहनेसे कुछ होता है क्या? केवल विकल्प किए जाओ। भैया! अपना किसी भी परपदार्थसे सम्बन्ध नहीं है। अतः मैं अपनेमें ही रहकर अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

व्यवहारे परावस्था निश्चये ज्ञानमात्रता।
ज्ञानमात्रे परा शान्तिः स्यां स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४५॥

परकी अवस्था विभावकी अवस्था जो है वह व्यवहारसे मानी गयी है। निश्चयमें तो ज्ञानमात्र आत्मा है। पदार्थोंका किससे निर्माण होता है? स्ट्रेक्चर क्या है आत्माका और किससे इसका निर्माण है, इस बातको तो देखो। भैया! ऐसा विचित्रगुण आत्माका है जो अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है। ज्ञानरूप परिणमन रहता है। मेरी ज्ञानमात्र अवस्था है। यह जीव ज्ञानस्वरूप है सो ज्ञानसे ही निर्मित है, अनादिसे निर्मित है, स्वभावसे निर्मित है। गति, इन्द्रिय, काय, योग, विषय कषाय इत्यादि ये सब व्यवहारसे माने गए हैं। ये सब आत्माका स्वरूप नहीं हैं। आत्माका स्वरूप तो ज्ञानमात्र अवस्था है। ये जो व्यवहारमे रूप रंग, इज्जत, क्रोध, मान, कषाय, राग, द्वेष आदि हैं ये सब मेरेमें नहीं हैं। मेरा स्वरूप तो केवल ज्ञानमात्र है। अपने स्वरूपका पता लग जाय तो कहना चाहिए कि समीचीन दृष्टि हो गयी। अपना स्वरूप अन्य सर्व चेतनोंसे अचेतनोंसे न्यारा है, यदि यह समझमें आ जावे तो आकुलताएं मिट जावेंगी। निश्चयसे मेरा स्वरूप ज्ञानस्वरूप है। तो उत्कृष्ट शांति तो स्वरूपके देखनेमें है। किन्तु मोहमें कैसी कैसी विचित्र परदृष्टियां होती हैं?

जिसके बच्चे नहीं होते हैं वह दूसरेके बच्चेको गोद लेता है। वह गोद लेकर मानने लगता है कि यह मेरा बच्चा है। स्वतः ही बच्चेको गोदमें लेकर वह बच्चेसे मोह करने लगता है कि अरे यह तो मेरा बच्चा है। जिसको दुनिया जानती है कि बच्चा उसका नहीं है, गोद ले लिया है पर वह समझता है कि इससे हमारी इज्जत होती है। अरे उससे इज्जत नहीं है, निन्दा है। गोद लेकर इज्जत चाहते हैं कि मेरी इज्जत हो जाय। लोग समझ लें कि यह इन्हींका बच्चा है। किन्तु लोग समझते हैं कि इसका तो यह है नहीं, दूसरेको अपना बनाया है। इससे तो डबल निन्दा हो गयी। मोहकी प्रशंसामें निन्दा तो होती ही है।

कोई कहता है कि ये सेठ जी हैं, इनके चार लड़के हैं। जिनमें एक लड़का इञ्जीनियर है, एक मिनिस्टर है, एक डाक्टर है, एक प्रोफेसर है। सेठ जी समझते हैं कि इसमें प्रशंसा होती है मेरी। अरे उसमें सेठकी प्रशंसा नहीं बल्कि निन्दा होती है। इससे तो यह जाहिर होता है कि सेठ जी कोरे मूर्ख हैं, उनकी तो चर्चा ही नहीं होती। चर्चा तो लड़कों की आ रही है। सेठ समझते हैं कि हमारी प्रशंसा होती है।

अभी देखो सेठने ५, ६, ७ खंडकी कोई हवेली बनवा दी। द्वार पर तरह तरहके चित्र नक्काशी करवा दी। यदि कोई इस बातकी प्रशंसा करता है कि इनका ऐसा मकान है, ऐसा द्वार है तो सेठ खुश होता है कि वाह इससे तो हमारी प्रशंसा होती है। अरे उससे सेठकी निन्दा होती है। निन्दा इसलिए कि दरवाजे पर चित्रकारी हो सकती है, पर सेठमें कुछ नक्काशी नहीं, कुछ भी कला नहीं है।

अगर ज्ञानके विकासकी बात कही जा रही है तब तो प्रशंसा होगी, बाकी सबमें निन्दा ही है। किसीकी लौकिक बातकी यदि प्रशंसा होती है तो ज्ञानी यह सोच लेता है कि यह प्रशंसा नहीं है बल्कि निन्दा है।

यथार्थ जीवका क्या स्वभाव है? इसको पहिचानो और बाह्यपदार्थोंसे हटकर अपनी यथार्थ बुद्धिमें आवो। मेरा यहाँ है क्या? मेरा यहाँ क्या हो सकता है? मैं यहाँ क्या कर सकता हूं? केवल ज्ञानका बर्तना ही ज्ञानका आत्माका स्वभाव है। यहाँ जितने कषायोंका परिणमन है वह कुछ भी इस ज्ञानस्वरूपमें नहीं होता है। शान्ति तो ज्ञानमात्रके दर्शनमें ही है। क्यों शान्ति है? ज्ञानमात्रमें ज्ञानमात्र स्वरूपको सोचो कि मैं केवल जाननमात्र हूं, जानन ही मेरा कार्य है तो वहाँ विकल्प नहीं हो सकते। सो शान्तिका मार्ग शीघ्र मिल जायगा। अपने आपको जैसा मानता है तैसा ही बन जाता है।

कोई किसीके लड़का पैदा होता है, पहला ही लड़का है, तो उस पुरुषके विचार ढंग रहन सहनमें बुजुर्गी मानने जैसा अन्तर आ जाता है। मैं तो अब लड़कों बच्चों वाला हो गया हूं—इस प्रकारकी भावनाएं आ जानेसे उसमें कुछ फर्क आ जाता है। कोई लड़की है, जब तक उसकी शादी नहीं होती है तो वह किसी चीज की परवाह नहीं करती है। कहीं इधर बैठ गयी, कहीं उधर बैठ गयी, न शरीरका ध्यान रहता है न कपड़े लत्तेका ध्यान रहता है पर जब भाँवर हो जाती है तब उसमें अन्तर हो जाता है। धीरे धीरे चलना फैल करके न चलना, संकोच करके चलना आदि आदि। यह कला उसे कौन सिखा देता है? अगर शादी हो गयी तो कायदा करती हैं। क्या उन्हें पहिले से ही सिखा दिया जाता है? नहीं। ऐसा परिणाम अपने आपमें आ जाता है। जब मनुष्य है तो रोटी, दाल, भात खाते रहते हैं और अगर मनुष्यसे मिटकर पशु हो गए, गाय हो गए तो घास खाते हैं। गतिके अनुकूल परिणमन हो जाता है। अगर कोई गाय बन गया तो क्या हलुवा पूड़ी खायगा? वह तो घास ही खाना चाहेगा और खावेगा। और अगर कोई गाय मरकर मनुष्य हो गया तो क्या घास खावेगा? वह तो हलुवा पूड़ी खावेगा, भूसा नहीं खावेगा।

यहीं पर जीव भटकते रहते हैं। घरके जो दो चार मोही प्राणी बच्चे, स्त्री आदि

है उन्हींसे मोह किया करते हैं। अगर मरकर किसी दूसरी जगह चले गए तो वहां भी मोह करके अटक जाते हैं। यह अमुक है आदिसे मोह करना कुछ नहीं, केवल विकल्प है। शान्ति तो ज्ञानमात्र अवस्थामें मिलेगी। मैं जाननमात्र हूं, ऐसा उपयोग बन गया तो वहाँ शान्ति मिलती है। नहीं तो कितने ही यत्न करे पर शान्ति नहीं मिलती है। तो मैं अपने ही ज्ञानस्वरूपको देखकर अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं। शान्ति एवं आनन्द स्वयंमें है और स्वयंसे ही प्रकट होता है।

एक सेठ थे। उनकी स्त्री थी। सेठ जब भोजन करने बैठते तभी उसे शिकायतोंका टाइम मिलता था। देखो अमुक चीज आपके लिए है, हमारे लिए नहीं है, अमुक चीजोंके लिए कबसे कहा जा रहा है किन्तु अब तक भी पता नहीं है आदि बातें कर सताया करती थी। मगर वह पुरुष शान्त था। वह अपना भोजन तो करता ही था। सोचता था कि कितना ही शिकायतें करे पर भोजन क्यों छोड़ूं? एक दिन सेठ सीढ़ीसे नीचे उतरे। उतरते ही गुस्सेमें आकर सेठानीने दालका धोवन सेठके ऊपर डाल दिया। सेठकी पगड़ी वगैरह भीग गयी। अब सेठ सेठानीसे कहते हैं कि देवी तुम गरजी बहुत थीं पर बरसी आज हो। अब सेठानीको देखो तो काटो तो पसीना नहीं। सेठानी बोली कि आप बहुत ही साधु पुरुष हैं। मैंने बहुत गुस्साकी पर आपको गुस्सा नहीं आता है। तो भाई! अगर कोई शांत रहे तो दूसरेके भी शान्तिका असर पहुंचता है।

भय्या! दो ही तो चीजें हैं—(१) ज्ञान और (२) शांति। व्यवहारमें दो ही चीजें हैं—(१) ज्ञान और (२) शांति। गृहस्थीको भी ज्ञान और शान्तिको न त्यागना चाहिए। किसीके ज्ञान और शान्ति थोड़ी है और किसीके बहुत है। कोई भी त्यागी हो, जरासा भी कुछ न जानता हो, फिर भी लोग उसको मानते हैं जो आदर्श शान्तिपूर्वक रहता है। अगर ज्ञान भी न हो, शान्ति भी न हो और चाहे कि लोग हमारा सम्मान करें तो यह कैसे हो सकता है? शान्ति और ज्ञान नहीं है तो दुःख रहते हैं।

इन्द्रिय विषय शांतिके लिए हों तो बतलाओ। लोग यद्यपि साधारणतया जानते हैं कि सब मिट जावेंगे फिर भी मोह करते हैं। अगर मोह बाहरसे है तो ज्ञान कैसे प्राप्त होगा? अब भीतरसे बोध हो तब तो भीतर वह असर करता है। मैं कुछ नहीं करता। मेरा कोई काम नहीं है। मेरा काम तो शुद्ध होनेका है, निर्विकल्प होनेका है। यदि यह विचार न बना तो संसारमें भटकना ही पड़ेगा। और ऐसा ज्ञान बने कि मेरा काम शुद्ध होनेका है, निर्विकल्प होनेका है तो शान्ति मिल सकती है। सो मैं अपने ज्ञानमात्र स्वरूपको देखकर अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

रागादिवर्णोलः प्रत्यग्ज्ञाते प्राप्स्यामि शं शिवम् ।
विकल्पो विहनकृष्यातु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४६॥

पदार्थ स्वयं अपने आप जैसे हैं वैसे ही रूपमें उनका ज्ञान हो जाना, यही ज्ञानयोग है, समाधि है, कल्याण है। मैं आत्मा हूँ अपने आप स्वयं अपनी सत्तासे क्या हूं, इस बातकी समझ ही सर्व शिव है। जगतमें क्या क्लेश होंगे? परपदार्थोंके परिणमन चलते हैं उनको लक्ष्यमें लेकर, ध्यानमें लेकर, बहिर्मुख बनकर यह आत्मा अटपट ख्याल बनाया करता है—इतना ही तो दुःख है। इसके आगे हम और आपको क्या दुःख है? ख्याल बनाना इतना ही हमारा ऊधम है। परपदार्थोंका ख्याल कर लिया और दुःखी हो गये। कुछ करनेको काम पड़ा है, इतनी पर्याय बुद्धि की कि विवश हो गए। इसीलिए भाई! पर्यायबुद्धिता हो तो दुःखी होना ही पड़ेगा। अभी देखो प्रायः प्रत्येक बन्धु अपने भीतर बड़ी बड़ी अटक बनाए हुए हैं। घरकी अटक है, धनकी अटक है, रोजगारकी अटक है, इज्जतकी अटक है और नहीं तो दुःख कहाँ हैं? दुःख नामकी चीज क्या बताओगे?

कुछ सोच लो, देख लो, बता दो कि वास्तवमें दुःख क्या है? जिन युक्तियोंसे अच्छी तरह बताया जा सके कि भाई यह दुःख है। भाई इन समस्त दुःखोंका एक ही आधार है। वह आधार है अज्ञान। यदि अज्ञानको मिटा दो, अज्ञानको दूर कर दो तो क्लेश मिट जावेंगे भाई! कुछ भी हो, इन बाह्यपदार्थोंसे तुम्हारा क्या पूरा पड़ेगा? देहातोंमें एक कहावत है कि 'लेवा मरे या देवा, बलदेवा करे कलेवा।' कोई बलदेव नामका दलाल था। इनका माल वहाँ करवा दिया और उनका माल यहाँ करवा दिया, यही काम था। बेच खरीदमें कोई विवाद हो गया सो बलदेवा कलेवा करता हुआ मनमें कहता है कि लेवा मरे या देवा, बलदेवा करे कलेवा। कलेवा कहते हैं मौज करने को, खाने पीनेको।

जब एक अपने आपके सही स्वरूपका पता पा लिया तो बाह्यपदार्थ चाहे यों परिणमे चाहे यों परिणमें क्लेश नहीं प्राप्त होते हैं। बाह्यमें कुछ हो, ज्ञानी तो अन्तरमें प्रसन्न रहता है। जब यह समझमें आ जाय कि मैं क्या हूं तब धर्मका मार्ग भी प्रकट होता है। यथार्थज्ञान किये बिना अपने आपके दिलको जबरदस्ती कहीं लगाओ, व्रत, तप आदिमें लगा लो, केवल जबरदस्तीकी बात है। आपने अगर अपना उपयोग धर्ममें लगाया तो यह सम्यक्त्व है। सम्यक्त्वके सीधे रास्तेकी बात यह है कि अपने आपकी सहज स्वरूपसत्ताको पहिचान लो। इसीसे सब ठीक हो जायगा। मोक्षका मार्ग प्राप्त हो जायगा।

केवल एक अपने आपके स्वरूपका पता सही नहीं है, बाह्यपदार्थोंमें अपना उपयोग लगा रहे हैं, और धर्मके कार्य भी कर रहे है। कार्य क्यों कर रहे हैं? वह धर्मके वास्ते

दिनचर्या या रोटीन बन गयी है।

सत्यकी झलक आ जाय, आनन्दका अनुभव हो जाय तो सारी परेशानियोंकी झलक विलीन हो जायगी। जब तक अपने सत्यस्वरूपका अनुभव नहीं है, अपने सही स्वरूपका परिचय नहीं है, यह नहीं पता है कि मैं क्या हूं तो उसे क्लेश ही रहेगा।

भैया ! परपदार्थोंका अवलम्बन छोड दो तब आत्मस्वरूपका अनुभव कर सकोगे। मैं अपने आप क्या हूं, यह जानना चाहूं और बाह्यपदार्थोंका अवलम्बन राग द्वेष बनाए रहूँ तो अपने आपके स्वरूपका पता नहीं चलेगा। सबसे बड़ा और मोटा काम जल्दी कर लेनेका यह है कि परको पर जानो, अहित जानो और परसे उपेक्षा करो। परपदार्थोंको अपने उपयोग में लानेकी जरूरत नहीं। इतना करनेपर अपने भीतरमें दृष्टि डालो तो अपने स्वरूपका पता लग जायगा। बाह्यपदार्थोंको अपने उपयोगसे छोड़ोगे, उन्हें पर जानोगे तो अपने आपके स्वरूपका पता नहीं चलेगा। सबसे बड़ा और मोटा काम जल्दी कर लेनेका यह है कि परको पर जानो, अहित जानो और परसे उपेक्षा करो। परपदार्थोंको अपने उपयोगमें लानेकी जरूरत नही। इतना करनेपर अपने भीतरमें दृष्टि डालो तो अपने स्वरूपका पता लग जायगा। बाह्यपदार्थोंको अपने उपयोगमें लानेकी जरूरत नही। इतना करनेपर अपने भीतरमें दृष्टि डालो तो अपने स्वरूपका पता लग जायगा। बाह्यपदार्थोंको अपने उपयोगसे छोड़ोगे, उन्हें पर जानोगे तो अपने आपके स्वरूपका पता सुगमतया लग जावेगा, कल्याण होगा। परको अपनाना और शान्ति पाना दोनों एक साथ नहीं हो सकते।

एक कथानक आता है कि दो चींटी थीं। एक रहती थी शक्करके बोरोंमें, खूब शक्कर खाया करे और दूसरी चींटी एक नमककी दुकानमें रहती थी, वह भी जब भूख लगती तो जो कुछ नमक मिलता वह खा लेती थी। किसी तरहसे नमक आदिसे अपना पेट भर लेती थी। एक बार शक्करके बोरोंमें रहने वाली चींटी नमककी दुकानमें रहने वाली चींटीके पास गयी। बोली कि बहिन ! यहां तो तुम्हें बड़ा दुःख है। यहांपर खारा खाना है, मैं तो यहां पर एक घंटा भी नहीं ठहर सकती। नमककी दुकानमें रहने वाली चींटी बोली—क्या कहती हो, यहां तो बड़ा आनन्द है, मौज है। अरे यहांसे ज्यादा आनन्द वहां है जहां पर मैं रहती हूं। यह बताकर शक्करके बोरोंमें रहने वाली चींटी नमककी दुकानमें रहने वाली चींटीको लेकर अपने यहां गयी। नमककी दुकानमें रहने वाली चींटीको यह विश्वास न हुआ कि वहां पर कोई बढ़िया चीज मिलेगी सो अपने मुंहमें नमकीन डली दबाकर चली। इस तरह अपना एक दिनका नाश्ता साथमें ले लिया। शक्करमें रहने वाली चींटीने कहा कि बहिन ! विलक्षण आनन्द आया यहां या नहीं ? फिर पूछा कि क्या आनन्द आया तो नमक

को चींटी बोली कि कोई आनन्द नहीं आया। शक्करकी चींटी बोली कि तुम चोंचमें क्या लिए हो ? बोली कि नमककी डली। अरे तुम तो नमककी डली दबाए हो इसलिए आनन्द नहीं आया। नमककी दुकानमें रहने वाली चींटी बोली कि मैंने सोचा था कि शायद वहाँ कुछ न मिले इसलिए उसे साथमें ले लिया था। शक्करमें रहने वाली चींटी बोली कि अरे इसे हटा दो। अपनी चोंचको साफ करलो, तब शक्करके कणोंको खावो तो आनन्द आयेगा।

तो हम करते हैं धर्ममें क्या कि मंदिर रोज जाते हैं और अपनी चोंचमें, अर्थात् अपने दिमागमें बाह्य चीजोंको बसाए हुए रहते हैं। अगर हम बाह्य चीजोंको मंदिरमें दर्शन करनेमें भी बसाए रहते हैं तो उससे कोई लाभ नहीं होता है। न तो शान्ति ही प्राप्त होती है और न आनन्द ही मिल पाता है। प्रभुके दरबारमें आए हैं, प्रभुकी भक्तिको तैयार हैं तो एक बार तो हृदय साफ होना चाहिए।

दिमाग दिलकी सफाई यही है कि अपनी सहज सत्तास्वरूपमें अपने को देख लो। जिसमें अपना चतुष्टय हो, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव हो, अन्य सबसे जो विविक्त हो उस अपने आपको जानो कि मैं क्या हूं ? परको जाननेसे कोई प्रयोजन नहीं। परपदार्थोंसे तुम्हारा नाता ही क्या है ? जिनका जैसा स्वरूप है वैसा ही मानना, ये ही ज्ञान है। ऐसी हिम्मत करो, ऐसा साहस करो, ऐसा उपयोग बनाओ, ऐसी स्वच्छ, साफ निर्लेप भूमिका बनाओ कि बहिर्मुखी दृष्टि हट जाय तो अपने आपके स्वरूपका पता लगाना सुगम है। अपने आपको यह पता लग जायगा कि मैं क्या हूं ? मैं एक ज्ञानमात्र विलक्षण वस्तु हूं, दुनियामें सब पदार्थोंसे विलक्षण, समस्त जीवोंमें एक रस, चैतन्यमात्र हूं, ऐसी जब जीवके स्वरूपकी दृष्टि पड़ती है तो बाह्य चीजोंसे कुछ लगाव नहीं रह जाता है। तो जब मैं अलग हूं तो मेरा जगत्में कुछ नहीं रहा।

जब मैं भीतरमें उठने वाले रागादिक भावोंसे न्यारा होऊं, परपदार्थोंसे प्रकट न्यारा होऊं और अपने आपमें यह भाव बने कि मैं केवल जाननमात्र हूं, जानन ही मेरा स्वभाव है। जाननके अतिरिक्त मेरा कोई काम नहीं है। मैं एक हूं, अछूता हूं, ऐसा विलक्षण पदार्थ मैं एकचेतन हूं, ऐसा ज्ञान यदि अपने आपमें आवे तो शान्ति प्राप्त होगी, अनुपम आनन्द प्राप्त होगा। यदि मैंने इतना अपने आपको जान लिया तो शुद्धस्वरूपकी पहिचान पूर्णरूपेण हो सकती है। इस अनोखे काममें बाधा डालने वाली कोई चीज है तो वह केवल विकल्प है। विघ्न डालने वाली चीज केवल विकल्प है।

भैया ! ये विकल्प सतानेके लिए आते हैं, विघ्न डालनेके लिए आते हैं। ये विकल्प ही दुःखोंकी परम्पराको बनाया करते हैं। सो अपने सहज स्वरूपका विचार कर विकल्पोंसे

रहित तथा रागादिक भावोंसे रहित अपने आपको देखूं व यह अनुभव करूं कि मैं केवल ज्ञानमात्र हूं। अपनेको केवल ज्ञानस्वरूप नजर आए तो अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी हो सकते हो। अगर अपने इस स्वरूपका पता नहीं है तो जगत्में रुलना ही बना रहेगा, शान्ति नहीं मिल सकेगी। यदि अपने स्वरूपको दृष्टि रहे, इस दुनियामें अपने आपके स्वरूपको जान लिया तो असीम आनन्द प्राप्त होगा। यदि व्यर्थकी बातें सोचते रहे तो सदा दुःख ही प्राप्त होते रहेंगे। बाह्य वस्तुयें मायामयी चीजें हैं। उन बाह्यवस्तुओंसे पूरा नहीं पड़नेका है। यदि अपने स्वरूपको जान लिया तो मैं सुलझ गया, फिर कष्ट मुझे सता नहीं सकते। इतना साहस हो जायगा कि यदि कभी कष्ट आ जायें तो उनको झेलनेके लिए तैयार हो जाऊंगा।

यह सब अपने ज्ञानस्वरूपके कल्याणका प्रताप है। अगर ज्ञान है तो सब कुछ है और अगर ज्ञान नहीं है तो कुछ नहीं है। जन्म हुआ, फिर मरण हुआ। फिर वही शरीर आ गया। फिर वही हाल हो गया। इस जन्म मरणके चक्रसे मुक्तिके लिए स्वाधीन उपाय करनेका काम है, भीतरमें ज्ञान उत्पन्न करनेका काम है। बनावट, दिखावट, सजावट इत्यादि का काम नहीं है। जिसमें अपने कल्याणकी भावना हो गयी है वह छिपे छिपे ही अपने आप सुखी हो जाता है, अपना शुद्ध धर्म कर लेता है।

एक बुढ़िया थी। उस बुढ़ियाका एक छोटा लड़का रुलिया था। रुलियासे बुढ़ियाने कहा कि बेटा जा बाजारसे साग खरीद ला। रुलिया बोला कि बाजार मुझे न भेज, क्योंकि बाजरमें मैं रुल जाऊँगा।

बुढ़िया बोली कि अच्छा बेटा! लो यह धागा कलाईमें बाँध लो तब फिर तुम नहीं रुलोगे। माँ बोली—बेटा, अब तुम निःशंक होकर जावो। जब तक यह धागा कलाईमें है तब तक नहीं रुलोगे। अब वह रुलिया धागा बाँधकर बाजार चला। भीड़ भड़क्करमें वह धागा कच्चा होनेके कारण टूट गया। अब तो रुलिया रोने लगा। बोला—देखो माँ मैंने तुमसे कहा था कि मुझे मत भेजो, मैं रुल जाऊँगा। लो अब मैं तो रुल गया। बुढ़िया बहुत परेशान हुई। बुढ़िया बोली—अच्छा बेटा तू सो जा, थक गया होगा। रुलियाके सोतेमें ही बुढ़ियाने धागा कलाईमें बाँध दिया। जब सोकर रुलिया जगा तो बुढ़िया बोली कि देख बेटा तेरा धागा कलाईमें है तो। रुलिया बोला कि हाँ माँ! मेरा मैं मिल गया।

देखो जैसे रुलिया धागेको न देखकर अपनी माँ से कहता है कि हाय मैं तो रुल गया, उसी प्रकारसे ये जगत्के मोही प्राणी अपने चैतन्यस्वरूपको न देखकर कहते हैं कि हाय मैं तो रुल गया। भैया! परवस्तुमें ज्ञान आनन्द ढूंढना ही तो रुलना है। हम चेतन पदार्थ हैं,

हमारा यह कर्तव्य है कि जो यह उपयोग तूफान मचा रहा है उसको अपने चित् स्वरूपसे बांधे रहो।

हम अपने ज्ञानस्वरूपको खोल ले और अपने आपको यह अनुभव करें कि मैं आनन्दमय हूं, विलक्षण पदार्थ हूं, किन्तु सर्व जीवोंमें एकस्वरूप ज्ञानमात्र पदार्थ हूं। दृष्टान्तके अनुसार यहाँ समझो कि जिनवाणी माताने मुझ बच्चेके उपयोगरूपी कलाईमें चैतन्यस्वरूपका धागा बांध दिया है। देखो वह बुढ़िया थी तो अब यह माँ भी बूढ़ी अर्थात् वृद्ध याने बढ़ी हुई सर्वोत्कृष्ट हो गयी है। अब तो बूढ़ी माँ तुमको समझा रही है। धागा बांधती है, बार-बार प्यार करके कह रही है कि जिसमें चैतन्यस्वरूप है वही तू है। जब चैतन्यस्वरूपकी दृष्टि टूट जाती है तब तू रुलता फिरता है। सो अब अपनेको देख और सुखी हो।

मैं अपने आनन्दकी तलाशमें इधर-उधर घूमता हूँ, फिर भी आनन्द नहीं मिलता है। अरे मैं तो स्वयं आनन्दमय हूं। मेरेमें आनन्द कहीं बाहरसे नहीं लाना है। मैं तो ज्ञान और आनन्दको लिए हूं। ऐसा ज्ञानमात्र, सबसे निराला जाननस्वरूप हूं, जानन ही मेरा काम है। जाननके अतिरिक्त मेरा अन्य कोई काम नहीं है। मैं सबसे अछूता एक विलक्षण पदार्थ हूं। इतना पता होनेसे मेरा कल्याण हो सकता है।

देशो देहश्च भिन्नात्मा विकारस्तस्य योगतः।
सर्वे भिन्नाः स्वतस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४७॥

देश और देह ये भिन्नस्वरूपी हैं। इनसे मेरा सुधार बिगाड़ नहीं है, किन्तु उनके योगसे अर्थात् उनको विषयभूत बनाकर इस आत्मामें विकार ही उत्पन्न किये जाते हैं। ये सबके सब मुझ इस सबसे भिन्न हैं। मैं यह स्व केवल चैतन्यस्वरूप हूं। इसमें तो विकारको भी अवकाश नहीं है, इसी कारण स्वरसतः आत्मामें आत्माके स्वरूपास्तित्वके कारण विकार नहीं होते। विकार होते हैं, किन्तु ये दर्पणमें प्रतिबिम्ब छायाकी तरह होते हैं ये अपने आधारमें जमाव नहीं रखते। इन परभावोंको अपनानेके ही अपराधमें यह विकार बढ़ता रहता है। यह विकार कैसे मिटे, तो इसका प्रारम्भ ज्ञानसे ही होता है और ज्ञान भी ऐसा ज्ञान जो ज्ञानके स्वरूपके ही जाननेमें समर्थ हो जाय। यह बात भी तब हो पाती है जब हम ज्ञानातिरिक्त भावोंके स्वरूपका परिचय पा लें। पृथक् प्रदेशवान् देह देशादिकी तो कथा ही क्या की जावे, जब तक आत्मभूमिमें प्रतिभास विकारभावोंका भी अङ्गीकार है तब तक वह अज्ञानी है।

देखो भैया! प्रत्येक मनुष्यके मनमें यह इच्छा होती है कि मैं पदार्थोंका सही-सही ज्ञान करूँ। किसी भी मामलेमें जब यह शक होता है कि जो मैं जान रहा हूं वह सच है या

नहीं। इसमें ही उसे आकुलताएं हो जाती हैं। और जब तक ये आकुलताएं रहती हैं तब तक उसे चैन नहीं मिलती है। उसे चैन तब तक नहीं मिलती है जब तक कि पदार्थोंको सही जान न जाय। इस कारण पदार्थोंको सही सही जानना ही आनन्द प्राप्त करनेका उपाय है। पदार्थोंको सही सही जाननेकी तरकीब क्या है? इस तरकीबको जैनसिद्धान्तने स्याद्वाद याने अपेक्षावाद माना है। अन्य वैज्ञानिक विद्वानोंने भी अपेक्षावाद नामसे कहा है। जैसे हम किसी मनुष्यके बारेमें सही जानकारी करना चाहते है तो उस मनुष्यके बारेमें नाना अपेक्षाओंसे ज्ञान करेंगे। यह जानेंगे कि यह अमुकका पिता है, अमुकका लड़का है, अमुक व्यापार करने वाला है, अमुक सभा सोसायटीका मेम्बर है आदि अनेक बातोंकी जानकारी करनी पड़ती है। बीसों बातें उसकी जानकारीके लिए ज्ञात करनी पड़ेगी। ये ज्ञान अपेक्षा लेकर है। जैसे यह पिता है तो सबका पिता नहीं है, यह पुत्र है तो सबका पुत्र नहीं। यह पुत्र तो अमुक बुड्ढेका है। पीछे अपेक्षाकी बात लगा लगाकर इसकी बात कही जा रही है। जैसे चौकीको जानना है तो कहेंगे कि यह चौकी कैसी है? तो यह ५ फिट लम्बी है, ३ फिट चौड़ी है और २ फुट ऊंची है तो ५ फिट लम्बाईकी अपेक्षा है, ३ फिट चौडाईकी अपेक्षा है और २ फिट ऊंचाईकी अपेक्षा है। किसी अन्य पदार्थकी जानकारी करना होती है तो नाना बातें जाननी होती है। कैसे सही जानूं और कैसे बात मैं स्वयं समझूं? इसका किसी एक हठसे ज्ञान नहीं होता है।

जैसे एक दृष्टान्त है कि ४ मनुष्य जो अंधे थे एक हाथीकी परीक्षा करनेको चले। एक अंधे ने पैर पकड़ा तो बोला कि अरे यह तो खम्भा जैसा है। एक अंधे ने कान पकड़ा तो बोला कि यह तो सूप जैसा है। एकने पेट पकड़ा तो बोला कि यह तो मोटे ढोलका जैसा है। एक अंधेने पूंछ पकड़ी तो बोला कि हाथी तो कटीला होता है। चारोंके भिन्न-भिन्न उत्तर आए। चारोंमें विवाद हो गया, लड़ाई हो गयी, मार पीट हो गयी। पेट पकड़ने वाला अंधा बोला कि हाथी तो ढोलका जैसा है, पैर पकड़ने वाला अंधा बोला—नहीं यह तो खम्भा जैसा मोटा है, पूंछ पकड़ने वाले अंधेने कहा—नहीं, नहीं यह तो कटीला है, कान पकड़ने वाले अंधेने कहा कि अरे नहीं यह तो सूपका जैसा है। इस तरहसे चारों अंधोंमें लड़ाई हो गयी। बादमें कोई सूझने वाला आया, बोला—हां, भाई सबकी बात ठीक है। उन्हें अपेक्षा समझा दी अन्य अङ्गोंका स्पर्श करा दिया। इसी तरह भैया! किसी पदार्थके बारेमें सच्चा निर्णय जब अनेक अपेक्षाओंसे किया जाता है तब सच्चा निर्णय कहलाता है।

अब भैया! आत्माके सम्बन्धमें जानकारी करना हो तो स्याद्वादका प्रयोग करना

कि यह आत्मा क्या पदार्थ है ? जिस आत्मामें ज्ञान और आनन्दभाव ही नजर आता है। ज्ञान और आनन्दस्वरूपको जाननेसे ही आत्माकी जानकारी होती है सो यह ज्ञानानन्दघन आत्मतत्त्वके बारेमें प्रश्न किया जाता है कि बतलावो यह आत्मा नित्य है या अनित्य, अर्थात् आत्मा सदा रहने वाली चीज है या मिट जाने वाली चीज है ? क्या उत्तर आयेगा ? आत्मा एक सत् है जो सदा रहने वाला है, कभी नाश नहीं होता है इस दृष्टिसे तो आत्मा नित्य है। कोई भी वस्तु हो वह सदा रहती है सिर्फ शक्ल बदल जाती है। हवाका पानी बन जायगा, पानीकी हवा बन जायगी, हवा गैस बन जायगी। कुछ भी परिवर्तन हों मगर जो चीज है उसका कभी नाश नहीं होता है। जो सत् है उसका विनाश नहीं होता है। यह आत्मा सदा रहने वाला है, अविनाशी है। मगर एक ओरसे देखो जो चीज होती है उसका प्रतिक्षण दशा में परिवर्तन हुआ करता है। जैसे कि वर्तमान समयमें आदमियोंकी कई शक्लें हैं। हम और आपमें देखो कितनी शक्लें बनी रहती हैं। विषयकषायोंमें रत रहते हैं। पशु पक्षियों इत्यादि नाना योनियोंमें भ्रमण किया करते हैं। यही उनकी परिणतियाँ हैं। जो बात उनकी अब हम देखते हैं वह सदा नहीं पायी जाती है। जब परिणतिके आधारको देखो तो अनेक परिणतियोंमें रहकर भी अपनी स्वरूप सत्तामें चलते हैं।

जैसे एक अंगुलीको कोई पूछे कि कैसी है तो कहेंगे कि अंगुली सीधी है, टेढ़ी है, नाना रूपोंमें बन जाती है, तो नाना रूपोंमें अंगुली बदलती है, सो ठीक है। मगर नाना रूपों में बदलने वाली अंगुली एक है कि नाना हैं वह तो एक है। जो पर्याय है वह माया है, अनित्य है और जो एक कुछ है वह परमार्थ है। परमार्थसे ब्रह्म और व्यवहारसे मायामें कैसा सम्बन्ध है कि ब्रह्मके बिना माया नहीं ठहरती और माया बिना ब्रह्म नहीं ठहरता। परमार्थसे यह सत्य है। असत्यके बिना सत्य नहीं ठहरता और सत्यके बिना असत्य नहीं ठहरता। सत्यके समयमें असत्य भी है और असत्यके समयमें सत्य भी है। असत्य तो यह विकल्प संसार है। तो आत्मा क्या है ? सत्यदृष्टिसे देखो, स्वभावदृष्टिसे देखो तो आत्मा नित्य है। और परिणतिकी दृष्टिसे देखो तो आत्मा एकरूपमें टिकने वाली नहीं मिली, अतः आत्मा अनित्य है।

अब बतावो आत्मा एक है कि नाना है। आत्मस्वभावको देखो तो आत्मा एक है, किन्तु जब पर्यायदृष्टिसे देखो तो नाना छायारूप बनाने वाले नाना रूपोंके कारण नाना बन गए और चतुष्टयकी अपेक्षासे भी आत्मा नाना हैं। इस कारण आत्माके बारेमें पूछो कि यह आत्मा एक है कि अनेक है तो उत्तर दोनों होंगे। आत्माका स्वरूप चैतन्य है, चित्स्वभाव

है। उस चिदानन्दशक्तिमें दृष्टि दो तो आत्मा एकस्वरूप मालूम होता है, कोई अन्य रूपोंमें नहीं मालूम होता है। देखिये भैया, इन शक्लोंका कितना भारी अन्तर पाया जा रहा है? आपका दिमाग और प्रकारका है, इनका दिमाग और प्रकारका है। भिन्न-भिन्न परिणतियाँ लिए हुए हैं। परमार्थदृष्टिसे देखो तो ये सब एकस्वरूप हैं। आत्मा केवल नजर नहीं आता है। जो उसका स्वरूप है वही स्वरूप मेरा है। जो आपका स्वरूप है वही सब जीवोंका स्वरूप हैं। स्वरूपकी दृष्टिसे एकका दूसरेसे कोई अन्तर नही नजर आता है। जिस दृष्टिसे स्वरूपमें अन्तर नहीं नजर आता है उस दृष्टिसे अहंकार मिट जाता है। इज्जत और पोजीशन अहंकारको बढ़ाते है। इसीसे योगी जन पोजीशनका विकल्प छोड़कर अपने आत्मस्वरूपमें रमते हैं।

'रमन्ते योगिनो यस्मिन्नति रामः'—जहाँपर योगीजन रमते हैं वही राम है। उसे ही आत्माराम कहते हैं। आत्माके साथ राम शब्द लगा हुआ है। वह आत्मा स्वरूपसे एक है, परन्तु जब अनुभवसे देखते हैं, परिणतिसे देखते हैं तो सुख, दुःख, भ्रम, शांति सबके न्यारे-न्यारे अलग-अलग होते रहते हैं, जुदा-जुदा अनुभव होता रहता है। जब परिणतिकी दृष्टिसे देखते हैं तो आत्मा अनेक नजर आते हैं। आपकी आत्माके बारेमे यह प्रश्न है कि आत्मा एक है कि अनेक हैं? उत्तरमें आता है कि स्वरूपदृष्टिमें तो आत्मा एक है और अनुभवकी दृष्टिसे आत्मा अनेक हैं।

भैया! आत्माके बारेमें जितने अधिकसे अधिक धर्म जान सकें उतने अधिक धर्म जानने चाहिएँ। फिर जाननेके बाद उन सबको छोड़ देना चाहिए और अपने आपमें अनुभव आवे कि मैं आत्मा ज्ञायकभावमात्र हूं। आत्माकी पहिचानके नाना उपाय हैं। नाना उपायों से जानो और फिर जब जान चुको तो विकल्प छोड़ दो, फिर आनन्द प्राप्त करो। जैसे भोजन बनाते समय कितना ख्याल रखना पड़ता है? घी इतना हो, शक्कर इतनी हो, हलुवा इतना बने आदि विकल्प हर तरहसे कर लेते हो, पर खाते समय यह ख्याल न रहे कि यह ऐसा बना है, यह ऐसा बनना चाहिए था। वहाँ तो केवल स्वादका ही अनुभव रहे। जैसे उस स्वादके अनुभवमें नाना जानकारियाँ करनी होती हैं उसी तरह आत्माके जाननेके लिए नाना जानकारियाँ करनी पड़ती हैं। यदि बाह्यकी उपेक्षा रहे, सबको भूलकर अपनेमें रमता रहे, ज्ञानज्योतिका अनुभव करता रहे, तो आत्माको यथार्थ जान जायगा व कभी मुक्ति प्राप्त कर लेगा।

यह तो अन्तर वृत्ति रहे और बाह्यमें हमारी वृत्ति क्या होनी चाहिए तो इसके लिए आवश्यक ६ कर्तव्य हैं—गृहस्थीका पहला काम क्या है कि हृदयमें 'प्रभुकी भक्ति रहे। प्रभु

की भक्ति बिना हृदय साफ नहीं होता। राग द्वेष आदि ऐबोंसे परे केवल ज्ञानमात्र उत्कृष्ट, परमपावन प्रभु उपयोगमें रहे। प्रभुका ही ध्यान करे तो हृदय स्वच्छ होता है, पवित्र होता है। इससे गंदगी दूर होती है और फिर धर्मके आचरणमें मन होता है। यही है तुम्हारी प्रभु भक्ति। गृहस्थीका दूसरा काम है गुरुकी उपासना करना। प्रत्येक गृहस्थको अपने गुरुकी उपासना करनी चाहिए। ऐसा निर्णय करे कि किसी भी प्रकारकी बाह्य भाववृत्ति न रहे सो शान्तिका मार्ग है। ऐसी वृत्तिसे रहने वालोंके संगमें ऐसी ही शिक्षा मिलती है। तीसरा काम है स्वाध्याय। प्रत्येक गृहस्थमें ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होना चाहिए। राग द्वेष हटानेका उपदेश करना, ध्यान करना, पुण्य करना, पाठ करना, यही तो स्वाध्याय है।

चौथा काम है गृहस्थ संयमसे रहे। जो मनके विचारभावोंमें न बह जाय। मन अगर सोचे कि इतनी सम्पदा चाहिए, इतना वैभव चाहिए। इन विचारोंमें अगर ढल गए तो यह तो असंयम है, यह तत्त्वकी बात नहीं है। संयम मनका निरोधमें है सो मनपर कन्ट्रोल रखना चाहिए। भैया! किसको खुश करनेके लिए इतने यत्न करते हो, अपने आपको खुश करो।

एक कथा आती है कि बाप बेटा कहीं जा रहे थे। साथमें एक घोड़ा था। बाप घोड़े पर बैठा हुआ चल रहा था और बेटा पैदल चल रहा था। दोनों जिस गाँवसे निकले, उस गाँवके लोग बोले कि देखो बाप कितना बेवकूफ है कि आप तो घोड़ेपर बैठा जा रहा है और बेटेको पैदल चला रहा है। बाप बेटेसे बोला कि अच्छा अब तू बैठ, मैं पैदल चलूँगा। अब बेटा घोड़ेपर बैठ गया और बाप पैदल चलने लगा। दूसरे गाँवसे निकले तो गाँवके लोग यह देखकर बोले कि देखो बेटा कितना असभ्य है। आप तो हट्टा-कट्टा घोड़ेपर चल रहा है और बापको पैदल चलाता है। अब तो दोनों घोड़ेपर बैठ गये। तीसरे गाँवसे निकले। गाँवके लोग बोले कि मालूम होता है कि घोड़ा घरका नहीं है। दोनों ही बड़े निर्दयी हो गये। इस तरहसे दोनोंको नाम धर दिया। अब तो दोनों ही पैदल चलने लगे। चौथे गाँवसे निकले तो गाँवके लोग देखकर बोले कि देखो दोनों ही बेवकूफ हैं। अरे जब पैदल ही चलना था तो घोड़ा साथमें क्यों लिया? सो भैया! अच्छा कहने वाले बहुत कम हैं और बुरा कहने वाले बहुत हैं। उनका विकल्प करना मूढ़ता है। अब यह सोचो कि मेरा कर्तव्य क्या है? लोग कैसे खुश होंगे? इससे क्या? भलाई तो अपनी प्रसन्नतामें है। तो भैया! गृहस्थीका चौथा कर्तव्य है संयम। शुद्ध खाना खाओ, न्यायवृत्तिसे रहो। जो कुछ भाग्यवश प्राप्त हो जाय उसी को प्राप्त कर संतोष करो। जितना कमाओ उसका कुछ हिस्सा दानमें खर्च करो, और अपना कुछ हिस्सा अपनी गुजरके लिए रखो। अत्याचार और विषयकषाय न हों यही संयम है।

गृहस्थका ५वाँ कर्तव्य है तप करना, तपस्या करना। गृहस्थको जो आत्मसे मिले

उसके यह ४-६ हिस्से कर ले। एक हिस्सा अपने गुजर-बसरके लिए रखो, एक हिस्सा अपनी विपत्तियोंके लिए रखो। अपने कमाए हुए धनके थोड़ेसे हिस्सेसे गुजर बसर करो। तृष्णा न करो, यही तप है। यहाँ खूब सोच लो। परिवारके लोग, मित्र जन आदि ये कोई साथ नहीं देंगे। यदि अपने आपमें रमो, तप करो तो कल्याण हो सकता है।

गृहस्थका छटवां कार्य है दान करना। गृहस्थको दान करनेकी रुचि रखना चाहिए तभी उपयोग योग्य रह सकता है और कल्याण हो सकता है। ये सब आवश्यक कर्तव्य करे। किन्तु अन्तरमें भेदविज्ञानकी भावना बनाये रहे। देश और देह ये सब मुझसे अत्यन्त भिन्न हैं। देशके कहनेसे वे सब पदार्थ आ गये। जो पदार्थ भिन्न क्षेत्रमें हैं और देहके कहनेसे वे सब पदार्थ आ गये जो मेरे एक क्षेत्रावगाहमें हैं। सो इन समस्त परपदार्थोंसे मैं भिन्न हूं। इस एकत्व विविक्त निजआत्मतत्त्वमें ही संतुष्ट होऊं, तृप्त होऊं। यही मात्र एक मेरा कर्तव्य कृत्य रह गया। इसके बाद तो मैं व्यक्त कृतार्थ हूं। उक्त ६ कर्तव्योंमें से देवपूजाका सम्बन्ध तो देवसे है और शेष ५ कर्तव्योंका सम्बन्ध अथवा सहयोग गुरुविहित है। देवपूजाका रहस्य भी गुरुप्रसादसे प्राप्त होता है। शिष्य और गुरुका सम्बन्ध पिता और पुत्रके सम्बन्धसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। जब कि पिता पुत्रको उत्पन्न करे और उसकी देहकी रक्षा करे, फिर भी उतना सम्बन्ध नहीं जितना कि साक्षात् शिष्य और गुरुका विलक्षण सम्बन्ध है। गुरु शिष्यका ज्ञान बनावे, पवित्र बनावे, जीवन किस तरहसे व्यतीत हो यह शिक्षा देवे। यही गुरुके कर्तव्य हैं। तभी तो शिष्य और गुरुका पवित्र सम्बन्ध है। इतिहासमें देखो बहुत सी शिष्य और गुरुके प्रति घटनाएँ हैं। गुरु द्रोणाचार्य और अर्जुनके सम्बन्धमें बड़ी बड़ी घटनाएं मिलती हैं। और और प्रकारके भी अनेक उदाहरण हैं। गुरु और शिष्यका सम्बन्ध बहुत ही पवित्र है। शिष्यका कर्तव्य होता है कि योग्य बने। शिष्य योग्य तभी बन सकता है जब कि तीन बातोंका पालन करे। वे तीन बातें हैं विद्या, विनय और ब्रह्मचर्य। इन तीनों बातोंका पालन करे। जीवन नियमसे उच्च बनेगा। (इस बीचमें भोंपा बिगड़ गया सो उसे दूर यहां वहां हटाया जा रहा था तब महाराज भी बोले कि देखो गड़बड़ हुआ यह भोंपा यह शिक्षा देता है कि जो गड़बड़ करता है उसकी यही दुर्गति होती है।)

परमार्थसे तो भैया! मुख्य बात विनयकी है। और काम जबरदस्ती किये जा सकते हैं। शिष्यकी जितनी विनय गुरुके प्रति हो उतना ही गुरु शिष्यसे प्रभावित होता है और काम तो जबरदस्ती भी करा लिए जा सकते हैं। मकान जबरदस्ती बनवा लिया, किसीका खेत जबरदस्ती जुतवा लिया, ये काम तो किए जा सकते हैं पर विद्याका काम जबरदस्ती नहीं हो सकता है। यह विद्या जबरदस्तीसे नहीं आती है। जितना ही शिष्यमें

गुरुके प्रति विनय होगा उतना ही गुरु शिष्यको अच्छी तरह बता सकेगा। और उतना ही अच्छा परिणाम हृदयमें शिष्य उतार सकेगा। जितनी ही शिष्यमें विनय होगी उतनी ही विद्या शिष्य गुरुसे प्राप्त कर सकेगा। जितना ही ऊधम (उद्दण्डता) शिष्यमें होगा, विद्या न प्राप्त हो सकेगी। मुख्य गुण विद्यार्थीका है विनय। गुरु जब कभी दिख पड़े तब प्रणाम करें, खड़े हो जावें यही विनयव्यवहार है। शिष्य अपने गुरुके प्रति यदि इतना कर सका तो वह वह अपने गुरुसे अच्छी शिक्षा प्राप्त कर सकता है। जब यह प्रवृत्ति होगी तभी विद्या गुरुसे खींची जा सकती है।

बच्चोंकी जिन्दगी तो बहुत अच्छी जिन्दगी होती है, बच्चे इसे नहीं जानते हैं। जो बच्चेसे बड़े हो जाते हैं वे सोचते हैं कि विद्यार्थी जीवन कितने महत्त्वका जीवन होता है? इस विद्यार्थी जीवनमें ही चाहे मैं अपनेको बना लूं चाहे बिगाड़ लूं चाहे मैं अपने जीवनका सुधार कर लूं चाहे बिगाड़ कर लूं। अपने जीवनको बनाने और बिगाड़नेका आधार यह विद्यार्थी जीवन ही है। कोई जरासी बातोंमें मजाक करें, किसी दूसरेकी खिल्ली करें अथवा किसीका महत्व न समझें तो वे अपने जीवनको सुधार नहीं पाते हैं। विद्यार्थी जीवनमें जैसी वृत्ति होगी वैसा ही आगे जीवन चलेगा। तो सारे जीवनकी जिम्मेदारी विद्यार्थी जीवनमें है। इस कारणसे स्वाधीनतासे विनयपूर्वक विद्याध्ययन करें तो इसीसे विद्यार्थीका हित है।

हमको तुम्हारे व्यवहारको देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। अभी यह बतलाया कि यहाँ हाल नहीं है तो घबड़ानेकी कोई बात नहीं है, हाल हो ही जायगा। पर अपने आपके कर्तव्य को सब लोग देखें तो जल्दी ही स्कूलका उत्थान होगा। इस स्कूलमें एक पीरियड धर्मका होना चाहिए। अंतमें मैं यही कहूंगा कि वे गुरुजन अपने शिष्योंको अपना पुत्र समझें। जब वे अपना पुत्र समझकर शिक्षा देंगे तो विद्यार्थी भी अपने जीवनको सफल बना सकेंगे। आज प्रसंगवश श्लोकके विषयसे कुछ विषयान्तर हो गया है, किन्तु विषयान्तर भी नहीं, विषय तो सर्व धर्मवाक्योंका आत्महित ही तो है।

नाकारो न विकल्पो न द्वैविध्यं न विपत्तयः।
स्वः स्व एव शिवस्तस्मात्स्वां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४८॥

इस मुझ आत्मतत्त्वमें न तो आकार है, न विकल्प है, न द्विविधा है और न कोई विपत्तियाँ हैं। यह मैं स्व तो मैं स्व ही हूँ, स्वयं शिवस्वरूप हूं, आनन्दस्वरूप हूं, मैं अमूर्त हूँ, रूपरसगंधस्पर्शरहित हूं। अतः मुझमें आकार कैसे हो सकता है? प्रदेशविस्तारकी अपेक्षा भी स्वयं स्वतः मेरा आकार नहीं है। संसार-अवस्थामें तो देहका आश्रय आकार है और मुक्त अवस्थामें कम बढ़ होनेका कारण न होनेसे त्यक्त देहके प्रमाण आकार रह जाता है। वैसे

स्वयं कुछ आकार नहीं है।

विकल्प एक औपाधिक विकार है, यह मेरा स्वरूप नहीं है, कर्मविपाकका निमित्त पाकर आत्मभूमिकामें विकल्प तरङ्ग उठती है। उसका अन्वयव्यतिरेक कर्मविपाकके साथ है, सो यह विकल्प भी मुझमें नहीं है। जब विकल्प भी मेरेमें नहीं है तो द्विविधा और विपत्तियाँ मुझमें हो ही कहाँसे सकतीं। आत्मा तो अपना एकत्व लिये हुए है उसमें द्वैतकी तो संभावना भी नहीं, और दूसरी वस्तुकी संभावनाके बिना विपत्तिकी भी संभावना नहीं।

यह आत्मा तो स्वयं साक्षात् धर्मस्वरूप है। धर्मके विषयमें समन्तभद्राचार्यने यह बताया है कि "संसारदुःखतः सत्त्वान्यो धरत्युत्तमे सुखे" जो प्राणियोंको संसारके दुःखोंसे छुड़ाकर उत्तमसुखमें धारण करता है उसको धर्म कहते हैं। लौकिक जनोंकी दृष्टि केवल इस भव तक रहती है। इस भवमें मजा मौज कैसे रहे? इस ओर दृष्टि रहती है तो विवेकी, ज्ञानी, साधु पुरुषोंकी दृष्टि अपने आत्मसत्त्वपर रहती है। मोही जन केवल इस नरपर्यायको ही अपना पूरा काल समझते हैं तो ज्ञानी जीव अपनेको अनादि अनन्त समझते हैं। इस कारण ज्ञानी धर्मकी रुचि करते हैं, धर्म धारण करते हैं जिससे संसारके दुःखोंसे छूटकर उत्कृष्ट आनन्द प्राप्त करते हैं।

धर्म क्या है? 'अहिंसा परमो धर्मः' ही उत्कृष्ट धर्म है और हिंसा अधर्म है। अहिंसा क्या चीज कहलाती है? इस अहिंसाका परमार्थस्वरूप क्या है? जो परिणाम अपने आपके ज्ञान और अनुकूलतामें पहुंचावें उस परिणामका नाम अहिंसा है। हिंसा न करनेका नाम ही अहिंसा है।

अहिंसा क्या है? अपने प्राणोंको दुःखोंमें न डालना विषयकषायोंको अपनेमें न समाना अहिंसा है। परमार्थमें हिंसा और अहिंसाका अभिप्राय यह है कि रागादि विकार होना हिंसा है और रागादि विकार न होना अहिंसा है और व्यवहारमें किसी जीवको न सताना अहिंसा हुई और जीवोंको सताना ही हिंसा हुई। व्यावहारिक हिंसा और अहिंसाका स्वरूप लोकमें अत्यधिक प्रचलित है। वास्तवमें अपने ज्ञानको निर्मल रखना अहिंसा कहलाती है और क्रोध, मान, माया, लोभ आदि परिणामोंका करना हिंसा कहलाती है। हम अहिंसा कर सकते हैं तो अपनेमें ही कर सकते हैं। अगर हिंसा कर सकते हैं तो अपनेमें ही कर सकते हैं। दूसरोंपर हिंसा और अहिंसा नहीं की जा सकती है। यह आपके वास्तविक स्वरूप की बात कह रहा हूं। कोई मनुष्य दूसरे जीवको सताए दुःखाए और यह कहे कि मेरे परिणाम तो निर्मल हैं, मेरा सतानेका भाव नहीं है तो यह नहीं माना जा सकता है। जो अपने स्वरूपसे हटकर बाहरमें प्रवृत्ति करता है, दूसरोंका दिल दुखाता है वह स्वयं अपने परिणाम

मलिन करता है । दूसरोंको कोई दुःख दे नहीं सकता है । जिसने अपने परिणामोंको मलि किया, दूसरोंका दिल दुखाया, उनको कहते हैं हिंसक ।

जो अपने ज्ञानको मलिन बनाए, दूसरोंको सताए उसे हिंसक कहते हैं । जो हिंस करता है वह अपने आपपर करता है, जो अहिंसा करता है वह अपने आप पर करता है हिंसा करने वाला अपने ही ऊपर अपना घात करता है, अपने को ही बरबाद करता है जगत्के जंजालोंमें अपने आपको फंसाता है ।

हिंसा ४ प्रकारकी होती हैं—(१) संकल्पी, (२) आरम्भी, (३) उद्यमी और (४ विरोधी । संकल्पी हिंसा वह है जिसमें इच्छापूर्वक अभिप्रायसे किसी जीवको दुःखी किय जाय, सताया अथवा मारा जाय । जैसे लोग शिकार खेलते हैं, किसी जीवको मारते हैं दूसरी हिंसा है आरम्भी । रसोई करनेमें पीसनेमें, कूटनेमें, घरके आरम्भोंमें जो हिंसा होती है उसे आरम्भी हिंसा कहते हैं । तीसरी हिंसा है उद्यमी । सावधानी रखकर नीतिका विचा करके रोजगार किया जाय फिर भी उसमें हिंसा हो जाय उसे कहते हैं उद्यमी हिंसा । कोई मनुष्य जान लेने आ जाये अथवा अपने परिवारमें किसीका शील भंग करने आ जाये ऐसे प्रसंगमें दुष्टका मुकाबला किया जाता है । उससे मुकाबला करनेमें जो घात हो जाये उसे कहते हैं विरोधी हिंसा ।

इन चार प्रकारकी हिंसाओंमें गृहस्थ संकल्पी हिंसाका त्यागी बन सकता है । तीन हिंसाओंका त्यागी नहीं बन सकता है । घरमें रहते तो चक्की चूल्हे आदि घरके कामोंको करने पड़ते हैं । कुछ उद्यम करते हैं । कोई दुष्ट प्राणी आक्रमण करने आवे तो उसका मुका बिला करना पड़ता है सो गृहस्थ तीन प्रकारकी हिंसाओंका त्याग नहीं कर पाता है । इस कारण तीन प्रकारकी हिंसाओंका दोष नहीं लगाता । यह नहीं कहा जा सकता है कि गृहस्थ को तीन हिंसाओंका दोष नहीं लगता । वे दोष करते हैं मगर हिंसाका त्याग नहीं है । चार प्रकारकी हिंसाओंका त्याग साधुजन कर सकते हैं । साधुजन केवल अपने ज्ञानकी रक्षामें लगे रहते हैं । उनको अपने प्राणोंकी परवाह नहीं रहती है । किन्हीं अटपट और ऊधमकी चिंता में नहीं रहते ।

गृहस्थ संकल्पी हिंसाका ही त्याग कर पाता है । संकल्पी हिंसाका त्याग हो तब गृहस्थीकी शोभा है । कितने ही लोग ततैयोंको छेद डालते हैं, साँप बिच्छू आदिको डंडेसे मार डालते है । चीटा, चींटी आदिको मार डालते हैं यही तो संकल्पी हिंसा है । हिंसक जीव जैसे सर्प, बिच्छू आदि हैं उनको जो मार डालते हैं वह भी संकल्पी हिंसा है । सर्प, सिंह आदि अपनेपर आक्रमण करें तो उनके मुकाबलेमें उनका वध हो जाय तो यह भी विरोधी हिंसा

ही है। मनुष्यकी शोभा दयाकी मूर्ति बननेमें है। दयावृत्तिसे ही मनुष्यकी शोभा है। और दया तब प्राप्त हो सकती है जब व्यसनोंका त्याग हो।

जुवा खेलना पहिला और सब व्यसनोंमें लगा देने वाला व्यसन है। मनुष्यको इस व्यसनका त्याग अवश्य करना चाहिए। चाहे जुवा खेलनेमें हारे चाहे जीते कदर कुछ नहीं रहती है। सदा हैरानी ही रहती है। देखा होगा कि बहुतसे लोग सट्टा खेलते हैं। सट्टा ऐसा रोजगार है जिससे खेलने वाले रात-दिन चिंतित रहते हैं। जो व्यक्ति जुवा खेलते हैं वे धर्म नहीं कर पाते। तो भैया ! इस जुवाका त्याग करनेसे ही भलाई है। दूसरा व्यसन है मांस-भक्षण। जीवोंपर दया किये बिना उद्धार नहीं होगा। मनुष्यका अन्नादिक सात्त्विक आहार है। उनको छोड़कर जो अभ्नादिक हैं जैसे मांस मदिरा इत्यादि उनका भक्षण करते तो ये धर्मके योग्य नहीं रहते। इसलिए मांसभक्षणका अवश्य त्याग होना चाहिये। शराब, मदिरा आदिका पान करना यह तीसरा व्यसन है, इसका भी त्याग होंना चाहिए। मदिराके छोटे-छोटे भाई भतीजे हैं—चरस, गांजा, तम्बाकू इत्यादि। इनमें नशाका कुछ न कुछ अंश जरूर ही है। भैया ! उनमे कितना अव्यक्त नशा रहता है। वे बुद्धिको भ्रष्ट कर देते हैं। कहीं गिर पड़े फिर उठे, फिर कहीं गिर पड़े, अपनी मां बहिन सबके सामने अपनी सुध भूल जाय उल्टा सीधा बके। तो भैया ! इनका त्यागना तो बहुत जरूरी है। शिकार खेलना चौथा व्यसन है। पशुवोंको मारकर खुश रहनेमें लोग अपनी वीरता समझते हैं। अरे अपनी वीरता तो अपने आपमें है। अपनी नीति और न्यायमें रह जाय उसमें ही वीरता है। शिकारकी झूठी वीरता में इतना बड़ा शौक हो गया कि लोग इसमें अपना बड़प्पन समझते हैं। विदेशसे कोई यहाँ आया तो लोगोंने शिकार खेलकर स्वागत किया। बतलाओ भैया ! कितना रिवाज बिगड़ गया है, मगर जो करे भागी वही है। अपने आप अपना ही लोटा छानना है, कुंआ और जगत नहीं छानना है। शिकार खेलना एक व्यसन है। व्यसन विपत्तियोंको लाने वाली एक चीज है।

५वां व्यसन है चोरी करना। यह आदत भी बुरी है। इससे तो निरंतर संकल्प-विकल्प शल्य ही बने रहते हैं। चोरी करनेमें तो भाव बिगड़ जाते हैं। मारे जायें, पीटे जायें, चित्त फंसा रहे, धर्मके योग्य कभी न हो सकें तो इसे छोड़ना जरूरी है। छठा व्यसन है पर-स्त्री सेवन। परकी स्त्री परकी है, खुदकी नहीं है। परस्त्रीसे स्नेह हो जाय तो वे कुशील पुरुष परस्त्रीसे मिलनेके लिए निरंतर आकुलित ही रहते, निरंतर दुःखी ही बने रहते। पर-स्त्री सेवनकी वजहसे ही झूठ बोलना पड़ता है, चोरी करना पड़ता है। परस्त्री सेवनसे सदा विपत्तियां हैं। इसलिए इसका त्याग अत्यन्त आवश्यक है। ७वां व्यसन है वेश्या सेवन।

जब तक यह व्यसन मनुष्यमें रहता है तब तक धर्मधारण करनेका यह पात्र नहीं । इस व्यसन का तो सर्वथा त्याग होना चाहिए । जब इन व्यसनोंका त्याग होगा तभी धर्मकी बात अपने आपमें समा सकती है ।

हाँ तो मैं कह रहा था कि अहिंसा परमो धर्मः । अहिंसा वह है कि अपने ज्ञानको निर्मल रखना, दूसरोंकी दृष्टि न रखना, विकल्प विचार न करना । भैया ! इन पंचेन्द्रियमें लीन न बनों । अपने आपको केवल चैतन्य स्वरूप, जाननमात्र निरखो, देखो तो यही है अपने ज्ञानका निर्मल बनाना तथा यही अहिंसा है । अर्थात् रागादिक उत्पन्न है तो उसका नाम हिंसा है । और न उत्पन्न हों तो उसका नाम अहिंसा है । अहिंसा करके अपने आत्मा का पोषण करना चाहिए जिससे मन शांत रह सके । शान्तिका उपाय ज्ञान और वैराग्य ही है । ज्ञान और वैराग्यके अतिरिक्त शान्तिका और उपाय हो ही नहीं सकता है । क्योंकि बाह्यपदार्थोंका सेवन तृष्णाके बढ़ाने का कारण होता है । दुःख दूर करनेका कारण नहीं होता है ।

भैया ! दो पड़ोसी थे । एक था सेठ और दूसरा था बढ़ई । सेठके यहाँ पर सूखी रोटियां बने और बढ़ईके यहाँ ३, ४ प्रकारका साग, दाल हलुवा पूड़ी इत्यादि बनें । सेठानी सेठसे बोली कि देखो तुम इतना पैसा पैदा करते हो फिर भी सूखी रोटियाँ बनती हैं और बढ़ई थोड़ा सा पैदा करता है फिर भी हलुवा पूड़ी खाता है । सेठ बोले कि तुम बड़ी भोली हो तुम नहीं जानती हो, बढ़ई अभी ९९ के चक्करमें नहीं पड़ा । सेठानी बोली—अरे तो ९९ का चक्कर क्या कहलाता है ? सेठने ९९ रु० की एक थैली रख ली । बोला सेठानीसे कि अभी तुम्हें पता पड जायगा । थैलीको बढ़ईके घरमें डाल दिया । अब तो थैली पाकर वह खुश हो गया । गिनने बैठा तो १०-२०-५०-९७-९८ और ९९ । सोचा भगवान् ने भेजा तो पर एक रुपया कम भेजा, नहीं तो मैं शतपति कहलाता । सोचा कि अब ३ रु० की जगह पर २ रु० ही खर्च करेंगे । फिर तीसरे दिन ख्याल आया कि अरे १०० तो उसके पास हैं फिर भी वह सुखी नहीं है । हजार हों तो सुखी हो सकता हूं । पर अभी ९०० चाहियें । सोचा कि तीन रुपया रोज कमाता हूं, सो उसमें ८ आने खर्च करूँगा बाकी २।। रु० जोड़ूंगा । अब तो वह कोदो, ज्वार आदि खाकर ८ आनेमें ही बसर कर लेता था । सेठ ने सेठानीसे कहा कि अब निरीक्षण करो । देखा तो आश्चर्यचकित हो गयी । भैया ! बाहरी पदार्थ आवें तो संतोष हो, यह सोचना बिलकुल बेकार है । शान्ति तो अपने ज्ञान और वैराग्य से मिलती है । दुनियामें यह देखना चाहिए कि हमारा साथी कौन है ? साथी तो भैया इस जगतमें कोई नहीं है । सब धोखा है इनके स्नेहसे तो दुःख ही मिलेंगे । जो अपने आपको

संयमसे रखता है वह विवेकी है, वीर है इस भोगका तजना शूरोंका काम है, वीरोंका काम है। ये भोग भोगते समय बड़े सुहावने लगते हैं पर उनके भोगनेके परिणाम कठिन निकलते हैं। सो भैया! इन भोगोंकी ओरसे उपेक्षा होनी चाहिए तब हम अहिंसाके पालने वाले कहला सकते हैं।

कोई अगर सोचे कि हम दूसरोंको नहीं सताते हैं, हमारे मकानका चार पांच सौ रुपया किराया आता है, अच्छा खाता हूं किसीको सताता नहीं हूं, किराया देने वाले किराया समयसे ही दे जाते हैं। तो क्या इतनेमें हिंसा रुक गई? देखो कितना इन्द्रियविषयोंमें बहे जा रहे हैं, विषयकषायोंमें ही बहे जा रहे हैं। अगर विषयोंसे ही प्रीति है, भोगोंमें ही बहे जा रहे हैं तो अहिंसा नहीं कही जा सकती है। जिसे अपने चैतन्यस्वरूपका पता नहीं उसने तो बहुत बड़ी हिंसा की। चैतन्यस्वरूपका पता पाए बिना गुजर नहीं चलेगी। जिसे अपने चैतन्यस्वरूपका पता नहीं उसका जगतसे निस्तार नहीं होगा। अहिंसाका अर्थ यही है कि हिंसाका त्याग करो और ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्वका अनुभव करो, प्रतीति करो, ऐसी वृत्तिसे जो रहता है उसे कहते हैं अहिंसा। ऐसी वृत्तिसे रहने वाले गृहस्थ जब कभी प्रवृत्तिमें आते हैं तब यद्यपि ३ हिंसाओंका त्याग नहीं कर सकते तो भी संकल्पी हिंसाका त्याग होनेसे यह गृहस्थ अणु अहिंसक कहलाता है। तो भैया! अपनी शान्तिके लिए अपने भावोंमें दृष्टि देना है। अपने भाव निर्मल रहें। भावोंकी निर्मलताका उद्योग यही है। जैसे प्रातःकाल कहा था कि ६ कर्तव्योंमें लगे रहें, उनमें प्रमाद न करें। लोगोंको चाहिए कि वे घरके कामोंमें अधिक न लगें। प्रभुकी भक्तिमें, गुरुवोंके सत्संगमें अपना समय लगावें, अपने मनको संयममें लगावें। व्यर्थका खर्च न करें जो कि कायदेके खिलाफ हो। परोपकारमें व्यय अधिक करें। सात्त्विक वृत्तिसे कार्य न करें और आसक्तिसे घरमें लगें तो यह मिथ्यात्व है। अपनी इच्छाका निरोध करें और दान करें तो उत्थान होगा। अपनेको विषयकषायोंसे बचावें, यही निवृत्ति शान्ति का कारण होगा। ऐसा पुरुषार्थ यदि कर सकें तो उत्थान होगा। अपनेको विषयकषायोंसे बचावें, यही निवृत्ति शान्तिका कारण होगा। ऐसा पुरुषार्थ यदि कर सकें तो उत्थान होगा।

कष्टे प्राणानुपेक्षन्ते ज्ञानं रक्षन्ति योगिनः।
ज्ञानं ज्ञाय प्रियं तस्वे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४६॥

योगीजन कष्ट आनेपर प्राणोंकी भी उपेक्षा कर देते हैं, लेकिन ज्ञानकी रक्षा करते हैं सो यह स्पष्ट जाहिर है कि ज्ञानीको ज्ञान ही प्रिय है। ज्ञानप्रिय होना भी चाहिये, क्यों कि एक तो ज्ञान शाश्वत सम्पदा है और दूसरी बात ज्ञान आनन्दका अविनाभावी है। पौराणिक दृष्टान्त भी अनेकों मिलते हैं, जिनसे उक्त बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है।

राजकुमार सुकौशल, गजकुमार आदि अनेकों युवक चढ़ती जवानीमें राज्यपाट वैभव घर त्यागकर ज्ञानदेवकी उपासनामें लग गये थे। उपासना कालमें उनपर अन्य जीवोंके द्वारा बड़े कष्ट पहुंचे। यदि वे चाहते तो जरासे ही बलप्रयोगमें आक्रान्ताको भगा सकते थे किन्तु उन्हें विकल्प पसन्द न था। विकल्प न हों, ज्ञान ज्ञानस्वरूपमें स्थित रहे ऐसी स्थिति के एवजमें यदि प्राण जाते हों तो जायें ऐसा उनका दृढ़ संकल्प था। प्राण तो औपाधिक विकारी तत्व है इससे तो आत्माकी बरबादी ही है। ज्ञान ज्ञानस्वरूपमें रहे यह आत्माकी आबादी है। आत्माकी इस आबादीमें इतनी समृद्धि है कि सर्वज्ञता आनन्दमयता, विकल्प-मता आदि सब ही कल्याण पूर्ण प्रगट हो जाते हैं।

भैया! जगत्में जितने भी दुःख होते हैं वे मात्र कल्पनासे है। मनुष्योंमें देखो हर एक जगह दुःख ही दुःख नजर आते हैं। अपनी बातें खुद सब देखते हैं। दूसरेको तो लगता है कि ये सुखी होंगे। यह बहुत सलोना है, यह बहुत बढ़िया है, यह बड़े मजेमें होगा ऐसे दूसरोंमें लगता है मगर अपने आपको देखो तो दुःख नजर आते हैं। अपने स्वरूपसे चिगे तो वहां दुःख ही दुःख नजर आता है। जो बात सही नहीं है और उसे सही मान लें तो दुःख मिलेंगे। प्रत्येक मनुष्यका जो किसी न किसीमें फंसा हुआ है, किसी न किसी की मोह मम-तामें है तो इसीसे दुःख आते हैं। कोई किसी गतिसे आया, कोई किसी गतिसे आया तिस पर भी ये जीव तो यहांसे जायेंगे ही, उन सबसे एक दूसरेका कोई संबन्ध नहीं। सब अपने अपने चतुष्टयमें हैं, न्यारे-न्यारे हैं आप आप हैं, वे वे हैं; कोई गुंजाइश नहीं, पर मानते हैं कि यह मेरा है। इसी कल्पनासे दुःख पैदा हो रहे हैं। अभी यहां बैठे बैठे बाहरमें दृष्टि कर लो तो बाहरमें ही फंस जाओगे। बाहरकी ही मोह ममतामें फंस जाओगे। बाहरमें ही मोहममता करके दुःखी हो जाओगे।

भैया! एक तरफ तो मोह ममता किया और दूसरी ओर सुख चाहते हो तो बत-लाओ दोनों बातें कैसे हो सकती हैं? जो चीज अपनी नहीं है उसे मानें कि मेरी है तो यह मूर्खता है। यदि मैं निज ज्ञानानन्द घनके उपयोगमें बना रहूँ, अपने ही स्वरूपके दर्शन करूँ तो परमात्माके दर्शन कर सकता हूं। परमात्माके दर्शनसे ही शान्तिमें रह सकता हूं, आनन्द से रह सकता हूं। भीतर ही सारा वैभव है उसको छोड़कर बाहरमें ही ढूंढ़ने लगे तो दुःख प्राप्त होगा।

जितने भी संत हुए हैं, वे अपने ही स्वरूपमें रत रहते थे। अपनेसे बाहरकी चिंता नहीं रखते थे। ज्ञानरूप अपनेको ही मानते थे। ऐसे वे संत थे। वे किसी भी मोह ममतामें नहीं रहे। इसी कारण आनन्दमग्न थे।

दुःख तो स्त्री-पुत्रादिके मोहमें ही हैं। यदि स्त्री-पुत्रादिके मोहमें रहकर दुःख कम हो जायें तो बतला दो। दुःख कम नहीं होंगे, दुःख तो बढ़ ही जावेंगे। अरे स्त्रीसे मोह किया तो दुःख है, स्त्रीने अपना मुंह फेर लिया तो दुःख। यदि स्त्री रूपवान है तो उससे दुःख मिलेंगे कि नहीं। बहुत दुःख मिलेंगे। यदि स्त्री रूपवान है तो मोह होगा, उसके पीछे अनेक परेशानियाँ होंगी, दुःख होंगे। यदि पुत्र कुपूत होगा तो उससे मुख मोड़ लोगे, पर यदि पुत्र सुपूत हुआ तो उसके पीछे मर मिटोगे, जिन्दगीभर श्रम न छोड़ोगे। बाहरी चीजें जितनी मिलेंगी वे सब दुःखोंके कारण ही होंगी, बाहरी चीजें सुखका कारण नहीं हो सकती हैं। आज आपने धन पाया, हजारका धन पाया, लाखका धन पाया, करोड़का धन पाया, राज-पाट पाया, बहुतसी पूंजी पायी। इन सबको चिपकाये रहनेसे इन सबको ही अपना सर्वस्व माननेसे क्या क्लेश मिटेंगे ? नहीं, इनसे तो क्लेश ही बने रहेंगे। दुःखोंको करने वाला भैया कोई दूसरा नहीं है। खुद ही सत्य बन जावो तो दुःख सब समाप्त होंगे।

मान लिया कि १०-२० लाख रुपयाका धन हो गया, कुटुम्ब परिवार हो गया, नाते रिश्तेदार हो गए तो क्या शान्त हो जावोगे ? नहीं। तब इन सबको पराया जानो और सुखी होओ। ये तुम्हारे सुखके साधन नहीं होंगे। इनसे तो क्लेश ही प्राप्त होंगे। दुःख तो सब जीवोंने अपने स्वरूपसे चिगकर व्यर्थ ही मोल ले रखा है। देखो सबकी अलग-अलग दुनिया है, कैसा किसका लगाव है, कैसा किसका चित्त है ? कुछ नहीं।

तो भाई दुःख कहाँसे मिले ? दुःख तो बाहर की दृष्टिसे ही मिले। दुःख अपनी कल्पनाओंसे मिले, अपने ख्यालसे मिले, अपने भ्रमसे मिले। अगर यह भ्रम छूट जाय तो अभी दुःख मिट जावेंगे। पर यह भ्रम सब अपने अपनेमें लिए हुए हैं। ऋषियोंने बताया है कि प्राणियोंकी आत्माका आदर तो विवेकसे है। जैसा मैं हूं तैसे सब हैं। सबमें साधारण स्वलक्षण अवगम हो यही ज्ञानका प्रकाश है। मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूं। यदि कीड़े-मकोड़े पशु पक्षी इत्यादि कोई भी जीव नजर आवें तो वे सब चैतन्यस्वरूप हैं, ऐसा तुम्हारा दृढ़ विश्वास हो तो यही ज्ञान है। योगी वह है कि किसीका घट-बढ़ विकृत परिणमन भी यदि हो रहा हो अगर वह अपनी ही तरह सबको शुद्ध चैतन्यस्वरूपमें देखे यही प्रभुपना है। सब जीवोंमें वही प्रभुका रूप देखे कि यह भी प्रभुका रूप है, यह भी शुद्ध चेतन है, ऐसा जो सब जीवोंमें देखे वही योगी है।

भैया ! हम क्या हैं ? इसको हम माप न सके, जान न सके, अपना महत्त्व न जान सके। अपनेमें जो प्रभुता विराजमान है, उसको जाने बिना क्लेश कैसे मिट सकेंगे ?

अपनेसे हटकर बाहरमें ही दृष्टि रहे तो ये तो बहुत बड़ी गल्ती है। इस गल्तीका

ही फल है कि जगह-जगह ठोकर खाते हैं। यह बड़ी गलती है कि मैं अपने आपको न जान सका, न समझ सका। मेरी इस भूलसे ही दुःख होते हैं। चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण कर आज हम आप मनुष्य हुए हैं, जिन जीवोंको ऊंचा स्थान मिला है, जिनका दिमाग अच्छा है, ज्ञान अच्छा है। जो दूसरोंको कुछ समझा सकते हैं, जिनसे हम कुछ समझ सकते हैं वे मनुष्य ही तो ये हैं। देखो यह कितना सुन्दर वातावरण है। इतने पर भी न चेते तो फिर विवेक कहां रहा ?

भय्या ! अपनी रक्षा ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माकी भक्तिसे होगी। एतदर्थ यदि अपने प्रभुकी भक्तिमें कुछ क्षण न व्यतीत हों मनुष्यका जीवन बेकार है। दुनिया कैसे चलती है ? कैसे क्लेश पाती है ? यह कहां तक देखा जाय। जो जैसे जैसे दृष्टि पसारे तैसे ही तैसे दिल धड़कता है। गांवोंमें देखो, जिलोंमें देखो। भारतमें देखो, विश्वमें देखो, सर्वत्र ही दुःख ही दुःख नजर आते हैं। दुःख कहां है ? दुःख बाहर नहीं है। देखिए सभी राष्ट्रोंको दुःख है कि कहीं और विशेष गड़बड़ न हो जाय। यह दुनिया रहेगी कि न रहेगी—ऐसे ख्याल आनेसे ऐसी कल्पनाएं करने से सभी दुःखी हैं। किसीको अभी बैठे बैठे ही ख्याल आ जाय कि अरे इस दुनियामें कुछ कर सकूं तो करूं। ऐसे ख्याल बना लेनेसे ही दुःख आ गये, और देखो यहां जो कुछ है वह सब भ्रम है, अपने लिए हितकर नहीं है, ऐसा सोच लेनेसे ही सुख हो गया। यदि किसीसे मोहपद्धतिका प्रेम करते हो, परिवार कुटुम्ब आदिसे प्रेम करते हो तो वह गंदा प्रेम है उस प्रेमसे आनन्द नहीं आ सकता है। सच्चा प्रेम तो वह है कि जिसे देखें चाहे मनुष्य हो चाहे पशु पक्षी हो, चाहे जो प्राणी हो उसे भगवानके जैसा, प्रभुके जैसा स्वरूप वाला समझ लें। यह समझ लें कि इनका स्वरूप भी प्रभुके जैसा ही है। जो यह है वह मैं हूं, ऐसा जानकर भीतरमें दृष्टि लगाकर प्रेम जगे तो उस प्रेमसे आनन्द है। उससे जो आनन्द प्राप्त होगा वह सच्चा और सही आनन्द होगा।

भैया ! जिन्दगी भर मोह किया, लड़े भिड़े, मोह करके रहे, राग द्वेष करके रहे तो बतलावो कोनसी शान्ति पैदा करने की चीज हुई ? ये सब कोई सुखके कारण नहीं हैं। कहते हैं कि धन हमें बहुत बढ़ाना है। अरे बतलाइए लखपति हो गए तो क्या आपका मरण नहीं होगा। क्या उससे ही शान्ति प्राप्त हो जावेगी। और गुजारा तो किसी तरह हो सकता है, पर वस्तुतः धनकी चाह जीवनके गुजारने के लिए नहीं है। जो यह कहे कि मुझे सेठ बनना चाहिए, मुझे धनी बनना चाहिए, मुझे इज्जत वाला बनना चाहिए बस इन्हीं विचारोंसे तो वह प्रभुसे दूर होता चला जा रहा है। इस दुनियामें जो मोह करके उनसे

लिपटे हुए चल रहे हैं वे भी अपनेको अपने प्रभुसे दूर कर रहे हैं। अरे वे संसारी मोही, कलंकित, मलीन लोगोंसे लिपटे हुए चले जा रहे हैं तो बतलाओ दुःख कैसे न हों ? प्रिय आत्मन् ! अपने प्रभुकी ओर आवो। इन परिवारके लोगोंकी आसक्ति छोड़ दो। उन्हें यह समझो कि अब ये गले पड़ गये हैं। सो गले पड़े बजाये सरे, करना पड़ता है, किन्तु मेरा यह काम नहीं है कि मैं उनका पालन पोषण करूं। मेरा तो काम यह है कि अपने प्रभुके भजन करूं। अपने आपके स्वरूपमें ही बसना है, ऐसा जानकर संतोष प्राप्त करें, यही ज्ञान है।

वास्तवमें यह जानों कि सब जगत्के जीव एक समान हैं। यही आत्मस्पर्शी ज्ञान है। यह मैं हूं, ऐसे ही ये हैं, ये सब प्रभुके रूप हैं—ऐसा जानकर जगतके सब जीवोंसे प्रेम करो। यही प्रभुसे प्रेम उत्पन्न करनेका उपाय है। मैं यहां पर जो कुछ देखता हूं सब जीव उस प्रभुके ही रूप हैं।

ज्ञानमस्तीति कर्तृत्वं भोक्तृत्वं च ततोऽन्यके।
त्रिकालेऽपि न तत्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५०॥

यहाँ जीवोंमें कर्तापन क्या है और जीवमें भोक्तापन क्या है ? यह कहा जा रहा है यानी जीव करता क्या है ? अन्य पदार्थ तो अन्य ही हैं, उनकी सत्ता तो जुदी है। परपदार्थों में यह जीव कुछ कर नहीं सकता है। जैसे कोई आदमी दूसरे आदमीको कितना ही डाँटे, गुस्सा करे फिर भी उस आत्माका कुछ कर लेगा क्या ? उस आत्माका कुछ नहीं कर लेगा। जो कुछ करेगा वह अपना ही करेगा। कोई दूसरेका कुछ नहीं कर सकता है। घरके बाल-बच्चोंपर कितना ही नाराज हो जावें, कितना ही गुस्सा हो जावें पर उनका कुछ कर लेंगे क्या ? उनका कुछ न कर सकेंगे। घरके बाल-बच्चे कहना कुछ मान गए तो क्या तुमने कुछ किया। अरे उनके मनमें आ गया तो कर दिया और यदि मनमें न आवे तो न करेगा। कोई द्रव्य किसी द्रव्यका कर्ता नहीं है। तुम जो केवल अपना ज्ञान बनाते रहते हो। कभी तो तुम सही ज्ञान बनाते रहते हो और कभी विकृत बनाते रहते हो। ज्ञान बनाया, जानकारी की, इतना ही मात्र कर्तापन है और बतलाओ ज्ञानसे भोग किसका किया ? जानकारी कर ली उस रूप परिणम गये यही भोगा। ये जो विकल्प उत्पन्न होते हैं वे ज्ञानके ही बिगड़े रूप हैं। यह अनुभव ज्ञानसे ही किया करता है ना ? ज्ञान होता है तो इतना ही तुम्हारा कर्तापन है। जितना ज्ञान होता है उतना ही भोगते हैं।

भैया ! परके कर्तृत्वकी दृष्टि हटाओ। मकान बनवाना है, दुकान बनवानी है, लड़कों

का पालन-पोषण करना है आदि ये सब मिथ्यात्व बुद्धियाँ हैं। तुम तो केवल अपना परिणमन करने वाले और भोगने वाले हो। अपनेको भूलकर तुम कुछ भी हित नहीं कर सकते हो। अपने आपको समझो तो ज्ञानका दीपक जल जायगा याने अपनी ओर उपयोग लगाओ तो दुनियासे निराले ज्ञानमय निजको पहिचान लोगे। इससे ही ज्ञान होता है। बस इतना ही तो कर्तापन है। ज्ञान होता है उतना ही भोक्तापन हुआ। तीनों कालोंमें भी अन्य पदार्थको न कर सकोगे और न भोग सकोगे। जब तुम भोजन खाते हो तो स्वादमें आनन्दमग्न हो जाते हो। जब उस भोजनमें आपने ज्ञान बनाया कि भोजन बढ़िया है, मीठा है तो उस ज्ञान में आनन्द मिला कि भोजनमें आनन्द मिला? आनन्द तो उस स्वादके अनुभवसे ही मिला। तीन कालोंमें भी तुम अन्य पदार्थोंके न कर्ता हो और न भोक्ता हो। अरे बाह्यपदार्थोंके करने की बुद्धि मिटाओ। यह विश्वास हो जाय कि मैं दूसरेका कुछ कर नहीं सकता हूं। तो स्व-तन्त्र आत्मतत्त्वके दर्शन कर सकता हूँ।

अरे जब दूसरे पर मेरा अधिकार नहीं तो मैं उनका कुछ कर ही क्या सकता हूं? फिर क्रोध करना नादानी ही तो है। दूसरे तो दूसरे ही हैं, वे अपने विचारमें मग्न हैं, हम अपने विचारमें चल रहे हैं। फिर घमंड करनेका क्या काम? यही मैं सब ज्ञानकी जड़ हूं। समझो कि मैं अपना ही कर्ता हूँ और अपना ही भोक्ता हूं। जब यह समझ लिया तो छल कपट करनेका कोई काम ही नही है। दूसरे तो दूसरे ही हैं वे हमसे जुदा हैं, उनका तो मैं कुछ कर ही नहीं सकता हूं। तब फिर छल-कपट करनेकी बात ही क्यों है? जब सारी दुनिया न्यारी-न्यारी है, सब जुदा जुदा हैं तब फिर छल-कपट क्यों हो? चाहे जितना ही धन जोड़ लेवें, मगर सुखी न हो सकेंगे। कितना ही धनका संग्रह कर लें, पर शांति न प्राप्त हो सकेगी। हम अपने ही कर्ता हैं और अपने ही भोक्ता हैं। अन्यके न तो हम कर्ता हैं और न अन्यके भोगनेका अधिकार ही हैं। सो तृष्णा करना भी व्यर्थ है। इस कारण भैया! सार इसीमें है, कल्याण इसीमें है। सारे पदार्थोंसे हटकर अपने ही स्वरूपको देखकर, अपनेमें ही रत होकर सुखी हो।

दृश्यं न दर्शकस्तत्त्वमुभे संयोगजे दशे।
किन्तु ज्ञायकभावोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।५१।।

देखो देखने वाली और दिखने वाली ये दो चीजें हैं। तो ये दोनों ही तत्त्व नहीं हैं। दुनियामें ये दृश्य और ये दर्शक दोनों ही सारकी चीज नहीं हैं। देखने वाले हैं ये, ये भी संयोगजन्य दशा है और दिखनेमें जो आ रहा है वह भी संयोगजन्य दशा है। ये जो देखने वाले हैं और जो दिखनेमें आ रहे हैं वह सब अनेक पदार्थोंके संयोगसे उत्पन्न दशा है। तत्त्व नहीं है, परमार्थ नहीं है, वास्तविक नहीं है। सब संयोगसे उत्पन्न हुए हैं। जीव और कर्मों

के संयोगसे यह शरीर बन गया। परमाणु और परमाणुका संयोग हो तो दिखने वाले ये भौतिक बन गए। तो दिखनेमें जो भौतिक आ रहे हैं वे और देखने वाले असमानजातीय पर्यायें ये सब सार चीजें नहीं हैं। मिट जाने वाली हैं। देखने वाले जो मनुष्य हैं, पशु-पक्षी हैं वे सब जीव संयोगजन्य हैं। ये सब शुद्ध तत्त्वकी चीजें नहीं हैं। जीव और कर्मके सम्बन्ध से ही यह शरीर बन गया।

भैया! तीन चीजें द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म इनका समुदायभूत यह सब जीव-समूह नजर आ रहा है। इन्हींको कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर कह लो। भावकर्म हुए, रागद्वेष हुआ, इसके कारण बना द्रव्यकर्म और इन दोनोंका फल मिला शरीर। यह सब निमित्तनैमित्तिक भाववश हो रहा है। इसमें शुद्धतत्त्व क्या करें? तब फिर किसी पर क्या आपका वश चल सकता है? क्या शरीरको मिटानेका वश चल सकता है? नहीं चल सकता है। इसी प्रकार कर्मोंके मिटानेका वश नहीं चल सकता है। रागद्वेषोंके मिटाने का वश चल सकता है। तो भैया! कर्मोंके कारणभूत ये ही कारण शरीर हैं, शरीरके कारण द्रव्यकर्म हैं, द्रव्यकर्मके कारणभूत भावकर्म हैं। अपना परपदार्थोंपर कोई वश नहीं है। सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर तथा अन्य ये दिखने वाले जो कुछ हैं उनमें कोई तत्त्वकी चीज नहीं है। और देखने वाले जो लोग हैं उनमें कोई तत्त्वकी चीज नहीं है। वह सब तो संयोगजन्य दशा है। परन्तु मैं तो स्वतः सत् हूं, स्वतः सिद्ध हूं, ज्ञायकभावरूप हूं, ज्ञानज्योतिमात्र हूं। ऐसा ज्ञानमात्र अपने आपको निरखकर, अपने उपयोगमें लेकर अपने आप सुखी होओ। बाहर में सुखकी आशा करना व्यर्थ है। तृष्णा करना व्यर्थ है। उन गदे नाक बहाने वाले स्त्री पुत्रोंमें ही अपनेको फंसाये रहनेसे कुछ मिलनेका हो तो बतलावो। ज्ञानस्वरूपमें परमात्मतत्त्व है, उसका ध्यान न हो तो मनुष्य जन्म बेकार है। अपनी जिम्मेदारी अपनेमें समझो। अपना शरण अपनेको ही समझो। इस जीवका सार तो निश्चयमें आत्मा है और व्यवहारमें प्रभुभक्ति है। प्रभुभक्ति और आत्मानुभव हो तो अपना आत्मा ही शरण है। आत्मामें प्रभुभक्ति है। प्रभु भक्ति कारण है और आत्मभक्ति कार्य व ध्येय है। आत्मभक्ति करना यही सुखका मार्ग है।

यदा देहोऽपि नैवाहं नुस्त्र्यादेस्तर्हिका कथा।
ज्ञानमेवास्ति देहो मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५२॥

जब मैं देहमें ही नहीं हूं तब फिर मैं यह सोचूं कि मैं मनुष्य हूं, स्त्री हूं तो बड़ी गल्ती है, क्योंकि पुरुष और स्त्रीके अवयव, अंग व चिन्ह शरीरमें ही हैं और शरीर मैं नहीं हूं तब फिर मैं स्त्री हूं, पुरुष हूं यह कैसे हो सकता है? आत्माकी बात कही जा रही है, जो इस

देहके अन्दरकी आत्मा है, जीव है वह न स्त्री है और न पुरुष है। इसका सारस्वरूप तो ज्ञान ही है। ज्ञानके सिवाय आत्मामें और क्या पाया जाता है? ज्ञानमात्र मैं हूँ ऐसा विश्वास न होनेके कारण इस जीवकी बाहरमें दृष्टि फैल गयी है और अपनेको नानारूप मानते हैं। सो जरा-जरासी बातोंमें विकार होता है, छल-कपट आदिकी बातें सूझती हैं। पुरुष स्त्रीके वेषमें आनेका कारण अपने स्वरूपका अज्ञान है। भैया! अमृतमय तो यह खुद है, आनन्दस्वरूप तो यह खुद है, पर इसको अपने स्वरूपमें दृष्टि नहीं रह जाती सो दुःखोंकी बहार छा जाती है। देखो दुःख है केवल ख्याल भर। ख्यालके सिवाय और कोई दुःख नहीं है। दुःख आते हैं क्या अन्य कहींसे? ख्याल बनाया, दुःख हो गए और अच्छा विचार बना लिया, दुःख मिट गए। दुःखी होना, सुखी होना अपने ज्ञान पर निर्भर है। मगर ऐसा ज्ञान सर्वसाधारणमें पाये कहाँ? जिस ज्ञानसे आनन्द आता है वह ज्ञान बना रहे यह बात हो कैसे? किसकी शरण जायें, किसको अपनी शरण मानें, किसकी बात करें कि हमें ज्ञानकी ही प्रेरणा मिले। जगत में ऐसे मिलने वाले कठिन हैं, नहीं मिलते हैं। जिससे बात करें वे रागद्वेष बढ़ानेकी ही बात करेंगे। समता और ज्ञानकी सहज भी बात नहीं करेंगे। तब फिर क्या शरण रही? किसके पास जाकर कहें, रोवें कि मेरे ज्ञानकी कुंजी ठीक कर दो ताकि मैं सुखी हो जाऊँ।

भैया! ज्ञान सही बनाए बिना सुख नहीं हो सकता है। अपनेसे बाहर न देखो, सुख तो अपने शुद्ध ज्ञानसे ही मिलता है। यहाँ बैठना है, वहाँ उठना है, मैं धनी हूँ, मैं गरीब हूँ, मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हूं, ये सारे विकल्प अज्ञान हैं, और इन दशाओंरूप अपनेको माना तो मिथ्यात्व है। इससे आनन्दकी आशा कहाँ है सो सुखके वास्ते लोग घर बसाते हैं, परिवार बढ़ाते हैं, दुकान, मकान आदि ठीक करते हैं। सब कुछ श्रम शान्तिके ही लिये करते हैं, मगर शान्ति नहीं मिलती है। आप लोगोंको यह अनुभव भी है कि शान्ति प्राप्त करनेका यह उपाय ही नहीं। शान्तिका उपाय केवल आत्मस्वरूपका सही ज्ञान करना है। ब्रह्मका ज्ञान कहो, परमात्माका ज्ञान कहो, आत्माका ज्ञान कहो, ज्ञानका ज्ञान कहो यही शान्तिका उपाय है। शान्तिका स्वसंवेदनातिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है। अगर यथार्थज्ञान बन जाय तो यह इस जीवकी सबसे अधिक विभूति है। ज्ञान जाग जाय इससे बढ़कर अन्य कोई वैभव नहीं है। इसके भीतर लालसाकी व्याधि नहीं होती। लालसा बाहर ही बाहर है। यह परिवार मेरा है, यह धन मेरा है, ऐसे मोहमें जो आसक्ति हो गयी है वह ठीक नहीं है। इस मोहमें ऐसा साम्राज्य छाया है कि जगत्के जीवोंको सुख नहीं नजर आता है।

जो भाव परपदार्थोंको अपना माने उसे मोह कहते हैं। जो इस देहसे मोह करता है वह भी मोह ही है। यह शरीर तो जला दिया जायगा, नष्ट हो जायगा। यह आत्मा यहाँसे

चला जायगा। कहाँ चला जायगा, यह इस जीवकी करतूत पर निर्भर है। जिसने जिन्दगीमें कुकर्म किए उसकी दुर्गति है और जिसने सत्कर्म किए वह सद्गतिमें जायगा। मैं तो ज्ञानमात्र हूं। यह ज्ञानस्वरूप ही मेरा शरण है। इस कारण इस ज्ञानमात्र अपने स्वरूपको देखो और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होओ।

यत्र वासो रतिस्तत्र तत्रैकत्वं ततो निजे।
उषित्वा ज्ञानरूप्याहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५३॥

जहाँ पर उपयोगका निवास होता है वहाँ रुचि होती है। और जिसमें रुचि होती है उसे ही में तन्मयता होती है, ऐसी बात है ना। जिसमें ज्ञानीका चित्त बसा रहता है वही स्वरूप ग्रह्य होता है और जिसमें रुचि है उसमें ही तल्लीनता होती है। जगत्के बाह्य पदार्थों में बहुत बसे और फल कुछ प्राप्त नहीं हुआ, उल्टा घाटेमें ही रहे। अच्छा बतलाओ ५०-६० वर्ष घरकी सेवामें ही रहे, बूढ़े हो गए और बूढ़े होनेके बाद देख लिया ना, कितना लाभ पाया ५०-६० वर्ष घिसटे। परिवार, दुकान आदिमें मोह किया। अंतमें रहा क्या इसके पास देख लिया? ऐसे ही समझ लो कि अंत तक जो-जो करते हैं मोहके, रागके, द्वेषके काम कर डाले, पर अंतमें रहेगा क्या इसके पास? तो यह बाह्य जगत् बसाने लायक नहीं। उससे हटकर अपने निजस्वरूपमें ही निर्वाह करो।

निजस्वरूपमें निर्वाह क्या है? अपने ज्ञानस्वरूपको जानते रहो कि मैं ज्ञानमात्र हूं। ऐसा ही निरंतर ध्यान करो।

भैया! घरमें, परिवारमें तथा शरीरादिमें न मोह करो। परिवार, घर आदिमें क्षण भर भी अपने चित्तको न उतारो, कुछ समय बादमें ही वे सब मिट जावेंगे। दो मिनट तो अपने ज्ञानके प्लेटफार्मको साफ कर लो, अज्ञानका विकट आवरण इन मोही प्राणियोंके पड़ा हुआ है। अगर तू अपने यथार्थस्वरूपके परिचयका यत्न करते करते मोह और अज्ञानको दूर कर ले तो कल्याण निश्चित है। बाहरकी चीजें आयीं, गयीं, फिर आयीं, फिर गयीं, इस तरहसे मिट जाने वाली है। मैं तो सबसे निराला हूं, मैं सब जीवोंसे न्यारा हूं, ऐसा अपने आपका ख्याल करो उनकी चाह क्यों करता है जो दुःख देने वाले हैं? धन-वैभव सम्पदाएँ अपने आप मिलती हैं और एक दिन उनका वियोग जरूर होगा। चाहे इसी जन्ममें वियोग हो जाय, चाहे वह संपदा यहाँ धरी ही रही और स्वयं मर जाय इस तरह वियोग हो जाय। इस सम्पदाका वियोग जरूर होगा और जब वियोग होगा तब क्लेश जरूर होंगे। ऐसी बाह्य सम्पदाओंकी आशा करनेमें क्या सार है?

अच्छा भैया! सम्पदा प्राप्त कर लो, सुख देख लिया तो खूब सोच लो कि सम्पदा

पानेसे क्या सुख मिला या मिलेगा ? सुख नहीं मिलेगा बल्कि केवल दुःख मिलेगा। अपने आगे सम्पदाएँ लग जाएँ तो दुःख, सम्पदाएँ यहीं धरी हैं और स्वयं मर जाये तो दुःख। इस दुनियामें जो दुःख होते हैं वे सम्पदाके पापके कारण ही होते हैं। तो फिर उन सम्पदाओंको चित्तमें लानेसे कौनसा लाभ हुआ ? बाह्यको चित्तमें बसानेसे कोई लाभ नहीं हो सकता है। अपने ज्ञानस्वरूपको ही अपने चित्तमें लावो। अपना ज्ञानस्वरूप अपने चित्तमें आवे तो उसका वियोग होता ही नहीं, सो आनन्द ही रहेगा। यदि मेरा ज्ञान लौकिक वैभव सम्पत्तियोंमें लगा तो सदा क्लेश ही रहेंगे। यदि अपना शुद्ध ज्ञानस्वरूप ही नजर आवे तो आनन्द ही आनन्द है। बाह्य सम्पदाओंसे मोह छोड़कर अपने अंतरंगमें जो सम्पदा है उसमें चित्त दो। यह चीज आपकी खुद आत्माकी बात कही जा रही है। यहाँ वहाँकी चर्चा, गप-शपमें तो शान्ति नहीं मिलेगी। शान्ति तो मिलेगी अपने ज्ञानको सही बनानेमें ही। अपने ज्ञानको सही बनाना एक तपस्या है। अगर अपना ज्ञान सही नहीं है तो बाह्य वासनायें सताती हैं।

ये मोही प्राणी अपने आपसे निकल-निकलकर बाहर दौड़ते हैं। उस दौड़से हटकर अपने आपको सही मार्गमें केन्द्रित करो यही बड़ी तपस्या है। स्वाधीनतामें रत रहनेसे ही आनन्द है। सो भैया ! उन सब पदार्थोंसे हटकर अपने आपके स्वरूपमें ज्ञानदृष्टि दो और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होवो। अपने सुखके लिए दूसरोंकी आशा न करो। दूसरोंसे सुख नहीं मिलेगा। दूसरोंकी आशा करने पर, दूसरोंकी प्रतीक्षा करने पर तो दुःख ही आ पड़ेंगे। इन प्राणियोंके ऊपर जो दुःख आ जाते हैं वे दुःख कहीं बाहरसे नहीं आ जाते हैं। वे स्वयं ही खोटी कल्पनाएं करके दुःखी हो जाते हैं। तो अन्य सब ख्याल छोड़ दो और अपने प्रभुके शुद्ध ज्ञानस्वरूपको देखो तो आनन्द है।

भैया ! बाह्यरुचि छोड़कर साधुकी तरह केवल अपने आत्मारामसे रिश्ता जोड़ो तो तुम्हारी शोभा है। ज्ञानी जीव तो लोक वैभवमें खेद करते हैं, दुःख मानते हैं कि हाय मेरा ऐसा परिणाम हो रहा कि अनहोनी बातकी कल्पना की जा रही है। बाह्यपदार्थोंके संचयसे मुझे लाभ नहीं हो रहा है, वे सब आनन्दकी बातें नहीं हैं, उनसे हटकर ज्ञानमात्र अपना स्वरूप अनुभवमें आवे तो यह ही आनंदका उपाय है। दुनियामें मेरे लिए मैं ही हूं। आखिर अपने ही दिलसे समझ लो और दुःख मिटा लो। दुःख मिटानेका और कोई उपाय नहीं है। वह उपाय खुदका स्वरूप ही है। रागादिक चलते हैं चलने दो, उनमें लगे न रहो। प्रवृत्ति तेरे उपयोगसे न होनी चाहिए। इन सब बातोंसे खेद ही मानना पड़ेगा। बाह्यमें लगनेसे खेद ही मानोगे। विषयोंमें खुशी मानते हो और शान्ति चाहते हो तो यह बच्चोंका तो खेल नहीं। खेदकी बात है कि मोहमें ही लगे रहते हो। बाहरमें ही खिंचाव रहता है, तो ये तो

मिटनेकी बातें हैं। अपनेको मोहसे हटाओ। मोहसे ही अपना विनाश है। तो भैया! बाह्य पदार्थोंमें अपने चित्तको न बसाओ। यदि बाह्यमें ही अपना चित्त लगाओगे तो अपने ज्ञान-स्वरूपको खो बैठोगे। भैया! अपने ज्ञानस्वरूपमें ही बसो। दुःख बुरे नहीं होते हैं। उन दुःखोंसे न घबड़ाओ। यदि दुःख आ रहे हैं तो प्रभुके स्मरणका अवसर चल रहा है। आनन्दघन अपने आपके बाह्यस्वरूपकी ओर झुको तो आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा। सुखोंमें मत फूलो। ये सुख प्राणीको पतनकी ओर ले जाते हैं। इस अपने चित्तको विषयोंमें न बसाओ, अपने ज्ञानस्वरूपमें रुचि करो कि मैं ज्ञानमात्र हूं। ऐसा अपने आपमें ज्ञान बनाओ। और ऐसा ज्ञान बनानेके लिए व्यवहारमें न्याय प्रवृत्ति करना होती है। अपने चित्तको अपने स्वरूपमें लगाओ। कदाचित् कुछ करना पड़े तो न्यायकी प्रवृत्ति हो। बस यहाँ शान्ति प्राप्त करनेका एक यही उपाय है।

यज्ज्ञानेन जगन्मन्ये तत्र मे किं तदादृतिः।
स्वादृतिः सा स्ववृत्तिर्हि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५४॥

जिस ज्ञानके द्वारा मैं इस सारी दुनियाको देखता हूं, इष्ट अनिष्ट मानता हूं, उसमें आदर नहीं होना चाहिए। जिस ज्ञानके द्वारा हम कुटुम्ब, परिवार, धन, दौलतको देखते हैं उस ज्ञानका आदर नहीं होना चाहिए। घर मिला, परिवार है, कुटुम्ब है, सम्पदा है ये सब तुम्हारे दुःखोंके कारण हैं। वह ज्ञान तुम्हारे दुःखके लिए बना। विकृत ज्ञानके द्वारा जिस जगतको देखते हैं उस जगतमें आदर नहीं है। ये घर, परिवार, मित्र जन आदि सुखके कारण नहीं हैं। सुखके मायने वह असली सुख जो इस आत्मामें स्वतः भरा है।

भैया! आनन्द बाहरी चीजोंमें नहीं मिलता है, किन्तु मोहकी महिमा विचित्र है, सभी जीव अपनेसे बाहर जा रहे हैं। इसे देख, उसे देख, इससे भला माना, उससे भला माना, बस इसीमें सब ज्ञान खर्च होता है। अपने आपकी यह नहीं जानते कि मैं क्या हूं? स्त्री मेरी है, पुत्र मेरा है आदि ऐसे ही उल्टा परिणाम कर रहे हैं मगर अपने आपकी सुध नहीं कर रहे हैं। अपने आपका ही आदर करो, अपनेमें ही झुको, अपनेको ही अपनेमें मानो यही तुम्हारा आदर है। जब इस बातका पता होगा तभी कल्याण है बाकी सब झंझटके कारण हैं। दूसरोंको मानो तो निमित्तापेक्षया ऐसा मान लो कि ये मेरे दुःखके लिए हैं।

सबसे निराला जो यह जीव है उस जीवके लिए कौन क्या कर सकता है? सब जुदी-जुदी बातें हैं। जिनका बाह्यपदार्थोंमें ही लगाव है, वे अपना काम नहीं करते हैं। सब पराये ही काम करते हैं, जो किए ही नहीं जा सकते हैं। अपना तो काम है शान्ति प्राप्त करनेका, पर लगाव बाह्यमें लगा हुआ है इसमें शान्ति नहीं मिलती। भैया! दुःख आते हैं

तो उनमें घबड़ानेकी क्या जरूरत ? दुःख कहीं नहीं हैं, किन्तु ख्याल कर लेनेके ही दुःख हैं। केवल ख्याल बदल दिया तो दुःख मिट जायेंगे। सो इस जगतकी उपेक्षा करके और अपने आपकी ओर दृष्टि करके अपने आप सुखी होओ।

क: कस्य कीदृशः क्वेति देहमप्यविशेषयन्।
सहजानन्दसम्पन्नः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५५॥

यह देह क्या है, यह शरीर क्या है, यह शरीर कैसा है, मैं कैसा हूं ? किसी प्रकारकी विशेषता न कर। मैं तो सबसे न्यारा ज्योतिस्वरूप हूं। मेरा स्वरूप आनन्दमय है। आत्मा का स्वरूप ही आनन्द है। सो उस आनन्दस्वरूपको ही निरखो और सुखी होवो। भैया ! एक कहावत है कि लेवा मरे कि देवा, बलदेवा करे कलेवा। अरे ये जो मिले हैं—घर, दौलत स्त्री, पुत्र इत्यादि इनके पीछे अपने ऊपर कितने दुःख आते हैं। यह सब अपने आपको न देखनेसे अशान्ति है, आकुलताएँ हैं। यदि जीव विषयोंकी वासना रखे तो वह भगवानका भक्त नहीं है। भगवानकी भक्ति और गुरुवोंकी सेवा, ये दोनों करते रहो, मोह और ममताकी बातें कम करते जावो। मोहसे, ममतासे पार न लगेगा। जितना स्त्रीसे, पुत्रादिसे मोह करोगे उतना ही क्लेश बढ़ते जावेंगे। जितना ही बाल-बच्चोंसे, स्त्री-पुरुष आदिसे मोह करोगे उतने ही क्लेश लगेंगे। अपने ही आनन्द स्वरूपको देखो आपका स्वरूप ही आनन्दमय है। कहीं भी बैठे हो, कहीं भी रहते हो, कैसी भी स्थिति हो पर अपने आत्मस्वरूपको देखो। मैं सबसे निराला हूँ, ज्ञानानन्दघन हूँ ऐसा मनन कर अपने आपमें रमकर सुखी हो जावो।

भैया ! दूसरोंकी आशा न करो। तुम्हारी बात ये मान लेंगे तो तुम्हें आनन्द होगा ऐसी आशा न करो। उनसे आनन्द नहीं होगा। आनन्द होगा तो तुम्हारे विचारोंसे तुम्हारे ज्ञानसे ही होगा। अन्य बातोंसे आनन्दकी आशा न करो। देखो ये सब धर्मकी बातें हैं। धर्मकी बात तो हृदयमें तभी लग सकती है जब अपना हृदय साफ हो, किसी प्राणीपर विरोध न करो तब हृदयमें धर्मकी बात लगती है। पाप न करो, किसीका दिल न दुखाओ। ऐसा आचरण करो कि तुम्हारा जीव धर्मात्मा बने। हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, दूसरे की स्त्रीको ताकना, अन्याय करके धन कमाना आदि ये पाप हैं इन्हें न करो। कोई दयाहीन जन किसी जीवको मार डाले तो उसे क्या कष्ट नहीं होते होंगे ? अगर जरासी सुई चुभ जाती है तो कितना कष्ट होता है ? फिर जब दूसरे जीवोंको मारा जाय तो उन्हें कितना कष्ट होता होगा ? ये बातें तो तब दूर हो सकती हैं जब वे लोग मांस खाना छोड़ दें। जब तक मांसका बिल्कुल त्याग नहीं होगा तब तक ये बातें दूर नहीं हो सकती हैं। चाहे पंगतमें मांस खाते हों, चाहे देवी देवतावोंमें बलि चढ़ाते हों, जब तक इनका त्याग नहीं होगा तब तक धर्मके

स्वरूपका दर्शन भी नहीं होगा। तो भैया ! इन चीजोंका त्याग होना जरूरी है। जो लोग सुखी होना चाहते हैं उनका सर्वप्रथम कर्तव्य है कि "आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।" यदि ऐसा सद्व्यवहार कर लिया जाय तो आत्मोन्मुखताका अवसर होगा। यदि ज्ञानमार्ग प्राप्त हो गया तो सबसे विविक्त निज आत्मतत्त्वमें रमकर स्वयं ही स्वयंमें स्वयंके लिये सुखी हो सकते हैं। सो भैया ! सुखके लिये सम्यग्ज्ञान पानेका यत्न करो।

—•—

अध्याय १

नश्वरे चेन्द्रियाधीने सुखे सारो न विद्यते।
का रतिस्तत्र विज्ञस्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१॥

ये संसारके सुख जिनके लिए जगत्‌के प्राणी दुःखी हैं, पराधीन हैं, परिणाम करते हैं उस संसारके सुखोंमें प्रथम ऐब तो यह है कि ये विनाशीक हैं। कौनसा सुख जान रहे हो, अपने-अपने समयकी याद कर लो। कौनसे सुख सदा रहे हैं ये तो विनाशीक ही हैं। आज जिनसे सुख मिलता है वे भी नष्ट होंगे। सो इन इन्द्रिय सुखोंमें बड़े दुःख हैं। यही तो ऐब हैं। ये सुख ६ प्रकारके हैं। एक तो सुख है स्पर्शनका, कर्मोंमें विषयसेवनमें मैथुनमें ये प्रथम इन्द्रियोंके सुख हैं। दूसरा लोग सुख मानते हैं स्वादका, खाने-पीनेका भला लग गया, मीठा लग गया आदि। तीसरा सुख माना जाता है सूंघनेका, बाह्य चीजें सूंघनेमें आयें तो उनमें मोह है। चौथा सुख माना जाता है देखनेका। देखनेमें कोई सुन्दर रूप आ जावे, कलात्मक चीज देखनेमें आ जावे उसको देखकर खुश हो रहे हैं। पाँचवां सुख है राग रागानुभावोंकी आसक्तिका। छठवां सुख है मनका। कीर्ति चाहिए, प्रशंसा चाहिए, इज्जत चाहिए, सम्मान चाहिए। ये ६ प्रकारके सुख दुनियामें हैं। ये ही सब ६ प्रकारके सुख विनाशीक हैं। वास्तविक जीवकी बात कही जा रही है। इन सुखोंमें भैया ! दूसरा अवगुण है कि ये सुख इन्द्रियोंके आधीन हैं, पराधीन हैं। इन सुखोंमें लगनेसे ये सभी जीव बरबाद हो जाते हैं। जिह्वाके द्वारा मीठा लग गया, कटु लग गया आदि जो सुख हैं वे वास्तविक सुख नहीं हैं। ये सुख पराधीन हैं। आनन्द तो तब है जब स्वाधीन हों, जब अधिकारकी बात हो वे सारे सुख

इन्द्रियोंके प्राधीन हैं। इनमें सार नहीं है। कोई कहे पराधीन हों तो रहने दो सुख तो कुछ क्षण मिल जाता है। सो भैया! ये सुख जितने क्षण हो उन क्षणोंमें भी उन सुखोंमें सार कुछ नहीं है, हितकी बात कुछ नहीं है। उन सुखोंमें पड़नेसे परिणाम केवल पछताना ही मिलेगा। इन संसारके सुखोंमें पड़नेसे केवल जीवन भर पछताना ही बना रहेगा। जिनका उन सुखोंसे सम्बन्ध है वे पछताते ही तो होंगे। सुखोंके सम्बन्धको निकाल दो, यदि कुछ कल्याण न किया, इन सुखोंमें ही पड़े रहे तो इस संसारमें पछताना ही बना रहेगा।

इन संसारके सुखोंमें सार रंच भी नहीं है। हे आत्मन्! देख तो तू ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानमय है, ज्ञान ही तो तेरा काम है। ज्ञानके अतिरिक्त और तेरा कोई काम हो नहीं है। यदि संसारके सुखोंसे ही प्रीति रही तो संसारमें रुलना ही बना रहेगा। हे आत्मा! तू ज्ञान-मय होकर भी यदि संसारके सुखोंसे प्रीति करे तो बेकार है यह जीवन। भैया! इन संसार के सुखोंकी प्रीति छोड़ दो, तू तो स्वयं ही आनन्दस्वरूप है। परकी ओर दृष्टि जाये तो विघ्न ही हैं। संसारके सब सुखोंसे अपने उपयोगको बाहर हटाओ। केवल अपने स्वरूपको ही देखो तो वहाँ क्लेशोंका नाम ही नहीं है। दुःख तो संसारके सुखोंके ही भोगनेके कारण ज्यादा भोगने पड़ते हैं। तू इन्द्रियज सुखोंकी प्रीतिको तज। यदि तजते नहीं हो तो तुम भक्तिके काबिल नहीं हो।

यदि स्त्रीप्रसंग ज्यादा करते हो तो कहीं बीमार हो गए, कहीं डाक्टर वैद्योंकी शरण में पड़े रहे दुःख भोगोगे। रसना इन्द्रियके वश होकर मात्रासे अधिक खा लिया तो फिर डाक्टर वैद्य तो मूँगकी ही दालको पाँच सात दिन तक खिलायेंगे। यदि सुखोंमें ही आसक्त रहे तो धर्मके पात्र नहीं रहोगे। गंधीकी दुकानमें नाकमें दम हो जाती है। यदि सुख ज्यादा भोगोगे तो सुख भोगनेके काबिल न रह जावोगे। एकांकी नाटक, थियेटर, सिनेमा आदिको टकटकी लगाकर देखोगे तो आँखें कमजोर हो जावेंगी। कुछ समय बाद वह गंदा मालूम होगा। इसी तरह गंदा भजन उसी रागसे बार-बार सुना तो कह देंगे कि बस रहने दो, बंद कर दो। कहाँ तक सुनेंगे? इन सुखोंसे प्रीति करनेमें हित नहीं है। इसलिए यही निर्णय करो कि संसारके सुखोंमें मनुष्यदेह बड़ी दुर्लभतासे मिलती है, इसे पाकर विषयोंमें मत भाग लेना।

एक दृष्टान्त आता है कि एक सिरका खिजैला अंधा आदमी था। उसने सुन लिया कि इस नगरीमें जो अंधा व्यक्ति आयगा वह जो माँगेगा वही मिलेगा। यह सुनकर वह अंधा उस नगरीमें जाना चाहता है। नगरीमें एक कोट फैला हुआ था। वह अंधा कोट पर हाथ धरे चलता जाता है जहाँ दरवाजा मिलता है वहीं वह खाज खुजाने लग जाता है। वह उस

कोटको छूते हुए चला जा रहा है। जिस वक्त दरवाजा आया उस वक्त वह अपने हाथोंसे अपना सिर खुजलाने लगा। अब तो वह दरवाजा निकल गया। इसी प्रकार फिर आगे जब दरवाजा आया तब फिर अपने हाथोंसे सिर खुजलाने लगा। इसी प्रकार यह जगत्का प्राणी ८४ लाख योनियोंमें अनेक बार चक्कर काटता आया, भ्रमण करता आया, मगर जब मनुष्य जन्म पाया तब अपने हाथोंसे अपना सिर खुजलाने लगा। अब वह मनुष्य योनि भी बीत गयी और दूसरी योनियोंमें यह जीव चला गया। अरे भैया, जरा इस मनको तो वशमें करो। यदि अनर्गलमें पड़ गए तो यह उचित काम नहीं। इस संसारके सुखोंमें न पड़कर प्रथम कर्तव्य यह है कि अपने ज्ञानस्वरूपको देखो, प्रभुके स्वरूपको देखो, अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूपकी ही शरण गहो, इसमें ही सुख प्राप्त होगा।

यतोऽन्ते क्लेशदाः सर्वे सम्बन्धा विपदास्पदाः।
ततः संगं परित्यज्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥ २ ॥

दुःखोंकी जड़ क्या है ? सब दुःखोंकी जड़ है दूसरोंसे सम्बन्ध। जहाँ सम्बन्ध जुड़ा तहाँ क्लेश उत्पन्न हुए। ये सम्बन्ध ही क्लेशोंके देने वाले हैं। पति पत्नीके सम्बन्धसे सुख दोनोंको ही न मिलेगा। ऐसा तो कोई प्रोग्राम होगा नहीं कि दोनों एक साथ ही मर जावें, तो सम्बन्धकी बात देखो समस्त क्लेशोंके देने वाले हैं। यदि पत्नी गुजर गयी तो उसके वियोगमें पति दुःखी होगा और यदि पति गुजर गया तो उसके वियोगमें पत्नी दुःखी होगी। तो ये स्त्री, पुत्र, वैभव इत्यादि जीवनमें दुःख देने वाले ही हुए। इनके सम्बन्ध तो क्लेश ही देनेके मुख्य कारण हैं। कौनसा सम्बन्ध और समागम है जो क्लेश न दे।

भैया ! भले ही थोड़ासा मौज मान लें, मगर अन्तमें ये संग क्लेश ही देते हैं। कोई सम्बन्ध ऐसा नहीं जो अन्तमें दुःख न देगा। सब अन्तमें नियमसे क्लेश ही देने वाले हैं। इस कारण इस समागमको पाकर ऐसा विचार रखो कि ये विनाशीक हैं और अंतमें क्लेश ही देने वाले हैं। ऐसे विचार बने रहें तो जीवनमें संतोष होगा। यदि ममताकी कुबुद्धि ही बनी रहे तो जीवनमें सदा दुःख ही बने रहेंगे। यदि किसी चीजको यह मान लें कि मेरा है तो मन मलीन हो जायगा और उससे क्लेश ही बने रहेंगे। इसलिए यदि जिनके वियोगका दुःख न उठाना हो उनके संयोग समयमें हर्ष न मानो, फूले फले न फिरो। अगर संयोगमें हर्ष मानोगे तो क्लेश ही रहेंगे। तो ये समस्त सम्बन्ध अन्तमें क्लेश ही देने वाले हैं, विपत्तियोंके ही साधन हैं। केवल एकाकी शुद्धस्वरूपकी श्रद्धा कर सको तो मुक्तिका मार्ग मिलेगा और यदि किसीसे सम्बन्ध बनाए रहे तो उससे क्लेश ही मिलेंगे।

दो भाई थे। उन दोनोंमें बड़ी ही मित्रता थी। एक साथ ही वे दोनों स्वाध्याय

करते थे। एक भाई ने दूसरेसे कहा कि जो पहले मर जावे वह दूसरेको मंदिरमें शिक्षा देने अथवा ज्ञान देनेके लिए आवे। एक भाई गुजर गया वह देव हो गया। अब देव भाई ने आकर दूसरेसे कहा कि भैया! ये संसारके जो सुख हैं, परिवारके जो लगाव हैं, स्त्री पुत्र इत्यादिके जो मोह हैं वे बड़े ही दुःखदायी हैं। उन्हें तो त्यागना ही चाहिए। दूसरे ने कहा वाह, मेरी स्त्री बड़ी ही आज्ञाकारी है, मेरा पुत्र बड़ा ही विनयशील है, वे मुझे जीवन भर सुख देने वाले हैं। बोला—अच्छा कल १२ बजे तुम बीमार बन जाना, मैं तुमको ज्ञान देनेके लिए वैद्य बनकर आऊंगा, तभी तुमको बता दूंगा। वह भाई बीमार बन गया और दूसरा देव भाई वैद्य बन गया और गांवकी गलियोंमें दवा बेचने लगा। घर वाले लोग बोले इसे ठीक करदो। वह वैद्य पुकार रहा था कि लो भाई दवा खरीदो। मेरे पास अत्यन्त पेटेन्ट दवा है। अब उस बीमार व्यक्तिके घर वालोंने उसे बुला लिया। वैद्य बोला कि एक गिलास जल मंगा दीजिए। एक गिलास जल आ गया। वैद्यने अपनी झोलीसे झूठ मूठकी दवा निकाली, मानो राख हो उसे उस एक गिलासके पानीमे मिला दिया। घर वालोंसे कहा कि लो दवा पियो। घरके लोग बोले—अरे बीमार कौन है, और दवा किसको पीनेके लिए कह रहे हो? वैद्यने बताया कि यह दवा ही ऐसी है कि जो पियेगा वह मर जायेगा और इसके बदलेमें वह ठीक हो जायगा जो कि बीमार है। पहले उसकी मांसे कहा कि लो दवा पियो। मां ने सोचा कि मेरे अभी तीन लड़के हैं। यदि मैं मर गयी तो इन तीनों लड़कोंका सुख न देख सकूंगी। बापसे भी कहा गया तो उसने भी इसी प्रकार सोचा। स्त्री से कहा तो उसने भी सोचा कि अभी हमारे तीन लड़के हैं यदि मैं मर गयी तो उनका सुख न देख सकूंगी। इस तरह सोचकर घरके किसी भी सदस्य ने वह पानी नहीं पिया। वैद्यने कहा कि क्या मैं पी लेऊं तो घरके लोग बोले कि हां हां पी लेवो। उस वैद्यने दवाको पी लिया। अब तो वह बीमार व्यक्ति उठ कर खड़ा हो गया और समझ लिया कि वास्तवमें मेरी शरण अन्य कोई नहीं है। जगतके जितने भी सम्बन्ध हैं वे सब विपत्तियोंके ही साधन हैं।

तो भैया! इन सम्बन्धोंको छोड़ो। छोड़नेका मतलब यह नहीं कि अपना घर त्याग दो। मैं यह नहीं कह रहा हूं, पर सम्बन्ध छोड़नेका मतलब यह है कि किसी अन्यसे सम्बन्धकी बुद्धि न हो। ऐसा विश्वास हो और अपने अन्तरसे मोहको हटाओ तो शान्ति प्राप्त हो सकती है। ऐसे शुद्ध ज्ञानमात्रकी प्रतीति रखो, अज्ञानताको हटाओ, अपने ज्ञानके उपाय जुटाओ और शास्त्र पढ़ो। अपने समस्त बाह्य उपयोगोंसे चित्तको हटाकर विश्राममें ठहर जाइए।

यौवनं जरया व्याप्तं, शरीरं व्याधिमन्दिरम् ।
समृत्यु जन्म कः सारः ? स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३॥

बतलाओ इस लोकमें सार चीजें क्या हैं ? यौवन है तो वह बुढ़ापेके साथ लगा हुआ है । शरीर है तो व्याधिका घर है । जन्म है, मृत्यु भी साथमे ही है । कौनसे ऐसे पदार्थ हैं जो सारभूत हैं । सो बाहरके कोई भी पदार्थ हों, पैसा हो, धन हो, मित्र हों, परिवार हो कोई भी इस लोकमें हितरूप नहीं है । उनमें कुछ है तो केवल क्लेश ही है । उनमें अगर आसक्ति है तो दुनिया भरके झगड़े, विवाद आदि खड़े हो जाते हैं । यदि सच्चा ज्ञान नहीं है तो हमें ही वे दुःख उठाने पड़ेंगे । दुःख भीतर स्वभावमें नहीं होते हैं, केवल ख्याल बनाकर ही दुःख होते हैं ।

सोचो यहाँ सार चीज क्या है ? सारकी चीज यहाँ कोई नहीं है । सभी मोहकी चीजें हैं । इन झूठे मोहोंमें तो क्लेश ही क्लेश बने रहेंगे । मान लिया कि ये हमारे बच्चे हैं, यह मेरा घर है, यह मेरा परिवार है, हम धन सम्पन्न हैं तो ये सब मोहकी बातें हैं । कौनसा सुख होता है मोह करके सो बतलाओ । तुम सुखकी तलाशमें फिर रहे हो बाहर ही बाहर, तो यह तो क्लेशका ही उपाय है ।

धनका मोह किया, हर प्रकारकी चोटें सही, पराधीनताकी चोटें सहीं तो कितना पछताना पड़ेगा ? मोहमें फंस गए इसीसे दुःख हो गए, नहीं तो दुःख कहाँ हैं ? मोहके मायने है अज्ञान । इस मोहसे तो सही ज्ञान नहीं रह सकता । सही ज्ञानका न रहना ही मोह कहलाता है । सो मोहसे अशान्तिके अलावा और कुछ नहीं मिलता है । यह मेरा है, यह पराया है, यह इष्ट है, यह अनिष्ट है इत्यादि ही मोह है । अरे जीव जीव सब एक स्वरूप हैं, उनमें छंटनी करनेसे क्या लाभ है ?

यह मेरा है, यह पराया है ऐसी छंटनी करनेका नाम ही मोह है । जैसे स्वप्नमें देखी हुई चीज झूठी नहीं मालूम होती है उसी तरह मोहकी नींदमें जो कल्पनाएँ पैदा होती हैं वे भी झूठी नहीं मालूम होती है । यह मेरा ही तो लड़का है, यह मेरी ही तो स्त्री है, यह मेरा ही तो परिवार है इत्यादि ही मोहकी झूठी कल्पनाएँ हैं । अरे वे तेरे कुछ नहीं हैं, वे सब न्यारे-न्यारे हैं । ये मोही अशांतिके तो काम करते हैं और शान्ति चाहते हैं तो यह कैसे हो सकता है ? तो इन विकल्पोंसे तो दुःख ही सदा रहेंगे । सो कहते हैं कि सारभूत चीज क्या है ? सारभूत चीज कुछ भी तो नहीं है ।

सारभूत चीज तो आत्मा ही है और आत्माकी खबर दिलाने वाली प्रभुकी मूर्ति है । उस भगवानकी शान्तिपूर्ण मुद्राके दर्शन करें तो शान्तिका मार्ग प्राप्त हो सकता है । अपने

आत्मस्वरूपमें ही रमो तो शान्तिका मार्ग प्राप्त कर सकते हो। शांतिका मार्ग प्राप्त करनेका उपाय तो अपने आत्मस्वरूपका दर्शन ही है। भगवानकी शान्तमूर्तिके दर्शन करके अपने आत्माकी खबर होती है। सो यह प्रभुकी भक्ति तुम्हारी शरण है। हम सब जीवोंका धर्म ही शरण है और धर्म ही सार है। धर्मके सिवाय हितरूप और कुछ नहीं है सो अपनी-अपनी बातें तोल लो। ये जो परिवारके लोग हैं उनसे मोह न करो। अपने प्रभुका ही स्मरण करो तो शांति प्राप्त हो सकती है। यदि अपने प्रभुको भूल गए तो संसारमें रुलना ही पड़ेगा। सत्यकी झलक न मिलेगी, जीवनकी बरबादी ही होगी। यदि कुटुम्ब, परिवार आदिका भाव आवरण होगा तो ज्ञान ढक जायगा, सोए हुए ही रहोगे। इन मोहकी चीजोंमें सार कुछ नहीं है, लाभ कुछ नहीं मिलेगा। इसलिए हित चाहने वालेका कर्तव्य यह है कि वह पर-पदार्थोंके मोहका त्याग करे अपने सहज स्वरूपका दर्शन करे तो अपने आपमें आ जायगा और अपने आपमें ही नियमसे सुख होगा।

येषां योगो वियोगो हि नियमेन भविष्यति।
तेभ्यो नु किं मुधारविन्दम् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४॥

जिन पदार्थोंका संयोग होता है उनका नियमसे वियोग होता है। बतलाओ ऐसी कौनसी चीज है जो मिल जाती हो, पर कभी अपनेसे जुदा न होती हो। क्या कोई ऐसा पदार्थ है? अरे औरोंकी तो बात ही क्या जो शरीर मिला है वह भी इससे जुदा हो जाता है। फिर मिली हुई चीजका क्या हर्ष करना, क्या फूले समाना। उसका तो वियोग जरूर होगा। और वियोग जब होगा तो वियोग होने पर कठिन खेद करना भी तो होगा। संसार की रीति ही है ऐसी कि संयोग होता है तो उसका वियोग जरूर होगा।

जिन महापुरुषोंके हम नाम सुनते हैं वे महापुरुष भी जब नहीं रहे, जो निर्वाणको भी प्राप्त हो गए, स्वर्ग गए उनका तो यहां अस्तित्व है ही नहीं। वे तीर्थंकर हों, वे नारायण हों, वे चक्रवर्ती हों। कोई महापुरुष भी जब एक जगह कायम नहीं रह सके तो फिर हम और आपकी तो बात ही क्या है? जिसका संयोग होता है उसका नियमसे वियोग भी होगा।

एक बार एक बुढ़ियाका इकलौता बेटा मर गया तो वह एक साधुके पास पहुंची। साधुसे बोली—महाराज, मेरा एक ही तो बच्चा था और वह गुजर गया है, उसको जिन्दा कर दीजिए। साधु बोला—बुढ़िया मां यह तो बड़ा आसान बात है। तेरा लड़का जिन्दा हो जायगा। मुझे कुछ सरसोंके दाने चाहियें। कहा—अच्छा, मैं अभी सरसोंके दाने लाती हूं। साधुने कहा—घरके सरसोंके दाने नहीं चाहिएँ, दूसरे घरके सरसोंके दाने मांगकर लावो।

बुढ़ियाने कहा— मैं अभी मांगकर लाती हूं। साधु बोला— मगर उस घरके सरसोंके दाने होने चाहियें जिस घरमें कभी कोई मरा न हो। बुढ़िया एक घर गई, बोली मेरा लड़का मर गया है उसे जिन्दा करनेके लिए एक पाव सरसों चाहिए। घर वाले बोले—अरे एक पाव क्या एक सेर ले लो। बोली मगर यह तो बतलाओ कि तुम्हारे घरमें कोई मरा तो नहीं है ? घर वाले बोले— बाप मर गया, दादी मर गयी, दादा मर गया, भाई मर गया। बुढ़िया बोली तो हमें इस घरके सरसोंके दाने नहीं चाहियें, हमें तो उस घरके सरसोंके दाने चाहियें जिस घरमें कभी कोई मरा न हो।

बुढ़िया दूसरे घर गयी, बोली— हमें एक पाव सरसोंके दाने चाहिएँ, हमारा लड़का मर गया है उसे जिन्दा करवाना है। घर वाले बोले— हां हां एक पाव नहीं, १२ सेर सरसों के दाने ले लो। बोली— मगर यह तो बताओ कि तुम्हारे घरमें कभी कोई मरा तो नही है ? घर वाले बोले— हमारे दादा मर गए, दादी मर गई, भाई मर गया आदि। इस प्रकारसे बुढ़िया दसों घर गयी। सभी जगह उसको एकसा ही उत्तर मिला।

अब तो बुढ़ियाकी आंखें खुल गयीं। उसने समझ लिया कि जिसका जन्म है उसका मरण अवश्य है। ऐसा कोई पुरुष नहीं, जो मरता न हो। कोई अभी मर गया तो कोई फिर मरेगा। बुढ़ियाने समझ लिया कि अगर मेरा बेटा मर गया तो कोई अनहोनी बात नहीं हुई। अब तो बुढ़िया हर्ष मनाती हुई साधुके पास गई। साधुके पास जब मुस्कराती हुई गयी तो साधु बोला कि बूढ़ी मां, तू तो प्रसन्न दिखाई देती है, क्या तेरा लड़का जिन्दा हो गया ? बुढ़ियाने कहा कि अब तो मेरी आंखें ज्ञानकी खुल गयीं। मेरा बेटा ज्ञान ही था। पहले मेरा ज्ञान मरा हुआ था। अब तो मेरा ज्ञान विकसित हो गया। यही ज्ञान मेरा पुत्र है। यही ज्ञान मेरा सब कुछ है। हां, मेरा बेटा जिन्दा हो गया।

सो भैया ! ज्ञान बिना पूरा नहीं पड़ेगा। कुछ भी ख्याल बना लो, कुछ भी धन जोड़ लो, पर दुःख नही मिटेंगे, जब तक हृदयमें ज्ञान नही पैदा होगा। यहाँ कोई सहाय नहीं रखा है। जब तक पुण्यका उदय है और सम्पदा है, तब तक स्वार्थ सिद्ध होता है तब तक पूछने वाले मिलते हैं, मन बहलाने वाले मिलते हैं, पर कोई शरण नहीं है। शरण तो मेरा ज्ञान ही होगा। ज्ञान बिना मेरा कोई भी शरण नही होगा, जो जैसा है उसे वैसा ही जानना ज्ञान है। बाकी तो सब बखेड़ा है, मिट जाने वाला है, पर लोग मानते हैं कि वैभव सदा मेरे पास रहेगा। सो अपने भीतरके ज्ञानसे नेत्रोंको खोलो और यह तो अन्तरमें मान जाओ कि जिन पदार्थोंका संयोग होता है उनका नियमसे वियोग होगा।

चाहे इन पदार्थोंसे मेरा संबंध मिट जाय, चाहे इनके रहते हुए मैं मिट जाऊँ, पर होगा

वियोग जरूर ऐसा मानते ही आधा दुःख मिट जायगा । तो भाई चाहे धन हो, चाहे परिवार हो, चाहे शरीर हो ये सब मिट जाने वाली चीजें हैं । जो मिट जाने वाली चीजें हैं उनका हथियाना, अंगीकार करना तो मोह है, अविवेक है । इस मोहसे तो केवल क्लेश ही रहेंगे । सो उनके वास्ते खेद मत करो ।

'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्' जिसका चित्त उदार है यथार्थ स्वरूप ज्ञानमें आ गया उसकी सारी पृथ्वी कुटुम्ब बन जाती है । सब पृथ्वी मेरे जीवके समान है । इस जीवमें कोई अन्तर नहीं है । मैं तो ज्ञानानन्दघन हूं, इस जगत्के सब जीवोंका स्वरूप भी मेरे ही स्वरूपके समान है । फिर उनमें से कुछ जीवोंको २-४ जीवोंको अपना लेना जो घरमें आए हैं और बाकीको तो गैर समझ लिया है । ऐसी बुद्धि जो घुसी हुई है वह सब मोहका नमूना है । चित्तको पसारकर दुनियामें देखो तो सब जीव तेरे जीवके ही समान है । संकुचित दायरा जो कर रखा कि ये चार आदमी मेरे हैं तो उनके वियोग होनेसे दुःख होता है । सो दुःखोंका मल जो मोह है उस मोहको मिटावो । मिट तो जाता ही है, पर ढगसे मिटावो तो फल मिल जायगा । अगर जबरदस्ती मिट गया तो दुर्गति ही मिलेगी ।

एक घटना है कि राजा भोजके समयमें कवियोंको राजा भोजने बड़ा इनाम दिया । देहाती गाँवोंके चार आदमी जो लठैत थे वे भी कविताएँ सुनानेके लिए राजा भोजके दरबार में जानेकी सोचने लगे । उन देहाती आदमियोंमें बुद्धि नहीं थी तो उन चारोंमें से एकने कविता बना ली जब बुढ़ियाको रहटा कातते हुए देखा—वह कविता क्या थी कि 'चनर मनर रहटा भन्नाय ।' दूसरेने कोल्हूके बैलको भुस खाते देख कविता बनायी कि 'कोल्हूका बैल खरी भुस खाय ।' तीसरेने क्या कविता बनाई, पींजना धरे धुनियाको देखकर कहा कि 'कहँसि आ गए तरकसबन्द ।' अब चौथे व्यक्तिको भी वे कहते हैं कि कविता बनाकर वह कहता है कि मैं राजा भोजके सामने ही तुरन्त कविता बना लूंगा । सो अब वे चारों देहाती राजा भोजके दरबारमें पहुंचे । वे चारों देहाती द्वारपालसे बोले कि राजा भोजसे कह दो कि चार महा कवीश्वर आये हैं । सो राजा भोजने कहा—अच्छा, बुलावो । वे चारों राजा भोज के सामने बुलाए गए । उन चारोंने क्रमसे अपनी कवितायें सुनाईं । वे क्रमसे बोलते हैं कि चनर मनर रहटा भन्नाय, कोल्हूका बैल खरी भुस खाय, कहँसि आ गये तरकस बंद, तो चौथा बोला कि राजा भोज हैं मूसरचन्द ।'

अब राजा भोज अन्य विद्वानोंसे पूछते हैं कि इन कवितावोंका अर्थ तो लगावो । कवितामें कुछ दम था नहीं यह तो लट्ठमार थी । एक विद्वान् खड़ा होकर बोला कि पहला तो कह रहा है कि 'चनर मनर रहटा भन्नाय' जिसका अर्थ यह है कि यह शरीर तो रात-दिन रहटेकी तरह भन्नाता रहता है । पुरुषोंको देखो वे भी कुछ न कुछ किया ही करते हैं ।

सुबह उठकर झट दातून किया, गठरियाँ बाँधीं, वनिज किया, बीज बोवा, खाया, पिया, गप्प हाँकी आदि आदि और स्त्रियोंको देखो तो वे भी कुछ न कुछ किया ही करती हैं। सुबह उठकर झट चक्की पीसना, बर्तन माँजना, खाना पकाना, सायं हुई फिर रसोई बनाई आदि इस प्रकारसे ये मनुष्य रहटा सा चनर मनर भन्नाया करता है और दूसरेने कहा कि 'कोल्हू का बैल खरी भुस खाय।' तो ये पुरुष अपना तो रूखा सूखा खाकर बसर करते हैं और बच्चोंको शोभासे खिलाते पिलाते रहते हैं। तीसरेने कहा कि 'वहाँसे आ गये तरकस बन्द' अर्थात् वहाँसे यमराज आ गए, मृत्यु आ गयी। तो चौथेने कहा कि फिर भी राजा भोज मूसरचंद (मूरखचंद) हैं वे अपने कल्याणकी बातें नहीं करते। तो राजा भोजने कहा कि कैसी बढ़िया कविता है।

तो हम अपने लिए क्या करते हैं। जो अत्याचार करता है उसका फल वही भोगेगा जो अत्याचार करता है। सो भाई जिनका संयोग होता है उनका वियोग जरूर होगा। उनके विकल्प छोड़कर अपनी आत्माका ज्ञान करो, अपनी आत्मामें ही लीन होवो, इससे ही आनंद मिलेगा, बाह्यदृष्टिसे तो आनन्द नही मिलता है।

फेनपुञ्जेऽपि सारः स्यान्न तथापि शरीरके।
विरज्य देहतस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५॥

भैया! समुद्रोंमें तालाबोंमें फेन जुड़ जाता है, पानीके किनारेपर जो फसूगर होता है, फेना होता है उसमें कुछ सार मिलता है क्या? यहाँसे वहाँ बिखरा, वहाँसे यहाँ बिखरा, इस प्रकारसे खत्म हो गया। सो उस फेनमें चाहे कुछ सार मिल जाय, पर इस शरीरमें कुछ भी सार नहीं मिलता है। वह फेन तो काममें आता है। आजकल दवाइयां बनानेके काममें आता है तो उसमे कुछ सार मिल जायगा, पर इस शरीरमें कुछ भी तो सार नही मिलेगा। देखो इस शरीरमें ऊपरसे नीचे तक कोई सारकी बात नजर आती है क्या? कुछ भी तो चीज सारकी नजर नहीं आती है। इस शरीरके भीतर हड्डियाँ और माँस है और ऊपरसे चमड़ीकी पतली झिल्ली है, यह नष्ट हो जाता है, बरबाद हो जाता है।

आप लोग कहेंगे कि शरीरमे साबुन और तेल लगानेसे शरीर अच्छा तो लगता है, अरे अगर नहानेके बाद भी नाककी बत्ती बह गयी तो फिर शरीर वैसाका वैसा ही हो जायगा। तो इस शरीरमें सारकी चीज कुछ भी तो नही है। इसलिए इस देहसे विरक्त होओ, इससे प्रीति न करो, दूसरे जीवोंसे सम्बंध न करो। कोई ऐसा काम करो जिससे आगे भी तरक्की हो। इसलिए भैया! इस शरीरसे विरक्त होकर अपने घरमें आवो, अपने स्वरूपको देखो। यह जीव यह आत्मा तुम्हारा घर ही है। सो अब अपने घरकी पहिचान रखो।

बाहरी पदार्थोंमें आसक्ति न होने दो, अपने घरके जो दो-चार प्राणी हैं उनकी ही व्यवस्था करो, उन पर ही सारा खर्च करो, उन पर ही दिमाग लगाओ तो वह मोह है।

इन जीवोंमें से हर एक जीव पूर्वभवमें तुम्हारा कुछ न कुछ होगा नाते रिश्तेदार, कुटुम्ब परिवार आदि। फिर किसे पराया जानकर आजके मिले हुओंमें मोह करते हो अथवा यह व्यवहारदृष्टि छोड़कर भीतर अपने स्वरूपको देखो। मेरा स्वरूप तो केवल ज्ञानस्वरूप है। ज्ञायकस्वभाव, ज्ञानमात्र जाननस्वभाव है। यही स्वरूप तो सब जीवोंका है। सब जीवोंका स्वरूप भी मेरे स्वरूपके समान है। फिर उनमें मेरे और परायेका ख्याल मत करो। यह जानो कि ऐसा करना पड़ता है। यह हमारी व्यवस्था है। ठीक है पर भीतरमें ऐसी श्रद्धा मत रखो कि यह मेरा है। अरे तुम्हारा तो यह शरीर भी नहीं है, फिर और चीजें तुम्हारी कैसे हो सकती हैं ? ऐसा अगर इन पदार्थोंमें सच्चा ज्ञान रखो तो उसका मोह दूर होगा। कामवासनाको दूर कर ही भोगोंकी बात दूर होगी। गुस्सा, छल, कपट तृष्णा आदि सब दूर होंगे। तीसरे यह देह भी मेरा नहीं। यह देह तो मुझसे जुदा ?। भैया ! ममता छूटते ही सब गुण अपनेमें अपने आप आ जाते हैं तो इस शरीरमें, इस देहमें राग न करके अपने भीतर में बसो और अपने परमात्मस्वरूपको देखो। ऐसा करनेके लिए व्यवहार न्यायपूर्ण होना चाहिए। जो अपनेको प्रतिकूल लग जाय, अपनेको बुरा लग जाय तो वह दूसरोंको कुछ नहीं करना चाहिए। यदि कोई प्राण दुःखाता है तो बुरा लगता है ना। तो दूसरोंके भी प्राण न दुखाओ। अपनेसे कोई झूठ बोल दे तो बुरा लगता है तो दूसरोंके लिए भी झूठ न बोलो। जो बात अपनेको बुरी लगे वह बात दूसरोंके लिए भी न करना चाहिए। अपनेको कांटा चुभ जाने पर कितने क्लेश होते हैं, फिर दूसरोंकी जान लेने पर उन्हें कितना दुःख होता होगा ? जैसा अपनी जान समझते हो वैसा ही दूसरोंको जान भी समझो। चाहे गाय हो, चाहे भैंस हो, चाहे बैल हो, चाहे बकरी हो सबको अपना ही जैसा समझो। वे सब जीव तुम्हारे ही समान हैं। किसी भी जीवकी हिंसा न करो।

भैया ! अपने दूसरे भाइयोंको समझाओ कि वे मांस मदिरा इत्यादिका प्रयोग न करें। अगर वे समझ जावेंगे तो उन्हें बड़ा पुण्य होगा। अभी आज सुबह तीन चार हरिजन भाइयोंने मांस न खानेका नियम लिया। उन्होंने भैया बड़ा ही अच्छा काम किया। दो भाइयोंने खुद कहा कि मेरा मांस न खावेका दृढ़ नियम है। जो खुद कहें कि मैं मांस न खानेका दृढ़ नियम करता हूं तो वे बड़ी ही तारीफका काम करते हैं।

जिसका हृदय साफ हो तो तभी वह ऐसा कह सकता है। यह तो उसकी बड़ी ही प्रशंसाकी बात है। वैसे तो सालमें दो ही चार बार मांस खाते हैं। वह त्याग दें तो आजी-

धनका पुण्य होगा। अगर मांस न खावें तो क्या बसर नहीं हो सकता है ? जो मांस खाते हों भैया ! वे मांसका त्याग करदें। उसमें कुछ नहीं रक्खा है। उस मांस मदिरा आदिमें कुछ स्वाद भी तो नहीं रहता है। स्वाद तो अन्नमें होता है। अन्न मीठा होता है। लोग व्यर्थमें ही इन गंदी चीजोंका प्रयोग करते हैं और अपने दिमागको गंदा बनाते हैं। मांस मदिराका त्याग करनेके लिए भी बुद्धि चाहिए। जो मांस मदिरा इत्यादिका त्याग कर दे वह भगवानका प्यारा बन जाय। अगर मांस खाने वाले मांसका त्याग कर दें तो उनका हित है।

विषं पीत्वापि जीवेच्चेन्न भुक्त्वा विषयं सुखी।
विरज्य भोगतस्तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६॥

जगतके हम और आप सब जीव जिस धुनमें रमे रहते हैं, जिनकी कोशिशोंमें चल रहे हैं वे परिणमन उल्टे ही रास्तेपर लिए जा रहे हैं। उनके लिए विषयोंके साधन जुटाते हैं। इन विषयोंके भोगसे क्या शान्ति मिल सकती है ? जो उमर अधिक हो गयी है, बीत चुकी है उस उमरमें बहुत विषयोंके साधन किए हैं और भोग किए है उनका फल केवल रंज है, शोक है, दुर्बलता है। इस विषय भोगोंमें कोई सुख नही हो सकता है। चाहे विषयोंको पाकर जिन्दा कोई रह जाय यह तो सम्भव है, पर विषयोका भोग करनेसे कोई जीव सुखी नहीं हो सकता है। वे विषय क्या हैं ? वे विषय स्पर्शन इन्द्रियके विषय ही हैं। स्त्रीको पुरुष इष्ट हो और पुरुषको स्त्री इष्ट हो, उनका आपसमें प्रेम हो, विषयोंमें ही फंसे हों तो ये ही स्पर्शन इन्द्रियके विषय हैं। उन विषयोंके भोग करनेसे किसी भी पुरुष और नारीको शान्ति नहीं मिल सकती है।

भोजनके करने पर, भोजनके चखनेपर कुछ इच्छाकी तृप्ति हो सकती है। यद्यपि यह बात भी सदाके लिए नहीं होती, कुछ घंटोंके लिए ही होती है, मगर विषयोंके लोभी मनुष्योंको इन्द्रिय विषयों के करनेसे तृप्ति नहीं होती है। वे उन इन्द्रियविषयों में ही फंसे रहते हैं। उन इन्द्रियविषयोंसे तो केवल आकुलताएं ही रहती हैं। विषको पीकर कोई जिन्दा रह जा सकता है, मगर भोगोंमें ही रहकर कोई सुखी नहीं रह सकता है।

रसना इन्द्रियको देखो, गलेसे कोई लड्डू उतार दे तो उसका स्वाद थोड़ेसे समयके लिए रहता है। थोड़े समयके स्वादके लिए वे गलेसे लड्डू उतार कर अपनेको कष्ट देते हैं। यह रसना इन्द्रियके विषयोंका प्रताप है।

नाक तो एक बेकार सी चीज है। उससे तो कोई फायदा ही नहीं जंचता है। और इन्द्रियोंसे तो कुछ फायदा उठा सकते हो, हाथ पैर इत्यादिसे तो दीन दुखियोंकी सेवा कर लो। लो देखो स्पर्शन इन्द्रियसे लाभ उठा लिया। जिह्वासे प्रभुकी भक्तिके गुणगान किया

तो लाभ उठाया। अब रह गयी नाक, इससे तो कोई लाभ ही नहीं है। आंखसे अब देखो, अगर प्रभुकी मूर्तिका दर्शन कर लिया, गुणियोंका दर्शन कर लिया और अपने हृदयको स्वच्छ बना लिया तो इन नेत्रोंसे भी लाभ है। कर्ण इन्द्रियसे अगर प्रभुकी भक्तिके उपदेश सुने तो कर्ण इन्द्रियसे भी फायदा पहुंच गया। इस नासिकासे तो कोई लाभ ही नहीं नजर आता है। फिर भी मोही जीव भिन्न-भिन्न प्रकारकी सुगंधोंको सूंघ सूंघकर अपने मनको भरा करता है। इससे तो आकुलताएं जरूर हो जाती हैं।

आंखोंसे क्या कर लिया कि सुन्दर रूप देख लिया, कुछ चित्र सिनेमा आदि देख लिए और अपने मनको खुश कर लिया। इस बाह्यदृष्टिसे अपनेको कितना खुश किया, इसका मोही जनोंको कुछ अन्दाज नहीं रहता है। अटपट बातें करके अपने दिलको भरते हैं। ये अटपट बातें भी जीवको अहित ही करने वाली हैं। विषयोंका भोग करके कोई जीव सुखी नहीं रह सकता है। जो विषयोंके साधन तुम्हें प्राप्त हों उन्हें प्राप्त ही न करो, उन्हें तो विनाशीक समझो, अहितकारी समझो, उनसे कोई लाभ भी तो नहीं है। कर्णइन्द्रियके विषयमें भी क्षोभ ही है।

जिन्दगीमें करने योग्य काम यही है कि इन विषयोंसे हटकर अपने ज्ञानस्वरूप प्रभुकी भक्तिमें लग जावो। जितना ही अधिक समय प्रभुकी भक्तिमें लगे, प्रभुके स्मरणमें लगे उतना ही अपने जीवनको सफल मानो। और बाकी समागमोंको पाकर उनमें ही लिप्त होकर अपना समय गुजार दो तो यह व्यर्थकी ही चीज है।

जगतमें अपनी शरण कोई नहीं है। अपना शरण खुद ही है। कुछ दर्द हो जाय, पीड़ा हो जाय तो खुदको ही भोगना पड़ता है, दूसरा कोई सहाय नहीं होता है। और अपने सहजस्वरूपका संवेदन हो जाय तो खुद सहाय हो जाता है।

एक कथानक है कि एक जंगलमें एक राजा चला जा रहा था। उसको एक साधु मिला। वह राजा उस साधुके पास बैठ गया। थोड़ी देरमें उस साधुकी आंखें खुलीं। राजा बोलता है महाराज, आप इस निर्जन जंगलमें अकेले ऐसे दुःख क्यों भोग रहे हैं? आपके पास नौकर-चाकर नहीं, खानेके लिए कोई साधन नहीं, इतने कष्ट आप यहां पर क्यों भोग रहे हैं? आप कौन हैं? साधु कहता है कि मैं हूं अनाथ मुनि। राजा बोला—महाराज आप अपनेको अनाथ क्यों समझते हैं? मेरे घर चलो, खुद आराममें रहो, किसी भी प्रकारका कष्ट न होगा। मनमाना खाना, मनमाना पहिनना, मनमाना घूमना। हे महाराज, आप अपनेको अनाथ न समझें, साधु कहता है कि तुम कौन हो? राजा बोला कि मैं इस देशका

राजा हूं। मेरे पास नौकर-चाकर हैं। अपना वैभव बताने लगा तो मुनि कहते हैं कि राजन्, ऐसा तो पहले मैं भी था। इतनी बात सुनकर राजाकी आंखें खुलती हैं। राजा कहता है कि महाराज आप राजा थे तो अपनेको आप अनाथ क्यों कहते हैं? साधु बोला—सुनो, एक बार हमारे सिरमें दर्द हुआ। बहुतसे डाक्टर वैद्य हकीम वगैरा आये, पर सिरका दर्द ठीक न हुआ। हमारे परिवारमें कोई हमारे उस दुःखको बांट न सका, तो हमारे चित्तमें आया कि हमारे दुःखोंका बांटने वाला कोई नहीं है, मैं अनाथ हूं।

देखो भैया! इस जगत्में तुम्हारा कोई शरण नहीं है। हमें लोग चाहते हैं, सब आज्ञाकारी हैं, उनसे मुझे सुख मिलता है यह सोचना अज्ञान है। प्रत्येक जीव न्यारे-न्यारे हैं, सबके कर्म जुदे-जुदे हैं, सब अपने-अपने कषायसे आकुलताएं प्राप्त किया करते हैं। अपनेको अकेला जानकर, अपनेको अपना ही जिम्मेदार समझकर अपना कल्याण किया जा सकता है। सो अब इन भोगोंसे विरक्त होकर अपने प्रभुकी भक्तिमें ही रत होकर अपने आपमें आवो और अपने आपमें ही सुखी होवो। हम और आप क्या चीज हैं। अगर अपने इस आत्मस्वरूपको देखें तो न तो गंध मिलती है, न रस मिलता है और न बू मिलती है। आत्मा तो केवल ज्ञानानन्दस्वरूप है। इस आत्मामें केवल आनन्द ही भरा हुआ है। ज्ञान और आनन्द वाली जो वस्तु है वह यही आत्मा ही है। आंखोंसे देखी जाने वाली चीजोंमें क्या कोई जानकारी समझमें आती है? इसमें न तो ज्ञान ही है और न आनन्द ही है। ज्ञान और आनन्दको छोड़कर इसमें कुछ नहीं भरा हुआ है। परन्तु जब अपनेको भूल जाते हैं, इन परपदार्थोंसे ही आनन्द मानते हैं तो इसे ही अज्ञान कहते हैं। दूसरोंसे आनन्द की आशा करना ही अज्ञान है। जब कभी अपनेको दुःख होते हैं तो अपनी ही गल्तीसे होते हैं। राग द्वेष होते हैं। राग द्वेष करनेसे ही दुःख होते हैं, पर नाम लगाते हैं दूसरोंका। अपने कुटुम्ब परिवारकी आशा न करो। ये लोग अपने लिए हितरूप नहीं हैं, कुटुम्ब परिवार इत्यादिको अपना माननेसे ही दुःख हैं।

अब देखो एक दृष्टान्त द्वारा समझो कि एक जानवर होता है कुत्ता और एक जानवर होता है सिंह। इन दोनोंमें फर्क देखो कितना है? कुत्तेको एक दो रोटीके टुकड़े खानेके लिए दे दो तो वह आपका कितना बड़ा भक्त हो जाता है। रातमें आपके घरकी रखवाली करता है। कोई विपत्ति अगर मालिकके ऊपर चढ़ गयी तो वह उसे बचाता है। तो कुत्ता उपकार करने वाला है कि नहीं? शेरकी बात देखो वह कुछ उपकार नहीं करता। शेर तो अगर दिख जाय तो दिल कांप जाय। यदि कच्चा दिल हो तो हार्ट फेल हो जाय। शेर अनुपकारी जानवर होता है और कुत्ता उपकारी जानवर होता है। कुत्ता तो आज्ञाकारी होता है, पर

शेर विनाशकारी होता है। किन्तु उनका फर्क एक मिसाल द्वारा देखो। कोई अगर किसीकी प्रशंसा करे कि अमुक तो बड़े उपकारी हैं, क्या कहना है? कुत्तेके समान हैं। कुत्तेसे तो भले और अच्छेकी उपमा दी गई, पर सुनने वाले लोगोंको बुरा लगता है। अच्छा बताओ बुरा लगता है कि नहीं? बुरा लगता है, मगर कोई कह दे कि तुम तो शेरके समान हो। हालांकि शेरके समान (खतरनाक) होना बुरी बात है, फिर भी सुनने वाले लोग खुश हो रहे हैं। शेर दूसरोंके प्राण हरता है इसलिए उस व्यक्तिकी भी निन्दा की जा रही है। मगर वह व्यक्ति सुन-सुनकर खुश हो रहा है। यह फर्क क्यों आ गया है? यह फर्क आ गया है मोह और अज्ञानसे। शेर विनाशकारी है तो भी उसमें विवेक है, ज्ञान है। इसलिए शेरकी तरह होनेकी बात सब सुनना चाहते हैं। कुत्ता बडा आज्ञाकारी है फिर भी उसमें अविवेक है। इसलिए कोई कुत्तेकी उपमा नहीं सुनना चाहता है। कुत्तेके अगर लाठी मारी जाय तो लाठी को वह मुंहमें भरता है। वह समझता है कि हमें लाठीने ही मारा है, वह यह नहीं जानता कि किसी मनुष्यने मारा है। यही समझकर वह लाठीपर हमला करता है, मनुष्य पर हमला नहीं करता है। परन्तु कोई शेरको लाठी मारे तो वह लाठी पर नही आक्रमण करता है, बल्कि मनुष्यपर ही आक्रमण कर देता है। वह समझता है कि इस मनुष्यने ही हमें मारा है, लाठीने नहीं मारा है। तो शेर अनुपकारी और कुत्ता उपकारी जानवर होता है। तो भी विवेकका फर्क है।

इसी तरह ज्ञानी और अज्ञानीकी बात है। अज्ञानी तो कुत्तेकी तरह निमित्तदृष्टि वाला है और ज्ञानी शेरकी तरह उपादानदृष्टि वाला है। अज्ञानी समझता है कि मुझे कुटुम्ब ने फंसाया, इसने हमें गाली दी, इसने हमारा अपमान किया आदि। परवस्तुओंको अज्ञानी वह समझता है कि मेरी है। ऐसे ही ख्याल बन गये है इसीसे यह अज्ञानी दुःखी बना रहता है। मैं स्वयं ख्याल करके दुःखी होता हूं इसका भान नहीं, किन्तु ज्ञानीको यथार्थ ही भान है।

एक कहावत है कि तीन चोर चोरी करने चले। रास्तेमें एक नया आदमी मिला। यह नया आदमी चोरी करना नहीं जानता था। वह नया आदमी बोला—भाई कहाँ जा रहे हो? वे बोले, चोरी करने जा रहे हैं, बोला—अच्छा हम भी चलेंगे। अब चार चोर हो गए। एक गाँवमें जाकर एक घरमें घुसे। एक बूढ़े आदमीने खांस दिया तो तीनों चोर तो भग गए, पर वह नया आदमी न भग सका, वही रह गया। उसे कुछ न सूझा, वह जिसे ज्वारी बोलते हैं उस पर जाकर बैठ गया। अब तो बड़ी भीड़ इकट्ठा हो गयी। कोई बोलता है कहो क्या गया, कोई बोलता कहो कैसे क्या हुआ? दसों व्यक्तियोने दसों प्रश्न किये। उस घरके

मालिकने झुंझलाकर कहा कि हम कुछ नहीं जानते हैं, ऊपर वाला जाने। उसका ऊपर वाला कहनेका मतलब भगवानसे था, पर वह चोर जो ऊपर बैठा था उसने सोचा कि हमें कह रहा है तो ऐसा सुनकर बोला कि हमीं क्यों जानें वे तीनों क्यों न जानें ? अब तो वह पकड़ लिया गया और मारा पीटा गया। हालांकि बुड्ढा आदमी उसको कुछ नहीं कह रहा था, पर उसने स्वयं अर्थ लगाकर अपनेको फांस दिया। ये जगत्की चीजें हमें हैरान नहीं करतीं। हम स्वयं ही ख्याल बनाकर दुःखी हो जाते हैं। इन बाहरी चीजोंसे अगर कोई सुखी हो सकता हो तो बताओ एक भी मनुष्य जो सुखी हुआ हो। मुझे दूसरी चीजोंसे दुःख नहीं होता है। दुःख तो अज्ञानसे हो जाते हैं। यदि अपनेको सुखी करना है तो अपने ज्ञानको सम्हालो, भोग विषयोंसे सुखकी आशा न करो। उनसे तो बर्बादी ही है। भैया ! इन भोगों से प्रीति हटाओ। इन समागमोंमें तृष्णा न करो। यदि इनका संयोग होता है तो उनसे वियोग जरूर होगा। कोई बाह्य अर्थ प्रीति करनेके लायक नहीं है। भोगोंसे हटकर अपने आपके स्वरूपसे प्रीति करो और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होओ।

देही कश्चिन्न यो मृत्युं न प्राप्तस्तर्हि को मम।
त्राता स्ववृत्तिरेवातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥७॥

इस दुनियामें कोई प्राणी ऐसा नजर नहीं आता है जो मृत्युको न प्राप्त हो। कोई समय ऐसा आयेगा कि हमें भी मरना पड़ेगा। मेरा यहाँ कोई रक्षक नही है। केवल अपने आपके स्वरूपको देखो, वह स्वरूप ऐश्वर्यसे भरा हुआ है, परमात्मतत्व रूप है, ज्ञानानन्दमय है। ऐसा ही अपने आपके स्वरूपको देखो, कल्पनाओंको त्यागो तो तुम्हारा रक्षक तुम्हीं हो सकते हो।

एक कथा है कि ब्रह्माने चार जीव बनाये। उल्लू, कुत्ता, गधा और मनुष्य। चारों को ४०-४० वर्ष की उम्र दी। ब्रह्मा बोला जावो हमने तुम्हें पैदा किया। उल्लूने कहा महाराज मेरा काम क्या है ? ब्रह्माने कहा कि अंधा बने बैठे रहना, जो कुछ मिल जाय उसीको खा लेना, यही तुम्हारा काम है। उल्लू बोला हमको कितने वर्ष जिन्दा रहना होगा तो ब्रह्मा बोले कि ४० वर्ष तक। उल्लू बोला महाराज हमारी उम्र आधी कर दीजिए तो ब्रह्माने उसकी २० वर्षकी उमर कर दिया। २० वर्ष तिजोड़ीमें रख दिये। कुत्ते ने कहा महाराज हमारा क्या काम है तो ब्रह्मा बोले कि तुम्हें जो कोई रोटीका टुकड़ा दे दे उसीकी भक्ति करना, उसकी ही सेवा करना। बस यही तेरा काम है तो उमर मेरी कितनी दिया ? बोले ४० वर्ष। तो कुत्ते ने कहा, महाराज हमारी उमर कम कर दीजिए तो उसकी भी २०

वर्ष कम कर दिया। २० वर्ष तिजोरीमें रख लिये। गधेने कहा महाराज मेरा क्या काम है? तो ब्रह्मा बोले कि तू बोझा ढोना और जो कुछ रूखा सूखा भूसा मिल जाय उसीको खा लेना। गधा बोला, महाराज हमारी कितनी उमर दिया तो ब्रह्मा बोले ४० वर्ष। कहा, महाराज हमारी उम्र आधी कर दीजिए तो आधी उम्र कर दिया। अबकी बार मनुष्यने कहा—मेरा काम क्या है तो ब्रह्मा बोले कि तेरा काम है भोगविलास करना, मौज मनाना खुशियाँ मनाना। मनुष्यने कहा—महाराज, हमारी क्या उमर दो? ब्रह्मा बोले—४०-४० वर्ष। मनुष्यने कहा, उमर और बढ़ा दीजिए। ब्रह्माने कहा देखो खजानेमें देखता हूं, अगर गुंजाइस होगी तो बढ़ा दूंगा। देखा तो बीस-बीस-बीसका जुम्ला लगाया तो ६० वर्षकी उम्र बच रही थी। तो वह सभी उम्र मनुष्यको दे दी। अब तो मनुष्य १०० वर्षका हो गया।

सो देखो मनुष्यने हँसी खुशीसे ४० वर्ष बिता दिये। खूब चैनसे, आरामसे ४० वर्ष बीत गये। इतनी उम्र तक तो माता-पिताकी सारी जिम्मेदारी रही। इतनी उम्र तक खूब आराम किया, बच्चोंको देखा, देखकर रहे, भोग विलास किए। पर ४० से १०० वर्ष तककी उम्र तो कुत्ता, गधा और उल्लूकी जैसी रही। असली उम्र तो ४० वर्ष ही थी। अधिक कमाना पड़ता, लड़की हुई तो उसकी शादी करनी है सो धन जोड़नेकी फिक्र हुई, इधर भागा, उधर भागा। इस तरहसे और गधेकी जैसी उम्र ६० तक गयी, अब ६० के बाद शक्तिहीन हो गये। सो पुत्रोंके आधीन हो गये। शहरों और नगरोंमें तो जिसके नाम जायदाद है उसीके नाम रहती है जब तक कि वह मर नहीं जाता, पर देहातोंमें तो जहाँ बूढ़े हुए बच्चोंके वश हो जाना पड़ता है। बच्चे जो खिलाते पिलाते हैं उनका पक्ष करते हैं, उसमें ही अपना समय व्यतीत करते हैं। ८० वर्षके बाद १०० वर्षकी उम्र तक उल्लूकी उम्र रहती है। न तो आंखोंसे दिखाई पड़ता, न कानोंसे सुनाई पड़ता। बहू बेटियोंने खानेको बुला लिया तो खा लिया, नहीं तो न खाया। छोटी अवस्थामें ही अगर स्वाधीन अपनेको कर लिया वो भला है। ज्ञान अगर सही है तो सब ठीक है। अपना शुद्ध ज्ञान बना रहे, तो समझो अपना कल्याण हो गया और यदि ऐसा न कर सके तो भला नहीं होगा। अपनी भलाईका काम तो एक यही है कि सच्चा ज्ञान बना रहे। मोह ममतामें न पड़ो। केवल शुद्ध, स्वच्छ, ज्ञान ज्योतिमात्र अपने आपको निरखो और अपने ज्ञानस्वरूपमें रमकर स्वयं सुखी होवो। यदि ऐसा कर सके तो जीवन सफल है।

बाहरसे दृष्टि हटाओ, अपने स्वरूपमें ही लगे रहो। अपना स्वरूप ही निजका घर है। आहार तो पशु पक्षी भी कर लेते हैं, इसमें कौनसी विशेष बात है? पशुओं और मनुष्योंमें कौनसी विशेषता है? यदि विशेषता है तो केवल जप तप और संयमकी है। यदि

ऐसा नहीं है तो पशु मनुष्यसे अच्छे हैं। अगर मनुष्योंमें धर्म न हो तो पशु इन मनुष्योंसे अच्छे हैं। अभी किसी स्वरकी तारीफ की जाती है तो कहते हैं कि उनका स्वर कोयलके कंठकी तरह है। यदि किसी की नाककी उपमा देना है तो कहेंगे कि इनकी नाक सुवाकी नाककी तरह है। यदि किसी मनुष्यकी चाल अच्छी है तो कहेंगे कि अमुक व्यक्तिकी चाल हंसकी चालकी तरह है। यदि कोई बहादुर व्यक्ति है तो कहेंगे कि अमुक व्यक्ति शेरकी तरह बहादुर है। यदि किसीके नेत्र अच्छे हैं तो कहेंगे कि अमुकके नेत्र हिरणके नेत्रोंके समान हैं। यदि कोई मनुष्य जगती हुई नींदसे सोता है तो कहेंगे कि अमुक व्यक्ति कुत्तेकी जैसी नींद सोता है तो जिससे उपमा दी जाती है वही बड़ा हुआ ना ? सो मनुष्यसे तो पशु-पक्षी अच्छे हैं। यदि मनुष्योंमें धर्म है, परकी सेवाका भाव है, दया है, उपकार है तो वह आनन्दसे रहेगा। अन्यथा उसे जीवनमे कभी शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती।

जो घरके लोग हैं, स्त्री, पुत्र, भाई, बहिन आदि ये ही मेरे सर्वस्व हैं—यह सोचने वाले तो वे अंधेरेमें ही हैं। जगतके अन्य जीवोंका स्वरूप भी वही है जो मेरा है। उनके और मेरे स्वरूपमें कोई अन्तर नहीं है। ऐसा यथार्थस्वरूप जानकर आत्मधर्मकी दृष्टि करो, धर्मकी ओर मुख मोड़ो। प्रभुकी भक्तिमें, गुरुवों सज्जनोंके सत्संगमें, दीन दुखियोके उपकार में तन, मन, धनको लगाओ। शरीर भी नष्ट हो जायगा, मन भी नष्ट हो जायगा और धन भी नष्ट हो जायगा, वचन भी नष्ट हो जायगा; पर धर्म शाश्वत है—धर्मकी इस ओरसे अपना मुख न मोड़ो। अरे जो नष्ट हो जाने वाली चीजें हैं वे हमे मिली हैं, अरे इन नष्ट हो जाने वाली चीजोंके नष्ट हो जाने पर, वियोग होने पर क्यों दुःख किया जाय ? नष्ट हो जाने वाली चीजोंके वियोगपर विषाद करना आसान है। पवित्रता, स्वच्छता प्राप्त कर लो यही तुम्हारा कर्तव्य है। इस दुनियांमें कोई दूसरा रक्षक नही है, ऐसा यदि विश्वास कर लो तो दुःख नहीं होगा।

बालवृद्धयुवग्रासे यमस्य समता भवेत्।
साम्यपुञ्जस्य मे किं न स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥८॥

अव्वल तो हम और आप यह निश्चय नही कर सकते हैं कि कितना जीना है ? कब तक हम आप जिन्दा रहेंगे, इसका निर्णय हम आप नही कर सकते हैं। हम देखते हैं कि छोटे-छोटे बच्चे, जवान और बूढ़े सभी गुजर जाते है। उस यमराजमें बहुत बड़ी समता है और सबको उठा ले जाता है। चाहे बूढ़ा हो, चाहे जवान हो, चाहे बच्चा हो; सबको एक समान समझकर ही वह उठा ले जाता है। उस यमराजमें बहुत बड़ी समता है, रागद्वेष उसमें नही हैं अर्थात् वह सबको एक दृष्टिसे निरखकर मार डालता है। किन्तु हम और आपके बड़े

खेदकी बात है कि समता नहीं उत्पन्न होती है। हम अपने इस नर जीवनको अमूल्य समझें। ८४ लाख योनियोंमें भ्रमण करके कभी यह भव प्राप्त होता है। इस नरभवमें अच्छे काम करनेसे अच्छी गति प्राप्त हो जाती है और बुरे काम करनेसे बुरी गति प्राप्त हो जाती है। लोकोत्तर सद्गतियोंमें जानेका मौका तो इस नरभवमें ही प्राप्त होता है। इस भवसे ही धर्म की प्रीति बढ़ती है। धर्मके बढ़नेसे भव छूटते हैं, पाप समाप्त होते हैं। यदि हम मोह ममता में पड़ें तो हमें दुःख ही उठाने पड़ेंगे। यह सत्य बात कही जा रही है कि जो भाव मोह लिए हैं, वह कषायोंसे निवृत्त नहीं हैं। यहां कोई शरण नहीं है, किन्तु उनका ख्याल करके पाप कमाते चले जा रहे हैं। सो अब अपनी दृष्टि अपने आपमें करो जो तुम्हारा हित है, तुम्हारा कल्याण है। मोक्षमार्गके लिए यही एक कल्याणकी बात है, यही एक आनन्दका उपाय है। हम पढ़ते हैं, सुनते हैं। पढ़नेसे सुननेसे हम भीतरका हृदय ऐसा बनायें कि मोह ममता इत्यादि न रह जावे। मोह ममता इत्यादिसे तो पूरा नहीं पड़ेगा। अपने आपका ज्ञान कर बाहरी पदार्थोंसे दृष्टि हटावो तो पढ़ने लिखनेसे लाभ है।

एक पंजाबी था, उसके घरमें एक तोता था। उस तोतेको उसने यह कहना सिखा रखा था कि "इसमें क्या शक"। एक ब्राह्मण उसके घर आया, बोला—तोता तो बड़ा सुन्दर है हमें इसे खरीदना है। बोलो—इसकी क्या कीमत है? पंजाबीने कहा—क्या बतलाऊँ कि इसकी क्या कीमत है? कहा—नहीं, नहीं सच बतलावो इसकी क्या कीमत है? पंजाबी बोला कि १००) कीमत है और कहा—तोतेसे ही पूछ लो कि क्या तुम्हारी १००) कीमत है? ब्राह्मणने पूछा कि ऐ तोते! क्या तुम्हारी १००) कीमत है? तोता क्या कहता है कि इसमें क्या शक? तो उत्तर तो फिट बैठता है। ब्राह्मणने १०० रु० दे दिये और खरीद लिया। ब्राह्मण घरमें तोतेके सामने रामायण खोलकर बैठता है, बोलता है कि तोते बोलो राम राम। तोता बोला—इसमें क्या शक? कोई रामायणका छंद ब्राह्मण बोलता है तो तोता कहता है कि इसमें क्या शक? ब्राह्मण बोला—ब्रह्म एक है, आनन्दघन है। तोता बोला— इसमें क्या शक? ब्राह्मण बोला—अच्छा, यह बात छोड़ो जो ब्रह्मस्वरूपमें रमेगा उसको संतोष होगा और सुख होगा। तोता बोला—इसमें क्या शक। अब तो उसने भी शक कर लिया कि क्या मैंने अपने रुपये पानीमें मिला दिए। तोतेको केवल क्या इतना सिखाया गया है कि इसमें क्या शक, सो ब्राह्मणने पूछा कि क्या मेरे १००) पानीमें गये। तोता बोला— इसमें क्या शक? सो जैसे भोग विषयमें, बाहरी बातोंमें या ममतामें क्लेशमें समय गुजर जाता है तो समझो कि इतना जीवन यों ही चला गया। केवल बात रटनेसे कल्याण नहीं होगा।

भला बतलाओ, एक मनुष्य दूसरे मनुष्यका आदर नहीं कर सकता तो वह तो प्रभु के स्वरूपका अपमान है। सबका रूप प्रभुके रूपके ही समान है। फिर बतलावो जगतमें कौन सी ऐसी सारभूत चीज है जिसमें राग किया जाय। यदि अपने स्वरूपसे बाहर दृष्टि है तो उस वृत्तिकी कीमत न समझो। इस सहज आत्माका मूल्य समझो। दूसरोंका निरादर न करो, संगठन बनाये रखो, ऐसा यत्न करो जिससे दूसरे जीव सुखी रह सकें। यही हमारा करनेका कर्तव्य है। यदि इससे चूके तो काम नहीं चलेगा। अपने आपमें ज्ञान बनाओ, सब जीवोंके सुखी होनेकी भावना बनाओ। यदि भावना तुम्हारी इस प्रकारकी है तो पुण्य उत्तरोत्तर होता चला जाता है। यदि तुम्हारी भावना पापोंकी है तो पाप ही करते चले जावोगे, कोई दूसरा जीव तुम्हारा शरण नहीं होगा। दूसरे दुराचार ही तुम्हें दुःखी करते हैं। इन दुराचारोंसे बचनेके लिए उसमें होने वाले व्यसनोंका त्याग बताया गया है। जुवा खेलनेका त्याग, मांस मदिरा खानेका त्याग और किसी जीवके घात करनेका त्याग, चोरीका त्याग, शिकार खेलनेका त्याग, परस्त्री व वेश्या गमनका त्याग— इनका त्याग बहुत ही जरूरी है। जीवोंको बन्दूकसे मार दिया, लाठीसे मार दिया और उससे मौज माना यह तो ठीक नहीं है। परस्त्री गमन करनेका त्याग होना, और अनेक व्यसन हैं उनका त्याग होना बहुत ही जरूरी है। मांस मदिरा वगैरह मनुष्यके भोजन नही हैं। भोजन तो मनुष्यका अन्न ही है। जो मांस मदिरा खाते पीते हैं उन्हें मांस मदिरा वगैरह तो महीनेमें एक आध बार मिलता होगा। सो भैया! यदि इसे त्याग दो तो जिन्दगी भरके लिए आत्मा पवित्र हो जायगी। जीव दया पालनेके लिए मांस मदिराका त्याग होना ही चाहिए। मांस मदिरा वगैरहका त्याग करनेसे ही भला होगा। जो भी यहां बैठे हैं उन्हें चाहिए कि वे मनसे ही मांस मदिरका त्याग कर दें। यदि वे अपने मनसे ही कह देवें उन्हें पुण्य है। भैया! केवल अपने चैतन्यस्वरूपकी बात जग जाय तो जीवन सफल है। और तो बाकी सब असार है। राग द्वेष मोह आदिमें फंसकर गुजर गये तो क्या है? घरमें रहते हुए भी कमलकी तरह निर्विकल्प, निर्मोही रह सकते हैं और अपने आपमें ही वे सुखी हो सकते हैं।

रागद्वेषौ हि संसारः संसारो दुःखपूर्णिमः।
संसारतो विरज्यातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥६॥

राग द्वेषोंका नाम ही संसार है। इस दुनियामें जो राग द्वेष हैं उन्हींका नाम संसार है। कहते हैं कि संसार दुःखोंसे भरा है, इसका अर्थ है कि रागादिक भावोंसे जो ऐसा भरा है उसमें दुःख भरे हैं। अगर लोकके क्षेत्रका नाम दुनिया कहेंगे तो बतलावो भगवान् कहाँ रहता है? वह भगवान् भी इसी लोकमें रहता है। इस संसारमें रहते हुए जीवको पाप नहीं

है। जीवके रागद्वेष बनें तो पाप है। राग द्वेषोंका नाम ही प्राणिमात्रका संसार है। और संसार बसे तो पाप है तो उस संसारको पृथक् करना है याने धन, वैभव, घर, परिवार ग्रा ही क्लेशके साधन हैं, उनसे विरक्त होना है। केवल बात ही नहीं करना है। वे पदार्थ उनमें ज्ञानदृष्टि रहे कि जो चीजें हैं वे संसार नहीं। उनमें जो रागद्वेष है वह संसार है। ग में ऐसा जो रागद्वेष उत्पन्न होता है उनसे विरक्त होग्रो, रागद्वेषोंमें रत न होग्रो। ये मेरे स रूपमें नहीं ग्राते, ये मेरे करनेसे नहीं होते हैं। ग्रवश उपाधिवश हो जाते हैं। कर्मोंका उ ग्राता है। उनका उपादान ही ऐसा है कि रागद्वेष हो जाते हैं। वह तो मेरा स्वरूप नहीं उनसे मेरा हित नहीं, ऐसा जानकर उन रागादिकोंसे विरक्त होना चाहिये।

जो रागद्वेषोंसे विरक्त हुग्रा वह ग्रपने ज्ञानस्वभावमें ग्राया। मैं ज्ञानमात्र हूं। केव जाननस्वरूप ही हूं। इस स्वरूपका जब उपयोग लगेगा तब जानों कि ग्रब रागद्वेष ग्रा नहीं ग्राते हैं। यह जीव ग्रगर रागादिकमें लगेगा तो यह ग्रज्ञान है ग्रौर यदि ग्रपने ज्ञायक स्वरूपमें लगे तो यह ज्ञान है। यदि ग्रपना ज्ञानस्वरूप ग्रनुभवमें ग्रावे तो ज्ञान पल्ले पड़े ग्रौर ग्रगर बाह्यमें ही पड़े रहे तो कुछ पल्ले नहीं पड़ेगा। देखो ४०–५० वर्षकी उमर ह ग्रौर ग्रापकी हो गयी, इतनी उमरमे क्या क्या नहीं किया होगा बाहरकी ग्राशा किया हो न जाने किन-किनसे ममता किया होगा, रागद्वेष किया होगा पर क्या कुछ पल्ले पड़ा। कु भी तो हाथ नहीं लगा।

हे ग्रात्मन्! तू तो ग्रकेले ही बैठा हुग्रा है। मानलिया घरमें सब लोग है पर उ सबकी सत्ता न्यारी न्यारी है। यहाँ तो हम ग्रौर ग्राप ग्रकेले ग्रकेले ही विकल्प कर डाल हैं कि ये जीव ये वैभव हमसे मिले जुले हैं। ग्ररे इन रागादिकोंमें पड़ने से तो पूरा न पड़ेगा। पूरा तो तब पड़ेगा जब ग्रपने स्वरूपसे न फिरो। यहाँ ये व्यवहारकी चीज बोल हूं। चाहे मोही उनकी प्रशंसा कर दें। मोह करते हैं, वचन बोलते हैं, हिलमिल कर रह हैं वे सब माया हैं, मोहके स्वप्न हैं। जैसे स्वप्नमें देखी बात सच मालूम होती है उसी तर मोहकी बातें सच लगती है। क्या ग्रापका भाई, क्या ग्रापका रिश्तेदार, क्या ग्रापके मित्र जन जो हिलमिलकर रहते हैं? खुश हो रहे हैं वे सब मोहवश ऐसा कर रहे हैं। ग्ररे तो स्वयं ही संसारतापमें जल रहे हैं, इनमें कुछ तत्व नहीं, कुछ धर्म नहीं। तत्वकी बा बात तो ज्ञानस्वरूप की दृष्टिमें ही है। ये जो ग्रापके मित्रजन हैं, कुटुम्ब परिवार इत्यादि जो लोग हैं उनमें से तुम्हारी मदद करने वाला कौन है? कितने ही काम मोह द्वारा कि जा रहे हैं। ग्रच्छा बतलावो, किसीका नाम भी लो कि जिससे मिल-जुलकर तुम्हारी ग्रात्म को कुछ मिलेगा। दान भी देते चलो जिससे कुछ सुविधा हो जायगी। देखो भैया स्थिति

क्या विश्वास ? कोई भिखारी इसी जीवनमें बन जाता, कोई राजा बन जाता । समागम का कुछ विश्वास नहीं तो यह सोचना चाहिए कि हमें अपने लिए क्या करना चाहिए ऐसी बात यदि समझ लीजिए तो ज्ञाता द्रष्टा बन जावोगे । ऐसी शुद्ध ज्ञान दृष्टि रहे कि जो वर्तमान चीज है उसमें तो रहना ही पड़ता है, किन्तु उस दशासे पृथक् ज्ञानानन्दमय आत्मतत्त्व की ओर झुकाव हो तो सुविधा है । अपनेको राग द्वेषोंसे निकाल सकते हो । रागद्वेषोंमें पड़ने से प्रगतिका कोई रास्ता नहीं है । काम करना ही पड़ता है, किन्तु काम मेरा स्वरूप नहीं ऐसा मानो, अगर सच्चा ज्ञान जग गया तो उसकी विजय है ।

भैया ! घर छोड़नेको तो नहीं कहा जा रहा है । बाल-बच्चोंमें रहते हुए कुटुम्ब परिवारमें रहते हुए भी अगर ज्ञान जग गया तो सम्यक् निर्जरा होती है । ये प्रशंसा करने वाले, बहुत बड़ा व्यवहार करने वाले आपकी कोई सहायता करने वाले नहीं हैं । वे सब अपनी-अपनी सत्तामें है । देखिए श्रेयांस कुमार जी एक योग्य सज्जन मित्र ही तो था । उनका अब पता ही नहीं है कि किस गतिको गए हैं ? अब उनके नामको कौन याद करता है ? क्या ऐसा नहीं हो सकता है कि वह न गुजर गए होते, उनकी जगहपर हम आप ही गुजर गये होते तो क्या पता रहता कि कहां चले गए हैं ? कोई नाम भी न लेता । कितने ही ऐसे मौके हो गए जिनमें मरनेका पूरा खतरा था । रागोंकी बीमारीमें फंसे रहनेसे सारी उम्र गुजर गयी । ५०-६० वर्षकी अवस्था गुजर गयी । इन रागद्वेषोंमें ही रहकर जीवनमें कभी शांति न मिल सकी । सदा दुःख ही बने रहे । कोई हमें मत जानें, हम किसीको मत जानें । हम आत्मपोषण करते हैं यदि ज्ञानस्वरूपको निहारकर शांतिकी पुष्टि करते हैं । हमारा यहां क्या काम है ? ऐसा भीतरमें विश्वास हो, प्रोग्राम हो ।

दुनियामें शांति तो पैसा बढ़ानेसे नहीं होती, रिश्तेदार बढ़ानेमें नहीं होती, मित्रताके कोई काम करनेमें नहीं होती । मान लिया पैसा खूब बढ़ गया तो उससे शांतिकी किरणें तो निकलती ही नहीं । इन मित्र जनोंसे भी शांति नहीं मिलती है । इन मित्रोंसे भी निरपेक्ष बनाओ अपनेको । प्रभु ही एक निरपेक्ष मित्र है जिसके स्मरणसे ही हम और आपको शांति मिल सकती है । बाहरमें दृष्टि पड़ती है, अनेक काम बाहरके विकल्पके ही करते हो । अरे किसलिए बाहरके विकल्पके काम करते हो और प्रसन्न होते हो, खुश होते हो ? कोई हमारी मदद करने वाला नहीं है, ऐसा जानकर अपने हितकर प्रोग्राम बनाओ । विभूति तो पुण्यके उदयकी बात है स्वतः आ जायगी । जो कुछ अल्प परिश्रमसे मिलता है उसमें ही गुजर करना है, अन्याय धोखा आदि करनेसे क्या लाभ है ? जो कुछ मिल जाय भाग्यवश उसीमें बसर करो । हमारी चार आदमियोंमें बड़ाई हो जाय तो इससे क्या होगा ? ऐसा उपयोग यदि

भीतरमें बने तो शान्ति प्राप्त हो सकती है। जितने क्षण व्यतीत हो गए वे फिर नहीं आयेंगे। फिर समयके हिसाबसे ही अपने हितकी बात सोचो। विपरीत मार्गकी ओर जा रहे हो, नाशुककी ओर ही जा रहे हो। रही सही जो आयु है उसमें ही ज्ञान करके अपना कल्याण कर लो। ज्ञानकी ही बात करो, भीतरमें ममता न रखो। जो मोह कर रहे है उनका ऐसा ही विश्वास हृदयमें बने तो वे अपने आप सुखी हो सकते हैं।

यहां मेरी क्या खूब परीक्षा कर लो। यदि तुम्हारा कुछ नहीं है तो राग द्वेष न बनाओ। दुःख देने वाले ये रागद्वेष ही हैं। ऐसी कल्पनाएँ न उठें कि अमुक भैया यों नहीं करते इसलिए दुःख होते हैं। ये मेरे इष्ट हैं, ये मेरे अनिष्ट हैं ऐसा ख्याल बनानेसे तो दुःख ही प्राप्त होंगे। मेरे दुःख तो अज्ञानताके ही कारण हैं। स्वाधीनता न रखनेसे ही दुःख हो जाते हैं। उन दुःखोंसे यदि दूर रहना है तो अपने ज्ञानमें सबकी स्वाधीनता रखना चाहिए। सब जुदा-जुदा हैं, अलग-अलग हैं ऐसा ही देखना चाहिए। ऐसा ही अनुभव करनेसे शांति मिलती है। बाहरमें दृष्टि न फंसायो तो शांतिका प्राप्त करना सरल है। मुख्य बात तो यह है कि जो रागद्वेष उत्पन्न होते हैं उनसे विरक्त होवो। रागद्वेष उत्पन्न करना मेरा काम नहीं, मेरा स्वरूप नहीं, मेरा स्वभाव नहीं। मेरा क्या स्वरूप है ? मैं तो ज्ञानमात्र हूं, केवल प्रतिभासमात्र हूं मैं जाननेके ही काममें लगूं। रागद्वेषोंके कामोंसे अलग रहूं। भैया! तुम तो व्यर्थकी कल्पनाएँ कर रहे हो। मैं तो शुद्ध ज्ञानस्वरूप हूं ऐसा जानकर संसारके रागद्वेषोंसे विरक्त होओ। घर छोड़ दो इसके मायने विरक्त नहीं। अपने अन्दर जो रागद्वेषके भाव हों उनकी विरक्ति कर दो। रागद्वेष करना तो मेरा स्वभाव ही नहीं है, मैं तो ज्ञानस्वरूप हूं ऐसा भीतरमें स्वरूपकी रुचि करके मैं अपने स्वरूपमें ही रत होऊँ और अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊं।

करनेका काम इतना ही है कि मैं अपनेको सबसे न्यारा मानता रहूं। यदि अपना स्वरूप न्यारा समझमें आयगा तो शांति प्राप्त हो सकती है। ऐसा ही अपने स्वरूपको देखनेके लिए ही भगवान्के लोग दर्शन करते हैं।

संसारजो हि पर्यायः संसार उपचारतः।
त्यक्त्वा तन्मूलसंसारं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१०॥

संसार कोई संसारियोंसे अलग चीज नहीं है। ये भ्रमने वाले जो जीव हैं इन जीवों का समूह ही संसार कहलाता है। सो ये जो पर्याय हैं, मनुष्य हैं, पशु-पक्षी हैं, कीड़े मकोड़े हैं, यही संसार है, यही है संसारकी मूर्ति और जो भगवान्की मुद्रा है वह है मुक्तिकी मूर्ति। संसारी हम और आप ही कहलाते हैं। हम और आप ही तो संसारी बन रहे हैं। इसने

बाकी चीजें जो जीवनमें होती हैं वह ही संसार है। इस जगत्‌में ही घूमते रहना, रुलते रहना ही मोह है। इस जीवका किसी दूसरे जीवसे कोई नाता नहीं है, कोई सम्बन्ध नहीं है। जो घरमें पैदा हुआ पुत्र है वह भी अपना नहीं है, न्यारा है। उसका भी मुझसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

भैया! सभी जीव न्यारे-न्यारे हैं, फिर भी जो उनसे रागद्वेष मोहवश सम्बन्ध माने हैं उसीसे क्लेश होते हैं। दूसरे कोई दुःखके देने वाले नहीं हैं। एक यह ही बात मनमें आ जाय तो ज्ञान जग गया। यह ही बात बैठ जाय कि मेरा दुःख देने वाला दुनियामें दूसरा नहीं है। इतना ही जो राग परिणाम हैं, परवस्तुओंमें जो आकर्षण है, बस ये ही भाव दुःख देने वाले हैं। और धर्मकी बात, तपस्याकी बात, व्रतकी बात तो भी संवर है। किन्तु आत्मा की बात जो न बनी तो अन्य सब करना न करना सब बराबर है। परन्तु इतनी ही बात पकड़में आ जाय कि मुझको दुःख देने वाला मेरा राग द्वेष मोह ही है, दूसरा और कोई मुझे दुःख देने वाला नहीं है। अगर हृदयमें यह बात बैठ जाय तो बस यह ज्ञान तिरनेके लिए पर्याप्त है। मेरा दुःखी करने वाला मोह परिणाम ही है दूसरा कोई जीव मुझे दुःखी नहीं कर सकता। दूसरे लोग भी अपना-अपना स्वार्थ लिए हुए हैं, अपना अपना सुख चाहने वाले हैं, अपनी-अपनी धुनमें हैं। सो अपनी धुनमें रहते हुए भी इन्हें यह समझ लें कि मेरा किसी से सम्बन्ध नहीं है, पर हम ही स्वयं मूर्ख बनकर बाहरमें दृष्टि डालते हैं, परिवारके लोगोंको अपना मानते हैं, इसीसे दुःखी होते हैं।

भैया! दूसरे जो हैं सो हैं वे खुद दुःखी हैं, वे स्वयं अपने ही अनुसार चलते हैं। हम कोई विरोधी हों सो बात नहीं, हमारा कोई बिगाड़ करने वाला हो सो बात नहीं। जीव सब हैं, अपनी-अपनी धुनमें रहते हैं। जैसा उनका परिणाम है वैसी ही परिणति है। हम ही ख्याल बना लेते हैं कि यह मेरा अनिष्ट है, इष्ट है और दुःखी होते हैं। मुझको दुःख देने वाले ये राग भावके परिणाम ही हैं, यह ज्ञानकी बात है। अज्ञानमें उल्टा सूझता है। इन्होंने मेरा बिगाड़ किया, इन्होंने विरोध किया आदि। वास्तविकता यह है कि जीव अपना स्वार्थ चाहते हैं सो अपना स्वार्थ चाहनेमें जो उनसे बन पड़ता है सो करते हैं। कोई किसी दूसरेका कुछ नहीं करता है। एक यह ही ज्ञान समा जाय कि मुझको दुःखी कनेर वाला कोई दूसरा नहीं है, मेरे राग परिणाम ही मुझको दुःखी करते हैं। सो ज्ञानके होने पर सब कषायोंमें फर्क आ जायगा, क्रोध भी न रहेगा, मान आदि भी न रहेगा।

ज्ञानी जीवकी निर्मलता देखो कि युद्धमें भी जाना पड़ता है तो वहाँ भी वह सैंकड़ों

को मार गिराता है। इतने पर भी ज्ञानी जीवका परिणाम निर्मल है। वह ४१ प्रकृतियोंका बंध नहीं कर रहा है। उसके ऊपर तो किसीने हमला किया, आक्रमण किया तो उससे वह अपनी रक्षाके लिए अविरत भावमें मुकाबला कर रहा है। उसका पाप करनेका जरा भी विचार नहीं रहता है। उस ज्ञानी जीवकी निर्मलता देखो। धन्य है वह ज्ञान। चाहे राजा हो, चाहे गृहस्थ हो, चाहे कुछ भी हो, निर्मलता अन्तरङ्गमें आवे यही ज्ञान है। ज्ञान जग जाय तो उसको दुःखी करने वाला कोई दूसरा नहीं है। मेरे राग ही मुझे दुःख देते हैं ऐसा यदि ज्ञान हो गया तो क्रोधमें अन्तर आ जाता है। अनन्तानुबंधी क्रोधी नहीं होते हैं। युद्धमें भी वे रहें तो घमंड नहीं आयेगा, छल कपट न करेगा। तो मुझे दुःखी करने वाला कोई दूसरा नहीं है। केवल मेरे रागभाव ही मुझे दुःख देते हैं। दुःख तो रागके, मोहके कारण ही है। सो अपने इस अज्ञानको मिटाओ और अपने आप सुखी होवो।

यत्र रागवश: प्राप्तं योनिदेशकुलं न तत्।

मुक्त्वा रागमतः स्वस्थः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥११॥

देखिए इस जीवने इस दुनियामें कितने चक्कर लगाये है? कोई जमीन ऐसी नहीं बची, कोई इंचभर भी जगह ऐसी नहीं बची जहाँ यह जीव अनन्त बार पैदा न हुआ हो और मरण न किया हो। आज जैसे खिसनीमें पैदा हुए, तो जानते हैं कि हम खिसनीके हैं। अरे हम तो सारी दुनियाके हैं और कहींके भी नहीं। दुनियामें ऐसी कोई जगह नहीं बची जहाँ पर हम पैदा न हुए हों। आज यहाँ पैदा हुए तो कल दूसरी जगह। ८४ लाख योनियों में भ्रमण करके आज खिसनी ग्राममें पैदा हुए हैं, फिर कहीं दूसरी जगह पैदा होंगे। इस दुनियामें सभी जगह पैदा हुए, अनन्तों बार रागके वश होकर सर्वत्र भटककर इस मनुष्यभव में जन्म लिया और मरण किया। इस मनुष्यका पूर्वभवमें जिसका राग था वह अब कहाँ है? पता नहीं कौन पिता था, कहाँ घर था या किस योनिमें थे? यह मेरी सम्पदा है, यह मेरा घर है, यह मेरा परिवार है, इसी विकल्पमें मनुष्य पड़ा रहता है और अन्तमें मरकर किसी दूसरी योनियोंमें चला जाता है। इस प्रकारका जो मनुष्य शरीर मिला है उसमें अगर धर्म नहीं किया तो कुछ भी नहीं किया। यदि धर्म नहीं किया तो कहते हैं कि गैरकी तरह आया और चला गया। आज यहाँ तो कल और जगह गया। यह ठाठ तो इसी तरह चलता ही रहता है। इसका कहीं कुछ वैभव नहीं है। अगर कुछ इसका वैभव होता तो साथ ले जाता। सो जैसा आया वैसा ही चला गया। यह मनुष्य नए नए राग बनाता रहता है और ये राग ही उसे मिटाते रहते हैं।

भैया! ऐसा जगत्में कोई प्रदेश नही बचा जहाँ पर यह जीव रागके वश होकर पैदा

न हुआ हो। कोई कुल नहीं बचा जिसमें यह जीव अनन्तों बार पैदा न हुआ हो। भैया! इस भटकनेका कारण है राग। राग छोड़ दो अभी सुखी हो जावो। देखा होगा कभी-कभी बच्चोंमें खाने पीने वाली चीजमें जब लड़ाई हो जाती है। जिस बच्चेके हाथमें खाने वाली चीज है उसे दूसरे बच्चे छिननेके लिए झपटते हैं, उसे मारते हैं, पीटते हैं। अगर वह बच्चा उस चीजको फेंक दे तो वह मजेमें हो जाय। यह जानो कि जीव केवल राग द्वेषोंसे दुःखी है। दुःख दूसरे आया हुआ नहीं है। दुःख तो हम और आपमें ही बैठा हुआ है। किसीको कोई कुछ कह रहा हो, कोई टोटा हो रहा हो, धन न हो तो यही क्या हुआ? उसे कोई सता तो नहीं रहा है, बल्कि वह अपने रागसे ही दुःखी हो रहा है। दुःखी करने वाला कोई दूसरा नहीं है। हम स्वयं ही राग करते हैं और दुःखी होते हैं। वे राग व्यर्थके राग हैं। राग गृहस्थको करने पड़ते हैं। गृहस्थ राग कर ले फिर भी भीतरमें सच्ची बात तो जगाना चाहिए। सच्चे ज्ञानका प्रकाश तो रहना ही चाहिए। उसका राग करना व्यर्थ, उसका मोह करना व्यर्थ। करना पड़े तो बात अलग है, पर ध्यानमें मोहकी बात न आवे तो यही मुक्ति प्राप्त करनेका उपाय है। ये मोह राग आदि अकल्याणके करने वाले हैं। न भीतर ज्ञान जगे तो देख लो, वहीका वही है। यदि कोई बैठा रहे, बैठे-बैठे ही क्रोध करता रहे, गुस्सा करता रहे तो वह अपनेको ही बरबाद कर रहा है। यदि यही जिन्दगी रही तो ज्ञान भीतर में न जगेगा। दुःखोंके मिटानेका कोई दूसरा उपाय नहीं है। मोह छोड़ना ही एक दुःखोंके छोड़नेका उपाय है।

जैसे मानो कोई सेठ कमरेमें सो रहा हो और स्वप्न ऐसा आ जाय कि उसको गर्मी बड़े जोरेंको लगे। सो यह इच्छा चल जाय कि चलो समुद्रमें नावमें बैठकर घूमें। समुद्रकी ठंडी हवाओंसे गर्मी शांत करें। वह समुद्रमें नाव द्वारा सैर करने चला। यह स्वप्नकी बात कह रहा हूं। जब वह चलने लगा तो घर वाले पुत्र तथा स्त्री आदि बोले कि हमें भी गर्मी लग रही है, हम भी सैर करने चलेंगे। अब सब समुद्रमें नावमें बैठे हुए चले जा रहे हैं। समुद्रमें ही एक तूफान ऐसा आया कि नाव सम्हालना कठिन हो गया। तो मल्लाह बोला कि अब नाव डूबे बिना रह नहीं सकती। मैं तो किसी तरहसे तैर करके निकल जाऊंगा। तो सोचो वह सेठ ख्याल बनाकर कितना दुःखी होता होगा? कहां तो सेठ जी पलंग पर सो रहे हैं, नौकर-चाकर आराम देनेका काम कर रहे हैं, मित्र जन इन्तजार कर रहे हैं कि सेठ जी सोकर जगें तो कुछ बात करें, किन्तु सेठ जी स्वप्नमें ही ख्याल बना-बनाकर दुःखी हो रहे हैं। सेठके दुःखको मिटाने वाला साधन कठिन है बताओ। सेठके दुःखोंको दूर करने वाला कोई नहीं है। केवल एक ही उपाय है। वह उपाय यह है कि सेठ जी की नींद खुल

जाये। अगर सेठ जग जाये तो दुःख कहाँ है। वह तो पलंग पर सो रहे हैं, ठाठसे कमरेमें सो रहे हैं। यदि सेठ जग जावे तो उसके दुःख दूर हो जायें।

इसी तरह यहाँ जीव मोहकी नींदमे सो रहे है। यह मेरा है, यह उसका है, यह अच्छा है, भला है, यह बड़ा अच्छा है। परवस्तुको चिपकाये हैं, राग कर रहे हैं इससे सुख तो मिल ही नहीं सकते है। अच्छा बतलावो यदि कोई अपनी स्त्रीके सम्बन्धसे, अपने पुत्रके सम्बन्धसे सुखी रह सका हो तो बतलावो। अगर स्त्री खोटी निकली तो लड़ोगे, गुस्सा करोगे, दुःख होंगे। और अगर स्त्री गुणकारी हुई, गुण वाली हुई तो यही बना रहेगा कि मैं इसके लिए क्या ला दूं, कैसे इसको सुखी रक्खूं, कैसे यह बढ़िया रहे? इस प्रकारसे परिश्रम करके दुःखी रहते हैं।

ऐसी ही पुत्रकी बात है। अगर पुत्र कुपूत हुआ तो वैसे ही परेशानी हुई, बहुत ही झगड़े की बातें हुईं, बहुतसे दुःख हुए और अगर पुत्र सपूत हुआ, आज्ञाकारी है, विनयशील है तो यह होता है कि मैं इसे कैसे पढ़ा लिखा दूं, कैसे इसे आनन्दसे रक्खूं कैसे इसे ऊंचा बना दूं? इस प्रकारसे परिश्रम करके दुःखी होते हैं। तो परके सम्बन्धसे तो सुख है ही नहीं, सुख है तो केवल ज्ञानमें है और वैराग्यमें है। अपनी ओर रमनेमें ही सुख है। बाहरी पदार्थोंमें मोह करके सुख नहीं है। सो कहते हैं कि ऐसा कोई देश नहीं बचा जिसमें हम और आप अनन्तों बार पैदा न हुए हों। क्यों भटक रहे हैं आज तक? केवल रागके कारण और मोहके कारण। मोह ममता और अज्ञान ही दुःखोंका कारण है। 'निजको निज परको पर जान।' यही सुख शांति पानेका उपाय है। मैं सबसे न्यारा हूं। यह जीव सबसे न्यारा है। कोई किसीसे मिला नही है और न मिल सकता है। जो जैसा है उसे वैसा न मानना यही अज्ञान है, यही जीवको दुःख देता है। यदि मोह छोड़ दो तो सुखी हो सकते हो।

कीटो भूपो नृपः कीटो जायते विषमे भवे।
स्वास्थ्यमेव स्थिरं स्थानं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१२॥

यह दुनिया बड़ी विषम है। कहो कीड़ा मरकर राजा बन जाय और कहो राजा मरकर कीड़ा बन जाय। ये जो अज्ञान विचार वाले हैं, जीवोंका वध करते हैं अथवा मांस खाते हैं, प्राणिघात करते हैं, शिकार खेलते हैं और मौज मानते हैं, हर्ष मानते हैं। तो क्या यदि कोई यह समझे कि मैं मनुष्य हूं तो मनुष्य ही रहूंगा, ऐसा तो नहीं है। यह भव बड़ा विषम है। जिन जीवोंकी हम हत्या करते हैं तो हम प्रायः वे ही जीव बन जाते हैं। यदि बन गये तो उनके ही द्वारा सताये जा रहे होते। कोई मुर्गा है वह मर जाता है, मार डाला जाता है तो कितना बड़ा पाप है? अरे इन समस्त जीवों पर दया करना प्रधान काम है।

किसी जीवका दिल न दुःखाना चाहिए यह सब आचारोंका आधार है। इसमें ही मनुष्यकी शोभा है।

भैया! अपनेमें अगर दुःख पहुंचते हों तो सहन कर लो, पर दूसरोंका चित्त न दुखाना चाहिए। ५ मिनटमें बातको समझाया जा सकता है। दूसरे पर क्रोध न आवे। क्रोध आ जानेसे दुःख नहीं मिट सकते हैं। सो यह चाहिए कि किसी जीवका घात न करो। संकल्पी, आरम्भी, उद्यमी और विरोधी इन चार हिंसावोंमें से तो संकल्पी हिंसाका तो पूर्णतया त्याग होना चाहिए। भीतरसे यह ज्ञान हो कि देवी देवताओंमें बकरा चढ़ाते हैं तो बकरे चढ़ानेसे, अशुद्ध काम होनेसे कोई लाभ नहीं मिलेगा। अरे देवी देवता तो वैक्रियक शरीर वाले हैं, सुन्दर हैं। उन्हें मांस तो चाहिए ही नहीं, मुखसे चबाकर कुछ खानेकी जरूरत ही नहीं पड़ती। उन पशुओंके काटे जानेसे उन देवी देवताओंकी तृप्ति नहीं होती है। वे देवी देवता तो स्वयं समर्थ हैं। उनके कंठसे तो अमृत झरता है। उस अमृतसे ही वे तृप्त हो जाते हैं। अगर अपना काम बनाना है तो सब लोग अच्छे कार्य करें। सब जीवों पर दया करो, संकल्पी हिंसा यही कहलाती है कि किसी जीवको मार डालना। उद्यम करनेसे जो हिंसा हो जाती है वह उद्यमी हिंसा कहलाती है। अगर कोई शत्रु हमला करे उससे बचाव करनेमें जो हिंसा होती है वह विरोधी हिंसा कहलाती है। घरके काम-काज करनेमें जो हिंसा हो जाती है वह आरम्भी हिंसा कहलाती है।

इन चार हिंसाओंमें से गृहस्थ एक हिंसाका त्याग कर सकता है। बाकी ३ हिंसाओं का त्याग गृहस्थ नहीं कर सकता है। गृहस्थका तीन हिंसाओंका त्याग नहीं है। पर साधु जनोंको सब प्रकारकी हिंसाओंका त्याग होता है। सो भैया! कहते हैं कि किसी भी जीवकी हिंसा न करो। किसीके बारेमें झूठी गवाही मत दो। अगर अपना चरित्र अच्छा है तो सब बन जाय है। झूठ बोलनेकी आदत न डालो तो भैया किसीकी झूठी गवाही न दो, अहितकी बात न करो, यही सदाचार है। कोई चीज बिना पूछे न लावो, किसी दूसरेकी स्त्रीपर कुदृष्टि न डालो। मनमें यह भाव कभी न लावो कि धन-वैभव जोड़ूं। अरे भाग्यसे जो कुछ आता है वही ठीक है। अपनेमें तृष्णाका भाव न रहे, यही सदाचार है। अगर ऐसा रहा तो समझो कि काम बन गया। यदि आचरण ठीक नहीं है तो देवी देवता काम कर दें, भगवान काम कर दें यह नहीं हो सकता है। तो सुख और दुःख दोनों ही हमारे हाथ है। जैसे हमने अपना परिणाम सुधारा तो काम सुधर गया और अगर परिणाम बिगाड़ा तो काम बिगड़ गया। अगर किसीकी तारीफ कर रहे हैं कि वह तो बड़ा ही सज्जन है, दूसरोंके काममें आता है तो इतनेसे उसे क्या मिल गया? सभी द्रव्य स्वतंत्र हैं, ऐसा ज्ञान बनाना यही विवेक है।

विवेकसे रहना इसमें ही भलाई है । । सो भैया ! यदि कोई जीव कुछ विवेक करता है, मांस मदिरा इत्यादिका सेवन नहीं करता है तो उसका जीवन सफल है । सब जीव एक समान हैं । उन जीवोंपर आघात न करो ऐसा सोचनेमें व ऐसा ही दया परिणाम करनेमें ही आनंद है ।

देखो भैया ! यदि कोई मांस मदिरा इत्यादिका भक्षण करता है तो बड़ा पाप है । जो खाते हैं वे त्याग दें तो बड़ा ही पुण्य होगा । इससे त्यागने वालेकी आत्माका बड़ा सुधार होगा । यदि अच्छा आचरण रखो तो बड़ा सुख मिलेगा । सुख दुःख देने वाला कोई दूसरा नहीं है । मेरा सुख दुःख मेरे परिणामोंपर ही निर्भर है । ऐसा जानकर अपने परिणाम शुद्ध करो । अपने आपमें रमकर अपने आप सुखी होओ ।

प्राप्ता ये दुर्गतेः क्लेशाः भ्रान्त्या भ्रान्त्वा ममैव ते ।
मुक्त्वा भ्रान्तिमतः कलात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१३॥

जितने भी दुर्गतिके क्लेश हैं वे भ्रमसे लोकमें भ्रम भ्रम कर मैंने ही तो प्राप्त किये हैं । अब इसी समयसे भ्रांतिको छोड़कर मैं अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊं ।

भैया ! जहां स्वतन्त्रताका परिचय है वहां ही सच्चा ज्ञान है । हम आप एक एक पृथक् पृथक् आत्मा हैं । यह आत्मा एक द्रव्य है इसमें अनन्त गुण हैं और उन सब गुणोंकी परिणतियां होती रहती हैं । जैसे जानन तो पर्याय होगा और जाननेकी जो शक्ति है वह गुण होगा । जैसे इसको चौकी जाना । अन्य अन्य पदार्थोंको जाना, अनेक बातें जानीं, यह तो आत्माका गुण नहीं है । ये नष्ट हो जाने वाली वृत्तियां हैं । चौकीको जाना तो यह जानना नष्ट हो जायगा और कोई नया जानन हो जायगा । तो यह जानना आत्माका गुण नहीं है, यह तो पर्याय है ।

जाननेकी जो शक्ति है वह गुण है । जो भी परिणमन होता है उनका जो आधारभूत है वह शक्ति है, वह गुण है । यह देखना पर्याय है और जाननेकी जो शक्ति है वह है गुण । ये क्रोध, मान, माया, लोभ और अशांति ये सब पर्याय हैं । और इसकी जो शक्ति है वह आत्माका गुण है वह है चारित्र गुण । सुख होना, दुःख होना यह तो पर्याय है । ये मिट जाने वाली चीजें हैं । सुखी दुःखी होनेकी जो शक्तियां हैं वह हैं आनन्द नामक गुण । ऐसी परिणति व ऐसी शक्तिकी जो समुदायात्मक चीज है उसे द्रव्य कहते हैं । द्रव्यात्मक वस्तु परमार्थभूत चीज है, ध्रुव है, उसे न जानकर वर्तमान दशाको ही सर्वस्व माने बस यही भ्रम है । यह भ्रम क्या है ? जिसकी मूलमें यह आत्मा चक्कर लगाती है । भ्रम यह है कि पर्याय को द्रव्य मान लिया । पर्यायको द्रव्य मान लेना ही भ्रम है । यहां जो देखते हैं वे क्या चीजें

है ? यह कौनसा द्रव्य है बतलाओ ? तो किसीने कहा— यह पुद्गल द्रव्य है । अरे ये पुद्गल नहीं है, ये पुद्गल द्रव्यकी व शक्तिकी दशा हैं । पुद्गलकी दशाको मान लिया पदार्थ कि यही द्रव्य है यह मिथ्यात्व है । यह सैद्धान्तिक भाषामें मैं कह रहा हूं ।

जैसे किसीने कहा कि घबड़ाओ मत हम आ रहे हैं । अगर कोई पानीमें डूब रहा है तो कहते हैं कि घबड़ाओ मत हम आ रहे हैं । इस शरीरके ढांचे को कह रहे हैं कि हम आ रहे हैं । अथवा ओर भीतर दृष्टि जाय तो भी भीतर विकल्प करता रहता है, उसको कहते हैं कि यह मैं आ रहा हूं । देखना, जानना सुनना, विचार करना—ये सब पर्यायें हैं । इनको 'मैं' यह मोही जगत कह रहा है । पर्यायको द्रव्य मानना ही भ्रम है, मैं आत्मा क्या हूं ? क्या यह जो पर्याय है, शरीरका ढांचा है क्या वह मैं हूं ? नहीं, यह मैं नहीं हूं । यह पर्याय है । तो क्या भीतर जो रागद्वेष दुःख सुख होते हैं वह मैं हूं ? नहीं, वह भी मैं नहीं हूं । वह भी पर्याय है । वे भी मिट जाने वाली चीज हैं । मिट जाने वाली जो चीज है वह पर्याय है और जो न मिट जाने वाली चीज है वह द्रव्य है या गुण है । अर्थात् गुणका व द्रव्यका नाश नहीं होता है । इन जीवोंने पर्यायको द्रव्य मान लिया यह भ्रम है । भीतरमें जो रागद्वेष उत्पन्न होते हैं क्या वे मैं हूं ? नहीं, वे भी मैं नहीं हूं ।

जब मैं किसी पर्यायमें पहुंचा तो जिस पर्यायमें हूं, उसीमें मैं अपने को मानता हूं । यदि मैं पक्षी हो गया तो माना कि मैं पक्षी हूं । यदि मैं मनुष्य बन गया तो कहता हूं, कि मैं मनुष्य हूं । यह सब भ्रम है और इस भ्रमके ही कारण संसारमें भटकना पड़ता है । यदि धनी बन गये तो मैं धनी हूं ऐसा मानना यह भ्रम है । अथवा यदि धन नहीं है तो गरीब मानना यह भी भ्रम ही तो है । परिवार, कुटुम्ब, बच्चे इत्यादि जुड़ गये तो मैं परिवार वाला हूं, ऐसा मानना भ्रम है । परिवार न रहे तो वह मानते हैं कि हाय मैं अकेला हूं यह भी भ्रम है ।

क्यों जी कोई पूजा कर ले, कोई विधान कर ले, कोई बाल-बच्चों वाला हो जाय तो यह भी तो भ्रम है । कोई जीव किसी जीव पर दया करने वाला यदि यह समझ ले कि मैं दया करता हूं तो यह भी भ्रम है । पर्यायको द्रव्य मानना सो ही भ्रम है । क्यों जी कोई साधु बन जाय, मुनि बन जाय, वह ऐसा सोच ले कि मुझे देखकर चलना चाहिए आदि तो यह सोचना भी भ्रम है । किसी भी दशामें पर्यायको द्रव्य मानना भ्रम है । मुनि है वह पर्याय है कि द्रव्य है ? पर्याय है । पर्यायको मान लिया कि यह मैं हूं । मुनिको मुनि मानना पर्याय है और पर्यायको यह मान ले कि यह मैं हूं तो भ्रम है ।

मैं एक ज्ञायकस्वरूप हूं, केवल चैतन्यस्वरूप हूं, यह माना तो भ्रम नहीं है । जैसे

किसीने माना कि मैं मनुष्य हूं तो मनुष्य तो आत्मा नहीं है। अगर अपनेको मनुष्य माना तो भ्रम है। किसीने मान लिया कि मैं गृहस्थ हूं तो गृहस्थ तो आत्मा नहीं है। अगर गृहस्थ अपनेको माना तो भ्रम है। आत्मा तो एक ज्ञानस्वरूप वस्तु है। गृहस्थ नहीं है और मान लिया कि मैं गृहस्थ हूं। तो यह भ्रम हो गया कि नहीं हो गया ? इन सब भ्रमोंके कारण इस जगत्के जीव संसारमें रुलते ही रहते हैं। मोही जीव इस जगत्में भ्रमण करते-करते बड़े-बड़े क्लेश पाया करते हैं। मैं इन समस्त भ्रमोंसे मिटकर अपने स्वरूपको देखकर अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊँ।

आपत्पूर्णो भवे ह्येको भ्राम्यामि तत्त्वतो निजे।
उपयोगे ततः स्वस्थः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१४॥

आपत्तियोंसे भरा हुआ यह संसार है। मैं इस संसार संसारमें अकेला ही भ्रमण करता हूं। अपने स्वरूपसे हटकर बाहरमें उपयोग फंसाये हैं, ये तो सब आपदायें हैं ऐसा ज्ञानी जीव समझता है। अज्ञानी जीव तो इन बाह्य सम्पदाओंको ही वास्तविक सम्पदा समझते हैं, पर ज्ञानी जीव निर्वाणकी अवस्थाको ही सारी सम्पदा समझता है। आखिर यह भव छूटा तो फिर पशु बन गये, पक्षी बन गये, दुर्गति हो गयी तो कौनसा आनन्द बाह्य पदार्थोंके उपयोगसे हुआ ? आनन्दकी वस्तु तो वह है कि मिले और फिर मिटे नहीं। जिसके पानेके बाद वह मिटे नहीं वह वास्तविक वस्तु है। इस आत्माकी विभूतिका चमत्कार आत्मा में है। अगर यहां लाखों जोड़ लिया, ऊँची ऊँची उपाधियां प्राप्त कर लिया, पदवियां प्राप्त कर लीं तो ये उपाधियां क्या हैं ? आखिर ये सब छोड़ना ही पड़ेगा।

कोई धनमें बड़ा है, कोई पूजामें बड़ा है, कोई ज्ञानमें बड़ा है, कोई तपमें बड़ा है पर सभी उस अरहंत भगवान्‌की मूर्तिके आगे सिर झुकाते हैं। सो यह अरहंत भगवान् सबों से भी बड़ा है। तभी तो समस्त लोक इस अरहंत भगवान्‌के सामने झुकते हैं। यह अरहंत भगवान् क्यों बड़ा है ? इसका स्मरण रहनेसे अपनी आत्माकी विभूति नष्ट नहीं हो सकती है। स्मरण हो आता है मैं यह आत्मा कौन हूं, ज्ञान और आनन्दस्वरूपका भंडार हूं तो मैं केवल अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव करूं तो अद्भुत आनन्द प्रकट होता है। सारी कल्पनाओं को त्यागकर अपनी जिन्दगीमें अपने आपका ही अनुभव हो जाय तो अपने आपके ज्ञानमें जिन्दगी सफल है। अनेक उपायोंको करके किसी भी प्रकार अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव हो जाय तो उन उपायोंको करना चाहिए। हम यह नहीं कहते कि आप अपना घर छोड़ दें वरन् अपने कल्याणकी बात मिल जाय, प्रभुके दर्शन हो जायें, आत्मस्वरूपका अनुभव हो जाय तो यही मुक्तिका मार्ग है।

देहान्तरं व्रजाम्येको देहमेकस्त्यजाम्यहम् ।
परदृष्टि हि तत्स्वस्थ: स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१५॥

यह मैं अकेला ही दूसरे शरीरमें जाता हूं और यह मैं अकेला ही इस शरीर को त्यागता हूं। कोई कैसा ही प्रेमी हो, मित्र हो, किसीसे कहो कि हम तुम्हारे जीवन भर साथी रहे, संगी रहे, अब हम दूसरी नयी देहमें जावेंगे तो तुम भी हमारे साथमें चलो तो वह नहीं जा सकता है और मान लो जब भी कषाय आ जाय और मरते समय साथमें हो मर जाय, याने जिस समय वह मरता है उसी समय वह भी मरता है पर मरते में भी शरीर के साथ चला जाय तो यह असम्भव है। वह एक शरीरमें भी ,मान लो पहुंच जाय निगोदिया बनकर तो भी अनुभव अलग ही अलग है, अनुभवमें एक नहीं हो सकेंगे, तथा सूक्ष्म शरीर तो फिर भी अलग है। यह तो मैं अकेला ही नये शरीरको धारण करता हूं और यह मैं अकेला ही इस शरीरको छोड़ूंगा।

भैया ! शरीर जीवके साथ दो तरहके लगे हैं—एक सूक्ष्मशरीर और एक स्थूल-शरीर। जो हम सब लोगोंको दिखता है वह तो है स्थूलशरीर और सूक्ष्मशरीर वह है जो स्थूलशरीरके त्यागने पर भी जीवके साथ जाता है। वह सूक्ष्मशरीर स्थूलशरीरके होते हुए भी साथमें लगा हुआ है। स्थूल शरीरका तो कुछ क्षणके लिए बिलगाव भी हो सकता है। मर गये सो शरीर तो छूट गया, पर बीचकी स्थितिको जिसे विग्रह गति कहते हैं उस स्थिति में स्थूलशरीर नहीं रहता मगर सूक्ष्मशरीर उस बीच की स्थितिमें भी रहता है और स्थूल शरीर धारण किए हुए है इस समय भी रहता है। सूक्ष्मशरीरका सम्बन्ध आज तक एक क्षण भी नहीं टूटा और स्थूलशरीरका सम्बन्ध दो दो तीन समय तकको छूट भी गया पर सूक्ष्मशरीरका सम्बन्ध अब तक कभी नहीं छूटा।

वह सूक्ष्मशरीर क्या है ? तैजस और कार्माण। उस सूक्ष्मशरीरमें दो तरहकी नि-मित्तदृष्टिसे कलाका निर्णय कीजिये एक शरीरकी तो यह कला है कि जिस स्थूलशरीरके पास यह सूक्ष्मशरीर है उस स्थूल शरीरमें तेजो आ जाय याने मर जाने पर कहते हैं ना कि इस पर मुर्दायी छा गयी तो वह मुर्दायी क्या चीज है ? तेज निकल गया। जीवमें रहता हुआ उसमें तेज था सूक्ष्मशरीरके कारण। सो जीवके निकलने पर वह सूक्ष्मशरीर भी निकल गया और तेज भी निकल गया। जब स्थूल शरीरके साथ है तब तेज रहता है। और दूसरे शरीरमें एक कला यह है कि उसका विपाक काल आया तब जीवमें रागद्वेषकी वृत्ति स्वयं हो जाती है। इस सूक्ष्मशरीरमे यह दो प्रकारका निमित्तपना है। उसका निमित्त है तैजस शरीर और कार्माणशरीर। तैजस शरीरके निमित्तसे तो स्थूलशरीरमें तेज आता है और

कार्माणशरीरके निमित्तसे जीवकी भूमिकामें राग द्वेष आदि विकार उत्पन्न होते हैं। सो यह दोनों ही प्रकारके सूक्ष्मशरीर पर जाने पर भी साथ जाते हैं और स्थूलशरीर वहीं पड़ा रह जाता है।

भैया! मैं अकेला हूं, देहांतरको प्राप्त करता हूं और अकेले हीं देह का त्याग करता हूं। और जितने भी सुख दुःख होता है, यह जीव उन सबको भी यह जीव अकेला ढोता है। सो परकी ओरकी दृष्टिको त्यागकर अपने आपके शरीरमें उन्मुख होकर यह मैं अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊं। देखो यह विग्रहगतिमें जीव जब होता है तब यह जीव स्थूलशरीरसे तो रहित है पर सूक्ष्मशरीरसे समवेत है। और ऐसी स्थिति इस जीवकी अधिक से अधिक तीन समय तक होती है। चौथे समयमें नई देह अवश्य प्राप्त कर लेता है। ऐसा नहीं है कि यह जीव कई दिन तक घूमता फिरता हो अपने जन्मको ढूंढ़नेके लिए, ऐसा नहीं है। अधिकसे अधिक तीन समयकी स्थिति है और जहां पैदा होता है उस ओर ही जीव मरनेके बाद जाता है। यह नहीं है कि मरनेके बाद कुछ थोड़ा डोल-डाल ले, फिर जन्म-स्थान पर पहुंचे।

जैसे कभी-कभी कोई साधु चौमासे भर भी रहे और चौमासेके बाद भी अगर महीने दो महीने रहता है तो एक रात उस जगहसे कहीं चला गया और आहार लेने, फिर वहीं का वहीं आ गया। कहे कि चौमास खत्म हो गया और रीति अदा कर लिया और फिर वहींका वहीं आ गया तो भाई तुमने रीति तो अदा कर ली मगर उस आत्मामें तो नहीं परिवर्तन कर दिया उसका वही राग है, वही परिचय है, और उसी राग और परिचयके कारण अपनेमें क्षोभ कर रहे हैं। सो ऐसा नहीं है कि यह जीव डोलता फिरे कोई बहाना करे कि चलो पंगत कर दें, तेरही कर दें तो यह जीव जन्म के स्थान पर पहुंच जाय—ऐसा कुछ नहीं है। वह तो मरनेके बाद ही तुरंत पैदा हो गया। दो तीन समय की क्या गिनती है?

जैसे आंख खोलते हैं और पलक गिरा कर आंख बन्द कर लेते हैं। तो इसमें कोई देर नहीं लगती है। पलकको कोई देरसे भी नहीं गिरा सकता है कि चलो धीरे धीरे पलकों को गिराये। जब पलक गिराते हैं तो तुरन्त गिर जाते हैं। उस एक पलकके पतन में अन-गिनते समय लग जाते हैं, कोई गिनती नहीं, जितना कोई गिन सके, नहीं, उससे भी अधिक बढ़कर जो असंख्यातका प्रमाण कहा जाता है उसके बराबर। सो तीन समय तक ही यह जीव बीचमें विग्रहगतिमें रहता है और चौथे समयमें तो अवश्य ही जन्म होनेकी जगहमें पहुंच जाता है। तो सर्वत्र यह जीव अकेला है। जब यह देह है तब यह जीव अकेला है। जब इस देहको छोड़कर चले तब भी अकेला है जब सुख साधन हैं तब भी अकेला है और जब उप-

कर्म है सुख साधन नहीं है तब भी यह जीव अकेला ही जन्म मरण करता है। इसका कोई दूसरा सहाय नहीं। यह विडम्बना क्यों हो रही है कि इस जीव को अपने एकाकी स्वरूपका पता नहीं है। यदि उस अपने एकत्वस्वरूपका पता लगाये, मिथ्यात्व को हटाये तो यह जीव अपने आप अपनेमें ही सुखी हो सकता है।

वियोगयोगदुःखादौ किंचिन्मित्रं न तत्त्वतः।
स्वाविष्टः स्वस्य मित्रं स्वः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१६॥

जब वियोग होता हो, जब संयोग होता हो, जब कोई संकट आते हों तब भी वास्तवमें इस जीवका कोई दूसरा मित्र नहीं है। किन्तु अपना मित्र कौन है? अपने आपकी आत्मामें बसा हुआ यह जीव ही अपना मित्र है, सो कुमित्रकी प्रीति छोड़ो और निज मित्र का आदर करो। निज मित्र है अपना ज्ञान जो सदा सीधी शिक्षा देगा वह ज्ञान है अपना मित्र। सो अपने अविनाशी स्वतःसिद्ध ज्ञानमात्रपर दृष्टि दो। ज्ञान ही असली मित्र है। बुरी परिस्थितिमें जब विपत्ति सिरपर आ जाती है तो ऐसी परिस्थितिमें ज्ञान ही इस जीवको संकटोंसे बचाता है। संकट दुनियामें क्या होते हैं? केवल मान लेनेके ही संकट हैं। जैसे परिवारका वियोग हो गया, धनकी हानि हो गयी, कोई दूसरे पुरुषने मेरा ही लक्ष्य करके गाली दे दिया, इन्हींको ही लोग विपत्ति मानते हैं। सो मानो, परन्तु विपत्तियोंसे बचनेका उपाय मात्र सम्यग्ज्ञान है।

अच्छा! प्रत्येक अवस्थामें चाहे वह सुख संपदाका साधन हो और चाहे विपत्ति विडम्बनाका साधन हो पर हर एक स्थितिमें यह जीव यदि अपने आपके सत्यस्वरूपका ध्यान करेगा तो उसके सुखी होनेमें कोई बाधा नहीं डाल सकता। हम अपने आप ही अपने ही ऐबोंके कारण दुःखी हो रहे हैं, नहीं तो दुःखका काम क्या है? यह मैं हूं, ठीक हूं, इसमें क्या दुःखोंका काम है? सो ऐसा एकाकीपना विचार कर आत्माके अद्वैतपनेकी बात जानकर सब छोड़ देवें। उससे क्या होगा कि उसका जीवन निष्पाप होगा। फिर उसका कोई साथी संघाती होगा कि नहीं होगा? अरे तू भला तो जग भला और तू भला नहीं तो तेरे लिए जग भला नहीं है। सो सर्व चिंता छोड़ मात्र अपने आपको ही जानो और अपने आपमें ही रमकर अपने आप स्वयं सुखी होओ।

देखो भैया! परकी आशायें करो तो भी क्या कोई सहायक बन जावेगा। तुम तो सर्वत्र अकेले हो हो। जिस समय किसी पदार्थका वियोग होता है उस समय कोई सहायक नहीं होता और जब कोई संयोग होता है तो संयोगके समयमें भी वास्तवमें कोई मित्र नहीं होता। सब भी अपनी कल्पनाओंसे अपना-अपना अनुभव होता है। कोई दुःख आ पड़े तो

उस दुःखमें भी कोई सहाय नहीं होता। सर्वत्र केवल अपना-अपना सुख दुःख परिणमन होता जाता है। तो वास्तवमें मेरा मित्र कोई नहीं है। मुझे ही बाहरकी भेदबुद्धि हटाकर अपने आपके अभेद चैतन्यरसमें लीनता हो तो मैं खुद ही मित्र हूं। इस स्थितिमें ही कर्म झड़ते हैं। जैसे कोई धोती गीली है सूखनेके लिए डाल दिया तो वह गिर पड़ी तो उसमें धूल चिपट जाती है। जब कोई आदमी उसे उठाकर उस धूलको छुटाने लगता है तो विवेकी पुरुष मना कर देता है कि मत छुटावो। ऐसे ही सूखनेके लिए डाल दो। जब सूख जायगी तब जरासा झिटकनेसे छूट जायगी। और गीली धोतीमें अगर छुटाया जाय तो छूटनेके बजाय चिपट जायगी और सूख जाने पर झिटकनेसे नहीं छूटेगी।

इसी तरह आत्मा कषायोंसे गीली है सो इसके साथ कर्मोंका जमाव है, अगर कर्मोंसे हटना है तो क्या उपाय करो कि आत्माको रूखा कर दो याने कषाय आत्मामें न रहने दो, मिथ्यात्व न रहने दो। जो अपनेको रूखा कर देंगे उनके कर्म यों ही खत्म हो जावेंगे। तो रूखा तब होगा, जब यह आत्मा कषायरहित निज चैतन्यस्वभावमें उपयोग देगा। इससे कषायोंका गीलापन मिट जाता है और इस ही दृष्टिके प्रसादसे भव-भवके बँधे हुए सब कर्म भी खिर जाते हैं। इस कारणसे अपना मित्र केवल आत्मा ही है। जो आत्मा अपने आपके उन्मुख हो रहा है वह आत्मा ही अपना मित्र है। सो उस ज्ञायकस्वभाव आत्मतत्त्वमें स्थिर होकर अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होओ।

यदन्येषां कृते चेष्टे एको भुञ्जे हि तत्फलम्।
स्वस्मै तत्रापि चेष्टासीत् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्॥१७॥

मैं जो दूसरे प्राणियोंके लिए चेष्टा कर रहा हूं सो उस चेष्टाका फल केवल मैं ही अकेले भोगता हूं, मैं दूसरोंके लिए क्या करता हूं? दूसरोंका मैं कोई काम नहीं करता। न उनके हाथ छूता, न पैर लगाता, न अन्य कोई काम करता, केवल दूसरोंका लक्ष्य बनाकर अपने विकल्प करता हूं। मैं विकल्पोंके सिवाय अन्य कुछ काम नहीं करता। सो जो विकल्प मैंने दूसरोंके बनाए हैं। उन विकल्पोंका फल केवल मैं ही अकेले भोगूंगा। यह तो मैं एक चेतन सत् हूं और परिणमता रहता हूं। सो मेरा परिणमना इस प्रकारसे है कि उपाधिकी सन्निधि नहीं होती तो शुद्ध चेतनात्मक परिणमूंगा और उपादान सामने हो तो मैं विकल्पात्मक परिणमूंगा, चाहे विकल्परूप परिणमूं चाहे निर्विकल्परूप परिणमूं, पर चैतन्यात्मक ही मेरा परिणमन होगा। सो दूसरोंके लिए जो मेरी चेष्टा है वह विकल्परूप चेष्टा है। उस विकल्परूप चेष्टाका फल केवल यह मैं ही अकेला भोगता हूं। नरक जाने जैसा तो खुदने परिणाम किया तो क्या नरक कोई और दूसरा जायगा। मायाचारके जिम्मेदार परिणाम रखा अब

उसके फलमें क्या कोई दूसरा प्रवेश करेगा ? उसीको ही तिर्यंच होना होगा और कोई व्रत तप संयम आदि करे और शुद्ध प्रवृत्तिसे चले तो उसका फल वही अकेले भोगेगा, कोई दूसरा उसका फल नहीं भोग सकता । सो यह तो केवल भ्रमकी बात है । जो कोई यह सोचे कि मैंने तुम्हारे लिए क्या-क्या किया ? तुम्हारी, लोगोंकी व्यवस्थाके साधन जुटाये, अमुक-अमुक दुकान इत्यादिके साधन जुटाये, मैंने तुम्हारे लिए क्या-क्या किया ? सोचते रहे, पर उन्होंने कुछ नहीं किया । वहाँ पर जो कुछ किया वह अपने लिए किया । हर जगह जो कुछ कोई करता है वह अपने ही लिए करता है दूसरोंके लिए कुछ नहीं करता है ।

आप घरमें रहते हैं, सोचते तो यह हैं कि मैं लड़कोंके लिए यह ठीक व्यवस्था बनाता हूं, पर आप लड़केके लिए कुछ नहीं करते, वहाँ भी आप जो कुछ कर रहे हैं वह अपने लिए कर रहे हैं । यह तो सोचना भ्रम है कि मैं लड़कोंके लिए कुछ कर रहा हूं । लड़केका आश्रय किया । उसको विषय बनाया और अपनेमें विकल्प बनाया । यह जीव हर हालतमें अकेला है । जैसे लोग समझते हैं कि यह बड़ा घराना है, यह घर भरा है । अरे वे तो बिल्कुल अकेले ही हैं और वे बड़े झंझटोंमें पड़े हुए हैं, विपत्तिमें पड़े हुए हैं । वे तो क्षमाके पात्र हैं । है तो कुछ नहीं मगर उपयोगमें कुछ बसाकर हैरान हो रहे है, परेशान हो रहे हैं, शल्य बढ़ा रहें हैं । वे तो दयाके पात्र हैं । तो जितनी भी मेरी चेष्टाएं आज तक हुयी उनमें ख्याल तो यह रक्खा कि स्त्रीके लिए यह कर रहा हूं, पुत्रोंके लिए यह कर रहा हूं, देशके लिए यह करता हूं, समाजके लिए यह करता हूं, मगर कहीं भी यह दूसरेके लिए कुछ नहीं करता । जो कुछ किया सो अपने लिए किया ।

भैया ! कोई सा काम देख लो प्रत्येक परिणामोंका फल केवल अपने आपको मिलता है । इस आत्माके स्वरूपपर नजर करके देखो केवल यह आत्मतत्त्व शुद्ध ज्ञानस्वरूप है । परिवारके लिए विकल्प किया, परिवारके लिए ही अपना शरीर लग गया पर उसका फल अपने आपको ही मिलता है । बाल्मीकि ऋषि की कथा है कि एक जंगलमें रहते थे और डाकू का काम करते थे । एक बार एक साधु वहाँ से निकला तो उस साधु को भी बाल्मीकि ने पकड़ लिया और कहा कि कहाँ जाता हे जो कुछ हो रखो, तुझे पता नहीं कि यहाँ बाल्मीकि रहता है । कमंडल डंडा धरा लिया । साधु कहता है कि भैया कमंडल डंडा तू ले जा पर घरसे एक बात पूछकर तो आ । बाल्मीकि बोले क्या ? साधु बोला यह पूछ कर आवो कि हम जितना अन्याय करते हैं, मुसाफिरों को लूटते हैं तो उसमें जो हमें पाप लगते हैं कोई हमसे उन पापोंको बाँट लेगा क्या ? केवल इतनी बात पूछ करके आवो और जो कुछ उत्तर वे दें हमें सुनाना । बाल्मीकि घर गये, बात पूछनेके लिए सो स्त्री से पूछा,

मों से पूछा और जो जो भी था सबसे पूछा लेकिन पापकी बात इतनी खराब लगती है कि किसी को यह कहनेमें भी डर लगता है कि तुम्हारा पाप मैंने लिया ।

एक घटना है गुरु जी के बारेमें । पहिले वे बड़े पंडित जी कहलाते थे । उस समय ७ वीं प्रतिमा रही होगी तो जिस धर्मशालामें ये रहते थे उसीमें एक भाय जी रहते थे । तो वे भाय जी एक दिन उपवास करें और एक दिन भोजन करें, मगर जिस दिन भोजन लेते पूरा वह एक दिन बनाने खाने में लगता था । वह धीरे धीरे खाते थे । कहीं सामायिक करके खा रहे हैं कभी पहिले खा रहे हैं । मगर उनका नियम था कि हरा साग न छौंकना सो साग बना कर रख लिया और अब बाट हेरे कि कोई अच्छा आदमी मिल जाय तो उसके हाथसे साग छौंकालें । तो बड़े पंडित जी इतनेमें मंदिरसे धर्मशाला आये तो भाय जी को दिख गये । भाय जी बोले पंडित जी साग छौंक दो । गुरुजी बोले तुम क्यों नहीं छौंकते, कहा हमारा त्याग है । पंडित जी ने कहा कि छौंक तो दें मगर हम यह कहते हुए छौंकेंगे कि इस छौंकनेमें जो पाप लगे वह भायजी को लगेगा । तो भाय जी कहने लगे वाह तुम्हारे छौंकवाने से फायदा ही क्या जो पाप लगे । भाय जी बोले हमें नहीं छौंकवाना है, हम किसी और को ढूंढ़ लेंगे । पंडित जी बोले अच्छा लाओ छौंक देंगे । साग छौंका तो यह भी बोल दिया कि जो पाप लगे सो भाय जी पर लगे, सो भाय जी उछलकर दौड़ पड़े, बोले सो मेरी प्रतिज्ञा तोड़ दी है ।

भैया ! सोचो तो जरा कहनेसे पाप नहीं लगता करनेसे लगता है । मगर पापका नाम इतना बुरा है कि कोई आदमी अपनेसे यह नहीं कह सकता कि तुम्हारा पाप मैंने लिया । किसीके यह हिम्मत नहीं कि कहे कि तुम्हारा पाप हमने लिया । सब घबड़ाते हैं कि यह पाप हमींपर लग जायगा । सो बाल्मीकिने अपने घरमें सबसे पूछा कि हम जो अन्याय करते हैं पाप करते हैं तो यह पाप तुम बाँट लोगे ? तो उस फैमिलीके सब लोगोंने मना कर दिया कि पाप कैसे बंटेगा ? पाप तो जो करता है उसके ही सिर रहता है । इतनी बात सुनकर बाल्मीकि जी के तो ज्ञान जग गया । अहो किसीका साथी कोई दूसरा नहीं है । सब अपने-अपने ही कर्मोंको बाँधते हैं और अपने ही कर्मोंके फलको भोगते हैं । हमने अपनी जिन्दगीमें अब तक कितनोंको ही कष्ट दिया, कितनोंको ही लूटा, कितनों को ही दुःखी किया । बाल्मीकि जी को बड़ा पछतावा रहा, बड़े बड़े प्रायश्चित्तके मनसूबे बाँधते हुए साधु के पास गये । साधुसे बोले, हमें आपका कमंडल डंडा कुछ नहीं लेना है और न कोई चीज लूटना है । बस इतना यह निर्णय है कि हमने अपने आप ही सारे पाप बना लिए सो बोले कि अब मेरा ठगाईका त्याग है, लूटनेका त्याग है और बाह्य वृत्ति भी कोई नहीं करेंगे सि-

बाद भगवान् भक्तिके जो उन्होंने संन्यासका व्रत लिया और सब तरहके विकल्पोंको तोड़कर वे अपने भावोंके अनुसार समाधिमें लीन हो गये, यत्न किए और इतने बड़े ऋषि माने गये कि आज भी बहुतसे लौकिकजन उनको बाल्मीकि ऋषिके नामसे कहते हैं।

बाल्मीकि जी ने सबसे पहिले रामायण बनायी थी, जिसके बाद फिर तुलसीदास जी ने बनायी। मगर रामायणकी बात ऐसी है कि प्रारम्भमें तो जैनसिद्धान्तसे रामायण बनी जिसका नाम है स्वम्भू कविकृत रामायण और वह प्राकृत भाषामें है। उसमें ५ छंद हैं और १ दोहा है, फिर ५ प्राकृत छन्द एक दोहा है और तुलसीदास जी ने अंतमें यह लिखा कि मैंने स्वयंभूके प्रसादसे यह रामायण बनायी। स्वयंभू कविकी कृतिको इन्होंने देखा और ढांचा समझमें आ गया ५ छंद और एक दोहा। खैर तो बाल्मीकि अंतमें यही निर्णय करके कि मेरा सहाय कोई नहीं है, साधु हो गये। अपनी ही बात देख लो, अपना भी सहायक कोई दूसरा नहीं है। हर जगह हम मात्र अपनी चेष्टा करते हैं। दूसरेका कुछ नहीं करते हैं। दूसरोंका तो केवल ख्याल ही बना है मगर करते अपना ही काम हैं। सो ऐसा जानकर कि हम दूसरोंका कुछ नहीं करते हैं तो दूसरोंका ख्याल ही करके उनका विकल्प क्यों करें? उस ओरसे मुख मोड़ लो तो निर्विकल्प स्थितिको पाओगे और उसमें जो आनन्द आयगा वह कहीं नहीं आयेगा। सो अपने आपके स्वरूपमें रत होकर अपने आप ही सुखी हो सकता हूं।

कारणं सर्वदुःखानां स्वज्ञानाभाव एव हि।
येनैको वञ्चितस्तस्मात्स्वां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१८॥

जगतमें जितने भी दुःख हैं उन सब दुःखोंका कारण आत्माके ज्ञानका अभाव है। आत्मा किस चीजसे बना है? इसमें क्या भरा है? यह अनुभव करनेसे ज्ञात होता है कि आत्मा और कुछ नहीं बल्कि जो जानन है, जो आनन्द है इस भावका नाम ही आत्मा है। यह ज्ञान और आनन्द ये दोनों भाव निराधार नहीं हैं। इन दोनों भावोंका जो आधार है वह ही आत्मा है। आत्मा तो आनन्दमय है। इसके स्वरूपमें ही दुःख नहीं है। इस कारण 'आनंद ब्रह्मणो रूपम्' ऐसा ब्रह्मवादमें कहा है कि ब्रह्मका स्वरूप आनन्द है और आत्माका स्वरूप आनन्द है। इस आत्मामें तो दुःख है ही नहीं।

यह प्राणी अपने ही स्वरूपसे चिगता है और स्वयं ही कल्पनाएँ बनाकर दुःखी हो जाता है। दुःख बनानेसे होते हैं, पर आनन्द बनानेसे नहीं होता है। फर्क इतना ही है कि आनन्द तो आत्मामें स्वयमेव है और दुःख बनानेसे होते हैं। अभी देखो घरके जिन दो-चार मोही जीवोंमें फंसे हुए हो। वे जीव आपके कुछ हैं क्या? अरे ये किसी गतिसे आए हैं और किसी गतिको चले जायेंगे। फिर और भी सोचो कि ये चार जीव न हों, इनके बदलेमें और

कोई चार जीव होते तो क्या उनसे मोह न करने लगते ? ये मेरे हैं, इनसे हमारा यह संबंध है ऐसा मोह करनेकी इस जीवमें आदत हो गयी है । सो जो आशा है उससे ही मोह करते हैं । जैसे ये जीव हैं वैसे ही सब जीव हैं, कोई वस्तुतः विशेष नहीं । यदि यह माना जाता है कि ये मेरे हैं तो यह बड़ा अपराध है । सब दुःखोंका कारण आत्माके ज्ञानका अभाव है ।

मैं कैसा हूं ? मेरा सही स्वरूप क्या है ? इसका जब पता नहीं रहता है तो बाहर में ही दृष्टि जाती है, बाहरमें ही सम्बन्ध मानते हैं सो इस मान्यतासे भी जीव दुःखी होता है । इसी ज्ञानके अभावके कारण यह मैं आत्मा विचित्र होता हूं । सो हम जो पग पग पर ठोकर खा रहे हैं वह ठोकर अज्ञानसे ही खा रही है । किसीसे सम्बन्ध कुछ नहीं, रंचमात्र भी नहीं, यह बात भीतरमें ज्ञानमें आये और भीतरके स्वरूपमें ही दृष्टि होकर ऐसा ज्ञान आवे कि सारे जीव स्वतंत्र हैं, किसीका 'किसीसे कुछ सम्बन्ध नहीं' है, मैं भी अपने स्वरूपमें स्वतंत्र हूं । मैं हूं और परिणमता हूं, बस इतना ही मेरा काम है । किसीसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं । परपदार्थ हैं और परिणमते हैं इतना ही मात्र वस्तुका रूप है । हूं और बदलता रहता हूं । मेरा बदलने वाला और कोई दूसरा नहीं है । वे स्वयं ही बदल रहे हैं । भले ही कोई दूसरा निमित्त हो, मगर सब हैं और स्वयं बदलते रहते हैं । इसी प्रकार मैं हूं और बदलता रहता हूं ।

कभी कभी गुस्सेमें किसी प्रकारका विकार आ गया, विकल्प आ गया तो यह परको निमित्तमात्र पाकर खुद आ जाते हैं और इस परिणमनमें मैं खुद पराधीन हूं । मैं देखता हूं दूसरेको पराधीन, पर हम स्वयं पराधीन हो जाते हैं । ऐसा निर्णय सर्वप्रथम रक्खो कि अगर कोई दुःख पाते हैं तो समझो कि मेरी ही कोई गल्ती है जिससे दुःख हुआ है, दूसरेकी गल्ती से मुझे दुःख नहीं होता है । अगर कोई मनुष्य किसी बातके बिना भी पीटने लगता है तो उस पर भी समझो कि हमारी ही कोई गल्ती है । अपने दिलमें एक यह बात भी उतार लो कि जब कभी भी दुःख पाते हैं तो समझो कि हमारी ही कोई गल्ती है । जिसके कारण दुःख आये हैं यह बात बिलकुल पक्की है, निर्णीत है । इसलिए कहा जा रहा है कि यह बात लेकर निर्णयमें चलो । फिर देखो कि कितना प्रकाश मिलता है और कितनी शांति मिलती है ? किसी भी समयमें दुःखी हूं तो अपनी ही गल्तीसे दुःखी हूं, कितनी ही बात तो स्पष्ट हो जाती है, निर्णयके लिए एक दो बातें और लो, हम बड़े ही अच्छे आचरणसे चलते हैं, बड़े शुद्ध न्याय और व्यवहारसे रहते हैं फिर भी कुटुम्ब या पड़ोसके लोग मुझे सताते हैं, बद-नामी करते हैं, निन्दा करते हैं, उससे मुझे दुःख होता है । यहां कोई यह कहे कि अरे बत-लावो इसमें हमारी क्या गल्ती है ? इस तरह न्यायसे चलते हैं, सबका भला सोचते हैं फिर

की बताने वाले बहुत हैं, निन्दा करने वाले बहुत हैं। अरे इसमें भी तुम्हारी ही कोई गल्ती है बिन तुम्हारी गल्तीके दुःख नहीं हो सकते हैं। अपनी दृष्टि बिगाड़ रखी है यही सबसे बड़ी गल्ती है।

कोई गाली दे रहा है, कोई निन्दा कर रहा है तो वह अपनी ही तो चेष्टा कर रहा है। अपने ही कषायोंसे अपने परिणाम हो रहे हैं। भाषावर्गणायें अपने ही रूप तो चल रही हैं। उनसे तेरा क्या नाता है? उनके कारण तेरेमें कोई परिणति होती है क्या? उनसे कोई सम्बन्ध तो नहीं है। स्वयं स्वतंत्र पदार्थ हैं। फिर भी इतनी गल्ती कर डाली। एक नहीं दो गल्तियाँ कर डालीं। पहली गल्ती तो यह कर डाली कि मुझको कहा, उसने मुझको जो माना इस पर्यायमें सो यह तो मैं नहीं हूं। मैं तो चिदानन्द मात्र हूं। वह तो मेरी निगाहमें है ही नहीं, उस दूसरेकी निगाहमें है। मेरी निगाहमें तो यह असमानजातीय पर्याय है, मुझको कहा, इसने कहा। अरे अपनेमें वह है ही नहीं। बाहरी तत्त्वमें आत्मा मान लिया पहला अज्ञान तो यह है और दूसरा अज्ञान यह है कि इसने मुझको दुःख दिया यह भाव बनाया। अरे इस जगतके जीव अपना ही काम कर पाते हैं मेरा कुछ नहीं कर पाते हैं। मैं स्वयं कल्पनाएं करके दुःखी होता हूं।

भय्या! जरा सोचो दो बच्चे लगभग २० हाथकी दूरी पर खड़े हैं। एक बच्चा दूसरेको देखकर अंगुली मटकाता है तो दूसरा बच्चा उसको देख कर दुःखी होता है। अब हमें यह बतलावो कि २० हाथकी दूरी पर खड़े हुए बच्चेके अंगुली मटकाने से क्या दूसरे बच्चेमें कुछ घुस गया। कुछ भी तो नहीं घुस गया। अंगुली मटकाने वाला अपना काम कर रहा है और चिढ़ने वाला अपना काम कर रहा है। एक दूसरेका कोई कुछ नहीं कर रहा है, पर वह अपना ख्याल बनाकर दुःखी होता है। उसी रास्तेमें दो सज्जन गुजरे। एक तो चिढ़ाने वालेको डांटता है, अरे तू व्यर्थमें क्यों चिढ़ा रहा है? यदि वह यों जवाब दे कि यह तो मेरी चीज है, यह तो मेरी अंगुली है, मैं कैसी भी मटकाऊँ तो क्या जवाब देगा? दूसरा सज्जन चिढ़ने वालेको समझाये कि अरे क्यों चिढ़ता है? वह अपनी ही तो जीभ मटकाता है, अपनी ही तो अंगुली मटकाता है। अगर उसकी समझमें आ जाय तो समझने वालेको भी कुशल और समझाने वालेको भी कुशल।

सो भैया! यही बात जीवनमें उतार लो कि मुझे दुःख होते हैं तो दूसरोंके द्वारा नहीं होते हैं मेरी ही गल्तीसे होते हैं। दूसरोंसे मुझे दुःख हो जाय यह कभी नहीं हो सकता है। दूसरे जो करेंगे वे अपने लिए करेंगे मेरे लिए कोई चेष्टा न करेंगे। मैं क्या हूं? मेरा स्वरूप क्या है इसका यथार्थ ज्ञान होनेसे ही सब दुःख समाप्त हो जाते हैं। मुझे दुःखी करने

वाला अन्य कोई नहीं है, अज्ञानसे ही मैं स्वयं दुःखी हो रहा हूं, यहाँ कोई शरण नहीं है। अगर कोई दया भी करता है। दूसरोंके लिए दया नहीं करता है। आपका परिणमन हुआ आपने किया और मेरा परिणमन हुआ मैंने किया। कोई किसीका कुछ नहीं करता।

एक जज था। कचहरी जा रहा था। रास्तेमें एक सूकर कीचड़में फंसा था। उस जजसे न देखा गया। झट मोटरसे उतरकर उस सूकरको अपने हाथोंसे पकड़कर निकाल दिया। सिपाहियोंने बहुत कहा—हुजूर हम निकाले देते हैं आप रहने दें, पर जज साहब नहीं माने। जजके कपड़ोंमें कीचड़के छींटे लग गये। समय ज्यादा न था। उसी सूरतमें जज साहब अदालत पहुंचे, अदालत किया। कुछ लोग कहते हैं कि आज जज साहबकी क्या हालत हो गयी है ? तो सिपाही कहते हैं कि आपको पता नहीं है, यह जज साहब बड़े दयालु हैं। एक सूकर कीचड़में फंसा हुआ था उसको निकाल दिया। इतनेमें जज साहब कहते हैं कि भैया! मैंने सूकरपर कोई दया नहीं की, मैंने तो उस समय भी अपने ऊपर ही दया किया। क्योंकि देखो यदि मैं सूकरको न निकालता और अदालतमें बैठा होता तो जब इसकी याद आती तो दुःख होता कि नहीं ? दुःख बहुत होता, पर मैंने उसे निकाल दिया है अब सारा दुःख दूर हो गया है। तो मैंने अपना दुःख मिटानेके लिए यह काम किया। मैंने सूकरपर कोई दया नहीं की। हर जगह यही बात समझ लो। वस्तुस्वरूपकी बात समझ लो। व्यवहारकी बात व्यवहारमें होती है। पर यथार्थमें मैं क्या हूं इसको तो समझ लो।

अज्ञान ही यथार्थ हिंसा है। अपने परिणाममें राग द्वेष करना, मोह करना हिंसा करना ही है। मोह करनेसे जीव अपनी ही हिंसा करते हैं। दूसरेकी तो वे हिंसा ही नहीं कर सकते हैं। परमार्थस्वरूपसे देखो तो वे अपनी ही हिंसा करते हैं दूसरोंकी हिंसा नहीं कर सकते हैं। मेरा स्वरूप क्या है ? ज्ञान और आनन्द ही मेरा स्वरूप है। ज्ञान न होनेसे मैं ठगाया गया हूं। अब ज्ञानी होकर मैं अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ ऐसी भावना अपनेमें हो।

असंकृतेहि वस्तूनां स्वस्य स्वेनैव बद्धता।
स्वेक्षणे बद्धता नातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१६॥

वस्तुका साकर्म कभी नहीं होता अर्थात् कोई पदार्थमें तन्मय हो जाय ऐसा नहीं होता है। जैसे एक गिलासमें पानी और दूध बराबर बराबर डाल दिये जायें और गिलासमें फेंट दिया जाय, फिर भी पानीके स्वरूपमें पानी है और दूधके स्वरूपमें दूध। उस मिले हुए दूध और पानीमें दूध अलग है और पानी अलग है यंत्रोंसे अथवा गर्म करके देखें तो दूध अलग है और पानी अलग है। उस मिली हुई हालत पर भी दूधमें पानी नहीं गया और पानीमें

छूट नहीं सका। भौतिक पुद्गल शरीर और यह जीव एक ऐसा बेढबवगाह हो रहा है कि दोनों अवस्थामें पराधीन हो गए। अभी आपसे कहें कि अकेले आइए तो नहीं आयेंगे। आप इन पुद्गल परमाणुओंको साथ लेकर आयेंगे। हम इस शरीरको तो नहीं बुला रहे हैं। हम तो आपकी आत्माको बुला रहे हैं। इस हालतमें भी आत्मामें आत्मा है और पुद्गलमें पुद्गल है। समझनेमें भले ही कठिन लगे। कुछ लोगोंको तो दूध और पानी की ही बात कठिन लग रही होगी। खैर, यह आत्मा अपने स्वरूपमें है और शरीर अपने स्वरूपमें है। भला वास्तवमें जब इस शरीरसे भी मेरा बन्धन नहीं है तो अन्य पदार्थोंसे मेरा बन्धन कैसे होगा?

मेरा शरीरसे भी कुछ सम्बन्ध नहीं है। यह तो निमित्तनैमित्तिक बात है। जैसे गैया के गिरावाका बन्धन है तो क्या आपने गैयाके गलेको गिरमासे बांधा, आपने तो गिरमाको ही गिरमासे बांधा, अगर गैयाके गलेको बांध दो तो वह मर न जाये। गिरमाको मरोड़ते हैं फिर उस गिरमासे ही गिरमाको बांधते हैं और कहते हैं कि गैयाको बांधते हैं। अरे गिरमाके एक छोरको दूसरे छोरमें बांधते हैं। गैया तो ज्योंकी त्यों है, गिरमाने गैया पर आक्रमण नहीं किया। मगर गिरमाका निमित्त पाकर गैया बँधी है। वे तो पुद्गल पुद्गलकी चीजें हैं। गैया भी पुद्गल है और गिरमा भी पुद्गल है। मगर आत्माकी बात तो और गहरी है। आत्मामें कर्म क्या बँधते हैं। आत्मा तो अमूर्त है रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिसे रहित है।

फिर कर्मोंसे जीव कैसे बँध गया भैया! बात यह है कि वस्तुतः भावकर्मोंसे ही जीव बँधता है। और यहां पुद्गल कर्मोंसे पुद्गलकर्म बँध जाता है। इसमें परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव है। यह जीव तो बुरा ही रहा है, इसका उपादान खोटा है, मोह, राग, द्वेषमें बंधा है इसलिए भावकर्मका निमित्त कर द्रव्य कर्मोंसे बँध पाकर यह भी बँध गया। घरकी स्त्री हो, पुत्र हो जो भी स्नेहसे उन्हें मानता है वह बंध जाता है। स्नेह दिखाने वाले अपनी ही जगह पर है, पर ये अपना ही ख्याल बनाकर स्वयं दूसरोंके पराधीन बन जाते हैं।

पुराणोंमें कहते हैं कि राजा जनकके पास एक गृहस्थ पहुंचा। बोला—महाराज मुझे गृहस्थीने बांध रखा है, कुटुम्बने मुझे जकड़ रखा है। कोई ऐसा उपाय तो बताओ कि मैं इस फंसावसे अलग हो जाऊं। राजा जनकने और कुछ न किया। एक नीमके पेड़को अकवार में भर लिया और कहते हैं कि अरे ठहरो ठहरो, मुझे इस पेड़ने पकड़ लिया। पेड़ मुझे छोड़े तब मैं आपको उत्तर दूं। वह बोला—आपको बुद्धिमान समझकर मैं तो आपसे उपाय पूछने आया, पर आपकी तो साफ बेवकूफी जाहिर होती है। अरे तुमको पेड़ने पकड़ लिया कि तुमने पेड़को पकड़ लिया। राजा जनक कहते हैं कि बस यही तो तुम्हारा उत्तर है। अरे तुमने कुटुम्बको फांस रखा है कि कुटुम्बने तुम्हें फांस रखा है।

देखो इतने भैया बैठे हैं। कौन अपनी स्त्रीसे बँधा है ? कौन अपने पुत्रोंसे फँसा है ? केवल ख्याल बनाकर ये स्वयं फंस रहे हैं। अरे वह परके द्वारा तुम्हारेमें टससे मस नहीं हो सकता। तुम्हें कोई दूसरे बांधने वाले नहीं हैं। वस्तुओंका सांकर्य दोष नहीं है कि वस्तु स्वयं मिल जाय, तन्मय हो जाय। तुम्हारा जो बंधन है वह तुम्हारे द्वारा ही बन्धन है। विविध कर्मोंका उदय है दूसरोंकी करतूतसे बंधन नहीं। यदि सत्य स्वरूप देखनेमें आ जाय तो बन्धन नहीं रहता है। अपना सत्य स्वरूप देखनेमें न आये, बाहर बाहर ही दृष्टि लगी रहे तो अपने ही अपराधका बन्धन है। दूसरोंसे बन्धन कहाँ, क्लेश कहाँ ? सब मेरे ही बन्धनसे क्लेश हैं।

भैया ! शांति तो अपने ज्ञानस्वरूपमें है। शान्तिके लिए लाख यत्न बाहरमें किए जायें, कितने ही पुत्र, परिवार, मित्र जन देख डालें, पर शान्ति कहीं नहीं मिलेगी। अपना बच्चा देख लिया, धन वैभव जोड़ लिया, पुत्र मित्र जोड़ लिये, पर शांति उनसे कभी न मिलेगी। चाहे जितना धन वैभव जोड़ लें, चौगुना, अठगुना, दसगुना पर शान्ति कभी न मिलेगी। शान्तिका सम्बन्ध तो परपदार्थसे है ही नहीं। अगर परपदार्थोंसे शांति होती तो तीर्थंकर और चक्रवर्ती इत्यादि बड़े बड़े पुरुष धन वैभव इत्यादिको क्यों त्याग देते ? धन वैभवसे तो बंधन ही हैं, शान्ति तो रंचमात्र भी नहीं है। बंधन तो मेरी बाह्यदृष्टिसे हो रहे हैं। मैं अपने आपको संभालूं तभी अपनेमें अपने लिए अपने आप मैं सुखी हो सकता हूं। यदि मैं अपनेको न संभाल सका तो दुःखी हो जाते हैं। दुःखी करने वाला कोई दूसरा नहीं है।

बन्धैकत्वेऽपि देहादेर्भिन्न एव स्वभावतः।
परभिन्नात्मवृत्तिः शं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२०॥

यह शरीर और यह जीव बन्धा है और इस बंधके कारण इन दोनोंमें एकता भी है परन्तु परमार्थसे इनमें एकता नहीं रहती है। यह जीव अलग नहीं हो पाता, यह देह अलग नहीं हो पाती, फिर भी यह जीव स्वभावसे ही इस देहसे भिन्न है। सो इस देहको त्यागकर अपने ज्ञानस्वरूपको देखें तो यह वृत्ति यानी यह काम मेरी शांतिको उत्पन्न कर सकता है। बाहर दृष्टि रहनेसे तो कुछ शांति नहीं मिल सकती है। निमित्तदृष्टि करके इष्ट अनिष्ट माना, सो इसहीसे विपदा आती है। भैया ! कहीं किसान और किसानी थे। विवाह हुए १०–१२ वर्ष हो गये थे। किसानी शांतिप्रिया थी, इसलिए वह किसानीको पीट नहीं सकता था। उस किसानकी बड़ी लगन रहती कि मैं पीट लूं तभी पक्का मर्द हूं। वह यह सोचता कि मैं कैसे पीटूं ? कोई बहाना नहीं मिलता। उसे एक तरकीब याद आयी। वह खेतमें हल जोत रहा था। उसने एक बैलका मुंह कर दिया पूरबको और एकका कर दिया पछांहको, दोनों बैलों

के कन्धे पर जुआँ रख दिया और उसमें हलको भी रख दिया। स्त्री खाना पीना दोपहरको ही लाती थी। उसने ऐसा विचार किया कि ऐसा देखकर स्त्री कुछ तो कहेगी ही। इस तरहसे वह मारनेको पा लेगा। स्त्री जब आयी तो आते ही देखकर समझ गयी कि आज तो पिटनेका डोलडाल है। स्त्री बेवकूफ नहीं थी। उसने आते ही कहा कि चाहे औंधा जोतो चाहे सीधा जोतो मेरा तो काम केवल रोटी देना है। इतना कह कर रोटी देकर वह वापिस चली गयी।

भैया! सारी दुनियाँ निराली है, ये घरके लोग भी भिन्न हैं। जैसे इङ्गलैंडमें रहने वाले लोग हैं वैसे ही घरके रहने वाले लोग हैं। उनसे मेरेमें कुछ नहीं हो जायगा। आप यदि मानें कि ये मेरे हैं तो क्या आपके हो जावेंगे? सो यह दृष्टि बने कि चाहे यों चले कोई चाहे यों चले, मेरा तो काम केवल ज्ञाता द्रष्टा रहनेका है या अधिकसे अधिक राग हो तो प्रेमयुक्त वचनोंसे समझा देना चाहिए। ऐसी दृष्टि बनती है तब वस्तुका स्वरूप स्वतन्त्र नजर आता है। सब वस्तुयें भिन्न-भिन्न हैं। कभी उनसे संयोग भी हो तो संयोगके समयमें भी ये पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं।

यह एक चौकी है। देखनेमें लगती है कि यह एक चीज है मगर एक नहीं है। यह चौकी अनन्त पुद्गल परमाणुवोंसे बनी है। उनका इस प्रकारका ढेर लगा कि बीचमें अन्तर नहीं मिलता। मगर यह चीज एक नहीं है। एक चीज तो वह होती है जिसका दूसरा टुकडा नहीं होता है। जिसका कुछ हाफ न हो, अर्द्ध न हो वह एक चीज कहलाती है। क्या एक नये पैसे का आधा हो सकता है? नहीं हो सकता है। जैसे १ रुपया है वह एक चीज नहीं, वह तो १०० चीजोंका समूह है। अगर हिसाब लगाओ और आधा नया पैसा बैठे तो एक नए पैसेका आधा नहीं दिया जा सकता है। यदि उसकी कोड़ी मान लो तो एक कौड़ी यूनिट हो गया उसका आधा नहीं किया जा सकता है। जो अविभागी हो उसे एक कहते हैं।

इस चौकीके अनेक टुकड़े कर लो, १० टुकड़े कर लो, ५० कर लो। चौकी अनन्त-परमाणुवोंकी चीज है। इस चौकीके एक एक परमाणुमें भी एक परिणाममें दूसरा परिणाम घुस नहीं गया है तो फिर बतलाओ जीवकी तो बात बहुत जुदी है, यह तो भिन्न-भिन्न स्थानोंमें है। यह एक कैसे हो सकता है? यह आत्मा इस बंध अवस्थामें एक होकर भी देह इत्यादि सबसे पृथक् है। सो सब पदार्थोंसे भिन्न जो आत्मतत्त्व है उसमें वृत्ति हो तब वह शान्तिका मार्ग पा सकता है। सबसे बड़ा संकट जीवको है तो मोहका संकट है, दूसरा संकट नहीं है बेप्रयोजन, कोई लेना नहीं, देना नहीं, भिन्न भिन्न जीव हैं, भिन्न भिन्न पदार्थ

हैं, सब अपने-अपने स्वरूपमें उत्पाद व्यय कर रहे हैं, किन्तु स्वरूप ध्रुव है इस कारण किसी भी पदार्थका किसी अन्य पदार्थसे जरा भी सम्बन्ध नहीं, फिर भी यह जीव वस्तुस्वरूपके खिलाफ मानता है कि यह मेरा है, इसलिए ही विकल बना रहता है। यही इस जीव पर बड़ा संकट है। इससे बढ़कर और कुछ संकट इस जीव पर नहीं।

भैया! इस निजप्रभु पर ऐसा गजब उपद्रव छाया हुआ है कि मरकर पशु-पक्षी बन जाते हैं, जीव जन्तु, पेड़ पौधे आदि बन जाते हैं, फिर भी ये जीव मौज मानते हैं, खुशियाँ मनाते हैं, मोह करते हैं। मरकर अगर पशु बन गये, वृक्ष बन गये तो फिर कि ये पुकारा करेगा कौन तुम्हें पुकारेगा? इस जीवका शरण है तो केवल भेदविज्ञान है। तुम जो कुछ करते हो वह अपने लिए करते हो। उसका फल तुम्हें ही भोगना पड़ेगा। मैं जो कुछ करता हूं वह अपने आप भोगता हूं। इसके आगे मेरा कुछ कर्तव्य नहीं है। कर्तव्य तो यह है कि मेरा जो सबसे निराला रूप है उसका अनुभव करूँ उसमें ही रमूं। इसीको कहते हैं सम्य-ग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। यह स्वकी वृत्ति ही मेरी शरण है अन्य कोई मेरे लिए शरण नहीं है ऐसा जानकर अपने ज्ञानमें लगना चाहिए।

देखो सबसे बड़ा सौभाग्य जो जैनदर्शनको पाना है जिसमें वस्तुके स्वरूपको युक्तियों से सुसिद्ध किया है। और उसका प्रतिवाद न करके भी ऋषिगण यह कहते है कि आपके अनुभवमें आये तो मानना। हम अपने अनुभवमें उतारें कि प्रत्येक वस्तु स्वतंत्र है ना, प्रत्येक वस्तु उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाला है ना। परका चतुष्टय न्यारा न्यारा है ना। देखो कहीं कहीं यह कहा गया है कि सारा जगत् ब्रह्म है, एक सत् है। अच्छा यह बताओ कि मनुष्य एक ही तो है। मनुष्यत्वकी दृष्टिसे देखो तो एक है और भिन्न भिन्न अनुभव से देखो तो अनेक हैं। इसी तरह चेतन और अचेतन पदार्थ भी एक होंगे। ये सब सत् है इस दृष्टिसे चेतन अचेतन सब एक हैं। ये बाहरके पुद्गल भी सब एक हैं। भिन्न भिन्न दृष्टिसे वे भिन्न-भिन्न प्रदर्शन हैं। सो अनेक नयोंसे वस्तुस्वरूपको पहिचानो।

इसके आगे ऊपर चलनेका यह भी उपदेश है कि यथार्थज्ञान करके फिर सबको भूल जायें केवल अपने ज्ञानस्वरूपमें रमें यही अन्तिम शिक्षा है। बीमारको समयपर योग्य दवा मिलना जरूरी है। इसी तरह इन जीवोंमें अनेक प्रकारकी योग्यता वाले जीव हैं सो सब वर्णन इस जैनधर्ममें मिलते हैं। देखो सौभाग्यकी बात है कि हमें उत्तम कुल मिला है जिस में सप्त व्यसनकी परम्परा नहीं और ऐसे व्रत विधान परम्परा हैं जो एक पवित्र भावको लिए हुए हैं। अनेक योग्य वृत्तियां घरके परिवारमें स्वतः हैं। अब मोहमें दिल लगाकर सब सुविधाओंको बिगाड़ देना तो ठीक नहीं। अपने आनन्दके लिए अपने आप पर ही अपनी

जिम्मेदारी समझना चाहिए।

देहादेव यदा भिन्नः कथं बन्धुभिरेकता।

विभक्तस्य सदा सौख्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२१॥

यह मैं आत्मा देहसे ही भिन्न हूं, यह बात अनुभवसे मालूम पड़ती है कि मैं शरीरसे न्यारा हूं फिर और बन्धुवोंके साथ एकता कहांसे हो ? जब शरीर ही मेरा साथी नहीं है तब और बन्धुवोंके, कुटुम्ब, परिवारके साथ एकत्व कैसे हो सकता है ? ऐसा मानो कि मैं सबसे न्यारा हूं। अपने आपको न्यारा देखनेमें ही आनन्द है। जिसने दूसरोंसे मिला हुआ अपनेको देखा उसे आकुलताएँ ही होती हैं। अभी ये बच्चे लोग सुखी नजर आते हैं, दौड़ते हैं, फिरते हैं, खेलते कूदते हैं। इसलिए ये सुखी नजर आते हैं कि इनके किसी प्रकारका मोह नहीं लग पाता है। उनके स्त्री नहीं होती सो स्वतन्त्र हैं इसलिए वे सुखी नजर आते हैं। जिस दिन विवाह हो गया उसके दूसरे दिनसे ही वे दुःखी दिख पड़ेंगे। और संग बढ़ा, पुत्र बढ़े, उनसे मोह किया, अब दुःखोंका क्या ठिकाना ? देखो बच्चोंसे भी मिलता क्या है ? बच्चे बड़े हो गये, विवाहित हो गये, स्त्रीमें लीन हो गये तो पिता, माँ की अवहेलना करते हैं। वे बैठे-बैठे ही मनमें कुढ़ रहे हैं, अपनी स्त्रीसे स्नेह करते हैं, अपने पुत्रोंसे स्नेह करते हैं और माँ-बापका अपमान करते हैं, माँ बाप दुःखी होते हैं। और दुःख क्या होता है बतलावो ? पुरुष अपनी स्त्रीका पक्ष लेता है और माँ का दोष बतलाता है। किसी कामसे सास बहूमें झगड़ा हो गया। पतिने स्त्रीका पक्ष लिया और माँ का दोष बतलाया। तो बताओ माँ को कितना दुःख होगा ? माँ सोचेगी कि यह मेरा बच्चा है, मैंने इसे पाला पोषा है, खिलाया पिलाया है, पर आज मुझे ही दोषी बता रहा है। स्त्रीका पक्ष ले रहा है और मेरा निरादर कर रहा है। इससे तो माँ का दुःख और बढ़ता है। ये मोही जन अपने बच्चोंसे ही मोह करते हैं, २४ घंटे उन्हींके पीछे पड़े रहते हैं और दुःख प्राप्त किया करते हैं।

अरे नीतिकी बात है कि पुत्रोंमें ही रत रहनेसे, स्त्रीमें ही लीन रहनेसे, राग, द्वेष, मोह बढ़ानेसे तो बरबादी ही है। उनसे मोह हटानेसे सब दुःख खत्म हो जायेंगे, सारा भय खत्म हो जायगा। आपके ये बच्चे आपकी इज्जत न रख सकेंगे। वे आपके बच्चे ही आपका अपमान करेंगे, आपकी इज्जत न रख सकेंगे। यदि आपने उन बच्चोंसे अधिक मोह किया तो वे समझ जावेंगे कि ये माँ-बाप मुझे चाहने वाले हैं, मुझ पर फिदा हैं, मुझ पर आसक्त हैं तो फिर वे बच्चे आपकी इज्जत न करेंगे। घरमें रहते हुए भी बच्चोंसे अपनेको जितना बाहर बनाओ, बाहर रखो उतनी ही इज्जत रहेगी, उतनी ही विनय रहेगी, उतना ही सत्कार रहेगा। यही तो आनन्दकी बात है। मगर भीतरमें इस मोहका रखना पाप है।

क्योंकि इस मोहका फल केवल अशान्ति है। जब अपना शरीर ही अपना साथी नहीं है तो फिर अन्य कोई अपना साथी कैसे हो सकेगा? कौन चाहता है कि मैं बूढ़ा बन जाऊँ, मगर बूढ़ा बनना ही पड़ता है। यदि जिन्दगी रही तो बूढ़ा होना ही पड़ता है। कौन चाहता है कि आत्मा इस शरीर से निकलकर भाग जाय। कोई बहुत ही अधिक वृद्ध बुढ़िया है वह देखती है कि बच्चोंसे मुझे दुःख है तो वह भगवान्से प्रार्थना करती है कि हमें वह उठा ले। उठालेके माने मैं मर जाऊं। अगर कोई साँप निकल आवे तो वह पुकारती है कि अरे बेटा दौड़ो, बचाओ। बच्चा दौड़ा आवे और कहे कि तुम तो रात-दिन यह कहती थी कि भगवान् मुझे उठा ले और अब हमें पुकारती है। तो इस शरीरको चाहे जितने दुःख हो जायें पर मरनेकी कोई इच्छा नहीं करता है। कितना भी बूढ़ा हो, शरीरसे रोगी हो पर वह मरनेकी चाह नहीं करता है। हाँ यदि कोई हृष्ट पुष्ट भी हो, और कषायभाव जग जाये तो वह आत्महत्या कर डालता है।

अब यहाँ देखो जितने भय्या बैठे हैं सब मनसे दुःखी नजर आते हैं। खाने पीनेकी बात सोचो तो महँगे जमानेमें भी चार आनेमें पेट भरा जा सकता है। और क्या चाहिए, रोटी नमकसे चार आनेमें पेट भरा जा सकता है। आर्थिक परिस्थितिसे कोई दुःखी नहीं है। इसके तो मानसिक दुःख हैं। इसके ये दुःख हैं कुछ नहीं, पर ये विकल्पोंसे सताये जा रहे हैं। सब मनके राग बनाकर बैठे हैं। अगर ये अपने मनके राग मिटायें तभी ये निरोग हो सकते हैं। है तो बीमारी दूसरी और दवा दी जाय दूसरी तो यह तो ठीक नहीं होगा। ठंडेका रोग और ठंडी ही दवा दी जाय तो सर्दी तो और बढ़ेगी, सन्निपात और बढ़ेगा। मनमें तो राग है और रागोंको बढ़ानेकी दवा दी जा रही है तो बताओ कैसे निरोग हो सकते हैं? देहसे भी मेरी एकता नहीं है तब बन्धुवोंसे एकता कैसे हो? अरे थोड़ी एकता तो अपनेमें ले आवो। यदि कोई आदमी मर गया तो उसका नक्शा तो देखा होगा किसीका, वह देह छोड़कर ही तो चला गया ना? अब जो देह बचा उसे लोग मरघटमें ले गये, वहाँ पर वह जला दिया गया। जला देनेसे सारी देह खाक हो गयी। अपनेमें भी यह अनुमान करो कि वह मर गया ऐसे ही यह मैं आत्मा भी इस शरीरसे चला जाऊँगा। यह शरीर यहाँ रह जायगा। यह शरीर यहाँसे मरघट चला जायगा, वहाँ खाक कर दिया जायगा, खत्म हो जायगा।

भैया! जो गुस्सा आता है तो इस शरीरको ही आत्मा मान लिया गया है तब गुस्सा आता है और अगर यह जाने कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, शरीरसे न्यारा हूँ तो यही विवेक है फिर गुस्सेका भी काम नहीं। अगर अपनेसे बाहर हो जावो तो घमंड भी आ जाय। जैसे ऐसा

क्यों हो गया ? ऐसा हो जाना चाहिए था, यह सब क्यों नहीं रखा, ये जो कर्मक आते हैं वे इसी कारण कि शरीरको आत्मा मान रखा है कि यह मैं हूं, ऐसा सोचना ही महापाप है। सारे पाप इसी कारण होते हैं। खोटी वासनायें, काम वासनायें इत्यादिसे दूर रहकर यह सोचें कि मैं इस शरीरसे न्यारा, निर्लेप, ज्ञानमात्र हूं, ऐसा सोचनेसे ये वासनायें नहीं रह पाती हैं। वासनायें न रहनेसे अपने एकत्वकी प्रवृत्ति आती है। ऐसा सोचे कि मैं न्यारा हूं, मैं सबसे जुदा हूं। तुम्हारा परिवार क्या है ? पुत्र, मित्र, स्त्री इत्यादि ये सब अपनी-अपनी दुनिया चला रहे हैं। इनका कोई कुछ नहीं है, किसीके साथ एकता नहीं है। ऐसी सच बात किसी क्षण ज्ञानमें आवे तो आपको आनन्द मिलेगा। वह आनन्द कोई दूसरा नहीं पायेगा। आनन्द तो भिन्न रहनेमें ही है, मिलकर रहनेमें आनन्द नहीं है। अलग रहनेमें आनंद है, ज्ञानके द्वारा अलग रह जाय, सबसे मिलकर रहता हुआ भी अपनेको अलग ही निरखे तो आनन्द है। यह समझमें आवे कि मैं अपनी देहसे भी भिन्न हूं, सबसे न्यारा, पवित्र, ज्ञानमात्र हूं, ऐसा अनुभवमें आवे तो आनन्द है।

देहोऽणुव्रजजः स्वात्मातीन्द्रियो ज्ञानविग्रहः।
स्वात्मन्येव स्थिरस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२२॥

यह शरीर क्या है और आत्मा क्या है ? इन दोनोंके लक्षणोंको इसमें बतलाया जा रहा है। शरीर क्या है ? पुद्गल परमाणुवोंके समूहसे उत्पन्न हुआ यह ढांचा है। शरीर कोई एक चीज नहीं है। एक चीज तो अखंड रहती है। अगर यह शरीर एक चीज होता तो अंगुली न टूटती, पैर न टूटते। एकके टुकड़े नहीं होते। इस शरीरके तो टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। शरीर एक चीज नहीं है। शरीर है नाना परमाणुवों का समूह। और वे नाना परमाणु सब जड़ हैं। वे परमाणु सब मिल जुल गए हैं। तो यह शरीर परमाणुवोंके समूहसे उत्पन्न होता है। मगर आत्मा अतीन्द्रिय है, इन्द्रियोंके द्वारा जाननेमें नहीं आता है। न स्पर्शनके द्वारा छूनेमें आता, न आंखोंसे देखनेमें आता, न नाकसे सूंघनेमें आता, न कर्णोंसे सुननेमें आता, और बात तो जाने दो। असली चीज जो आत्मा है वह आत्मा मन के द्वारा भी समझमें नहीं आता, इन्द्रियोंके द्वारा जाननेमें नहीं आता। मनका ऐसा काम नहीं है कि मनके द्वारा कोई आत्माका अनुभव कर ले। मन इस आत्माके बारेमें कुछ सोच सकता है। आत्मामें न तो रूप है न रस है, न गंध है और न स्पर्श है। वह तो ज्ञानमात्र है, ज्ञानमय है, ज्ञानदर्शनमय है। उस आत्माका साक्षात् अनुभव भी मन नहीं करता। आत्मा तो मन इन्द्रिय और कषायोंसे परे है।

जैसे कोई राजाके पास जानेको तत्पर है तो द्वारपालोंका अर्थात् पहरेदारोंका काम

यह है कि दरवाजेके भीतर जाने दें और चलकर थोड़ी दूर पहुंचा दें। वह राजाके पास बैठकर बात करे यह खुदको करना पड़ेगा। द्वारपालोंका काम केवल यह है कि आंगन तक पहुंचा दें पर राजासे मिलनेका, बात करनेका काम तो तुम्हारा ही है। इसी तरह यह मन चौकीदार की तरह है, द्वारपालकी तरह है। यही आत्माका परमार्थस्वरूप है, जो प्रभुका स्वरूप है ऐसा विचार बना दिया मनने। तो मनका कितना काम है? मनका इतना ही काम है कि आत्माके आंगन तक पहुंचा देवे अर्थात् आत्माकी जहां चर्चा चलती है, आत्मा का जहां वर्णन चलता है उस आत्मामें दर्शनार्थ ले जाय। यह जड़ मन आत्मासे न मिलेगा इस आत्मासे भिन्न होकर आत्माके विचारका कारण भर बनेगा, यह उपयोग खुद मिलेगा, मन नहीं मिल सकता। इतना परे है यह आत्मा। आत्मामें सार है क्या? ज्ञान ही इसका सार है। आत्माको सरल शांति चाहिए। ऐसी दृष्टि बनाओ कि यह मैं आत्मा ज्ञानमात्र हूं, जानन ही प्रतिभास है, जानन ही इस आत्माका प्रकाश है। यही मात्र मैं हूं। इस ज्ञान-प्रकाशके साथ इस ज्ञानको जोड़ो, यह ज्ञानके ही स्वरूपको देखे। ज्ञानका प्रकाश ही अपने स्वरूपको मानो और सारी बातें भूल जावो। किसीका परिवार कहां है, किसीका स्थान कहां है इत्यादि बातोंको भूल जाओ केवल अपने ज्ञानस्वरूपको देखो तो अपने आत्माके सुखका अनुभव हो जाय। ऐसी आत्माको ज्ञानविग्रह कहा है। ज्ञान ही इस आत्माका सार है। ऐसी आत्मामें अगर कोई स्थिर हो जाय तो उससे ही अपने आपका अनुभव हो सकता है। आत्मा का श्रद्धान, आत्माका ज्ञान और आत्मामें रमना इसीसे आत्मा शुद्ध हो सकती है।

यैरर्थैर्मम सम्बन्धस्ते स्वरूपात्पृथक् सदा।
तत्स्वदृष्ट्याऽसुखं तेन स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२३॥

जिन-जिन पदार्थोंसे मेरा सम्बन्ध है अर्थात् अपनी कल्पनाओंसे जिन-जिन पदार्थोंको हम अपना मानते हैं वे समस्त पदार्थ मेरे स्वरूपसे बिल्कुल पृथक् है। अपने सत्त्वको निरख-कर निर्णय करो कि जितने भी निकट और बाहरके सम्बन्ध हैं, जितने भी पुद्गल पिंड हैं वे सबके सब मेरे स्वरूपसे बिल्कुल अलग हैं। और जितने भी जीव हैं वे सब जीव मेरे स्वरूपसे बिल्कुल पृथक् है। सो यह निर्णय कर लो कि उनसे मिलता क्या है? आपके माने हुए घर, वैभव, पुत्र, परिवार इत्यादि आपसे कितने बाहर हैं? बिल्कुल पृथक् है। उनका परिणमन उनमें ही है, उनसे मुझमें कुछ नहीं आता। कभी-कभी अपने बच्चोंसे हैरानी हो जाती है। इन बातोंमें से कि बहुत राग होने पर भी ये नहीं मानते हैं। भैया इनमें लीन होनेसे आप अपना हित नहीं करते हैं। अपने सत्यस्वरूपको देखो, बाहरसे मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं, उनपर मेरा कुछ अधिकार नहीं, वे स्वयं अपना लाभ समझकर अन्दरमें आते हैं, आधीन बनते हैं।

परके चाहनेसे, परसे मोह करनेसे स्वाधीन नहीं बन सकते हैं। अपने आधीन बना लो उनको तो यह बात तुम्हारे वशकी नहीं। हम अपना स्वार्थ समझकर किसी दूसरेके आधीन बन जायें तो मैं यह हूँ अलग, पर पराधीन बन जाऊँगा। परके चाहनेसे किसीको अपने आधीन बना लो यह नहीं हो सकता। वह स्वयं पराधीन बन जावे तो वह अपनी स्वतंत्रतासे पराधीन बनता है। दूसरोंमें पराधीन बननेके कार्यमें नहीं बनता। हम स्वयं ही अज्ञानवश कल्पनामें आत्मसमर्पण कर देते हैं। जगतके जितने पदार्थ हैं वे सब स्वयं परिणमनशील हैं। सबमें परिणति रहती है, सब परिणमन करते आ रहे हैं। पर कोई किसीका परिणमन नहीं करता है। तब मैं यहाँ बैठा हूँ और यह चटाई या फर्श हमारी छायारूप परिणम गयी। यह तो पृथ्वी और चटाई खुद छायारूप परिणम गयी। मैंने इसे छायारूप बना दिया हो तो मैं नहीं बन सकता। उस समय यह देह हाजिर था कि यह स्थान स्वयं छायारूप परिणत हो गया। एक मनुष्य किसी सेठको गाली दे देता है और वह सेठ गुस्सा करे तो सेठ स्वाधीन बनकर स्वतंत्रतासे अपना ख्याल बनाकर कि इसने मुझे गाली दी है, यह मुझे कुछ नहीं समझता, ऐसा ख्याल बनाकर खुद अपनी स्वतंत्रतासे खेद कर रहा है। पर गाली देने वाला सेठको क्रोधी नहीं कर सकता। वह स्वयं क्रोधके उपादान वाला है तो क्रोधी बन जाय, मगर गाली देने वाला सेठपर क्रोध नहीं कर सकता। क्योंकि गाली देने वाला यदि अपनी परिणति से क्रोध कर देता है तो हर एकमें क्रोध क्यों नहीं कर देता। साधुको क्रोधी क्यों नहीं कर दिया? साधु भी कदाचित् अपने स्वरूपसे हटकर क्रोधी बन जाय तो वह स्वयंकी परिणति से क्रोधी हो गया। क्योंकि कोई दूसरे पर क्रोध नहीं कर सकता। क्रोध करने वाला खुद क्रोध करता है। कषाय करने वाला, विषयोंमें आसक्ति रखने वाला स्वयं ही अपना ख्याल बनाकर ऐसा बुरा बन जाता है। प्रत्येक कोई किसी दूसरेको बुरा भला नहीं बनाता। कोई क्रोध नहीं करता, खुद ही ख्याल बनाते और इस रोगके बीमार बनते रहते हैं। आत्मामें तो स्वभावसे राग नहीं रहता है। आत्मा तो एक अमूर्त है। ज्ञान और आनन्दस्वरूपको लिए हुए आत्म है, इसमें अन्य कुछ पिंडरूप चीज नहीं है। इसमें कोई भार भी नहीं है। यदि कोई भार हो तो बतलावो। इस आत्मामें कोई भार लादा है क्या? कोई भार तो इस जीवमें नहीं करता है। खुद ही भीतर ख्याल बनाकर इतना भार लादा है कि उठ नहीं पाता, आरामसे बैठ नहीं पाता। ख्याल बनाकर इतना बोझ लादा है कि खुद शान्तिसे बैठ नहीं पाता। इस जीवने स्वयं अपनी जिदसे अपनेको दुःखी कर दिया। दूसरा कोई दुःखी करने वाला नहीं है।

एक बादशाह था। वह पशुशालामें घूम रहा था। कहीं चीता बंधा था। पासमें ही

बैल बंधे थे। घोड़ा बैलोंसे बोला—तुम लोग बेवकूफ हो इसलिए बोझा लादते हो। बैल बोले तो फिर क्या बुद्धिमानी करें कि बोझा न ढोना पड़े। वे तो हमें पकड़ लेते हैं और जोत लेते हैं। घोड़ा बोला कि हम तुम्हें एक बुद्धिमानीकी बात बताते हैं कि जब कोई बोझा ढोनेके लिए तुम्हारे पास आवे तो तुम पेट फुलाकर पैर पसारकर लेट जाना। ऐसा करनेसे तुम्हें बोझा नहीं ढोना पड़ेगा। राजा सब बातें सुन रहा था कि घोड़ेने बैलोंको यह समझाया है। दूसरे दिन जब बैल जोतने वाले बैलके पास पहुंचे तो मरासा पाया उन्हें। राजाके पास बैल वाले पहुंचे, बोले— महाराज, बैल तो मर गए अब किसको जोतें ? राजा बोला कि अच्छा पास वाले घोड़को जोत ले जाओ।

बैलोंका बोझा घोड़ा कहां सहन कर सके ? वह हांफता हुआ किसी तरहसे अपने स्थान पर पहुंचा। अब उस घोड़ेने बैलोंको समझाया कि देखो दूसरे दिन पेट फुलाकर नहीं लेट जाना, नहीं तो डंडे और कोड़े खाओगे। राजा भी वहां घूमने गया था। घोड़ेकी बात राजाने सुनी। राजाने सोचा कि देखो कल तो बैलोंको इस तरहसे समझाता था कि पेट फुलाकर लेट जाना तो बोझ नहीं ढोना पड़ेगा, पर आज वह यह समझा रहा है कि अगर पेट फुलाकर पैर पसारकर लेट गए तो डंडे खाओगे। राजा थोड़ी देर बाद रानीके यहां गये। वहां मनमें राजाने कहा कि कल तो यों समझाया, पर आज यों समझाया घोड़े बदमाशने। ऐसा सोचते ही राजाको हंसी आ गयी। राजाकी यों हंसीको देखकर रानी पूछती है कि तुम्हें हंसी कैसे आयी ? राजाने कहा कि देखो यह तुम्हारा घोड़ा बदमाश है, कल बैलोंको समझाता था कि पेट फुलाकर पैर पसारकर लेट जाना तो बोझा न ढोना पड़ेगा, पर आज यों समझाया कि दूसरे दिनसे पेट फुलाकर पैर पसारकर नहीं लेट जाना, नहीं तो चमड़ी उधेड़ी जायगी। रानीने राजासे पूछा कि तुम्हें घोड़ेकी बोली समझना किसने सिखाया ? हमें भी सिखवा दो। राजाने कहा कि सिखाने वालेने कहा था कि अगर स्त्री जातिको सिखाया तो तुम मर जाओगे। राजाको यह भय लगा कि अगर सिखा दूंगा तो मर जाऊंगा। रानीने बहुत हठ किया तब राजाने कहा कि अच्छा दो दिन बादमें सिखा देंगे। अब तो सभी पशु यह जान जाते हैं कि हमारा राजा दो दिन बादमें मर जायगा। बैल, घोड़ा, कुत्ता सभी उदास हो गये, यह सोचकर कि मेरा राजा तो दो दिन बादमें मर जायगा। मगर मुर्गा मुर्गी सब खेल रहे थे। कुत्ता बोला—ऐ मूर्खों तुम्हें यह पता नहीं कि अब खेलना ठीक नहीं है क्योंकि राजा मर जायेगा। मुर्गा मुर्गी कहते हैं कि हम इसलिए नहीं खेलते कि राजा मर जायगा किन्तु इसलिए हंसते हैं कि राजा अपनी बेवकूफीसे मर रहा है। कुत्ता बोला बेवकूफी क्या है ? मुर्गा मुर्गी बोले बेवकूफी यह है कि अपनी गल्तीसे ही स्त्री को सिखानेके लिए तैयार हो गया है। अगर वह रानीके हठ करने पर डण्डे मारनेको तैयार हो

जाता तो उसे अभी मरना न पड़ता। उसकी ही तो गल्ती है। राजा यह भी सुन रहा था अब उसकी समझमें आ गया। राजा दो दिन बाद रानीके घर तो गया किन्तु साफ कह दिया कि था नहीं सिखाना। तो सोचो कि सम्पदा, घर बार बच्चे कोई भी मुझे दुःखी नहीं करते हैं, कोई दूसरा दुःख करने वाले नहीं हैं, स्वयं ही मोह करके, ममता करके ये दुःखी हो रहे हैं। दुःखको दूर करना हो तो सच्चा ज्ञान जगालो। सच्चा ज्ञान जगानेसे ही दुःख दूर होंगे। अगर कोई चीज बन गयी तो उससे मुझमें क्या बन गया और अगर कोई चीज बिगड़ गयी तो उससे मुझमें क्या बिगाड़ हो गया ? यह सम्यग्ज्ञानकी बात कह रहा हूं। सम्यग्ज्ञानकी बात कही जानेपर भी ये रागोंमें ही गोते लगा रहे हैं।

इन रागोंमें लगाव होनेपर भी यदि सच्चा ज्ञान जगता है तो आकुलतायें नहीं होती हैं। इतना फर्क हो जाता है। मिथ्यादृष्टिमें तो राग भी रहता है और रागमें भी राग रहता है। सम्यग्दृष्टि भी करते हैं कोई राग, किन्तु वे रागसे राग नहीं करते हैं। इसका वे अन्दरसे दुःख ही मनाया करते हैं। वे तो सब बातें यथार्थ समझते हैं, फिर भी रागपरिणति देखकर दुःखी होते हैं। भैया ! यह ज्ञानमात्र सबसे निराला अपनेको समझो, केवल कर्तव्यमात्र समझो कि यह मैं इस दशाके कर्तव्य ही करता रहता हूं। जिन पदार्थोंसे मेरा सम्बन्ध है वे वे सब पदार्थ मेरे स्वरूपसे जुदा हैं, बिल्कुल जुदा है। पूर्वजन्मके कौनसे वैभव साथ आये और जगत्के इस जन्ममें भी कौनसे वैभव साथ ले जाओगे ? ये तो सब ख्याल बनाकर ही दुःखी हो रहे हैं। अच्छा ज्ञान जग गया वस्तुके स्वरूप अनुरूप तो अच्छा है और यदि अपने स्वरूपसे हट गए और कुबुद्धि आ गयी तो ठीक नहीं होगा। परकी परिणतिका अपने पर बोझ लादना भ्रमवश ही होता है। एक धुनिया पानीके जहाजसे चला आ रहा था। उस जहाजमें हजारों मन रुई लदी थी। उसको देखकर वह मनमें कहता है कि हाय ! इतनी रुई कौन धुनेगा ? हम ५ सेर रुई तो एक दिनमें धुन पाते हैं तो यह हजारों मन रुई धुननेमें तो हाय ! हम मर जायेंगे। ऐसी कुबुद्धि आ गयी, हाय हम मर जायेंगे। अब तो वह बीमार हो गया, तेज बुखार चढ़ आया। चार दिन हो गये, ६ दिन हो गए। बहुतसे डाक्टर आये, पर कोई ठीक न कर सका। एक बुद्धिमान आया। बोला—हम ठीक कर देंगे। धुनिया बोला—अच्छा महाराज, ठीक कर दो, मैं हजार रुपये भेंट करूंगा। उस बुद्धिमान व्यक्तिने धुनियासे पूछा—कहांसे चले ? बोला—फलां जगहसे, विलायतसे। किससे चले ? पानीके जहाजसे। उसमें कितने आदमी थे, बोला आदमी तो दो ही तीन थे, पर हजारों मन रुई लदी हुई थी। अब तो वह खुद ही समझ गया कि उतनी रुईको देखकर इसके हाय हो गया है कि इसे कौन धुनेगा ? बोला—अरे जहाज तो आगे समुद्रके किनारे आते ही उसमें आग लग गयी और

सारी रुई जल गयी, सारा सामान जल गया। अब तो वह इतना सुनते ही चंगा हो गया, बीमारी दूर हो गयी, सारे क्लेश खतम हो गये।

सम्पदा बढ़ाना है, रुपया बढ़ाना है, इतने और बढ़ाना है, यह करना है, वह करना है, इस प्रकारके ख्याल बनाकर मनुष्य बीमारीमें पड़े हुए हैं। अभी देख लो इनमें दुःखी हैं कि नहीं, आकुलताएँ हैं कि नहीं। और आपके ये आचार्य समझाते हैं कि नहीं। और आपके ये आचार्य समझाते हैं कि जिस दुनियामें, जिन-जिन पदार्थोंके बीच हम बसे रहते हैं वे पदार्थ तेरे स्वरूपसे तो बिल्कुल अलग हैं। उनका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उनमें है, उनकी परिणति उनमें है उनका प्रदेश उनमें ही है। तेरी सब बातें तेरेमें ही हैं। तेरा काम तेरेसे बाहर नहीं होता है, तेरी कोई परिणति तेरेसे बाहर नहीं होती है। तू परपदार्थोंमें कुछ नहीं करता और न परपदार्थ तुझे ही कुछ करते हैं, ऐसी भावना न रहेगी तो संयोगकी कल्पना होगी। बाह्यपदार्थोंके संयोगसे तो दुःख ही रहेगा। बाह्यपदार्थोंके संयोगसे अपना हित कुछ न तो वर्तमानमें ही कर सकते हैं और न भविष्यमें ही कर सकेंगे। त्यागसे ही पुण्यकी वृद्धि है। हम तो केवल ज्ञानस्वरूप हैं। यदि जरा भी विकल्प कर लिया तो लो दुःख हो गए। विकल्प तुम व्यर्थ ही करते हो। जो होगा सो होगा, उसको करते नहीं हो। सो ये सब पदार्थ मुझसे पृथक् हैं। उनमें जो दृष्टि करते हैं उन्हें दुःख ही होते हैं। यदि उन पदार्थोंको अपना न मानें तो क्लेश नहीं है। अगर मानें कि ये मेरे कुछ नहीं, इनसे मुझे कुछ नहीं मिलता, मैं तो मात्र विकल्प करता हूँ ऐसी बुद्धि आये और परपदार्थोंसे अपना उपयोग हटे तो मैं अपनेमें अपने स्वरूपको देखकर सुखी हो सकता हूँ। धन-वैभवसे सुख होता तो बड़े-बड़े महापुरुष क्यों इस लोकवैभवको त्याग देते? क्या वे कम बुद्धि वाले थे? हम आपमें से बहुतोंकी समझमें चाहे यही आता होगा कि वे हमसे कम बुद्धि वाले थे। वे धन-वैभव त्यागकर जंगलमें तपस्या करते थे तो क्या उनका कम दिमाग था? घरसे, परिवारसे सबसे विरक्ति ले लिया तो क्या वे कम दिमागके थे, ऐसा नहीं है। हम और आप क्या, जिनकी सेवा इन्द्रादि देव करते थे, जिनके चरणोंमें बड़े-बड़े मुकुटधारी राजा आते थे उन्होंने बड़े धन-वैभव राज-पाट सबको छोड़कर अपने आपके स्वरूपमें आनन्द प्राप्त किया। तो आनन्दके पानेका केवल एक ही उपाय है। इस जगह समझो कि निजस्वरूपके देखनेसे ही सुख है।

मलास्थिरुधिरे देहे स्वबुद्धया क्लेशभाग्भवेत्।
तत्र रागे न को लाभः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२४॥

देखो यह शरीर मांस, हड्डी, खून आदि अपवित्र वस्तुओंका समूह है। इस देहमें

आत्माकी बुद्धि करनेसे क्लेशोंका पात्र बनना पड़ता है । जैसे देखो तो इसी देशमें ही तो यह अधिक रिवाज है कि कोई बच्चा न छूने लायक हो गया हो यानें उसने किसी चांडालको छू लिया हो या अन्य किसी गंदी चीजमें पैर छू गया हो तो उसे और लोग न नहाने तक छूते नहीं । वह लड़का अगर दूसरे लड़केको छू लेता है तो दूसरा भी अस्पृश्य हो गया । दूसरेने तीसरेको छू लिया, तीसरेने चौथेको छू लिया, चौथेने पांचवेंको छू लिया तो वे सब अस्पृश्य हो जाते हैं । पर यह तो निर्णय कर लो कि वास्तवमें कौनसा बच्चा अस्पृश्य है ? केवल एक ही लड़का तो अस्पृश्य है, जिस लड़के ने गंदी चीजको छू लिया, वह अकेला ही तो है । बाकी सब तो निमित्त परम्परामें न छूने योग्य बन गये । इसी तरह इस शरीर को देखो कितना अपवित्र है, मूलमें क्या शरीर अपवित्र है । यह शरीर तो आहारवर्गणाओंसे बना है । वे शरीरवर्गणा तो पवित्र हैं । जब तक जीव इस परमाणुस्कन्ध पर कब्जा बनाकर नहीं आता है तब तक यह आहारवर्गणा शुद्ध है, पवित्र है कि अपवित्र ? बतलाओ । जब तक इन परमाणुवोंमें यह जीव नहीं आता तब तक पवित्र है और जब यह जीव आया और उनको शरीररूप बनाया, देहरूप बनाया तो यही वर्गणायें अपवित्र हो गयीं । तो मूलमें अपवित्र कौन रहा ? यह जीव अपवित्र रहा कि शरीर ? यह संसारी जीव ही गंदा रहा जिसके कारण यह शरीर गंदा हो गया । जब तक यह जीव नहीं आया तब तक यह शरीर अच्छा था, भला था । और भी आगे देखो—जीव क्या गंदा रहा ? जीवने रागद्वेष किया, मोह किया तो ऐसा मोही, रागी, द्वेषी जीव ही आया तब ही तो इस शरीरने सारी वर्गणायें ग्रहण कीं और इससे अपवित्र हो गया यह शरीर । तो जीव भी अपवित्र नहीं रहा । ये रागद्वेष मोह ही अपवित्र रहे । दुनियामें सबसे गंदी चीज क्या है ? राग द्वेष । और इनका मूल क्या है ? मोह । सो मोह ही गंदा है । अरे गलीमें दुर्गन्ध देने वाली चीजें क्या हैं ? कीड़े मकोड़े, मांस इत्यादि खराब चीजें ही दुर्गन्ध देने वाली बन गयीं । उनमें यह जीव आया, तब न त्रस बना यह पिण्ड, फिर जीवके जानेपर सड़ा व गंदा हुआ । तो गंदा कौन हुआ ? गंदा तो यह मोही जीव ही हुआ । और जीवके गंदा होनेका कारण मोह रागद्वेष है । परम्परासे चलते-चलते यहाँ तक नौबत आई कि शरीर गंदा हो गया । तो मूलमें सबसे गंदी चीज है मोह । इस जगतमें सबसे गंदी चीज मोहकी चीज ही मिलेगी । अगर मोह है तो सब गंदा और अगर मोह नहीं है तो कुछ भी गंदा नहीं है । भगवान् तीर्थंकरने सबसे मोह त्यागा । वे वीतराग हुए तो उनका शरीर परमौदारिक हुआ । उनके शरीरमें कोई अपवित्रता नहीं रहती । स्फटिकके समान पारदर्शी पवित्र शरीर हो गया । पवित्र क्यों हो गए कि शरीरमें बसने वाला जीव निर्मोह हो गया, रागद्वेष मोह आदिसे वे रहित हो गये । शरीरको गंदा रखने वाले तो

ये दोष ही थे। दोष मिट गये तो यह शरीर पवित्र हो गया। यह बीमारी जिनमें ये मोही प्राणी भर रहे हैं उनका मूल कारण यह मानसिक रोग है। बड़े आदमी, रईस लोग बड़ी बातें करने वाले जिन्हें शारीरिक रोग नहीं है। डाक्टर आ रहे हैं, चार आदमी हिले-मिले सेवा कर रहे हैं, पर यहाँ तो रोग हार्ट फेल होनेका है। अरे हार्ट तो फेल होनेका है, मगर भीतरमें कुछ भी दशा खराब नहीं है, भीतरमें केवल मानसिक दशा खराब हो गयी है तो इस काममें ५ लाखका टोटा पड़ गया, बड़ा नुकसान हो गया, हाय मेरी इज्जत धूलमें मिल गयी इत्यादि मानसिक खराबियोंसे वे परेशान हो जाते हैं। अरे वे रागकी हो तो परेशानियाँ हैं। कोई दो-चार लाखका धन अगर दे देवे तो वे फिर उसी समय ठीक हो जाते हैं। यह तो अज्ञानकी ही बात है। एक और बात देखो, इन्हें न तो कोई मारता है, न पीटता है, न घसीटता है, न भूखों मरते हैं, न किसी प्रकारके संकट हैं फिर भी उनके दिलमें उड़ान बनी रहती है, और दुःखी होते हैं। केवल ख्याल ही तो करके दुःखी होते हैं। उपयोगमें तो वही आधा सेर भोजन ही आयगा। तनके कपड़े उपयोगमें आयेंगे। पर अनेक ख्याल बनाकर वे दुःखी होते हैं। उन ख्यालोंको मिटानेकी औषधि तो वस्तुस्वरूपका ज्ञान है। इस शरीरमें आत्मबुद्धि करके तो लाभ कुछ नहीं मिलेगा। इस शरीरमें राग करके तो बरबादी ही है। दूसरेके शरीरमें राग करनेसे, विषयभोग कामवासनायें इत्यादि जागृत होती हैं। मोह करना, यह मेरा है, यह उसका है, यह फलांका है इत्यादिसे तो दुःख ही मिलता है। आत्मासे किसी को राग नहीं है और शरीरसे भी कोई राग नहीं करता। अगर आत्मा निकल जाय तो फिर उस शरीरसे राग रखे कोई तो क्या राग रखता है। आत्माको तो ये कोई जानते ही नहीं हैं, राग क्या करें उससे फिर भी अगर वे राग करते हैं तो स्वयंको ही जलाते हैं। परमार्थसे तो आपकी आत्मामें राग नहीं है, पर ख्याल बनाकर राग बना डालते हैं। इन रागों के कारण ही आप दुःखी होते हैं। दुःख तो केवल ज्ञानस्वरूपके अनुभवसे ही दूर होंगे। सो अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव करना चाहिए। ज्ञानस्वरूपका अनुभव करके ही शांति प्राप्त की जा सकती है, अपने शांतस्वरूपके दर्शन भी ज्ञानस्वरूपके अनुभवसे ही होंगे। यदि अपनेमें शांति बन जाय तो यह जीव सभी जगह प्रसन्न रह सकता है।

देहो न शुध्यते सिन्धोर्वारिभिः शुध्यते स्वयम्।
स्वात्मा स्वात्मधिया तस्मात्स्यो स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२५॥

शरीर और आत्माकी बात कह रहा हूं कि यह शरीर समुद्रके सारे जलसे भी शुद्ध किया जाय तो भी शुद्ध नहीं होता। कितना ही समुद्रभर पानी डाल दिया जाय, पर शुद्ध नहीं हो सकता है, क्योंकि भीतर तो सारा मल भरा हुआ है, नाकमें नाक भरी हुई है पोप,

हड्डी, मांस आदिसे यह शरीर बना हुआ है। समुद्रके जलसे भी शुद्ध किया जाय तो शरीर शुद्ध नहीं किया जा सकता है। और आत्माके शुद्ध करनेके लिए किसी परवस्तुकी भी दर-कार नहीं है। अपने आपकी आत्माकी बुद्धिसे ही शुद्ध हो जाता है। आत्माकी बुद्धि क्या है? मेरा ज्ञायकस्वभाव है, ज्ञानमात्र स्वभाव है, ऐसी दृष्टि आ जाये तो यह जीव अन्तरात्मा बने, फिर इसी ज्ञानकी स्थिरतासे परमात्मा हो जाय। मैं केवल अपने स्वरूपमें हूं, इसका अनुभव हो जाय, मेरेमें किसीका बोझ नहीं लदा, जितने भी परिवारके लोग हैं उनके कर्म अलग-अलग चलते हैं, उनके उदयके माफिक उनका काम चलता है, उनका मुझ पर कोई भार नहीं, घरके लड़का लड़की हैं उनके कर्म अलग-अलग हैं और उन कर्मोंके उदयोंके अनु-सार उनका फल कुफल चलता है। उनका मुझपर कोई भार नहीं है। उनका अगर उदय ठीक है तो उनका फल ठीक है और अगर उदय ठीक नहीं है तो उनका फल भी ठीक नहीं है। यहां एक प्रश्न होता है कि हम भाग्यपर ही रहें तो निकम्मे हो जाते हैं। अरे दूसरोंके भाग्यके अनुसार उनके काम होते हैं। हम उनमें विकल्प ही करते हैं और कुछ नहीं करते हैं। मोक्षकी बात, भाग्यकी बात और संसारकी बात, ये तीन बातें हैं। इनमें जो मोक्षकी बात है वह है पुरुषार्थ। संसारका जो काम है वह है सम्पदा मिले, विपत्ति मिले। सो इन बातोंमें है भाग्यकी मुख्यता और पुरुषार्थकी गौणता। जैसे ये लकड़हारे, घसियारे आदि लोग कितना परिश्रम करते हैं, पर मुख्य चीज भाग्य है उनका सहयोग नहीं है। रात-दिन परि-श्रम करते हैं तो भी उनकी सफलता नहीं रहती। अब बात यह चली कि बहुतसे लोग बी. ए., एम. ए. कर लेते हैं, पर रिक्शा चलाते हैं। भैया! ऐसा है कि जो बिल्कुल पढ़े-लिखे नहीं होते वे भी बहुत कमाते हैं। संसारमें मनुष्योंकी भाग्यकी विषमता है, भाग्यकी बात है। संसारके कामोंमें मोक्षके कामोंमें पुरुषार्थ क्या होता है कि अपनी आत्मामें ज्ञान किया, अपनी आत्मामें ही शान्त हो गये। जिसने इच्छाएँ नहीं कीं, बल्कि अपने ज्ञानस्वरूपकी उपासना की तो यही है मोक्षका पुरुषार्थ। सो मोक्षके लिए पुरुषार्थकी मुख्यता है।

भाग्य कहते हैं जो पूर्वजन्ममें परिणाम हुआ हो। पूर्वजन्ममें परिणाम होनेके कारण जो कर्म हैं वे बंध गए। उनके उदयकालमें संपत्ति विपत्ति आती है जिसको कहते हैं कर्म। कर्मोंके मोक्षका पुरुषार्थ तो यह है कि इस आत्माके स्वरूपमें ही हम झुकें। यही है पुरुषार्थ। भाग्य अच्छा आये बिना सम्पदा नहीं मिलती है। इस भाग्यके ही कारण वैसा ही पुरुषार्थ बना, वैसे ही कर्म बने, वैसी ही चीजें परिणम गयीं। वर्तमानमें हम जैसे परिणाम कर रहे हैं, उनका फल आगे मिलेगा। तो अच्छे परिणामोंके बिना कर्म नहीं मिटेंगे। एक जीव कसाई

है, वह हत्या करता है पर देखा जा रहा है कि वह लखपति है, उसके पास सम्पदा है, पूंजी है, पर वे पूर्वजन्मके ही तो लाभ ले रहे हैं। अब इनसे जो खोटे कर्म बन रहे हैं उनको आगे ले चलेंगे। कोई अगर यह कहे कि मुझको दुःख हो रहे हैं तो परमार्थको देखो तो कुछ दुःख नहीं है। वर्तमानमें जैसा परिणाम कर लिया वैसा फल है। जितना जीवोंमें धर्म है उतनी ही शान्ति है, उतना ही धर्म है। गृहस्थीमें तो भैया! थोड़ा धन होना चाहिए, गुजारा होना चाहिए, बस उसीमें ही संतुष्ट रहो और धर्मधारणके लिये जीवन समझो। इसमें ही तुम्हारी शान्ति है। देखो लखपति, करोड़पति, अरबपति भी तो नजर आते हैं। अगर वे मर जाते है तो पता ही नहीं चल पाता है कि कैसे यकायक मर गए। कहीं ट्रेनमें चलते चलते मर गये, ट्रेन पर ही यकायक हार्टफेल हो गया। धनमें क्या शान्ति है? पूर्ण शान्ति तो धर्ममें ही होती है, धर्मसे जो शान्ति होती है वह तत्काल होती है। आत्माकी दृष्टि हो तो वही धर्म कहलाता है। आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है वही उपयोगमें रहे वही धर्म कहलाता है। यदि धर्म करता हो अर्थात् ज्ञानस्वरूपको अपने उपयोगमें लिए हो तो यह जीव सुखी हो सकता है। जिस कालमें जो जिस जीवने अपने ज्ञानस्वभावको लिया है तो समझो उसने अपने प्रभुकी उपासना किया है। जो अपने ज्ञानको पकड़े रहता है उसको दुःख नहीं हो सकते हैं। यदि अपने ज्ञानस्वरूपसे बाहर हुए तो दुःख ही दुःख आ जाते हैं।

बाहरी पदार्थोंमें लग गये, बाह्यमें ही भग गए, बाह्यमें ही मौज माना तो समझो ज्ञान करते हुए भी उसको शांति नहीं मिल सकती है। धर्ममें शान्ति है और अधर्ममें अशान्ति है। आत्माकी पवित्रता धर्मसे होती है। आत्मदृष्टिसे ही यह आत्मा शुद्ध होती है। परन्तु यह शरीर तो बड़ा बेशर्म है। हम इस शरीरमें कितनी आसक्ति रखते हैं। लोग आत्मासे आसक्ति रखनेमें शर्म करते हैं। अरे हमें तो इस शरीरसे घृणा होनी चाहिए। इस शरीरमें ऊपरसे अन्दर तक देखो सब घृणित चीजें ही नजर आती हैं। ऊपरसे तो यह शरीर भला लग रहा है पर बहुत ही गंदा यह शरीर है। नाकमें देखो तो नाक भरी रहती है, पेटमें देखो कितना विकार भरा रहता है। मांस, खून, हड्डी इत्यादिसे बना हुआ यह शरीर कितना अपवित्र है?

इस शरीरको अगर समुद्रके पानीसे पवित्र करें तो भी पवित्र नही हो सकता है। यह तो हुई शरीरकी बात, मगर आत्माको अगर शुद्ध करना चाहते हो तो कहते हैं कि अगर कर सकते हो तो दूसरे पदार्थोंकी ओर न झुको। इतने मात्रसे हो अपनी आत्माको शुद्ध कर लोगे। गिरी हुई बातों को तो सब तरहसे कर सकते हो, पर यदि आत्माको शुद्ध कर लिया तो समझो जीवन सफल है। जो ज्ञानानन्दघन अपने आपको देख ले तो वही

शुद्ध रहेगा, वही पवित्र रहेगा। सब सबके साथ आत्माकी दृष्टिसे तत्काल नष्ट हो जाते हैं। तो आत्मदृष्टिमें इतनी ताकत है। आत्म दृष्टिसे ही आनन्द प्राप्त होता है। यह आनन्द अन्यत्र नहीं प्राप्त होता है। इस विषयमें क्या आनंद है कि रात दिन बाह्यमें ही पड़कर तृष्णा किया करते हैं। ऐसी कोशिश रक्खो कि आत्माकी महिमा सबसे पहिले रक्खो।

झूठ बोलकर, छल कपट आदि करके धन आ जावे ऐसा विचार न रक्खो। शुद्ध भावनाको अन्तरङ्ग फकीरी कहते हैं। इस फकीरीमें आ जावो तो सारा काम बन जाय। न्यायसे प्रवृत्ति होना चाहिए, धर्मकी दृष्टि होना चाहिए, उस परिवारके पीछे आत्मापर आघात नहीं करना चाहिए। जो परिवारके लोग हैं उनका भी कर्मोदय है, उनकी भी हित अहित की व्यवस्था है। यह अपनी देह तक तो रहेगी नहीं, फिर दूसरोंसे अधिक तृष्णा क्यों रक्खो ? अपनी आत्माका हित देखना चाहिए। आत्माका हित इसीमें है कि न्यायसे रहे, पवित्रतासे रहनेके लिए अपना तन, मन, धन तक न्योछावर करनेके लिए तैयार होना चाहिए। यह भी निश्चय होना चाहिए कि हम झूठ न बोलें, दयाका व्यवहार रखें, गलत व्यवहारसे पैसा न आवे। गलत व्यवहारसे पैसा आनेसे अन्यायसे धन आनेसे तो इन्कम खत्म हो जावेगी। मगर साख अच्छी है, व्यवहार अच्छा है, न्यायका व्यवहार करते हैं तो इन्कम बढ़ जाती है।

कहते हैं कि रूस चीन आदिके लोग सुखी हैं। अरे वहांके भी लोग सुखी नहीं है। वहां भी कोई हुक्म करते हैं कोई हुक्म मानते हैं, हुक्म मानने वाले दुःखी हैं। हुक्म मानकर व हुक्म करने वाले दुःखी हैं, हुक्म करके वहांपर भी बहुत दुःख है। चाहे साम्यवाद कह लो, चाहे भाग्यवाद कह लो। जो पदार्थ जैसा है वैसा न माननेसे ही अपनेमें विकल्प बन गये। धर्म नहीं बदला जा सकता है, मगर सुखकी बाह्यव्यवस्थायें बदली जा सकती हैं। बड़े आदमी दुःखी होते हैं, उनके पास यद्यपि दुःख नहीं हैं, पर ख्याल बनाकर वे दुःखी होते रहते हैं।

इस ख्यालको मिटानेका उपाय तो केवलज्ञान है। इस ज्ञानमें ही समानेसे मोक्षमार्ग प्राप्त होता है। ख्याल बना लेनेसे तो जो इन्द्रसम हैं वे भी दुःखी हो जाते हैं। संसारमें रहने से तो दुःख नहीं मिट सकते हैं। दुःख तो केवल अपने ज्ञानस्वरूपकी दृष्टिसे ही मिट सकते हैं।

दुःखाश्रयो हि देहोऽयं देहतो व्यसनानि वै।
विरज्य देहतस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ॥२६॥

लोग देहकी व्यवस्थामें जुटे हैं। साम्यवाद करना चाहते हैं तो इस देहकी व्यवस्था

के लिए ही कमाई करते हैं। अन्य जितने भी काम हैं, वे सब भी इस देहकी व्यवस्थाके लिए ही किए जाते हैं। जितने भी दुःख हैं उन दुःखोंका कारण भी यह शरीर है। मेरा अपमान हो गया, मुझे सम्मान नहीं मिला, मुझे यह करना है आदि बातोंसे ही अपने शरीर का ख्याल बनाकर दुःखी हो जाते हैं। अगर किसीने गालियां दे दीं तो दुःखी हो जाते हैं। जो अपमानके दुःख हैं उनका भी कारण यह शरीर है, जो मानसिक दुःख हुए उनका भी कारण यह शरीर है। यह शरीर ही सारे दुःखोंका आश्रय है। इस शरीरसे ही सारी विपदायें हैं। एक दूसरेका कोई दुश्मन नहीं होता। इस शरीरको देखकर ही दुश्मन बन गए। इस आत्मामें दुःख नहीं है। तुमको तो केवल शरीर ही नजर आता है। यह अमुक व्यक्ति है, इसका यह नाम है इत्यादि। सो इन झंझटोंका कारण शरीर है। ये जो व्यसन आते हैं वे भी इस शरीरके ही कारण आते हैं। इसलिए इस देहसे विरक्त होना ही ठीक है। देहसे विरक्त होनेका मतलब यह समझो कि मैं यह देह नहीं हूं, देह तो पौद्गलिक है। यह देह तो जड़ है, मैं मैं हूं, चेतनस्वरूप हूं, मैं सबसे जुदा हूं ऐसा यथार्थ अपनेको जान लो। इस देहके संसर्गसे तो दुःख ही है, इस देहसे संसर्ग रखनेसे तो पूरा नहीं पड़ेगा।

यथार्थज्ञाता बनना ही इस देहसे विरक्त होना है। अपना ज्ञान सही रखो, रागद्वेषों, मोह आदिको त्यागकर अपने ज्ञानानन्दघन स्वरूपको देखो। अपने आपको यह समझो कि मैं यह देह नहीं हूं, यही समझना सम्यग्ज्ञान है, यही देहसे विरक्ति है, विरक्ति और ज्ञान अन्य कुछ नहीं है। ज्ञानको ही विरक्ति कहते हैं और विरक्तिको ही ज्ञान कहते हैं। ज्ञान और वैराग्यकी लीला परमार्थसे एक ही स्वरूप बन गयी है। ज्ञानके होनेका नाम ही रागोंका मिटाना है और ज्ञान होनेका नाम ही वैराग्य है। यह जो कुटुम्ब परिवार इत्यादिके लोग हैं उनसे मेरा कोई सम्बन्ध ही नहीं है। मैं तो उन सबसे जुदा हूं, केवल ज्ञानमात्र हूं, ऐसे ज्ञान का होना ही वैराग्य है। धन सम्पदा इत्यादि तो दुर्गतिके कारण होते हैं। इस कारण अन्य सबसे विरक्त होकर अपनेमें बसा अपना स्वभाव, इस कारण धर्म मानना ही वैराग्य है। यह मैं हूं, यह मेरा है, यह उसका है ऐसा माननेसे ही व्याकुलताएं हो रही हैं। मैं मैं हूं, वह वह है, ऐसा मानना ही वैराग्य है। परको पर समझो। जिसमें वैराग्यका अंश नहीं है वह ज्ञान नहीं है। सम्यग्ज्ञानके साथ चारित्र न हो ऐसा नहीं होता, स्वरूपाचरण तो होता ही है और चारित्र हो तो शान्ति नहीं हो सकती है। सम्यग्ज्ञान होते ही बाहरकी कोई भी चीज हो उससे प्रतीत्या राग हट जाता है। परसे राग हो गया तो फिर वह स्थिर न रह सकेगा। यह स्वरूपाचरण वाला ज्ञान यदि नहीं है तो बरबादी ही है। इस स्वरूपाचरणके मायने हैं अपने स्वरूपकी ओर झुको। जितना ही ज्ञान होगा उतना ही अपने ज्ञानस्वरूपकी ओर

झुकाव होगा। मोह न रहे, रागमें राग न रहे, अज्ञानका राग न रहे, प्रीतिका राग न रहे। भैया! ये सब जितने व्यसन हैं वे सब इस देहके ही कारण हैं। सो इस देहसे विरक्त होकर अपने ज्ञायकस्वरूपको देखकर अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होओ।

इस संसारके जितने भी जीव हैं वे चाहे मनुष्य हों, चाहे पशु हों, चाहे पक्षी हों, चाहे जो कोई होवें सब अपनी-अपनी जगह पर दुःखी हो रहे हैं। किसीको दुःखी करने वाला कोई दूसरा जीव नहीं है। अपना ही ख्याल करके, विचार बनाकर विकल्प करके खुद दुःखी हो रहे हैं। क्यों दुःखी हो रहे हैं कि इस जीवको अपने आपके स्वरूपका पता नहीं है कि मैं क्या हूं? कौन हूं? पर ऐसा ही तो मानते हैं ना सब कि मैं इस घर वाला हूं, मैं इतने खेतों वाला हूं, मैं इतने पुत्रों वाला हूं, मैं अमुक हूं, मेरा ऐसा मामला है, मैं बड़ा हूं, मैं छोटा हूं ऐसा ही तो सब लोग मान रहे हैं। पर ये सब ऐसा है क्या? अरे आत्मा क्या कोई जाति में है? क्या आत्माका कोई कुल है? इसका तो किसीसे सम्बन्ध नहीं है। मगर अपने ब्रह्म-स्वरूपका पता नहीं है, इन पर्यायोंको ही मान रहे हैं कि यही मैं हूं तथा भगवानकी भक्ति करें, पूजा करें, आरती करें, पर यह पता न रहे कि मेरा भगवान कैसा है, क्या है, बल्कि उल्टा यही रटन लगा रखें कि भगवान है, वही हमें दुःखी सुखी करता, लड़के बच्चे देता, धन-दौलत देता यही रटन लगा रखी है। पर भगवान असली है क्या इसका विचार न हुआ तो कुछ जीवनका सार नहीं है। भगवानका ब्रह्मस्वरूप है, सोई ब्रह्मज्ञान है जो आत्माका स्वरूप है, सोई भगवानका स्वरूप है।

जैसे रामचन्द्र जी हुए, श्री महावीर जी हुए, ये भगवान क्यों कहलाये आखिर वे भी तो इसी देशमें ही हुए थे। वे भगवान यों हुए कि उन्होंने अपना ब्रह्मस्वरूप पहिचाना, जो सब जीवोंमें एकस्वरूप है। स्वयंको ही ओर दृष्टि की, इस कारणसे वे भगवान हुए। और ये जगत्के जीव जो मोही हैं, जिन्हें घरके दो-चार मोही जीव मिलते हैं उन्हींको वे मान लेते हैं कि वे मेरे हैं बस इस कल्पनासे ही वे अटक गए। अटक क्या गए कि वे भगवानके दर्शन न कर सके। भगवानके दर्शन वे ही कर सकते हैं जो परिवारके मोहमें न अटके हों। जो मोहमें अटक गया वह भगवानके दर्शन नहीं कर सकता है। इसी मोहको ही कहते हैं अहं-कार। यह मैं हूं, यह मेरा है इत्यादि। अरे क्या अहंकार करते हो, ये सब तू न रहेगा, तूने ये सब नहीं किया। तू तो एक ज्ञाताद्रष्टा चेतनमात्र ब्रह्मस्वरूप है। ऐसा यदि अपनेको बोध नहीं करता है तो कितनी ही बड़ी अविवेकताएं हो जायें। जिस चाहे चबूतरेमें हों, जिस चाहे जगहमें हो, जिस किसी पत्थर पर सिन्दूर लगा दी तो कितने ही देवताओंके नाम इस पत्थरके रख डालते हैं। यह भोले बाबा है, यह फलाने बाबा है, यह फलानी देवी है। अवि-

वैकी लोग उनके आगे जीवहत्या तक कर डालते हैं। कितने लोग हैं ऐसे यह तो हमें पता नहीं है, पर वे किसी भी पशुको, किसी भी जीवको चाहे बकरा, बकरी, मुर्गा, मुर्गी आदि हो तो वे जीवोंको बलि चढ़ाते हैं। अरे वे जीव भी तुम्हारे ही जीवके समान हैं। उनके स्वरूप में और तुम्हारे स्वरूपमें कोई अन्तर नहीं है।

जिन्हें अपने स्वरूपका पता नहीं है वे सोचते ही रहते हैं। जो हम हैं वही सब बाकी तो सब जीव यों ही हैं। अरे किसी जीवको जान ले लेनेमें बड़ा पाप है और उस पाप के फलमें दुःख होता है। सो यह ध्यान नहीं है खुशी, खुशी पाप बढ़ाते चले जा रहे हैं। सो जो दूसरे जीवों पर दया नहीं कर सकता, उन्हें अपने समान नहीं समझ सकता तो भला बतलावो कि उसे भगवानके दर्शन कैसे मिल सकते हैं? भगवानके दर्शन उसको ही हो सकते हैं जो सब जीवोंको समान समझता है, एक समान समझनेके मायने यह हैं कि स्वभाव सबका वही है, ज्ञानस्वरूप वही है, आनन्द वही है, चैतन्यस्वरूप वही है, सब एक ही स्वरूपके जीव हैं। यदि यह ज्ञान हो तो इन जीवोंकी हिंसा न करो। जैसे कोई अपने ही हाथसे अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार ले तो उसे आप क्या कहोगे? इसी तरह अज्ञानी जीव देवी देवता मानकर अथवा यह समझकर कि इन देवी देवताओंपर कुछ चढ़ा दें या मार दें तो मेरे घरके अच्छे हो जायेंगे अथवा कामना पूर्ण हो जायगी।

भैया! अब तो जमाना बड़ी प्रगतिसे चल रहा है। ऐसे जमानेमें यहाँ वहाँ आस-पास देखनेमें आता है कि हिन्दुस्तानके देहातोंमें धर्मके मामलेमें कुछ प्रगति नहीं कर पाते और जो परम्परा चली आयी उसीके अनुसार लकीर पीटते चले जाते हैं। हमने अभी एक जगह देखा कि एक नीमखेराका नरवा था। लोग बैठे थे। हमने तो न देखा कि जीव चढ़ाया जा रहा है या क्या? वैसे वे लोग चढ़ा नहीं रहे थे, पर ऐसे ही कहीं-कहीं पर चढ़ाया जाता है। कहीं चढ़ाया भी जाता हो तो भैया इससे तो बहुत पाप हैं। कोई देवी देवता यह नहीं चाहता कि मेरे आगे किसी जीवका वध करना चाहिए। वे देवता नहीं चाहते कि कोई जीव चढ़े। सत्यदेव तो भगवानके स्वरूप हैं, ज्ञानमय हैं, आनन्दमय हैं वही तो ब्रह्मका स्वरूप है। वे तो सदा आनन्दमें लीन हैं। रहे सांसारिक देवी देवता सो वे भी वैक्रियक शरीर वाले हैं उनके कण्ठसे अमृत झरता है और उसमें वे तृप्त हो जाते हैं, खाते कुछ नहीं। प्रभुकी भक्ति करनेमें कुछ नटखट करना अच्छा नहीं। भगवानके स्वरूपकी जो भक्ति करते हैं उन्हें भगवान दर्शन देता है, धनी हो तो क्या, निर्धन हो तो क्या, कुछ उनको चढ़ाया तो क्या, न चढ़ाया तो क्या, इससे कुछ असर नहीं होता है। भक्ति तो ज्ञानकी बात है।

जो भगवानकी भक्ति करे वह निहाल हो जाय। मेरा तो बाहरकी बातोंसे कोई

सम्भव नहीं। धर्मकी प्रगति करना, अपना आत्म ऊँचा बनाना, प्रभुका बनाना इत्यादि कार्य अगर किसीने पा जायें तो उसका मानव-जीवन सफल है। वैसे यह भी रामचन्द्रका मन्दिर है, उनके हम आप सब उपासक हैं। भगवान रामचन्द्र जी क्या यही उपदेश देते हैं कि किसी जीवको चढ़ाया जाय? उनका तो उपदेश यह है कि कीड़े मकोड़े आदि सभी जीवों पर दया करो। भगवान तो प्रसन्न होते हैं उनके स्वरूपके स्मरणसे। इन जीवोंकी बलिसे तो भगवान नाराज होंगे?

कोई बहका देने वालोंने किसी जमानेमें जो मांस खानेकी इच्छा करते थे उन्होंने किसी न किसी बहानेसे जीवोंको मार दें तो मांस खानेको मिलेगा इस बातसे लोगोंको बहका दिया है। तो उन्होंने तो इस दुनियाको गुमराह कर दिया। ऐसे पाप करके तो कहीं प्रगति नहीं है। उन्हें तो मांस खानेकी व्यवस्था बनानी थी, सो पशु-पक्षियोंकी बलि करनेकी व्यवस्था बना दी। परन्तु भैया! आप लोग तो विवेकी बनो, जीव-बलिका त्याग कर दो। अभी देखो सेठिया लोग, बड़े-बड़े व्यापारी लोग, लखपति, करोड़पति लोग पड़े हुए हैं, जो मांस आदिका प्रयोग नहीं करते हैं, पशु बलिसे दूर रहते हैं। तो क्या बलि करनेसे उनका धन बढ़ गया? नहीं, ऐसा नहीं है। ऐसा कहा जा सकता है कि उनके परिवारके लोग अच्छे खासे हो जाते हैं। दयासे, सदाचारसे सुमतिकी वृद्धिसे। एक तो जीवों का मारना पाप है और भगवानका नाम लेकर मारना महापाप है। सो यह जीवन बड़ी ही कठिनतासे मिला है, इसमें धर्मका पालन करना धर्म है। जीवदयाकी सबसे पहली सीढ़ी यह है कि सब जीवोंको अपने जीवके समान समझो और किसी भी जीवकी हत्या न हो। जो बहुत छोटे लोग होते हैं वे विवाहके अवसर पर या कोई मेहमान आ जाय तो ऐसे समयमें वे मांस खिलाते हैं। यह तो अज्ञानकी ही बात है। यह तो दुर्गतिकी ओर ले जानेकी बात है। तुलसीदासने बताया है कि जीवदया ही धर्म है। जब तक जीवदया नहीं आयगी तब तक खोटे परिणाम ही मिलेंगे। जिन्दगी भर परेशानियाँ ही मिलेंगी। ऐसा व्यवहार बनाओ कि परस्परमें जीवोंको अपने ही समान समझो। अपने समान ही सब जीवोंको समझनेसे भगवान के दर्शन हो सकते हैं। तो भैया! सबसे पहिला काम यह है कि अगर अपनी प्रगतिका काम करना है, भगवान रामका सच्चा भक्त होना है तो झूठे बहकावेमें आकर कि पशुबलिसे देवी देवता प्रसन्न रहते हैं इसे न मानना चाहिए और पशुबलिका बिल्कुल त्याग होना चाहिए। पशुबलिसे लाभ कुछ नहीं होता है। उन्हें ही देख लो जो पशुबलि करते हैं, जिनके लिए पशुबलि करते हैं, वे सब गुजर गए। कितने ही ऐसे हैं जिनके लिए पशुबलि नहीं की गयी और वे अच्छे हो गए। तो भैया! अब छोड़ देना चाहिये और पशुबलिका तो त्याग होना चाहिए। हमें नहीं मालूम कि यहाँ पर पशुबलि चढ़ाई जाती है या नहीं। (किसीने कहा कि

पहुँचे जाते हैं, तो महाराजने कहा) भैया ! अपना ज्ञान जगाओ । जब देवी देवताओंसे अच्छा भगवानको मानो । ये देवी देवता भी तो भगवानके ही सेवक हैं । श्रीराम भगवानका कितना पवित्र जीवन था । क्योंकि पुरुषोत्तम थे, प्रजाके रक्षक थे । अंतमें उन्होंने सन्यास मार्गको अपनाया और खूब त्याग तपस्या करके ब्रह्ममें लीन हुए । प्रभुका ही तो आदेश है कि जीवों पर दया करो । बात तुम्हें चाहे कठिन मालूम पड़ रही हो, पर किसी समय यह तो ख्याल आता ही होगा कि अकेले ही पैदा हुए और अकेले ही मर जायेंगे । तो इन जीवोंका हित सोचो, इन जीवोंपर दया ही करो । अगर दूसरे जीवोंको सताया तो तुम भी सताये जाओगे । तो भैया ! अपना अन्तरमें ज्ञान जगाओ । आत्मज्ञान करके ही तुम्हारा सुधार होगा । हम तो केवल कह रहे हैं, मानो चाहे न मानो । अभी सवेरा होते ही चले जायेंगे ।

अभी रास्तेमें एक गाँव मिला था । वहाँ पर सब चमार लोग ही थे । वहीं पर सब लोगोंने मांस, मदिरा, जीवहत्या इत्यादि सबका त्याग किया । तो भैया ! आप लोग भी त्याग दें, इससे कोई फायदा नहीं है । इस बीच बलि करने और मांस खानेका त्याग इन लोगोंने किया—

बैजनाथ काछी, रद्दू काछी, मसल्लो काछी, भगान काछी, गोबरे नाई, पंचम काछी, हरप्रसाद लोहार, कल्लू काछी ।

हाँ तो मैं कह रहा था कि इस संसारमें जीव जो दुःख पा रहे हैं वे अपने आपमें ज्ञान न होनेसे ही दुःख पा रहे हैं । मैं कौन हूं और क्या हूँ—इस बातको समझो और जो ऊपरसे समझ रखा कि मैं अमुक हूँ, इतनी पूँजी वाला हूँ ये सब झूठी बातें हैं । हम तो भगवानके स्वरूप हैं । हममें और भगवानमें फर्क नहीं है । झूठ बोलकर, उल्टा सोचकर, खोटे विचार करके हम सब इतना भगवानसे जुदा हो गये कि भगवान तो सिर गये और हम सब जगत्के प्राणी जन्ममरणके चक्करमें पड़ गए हैं । अपनी आत्माको ऐसी समझो कि इसके लिये यही बड़ी महान् है, परमात्मासे कम नहीं है । इस मोहमें क्या रखा है ? भीतरमें ऐसा ज्ञान जगाओ कि यह मोह मेरा भला नहीं कर सकता है । तो स्वयंमें एक क्रान्ति लाओ और ऐसा निश्चय कर डालो कि मेरा मोह पाप ही करेगा, भला नहीं करेगा, ऐसा मनमें पक्का निश्चय कर लो और फिर अपने धर्म पर अटल रहो । कुछ ऐसे भी लोग हैं जिनके परिवार के लोग भी गुजर गये, और और भी परेशानियां आ रहीं, मगर अपने धर्मसे नहीं हटते । तो बतलाओ इसी दुनियामें कौरव पांडव हुए, इसी दुनियामें राम रावण इत्यादि प्रभु हुए, रावण आदि भी यहीं हुए, इसी दुनियामें कृष्ण गोपाल आदि हुए । उनमें से कोई स्वर्ग गया, कोई नरक गया । उनमें से भी तो कोई यहाँ नहीं रहा । इस दुनियामें जितनी भी चीजें हैं सभी

नष्ट हो जायेगी। इस दुनियामें जो आता है वह जाता अवश्य है। फिर भी बाह्य चीजोंको कहते हैं कि यह मेरी है, यह उसकी है। जो इस प्रकारसे सोचते हैं उन्हें पछताना ही पड़ेगा। जिनके कारण पाप किए जाते हैं वे कोई साथी नहीं होंगे, सब बिछुड़ जायेंगे। नरकका रास्ता उसे ही देखना पड़ता है जो पाप करता है। सो भैया! किसी जीवके प्रति यह भावना न करो कि यह दुःखी हो। सबको समान मानो, किसीको अपना दुश्मन न समझो। कोई वैरी नहीं है, कोई पराया नहीं है, किसीको बुरी बात न कहो। मनुष्यका धन तो यह वचन ही है। वचनसे ही पहिचाना जाता है कि यह मनुष्य भला है कि बुरा है। वचनोंसे ही झगड़ा खड़ा हो जाता है और वचनोंसे ही मेल हो जाता है। सारा दारोमदार इन वचनोंपर ही तो है। अपनी वाणी अत्यन्त मीठी होनी चाहिए, दूसरोंके हितकी होनी चाहिए जिससे कोई जीव अप्रसन्न न हो सके। सो जब अपना स्वरूप समझमें आ जाता है तो ये सब बातें आसान हो जाती हैं। धर्म करना, भक्ति करना, भगवानका ख्याल रखना, दूसरोंकी सेवा करना इत्यादि सभी बातें आसान हो जाती हैं। तो जब इस संसारमें कोई नहीं रह जायगा तो अपना यह शरीर दूसरोंकी सेवामें लगा दो तो क्या घटता है? जितना भी बन पड़े दूसरों की सेवा करो। दूसरोंकी सेवा करनेसे कुछ घटता नहीं है, बल्कि बढ़ता ही है। बढ़ता क्या है कि दूसरे लोग भी इज्जत करने लगते हैं। आलसी न बनो। अगर कोई गिर रहा हो तो उसे ऊँचा उठाओ। कोई अगर दुःखी है तो उसे दुःखी रहने दो, ऐसा न सोचो बल्कि उसे दुःखसे बचा लो, उसकी सेवा करो। ये सारी चीजें तो मिट जाने वाली हैं। इस शरीरको तो जितना ही परसेवामें लगाओगे उतने ही सबके प्यारे बनोगे। अबकी दुनियामें तो सेवाका ही मूल्य रह गया है। धनीको कोई नहीं पूछता। सेवा करने वाले ही कोई मिनिस्टर बन गये, कोई नेता बन गये, पर धनीको कोई यहाँ पद नहीं मिलता है। पद तो सेवा करनेसे ही मिलता है। धन जोड़ लेनेसे ही कोई बड़ा नहीं बन जाता, अगर दूसरोंकी सेवामें लग गये तो बड़े बन गये। बहुतसे लोग गरीब थे, फिर भी बहुत बड़े-बड़े ओहदों पर पहुंच गए। यह सेवा करनेका ही तो परिणाम है। यह जो शरीर मिला है, विनाशीक है, इसको तो सेवामें लगाओ। इसी तरह जो भी धन मिला है वह विनाशीक है, उसे भी दूसरोंकी सेवामें लगाओ। दूसरोंकी सेवामें धन लगानेसे धन घट नहीं जाता है। यदि धनकी रक्षा करके यह सोचो कि यह सदा मेरे पास रखा रहे तो यह नहीं हो सकता है। यह धन तो जैसे आता है वैसे ही चला जाता है।

एक सेठ थे। सो ऐसे पापोंका उदय आया कि उसका सब धन खत्म हो गया। धन खत्म हो जानेपर उसने अर्जीनवीसीका काम कर लिया। अर्जी वगैरा लिख दिया करता और

८-६ आने अपनी गुजरके लिए कमा लेता। एक दिन वही सेठ अटारी परसे ऊपर रहा था कि वहाँ ऐसी आवाज आयी कि मैं आऊँ, मैं आऊँ। कई दिनों तक फिर ऐसी आवाज आयी कि क्या मैं आऊँ ? तो उस सेठने आकर सेठानीसे यही बात बता दी। सेठानीने समझ लिया लक्ष्मी कह रही है कि क्या मैं आऊँ ? सेठानीने कहा कि इस बार अगर कहे तो कह देना कि मत आवो। ऐसा ही सेठने कह दिया। अब सेठ सेठानीसे बोला कि बहुत साल हो गये गरीबोंमें रहते-रहते सो अब कह दें क्या कि अच्छा आवो। सेठानीने कहा कि कल कह देना कि अच्छा आवो, मगर आकर जाना न हो तो ? दूसरे दिन फिर उसी प्रकारकी आवाज आयी। बोला—अच्छा, यदि आकर जाना न हो तो आवो। लक्ष्मीने कहा कि यह तो नहीं हो सकता, मैं एक जगह तो रह नहीं सकती। मैं कैसे कह दूं कि आ करके जाऊँगी नहीं ? यही बात सेठानीसे कह दी। सेठानीने कहा कि कह दो कि अच्छा आवो, किन्तु जब जावो तब कहकर जाना। लक्ष्मीने कहा—मंजूर है। लक्ष्मी आ गयी। देखो इस प्रकारसे लक्ष्मी आती है।

वहाँका राजा गया था परदेश। रानीने राजाको बुलवानेको पत्र उससे लिखवाया। पत्र लिखवानेमें एक अशरफी दी। उस अर्जीनवीसने ऐसा पत्र लिखा कि कोई नहीं लिख सकता। तभीसे लक्ष्मी आने लगी। राजा जब परदेशसे लौटकर आया तो राजाने उस लेखक को वजीर बना दिया। मंत्रीके पास बहुत सा धन आ गया। मंत्री १०-२० हंडोंमें सोना चांदी भरता गया और हंडोंका मुँह तांबा व जस्तेसे जड़कर घरमें गड़वा दिये। कुछ दिन बादमें राजा शिकार खेलने गया, वजीरको भी साथमें ले गया। दोनों एक पेड़के नीचे बैठ गये। वजीरने राजाको अपनी जांघपर सिर रखकर लिटा लिया। राजा सो गया। अब देखो स्त्रीके रूपमें वह लक्ष्मी आती है, कहती है कि मैं जाती हूँ। वजीरने कहा कि नहीं जा सकती हो, वजीरको गुस्सा आ गया, तलवार खींच ली। अब तो राजाकी नींद खुल गयी। वजीर ने सोचा कि अब मैं राजाको क्या जवाब दूं कि इस कारणसे तलवार खींची। राजाने जब वजीरके हाथमें तलवार देखी तो समझ लिया कि मुझे ही मारना चाहता था। उसने वनमें तो कुछ नहीं कहा, चुपचाप दरबारमें पहुंचा। अब तो राजाने आदेश दे दिया कि वजीरको सपरिवार देशसे निकाल दो। तो भैया ! देखो धन सब वहीं पड़ा रहा, धनका विश्वास नहीं है। भैया ! देह भी यहीं खाक कर दिया जायगा। सो भैया ! धनको व इस शरीरको दूसरों की सेवामें लगावो। इससे ही प्रसन्नता रहेगी। अपने हृदयमें प्रभुकी भक्ति रखो और इस जगतके जीवों पर दया करो तो क्लेश नहीं रहेंगे।

निन्द्यो देहोऽशुचिर्नित्यमिति: [illegible] ।
विरज्य देहतस्तस्मात्स्वात्मन्येव सुखी स्वयम् ॥२७॥

यह शरीर निन्दनीय है, घिनावने योग्य है, इस शरीरमें कुछ सार तो नहीं है। ऊपर से अन्दर तक कितनी खराब चीजें इस शरीरमें भरी हुई हैं। मांस, मल, मूत्र, खून, हड्डी इत्यादि सब खराब ही खराब चीजें इस शरीरके अन्दर भरी हुई हैं। फिर भी इस शरीरसे लोग कितना मोह करते हैं। अरे अपने आत्मामें दृष्टि करो तो कुछ कल्याण हो सकता है। अपनी दृष्टि बाहरमें रखनेसे अपने भीतरके ज्ञानस्वरूपका अनुभव नहीं किया जा सकता है। यदि बाहरकी समस्त चीजोंको छोड़कर अपने आपके शुद्ध ज्ञानस्वरूपका अनुभव किया तो अपने ज्ञानस्वरूपकी खबर रहेगी। अपने आपमें दृष्टि देकर ही आत्माको शुद्ध किया जा सकता है। जीवमें सबसे बड़ा संकट मोहका है। कोई लेना नहीं, देना नहीं, सब जुदे रहें फिर भी स्त्री पुत्र वगैरासे मोह लगाये हुए हैं। यही इस जीवका सबसे बड़ा मोह है। कोई घरको पुत्र गुजर गया तो कहते कि, घरका दीपक बुझ गया। घरका शिखर चला गया। इस प्रकारसे ये मोह करते और दुःखी होते हैं। अरे ये जो आये हैं क्या सदा रहेंगे? यहाँ कोई नहीं रहेंगे, सब यहाँसे चले जायेंगे। केवल अपना जो ज्ञानस्वरूप है वही साथमें रह जायगा और पापका संस्कार भी पिछयायेगा। देखो कोरी लोग जो कपड़ा बुनते हैं, वे भी अन्तमें ४ अंगुल छोरा बुननेसे छोड़ देते हैं, किन्तु यहाँ तो मनुष्य मरते समय तक भी मोह नहीं छोड़ता। भैया! अभतके मोही प्राणी कुछ छोड़ना नहीं चाहते हैं, पर उन्हें मरते समय तक तो सब छोड़कर जाना ही पड़ेगा। आखिर छोड़ने तो सब पड़ते ही हैं, पर हम अपने मनसे छोड़ें तो लाभ है। इसलिए कहते हैं कि विषयोंमें मोहसे प्रवाह न हो। शरीरमें मोह करना, अज्ञान करना यह सब अन्धकार है। यदि इस देहमें ही आसक्ति रही, दूसरोंकी सेवा न कर सके तो सब कुछ होते हुए भी यह मनुष्यभव पाना व्यर्थ है। भैया! अब अशांत न रहो, अपने ज्ञानस्वरूपको देखो, स्वाध्याय कर लो, व्रत कर लो, तप कर लो, पर इस देहमें आसक्ति हुई तो कुछ भी पुण्य न होगा। घरमें आसक्त होनेसे कुछ नहीं मिलेगा। इस मोह ममताको छोड़ दो यही सबसे बड़ा तप है। इस देहमें बसकर भी इससे प्रीति न करो। सब दुःखोंकी जड़ तो यह शरीर ही है। अरे अपने उस आत्मस्वरूपका अनुभव करो। यह आत्मा तो आकाशकी तरह अमूर्त निर्लेप है, इसमें दुःख कहाँसे आ सकते हैं? अरे अनुराग करो तो उस आत्मासे करो, शरीरसे क्यों मोह करते हो? यह शरीर ही तो विपदाकी जड़ है। यह शरीर तो मिट जाने वाली चीज है। किसी दिन यह जला दिया जायगा, जला देने से यह खाक हो जायगा। आत्मा तो आकाशकी तरह निर्लेप है। आत्मा अमूर्त है, कोई पकड़ने वाली चीज नहीं है यह आत्मा। इस आत्मामें रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि भी नहीं हैं।

यह आत्मा प्रकाशवान है, ज्ञान स्वभाव है, इसके अतिरिक्त और कुछ इस आत्मामें नहीं नजर आता है। सब माया है इस जगतमें जो दिखता है। परमार्थसे तो यदि अन्तरसे देखकर अपना स्वरूप ही ज्ञानमें जमे तो अपने आत्माका सही अनुभव हो सकता है। जो कुछ भी इस जगतमें अनुभवमें आ रहा है वह सब माया जालसे हटकर मैं अपने आत्मस्वरूपको देखूं और अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होऊं।

मनोवाक्कायिकी चेष्टेच्छातो दुःखं ततस्ततः।
हत्वेच्छां प्रज्ञया भित्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२८॥

जीवका जो धन है वह है मोक्ष। इस जीवने ६ भोग किए, क्या वे धन हैं? नहीं। इस जीवका काम तो केवल ज्ञाता द्रष्टा मात्र रहना है। धीरजसे रहे, शान्ति सी रहे, ज्ञान मात्र रहे, इसका यही काम है। बाकी तो सब अज्ञान है। यदि यह जीव ऐसा सोच ले तो समझो उसने बड़ा विवेकका काम किया। इतना ही काम बनें केवल यह समझते रहें, ज्ञाता द्रष्टा रहें, यही इस आत्माका असली काम है।

यह जीव इच्छाओंसे ही पराधीन हो जाता है। इन नटखट इच्छाओंने ही तो इस जीवको पराधीन बना दिया है। तीन चार आदमी बगीचेमें घूमने जा रहे थे। बगीचेमें देखा कि एक कबूतर जालमें फंसा है। एक आदमी कहता कि यह आदमी बहुत खराब है कि इसने कबूतरको जालमें फांस लिया। दूसरा बोला कि इस आदमीने कबूतरको नहीं फांसा, जालने इसे फांस लिया है। तीसरा बोला जालने इसे नहीं फांसा है, इन गेहूं, चावल के दानोंने इसे फांस लिया है। चौथा बोला कि इन चावलों और गेहूंके दानोंने भी इसे नहीं फांस लिया है उस कबूतरने तृष्णाके कारण स्वयं अपनेको फांस लिया है। तो भैया यह तो कथानक रहा, पर इस जगतमें कोई किसीको दुःख दे ही नहीं सकता है। सब शुद्ध हैं, परमात्मास्वरूप हैं पर अपने आपमें ख्याल बनाकर कल्पनाएँ करके दुःखी हो जाते हैं, फंस जाते हैं। भैया! इन ख्यालोंको मिटाओ तो सारे संकट दूर होंगे। ये बच्चे लोग कहानी कहा करते हैं कि स्यार स्यारनी थे, स्यारनी गर्भिणी थी। बच्चा जननेके लिये वे एक शेर की गुफामें रहते थे। कई बच्चे भी हो गये थे। स्यारने स्यारनीको सिखा दिया कि जब कोई शेरकी परेशानी हो तो बच्चोंको रुला देना। जब कभी शेर आता तो स्यारनी बच्चोंको रुला देती। स्यार पूछता कि बच्चे क्यों रोते हैं? स्यारनी बोलती कि बच्चे शेरका मांस खाना चाहते हैं। इस तरहसे शेर भाग जाता। जंगलके अनेक शेरोंने सभा की, सबने सोचा कि ऊपर भींतपर जो बैठा है उसीकी सारी करतूत है, उसे मारना चाहिए। सभी शेर आ गये। उनमें एक लंगड़ा शेर भी था। तय हुआ कि लंगड़ा शेर तो ऊपर चढ़ नहीं पायेगा,

इसलिए नीचे रखो। इसके ऊपर एक मन चढ़ गये। स्यारनीने झट बच्चोंको रुला दिया। स्यार पूछता है कि बच्चे क्यों रोते हैं? तो स्यारनी बोली कि बच्चे बंगड़ शेरका मांस खाना चाहते हैं। बंगड़ा शेर आया, बंगड़ा शेर जिसका सो सब गिर गये। ऐसे ही संकटोंका मूल मोह मिटा कि सब संकट नष्ट हो जाते हैं।

इस तरह सब संकट टलेंगे और शान्ति मिलेगी तो भैया यह अपना ज्ञान जगाओ। तुम स्वयं ज्ञानस्वरूप हो, बाहरमें इच्छाएँ न करो तो अपने आप सुखी हो सकते हो। लोकमें जितने भी जीव हैं उन सबकी मांग है कि आनन्द मिलता रहे, शान्ति मिलती रहे और जितने भी जीव जो प्रयत्न परिणमन करते हैं वह इसलिए कि आनन्द प्राप्त हो। यहाँ तक कि अगर कोई किसीसे लड़े, झगड़े भी तो उस लड़ने झगड़ने वालेका लक्ष्य यह है कि आनन्द उसे मिले। और यहाँ तक कि कोई तेज कषायोंके वशीभूत होकर आत्महत्या भी करनेका यत्न करें तो वहाँ भी उसका लक्ष्य है कि आनन्द मिले और जो धर्म कार्य करते हैं, व्रत करते हैं और तपस्या करते हैं, वे भी इसलिए करते हैं कि उन्हें आनन्द प्राप्त हो। यह सब जीवोंका लक्ष्य है कि उन्हें आनन्द मिले। परिणमन बहुत कर डाले, राज्य कर ले, आरम्भ कर लिया, परिग्रह कर लिया, स्नेह कर लिया, सब कुछ कर लिया फिर भी कहते हैं कि हमें शान्ति नहीं मिली। इसका कारण यह है कि शान्ति पानेका उपाय है आकुलताएँ न बनाना। परन्तु अशान्तिके उपायको करके यह मोही मान रहा कि हम शान्तिके उपायको कर रहे हैं। शान्तिका उपाय क्या है? उपाय जो है सो है, पर यह तो जानना चाहिए कि शान्ति चाहने वाला यह जो भीतरमें है कौन? जो शान्ति चाहता है वह है क्या चीज? इसका उत्तर बड़ा कठिन है और बड़ा सरल है। जब हम बाहर देखा करें तो उत्तर बड़ा कठिन है और जब बाहरी चीजोंको त्यागकर अन्तरकी ओर रहें, अपने आत्मस्वरूपमें विश्राम करके रहें तो उत्तर देना बड़ा सरल है। प्रयोजन यह है कि अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव न किया तो कुछ नहीं किया। यदि अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव हो जाय तो शान्ति प्राप्त हो जाय। वह मैं क्या हूं? जिसके जाननेपर फिर अशान्ति न रहे। वह मैं क्या हूं? उसका उपयोग किसी इन्द्रिय द्वारा नहीं लगता। मनसे भी जब तक काम लूँगा तब तक भी अनुभव न कर पाऊँगा। जो इन्द्रिय मन द्वारा अगम्य है, चित् है, वह मैं हूं। इस मुझमें न रूप है, न रस है, न गंध है न स्पर्श है, यह मेरी आत्मा तो ज्ञानस्वरूप ही नजर आती है। मेरेमें ज्ञान और आनन्द भरा है। ज्ञान और आनन्दसे परिपूर्ण यह मैं आत्मा हूं।

ऐसा उपयोग हो तो अहंकार मिट जाता है। भिन्न-भिन्न चीजें मैं नहीं हूं। यदि हम अहंकार करते हैं और अहंकारमें ही प्रवृत्ति रखते हैं तो शान्ति नहीं मिलती है। शान्ति

है फिर भी परपदार्थोंमें अहंकार न करो। शान्ति प्राप्त करनेके लिए भी शुद्ध ज्ञान करना होगा। जैसी जो चीज है उसे वैसा मान लेनेसे ही आकुलताएँ समाप्त हो जाती हैं। ये समस्त जगतकी चीजें विनाशीक हैं, सब नष्ट हो जाने वाली हैं। अपने घरमें ऐसी जो चीजें मिली हैं सब नष्ट हो जाने वाली हैं। जिसका समागम है उसका वियोग भी जरूर होगा। जिसका संयोग है उसका वियोग जरूर होगा। प्राय जरूर जानते रहे कि जहाँ संयोग है नियमसे वियोग जरूर होगा। संयोगमें भी अशान्ति है और वियोगमें भी अशान्ति है। जो मनुष्य २४ घंटे मोहमें रागमें पड़ा रहता है उसको आजीवन अशान्ति ही रहती है। दो महीने पहले से अगर किसी व्यक्तिको हम जानते हैं कि यह बीमारी असाध्य है इसकी तो मृत्यु ही होगी और जब वह मर जाता है तो उसके मर जानेपर ज्यादा दुःख नहीं उत्पन्न होता है। आप तो पहिलेसे ही जानते थे कि वह गुजर जायगा, इसलिए ज्यादा दुःख नहीं होता है। इसी प्रकार इस असार जगतमें हम यथार्थताको जान जायें कि ये समस्त चीजें भिन्न हैं, जुदा चीजें हैं, भीतरमें ऐसा उपयोग बने तब शान्ति मिलती है, नहीं तो शान्ति नहीं मिलती है। जो जैसी चीज है उसे वैसा मानना यही धर्म है।

अभी देखो बहुतसे लोगोंको जरा-जरासी बातोंमें गुस्सा आ जाता है। बच्चेने कुछ कह दिया, बच्चेने मेरा कहना नहीं माना इसीसे गुस्सा आ गया। कुछ कहना चाहते हैं कहते हैं और वह वैसा नहीं कर सका तो गुस्सा आ गया। उसके ऐसी बात पैदा हो गयी बस वह दुःखी हो गया। क्यों दुःखी हो गया इसलिए कि उसने कहना नहीं माना। भैया! क्यों दुःख मानते हो ये जीव सब स्वतन्त्र हैं, अपने विचारके अनुसार चलते हैं, अपने ही परिणमन से चलते हैं तुम वस्तुस्वरूपके विरुद्ध भाव क्यों बनाते हो? इनकी जुदी जुदी सत्ता है और ये समझ रहे हैं कि मैं इनसे मिल गया हूँ, जब मिल गया हूँ तो जो चाहूँ सो होना चाहिए। ऐसी बातको मान रखा है। यदि ऐसी बात नहीं होती तो वे दुःखी हो जाते हैं। जो जैसा है उसे वैसा न माननेसे ही दुःख है। एक दृष्टान्त है कि किसी गाँवमें एक किसान किसानिन थे। किसानको कुछ अहंकार था और किसानिन शांत थी। किसानिन चतुर भी थी। १०-१२ वर्ष विवाहको भी हो गए थे फिर भी वह किसान किसानिनको पीट न सका था। बहुतसे लोग ऐसे होते हैं नीची जातियोंमें, जो कि अपनी स्त्रियोंको मारते हैं। स्त्रीको मारनेमें ही अपनी बहादुरी समझते हैं। तो वह किसान भी बहुत दिन हो गये थे, पीट न सका था, तो पीटनेके लिए उसने सोचा कि क्या उपाय करूँ? जेठ माह का महीना था, खेत जोतता था। स्त्री भी उन दिनों रोज दोपहरको खेत पर खाना लाती थी। जब स्त्री दोपहरको खाना लायगी तो बैलोंको उल्टा जोतूंगा, ऐसा विचार किया। एक बैलका

मुंह पूरबमें और दूसरेका पश्चिममें कर दिया और जुवा हल रख दिया, सोचा कि ऐसा देखकर स्त्री कुछ तो कहेगी। स्त्रीको तब पीट लूंगा। पर स्त्रीने ऐसा मौका नहीं आने दिया। उसने समझ लिया कि आज पीटनेके डौल-ढालमें है। वह बेवकूफ न थी, बोली चाहे सीधा जोतो चाहे टेढ़ा, इससे मुझे क्या मतलब, मेरा तो काम केवल खाना देनेका है। यह कहकर खाना देकर चली गयी।

किसान देखता ही रह गया। वह अब भी न पीट सका। तो भैया! यहाँ कोई किसीको दुःखी नहीं करता। ये जीव खुद ही ख्याल बनाकर दुःखी होते हैं। अगर वे अपना ख्याल बनाना छोड़ दें, और अपना सच्चा ज्ञान कर लें तो सुखी हो जायेंगे। शान्तिका कारण क्या है? जो चीज जैसी है उसे वैसा ही मानना शान्तिका कारण है। घरके ये जो जीव हैं वे आपके नहीं हैं। कोई बतला दे ये स्त्री पुत्र आदि मेरे हैं। कोई युक्ति बतला दें कि ये मेरे ही हैं। अरे वे सब जुदा-जुदा हैं, भाग्य जुदा जुदा है। उनसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है। वे अकेले ही आये हैं और अकेले ही चले जावेंगे। सच तो यह है कि इस आत्माका दूसरा कोई नहीं है। इस आत्माका तो आनन्द ही स्वरूप है। यथार्थ बात तो यह है कि भीतरमें ऐसा ख्याल बने कि मैं आत्मा आनन्दस्वरूप हूं, मेरा स्वरूप ही आनन्दमय है, मेरा स्वरूप ही सारा वैभव है, ऐसा विचार बने तो यही शान्तिका मार्ग है। यदि ऐसा विचार नहीं बनता है तो यही अशान्तिका कारण है। मोह करते हैं और चाहें कि शान्ति हो जाय तो शान्ति नहीं हो सकती है। मोह गृहस्थीका छूट नहीं सकता क्या? मोह छूटता है और राग रहता है। मोह और रागमें अन्तर है। मोह तो अज्ञानसे सम्बन्ध रखता है और राग प्रीतिपरिणाम के मायने है। ज्ञान होते ही मोह मिट जाता है। ज्ञानको लक्ष्यमें लेकर यह मैं हूं, यह मेरा स्वरूप है, ऐसा यदि भाव लिए रहे तो इसे ही यथार्थज्ञान कहते हैं। राग करना तो राग है और रागमें राग करना मोह है।

जैसे एक रईस पुरुष बीमार पड़ गया तो उसे कैसा-कैसा आराम देते हैं। सजा हुआ कमरा, सुन्दर पलंग कोमल गद्दा। जो कोई आते हैं। अच्छी तरहसे लोग उससे बोलते हैं। किस प्रकार उनसे बात करें जिससे इनका मन बहले, ऐसा सोचकर लोग अनेकों यत्न करते हैं, मनको बहलाते हैं। ऊपरसे देखा होगा, कितना आराम रहता है। रईसके पास औषधि भी रखी है। यदि उनके पास सुन्दर गद्दा न हो तो वे आरामसे सो नहीं सकते हैं, देखनेमें यह मालूम होता है कि रोगी यह आराम चाहता है पर इस आरामको नहीं चाहता। अगर इनसे पूछा जाय तो कहेंगे कि बीमारी हटे, हमें अब नहीं चाहिए, यह आराम नहीं चाहिए मैं तो चलना फिरना चाहता हूं। उसे आराममें राग नहीं है। गृहस्थ भी केवल मोहसे राग

भी दुःखी है। गृहस्थी मोह करते हैं, घरके बच्चोंका लालन-पोषण करते हैं, अनेक विषयोंकी बातें आती हैं। किन्तु ज्ञानी गृहस्थ इनमें फंसकर भी अन्तरमें इन्हें नहीं चाहता है। ये राग द्वेष बने रहते हैं, इसीसे मेरेमें अशान्ति रहती है, इसका स्पष्ट विश्वास रहता है। जैसी जो बात है वैसी न समझना बस इसीमें अशान्ति है। अब देखिये यह देह मेरी चीज है क्या ? यह देह अगर मेरी होती तो मरने पर मेरे साथ जाती कि न जाती। यहां २०-४०-६०-७० वर्ष हुए यह शरीर छूट जाता है और जला दिया जाता है। शरीर मेरी चीज नहीं। मैं तो ज्ञानरूप हूं, यह शरीर तो जड़ रूप है। यह मेरा नहीं है। यदि मैं मान लूं कि यह शरीर मेरा है तो अशान्तिका कारण है। किसीने गाली दी, गाली बहुत खराब लग गयी, क्यों खराब लग गयी ? देहको माना कि मैं हूं, और इसने मुझे गाली दी। जब देहको मानूं कि मैं हूं तो देहमें अहंकार किया, तभी तो दुःख महसूस किया। तो जितना दुःख होता है वह सब अज्ञानका होता है। ज्ञानको बढ़ानेकी कोशिश करना है, मिटानेकी कोशिश नहीं करना है। सब चीजें स्वतन्त्र हैं, अलग हैं, भिन्न हैं, उनको कैसे मानूं कि मेरी हैं ? उन पदार्थोंमें मोह ममता करनेसे ही अशान्ति हो जाती है। यदि इस मोह ममताको त्याग दिया जाय तो अशान्ति दूर हो जायगी तो भीतरसे इस अशान्तिको मिटाना चाहिए और उसको मिटाकर नीतिमें आना चाहिए। जो अपने प्रतिकूल है दूसरोंके प्रति भी वह न करो। अपनेको अगर कोई बुरा कहता है तो बुरा लगता है तो तुम भी बुरा न कहो। हम अगर किसीको झूठ कहें तो बुरा लगता है अतः तुम भी किसी को झूठ न कहो। तुम्हारी मां-बहिनको बुरी दृष्टि से कोई देखे तो बुरा लगता है तो तुम भी किसीकी मां-बहिनको बुरी दृष्टिसे न देखो। हमें किसी भी प्रकारसे किसीको धोखा नहीं देना चाहिए। विषयोंमें तृष्णा न करो। विषयोंमें तृष्णा करना यही विपदा है।

एक लकड़हारा था। ऐसी ही सभा थी, ५ पापोंके त्यागका उपदेश था—(१) हिंसा, (२) झूठ, (३) चोरी, (४) कुशील, (५) परिग्रह। ये पाप हैं। किसीको न सतावो, झूठ न बोलो, चोरी न करो, किसी भी स्त्रीको बुरी दृष्टिसे न देखो, ब्रह्मचर्यसे रहो।

उस लकड़हारेने यह सुनकर सोचा कि मैं हिंसा तो नहीं करता। हां हिंसा केवल करता हूं तो जंगलमें गीली लकड़ी काटता हूं, अच्छा अब मैं सूखी ही लकड़ी काटूंगा। झूठ तो मैं बोलता नहीं। केवल भावमें १० आने, ९ आने, ८ आने बोलता हूं। अच्छा मैं ८।। आनेकी लकड़ी बेचूंगा और एक ही ।।) की बात बोलूंगा। चोरी तो मैं करता नहीं, हां केवल २ पैसे चुंगीमें बचा लेता हूं, तो अब मैं नहीं बचाऊंगा। अणु ब्रह्मचर्यसे रहता ही हूं, किसी दूसरेकी स्त्रीपर बुरी दृष्टि नहीं डालता। अच्छा अब मैं सदा पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करूंगा।

कुमारी लगोंसे भी ब्रह्मचर्य रखूँगा। परिग्रहकी बात यह है कि रोज आठ आने कमाऊँगा। २ आने खानेके लिए, २ आने आफतसे बचनेके लिए और ४ आनेमें गुजर-बसर करूँगा। अब वह जंगलसे सूखी लकड़ी लाए और उनको बेचकर गुजर-बसर करे। एक दिन वह लकड़हारा एक सेठकी हवेलीके नीचेसे निकला। सेठके यहाँ रसोईमें लकड़ियोंकी जरूरत थी। रसोईदार घरसे निकला, बोला—कितने दाम लोगे? बोला—८ आने। तो रसोइया बोला—५ आने लोगे, नहीं ८ आने, ६ आने लोगे? नहीं। चल दिया। कुछ दूर गया, नौकर बोला अच्छा, अच्छा लौट आओ। लौट आया। बोला—७ आने लोगे, ७॥ आने लोगे। लकड़हारेने गुस्सेमें आकर कहा—किस बेईमानका तू नौकर है? सेठजी सुन रहे थे कि हमको बेईमान कहता है। सेठने पूछा कि हमको बेईमान क्यों कहता है? तब उसने कथा सुनायी। बताया मैंने ५ पापोंका व्याख्यान सुना, इसलिए इस तरहसे रहता हूं। मैंने जो बेईमान कहा सो इसलिए कि जो जिसके संगमें रहता है वह वैसा ही हो जाता है। मुझे बुलाया कि अच्छा अच्छा लौट आओ। इसका अर्थ यही हुआ ना कि ८ आनेमें मंजूर है। फिर कहता कि ७ आने लोगे, ७॥ आने लोगे। सेठने सोचा कि मैं भी व्याख्यानमें जाता था, पर कुछ न किया। यही सोचकर उसने लकड़हारेका सम्मान किया और बोला—तुम देवता हो, देवताके माने यह कि जिसका हृदय शुद्ध हो गया, किसीसे विरोध नहीं है, समान भावसे रहता है, वही देवता है। वह सेठ उस लकड़हारेको काफी दूर तक छोड़ने भी आया। यहाँ पर यह बतलाया कि जितने भी जीव हैं सब जीवोंको समान दृष्टिसे देखो तब ज्ञानमें प्रगति होती है। जैसे कहते हैं कि सबमें भगवान हैं। सब जीवोंमें दयाका भाव लाओ, किसी भी जीवको तुम शुद्ध चैतन्यस्वरूपकी दृष्टिसे देखो। जो गड़बड़ हो गया है, पर्यायमें रहता है, जो जन्म मरणके चक्करमें रहता है, किसी तरहकी खटपट करतूत करता है ये सब भ्रमवश विपत्तियोंकी बातें हैं। ये सब जीव प्रभुके जैसा स्वरूप वाले हैं। उन सब जीवोंका लक्षण शुद्ध चैतन्यस्वरूप है। और जितने भी ये नृत्य है वे सब उपाधिकी वजहसे हैं। इसलिए पेड़, पत्ती, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु सबमें देखो वही शुद्ध चैतन्यस्वरूप समाया हुआ है। यदि अपना शुद्ध चैतन्य स्वरूप देखनेमें आ जाय तो उसीको कहते हैं सही ज्ञान। सबमें समानताका भाव अविरोधका भाव जागृत हो, उसीमें देवताका निवास है। यह तो लोकप्रतिष्ठाकी बात नहीं, यह ज्ञानके आश्रितकी बात है। अपने आपको अपने आपमें मोड़ लो तो समझो कि सब कुछ वैभव पाया। यदि यह न हो सका, बाहरमें ही भटकते रहे तो ज्यों के त्यों ही रह जाओगे। बाहरसे कितना ही अनुभव कर लो कोई तुम्हारी चीज नहीं है। आत्मस्वरूपकी रुचि होना चाहिए। बाह्यपदार्थोंकी भीतरसे रुचि न होना चाहिए। अपने आपके हितकी बातें न कीं तो अनंत

नहीं रहेगा ।

एक बाबू साहब कलकत्ता जा रहे थे । एक स्त्री बोली—हमारे मुन्नाको एक खिलौना ले आना, दूसरी स्त्रीने यही कहा । इसी प्रकारसे ३-४-१० स्त्रियोंने यही कहा । एक बुढ़िया आयी । कहा—बाबूजी २ पैसे लो, हमारे मुन्नाको एक मिट्टीका खिलौना ले आना । बाबूजी कहते हैं कि बुढ़िया माँ, मुन्ना तेरा ही खिलौना खेलेगा । ५-७ स्त्रियाँ आयीं, किसीने कुछ कहा, किसीने कुछ, पर यों ही हवाई बातें उड़ाती रहीं, नकद तो तुमने ही दिया । इसी तरह ज्ञानको बना लो, उसमें ही आनन्द मिलेगा । यदि ज्ञान न बना सके तो आनन्द न मिलेगा ।" बाह्यपदार्थोंमें कितना ही भटक लो पर ज्ञानके सिवाय किसीमें आनन्द न रहेगा । भोजन करते हैं तो उसके स्वादसे आनन्द नहीं मिलता है । आनन्द भोजन करने वाली चीजसे नहीं मिलता है । उस चीजके प्रति ज्ञान बना लेनेसे आनन्द मिलता है ।

जैसे कोई भोजन करता हो, सुख मानता हो तो भोजन करनेसे आनन्द नहीं आता । उस भोजनके प्रति ज्ञान करनेसे आनन्द आता है । परमार्थमें तो कल्पनाओंसे भी आनन्द नहीं मिलता है । जो शुद्ध दृष्टि है, वह आनन्दकी जननी है । वह ज्ञानसे ही रहती है । ज्ञानमें ही आनन्द है, नहीं तो बड़े-बड़े महापुरुष ६ खण्डकी विभूतिको त्यागकर जंगलमें क्यों चक्कर काटते ? इसलिए एक ही निर्णय करो, अपने आपको देखो तो शान्ति मिलेगी, अपने ज्ञानसे ही आनन्द होगा । सच्चा ज्ञान अपने स्वरूपमें है ।

माँस, मदिरा एवं बलि देनेका त्याग मुकुन्दीलाल हरिजन, पल्टूलाल हरिजन, गोविन्द हरिजन, चतुरी हरिजन, पन्नालाल जी यादवने किया ।

शुभः कषायमान्द्येनाऽशुभस्तीव्रकषायतः ।
अकषायेन शं नित्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥२१॥

क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय हैं । क्रोध गुस्सेको कहते हैं, मान घमंडको कहते हैं, माया छल-कपट आदिको कहते हैं और लोभ तृष्णाको कहते हैं । ये ४ तरहके कषाय हैं, जो इस संसारी जीवमें पाये जाते हैं । यह अन्दाज कर लो, क्रोध करना सब जानते हैं, घमंड भी सब करते हैं, छल-कपट भी क्षण-क्षणमें करते हैं । किसीमें कम कषाय हो, किसीमें ज्यादा कषाय हो, पर संसारमें रहने वाले हम और आप सभी जीवोंमें ये ४ कषाय हैं । ये चारों कषाय जब अनन्तानुबंधी होते हैं तो स्वयं गुस्सा अधिक तेज होता है, घमंड अधिक होता है, छल, कपट भी तीव्र होता है, लोभकी मात्रा भी बड़ी हुई होती है तब उपयोग अशुभ होता है, खोटा होता है और इस तेज कषायका क्या काम होता है ? गुस्सा हो तो लड़ाई करना, दूसरोंको दबाना, मारना, पीटना तथा और-और भी बातें होती हैं ना ?

जब घमंड अधिक होता है तो दूसरोंको नीचा दिखाना, आप ऊँचा बननेकी कोशिश करना तथा ज्ञान न भाना, ये सब बातें होने लगती हैं।

जब छल कपट होता है तो किसीका ऐसे ही दिल दुःखे, किसीका काम बिगड़े इसकी परवाह ही नहीं होती; बस, अपना काम बन जाय, ऐसे कुढ़ंगकी बन जाती है। मोहमें भी यह बात होती है तो ये तो सब खोटे उपयोग हैं, अशुभ उपयोग हैं। कषायकी तीव्रतासे अशुभ उपयोग होता है। इस अशुभ उपयोगका फल संकट दुर्गति ही होता है। ये सब जो दीन दुःखी असंज्ञी आदि प्राणी हैं, अशुभ उपयोग करनेके फल हैं। जबसे कषाय मंद होते हैं तो कषायोंसे कुछ प्रवृत्ति हटती है। भगवान्‌की भक्ति करना, संयम करना, उपकार करना, क्षमाभाव रखना, दूसरोंकी सेवा करना ये सब कषाय मंदतामें होते हैं। कषायकी मंदतामें होने वाली इन प्रवृत्तियोंको शुभ उपयोग कहते हैं। कषाय जब तक हैं तब तक फलमें इस प्रकारका विकार होता है। शुभ उपयोग भी विकार है और अशुभ उपयोग भी विकार। अशुभ परिणाममें विशिष्टता रहती है और शुभपरिणाममें संक्षिप्तता रहती है।

आपके शुभोपयोगका फल है देव बनना सुमानुष बनना सो शुभोपयोगके फलमें हुआ क्या? देव आदि भी तो संसारमें ही हैं। कषायका फल है भगवान्‌से न मिलने देना, पर जब अपने स्वभावमें दृष्टि जाय तो भगवान्‌से भेंट हो। स्वभावसे ही आत्माका काम कषाय करना नहीं है। जीव किसी दूसरेका निमित्त पाकर कषाय करता है। किसी दूसरेका निमित्त पाये बिना कषाय नहीं करता है। यह आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है, वह ज्ञानस्वरूप स्वयं ज्ञान-स्वरूप है। उसे कषायरहित कह लो चाहे कषायरहित स्वभाव कह लो तो उससे इस तरह बुद्धि जगेगी कि आत्मामें कषाय थी और अब नहीं है, सो आत्मामें कषायस्वभाव ही नहीं है। उसको कषायसहित भी नहीं कहते और कषायरहित भी नहीं कहते। आत्माका स्वभाव न कषाय करना है, न कषायरहित है किन्तु ज्ञानस्वभाव है। जाननेका ही काम है। जो है उसे ही बताना चाहिए, उसे सब कुछ कहा जाता है। जो नहीं है उसे बतानेसे वस्तुका स्वभाव नहीं जाना जाता है। जो है वह पदवी दी जाती है। आत्माका स्वभाव ज्ञान है जो कि कषायरहित स्वरूप ही है। कषाय इसमें है ही नहीं। इसलिए कषायरहित आत्माके स्वभावके दर्शन होना, अवलम्बन होना, उसकी ओर झुकना तो कषायरहित प्रवृत्ति हो जायगी और कषायरहित परिणमन हो जायगा। शुद्ध उपयोग होता है तो शुद्ध उपयोग होनेसे उसे निर्वाण मिलता है, मोक्ष मिलता है। तीन प्रकारका उपयोग होता है। अशुभ उपयोग तो तीव्रकषाय कहलाता है। जैसे परके अवगुणोंसे प्रीति पैदा होती है, परकी स्त्रीमें ही दिल लगा रहता है, अनेक घातक व दुराचारमय परिणाम होते हैं। शुभोपयोग मन्द-

कषाय कहलाता है। भगवान्‌की पूजा करना, स्वाध्याय करना, तपस्या करना यही सब शुभोपयोगका फल है, कषायकी मंदताका फल है। विषयभोगोंमें ही प्रवृत्ति रहे यही कषायों की तीव्रताका फल है।

जो सत्पुरुष होते हैं, वे सब कषायोंसे दूर रहते हैं और अपनेको कषायरहित आनन्दमय ज्ञानमय अनुभव करते हैं। ऐसी निजआत्मदृष्टिका होना, शुद्धस्वभावका आश्रय करना शुद्धउपयोग है। देखो आप सोच सकते हैं कि जो लोग घरमें रहते हैं उनका समय किसी तरहसे कट जाता है। बच्चे हैं, उनको खिलाया पिलाया, बड़े हुए, उनको पढ़ाया लिखाया, उनका सारा समय यों ही निकल जाता है, वे अपने ज्ञानस्वरूपकी परख नहीं कर पाते हैं और मौजमें समय गुजार देते हैं। वे व्यक्ति जो जंगलमें रहते हैं उनका जीवन व समय भी अच्छी तरह से कैसे कट जाता है तो उनके पास क्या चीज होती है जिससे उनका जीवन अच्छी तरहसे कट जाता है? उनके पास है उनके ज्ञानस्वरूपकी परख। वे अपने आनन्दमय स्वरूपमें डूब जाते हैं और अपने ज्ञानस्वरूपका परिचय कर लेते हैं। वे जंगलमें रहने वाले मौज करके नहीं प्रसन्न रहते हैं, वे अपने आत्मस्वरूपको ही देखकर प्रसन्न रहते हैं। वे अपने ज्ञानस्वरूपको देखते रहते हैं, केवल देखन जाननहार ही वही रहते हैं।

अपने ज्ञानस्वरूपका परिचय होनेपर, ज्ञानस्वरूपको ही निरखने पर वे आनन्दमग्न हो जाते हैं। देखने वाले लोग कहते हैं कि वे जंगलमें कितनी कठिनाइयोंसे रहते हैं, उनका जीवन कैसे पार होता होगा? अरे अपने आनन्दमय स्वरूपको देखो और अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होओ। एक ज्ञानकी यह बात है; यह विश्वास होना चाहिए कि जगतमें जितने भी दुःख होते हैं वे सब ख्याल बनानेसे, कल्पनाएँ करनेसे होते हैं। बच्चे, स्त्री इत्यादि ने कहना नहीं माना, काम बिगड़ गया, भीतरमें ऐसी कल्पनाएं करके वे दुःखी होते हैं। किसी दूसरेकी चेष्टाओंसे कोई दुःखी नहीं होता है, वह अपने आपमें ही ख्याल बनाकर दुःखी हो जाता है। अरे तू तो स्वयं आनन्दस्वरूप है, आनन्द भी कहीं बाहरसे नहीं लाना है। प्रेमव्यवहार करनेसे आनन्द आता है, यह बात न सोचो। आनन्द केवल मेरे विचारोंसे ही मिलता है। हम अपने विचारोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं कर पाते। अशुद्ध विचारोंसे ही दुःख मिलता है। दुःख देने वाला दूसरा कोई नहीं है। केवल ख्याल बनाकर ही दुःखी होते हैं। यह सब ज्ञानकी ही कल्पनाएँ हैं, ज्ञानका ही चमत्कार है, ज्ञानकी ही लीला है। सुखी दुःखी होना, पुण्य पाप करना सब ज्ञान पर ही निर्भर है, ज्ञानका ही सारा चमत्कार है, दूसरे कोई कुछ नहीं करता। इसलिए अपने आपके ज्ञानस्वरूपको देखो तो आनन्द प्राप्त हो सकता है।

बाहरी चीजोंसे ही ज्ञान बढ़ाना, बाहरी चीजोंमें ही ठहरना यह तो व्यर्थ है। बाहर की इष्टिसे तो मिलेगा कुछ नहीं, केवल आकुलता ही भोगनेको मिलेगी। एक पुराणमें दृष्टान्त आता है कि एक भाई गुरुके पास पहुंचा। बोला—महाराज, मेरी आत्माको ज्ञान बतला दीजिये। गुरु कहते हैं कि उस नदीमें जावो, एक मगर रहता है, वह तुम्हारी आत्माका ज्ञान बतला देगा। नदीमें मगरके पास जाकर वह कहता है कि भाई मुझे मेरी आत्माका ज्ञान बता दीजिए। मगर कहता है—भाई मुझे तेज प्यास लगी है, थोड़ासा इस लोटेमें उस पासके कुवेंसे जल ले आइए। जल पी लें फिर बतायें। वह पुरुष कहता है कि मगरराज तुम तो बेवकूफ नजर आते हो। गुरुने बताया कि मगरराजसे जाकर पूछो वे बता देंगे। आप स्वयं पानीमें डूबे हुए हैं फिर भी कुवेंसे पानी मँगा रहे हैं। आप कहते हैं कि एक लोटा पानी कुवेंसे ले आवो। मगर कहता है कि इसी तरह बेवकूफ तुम भी हो, तुम स्वयं ज्ञानस्वरूप हो, ज्ञानको छोड़कर तुम्हारेमें कुछ नहीं है, फिर भी तुम ज्ञानको पूछने आये हो। सो भैया! जब तक यह विश्वास न बनेगा कि मैं प्रभुका जैसा स्वरूप वाला हूं, तब तक कल्याण न होगा। कहते हैं कि प्रभु तो घट-घटमें विराजमान हैं, घट-घटमें प्रभु हैं। तो अपना महत्त्व जब तक समझमें न आवे कि मैं ही अपने लिए सब कुछ हूं, मेरे लिए मैं ही हूं, जब तक अपना पुरुषार्थ समझमें नहीं आता तब तक कुछ न कर सकोगे। अपने परमार्थस्वरूपको देखो, अपना स्वरूप अपने ज्ञानमें आना चाहिए।

एक पुरुष था। उसे उसकी स्त्रीने बहुत समझाया कि अमुक पाप छोड़ दो, कुछ न कुछ धर्मके काम कर लो, पर वह न करता। उसने पतिको एक ठाकुरकी मूर्ति दे दी और कहा कि इसकी रोज पूजा कर लिया करो व २४ घंटेके लिए पाप छोड़ दिया करो। वह २४ घंटेमें एक बार पूजा करता था। और २४ घंटेके लिये पाप छोड़ देता था। एक बार उसने देखा कि जो चावल पूजन करनेमें चढ़ते थे उन्हें चूहा खा जाता। उसने समझ लिया कि चूहा इस देवसे भी बड़ा है। वह उस चूहेकी पूजा करने लगा। ठाकुरकी मूर्तिकी पूजा छोड़ दी। एक दिन एक बिल्ली चूहेपर झपटी तो उसने समझा कि बिल्ली बड़ी है तो वह बिल्लीकी पूजा करने लगा। एक कुत्ता बिल्ली पर झपटा तो उसने कुत्तेको सबसे बड़ा समझा तो उस कुत्तेकी पूजा करने लगा। एक दिन स्त्री रोटी बना रही थी, रसोईमें वह व्यक्ति भोजन कर रहा था। कुत्ता रसोईके अन्दर घुस गया। स्त्रीने एक बेलन कुत्तेके मारा। अब वह पुरुष स्त्रीको सबसे अधिक बड़ा मानकर पूजा करने लगा। स्त्रीने एक बार खाना बनाया तो दाल में नमक ज्यादा डाल दिया। बोला—यह नमक दालमें क्यों ज्यादा हुआ? स्त्री बोली—हाथ ही तो है, ज्यादा पड़ गया तो क्या करें, थोड़ासा गर्म पानी डालकर दालमें मिला लो,

ठीक हो जायगी। यह जवाब सुनकर उसने स्त्रीको २-३ तमाचे जड़ दिये, वह रोने लगी। अब उसने समझा कि मैं ही सबसे बड़ा हूं, वह अपनी पूजा करने लगा। यह तो मोटा कथन है, पर शान्ति और आनन्द तो खुदमें ही है। चाहे जितनी जगह खोज आवो शान्ति और आनन्द कहीं बाहरमें नहीं मिलेगा। भैया ! यदि धर्मसाधना करो तो तिरोगे। भगवानकी सच्ची भक्ति हो तभी धर्मसाधना बढ़ सकती है।

मनोवाक्कायवृत्तीनां निवृत्तेरुपदेशनम्।

स्वस्थित्यै स्वस्थितौ शान्तिः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३०॥

दुःखोंका कारण मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति है। मनकी प्रवृत्तिसे, वचनके व्यवहारसे और शरीरकी चेष्टाओंसे कोई न कोई प्रकारके क्लेश होते हैं। इसलिए ऋषि देवोंने इन तीनों प्रवृत्तियोंको हटानेका उपदेश दिया है। मनका निरोध करना, वचनोंका बन्द करना, शरीरकी चेष्टाएँ बन्द करना, इस तरहसे जो तीन उपदेश दिये हैं वे इसलिए दिये हैं कि यह आत्मा बाहरकी बातोंसे हटकर अपने आपमें रम जाय। गृहस्थोंको उपदेश है कि वह मनसे प्रीति चाहे रखें, वचनोंसे व्यवहार चाहे रखें, पर वे दूसरोंकी सेवा और दया करें, सबका भला सोचें। मनकी वृत्ति अच्छी क्या कहलाती है कि सब जीवोंमें सुखी होनेकी भावना हो, सब जीवोंमें सद्बुद्धि उत्पन्न होनेकी अभिलाषा हो, सब जीव सुखी हों, सब जीवोंमें सद्बुद्धि हो और समता जगे, ऐसी भावना करनेका नाम मनकी वृत्तिका अच्छापन कहलाता है। सद्बुद्धि बिना ही जगतमें विवाद और कलह उत्पन्न होते हैं। राष्ट्रकी कलह हो, समाजकी कलह हो, घरकी कलह हो ये सब सद्बुद्धिके अभावसे होते हैं। सो मनकी समीचीन वृत्ति रखे, ऐसी भावना करें कि सबमें सद्बुद्धि उत्पन्न हो। विरोधी हो, मित्र हो सब जीवोंके प्रति सद्बुद्धिकी भावना करो, सो मनकी सद्बुद्धि कहलाती है। जब किसीके मनमें दुर्बुद्धि उत्पन्न होती है तब ईर्ष्या और क्रोध उत्पन्न होता है। सो दुर्बुद्धि वाले चूँकि अपनी-अपनी बुद्धिको खो बैठे हैं इसलिए उन पर ही विपत्तियाँ आती हैं। इसी कारण लोकमें यह प्रसिद्धि है कि जो दूसरोंका बुरा विचारता है उसका बुरा पहिले होता है। यह बात बिल्कुल ठीक है क्योंकि दूसरोंका बुरा विचारनेसे दुर्बुद्धि हुई, सद्बुद्धि नहीं हुई। दुर्बुद्धि होनेसे आत्माका भविष्य खराब होगा। चाहे लोकदृष्टिसे पुण्यका उदय होनेके कारण दूसरों पर अन्याय अत्याचार करें और उसमें सफलतायें मिलें, पर अंतिम परिणाम इसका पतन कार्य ही है। दुर्बुद्धि होने पर अपनी सद्बुद्धि नष्ट हो जाती है यही सबसे बड़ा टोटा है, सबसे बड़ा नुकसान यही है। इसलिए अपनी सुख शान्तिके वास्ते यही आत्मदेवसे प्रार्थना करो कि हे प्रभु मेरी सद्बुद्धि जागृत रहे। बुद्धि बिगड़ी कि सब बिगड़ा। सो अपने मनका विचार ऐसा बनाओ कि जगतके सभी जीव सुखी हों, उनमें सद्बुद्धि जागृत हो, सब न्यायपूर्वक रहकर सुख प्राप्त करें,

[illegible] ही कहते हैं मनकी सद्बुद्धि । राष्ट्र क्यों दुःखी है कि मनमें [illegible] भर रखी हैं । अधिकतर मनुष्योंका मन दुर्भावनाओंसे ग्रस्त हो गया है, इस कारण सब मनुष्य [illegible] हैं । यदि लोगोंका विचार शुभ स्वच्छ हो तो विपदाओंका कोई कारण नहीं है । घरमें हो, गांवमें हो हम आपके प्रति बुरा विचारते हैं, आप हमारे प्रति बुरा विचारते हैं, मनसे मन नहीं मिलता, एक दूसरेको नहीं सुहाते—ऐसी दृष्टि आपकी हो जाती है तो सब अपने अपने में बैठे हुए दुःखी हो रहे हैं । मिलता क्या है दूसरोंका बुरा विचार करनेसे, केवल अहंकार । जब तक दूसरोंका बुरा विचारोगे तब तक लाभ कुछ भी नहीं मिलेगा । दूसरोंका बुरा सोचने से कोई मुनाफा मिलेगा क्या ? कोई भी तो मुनाफा नहीं मिलेगा । उल्टा मन बिगाड़ लेनेसे तो अपनेको विपत्तियोंमें फंसना होगा, कर्म बन्धनोंमें फंसना होगा । कर्मबन्धनोंमें फंसने से आकुलताएं आयेंगी । इसलिए अपनेको पवित्र रखने के लिए अपने प्रभुके स्वरूपको समझो प्रभुके स्वरूपके समान अपने स्वरूपको भी समझो । इसमें किसी प्रकारका दुर्भाव न आवे, ऐसा मनमें भाव बने, यही ज्ञानकी बात है । ऐसा ज्ञान गृहस्थीके भी होता है । यदि कोई शत्रु बनकर तुम्हारा आवे, धन हड़प करने आवे तो उसका भी मुकाबला करो । दुश्मनका मुकाबला करते हुए उसके प्राण चले जायें तो भी सम्यग्दृष्टिकी भावना बुरी नहीं होती है । इतना तक कर लेने पर भी अन्तरमें उसके प्रति सद्भाव ही रखा है । श्रीराम भगवान गृहस्थावस्थामें रावणसे लड़ रहे थे और काफी विजय प्राप्त कर ली, रावण असहाय हो गया, तब रामने यह कहा कि ऐ रावण ! अभी कुछ नहीं बिगड़ा, सीताको वापिस कर दो और तुम अपना राज्य करो । मगर रावणकी बुद्धि खो गयी, दुर्बुद्धिने मनको जकड़ लिया । वह अहंकारसे परिपूर्ण था । रावण अपने मनमें कहता है कि यदि रामको जीते बिना सीताको यों ही दे दिया तो लोगोंमें मेरी इज्जत खराब होगी । लोग यह समझेंगे कि घबड़ाकर, परास्त होकर, हार मानकर रावणने सीताको वापिस कर दिया । उसका उस समय यह सोच हो गया था कि मैं रामको जीत लूँ, रामपर विजय प्राप्त कर लूँ, राम हार जाए, ऐसी स्थिति करके फिर मैं सीताको वापिस दूँ तो मेरी दुनियामें बड़ी इज्जत रहेगी । ऐसा सोचकर सीताको वापिस देनेके लिए राजी नहीं हुआ । अन्तमें क्या हुआ कि रावणकी मृत्यु हो गयी ।

जब दुर्भावसे मन जकड़ जाता है तो सही रास्ता क्या है इसका ख्याल भी नहीं आता है । वह अपने आपको बिल्कुल भूल जाता है । इसलिए सबसे बड़ा धन है बुद्धिका व्यवस्थित रहना । कोई मनुष्य पागल हो, दुःखी हो, अटपट बकता हो, यहां वहां डोलता फिरता हो । क्यों इतना अटपटा हो गया है इसलिए कि अपनेको बिगाड़ लिया है । उसके खराबी क्या आयी कि बुद्धि बिगड़ गई, बुद्धि चंचल हो गयी, [illegible] हो गयी, इसीलिये

संकट है पागल होना। पागल होनेमें कितने दुःख हैं इसका तो देखने वाले अन्दाज कर सकते हैं। जिसका ज्ञान ठिकाने नहीं है वह अपना भी दुःख क्या जाने? केवल सोचते ही बकते हैं। पागलका जीवन तो बेकार है। सभी लोग अनुभव करते हैं कि पागल है, सिरी है, इसका जीवन बेकार समझते हैं। तो भैया! यदि किसीका जीवन अधिक अव्यवस्थित हो गया तो उसने भी पागलका रूप ले लिया। बुद्धि जरा कम व्यवस्थित है, बुद्धि बिगड़ी हुई है, दुर्बुद्धि है, उसका जीवन बेकार है। कोई बहुत बेकार है तो कोई इससे थोड़ा बेकार है। सबसे बड़ा धन है अपना ज्ञान सही बनाकर रखना। यदि अपना ज्ञान अपने काबूमें है, अपनेमें संयत है तो हम उस ज्ञानसे अपनी इच्छासे चल सकते हैं। ऐसे सुधारमें हम प्रसन्न रहते हैं। सो भाई मनको स्वच्छ रखना, सब जीवोंको एक समान समझकर सबके सुखी होनेकी भावना रखो, यही गृहस्थोंका कर्तव्य है। दूसरे अपने वचनोंका व्यवहार शुद्ध रखना, मनुष्योंका धन वचन ही तो है। वचनोंसे ही मनुष्योंकी सारी परख होती है। वचनोंसे ही इस जीवको सुख बन गये हैं और वचनोंसे ही दुःख बन गये हैं।

एक पंडितजी सुनाते थे कि कोई भाई देहातका हरिद्वार यात्रा करने गया। सो वहाँ बड़ा बीमार हो गया, वह अकेला था, कुछ कम बुद्धिका था। बीमार हालतमें वह यहाँ वहाँ देखता है, सोचता है कि यहाँ कोई सहारा नहीं मिलेगा। खोहमें एक झोंपड़ी थी, झोंपड़ीमें एक बुढ़िया माँ रहती थी। वह बोला—माँ, मैं बीमार हूं मुझे शरण चाहिए। माँ बोली—बेटा जो पथ्य हो बताओ। क्या खिचड़ी बना दूं, खिचड़ी भी तैयार कर दी। बुढ़िया खिचड़ी बना रही थी और वह कहता कि माँ क्या तुम अकेली ही हो? हाँ बेटा, अकेली ही हूं। तो तुम्हारे कोई नहीं है, लड़का तो है, परदेशमें रहता है। तो माँ वह मर जाय तो क्या करोगी? अरे यह तो अशुभकी बातें करता है। यों ही वह कम बुद्धिका था। बोली—ऐसी अटपट बात क्यों करता है? तो माँ तुम्हारे यहाँ कोई नहीं है। तो क्या तुम्हारा विवाह करा दें? ऐसी ही एक खोटी बात और खोटी बुढ़ियाको कह दी। अब तो बुढ़ियाने उसको निकाल दिया। तो इन वचनोंसे ही परदेशमें आरामसे रह सकते हैं और इन्हीं वचनोंके दुर्व्यवहारसे घरमें भी सुखसे नहीं रह सकते हैं। वचन बाण अगर लग जाये तो वह भिद सकता है। वचन बाणसे हुआ जिसका घाव कठिन हो जाता है। हथियारका घाव तो भर जायगा। वचन-बाण जिसके दिलमें लगता है तो उस जगहका घाव फिर नहीं भरता है। इसलिए वचन बहुत संभालकर बोलना चाहिए। देखो यह जो तुम्हारा मुख है जिस समय यह फैलता है उस समय ठीक मनुष्यके आकारकी तरहका हो जाता है। देखो ना यहाँसे टेढ़ा है, फिर यहाँ टेढ़ा है तो ठीक मनुष्यके जैसा आकार वाला मुँह भी हो जाता है। और लिखे हुए अक्षर

वे छोड़े बाण कुछ आते हैं कितने ही प्रयत्न करें, पर वह वापिस नहीं हो सकता है। कितनी ही मिन्नत करें, पर क्या वह वापस आयगा ? नहीं वापस आयेगा। इसी प्रकार यह मुख मनुष्यका धनुष रूप रखे है। वचनोंका बाण अगर इससे छूट गया, निकल गया तो फिर वह वापिस नहीं हो सकता है। धनुषसे छोड़ा गया बाण जो घाव करे उसको भरा जा सकता है, पर वचनोंसे निकले हुए बाणके घाव करने पर नहीं भरा जा सकता है। वचनोंके कारण से तो लड़ाई ही बढ़ेगी। वचन बोलनेसे पहिले अपने मुखको संभाले हुए रहना चाहिए। वचनोंसे ही सुख होता है दुःख होता है। इसी प्रकार शरीरकी चेष्टाओंसे जिसकी शरीरमें आसक्ति होती है वह आलसी होता है। जितना ही उसे सुख हो, सुविधाएँ मिलें, आरामकी सुविधायें मिलें उतना ही उसका आलस्य बढ़ता जाता है। यह है देहमें आसक्त होने वाले पुरुषकी दशा, पर होना कैसा चाहिए ? यह मनुष्यका शरीर पशुओंके शरीरसे भी गया बीता है। पशुओंकी चाम बाल हड्डी इत्यादि काम आती है, पर मनुष्यकी चाम, हड्डी, बाल इत्यादि कोई भी चीज काम नहीं आती है। मनुष्यका शरीर किसी भी काममें नहीं आती है तो यह पशुओंके शरीरसे भी गया बीता शरीर है। इसीलिए यह शरीर जला दिया जाता है। जल जाने पर तो खाक ही हो जाता है। मतलब यह है मृत्युके बाद यह शरीर उपयोगमें नहीं आता है।

मनुष्य शरीर और मनुष्यभवकी बड़ाई तो इस कारण है कि इस शरीरमें रहने वाला जीव भी बड़ी योग्यताका है कि वह अपने ज्ञानका यदि सत्य उपयोग कर ले तो संसार के बंधनोंसे सदाके लिए छूट जावे। जो काम कोई नहीं कर सकता उस कामको यह मनुष्य कर सकता है। देवता भी, भगवान्की बात नहीं कहते, भगवान् तो सर्वोत्कृष्ट है, वे देवता भी मनुष्यसे कम हैं। वे मनुष्य अज्ञानमें हैं जो सुखके लिए देवी देवताओंकी आशा रखते हैं। यदि भगवान्की भक्ति करें, भगवान्से कुछ आशा रक्खें तब तो ठीक है। देवी देवता तो मनुष्योंसे भी कम महत्व रखते हैं। उनको भी इस भवसे मुक्ति नहीं होती।

कहो वे मर करके खोटी और हालतमें आ जायें ? बहुतसे लोग कहते भी हैं कि भूत प्रेत इत्यादि कहकी योनिमें हैं। भला यह तो बताओ कि वे मनुष्योंसे बढ़कर हैं कि घटकर हैं। ये देवी देवता तो संसारमें रुलने वाले जीव हैं और मनुष्योंसे कम आदरके जीव हैं। उन देवी देवताओंके समक्ष अपनी कामनाओंके लिए किसी जीवको हत्या करना, बलि चढ़ाना यह तो बड़ा अज्ञान है, उनसे किसी प्रकारका सुख चाहना और भी अज्ञान है और फिर जीवहत्या करके कामसिद्धिकी बात सोचना यह उससे भी अधिक अज्ञान है। अरे हम और आप प्रभुके समान हैं। अपने ज्ञानस्वरूपको देखकर विकल्प हटाकर इन मिटने

आदि पदार्थोंकी आशाको त्याग करके कुछ अंतर्दृष्टि करें तो भगवानका स्वरूप नजर आयेगा। उससे प्रतीति करो, मोहरागद्वेषोंका त्याग करके अपने आपको शान्तिमें रखकर अपनी बुद्धिकी सही व्यवस्था बनाकर कुछ अन्तरमें निरखो तो प्रभुका पूर्ण दर्शन होगा, जीवनमें सफलता प्राप्त होगी। ये मन, वचन व शरीर इनको पूर्णरूपसे रोक दो। यह पूर्ण निरोध साधु महा-त्माओंका कार्य है। गृहस्थोंका क्या यह कर्तव्य है कि वह मनसे व्यवहार अच्छा रखें, वचन, वाणीका व्यवहार अच्छा रखें और शरीरसे दूसरोंकी सेवा करें। हम अगर इस लायक हो सकें तो अपने आपमें रम सकते हैं। अपने आपके ज्ञानको सही रखो। अपने ज्ञानको सही बनानेमें ही शान्ति है। अपने आपकी व्यवस्था बनाकर स्वयं सुखी होओ।

शुद्धोपयोगलक्ष्येणात्मा स्वयं रक्ष्यते सदा।
स्वस्मिन् स्वमेव मेस्वस्मात्स्यां स्वस्थं स्वे सुखी स्वयम् ।।३१।।

यह परमार्थकी बात कही जा रही है किन्तु आजकल कुछ दुर्भाग्यसे कहिए, चीन और भारतके बीचमें युद्धका वातावरण ठन गया। जितनी बेचैनी यहाँ पर है उतनी ही बेचैनी चीनमें भी होगी। जितना डर और भय यहाँ है उतना ही वहाँ भी होगा। सम्भव है उससे कुछ कम हो क्योंकि यहाँ शान्ति चाहने की इच्छा है। सम्भव है कि वहाँ यह हो कि गिर पड़े और लड़े। चाहे इतनी बेचैनी न हो पर अपने देशके खिलाफ कुछ भी सुननेमें आता है तो बेचैनी बढ़ जाती है।

ऐसे वातावरणमें जरा कठिन बात है कि ब्रह्मस्वरूपकी चर्चामें बैठनेमें अपना उप-योग अधिक लगायें। मगर परवाह नहीं, जो कर्तव्य है वह इस सम्बन्धमें किया जाय, पर अपने आपको शान्तिमें लानेके लिए यह तो रोजका काम है कि दस पाँच मिनट शुद्ध आत्म-तत्त्वकी चर्चामें अपना उपयोग लगायें। यह देह मायास्वरूप है, गृहस्थीमें रहनेके नाते कुछ अगर कर्तव्य है तो कई घंटे तो पड़े हैं। मगर चौबीस घंटेमें दस पंद्रह मिनट आध घंटा ऐसा समय बीते, आत्मतत्त्वकी चर्चामें जायें, फिर देखना अपना आत्मबलका बोध होता है। बाहरी बातोंमें पड़कर अपना आत्मबल घटा लेते हैं। अगर हम बाहरी बातोंमें उलझ जायेंगे तो हमारा आत्मबल घटेगा। आत्मबल इससे बढ़ेगा नहीं। हमको अपने आत्मतत्त्वमें रमनेका यह कर्तव्य है कि हम अपने वस्तुस्वरूपकी चर्चामें आवें और अपने उपयोगको शांति-मय बना लें।

कुछ क्षण ऐसा देखो कि चाहे चीनके लोग हों, चाहे भारतके लोग हों, चाहे पशु पक्षियोंके जीव हों, चाहे पेड़ पत्तियाँ हों, सब जीवोंका स्वरूप एक चैतन्यस्वरूप है। ऐसी दृष्टि बने तो आत्मामें बल जागृत होता है। तो अपने आत्मबलका परिचय हो, फिर कर्तव्य-

[illegible] नहीं तो फिर अपना कर्तव्य [illegible] [illegible] है। यदि कोई मनुष्य अपनी [illegible] अधिकारी है मगर उसकी बुद्धिको बिगाड़ देता है तो वह अपने सन्मार्गको खो देता है, सुख मार्गमें नहीं चल पाता है।

इसी प्रकार इस मन संचयमें, खाने-पीनेमें, विषयभोगोंमें, सामाजिक कर्तव्योंमें, राष्ट्रभावमें ही रहे और अपने आत्मस्वरूपको न देख सके, अपने आत्मस्वरूपमें न रम सके, ज्ञानस्वरूपको ज्ञानमें न रख सके तो कुछ समय बाद अपने परमार्थस्वरूपका स्मरण न रख सकेगा, अपने आत्मबलको खो देगा और उन कार्योंको भी बहुत अच्छी तरह न कर सकेगा। गांधीजी ने देशमें बहुत काम किए। उनके हाथ पैर बचनकी बात तो याद है, मगर वे समर्थ कैसे हो सके? वे अपने भीतरमें आ गये, आत्मबलको इतना बढ़ाया कि चमत्कारी हो गये। सो लोग मानते थे। वे भीतरी काम क्या करते थे कि प्रभुकी भक्ति, आत्मचिन्तन, ब्रह्मस्वरूपकी दृष्टि इत्यादि करते थे। फिर वे ऐसे ढंग बना लेते थे कि वे देशके कार्य करते थे। २४ घंटेमें दस पांच मिनट अपना आत्मबल बढ़ानेका चिन्तन करते थे, फिर कर्तव्यमार्ग पर आकर अपनेको सही मार्ग पर ले जाते थे। अपने २४ घंटेके समयमें कुछ समय चर्चामें दो, कुछ समय प्रभुका स्मरण करो। यदि प्रभुकी भक्ति नहीं कर सकते तो इस तरहकी बातोंको नहीं बना सकते तो व्यवहारके कार्योंमें भी ऐसी सफलता न मिलेगी। इस कारण प्रथम कर्तव्य है कि ज्ञानको बढ़ाओ। शुद्धस्वरूपकी, आत्मस्वरूपकी, ब्रह्मस्वरूपकी खबर अगर न की तो समझो कि अपनेको अज्ञानमें भूल गए, अपनी देहको भूल गये, सबको छोड़ दिया। केवल ज्ञानप्रकाशकी [illegible] उपयोगमें [illegible] [illegible] जावें। इस ज्ञानके सहारेसे आत्मबल प्राप्त होता है। अगर अपने कामको विवेकसे करेगा, देशके काम भी विवेकसे करेगा तो लोगोंपर उसका प्रभाव पड़ेगा। जो बिगाड़का काम करना चाहते हैं वे नहीं होंगे। और जो व्यवस्थित रखे गये आत्मबलको सही रखेंगे तो खराब समयमें भी विकासका यत्न हो सकता है। आत्माकी शक्ति अचिन्त्य है और जो भी शक्ति है वह ज्ञानकी ही शक्ति है। विज्ञानमें जो भी बात होती है वह ज्ञानकी ही शक्ति है। जो पौद्गलिक चीजोंको बनाता है वह ज्ञानमें ही तो बनाता है। जो कुछ चमत्कार है वह इस ज्ञानका ही है।

अपने ज्ञानको सही रख सकें, ऐसा वातावरण बनानेकी चेष्टा करो। यदि तुमने अपनी बुद्धिको खो दिया तो सब कुछ खो दिया। सो अपना आत्मबल बढ़ानेके लिए देखो कि यह मैं आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप [illegible] ज्ञान और आनन्दका ही काम करता हूं। इसके आगे आत्माका कोई कार्य नहीं है, ऐसा जानकर सबसे विकल्प छुड़ाकर परमविश्राम [illegible] एक क्षण उत्पन्न हो जिससे बुद्धि व्यवस्थित रहती है। मेरी [illegible] हो-

तो मेरा सब काम ठीक है। यह प्रार्थना करो कि हे प्रभु ! मेरी बुद्धि व्यवस्थित रहे।

नश्येते निर्ममत्वेन रागद्वेषौ ततः सुखम ।
निर्ममत्वं विचिन्त्यातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३३॥

यदि रागद्वेष मिटते हैं तो निर्ममतासे मिटते हैं। अर्थात् मोह ममता न हो तो रागद्वेष मिट जाते हैं। जैसे हरे वृक्षकी जड़ कट जाने पर पेड़ सूख जाता है उसी प्रकार मोहके मिट जाने पर सब रागद्वेष संकट नष्ट हो जाते हैं, मिट जाते हैं। क्योंकि रागद्वेषका आधार है अज्ञान। आपके सामने यदि अंधेरा रहता है कि जो परवस्तु हैं उसमें ही मैं हूं, ऐसा पराधीन होता है तो यह आवश्यक ही है कि उसमें रागद्वेष आवें और भक्तिके विरुद्ध व मुक्तिके विरुद्धभाव उत्पन्न हों। राग और द्वेष आत्मामें मिले होते हैं, उपाधिके निमित्तसे होते हैं इस कारण पृथक् हैं। जीव स्वयं ज्ञानमय है, सबसे न्यारा है, केवल अपने ही स्वरूपमें है, ऐसा भिन्न एकत्व न सोचनेके कारण जीवोंकी बाह्यमें दृष्टि हो जाती है और वे इन बाह्य पदार्थोंमें ज्ञान और आनन्द प्राप्त करनेकी आशा करते हैं। जैन धर्मने सब मूल बातें बतलाई हैं। हम अपने मोहको छोड़ें तो शान्ति रहेगी। मोह कैसे छोड़ा जा सकता है ? इसकी युक्ति वस्तुस्वरूपका ज्ञान बताया है। समस्त वस्तु अपने अपने स्वरूपमें हैं, अपने-अपने गुण पर्यायमें हैं। किसी वस्तुका किसी दूसरी वस्तुसे कोई सम्बन्ध नहीं है। किसी वस्तुका पर्याय किसी दूसरी पर्यायमें नहीं है। ऐसे स्वतंत्र स्वतंत्र सब पदार्थोंको देखो अपने एकत्वस्वरूपका दर्शन आवे तो जीवका मोह खतम हो जाता है। भाई ! फिर मोह कैसे रहता है ? किसी चीजको जुदा मान लिया तो मोह कैसे रहा ? यह समझो कि सब जुदा जुदा हैं।

सब अपने-अपने उत्पादव्ययध्रौव्यमें रहते हैं, सब पदार्थ स्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं। अपने स्वत्वको नहीं छोड़ना है। जो चीज सत्‌की है वह सदाके लिए रहती है। वस्तुका प्रतिक्षण एक एक परिणमन रहता है। वस्तु प्रत्येक समय परिणमती रहे यह वस्तुका खास काम है कि वह सदा परिणमती रहे। परिणमन ही वस्तुका स्वभाव है। नई शक्ल बनाना और पुरानी शक्ल बदलना यही तो वस्तुका स्वभाव है। पदार्थ परिणमनशील हैं, वे निरन्तर परिणमते ही रहेंगे। जो निरन्तर परिणमते हैं उनमें नई शक्ल आती और पुरानी बदलती रहती है। जो नई परिणति होती है उसे उत्पाद कहते हैं और जो पुरानी परिणति विलीन होती है उसे कहते हैं व्यय। पर पदार्थ सदा रहता है। इससे पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यमय हैं। जो स्वरूप वस्तुका है वह बना रहता है फिर भी वह अपने आप बदलता रहता है, ऐसा ही सब पदार्थोंका ढंग है। प्रत्येक चीजकी परिणति है। कोई चीज अपनी शक्लसे ही

जाय तो यह नहीं हो सकता है, क्योंकि यह तो स्वरूपसे बाहरकी बात है, किसी चीजको मान लिया कि हमारी है तो यह मनकी बात है। पदार्थोंका परिणम जाना ही काम है। पर वे पदार्थ तुम्हारे बन जायें ऐसा नहीं हो सकता है क्योंकि यह स्वरूपसे बाहरकी बात है। मुझपर तुम्हारा बस नहीं हो सकता है, ऐसा जब ज्ञानमें आता है कि परपदार्थ जुदा हैं, स्वतन्त्र हैं, किसीका किसीसे कोई सम्बन्ध नहीं है ऐसा यथार्थ ज्ञान हो जानेसे सम्यग्दर्शन होता है। इससे मोह नष्ट हो जाता है। जैसे वृक्षकी जड़ कट जाने पर पेड़ कब तक हरा रहेगा इसी प्रकार मोहके दूर होने पर, अज्ञानके नष्ट हो पर ये रागद्वेष कब तक रहेंगे? वे तो मिट जायेंगे। मोहके मिटने पर रागद्वेष मिट जाते हैं। दुःखोंके देने वाले ये रागद्वेष ही हैं। दुःख देने वाले दूसरे पदार्थ नहीं हैं।

यदि रागद्वेष मिट गए तो दुःख मिट गए। यहां बैठे बैठे ही सुखी बन सकते हो। भीतरमें शुद्ध दृष्टि बन जाय तो आनन्दमग्न हो सकते हो। तो रागद्वेषके मिटनेसे ही सुख होते हैं। इस कारण अपने आपको निर्मम ही विचारना चाहिए। ममता करना एक पौद्गलिक परिणमन है, कर्मोंके अनुसार होने वाली चीजें हैं। वे मेरी हो ही नहीं सकती हैं, मेरा स्वभाव तो ज्ञान और आनन्दको लिए हुए है बाकी तो कषाय है। दूसरोंमें मोह वाली परिणति है ऐसा विचारकर मैं अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

मुक्त्वेदं कल्पनाजालं मनोऽदो निश्चलं भवेत्।
न क्लेशो निर्विकल्पः सन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१४॥

कहते हैं कि इन कल्पनाओंको छोड़ दो तो यह मन निश्चल हो जाता है, किसीका मन चलायमान हो तो आकुलतायें उत्पन्न होती हैं। आकुलतायें यदि दूर करनी हों तो मनको निश्चल बनाओ। आकुलतायें जड़से समाप्त करनेका उपाय सम्यग्ज्ञान है। जब तक सही ज्ञान न हो तब तक आकुलतायें होना, समाप्त नहीं होती हैं। सो भाई सम्यग्ज्ञान करके कल्पनाओंको मिटाना चाहिए। कल्पनाजालके मिट जाने पर ही यह मन निश्चल हो जाता है। इस मनके निश्चल हो जानेपर कोई क्लेश न रहेंगे। अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूपका अनुभव रहेगा। इससे ही यह जीव निर्विकल्प हो जाता है, निर्विकल्प होनेपर इस शरीरके सारे क्लेश मिट जाते हैं। देखो जीवको यहां सुख है क्या? कहीं आरामसे बैठ नहीं पाता है, आराम नहीं मिलता है तो भैया यह रागद्वेष हैं इसलिए आराम नहीं, आकुलतायें हैं। सो यह जीव आकुलतायें ही तो करता है, और मोह भी व्यर्थका ही है। मोह करनेसे अपनेको कुछ मिल जाता हो सो मिलता भी कुछ नहीं है। हजारोंको देख लिया है, कितने ही मुर्दे जला चुके होंगे, किसी किसीको ४०-५० मुर्दोंके जलानेका नम्बर आया होगा, किसी किसीको कम; तो क्याक

रखो कि उन्होंने आजीवन मोह किया था पर मिला क्या ? इस जीवनमें मोहसे कुछ नहीं है जिन्हें मोह है उन्हें लाभ कुछ नहीं मिलता। कितने ही घरके लोग गुजरे होंगे, रिश्तेदार गुजरे होंगे, उनका ख्याल तो कर लो। उन्होंने मोह किया था कि नहीं, राग किया था कि नहीं ? तो जो मर गये उन्हें क्या मोहसे कुछ लाभ मिला ? उनको कोई लाभ नहीं मिला। लाभ तो केवल जुदा रहनेमें है। जिसमें ये जीव भला समझते हैं उसमें टोटा ही पड़ता है। मन जब निश्चल नहीं होता है तो विकल्प उत्पन्न होते हैं, आकुलताएँ होती हैं। विपदासे न घबड़ावो, विकल्प न करो, सब जीव हैं, सबके साथ कर्म लगे हुए हैं। उनका ही कर्म उनके जीवनमें रक्षक है। किसीका भाग्य बन गया है तो अपने आपके उदयसे बन गया। तो उनका फल उनमें ही है। हमारा फल हमें ही है। जिन भाव कर्मोंके निमित्तसे कर्मबन्धन हुआ था उन कर्मोंके अनुसार तुम्हारी व्यवस्था चलती रहती है। इसी तरह सब जीवोंके साथ कर्म लगे हैं। इसलिए उनकी कर्मोंके अनुसार व्यवस्था चल रही है। दूसरोंका भार अपनेमें न लाना यही मनको निश्चल बनानेका उपाय होगा और इससे ही स्वयं निर्विकल्प हो सकेगा। दुःखों की जड़ तो मोह ही है। तो इस मोहको त्यागकर अपने स्वरूपको देखो और अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी होओ।

देखो जैसे एक दर्पण है तो दर्पणका स्वरूप दर्पण ही है। जो स्वरूप अपने आप दर्पणमें है वह उस दर्पणका स्वरूप है। जैसे स्वच्छता झलझलाहट आदि ये दर्पणके स्वरूप हैं किन्तु सामने कोई चीज आ जाय तो दर्पणमें उसकी छाया पड़ती है तो भेद करके बतावो— दर्पणका स्वरूप स्वच्छता है कि प्रतिबिम्ब ? दर्पणका खुदका स्वरूप झलझलाहट है, प्रतिबिम्ब पराई बात है, वह दर्पणका स्वरूप नहीं है। इसी तरह आत्माका स्वरूप केवलज्ञान है। जान लो, शुद्ध जान लो यही आत्माका स्वरूप है पर जब कर्मोदय सामने होता है तो इस जीवके क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि उत्पन्न हो जाते हैं। यह तो बतलावो कि क्रोधभाव भी इस जीवका स्वरूप है या मात्र ज्ञान ही इस जीवका स्वरूप है ? जीवका स्वरूप क्रोधभाव है कि ज्ञानभाव है ? जीवका स्वरूप ज्ञानमात्र है। क्रोध प्रकृतिके उदयका निमित्त पाकर ये क्रोध भरे हुए हैं। क्रोध मेरा स्वरूप नहीं है। मैं तो मात्र ज्ञानस्वरूप ही हूं, ज्ञान तो ज्ञान ही है, इससे क्रोध नहीं बन जाते हैं। ज्ञानस्वरूप तो मेरा ही स्वरूप है। इस ज्ञानस्वरूप की ओर ही झुकाव हो तो वह ज्ञानमें समाता जायगा। ज्ञानका सुधार अपने आपसे ही होगा। अपने ज्ञानका सुधार हो ऐसा यह केवल अपने आपके समाधान पर निर्भर है। अपने आपका स्वयं अनुभव करो। जिसके ज्ञान होता है उसके क्लेश खतम हो जाते हैं और उसे मोक्षके मार्गमें आना पड़ता है। सबसे प्रथम कर्तव्य यह है कि अपने ज्ञान

है अनुभव बनाकर अपने आपमें यह अनुभव करते रहो कि मैं तो ज्ञानमात्र हूं, ज्ञानस्वरूप ही हूं— ऐसा जब अनुभव बन जायगा तो अपने आपमें स्वाद आ जायगा और उस जीवको मोक्षमार्ग मिल जायगा। मोक्षमार्गमें मिलना मेरा काम है क्योंकि शुद्ध बात मेरे स्वरूपमें ही मिलेगी। सबसे बड़ा महत्व लोग देहरक्षाका समझते हैं तो क्या देहरक्षासे आत्माके स्वरूपका अनुभव होगा ? नहीं, क्यों जी, यहांसे मरकर चीनमें ही अगर पैदा हो गए होते तो उनके उल्टे विचार होते, यह सब मोहका स्वाङ्ग है। अपना लक्ष्य केवल अपने आत्माकी ओर होना चाहिए आत्माका जो स्वरूप है उसका अनुभव करना, बस इससे ही आनन्द है। शरीर तो मुझसे पृथक् है। देखो भैया! सब आकर इस मूर्तिके दर्शन करते हैं और इस मूर्तिके दर्शन करनेसे ही भगवानके दर्शन होते हैं। यदि भगवानके स्वरूपका स्मरण होगा तो आत्मा के स्वरूपका भी स्मरण होगा। आत्माका स्मरण होनेसे मोक्षमार्ग निकट है। सारे विकल्पोंको छोड़कर अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव करो इसीमें कल्याण है। यदि इतना कर सके तो यही धर्म है, अपना परम कर्तव्य है। अपने आपको सम्भालनेके ६ कर्तव्य हैं—(१) भगवानको पूजा करना, (२) अपने गुरुका सत्कार करना, (३) स्वाध्याय करना, (४) नियम संयम करना, (५) इच्छाओंका निरोध करना, (६) यथाशक्ति दान देना।

ये ६ काम रोजके हैं। इन बातोंको करते हुए अपना स्वरूप लक्ष्यमें लेना, यही अपने जीवनको सफल बनानेका उपाय है।

ज्ञानं ज्ञानं न कोपादि तदज्ञानं न सुस्फुटम्।
स्वस्मिन् ज्ञानेस्थिरीभूय स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३५॥

इच्छाओंके निरोध करनेका नाम तप है। इच्छाओंका निरोध प्रत्येक कल्याणार्थीको करना चाहिए, चाहे वह गृहस्थी हो, चाहे साधु हो, अपनी-अपनी पदवियों अपनी योग्यताके अनुसार इच्छाओंका निरोध करना चाहिए। गृहस्थी इच्छाओंका निरोध कैसे करें ? उनकी इच्छानिरोधकी मुख्य बात यह है कि गृहस्थीका सम्बन्ध है कमाईसे, धनके उपार्जनसे, सो जितनी आय उनकी हो उस आयके चार छः भाग कर उसमें एक भाग विद्यादानके लिए रखो, धर्म करनेके लिए रखो, दो-तीन भाग अपने समस्त खर्चेके लिए रखो, एक दो भाग विवाह आदि समयोंके लिए संचित रखो।

इस प्रकारके बंटवारेमें जो भी भाग प्राप्त हो उसमें ही अपनी गुजर बसर करना, उससे अधिक आयको इच्छा न करना यही गृहस्थीका तप है। गृहस्थीकी तपस्याकी मुख्य बात यह है कि दूसरोंके भोगको देखकर गृहस्थ ललचा न जावे। इस लालचसे गृहस्थीको बड़े भाव हैं जिसके कारण गृहस्थको दुःखी होना पड़ता है और अनेक कर्मबन्ध होते हैं। इस

इच्छाओंका निरोध करनेमें गृहस्थ अपने अन्तरमें ऐसी हिम्मत रखता है कि चाहे कैसी भी परिस्थिति आवे, चाहे सूखे चने ही खाकर गुजर करना पड़े, पर अपने धर्मको न छोड़ूंगा। परमार्थसे आत्मस्वरूपकी आराधना, प्रभुस्वरूपकी उपासना और व्यवहारमें धर्म है, ये सब सच्चाईसे और ईमानदारीसे चलते हैं और सुव्यवस्थित होनेके लिए बड़े खर्च भी कर डालते हैं तिस पर भी अन्तरव्यवस्था सही नहीं बन पाती। इसका कारण यह है कि सच्चाई और ईमानदारीका त्याग कर दिया। सुरक्षाके लिए बड़े-बड़े लोग तैनात होते हैं। इनके लादनेकी क्या जरूरत थी जब कि अन्य देशोंमें लौकिक ईमानदारी काफी रखी जाती है। बाजारोंमें दुकान खुली रहती हैं, सामान पड़ा रहता है, कीमत लिखी रहती है, ग्राहक लोग अपने मन-पसंद चीजको लेते रहते हैं। ग्राहक लोग सारी कीमत दुकानकी पेटीमें डाल देते हैं। कोई बेचने वाला नहीं, अखबार वाला नहीं, फिर भी काम चलता रहता है। यहाँ प्रायः अनेकों मनमें बेईमानी आ गई तो लो कभी बाहर कहीं जाते हैं तो दुकानमें ताला बन्द करके जाते हैं, अपनी सारी व्यवस्था करके जाते हैं। अब यहाँ व्यवस्था बनाना कठिन है, वे बात आ नहीं सकती। कभी वह जमाना था कि द्वार खोलकर भी कहीं चला जाय पर विश्वासके कारण तो सुगम व्यवस्था बनी रहती थी। फिर भी व्यवस्थामें हम सच्चाई और ईमानदारी की अधिकसे अधिक व्यवस्था करें तो लोकधर्मका पालन है। जब तक इच्छाओंका निरोध नहीं होता तब तक सच्चाईका पालन होना कठिन है। पर जिसका आत्मासे प्रेम है आत्म-कल्याणसे प्रेम है, ऐसा पुरुष अन्य तृष्णाओंकी उपेक्षा कर देता है और अपने धर्मपालनमें दृष्टि रखता है, मेरा पूरा तो मेरी आत्मासे ही पड़ेगा। फिर इस जीवनमें आरामके लिए किसी भी प्रकारका अन्याय या अत्याचार करके, धन संचित कर लें, यह तुम्हारा विवेक नहीं है। सो गृहस्थकी इच्छानिरोध यही है कि न्यायसे धन कमाते हो, बंटवारेमें गुजारेके लिए बजट बना ले, उसमें ही संतोष करे, धर्ममें रुचि बराबर बनाये रहे, यही है इच्छाओंका निरोध। साधुओंका पूर्णतया इच्छानिरोध तप हो सकता है। इच्छाओंका निरोध करना ही तप है। उपवास, व्रत, संयम कर लिए जायें, गर्मी सर्दीके कष्ट सह लिए जायें, पर अन्तरमें इच्छाओंको रखा जाय तो वह तप नहीं है।

जैसे कोई संन्यासी था। प्राणायाम करके दो दिन तक संन्यासीके ही रूपमें समाधि बना लेता था। एक बार राजाने कहा कि महाराज, मेरे सामने समाधि लगाओ। समाधि ठीक होगी तो मुँहमांगा इनाम दूँगा। संन्यासीने समाधि लगायी। समाधि तो लगा ली, पर उससे पहले यह इच्छा आयी कि समाधि करके मैं राजासे पारितोषिक मांगूंगा। राजाके घुड़सालमें एक घोड़ा बँधा था, उसके मनमें आया कि मैं यह घोड़ा ही मांगूंगा। तो वह

घोड़ा उसके हृदयमें समा गया। समाधि छोड़ते ही एकदम बोला—अब लाओ काला घोड़ा। तो भैया! बतलाओ यह समाधि है क्या? एकदम यह बात निकली। कितना ही व्रत, तप, संयम आ जाय, पर इच्छाएँ रहती हैं मनमें, तो यह तप नहीं कहलाता। इच्छाओंका निरोध करना ही तप कहलाता है। इस तपसे ही कर्मोंकी निर्जरा होती है। इस कारण इच्छानिरोध मय तप करके, शुद्ध हो करके मैं अपने आपके स्वरूपको देखूं।

तप इच्छानिरोधोऽतः कर्म निर्जीर्यते ततः।
तपस्तप्त्वा च शुद्धः सन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३६॥

लोग दुःखोंसे घबड़ाते हैं, पर यह अनुभव करें कि मेरी प्रगति होगी तो इन दुःखोंके प्रसादसे ही होगी। विषयभोगोंके सुखके प्रसादसे किसीने प्रगति नहीं की। संसारमें ये दुःख और सुख एकके बाद एक लगे रहते हैं। कोई संसारी जीव ऐसा नहीं मिलता कि जिसको निरंतर रात-दिन दुःख ही दुःख रहते हों, और ऐसा भी कोई संसारी जीव नहीं मिला जो निरंतर रात-दिन सुखी ही सुखी रहता हो। बीचमें कितनी ही बार सुख आता है और कितनी ही बार दुःख आता है। इन सुख दुःखोंमें से देखा जाय हमारे उद्धारके कारणभूत दुःख तो हो जायेंगे, किन्तु ये विषयभोगोंके सुख नहीं होंगे। इन इन्द्रियजन्य सुखोंसे जो प्रीति करते हैं वे अपने ज्ञानको पहिले बिगाड़ लेते हैं। उनमें समता नहीं रहती, धैर्य नहीं रहता, शांति नहीं रहती। वे क्षुब्ध हो जाते हैं और विषय सुखोंमें ही लालायित हो जाते हैं, विषयांध बन जाते हैं, उनसे प्रगति किसीकी नहीं। फिर देखो दुःखके बाद सुख आता है और इस सुखके बाद दुःख आता है, यह सब संसारी जीवोंकी बातें हैं। भला जिसके बाद दुःख आयगा वह चीज आपको पसंद है कि जिसके बाद सुख आयगा वह चीज आपको पसंद है? जो बुद्धिमान होते हैं वे ऐसे टोटेको लाभसे ज्यादा पसंद करते हैं कि जिसके बादमें कई गुना लाभ निश्चित है और ऐसा लाभ कम पसंद करते हैं कि जिसके लाभके बाद कई गुना नुक्सान हो। ये संसारके सुख ऐसे हैं कि जिनके बाद दुःख आते हैं और ये दुःख ऐसे हैं कि जिनके बाद सुख आता है। इसलिए सुखसे अधिक दुःखका महत्त्व है। जब रावण बहुरूपणी विद्या सिद्ध कर रहा था युद्धके कालमें तो कुछ राजाओंने श्रीरामसे कहा कि रावण बहुरूपणी विद्या सिद्ध कर रहा है। यदि यह विद्या उसकी सिद्ध हो गयी तो उसका जीतना कठिन है। इसलिए उसकी साधनामें बाधा डालना चाहिए। राम बोले—वह तो मन्दिरमें बैठा है, विद्या सिद्ध कर रहा है, यह उचित नहीं है कि बाधा डालें। फिर भी मन चले राजा उसे बाधा डालने पहुंचे। बड़ा उपसर्ग किया, उपद्रव किया, वहाँ आचार्य बतलाते हैं कि यदि रावणके ऊपर दुःख नहीं आते तो उसे बहुरूपणी विद्या विलम्बसे सिद्ध होती। पर उस समय बहु-

विद्या तत्काल ही सिद्ध हो गयी। बड़े-बड़े मुनीश्वर तपस्या करते हैं तो उन पर बड़े बड़े उपसर्ग आते हैं, कहीं सिंहने खाया, कहीं दुष्टोंने सताया, कहीं समुद्रमें डुबो दिया, कहीं आगमें पटक दिया, पर वे मुनि तत्काल ही मुक्तिको प्राप्त हुए। दुःखोंके कारण ही बड़ी जल्दी उन्नति को प्राप्त होते हैं। तो हम दुःखका तो स्वागत करें और सुख आता हो तो आवे और न आता हो तो न आवे, दुःख तो केवल कल्पना मात्रसे ही आते हैं, बाहरके पदार्थोंसे दुःख नहीं आया करते हैं। वह चीज तो जैसी है सो है। जैसी परिणति है सो परिणति है, उनसे क्लेश नहीं आते हैं। क्लेश तो अपनी कल्पनाओंका जाल है। अपना ख्याल बनाते हैं और दुःखी हो रहे हैं। सो उन दुःखोंको समतासे सह लेना भी तप है। अंतरंगमें इच्छाओंका न होना भी तप है। इस तपस्याके प्रसादसे, इस सहनशीलताके प्रसादसे यह आत्मदृष्टि होती है, आत्मा प्रबल होती है।

जैसे अग्निके द्वारा तपाया गया सोना मैल छोड़ देता है, शुद्ध निर्मल हो जाता है इस प्रकारसे तपोंके द्वारा यह आत्मा शुद्ध हो जाता है। और शुद्ध होनेका यह फल है कि यह जैसा है तैसा ही अपने स्वरूपमें रह जाता है। इसीको कहते हैं परमस्वास्थ्य। स्वास्थ्य का अर्थ है कि स्वमें रहकर आत्मामें ठहर जाये, रम जानेका नाम ही स्वास्थ्य है। शरीरके तन्दुरुस्त होनेको स्वास्थ्य नहीं कहते हैं। ऐसा है कि आत्मा अगर स्वस्थ है तो शरीर भी स्वस्थ होता है। इस कारण शरीरकी तंदुरुस्तीको ही स्वास्थ्य नहीं कहते हैं, शुद्ध पुण्यका फल स्वयं स्वास्थ्य है। राम अपने आप सिद्ध हो जाते हैं। वे अपनेसे परकी परवाह नहीं करते। तो भैया! अगर परमें उपयोग होगा तो आकुलताएँ होंगी। हम यदि आकुलताएँ न बनाएँ तो आनन्द मिलता है। हम अगर शुद्ध आनन्द चाहते हैं तो कर्मोंकी निर्जरा चाहिए। संसारके दुःखोंसे अगर मुक्ति चाहते हैं तो हमारा यह कर्तव्य है कि अपने सत्यस्वरूपको जान-कर उसमें ही लीन हो जावें। जैसे कोई धन चाहता है तो जो धनकी चर्चा है, जो धन पानेके सोर्स हैं उनको अपनाता है। जैसे कोई मिनिस्टर बन जाय, कोई राजा बन जाय, कोई कुछ बन जाय। उनसे इस तरहसे धन पानेका उपाय बन सकता है। धन पानेका उपाय यह है कि पहिले धनके सोर्सको, मनुष्यको जानें उस राजाकी श्रद्धा करें, हम उसकी रुचिके अनुकूल आचरण बनाएँ तो धन प्राप्त हो जाता है। इसी तरह जिसको अपनी आत्माको प्राप्त करना हो तो आत्माके ज्ञानसे आत्माकी श्रद्धा करे और जैसा आत्माका स्वरूप है वैसा ही अपने आपको बनाये तो निश्चय है कि आत्मसुख आत्मतत्त्व प्राप्त हो सकता है। इस स्वास्थ्य की ही वृद्धिसे यह जीव आनन्दमग्न हो सकता है सो अपने आपमें रमकर अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होऊं।

अग्निना काञ्चनं यद्वत् तप्यमानस्तपोऽग्निना ।
शुद्धीभूय लभे स्वास्थ्यं स्वां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३७॥

कर्मोंका संचय होता रागपरिणतिसे और कर्मोंका विनाश होता है विरागपरिणतिसे। जो रागी है वह कर्मोंमें बँधता है, पर जो विरागी है वह कर्मोंसे छूटता है। कर्म एक पौद्गलिक चीज है। जैसे मुझमें रागद्वेष भाव होते हैं वैसे ही तत्काल कर्म मुझमें बँधते हैं। जब उनके उदयका समय आता है तो मुझमें आटोमेटिक रागद्वेष प्राप्त हो जाते हैं। श्रीसमयसार जी में श्री कुन्दकुन्दाचार्य जी कहते हैं कि जो रागद्वेष करते हैं वे कर्मोंसे बँध जाते हैं और जो वीतरागी होते हैं वे कर्मोंसे छूट जाते हैं। यहीं देख लो कि जो राग करता है वह बँध जाता है और जो वीतरागी होता है वह कर्मके बंधनोंसे मुक्त हो जाता है। राग न हो यही मुक्तिका कारण है। जितने भी दुःख हैं वे हमको रागद्वेषके कारण ही प्राप्त होते हैं। रागी हैं और दुःखी हो रहे हैं। अधिक आय हो और दुःख बन जायें तो वहाँ भी यह दुःख रागका ही कारण है। भैया ! यदि राग है तो समझो विवाह बंधनमें बंध गया। जिसके कोई राग नहीं है वह आनन्दमग्न है। यदि राग न हो तो दुःख समाप्त है। जो रागी व्यक्ति होता है वही कर्मोंको इकट्ठा कर लेता है। मेरी विराग परिणति हो मायने ज्ञानदृष्टि रहे। ज्ञानदृष्टिके बिना आत्मशान्ति तो नहीं प्राप्त हो सकती।

एक सेठ सेठानी थे। सेठ कपड़ेकी दुकान वाला था, जिसे बजाज कहते हैं। सेठानी जरा गर्म मिजाजकी थी और सेठ शांत था। जब सेठजी भोजन करने आते तो सेठानी भोजन के समय ही रोज चर्चा छेड़ देती थी, अमुक चीज अभी नहीं बनवाया, कानकी कुण्डल, नाक की बाली और गलेकी माला इत्यादि सोने चांदीकी चीजें नहीं बनवाईं, बहुत दिन हो गए। रोज वही चर्चा छेड़ देती थी। एक दिन सेठ अटारी परसे कपड़े पहिनकर सीढ़ीसे नीचे उतर रहा था। सेठानीने क्रोधमें क्या किया कि जो दालका धोवन था उसको सेठकी पगड़ीके ऊपर डाल दिया। अब तो सेठ सेठानीसे बोले कि गरजी तो बहुत थी पर बरसी आज हो। सेठजी बड़े प्रेमसे उत्तर देते हैं। शांतिका यह प्रताप हुआ कि सेठानी सेठके चरणोंमें गिर पड़ी और बोली कि तुम देवतास्वरूप हो, तुमको जो कुछ परेशान किया, माफ करो।

रागद्वेष मोहकी जो विशेष परिणति है उस परिणतिसे मुक्ति नहीं मिलती, आनन्द नहीं प्राप्त होता, शांति नहीं प्राप्त होती है। विराग परिणतिसे कर्मोंका क्षय होता है। तो रागोंसे भिन्न अपने आपको निरखकर अपने आत्मस्वरूपमें रमण करो। राग छोड़नेका उपाय यह है कि आत्मस्वरूपका अनुभव करो कि मैं राग द्वेषोंसे भिन्न केवलज्ञानस्वरूप हूं, मेरी वाणी आदि कुछ नहीं है, मेरा ढांचा केवलज्ञानस्वरूप है। ऐसा निरखकर यह आत्मतत्त्व

प्रकट है कि यह संयोग आनेसे ही रचा गया है। वह अज्ञान तो रागद्वेषोंके रहनेसे है। अपने को रागद्वेषोंसे भिन्न अनुभव करो। देखो जितना कषाय उत्पन्न होता है वह अपने अज्ञानसे अर्थात् अपनेको और-और रूप माननेसे होता है। मैं धनी हूं, मैं त्यागी हूं, मैं गांवका मुखिया हूं, मैं अमुक हूं, इस प्रकारकी भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ रहनेसे ही कषायभाव उत्पन्न होते हैं। उन कल्पनाओंके माफिक जब लोगोंसे व्यवहार नहीं पाते हैं तब उनमें गुस्सा आ जाता है और दूसरा कारण गुस्सा होनेका क्या है? तो अपने आपको और और रूप मानना यही पापका बीज है। अपनेको यदि मात्र ज्ञानस्वरूप मानें तो यही कल्याण है सो अपने आपको रागादिक भावोंसे भिन्न अनुभव कर ज्ञाताद्रष्टामात्र रहकर अपनेमें अपने आप स्वयं सुखी होओ। बाह्य पदार्थोंमें हठ करना तो क्लेशका ही कारण है। यह यों नहीं चलता, यह यों नहीं करता इत्यादि अनेक प्रकारके हठ करनेसे तो विपत्तियाँ ही आती हैं। अहंकार विपत्तियोंका ही कारण है।

आपको एक चुटकलेकी बात सुनायें कि किसी घरमें पति-पत्नी थे। पत्नी हठीली थी। प्रायः स्त्री जातिका स्वभाव ही हठ करना होता है। यद्यपि स्त्रियोंकी गलती नहीं है, पर उनका स्वभाव कुछ हठ करना होता है। एक दिन सास बहूका झगड़ा हो गया। बहूने सोचा कि सासको कुछ मजा चखाना चाहिए। सो पेट दर्दका बहाना करके बीमार बन गयी, अब वह उदास बन गयी, हाय हाय करने लगी। सेठ गया, बोला—यह दर्द कैसे मिटेगा? सेठने बहुत कोशिश की, पर पेटका दर्द न मिटा। वह मिटे ही क्यों? वह तो बहानेका दर्द था। सेठानीने कहा कि मुझे एक देवता बता गया है कि जो तुमसे प्रेम करता हो उसकी माँ यदि सिरके बाल मुंडाकर और मुंह काला करके सुबह सूर्योदय तक देखने आये तो मेरा यह दर्द मिट सकता है, नहीं तो मर जाऊंगी। सेठने जल्दी ही सेठानीकी चालाकी को समझ लिया। सेठने क्या किया कि अपनी ससुरालको झट पत्र लिख दिया कि तुम्हारी लड़की बीमार है। देवताने ऐसा बताया है कि लड़कीकी माँ यदि बाल मुंडाकर और मुंह काला करके सूर्योदयके पहिले आ जाय तो लड़की ठीक होगी, नहीं तो मर जायगी। अब तो लड़की की माँ ने सिर मुंडा डाला, मुंह काला कर लिया और सवेरा होते ही वहाँ पहुंच गयी तो स्त्री अपने पतिसे कहती है कि "देखो बीरबानीकी चालें, सिर मुंडा और मुंह काले।" तो पति कहता है कि "देखो मर्दोंकी फेरी, अम्मा तेरी कि मेरी।"

तो इस लोकमें हठसे बड़ी मुंहकी खाना पड़ता है। किसी बालकसे भी हठ करो कि वह बालक मेरे आधीन है तो यह हठ करना उचित नहीं है। सब जीवोंको अपने समान स्वरूपी मानकर उनसे ही पूर्ण सद्व्यवहार रखना चाहिए और परमार्थसे तो मैं शुद्ध ज्ञायकस्व-

रूप हूँ । ऐसी आराधना रहना चाहिए, यहाँ तो सब नाटक है । ये सब मायारूप हैं, यह मैं तो केवल आत्ममात्र हूँ ऐसी अपनी उपासना रहनी चाहिए । जैसे भी बन सके तन, मन, धन, वचनके व्यवहारमें दूसरे जीवोंकी सेवा करनी चाहिए । दूसरे जीवोंकी सेवा यह है जैसे कि वे दूसरोंको समझावें कि मांस मदिरा वगैराका प्रयोग न करें, जीवोंकी हत्या न करें । तो उन जीवोंको प्राणाघातसे बचाना ही दूसरे जीवोंकी सेवा है । सो यदि कोई कहे कि मैं बलि करता हूँ यह धर्म है । तो भैया ! यह कोरा भ्रम है । अरे धर्म नहीं है, यह अधर्म है । इसका त्याग करो, मांस मदिराके प्रसंगमें कोई आनन्द नहीं आता है । उनका त्याग करनेसे ही अपना भला है ।

विरागपरिणत्या मे जायते कर्मणः क्षयः ।
रागभिन्नमतो विन्दन्स्वो स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३८॥

यह जो दुनिया है यह कबसे चली आ रही है, इस बातपर विचार करें तो अंतमें यह बात निकलेगी कि यह दुनिया अनादिसे चली आ रही है क्योंकि यदि किसी दिन यह बनाई गयी है तो यह बतलाइए कि जिस दिन यह बनाई गयी है तो यह किस चीजसे बनाई गयी थी ? कुछ चीज तो पहले भी थी उसीका नाम संसार है । जैसे यह दुनिया अनादिसे चली आ रही है तो दुनिया ही तो हम और आप कहलाते, हम और आप भी तो अनादिसे चले आ रहे हैं । जिस जगतके जीवोंको देख रहे हैं वे ऐसे ही पर्यायमें रहते हुए चले आ रहे हैं । कभी यह जीव पशु बन गया, कभी पक्षी बन गया, कभी पेड़-पौधे बन गया और कभी जीव-जन्तु बन गया । आज यही जीव मनुष्य बन गया । उन सब जीवोंकी अपेक्षा यह मनुष्य का जन्म कितना श्रेष्ठ है ? ये पशु-पक्षी बेचारे तो बोल भी नहीं सकते, एक दूसरेकी बात भी नहीं समझ सकते । कहीं रोग हो जाए पेटमें और दवा लोग करें मुंहमें, दर्द तो उनके है पेट में और दवा करें मुंहमें उनके मुंहको दागें तो वे बेचारे बोलकर अपने दर्दको नहीं बता सकते ।

इन कीड़े मकौड़ोंको तो पूछता ही कौन है ? चलते हुएमें नजरसे देखकर कौन चलता है ? इन कीड़े मकौड़े इत्यादिसे हम कितना श्रेष्ठ हैं ? इसका अंदाज तो लगाओ । हम अपनी बात दूसरोंसे कह सकते हैं, दूसरोंके हृदयकी बात हम समझ सकते हैं । इससे अधिक और बात क्या होगी कि हम धर्मकी बात भी जानते हैं, करते और समझते हैं । यह श्रेष्ठ जीवन इसलिए नहीं मिला कि परिवारके मोहमें पड़े रहें या अपनी इन्द्रियोंके विषयभोगोंमें ही बने रहें, इसके लिए यह जीवन नहीं मिला । यदि ऐसा ही जीवन रहा तो पशुओंके जीवनसे क्या

अन्तर है ? पशु भोजन करते हैं, मनुष्य भी भोजन करते हैं, मनुष्य सोते हैं, मनुष्य विषय-भोग करते हैं, पशु भी विषयभोग करते हैं, पशुओंको डर है तो मनुष्योंको भी डर है, पशुओं से मनुष्योंमें श्रेष्ठ बात क्या आयी ? ये मनुष्य तो पशुओंसे भी गये बीते हैं। पशुओंका अगर पेट भर जाता है, चाहे दो चाहे खाना, रख देंगे, खायेंगे नहीं। मनुष्योंके तो तृष्णा ही जाती है। कितना भी मनुष्योंका पेट भरा हो; मिठाई, चटपटी वगैरा आ जाय तो तुरंत खा लेंगे। चाहे तोला भर ही खावें, पर खा लेंगे। यह उन मनुष्योंकी चर्चा चल रही है जो धर्मसे बाहर हैं। निद्रा लेनेमें देखो तो पशु-पक्षी सब बहुत थोड़ी निद्रा लेते हैं। आप लोगोंने पशु पक्षियोंको सोते हुए नहीं देखा होगा, जब देखो तब वे जगते हुए ही मिलते हैं। जहांपर जरा सी भी आहट न हो वहांपर जरासी निद्रा लेते हुए पशु पक्षियोंको देखा होगा। मनुष्यको तो नींदमें खबर ही नहीं रहती है। चाहे जितना हल्ला मचावो वे जगते ही नहीं हैं। तो नींदमें भी मनुष्योंसे पशु-पक्षी ठीक हैं।

विषयभोगोंकी बात देखो तो देखने सुनने, सूंघनेमें देखो तो मनुष्योंके तृष्णा है कि नहीं ? विषयभोगोंकी बात देखो तो सालभरमें १-२ बार ये पशु-पक्षी विषयभोग करते हैं और शांत हो जाते हैं। पर मनुष्योंको देखो बारहों महीने, न कोई पर्व समझते हैं, न रात, न दिन समझते हैं, कामवासनाएं बनाए रहते हैं। अब यह बतलावो कि मनुष्य श्रेष्ठ हुआ कि पशु श्रेष्ठ हुए ? अभी तक तो पशु ही श्रेष्ठ मालूम हुए। अगर कोई मनुष्य धर्मसे प्रीति करे, धर्मकी ओर झुके तो उसकी श्रेष्ठता मालूम होगी। यह जीव अनादिकालसे कर्मोंके बंधनमें फंसा हुआ चला आ रहा है और साथ ही साथ कभी कुछ बना, कभी कुछ बना और अपने आपको दुःखी करता चला आ रहा है। यह जीव यदि सूकर बन गया तो उनके बच्चोंसे जिन्हें घिटला कहते हैं प्रेम करने लगता है। इसी प्रकार यह जीव गाय बन गया तो बछड़ेसे, पक्षी बन गया तो अंडोंसे, मनुष्य बन गया तो कुटुम्ब परिवार इत्यादिसे, बच्चे बच्चियोंसे प्रेम करने लगा। इसका है कौन ? जिस भवमें जाता है उसके संगसे प्रेम करने लगता है। अगर इस भवसे छूट गये तो फिर कौन किसकी खबर लेता है ? ये बच्चे भी छूट जायेंगे। आपने यह मनुष्य जीवन पाया है, थोड़े दिनका सम्बन्ध है, इस जीवनमें यदि कुछ कर लिया कि जिससे कर्म कट जायें, जिससे संसारके क्लेश मिट जायें तो सफलता है और अगर इन इन्द्रियविषयोंमें ही लगे रहे तो जीवन बेकार है। और भी देखो मनुष्योंको छोड़कर और जीव यदि विषयोंमें लगते हैं तो उनकी एक विषयमें ही प्रवृत्ति होती है मुख्यतासे। जैसे हाथीकी मुख्यता होती है स्पर्शन इन्द्रियके विषयसे। विषयसे हाथी पकड़ा जाता है। गड्ढेमें जीव पाट करके शिकारी लोग ऊपर कागजकी एक हथिनी बना देते हैं। जब हाथी जंगलसे

[illegible] कागजकी बनी हुई हथिनीको देखता है तो उसके पास जाता है। जब उसके पास जाता है तो तीनोंसे ढके हुए गड्ढेमें गिर जाता है। फिर वे पकड़ने वाले ८-१० दिन बाद जब वह हाथी शिथिल हो जाता है तो उसमें पैंड बनाकर अंकुश लेकर उसके सिरपर बैठकर निकाल लेते हैं। तो हाथी एक इन्द्रियके विषयमें आकर फंस गया, बंधनमें पड़ गया। दूसरे इन्द्रियको रसना है जीभ। इस रसना इन्द्रियमें ही पड़कर मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। उनके पकड़ने वाले कोई मांस कबेराका टुकड़ा या कोई खानेके अनाज कबेरको बीचें डालकर पकड़ लेते हैं। तो उन मछलियोंने प्राण गंवा दिए तो उस रसनासे ही तो।

यह चर्चा हो रही है कि विषयसे अपने प्राण गंवा देते हैं। भंवरा काठको भेद देता है, पर कमलके लोभमें पड़कर कमलके फूलमें रातको बन्द हो जाता है। देखो भंवरेमें इतनी ताकत होते हुए भी वह मस्त होकर कमलके फूलमें बंध जाता है। देखा होगा रातमें पतंगे दीपकमें जलकर मर जाते हैं। उन पतंगोंको नेत्र इन्द्रियका विषय तेज लगा, जिससे वे उस दीपकको भी भी दूरसे न देख सके, उस ही में पड़ गये। उनको वही लौ पसंद लगती है, उसीमें ही वे जल जाते हैं। हिरन और सांपोंको देखा होगा पकड़ने वाले बीन बजाकर और और कई सुन्दर राग करके उनको वशमें कर लेते हैं। ये जीव १-१ इन्द्रियके वश होकर अपने प्राण गंवा देते हैं। पर मनुष्यको देखो यह पांचों इन्द्रियोंके वशमें पड़ा हुआ है। पंचेन्द्रियके आधीन होकर यह मनुष्य अपना जीवन गंवा रहा है। उन्हें तो यह चाहिए कि वे धर्म करें, ध्यान करें, प्रभुकी भक्ति करें, तपस्या करें, संयम करे, ऐसा भाव बना लें जिससे कि वे कर्मोंसे मुक्त हों पर वे वैसे ही हैं जैसे कोई अंधा खजैला आदमी हो, भिखारी हो, उससे कहा जाय कि इस नगरीमें चला जाय और मनमाना भर पेट भोजन करे। एक गांव में चारदीवारी घिरी थी, उस चार दीवारीमें कुछ दरवाजे थे। वह उसका कोर पकड़ कर चलता है। जब दरवाजा आता है तब वह हाथ उठाकर सर खुजलाने लगता है और पैरोंसे चलना जारी रखता है। फिर हाथ रखकर चलने लगता है, आगे जब दरवाजा आ गया तब सर खुजलाने लगा। इस तरहसे वह दुःख ही दुःख पाता रहा।

इसी तरह यह जीव ८४ लाख योनियोंमें भ्रमण कर रहा है। जब यह मनुष्यभव पाता है तो विषयभोगोंके खाज खुजलाने लगता है, उन विषयभोगोंमें ही मस्त हो जाता है। फिर कोई परिणाम करके मर जाता है। इस तरहसे जन्ममरणके चक्करमें पड़ा रहता है। इस संसारसे छूटने के नाना अवसर आते हैं, पर मनुष्य उस समय असावधान हो जाता है। जो मनुष्यजन्म पाया है तो जीवनमें ऐसा उपयोग बनाओ कि प्रभुकी भक्तिमें लग जाओ और व्यवहारमें ऐसा चरित्र बनाओ कि अपने द्वारा कोई जीव दुःखी न हो सके। तब सुखी रहें,

आशा करो और वह नहीं मिलती तो वहां दुःख होते हैं। ज्ञानी पुरुष वह है जो किसीकी आशा न करे। जो आशा नहीं करता वही जगतमें पूज्य होता है। और पूज्यकी बात तो अलग है। वे अपनेमें बड़ी शान्ति रखते हैं। जो आशा रखते हैं वे निरंतर दुःखी रहते हैं। सो ऋषि लोग किसी भी बाहरी चीजकी आशा नहीं रखते हैं। आशासे बड़े दुःख होते हैं। सो सबको अनुभव होगा कि जिसने आशा की, वह दुःखी अवश्य हुआ होगा। ये योगी पुरुष बाहरमें जो बड़ा तप करते हैं, पंचाग्नि तपते हैं, धूप सहते हैं, ठंड सहते हैं, उपवास करते हैं ये बाहरी तप किसलिए करते है आशाके नाशके लिए। उसमें भी यह दृष्टि उनकी रहती है कि यह आशा पिशाचिनी मुझसे दूर हो जाय। यह आशा पिशाचिनी बड़ी भयंकर है। जिसके पीछे लग जाती है उसे बरबाद कर देती है। इस जीवको मिलता तो कुछ है नहीं। यह तो दूसरोंके लिए भार सहता है। जिनके लिए यह रात-दिन परिश्रम करता है, उनसे कुछ मिलेगा नहीं। यह मेरा आत्मा तो ज्ञानमय है, आनन्दका पिंड है। मनकी बुद्धिकी वजहसे इसमें नाना विकार उठ रहे हैं, तरंगें उठ रही हैं सो तरंगें उठकर ये तरंगें ही हाथ लगेंगी। सो ये भी न रहेंगी, और और आयेंगी, चीजें कुछ नहीं मिल जायेंगी। जैसे जिसे जो चीज मिलती है, उसकी आत्मा भी उन चीजोंसे न्यारी है, उन चीजोंमें वह क्या तन्मय है? बताओ करोड़पति है, अरबपति है, पर धन उसका बाहर ही पड़ा है कि धन उसकी आत्मामें आ गया क्या? वे तो ज्योंकी त्यों चीजें हैं, उनसे कुछ मिलता भी तो नहीं। केवल आशा करते हैं। आशा करनेसे ही इस जगतके जीव दुःखी हो रहे हैं। योगीजन जो कुछ करते हैं वे आशाके नाशके लिए करते हैं। ज्ञानी पुरुष जो कुछ भी करते हैं, वे आशाके नाश के लिए करते हैं। सो भैया! किसी भी काममें आशा न रखो।

जब तक आशा लगी है तब तक क्लेश है। जिस दिन आशा मिट जायगी, उस दिन क्लेश भी मिट जायेंगे। आजकल कभी किन्हींके कानोंमें कोई भयंकर समाचार सुनाई दे तो वह दुःखी हो जाता है। क्यों दुःखी हो जाता है कि कोई आशा लगाये है सो बैठे बैठे दुःखी हो रहे हैं। उनकी आशामें अगर पानी फिर जाय तो फिर दुःख काहेको हों। आशासे ही बाधा लगी, उससे ही दुःख बनते हैं। उस आशाका पहले ही नाश कर दो। उस आशाको आप ही स्वयं समझ लो कि आशा एक विकार है, वह क्लेशोंके लिए मिलती है। यदि आशा न रखे तो क्लेश न रह जायेंगे। सो भैया! पूजा करो, भक्ति करो, तपस्या करो, दान दो, कुछ भी धर्मके काम करो। उसमें आशाके नाशका लक्ष्य रखो। तुम भगवानकी पूजा करो और कुछ आशा रखकर पूजा करनेकी भावना न करो। मेरे बच्चोंको सुखी रखना, भगवान् मेरे बच्चोंका पालन-पोषण करना, भगवान् मेरी गरीबी दूर हो इत्यादि आशायें

रखनेसे भक्ति कहां रही ? भगवानकी भक्ति है कि पुत्रोंकी भक्ति है ? यदि ऐसा होगा तो दुःख जरूर होगा और यदि ऐसा नहीं है तो दुःख काहेको होवे ? देखो आशाका कितना गहरा रंग इस मोही जीवके चढ़ा हुआ है, पर जो भगवान् है, वीतराग है, सर्वज्ञ है, निर्दोष है, उन भगवान्की भक्ति करके भी आशा रखते हैं, तो कुछ भला नहीं होता है, फल नहीं मिलता है। फल तो तब मिलता है जब निष्कपट भक्ति होगी। यह तो कपट वाली भक्ति होगी। यह बात बहुत भलेकी कह रहा हूं जिससे अपना साक्षात् भला होता है। परीक्षा करके देख लो। सब आशाओंको दूर कर दो तो आनन्द मिल जायगा। आशाको नहीं छोड़ते और आनन्द चाहते तो दोनों बातें तो हो ही नहीं सकती है। भगवान्को हम क्यों पूजते हैं कि वह सब आशाओंसे दूर है। गुरुवोंको क्यों पूजते हैं कि वे सब आशाओंसे दूर है। जिन भगवान्को हम पूजते हैं उनसे यदि हम आशायें ही आशायें रखें तो जीवनमें हम शुद्ध नहीं होंगे। मैं प्रभुकी भक्ति करूँ तो आशाओंके नाशके लिए। भगवान्से कुछ मांगो तो यह मांगो कि हे प्रभु ! कब ऐसा समय हो कि मेरेमें रंच भी आशा न रहे, मैं किसी पदार्थमें आशा न लगाऊँ, यह मुझे कर दीजिए। ऐसी भगवान्की भक्तिकी आवाज निकले, ऐसा वर यदि नहीं मांगते हैं तो भगवान् भी विमुख हो जाता है। विषयोंकी इच्छासे भगवान्का प्रसाद नहीं मिलता है। अब यह देख लो कि किसी मित्रसे मित्रता रखो और यदि उसको मालूम हो जाय कि यह स्वार्थके कारणसे मित्रता कर रहा है तो बतलावो क्या वह अन्तरमें मित्र तुम्हारा हो सकेगा ? नहीं होगा। जब मित्रको यह मालूम हो जाये कि इस गरजसे मेरे पास आया है तब क्या कुछ महत्त्व रहेगा ? कुछ भी तो महत्त्व नहीं रहेगा। यदि निष्कपट होकर प्रीतिमें आया है, ऐसा मालूम पड़े तो सच्चा मित्र बनेगा। भगवान्का प्रसाद तो हमें तब मिलेगा जब निष्कपट भावसे हम भगवान्के पास पहुंचते हैं।

यहाँ तो ऐसी खुदगर्जी लगी होती है कि ये भगवान्की भक्तिमें नहीं आते, कुछ न कुछ आशायें लगाकर आते हैं। प्रभुकी भक्ति वह है, जिसमें आशा नहीं है। बिल्कुल जिसने आशाओंका त्याग करके भक्ति की, प्रभु मुझे कुछ नहीं चाहिए, केवल मुझे उपासना भक्ति आपकी चाहिए, आपमें ही मेरा मन लगा रहे, आपके गुणोंमें ही मेरा चित्त रहे, ऐसा अगर भाव है तो मैं सुखी हो सकता हूँ। किन्हीं चीजोंसे मुझे लाभ नहीं है। हे प्रभु ! तुम्हारे दर्शन मुझे प्राप्त हों यही मेरी एक चाह है और मैं कुछ नहीं चाहता। ऐसी भक्ति हो तो कुछ पल्ले पड़ेगा, नहीं तो कुछ पल्ले नहीं पड़ सकता है। जैसे कहते हैं कि एक साधुको किसी गरीब आदमीने आहार दिया। वह आदमी बड़ा ही संयमी था, सदाचारी था। आहार देनेसे उसके घरमें रत्नोंकी वर्षा हुई। उसके पड़ोसीने ऐसा सोचा कि साधुको दूसरे दिन हम

भी आहार दे जिससे हमारे घरमें भी रत्नोंकी वर्षा हो। भोजन बनाया, साधुको भोजन मिलाया और उनको देखता है कि कब बरसे, पर कहाँ बरसे? वहाँ तो माया रखकर साधुको आहार कराया था। जो निष्कपट भावसे जो साधुओंकी सेवा करे, उसका भला होता है। यदि मायाको छोड़ सके तो अपनी दया करके छोड़नेका यत्न करो और न छोड़ सके तो जो होता है वह होता ही रहता है। जब हम वस्तुओंकी आशा करें, जीवोंकी आशा करें तो हम अपने ही क्लेशोंको बढ़ाते हैं। अनुभव कर लो कि जीव बहुत हैं और सबकी मंशा है जुदा-जुदा, सबकी इच्छा है जुदा-जुदा, सबका कषाय है जुदा-जुदा, वे अपने-अपने कषायसे अपना-अपना खेल करेंगे। अपने-अपने सुखकी ओर झुकेंगे। इतनी खुदगर्जी क्यों है, यों कि स्वार्थसिद्ध है। ऐसी पिशाचिनी इस आशाको छोड़ो और अपने आपमें झुको। तब तो कुछ मिलेगा, नहीं तो कुछ नहीं मिलेगा।

धर्मके काम करो और यह भाव रखो कि हे प्रभु! मेरी आशाओंका कब नाश होगा? तो किसी भी चीजकी आशा नहीं करना चाहिए। सभी चीजें मिटने वाली हैं, लोग छीन लेंगे। यदि न छोड़ सकोगे तो मरने पर सब छूट जावेंगी किसी पदार्थकी आशा न करो तो उस अपने आत्मस्वरूपकी ही उपासना करो। और आशाका नाश कर स्वयं सुखी होवो।

> बाह्यं तपोऽपि नाशायाशाया यस्मात्तपस्यपि।
>
> आशानाशाय सेवे स्वं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥३१॥

धर्म ही उद्धारक है, तुम्हारा उद्धार करने वाला धर्म है कि जिनके नाक बहती है ऐसे लड़के उद्धार कर देंगे? स्त्री, पुत्र, मित्र कौन उद्धार कर देंगे, कोई भी तो उद्धार नहीं करेगा, वे तो सतानेके निमित्त बने हैं क्योंकि उनका ख्याल करना, उनसे मोह करना, उनके सुखके लिए जिन्दगीभर परिश्रम करना ही बना रहेगा। वे कोई मेरा उद्धार न कर सकेंगे, बल्कि उद्धारके काममें विघ्न करेंगे। वे इधर-उधर कहेंगे कि पिताजी कुछ काम नहीं करते, जब देखो मंदिरमें ही बैठे रहते हैं। न पैसा कमाते हैं, न कुछ करते हैं। इस तरहसे वे पतन के लिए ही सोचेंगे, उद्धारके लिए न सोचेंगे। अपना उद्धार करने वाला एक धर्म ही है और रक्षा करने वाला धर्म ही है, कोई दूसरा रक्षा नहीं कर देगा।

जब तक पुण्यका उदय है सभी आदमी अपने पीछे लगे रहते हैं और यदि पुण्यका उदय नहीं आता है तो कोई नहीं पूछता है। अच्छी तरहसे रहो, धर्मसे रहो तो अपना स्वरूप ही रक्षक है। यह मैं आत्मा स्वयं ही धर्मस्वरूप हूँ। धर्म मुझसे अलग नहीं है, मैं धर्मसे मिला हुआ हूँ। मैं धर्मस्वरूप हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ। धर्म स्वभावको ही कहते हैं और स्वभाव है तुम्हारा ज्ञान। अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव करो यही धर्म है और यह धर्म ही हमारा रक्षक

है। मुझे पवित्र करने वाला मैं हूँ और अन्य मुझे पवित्र कोई नहीं करता।

ये जो बड़े-बड़े समारोह होते हैं, बड़े बाजे-गाजे बजते हैं? ये सब पवित्रताके लिए बजते हैं कि अपवित्रताके लिए बजते हैं। ये बाजे-गाजे तो अपवित्रताके लिए बजते हैं।

कोई लड़का पैदा हुआ तो बाजे बजाते हैं। ये बाजे मोहमें पड़नेके लिए ही तो बजते हैं। ये इसमें खुश होते हैं। खुश होकर ही तो बाजे बजवाते हैं। यह अपवित्रता ही तो है। विवाह शादी आदिके समयमें बाजे बजवाना अपवित्रता ही तो है। ये अपवित्रता बनानेकी तैयारीमें खुश हैं। तो जितने ये समारोह होते हैं ये सब पापोंकी बातोंके समारोह हैं। ये समारोह धर्मके नहीं होते हैं। ये पवित्र करने वाली चीजें नहीं हैं। ये सब लोकमें फंसनेकी बातें हैं। ये आत्माको पवित्रतामें नहीं ले जायेंगे। आत्माके पवित्र करनेकी तो धर्मपरिणति है। धर्म करना, पवित्र बनना, एक ही बातकी रटन लगाओ कि मैं सबसे न्यारा हूँ, मेरा किसीसे पूरा नहीं पड़ेगा, मैं अपने आपको देखूं और अपने आपमें ही रमूं यही मेरे सुधारका उपाय है। धर्म ही पवित्र करने वाली चीज है। तुम्हारा असली बन्धु कौन है? बड़ा भाई है अथवा छोटा भाई है वह तुम्हारा असली भाई नहीं है। आप लोगोंने तो जमाने देख लिए। जो ४०-५० वर्षकी उम्रके भाई हैं वे एक परिवारमें रहते हों ऐसा तो बहुत कम दिखता है। ऐसा तो आज शायद देखनेको नहीं मिलेगा। तो फिर तुम्हारा बन्धु कोई नहीं है। जिनको अपना बन्धु मानते हैं वे भी अलग हो जाते हैं। ये बन्धु तो दगा देनेके लिए हैं, नुकसान देनेके लिए हैं। मौका पड़ने पर मतलब सिद्ध करनेके लिए हैं। ये तुम्हारे असली बन्धु नहीं हैं। असली बन्धु तो तुम्हारा धर्म ही है। यह धर्म तुम्हें धोखा नहीं देगा। अपने परिणाम शुद्ध हों, क्षमाकी भावना हो, अहंकार न हो, संतोष हो, ये सब हों तो आनन्द मिलता है, अपने प्रभुके दर्शन होते हैं, अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव होता है। धर्म धोखा नहीं देता है। तुम्हारा असली बन्धु धर्म ही है। तुम्हारा गुरु कौन है? दूसरे लोग लोकाचारमें गुरु हैं। मेरा गुरु तो मैं ही हूँ क्योंकि मैं ही स्वयं आचार-विचारसे रहूं तो मुझे शान्ति मिलेगी, मोक्षका मार्ग मिलेगा। यदि विकल्पमें हम दूसरेके आधीन हो गए तो समझो कि मुझसे भूल हो गयी। इसलिए मेरा गुरु मैं ही हूँ। जब सूर्यका उदय होता है तो प्रकाश हो जाता है। रास्ता दिखने लगता है, किन्तु चलने वाले खुद चलें तभी रास्ता निकलेगा कि सूर्य चला देता है। सूर्यके चलानेसे रास्ता कटता है, ऐसा किसीको नहीं होता। सूर्यका काम है उजेला हो, आगे चलने वाला खुद चले। इसी तरह गुरुओंका काम है कि हितकी बात कह दें, आगे चलना आप लोगोंका काम है। केवल बातसे तो आनन्द नहीं आता है। अब भोजनकी बात तुमसे खूब कह दें कि अमुक चीज भी बनायी जाती है, तो इससे क्या पेट भर गया? अरे

पहले बनायें, फिर खायें तब पेट भरेगा। लोकमें जो गुरुजन होते हैं वे हितकी बातें बतला देते हैं। मैं उन बातोंको अपनाकर चलूं तब जीवन सफल हो सकता है। परमार्थसे मेरा गुरु कौन है? मेरा गुरु मैं ही हूं। मैं ही इस लोकमें मेरेको सर्वस्व हूं। अब इन रागोंको छोड़कर गुरुजनोंकी बातोंको पकड़कर चलूं, अपने ज्ञानस्वरूपको देखूं और अपनेमें अपने आप सुखी होऊं। मेरा सुख मेरे ऊपर निर्भर है और मेरा दुःख मेरे ऊपर निर्भर है। कोई दूसरा मुझे सुखी दुःखी नहीं कर सकता है। यदि मैं रागसे हटकर ज्ञाता दृष्टामात्र रहूं तो मैं ही अपनेको सुखी बना सकूंगा। दूसरे मेरा कुछ नहीं कर सकते। दूसरा कोई मुझे गाली दे दे या कहीं धनका नाश हो जाय तो वहां भी दुःखी कर लेना अपने विकल्पके आधीन बात है। अरे यदि धनका नाश हो रहा है तो इससे मेरा क्या नुकसान हो रहा है? यदि किसीने मुझे गाली दे दिया तो इससे मेरा क्या नुकसान हो गया? कुछ भी तो नुकसान नही हो गया। जो यहाँ पैदा हुआ वह यहांसे जायगा जरूर तो फिर हमारा यहाँ क्या रहा? हमारा यहाँ कुछ भी तो नही रहा। सो रागादिको छोड़कर अपने आपके ज्ञानस्वरूपको देखकर स्वयं सुखी होऊं।

धर्म उद्धारकस्त्राता पावको बान्धवो गुरुः।

सोऽहं रागादिकं मुक्त्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४०॥

धर्म भेषमें नहीं है, भेषमें धर्म नहीं है। यह बतलाया जा रहा है कि लंगोटी कस लीजिए, गेरुवे कपड़े पहिन लीजिए, लंगोटी लगा लीजिए, हाथमें कमंडल ले लीजिए तो क्या इससे धर्म मिल जायगा? इन बातोंसे धर्म नही मिलता है। यह तो बाहरकी बात है बल्कि धर्मकी आशासे कोई ऐसा रूप बनाए तो उसको धर्म है ही नहीं क्योंकि उसने आशा बना रक्खी है, धर्म किसी भेषमें नही मिलेगा, धर्म किसी यात्रामें नहीं मिलेगा। चलो शिखर जी, चलो हरिद्वार वहाँ धर्म मिलेगा ऐसी बात नहीं है। वहाँ पर धर्म बिखरता नहीं नहीं, केवल कल्पनाएँ ही कर लेते हैं। कितने ही पाप करते है, कहते हैं, हरिद्वार चले जायेंगे, गंगास्नान कर लेंगे तो पाप कट जायेंगे। ऐसा नही है। खूब पाप करते हैं कहते हैं ३–४ सालमें गंगा स्नान कर लेंगे। तो सारे पाप धुल जायेंगे, ऐसा नहीं है।

धर्म किसी यात्रामें भी नहीं है, किसी तीर्थस्थानमें भी नहीं है। यहाँ वंदना करे, भगवान्की भक्ति करे, मूर्तिके सामने रोज सर रगड़े, इससे तो धर्म नहीं मिलता। तो धर्म किससे मिलता है? अभी बतला दूंगा। मस्तक नवा लेना तो शरीरकी चेष्टाएं हैं, इसमें धर्म नहीं है। धर्म मिलेगा कैसे, अब कहेंगे। क्या धर्म किसी मंदिरमें मिलता है? मंदिरमें चले गए। मंदिरके आगे सिर नवाकर बैठ गए तो इससे धर्म नहीं मिलेगा तो मंदिरमें भी धर्म नहीं है तो धर्म है क्या? धर्म है आत्माका स्वभाव। आत्माका स्वभाव है ज्ञान जो

इस ज्ञानस्वरूप को पाकर उसीमें ठहरे तो धर्म मिलेगा। तो फिर मंदिरमें क्यों जाते हैं? मंदिर एक धर्मस्थान है। जहाँपर वीतराग सर्वज्ञताकी मूर्ति विराजमान है। वह मूर्ति हमें शिक्षा देती है कि यदि शांति चाहते हो तो सारे नटखट झगड़े त्यागकर धर्ममें लीन हो जायें। मूर्ति यह शिक्षा देती है कि कहीं मत जावो, एक स्थानपर स्थिर हो जावो, हाथमें हाथ रख-कर मूर्ति यह उपदेश देती है कि कोई करने योग्य काम नहो है। मूर्तिमुद्रा उपदेश देती है कि शान्ति चाहते हो तो आत्माका ध्यान करो, आदरसे भगवानकी साधना करो। इतना करनेसे अपने ज्ञानस्वरूपका पता लगता है। यही व्यवहारसे धर्म है। वास्तवमें अपने आपको सम्भा-लना ही धर्म है। यहाँ तो लोग ऐसा करते हैं कि मंदिरमें पहुंच गए ख्याल बनाए हुए, वहाँ बोलते हैं कि भगवान् हमें सुख दो। हे भगवान् फलानेका नाश कर दो तो अब यह बतलावो कि यह धर्म है कि अधर्म है। भले ही मंदिरमें हो। धर्म कोई चाहे तो मंदिरमें बैठे बैठे कर सकता है। धर्मकी बात मिल सकती है। सब जीवोंको एकस्वरूप चैतन्यमात्र देखो। सब जीवोको सुखी करनेकी भावना रक्खे। कोई भी जीव दुःखी न हो, ऐसा सबको प्रभुके समान निरखो तो धर्म मिलेगा। बाहर ही बाहर भटकते रहनेसे धर्म नहीं मिलेगा। आप कहें कि अभी कहा है कि वंदना पूजामें धर्म नहीं है, हाँ सो ठीक है। वंदना पूजा करके तो अपने ज्ञानस्वरूपकी खबर आवे, प्रभुकी याद आवे तो वंदना और पूजा धर्म हो जायेगा और यदि अपने ज्ञानस्वरूपका ख्याल नहीं, प्रभुकी याद न आवे तो वंदना और पूजा हो कष्ट है। अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव हो तो धर्म मिलेगा। यात्रामे यात्रा स्वयं धर्म नहो है। टिकट खरीदा, गाड़ीमे बैठे, मुसाफिरोंसे भिड़े, कमसे कम पैसोंमें पहुंच जायें तो ठीक है, यह सोचा। क्या अटपट सोचना कहना धर्म है? धर्म नहीं है। धर्म तो तब है यात्रामें जब प्रभुकी भक्ति हो। वह प्रभु शान्त है, शुद्ध है, पवित्र है, उनकी महिमा कौन गा सकता है?

यदि प्रभुका स्मरण हो तो यात्रा भी धर्म है। अपने भगवान्का स्मरण रखना ही धर्म है। कहो कि भेषमें धर्म क्यों नही तो भैया भेष बना लेनेसे ही धर्म नहीं। अगर घरमें कुछ न हो फिर भी कहें कि हमने सब कुछ त्याग दिया यह धर्म नहीं है। अगर मात्र जानन बन गया तो यही त्याग है। धर्म त्यागमें है, ज्ञानमें है। कितने ही लोग धर्मके नामपर गांजा भी पीते पिलाते; भांग भी पीते पिलाते तो इससे धर्म नही मिलेगा। और भी करते हैं पर वे इसको धर्म ही मानते हैं। कुछ लोग यह मानते हैं कि मदिरा पीनेमें धर्म है, अफीम खानेमें धर्म है। अरे ये काम धर्ममें नहीं होने चाहियें। ऐसा गृहस्थीको विवेक होना चाहिए, सम-झाना चाहिये कि साधु महाराज आप किस तरफ जा रहे हैं, धर्मके ध्यानमें लगो। एक भूख ही ऐसी है जिसके बिना नहीं रहा जा सकता सो एक बार खा लो बाकी ध्यान करो। धर्म

तो जानते है। तो अपने उस आत्मस्वरूपमें ठहरो और अपनेमें ही स्वयं सुखी होओ। हे भैया ! धर्म ही रक्षक है, उस धर्मका ही स्मरण करो।

धर्मो देवे न मायावी वंद्यं न च मंदिरे।
धर्मं शान्तिमये तिष्ठन्वो स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४१॥

धर्म किसे कहते हैं ? जिसमें मोह नहीं और क्षोभ नहीं, उसे धर्म कहते हैं। मोह कहते हैं मिथ्यात्वको। किसी परके साथ सम्बन्ध मानना इसीका नाम मोह है। जैसे मेरा पुत्र है, मेरा घर है, मेरी स्त्री है, जहाँ पर मेरापन का भाव हो उसे मोह कहते हैं। क्षोभ, रागद्वेषके कारण जो आकुलताएं मची हैं उनको क्षोभ कहते हैं। तो धर्म वह है जिसमें मोह और क्षोभ न हों। ऐसे भी लोग हैं जिन्हें मोह नहीं है, पर क्षोभ है। ऐसे भी लोगोंको ज्ञानी कहते हैं। ज्ञानीको भी किसी किसी समय क्षोभ आ जाता है तो जितने अंशमें क्षोभ है वह धर्म नहीं है, मोह तो धर्म है ही नहीं। धर्म तो वीतरागताका नाम है। जहाँ पर वीतरागता हो वहाँ पर मोह और क्षोभ कैसे ? शान्ति तो अपनी सत्य-श्रद्धा पर है। यहाँ जो चीजें अपनी नहीं हैं उन्हें अपनी मानना, वह तो बहुत बड़ा पाप है। ऐसे पाप करते हुए भी क्लेश न हो, यह कैसे हो सकता है ? सब जुदा-जुदा जीव हैं, जुदा-जुदा बातें हैं, सबके जुदे-जुदे परिणमन हैं और फिर भी भीतरमें यह मानते कि मेरा सब कुछ है। यह मानना तो बड़ा पाप है। व्यवहारसे किसी जीवको सता लिया जाय, किसीका किसीसे घात हो जाय, हत्या हो जाय तो उसे मानते हैं कि बड़ा पाप किया। कोई किसीका घात कर दे उसे कहते हैं बड़ा पाप है। जीव घात करनेसे भी बड़ा पाप है। मोह—परवस्तुको भीतरमें समझ ले कि यह मेरे है, यह सबसे बड़ा पाप है। घरमें रहते हो, धर्मकी बात मानते हो, पूजा करते जीवन गुजार रहे हो और आप मान रहे हैं कि हम सही मार्गमें हैं, मोक्षमार्गमें हैं, भगवान् की सेवा पूजा करते हैं, यही हम शुद्ध मार्गमें हैं। पर भीतर यह टटोलो कि तुम्हारे अन्दर यह परिणाम है कि नहीं कि यह मेरा घर है, यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरी ही तो देह है, यह देह ही तो मैं हूँ, इस तरह परपदार्थोंमें आत्मबुद्धि आती है, तो यह बहुत बड़ा पाप है। महापुरुष यही कर रहे हैं, अपने घरमें बैठे हैं, आनन्दसे बैठे हैं, कुत्ता, बिल्लीपर दया करें, पर अपने आप पर दया न करें तो विवेक तो न रहा। चूहेको बचा लिया, बिल्ली को बचा लिया और यह समझ लिया कि हम बड़े धर्मात्मा हैं। लालटेन जलनेपर कीड़े आते हों और छिपकली कीड़ोंको खाने आती हो तो उन कीड़ोंको बचा लिया, मान लिया अच्छा यदि यह करते हो तो ठीक है, मगर यह चाह न करो कि हम स्वर्ग जायेंगे। यह न चाह करो कि हम अच्छी ही गतिमें जायेंगे, ऐसी आशा न रखो। आशा ऐसी रखो जिससे भीतर

में मोह परिणाम न हो। कुत्तों पर दया करो, बिल्लियों पर दया करो, यह तो ठीक है। पर परमार्थ दया वह कहलाती है कि मोह न हो। ज्ञान सही बन जाय यही तो सबमाको दया है। जब तक ज्ञान सही नहीं आ जाता सम्यग्दर्शन नहीं होता है। कितने ही व्रत कर लो, तप कर लो, संयम कर लो, मुनि भी हो जाओ, पर सही ज्ञान जब तक नहीं आयेगा तब तक अच्छा फल नहीं मिलेगा। इसलिए सबसे बड़ा पाप मोह है। यह मोह न रहे तो उसे धर्म कहते हैं और यह बतलाओ मोह किस चीजका करते हो? तुम्हारी चीज हो तो मोह करो। ये चीजें तुम्हारी हैं क्या? बतलाओ। यह हमारा घर है, अरे अगर आज सरकार छीन ले तो अगर कोई जबरदस्ती छीनना चाहे उसे दे दो तो या न दो, ठीक-ठीक रहे तो मरोगे तब तो छोड़ना ही पड़ेगा। तो फिर कोई वश नहीं चलता। फिर तुम्हारे घर, पुत्र, स्त्री आदि कैसे हुए? बतलाओ। उन सबके लिए ही चाकरी कर रहे हो, स्त्री पुत्रोंकी सेवा कर रहे हो। मरे जा रहे हैं, पर स्त्री, पुत्र, परिवारकी सेवा कर रहे हैं। उनके पुण्यका उदय है इसलिए कमाने वाले टट्टूसे जोते जा रहे हैं। और उनसे ही आशा कर रहे हैं। तो इससे हटें तो अच्छे हो जायें। यदि हम सही हो जायें तो ठीक है और यदि नहीं हुए तो हमें मोह होगा। मोह ही सबसे बड़ा पाप है। दुनियामें इस शरीरके द्वारा जितने भी पाप होते हैं सब मोहके ही पाप हैं। ये मोह बड़े सस्ते लग रहे हैं, खूब चिपक रहे हैं, लिपटा रहे हैं, पर इस मोहके ही कारण दुनियामें अहंकार है। जिसमें मोह और क्षोभ नहीं होता है उसे धर्म कहते हैं और वह धर्म वीतरागता है। सो ऐसा मेरा स्वभाव हो कि मैं वीतरागी बन जाऊं, केवल ज्ञानपरिणमनमें रहूँ, तो मेरा जीवन सफल हो सकता है, मेरी ही तो वह परिणति है। इस कारण मैं अपने ज्ञानस्वरूपको ही देखूँ मैं ज्ञान और आनन्दसे ही रचा गया हूँ, ज्ञान और आनन्दका पुञ्ज हूँ अर्थात् मेरेमें और कुछ नहीं भरा है। मेरेमें न रूप है, न रस है, न गंध है, न स्पर्श है। मैं तो केवल ज्ञान और आनन्दसे भरा हूं। सो मैं अपने ज्ञानमय तत्त्वको देखूं और स्वयं सुखी होऊं।

मोहक्षोभो न यत्रास्तिः स धर्मो वीतरागता।
सा मे परिणतिस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४२॥

यह कैसा मोह अपनेमें आ गया है कि जन्म मरणके चक्कर यह जीव काटता चला आ रहा है। इस दुनियामें ऐसा कोई प्रदेश नहीं बचा जिसमें इस जीवने जन्म न लिया हो और मरण न किया हो। एक भी जगह नहीं बची जहाँ पर इस जीवने जन्म न लिया हो। अनन्त बार इस जीवने जन्म लिया और अनन्त बार मरण किया। जिस जगह इस जीवने जन्म लिया, वहाँ भी इस जीवने राग किया। अच्छा बताओ, राग किया कि नहीं किया।

फिर भी पेट राग करके नहीं भरा, रागोंसे तृप्ति नहीं हुई। इस समागममें क्या तृप्ति हो जायगी ? क्या मन भर जायगा ? नहीं। तो यथार्थता पहिचान लो। घरमें रहते हुए विरागी बनो। रागसे लाभ नहीं है। इसलिए रागरहित अपनेको देखो। कहाँ राग करते हो ? यह लोक कितना बड़ा है ? मंदिरमें कहीं-कहीं लोकके नक्शे बने रहते हैं ? ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक। ये सब लोक ३४३ घन राजू प्रमाण है। कहते हैं रूस, जर्मनी, जापान ब्रिटिश ये समस्त भरतक्षेत्रकी एक थोड़ीसी जगहमें हैं। भरतक्षेत्रमें यह पूरी दुनिया नहीं है। भरतक्षेत्रके ५ हिस्से हैं। उसमें एक आर्यखंड है, उसकी थोड़ी जगहमें ये वर्तमान समस्त सारी दुनिया हो तो भरतक्षेत्र कितना बड़ा है ? जम्बूद्वीप इत्यादि असंख्य बड़े द्वीप हैं। कोई जगह नहीं बची जिसमें इस जीवने जन्म न लिया हो, मरण न किया हो। और जब जन्म लिया था तो जैसा समागम मिला था वैसे ही उसी परिवारमें झुक गए थे। और उन जीवोंमें बार-बार राग करते रहे। इसी तरह वर्तमानमें भी रागद्वेषोंसे ही सारी जिन्दगी गुजार दी, कुछ भी चीजें हाथमें नहीं रहीं। धर्म नहीं किया, मोह राग ही सदा किया। यह तो इस जीवने अच्छा नहीं किया। हाँ धर्ममें दृष्टि दे दो तो कुछ चीज साथमें रह जायेगी और अगर धर्म न किया तो कोई भी चीज साथमें नहीं रहेगी। धर्म साथमें रख लेनेकी चीज है कि परिवार कुटुम्ब इत्यादिमें रागद्वेष मोह करना ठीक है ? यह मेरा पुत्र है, यह मेरी स्त्री है आदि। अरे ये सब मिट जाने वाली चीजें हैं। तो जो मिट जाने वाली चीजें हैं उनसे तो प्रीति करते और जो अपनी चीज है, जिस पर अपना अधिकार है उससे प्रीति नहीं करते। रात-दिन चौबीस घंटे यह व्यर्थमें ही तो जा रहे हैं। कमाईमें कितना समय लगता है, दुकानमें समय लगता है थोड़ा ही तो, और बाकी समय गप्पोंमें ही तो जाता है। इधर-उधर की बातचीतोंमें ही तो जाता है। धर्ममें दृष्टि हो तो जीवको कुछ पुण्य भी हो जाय, नहीं तो जैसे अनन्तों भव गुजर गये तैसे ही यह भव भी गुजर जायगा। तो भैया राग मत करो। इन रागोंको छोड़कर रागोंसे रहित अपने स्वभावको देखकर अपने आपमें ही तृप्त होकर सुखी होओ। परकी आशा न रखो।

लोके रिक्तं न तत्स्थानमनंता जन्ममृत्यवः।
नाभूवन्यत्र किं रज्यै स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४३॥

हम क्या हैं ? इस बात पर विचार करें। हम एक चेतन पदार्थ है। हमको किसीने कभी बनाया था क्या ? किसीने नहीं बनाया था ? बनाया था तो किन चीजोंसे बनाया था ? हम अनादिसे हैं और जो प्रभुकी शक्ति है, चैतन्यस्वरूप है वह भी अनादिसे है। इस अपने स्वरूपको ही प्रभु कहते हैं। यदि अपने स्वरूपको देख ली तो प्रभुके दर्शन हो गए। इस मुझको किसीने कुछ नहीं किया। मैं तो अजर अमर हूँ, मैं तो अजन्मा हूँ, न मेरा कभी

जन्म हुआ और न मरण हुआ। जैसा मैं हूं तैसे ही जगतके सब जीव हैं। जैसे मेरा जन्म मरण नहीं है तैसे ही सब जीवोंका जन्ममरण नहीं है। मुझे किसीने नहीं बनाया। मैं अनादिसे हूं। मेरा कोई अन्त नहीं है। फिर यही तो लोग कहते हैं। जीवोंको, समुदाय पुद्गलोंको, ६ द्रव्योंको ही लोग समुदाय कहते हैं। तो इस लोकमें मुझे किसीने नहीं बनाया और न मेरा कभी नाश हो सकेगा। तीन कालमें मैं कभी नष्ट नहीं हूंगा, सदा बना रहूंगा। मैं कैसा बना रहूंगा? अपने परिणामकी बात है। यदि हम खोटे परिणाम करेंगे तो खोटे ही बने रहेंगे और यदि अच्छे परिणाम करेंगे फिर तो अच्छे ही बने रहेंगे। मुझको न तो किसीने बनाया और न कोई मिटायेगा। मैं अपने ही परिणमनमें रहता हूं। तो जो मेरी दशायें मिटती हैं वे मिटनेकी चीज हैं और जो दशाएँ बनती हैं वे बननेकी चीज हैं। पर मैं जो हूं वह अजन्मा हूं। इस मुझको किसीने नहीं बनाया और न कोई मिटायेगा। जब मैं कभी मिटूंगा नही तो यदि इस संसारमें रहे तो ये दशायें बनी ही रहेंगी। अब तुम्हें क्या मंजूर है? इस संसारके गर्तमें भ्रमण करना मंजूर है या केवल ज्ञाता द्रष्टा रहना मंजूर है। संसारमें भ्रमण करना स्वीकार न करो। संसारमें भ्रमण करना यदि नहीं चाहते हो तो ऐसा उपयोग होना चाहिए कि मैं ज्ञानमात्र हूं, ज्ञानस्वरूप हूं। मैं उस प्रभुकी ही उपासना करूं इस जगत्में कोई शरण नहीं है। मेरा इस जगत्में कोई साथी नहीं है। तो भैया! सबकी प्रीति छोड़कर अपने आपको देखो, अपने प्रभुके देखनेके अतिरिक्त तेरा कोई काम ही नहीं है। ऐसा विचार रखो कि मैं परिपूर्ण हूं, अकेला हूं, ज्ञानमात्र हूं, ऐसा यदि उपयोग रहे तो दुःख नही होते हैं। गुरुवोंके सत्संगमे, गुरुवोंकी आध्यात्मिक वाणीसे शुद्ध ज्ञान बनता है। शुद्ध ज्ञान होनेसे ही जीवन सफल है। यदि मोहदृष्टि रहे तो ऐसा जीवन पशुके समान है और ऐसा जीवन पानेसे कोई लाभ नहीं है।

लोके द्रव्याण्यनेकानि वर्तन्ते किन्तु वै निजे।
अहन्तो किं पुनः कुर्यां स्वो स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥४४॥

इस लोकमें पदार्थ कितने हैं? कितनी चीजें आंखोंसे देखनेमें आती हैं? कितनी चीजें दुनियाके अन्दर हैं? (किसीने कहा असंख्य) और असंख्य नहीं, अनन्त हैं। असंख्य उसे कहते हैं जिसकी गिनती तो नहीं है, मगर आखिरी जरूर है। अनन्त उसे कहते हैं, जिसमें आखिरी भी नही होती है, तो इस लोकमें पदार्थ अनन्त हैं। जैसे चौकी देख रहे हो तो यह एक पदार्थ है कि अनन्त पदार्थ? अनन्त है, एक पदार्थ नहीं है। एक तो उतनी चीज होती है जिसके टुकड़े नहीं होते हैं और चौकी वगैराके तो टुकड़े हो जाते हैं, यह वैज्ञानिक सत्य है। जो यूनिट है, अविभाज्य है, वह एक कहलाती है। यह शरीर एक पदार्थ नहीं है, किन्तु

परमाणु एक पदार्थ है, जो अविभाज्य हो जिसके टुकड़े न हों वह एक कहलाता है। ऐसा अविभाज्य एक परमाणु है। यह शरीर एक पदार्थ नहीं है, किन्तु अनेक परमाणुओंका पिण्ड है। यह शरीर अनन्त परमाणुओंके समूह द्वारा बना है। यह शरीर एक नहीं, अनन्त है। यह टूटता नहीं अनन्त है। बल्कि बिखरता है। जैसे अंगुली टूट गई तो लोग कहते हैं कि अंगुली टूटी नहीं, बल्कि बिखर गयी। अनन्त थी और अलग-अलग हो गई। यह शरीर एक नहीं, बल्कि अनन्तपरमाणुओंका पुञ्ज है, समुदाय है तो यह टूट-टूटकर, चूर-चूर होकर छोटे-छोटे अंश बन जाता है, बिखर जाता है। एक चीज वह कहलाती है, जिसका दूसरा टुकड़ा न हो सके। जैसे भौतिकमें एक-एक परमाणु है, और जीवोंमें एक-एक जीव है। हम और आपका सबका एक-एक स्वतन्त्र जीव है इसके अंश नहीं हो सकते। वह तो पूराका पूरा ही रहेगा। एक चीज वह कहलाती है, जिसका दूसरा अंश न हो। तो परमाणु अनन्त हैं और जीव अनन्त हैं। हर एक जीव एक है, यों सब जीव अनन्त हैं। सबका अस्तित्व न्यारा न्यारा है, सबका अनुभव न्यारा न्यारा है, सबकी परिणति न्यारी न्यारी है। इस कारण जीव अनन्त हैं, पर जातिअपेक्षा जीव एक है। जितने जीव हैं, वे सब चैतन्यस्वरूप हैं, सबका एकसा स्वरूप है। इसलिए जातिअपेक्षा एक हैं, पर अनुभूतिकी अपेक्षा, परिणतिकी अपेक्षा अनन्त हैं। जैसे दो मन गेहूं धर रखा तो बतलावो गेहूं एक है कि अनेक है, मगर जातिअपेक्षा एक है, गेहूंकी जाति एक समान है। इसलिए गेहूं एक है और अनेक भी है। इसी तरह जीव एक है और अनेक भी है। इसी तरह लोकमें देखो तो द्रव्य अनन्तानन्त है। किन्तु वे हैं सब अपने अपने ही स्वरूपमें। किसी द्रव्यके स्वरूपमें किसी दूसरे द्रव्यका प्रवेश नहीं है।

जैसे एक गिलासमें पावभर दूध और पावभर पानी मिला हुआ हो तो दोनोंके मिले होनेपर भी दूधके स्वरूपमें दूध है और पानीके स्वरूपमें पानी है। दूधका न पानी बन गया और न पानीका दूध बन गया। दूधमें जो रस है, स्वाद है, दूधकी जो परिणति है, वह दूध में है पानीमें नहीं। तो दूध जुदा और पानी जुदा है। एक गिलासमें एक आधा सेर पानी है तो पानी एक समान है। पानीका एक-एक कण ले लो वह एक समान है। एक-एक बूंद ले लो एक समान है। फिर भी प्रत्येक कण अपने अपने स्वरूपमें है। किसी बूंदमें दूसरा बूंद मिला हुआ न मिलेगा। ऊपरसे तो मिलेगा, मगर स्वरूप देखें, करेक्टरिस्टिक (गुण) देखो तो किसी कणका स्वरूप दूसरे कणके स्वरूपमें न आयेगा, ये पानीकी बात है। ऐसी ही बात देहमें देखो तो अनन्त परमाणु हैं, प्रत्येक परमाणु अपने-अपने स्वरूपमें है। किसी परमाणुमें दूसरे परमाणुका स्वरूप नहीं है तो एकका यदि दूसरेमें स्वरूप आ जाय तो अनेक

नहीं रहेंगे एक हो जायगा। फिर तो सर्व सर्वात्मक होगा, किन्तु ऐसा तो नहीं है। सर्व सर्वात्मक होनेके मायने कोई भी कुछ न रहा और है तो सब। सबकी भिन्न प्रकृति है, भिन्न भिन्न परिणमन है। इसलिए सिद्ध है कि जगत्में जीव अनेक हैं, जगतमें और सब अलग-अलग रहते हैं तो मैं अपने स्वरूपमें हूं। दूसरे अपने ही स्वरूपमें रहे, न उनमें मैं गया और न मुझमें वे आये, फिर मैं अहंकार किसलिए करूं कि मैं तो यही हूं ऐसा अहंकार क्यों हो जब कि वस्तुका स्वरूप अलग-अलग है। इसलिए अहंकार न करो, अपने स्वरूपको अपने आपमें देखो। जगतमें कितना ही भाग लो, दौड़ लो, उसमें शान्ति न मिलेगी। इस लोकमें ही देख लो जो राजा महाराजा लोग ऐश-आराममें रहते थे, विषयोंमें रहते थे, मदिरा पान करते, वेश्या इत्यादिसे नृत्यके पसंदी थे, उनको देख लो सब खतम हो गए और और भी सोच लो, जो बड़े-बड़े लोगोंके लड़के होते हैं, उनमें जो व्यसनोंसे जकड़े होते हैं, वे कुछ ही दिनोंमें बरबाद हो जाते हैं। धनका विनाश व्यसनोंसे ही होता है, क्योंकि व्यसन है तो खोटी परिणति है, इस खोटी परिणतिसे ही अपनेको बिगाड़ लेते हैं। इन व्यसनोंका मूल है मोह। तो यह चीज दोपहरमें भी कही थी कि सबसे बड़ा पाप है मोह। मोह कितना बड़ा पाप है? ये शिकारी लोग जो जीवहत्या करते हैं। वे इस मोहसे ही करते हैं इसलिए वे तो पापी हैं ही, मगर उसमें भी भेद करो तो जीव हननेसे भी अधिक पाप मोह ही है, मोहका परिणाम पाप ही है। मोहमें तो भीतर अंधेरा ही रहता है। वह और कोई ज्ञानका काम नहीं करने देता है। सो जो अहंकार है वह मोहकी ही तो बात है। इस मोहको बाहर कर अपने स्वरूपको देखो और अपनेमें अपने लिए अपने आप स्वयं सुखी होवो।

अस्ति पूर्णस्वसज्जातिव्यादि दुर्लभवस्तुनि।
प्राप्ते लाभो यदि स्वस्थः स्यां स्वस्थे स्वे सुखी स्वयम् ॥४५॥

पहिले तो इस जगत्से जीवोंमें दृष्टि पसारकर देखो तो कितनी ही तरहकी स्थितिके जीव पाये जाते हैं। कोई जीव पृथ्वीकायिक है, कोई जलकायिक है तो कोई अग्निकायिक तो कोई वायुकायिक है, कोई वनस्पतिकायिक है, कोई अनेक इन्द्रियों वाला है। यह जो अग्नि जलती है वह भी एक जीव है। कोई तो पेड़ रूप है, कोई मकोड़े रूप है, कोई जीव पशु-पक्षी रूप है, कोई देवतारूप, कोई मनुष्यरूप है। जीवोंकी स्थितियां अनेक हैं। उनमें सबसे निम्न श्रेणी स्थिति एक इन्द्रिय जीवकी है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति तथा इस वनस्पतिका एक भेद निगोद भी है। इन जीवोंकी स्थिति सबसे निम्न है। उनके जीभ भी नहीं है, मन भी नहीं है, वे सोच भी नहीं सकते, वे असहाय हैं, अंग उपांग भी नहीं हैं, वे चल भी नहीं सकते।

ऐसे एक इन्द्रिय वाले जीव सबसे अधिक निम्न हैं। यदि कुछ इनका विकास हुआ तो दो इन्द्रिय वाले हो गए तो एक इन्द्रियसे छूटकर दो इन्द्रिय बन जाना दुर्लभ है कि नहीं। दो इन्द्रियके जीव बन गए तो उससे अधिक कम विकास किया तो तीन इन्द्रियके जीव बन गए। जिनके स्पर्शन, रसना और घ्राण है, ऐसे तीन इन्द्रियके जीव बन गए। दो इन्द्रियसे तीन इन्द्रियमें आना कठिन है। तीन इन्द्रियसे विकास करने पर चार इन्द्रियमें जीव आते हैं जिनके आँख भी हों, कान न हों, जैसे मक्खी, मच्छर आदि। यह होना उससे भी अधिक दुर्लभ है फिर पाँच इन्द्रियाँ आयीं उनमें भी असंज्ञी हुए तो मोक्षमार्ग नहीं बन सकता। पंचेन्द्रियमें भी मनका पाना दुर्लभ है। मन वाले बने, मनुष्य बने और मनुष्य बनकर भी सब इन्द्रिय सही रहें, चेतना युक्त रहे तो इन्द्रियोंकी पूर्णता पाना यह उससे भी अधिक दुर्लभ है। इन्द्रियाँ भी पूर्ण हों और जाति भी उच्च न हो तो भी कोई श्रेष्ठ नहीं, उच्च जातिमें जन्म हो जाय, उच्च परम्परा हो, उत्तम रीति रिवाज हो ऐसी जगह भी पाना दुर्लभ है और उच्च जातिमें भी जन्म ले लिया, मगर बुद्धि न ठीक हुई तो बेकार सो बुद्धिका मिलना दुर्लभ है। मान लो इन्द्रियाँ भी हैं, जाति कुल भी अच्छा मिल गया, पर बुद्धि नहीं है तो बेकार है न सब।

जैसे किसी-किसी रईसके लड़कोंको देखो तो वे बाहरसे तो सुन्दर लगते हैं, मगर उनसे बात करके देखो तो स्पष्ट बेवकूफ नजर आते हैं। ऊपरसे चाहे कोट हो, पैन्ट हो, बूट हो और ऊपरसे एक टोप रखे हो, मगर उनसे जरा बात करके देखो तो वे अटपट बातें करते हैं। तो पाँचों इन्द्रियाँ पा जाना, अच्छी जाति, कुल पा जाना हुआ, फिर भी विवेक न जागा तो यह जिन्दगी उनकी बेकार है कि नहीं बतलावो? बेकार है। ऊँची जाति भी मिल गई, सब कुछ मिल गया, बुद्धि भी मिल गई, किन्तु उसका उपयोग न किया याने उनमें बुद्धि कार्यान्वित करनेकी सुमति न हो तो भी बेकार है। धर्म सच न हो तो यह और सब भी बेकार है। धर्मका प्रसंग भी पा लिया, फिर भी यह जीव अपने स्वरूपमें स्थित नहीं होता तो यह पायी हुई चीज भी व्यर्थ है। दुर्लभ वस्तु पानेका प्रयोजन यह था कि यह आत्मा अपने स्वरूपमें स्थित है और आनन्दपुञ्ज अपने आपके स्वरूपमें तृप्त होकर कर्मोंका क्षय कर ले, कर्मोंसे छूटनेका उपाय बना लें, इसलिए दुर्लभ वस्तु प्राप्त हुई थी। सभी समागम पाया और पाने पर भी स्वस्थ न हो सके तो सब व्यर्थ है। लाभ तो तब है जब स्वस्थ हो जाऊँ, स्वस्थ होकर यथार्थज्ञात पाऊँ और वैसा ही ज्ञान करता रहूं। यदि ऐसा हो जाय तो स्वयंमें अपनेमें अपने लिए अपने आप सुखी हो सकता है। सुख दूसरेके आधीन नहीं है। कोई दूसरा मुझे सुखी दुःखी कर दे यह हो ही नहीं सकता है। यह आत्मा ही सारे वैभवपूर्ण है। पर

ख्याल उल्टा बना लिया और दुःखी हो गये। यह जीव ख्याल बनाकर ही दुःखी हो जाता है। जैसे कोई सेठ गद्दीपर पड़ा हुआ है, नौकर-चाकर काम कर रहे हैं, सबके काम अपना-अपना कर रहे हैं। किन्तु अभी कोई दुःखका ख्याल बना ले, लड़का मेरी बात नहीं मानता, इसने ऐसा काम नहीं किया तो इतनेसे ही दुःखी हो गए। सो दुःखी होना किसी दूसरेके आधीन नहीं है, दुःखी होना तो अपनी कल्पनाओंके ही आधीन है। सो अपनी कल्पनायें आकुलतायें मिटाओ और अपने आपमें सुखी होओ।

> आत्मानमात्मन्य विज्ञातं दुर्लभादपि दुर्लभम्।
> लाभेरमे य तमेव त्वां त्वत्तः त्वे सुखी स्वयम् ॥४३॥

दुनियामें अनेक पदार्थ दुर्लभ हैं, पर सबसे अधिक दुर्लभ चीज अपने स्वरूपका यथार्थ ज्ञान करना है। यही सबसे दुर्लभ चीज है। "धन, कन, कंचन, राज सुख सबहि सुलभ कर जान। दुर्लभ है संसारमें एक यथारथ ज्ञान॥" धन, कन, कंचन आदि मिलना तो संसारमें सुगम है पर आत्माके स्वरूपका ज्ञान होना कठिन है, सही ज्ञान हो जाना यही दुर्लभ चीज है। देखो आत्मा स्वयं प्रकाशवान चीज है, फिर उसको ढूंढनेके लिए दूसरे प्रकाशकी जरूरत पड़े, ऐसा क्या हो सकता है? जलती हुई लालटेनको उठानेके लिए दूसरी जलती हुई लालटेनकी क्या आवश्यकता है? कोई आवश्यकता नहीं है। किसीने कहा कि कमरेमें लालटेन जल रही है उसे उठा लाओ। सो कहे कोई कि दूसरी लालटेन जलती हुई दे दो तो हम उठा लायें। अरे जलती हुई लालटेनकी क्या आवश्यकता है? कोई आवश्यकता नहीं है। श्रम करनेकी जरूरत नहीं थी। यहाँ तो स्वयं ज्ञानकी बात ज्ञानके द्वारा पाना चाहिए थी, पर यहाँ अंधेर मच गयी। यह अंधेर मोहसे, अज्ञानसे मची हुई है। अभी देखो कोई मनुष्य जो बड़ा बुद्धिमान है उसकी बुद्धि हर विषयमें बहुत अच्छी चलती है। किसी प्रकारका कषाय आ जाय तो फिर उसकी बुद्धि नहीं चलती, उसकी बुद्धि रुक जाती है। जैसे कि वकील लोगको गुस्सा आ जाय। गुस्सा आ जानेपर विपक्षी ठीक बयान नहीं कर पाता है। उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, पतित हो जाती है। यह बुद्धि मोह राग द्वेषसे खराब होती है। यदि व्यवस्था रहे बुद्धिकी तो यही सबसे बड़ा वैभव है। सबसे बड़ी दुर्लभ चीज क्या है दुनियामें? सबसे बड़ी चीज है आत्माके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान करना दुर्लभसे भी दुर्लभ है। किन्तु ये स्वयं अपनेमें सूझते नहीं है, इसलिए दुर्लभ है। अपने स्वरूपकी ओर दृष्टि दें तो इससे सुगम और कुछ नहीं है। यह तो सुगम है, पास ही है। निकटकी बात क्या है? अंतरमें ऐसी दृष्टि नहीं है। सुगम होते हुए भी दुर्लभ है जैसे मुट्ठीमें कोई चीज हो, जैसे अंगूठी या और कोई मूल्यवान चीज हो और उस चीजको भूल जावे तो वह चीज कितनी दूर हो गयी? अरे वह तो

बिल्कुल ही दूर हो गयी। अब पेटियोंमें ढूंढते हैं, बिस्तरमें ढूंढते हैं, पर कहीं मिलती है। जिस चीजको ढूंढते हैं वह है मुट्ठीमें, पर कितनी दूर हो गयी? अप्राप्य हो गई। वह बहुत दूर हो गई, अप्राप्य हो गई। कहीं बक्स खोलते, कहीं बिस्तर खोलते। दूसरे दिन दाहिने हाथसे संदूक खोलते थे, अब बायें हाथसे खोलते हैं, दाहिने हाथमें चीज बांधे हैं। न मिलनेपर दुःख हो रहा है। देखो है मुट्ठीमें ही, पासमें ही, पर भूल जानेपर वह चीज कितनी दूर हो जाती है? इसी तरह यह आत्मा कैसी है और बाहर है क्या? निकट है क्या? और निकट की बात क्या, खुद ही तो है। खुद ही तो शान्तिमय है, आनन्दस्वरूप है, मगर खुदको भूल गए तो यह आत्मा कितना दूर हो गया? बहुत दूर हो गया, खुद और दूर। अरे यह कितने आश्चर्यकी बात है कि आत्मा है खुद और दूर हो गई, कितनी अधिक दूर हो गई, अप्राप्य भी हो गई। तो आत्माका ज्ञान होना बहुत दुर्लभ चीज है। सबसे बड़ी भारी विपत्ति यह है कि मिले हुए सारे पदार्थ समाप्त हो जायेंगे सबका वियोग हो जायगा। कुछ भी हमारा आपका नहीं है। मगर यह आत्मा स्वरूप मेरा है, आपका है, यह तो कभी मिटेगा नहीं। यह तो सदा रहेगा, इस निजस्वरूपका ज्ञान न करके यह जीव कितना भटक रहा है, जन्म मरण करता यह जीव चला जा रहा है? अपने आत्मस्वरूपका बोध न होनेसे ही यहाँ भटकना पड़ रहा है। तो अब समझ लीजिए कि सबसे दुर्लभ चीज क्या है? आत्माके स्वरूपका ज्ञान होना ही दुर्लभ चीज है। चित्त क्षुब्ध है, आकुलताएँ करते हैं और दुःखी होते हैं, देश पर आक्रमणकी बात सुनकर कितना दुःख सबको होता है, समाजको, घरकी बातोंको सुनकर कितना दुःख हो जाता है? इस सारी दुनियाके सारे क्लेश मिट जायें ऐसी इसकी कोई पेटेन्ट औषधि है। सारे क्लेशोंको दूर करनेकी औषधि ज्ञान है। अपने स्वरूपका यथार्थज्ञान होना ही सारे क्लेशोंको दूर करनेकी दवा है। जैसे अमृतधारा चला है वह १०० रोगोंकी दवा है। पेट दर्द, सिर दर्द तथा अन्य दर्दोंके लिए यह अमृतधारा दवा चली है तो जैसे अमृतधारा बन गया है उसी प्रकार दुःखोंको मिटानेके लिए अपने स्वरूपका यथार्थज्ञान होना एक परमार्थ दवा है। भारी क्लेश हो रहे हों, जरासा अपने स्वरूपकी ओर झुको, अपने ज्ञानस्वरूपमें डुबकी लगा लो तो सारे क्लेश दूर हो जाएं। जैसे बड़े समुद्रोंमें मछलियां होती हैं। एक-एक, दो-दो मीलकी लम्बी तो लोग समझते हैं कि यह कोई टापू है, उस में बड़ी-बड़ी घास उग जाती है, उस पर बड़ी-बड़ी सेनायें बस जाती हैं। उस मछली पर बहुत बड़ा बोझ आ जाता है, बोझ आ जानेसे क्लेश आ जाते हैं उसके क्लेशके मिटनेकी कुंजी यह है कि वह नीचे डूब जाय। तो इस जीवको संकट दूर करनेका क्या उपाय है कि वह अपने ज्ञानके समुद्र में डूब जाय। उन सब संकटोंको मिटानेकी दवा यह है कि वह अपनेको समझे कि मैं ज्ञान-

मात्र हूं। ये सब कुमति भरकर दुखी हैं। कोई कैसे परिणमता है, कोई कैसे। इन सबकी उपेक्षा कर दो, अपने ज्ञानकी प्रतीति कर लो, अपने आपमें डूब लो और फिर अपने सारे दुःख समाप्त कर लो। जैसे किसी घरमें इष्टका वियोग होता तो समझाने वाले लोग उनको समझाते हैं, तो यही कहेंगे कि और मित्र थे, वे आये थे और चले गए। इसलिए समझाते हैं कि उनसे उपेक्षा हो जाय और सत्य ज्ञानकी आ जाय। अपने आपकी अकेला अनुभव कर सकें तो वे सुखी हो जायें। ऐसे हीं तो एक यह ही उपाय है कि आत्माका सच्चा ज्ञान हो और आत्मामें ही रमकर उसमें ही तृप्त होकर ही दुःख दूर करनेका उपाय करें।

आत्मयाथात्म्यविज्ञानं दुर्लभादपि दुर्लभम्।
लभे रमे च तत्रैव स्यां स्वस्थः स्वे सुखी स्वयम् ॥४७॥

यह आत्मा स्वयं ज्ञायकस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है याने ज्ञान ही इसका सारस्वरूप है। सबसे विलक्षण यह ज्ञानमय पदार्थ है। इसीको ही ज्ञायकभाव कहते हैं। आत्माके अन्दर कौनसी चीज है? यदि ऐसा पूछा जाय तो क्या उत्तर दोगे? आत्मामें रूप है कि रस है, ईंट है, पत्थर है, जो बतलावो। आत्मामें क्या मिलेगा? आत्मामें मिलेगा केवलज्ञान। जो जानकारी है जो ज्ञान है सोई आत्मा है। ऐसा जो मात्र ज्ञानस्वरूप आत्मा है उसको यदि न जाना तो, इस मर्ममें न पहुंचे तो सारा जगत् भी जान डालें, दुनियाभर समझ डाले तो भी वह सारी समझ व्यर्थ है। एक अपने आत्माके स्वरूपका ज्ञान किया तो ज्ञान सफल है और यदि एक ज्ञान ही आत्मामें नहीं आता तो सारे लोकको जानता रहे तो वह सारा जानना बेकार है। अब यह जीव या हम और आप अपने आपको इस रूपमें देखें कि यह मैं केवलज्ञानज्योतिरूप हूं। शरीरका भी मान न रखना, शरीरमें भी दृष्टि न रखना, केवलज्ञान ही ज्ञानका प्रकाश अपनेमें नजर आवे और ज्ञानरूप ही अपनेको जानता रहे तो उस समयसे आत्माकी सच्ची जानकारी होती है। हम और कुछ अपनेको जानें तो सत्य जानकारी नहीं कर सकते। यही बात प्रभुकी है, भगवानकी है। भगवानको यदि स्वच्छ असीम ज्ञानरूप देखो तो प्रभुके दर्शन हुए समझो और प्रभुको यदि और और रूप वाला देखो, हाथ पैर वाला है, घरमें रहने वाला है, अमुकका लड़का है, अमुकका पिता है और कई रूपोंमें देखो तो प्रभुका अनुभव न होगा, प्रभुका ज्ञान न होगा। प्रभुका ज्ञान और अनुभव न होगा जो अपने आपके ज्ञानस्वरूपको ही देखे। मेरा ज्ञान असीम है, सारे विश्वको जाननेके स्वभाव वाला है। तो असीम, सर्व ज्ञाताके रूपमें अपने स्वरूपको देखो, ज्ञानको ज्ञानसे जानो तो प्रभुके स्वरूपका पता पड़ेगा। प्रभुको और और रूपोंमें देखनेसे प्रभुका दर्शन न होगा। यही बात अपनी है। हम अपनेको केवलज्ञानज्योतिरूप देखें, ज्ञानमात्र अपने आपको अनुभव करें, कोई विकल्प

न हों, कोई क्षोभ न हों, कोई आकुलतायें न हों यह ज्ञानस्वरूप है। इसकी भावनाका अनुभव आनन्दमय ही होता है। अपने ज्ञानस्वरूपका ज्ञान किए बिना यह सारा लोक भी जान जावें, बड़े-बड़े आविष्कारोंको जान जावें, जिन्हें कहते हैं बड़ी कलायें हैं, ऐसी बड़ी कलाओंको भी जान जावें, पर एक ज्ञानस्वरूपका अनुभव न किया तो यह सारा जानना व्यर्थ है। ऐसा समझकर ज्ञानमय जो अपना स्वरूप है उस स्वरूपको अनुभवें और अपनेको ही आप स्वयं ही देखें। यह चीज स्वयंकी है, प्रिय भी है। गृहस्थावस्थामें वहाँ राग करने पड़ते हैं, पुत्रोंकी याद रखना पड़ता है, धन कमानेकी भी कोशिश करना होता है। सब कुछ करते हुए भी अपने स्वरूपका सही भान रहे तो उसे आकुलताएँ नहीं सतातीं। कितनी ही विपदाएँ आ जाएँ अपने आपके स्वरूपको देखो, सबको सारे झंझटोंसे न्यारा, शुद्धमात्र केवल ज्ञानरूप, ऐसा अपने आपको समझो खूब विश्वाससे लखो, उसमें ही ये संकट दूर हो जाते हैं। ये प्रभुके दर्शन भी किसलिए किए जाते हैं? अपने आपको शुद्ध मार्ग मिले, मुझे क्या करना चाहिए, इन बातोंके लिए प्रभुके दर्शन किए जाते हैं। मोहकी वृद्धि करनेका तो यह फल है कि जब प्रवृत्ति उन मोहोंमें होती है तभी क्लेश प्राप्त होते हैं। प्रभुने क्या किया था कि अपने आत्मा के शुद्ध स्वरूपको जाना था और जानकर इस ही उपयोगमें लग गये थे। विषयोंसे, मोहसे मुक्त हो गये थे और इसी ब्रह्मस्वरूपमें रत होकर वे मोक्ष पधारे थे। ऐसा विश्वास निरन्तर रखना चाहिए कि ऐसा कर सके तो ठीक है। तो इससे ही आत्मा संकटोंसे परे हो जाती है। इसलिए आत्माके ज्ञानस्वरूपको ही देखकर सुखी होऊँ।

॥ सुख यहाँ द्वितीय भाग समाप्त ॥

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्त-न्याय-साहित्यशास्त्री
पूज्य श्रीमत्सहजानन्द महाराज
द्वारा विरचितम्

सहजपरमात्मतत्त्वाष्टकम्

॥ शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥

यस्मिन् सुधाम्नि निरता गतभेदभावा, प्राप्स्यन्ति चापुरचलं सहजं सुशर्म ।
एकस्वरूपममलं परिणाममूलं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥१॥

शुद्धं चिदस्मि जपतो निजमूलमंत्रं, ॐ मूर्ति मूर्तिरहितं स्पृशतः स्वतंत्रम् ।
यत्र प्रयान्ति विलयं विपदो विकल्पाः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥२॥

भिन्नं समस्तपरतः परभावतश्च, पूर्णं सनातनमनन्तमखण्डमेकम् ।
निक्षेपमाननयसर्वविकल्पदूरं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥३॥

ज्योतिः परं स्वरसकर्तृ न भोक्तृ गुप्तं, ज्ञानिस्ववेद्यमकलं स्वरसाप्ततत्त्वम् ।
चिन्मात्रधाम नियतं सततप्रकाशं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥४॥

अद्वैतब्रह्मसमयेश्वरविष्णुवाच्यं, चित्पारिणामिकपरात्परजल्पमेयम् ।
यद्दृष्टिसंश्रयणजामलवृत्तितानं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥५॥

आभात्यखण्डमपि खण्डमनेकमंशं, भूतार्थबोधविमुखव्यवहारदृष्ट्याम् ।
आनंदशक्तिदृशिबोधचरित्रपिण्डं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥६॥

द्धान्तरङ्गसुविलासविकासभूमि, नित्यं निरावरणमञ्जनमुक्तमीद्धम् ।
निष्पीतविश्वनिजपर्ययशक्ति तेजः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥७॥

ध्यायन्ति योगकुशला निगदन्ति यद्धि, यद्ध्यानमुत्तमतया गदितः समाधिः ।
यद्दर्शनात्प्रवहति प्रभुमोक्षमार्गः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥८॥

जपरमात्मतत्त्वं स्वस्मिन्ननुभवति निर्विकल्पं यः ।
सहजानन्दसुवन्द्यं स्वभावमनुपर्ययं याति ॥९॥

॥ आत्मभक्ति ॥

मेरे शाश्वत शरण, सत्य तारणतरण ब्रह्म प्यारे।

तेरी भक्तीमें क्षण जाय सारे ॥ टेक ॥

सकलके ज्ञानमें ज्ञान हो हो, कल्पनाओंका इकदम विलय हो।
अखिलका नाथ हो, कीर्तिका धाम हो, ब्रह्म प्यारे। तेरी० ॥१॥

सर्व गतियोंमें रह गतिसे न्यारे, सर्व भावोंमें रह उनसे न्यारे।
सर्वगत आत्मगत, रत न बाहीं विरत, ब्रह्म प्यारे। तेरी० ॥२॥

सिद्धि जिनने भि अब तक है पाई, तेरा आश्रय ही उसमें सहाई।
मेरे संकटहरण, ज्ञान दर्शन चरण, ब्रह्म प्यारे। तेरी० ॥३॥

देह कर्मादि सब जगसे न्यारे, गुण व पर्ययके भेदोंसे पारे।
नित्य अंतः अचल, शुद्ध ज्ञायक अमल, ब्रह्म प्यारे। तेरी० ॥४॥

आपका आप ही प्रेय तू है, सर्व ज्ञेयोंमें नित ध्येय तू है।
सहजानन्दी प्रभो, अन्तर्यामी विभो, ब्रह्म प्यारे। तेरी० ॥५॥

॥ आत्म-रमण ॥

मैं दर्शनज्ञानस्वरूपी हूं, मैं सहजानन्दस्वरूपी हूं ॥ टेक ॥

हूं ज्ञानमात्र परभावशून्य, हूं सहज ज्ञानघन स्वयं पूर्ण।
हूं सत्य सहज आनंदधाम, मैं सहजानंद०, मैं दर्शन० ॥१॥

हूं खुदका ही कर्ता भोक्ता, परमें मेरा कुछ काम नहीं।
परका न प्रवेश न कार्य यहां, मैं सहजानंद०, मैं दर्शन० ॥२॥

आऊं उतरूं रम लूं निजमें, निजकी निजमें दुविधा ही क्या।
निज अनुभव रससे सहज सुख, मैं सहजानंद०, मैं दर्शन० ॥३॥